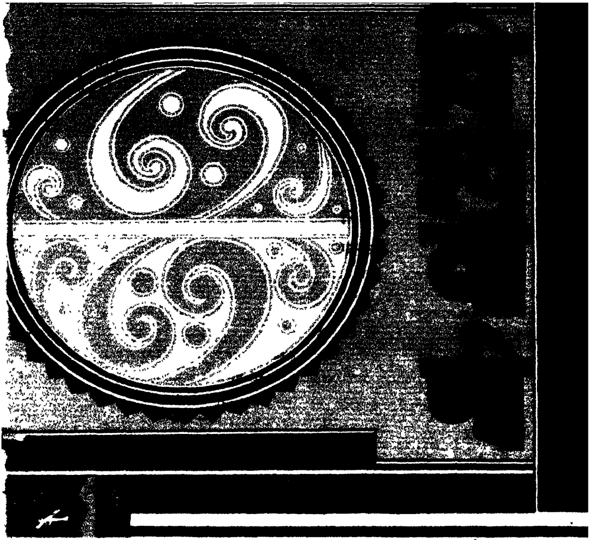


जनवरी

१९४८

विश्ववाणी

विषय-सूची

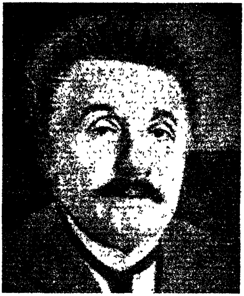
[जनवरी : १९४८]

विश्ववाणी

वर्ष ८, भाग १५] जनवरी : १९४८ [अङ्क १, पूरे अङ्क ८५

एटम बाम्ब और विश्व-सरकार

—प्रोफ़ेसर अलवर्ट आइन्सटीन



जब से वैज्ञानिकों ने अणु-शक्ति के प्रयोग में सफलता प्राप्त की है तब से लोगों में यह आम धारणा व्याप्त हो गई है कि संसार के सामने एक नई समस्या पैदा हो गई है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। युद्ध द्वारा विश्व के सांस्कृतिक विनाश की समस्या पहले भी थी। केवल वह अब भयंकर परिणामों के बोझ से बोझिल हो गई है। जब तक दुनियां में प्रबल साम्राज्य हैं तब तक युद्ध देर-सवेर अवश्यम्भावी है। एटम बाम्ब बनने के पूर्व भी यही कैफ़ियत थी। परिस्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा है केवल युद्ध के विनाशकारी परिणामों का दायरा बढ़ गया है।

यदि एटम बाम्ब की लड़ाई हुई तो दुनिया के दो-तिहाई मनुष्य काल के गाल में चले जायंगे। हां, सभ्यता नष्ट नहीं होगी। लोगों में विचार करने की शक्ति तो रहेगी ही और यथेष्ट पुस्तकें बच जायंगी कि सभ्यता की बुनियादें फिर से डाली जा सकें। फिर भी इस तरह के विनाशकारी महायुद्ध से दुनिया को बचाने की चेष्टा तो सम्पूर्ण शक्ति के साथ इस समय करनी ही चाहिये।

मेरा इस पर विश्वास नहीं कि एटम बाम्ब का भेद सोवियत् यूनियन या यू. एन. ओ. को बता देना चाहिये। मेरा इस पर भी विश्वास नहीं कि उसका भेद किसी एक राष्ट्र या राष्ट्रों के समूह की मिल्कीयत रहनी चाहिये। आज कल की अराजक परिस्थितियों में जब कि प्रतिद्वंदी

शों में इतना दर्द है इस तरह की बात से तो शस्त्रीकरण की दौड़ में लोग एक दूसरे से बाज़ी ले जाना चाहेंगे और यदि हम तीसरे महायुद्ध से दुनिया को बचाना चाहते हैं तो हथियार बन्दी की गुप्त तैयारियाँ बन्द होनी चाहिये'।

अमरीका की सरकार को इस बात का ऐलान कर देना चाहिये कि वह एटम बाम्ब का भेद एक अखिल विश्व-सरकार (World Government) के सुपुर्द करने को तैयार है। युद्ध की सम्भावना को मिटाने के लिये एक अखिल विश्व-सरकार क़ायम करने की आवश्यकता है। इस तरह की सरकार अमरीका, इङ्गलैण्ड और सोवियत् यूनियन को मिलकर क़ायम करना चाहिये। ये ही तीनों देश हैं जिनके पास महान सैनिक शक्ति है। इन तीनों देशों को अपनी सैनिक व्यवस्था, अपने अस्त्र शस्त्र और अपनी सेनाएँ इस विश्व-सरकार के सुपुर्द कर देनी होंगी। चूंकि केवल ये ही तीन देश शक्तिशाली सैनिक देश हैं इसलिये इस तरह की विश्व-सरकार की स्थापना का कार्य काफ़ी सरल होना चाहिये।

चूंकि अमरीका और इङ्गलैण्ड के पास एटम बाम्ब का भेद है इसलिये उन्हें सोवियत् यूनियन को प्रस्तावित विश्व-सरकार का विधान बनाने का निमंत्रण देना चाहिये। इससे सोवियत् के हृदय में फिर से विश्वास क़ायम हो जायगा। इस समय रूसी यह समझते हैं कि एटम बाम्ब के भेद को सोवियत् यूनियन से छिपाने के लिये अमरीका और इङ्गलैण्ड गुप्त षड्यन्त्र में आबद्ध हैं। ज़ाहिर है विधान का पहिला मसविदा अन्तिम न होगा। किन्तु रूसियों के हृदय में यह विश्वास क़ायम होना चाहिये कि विश्व-सरकार उनकी सुरक्षा के लिये कोई दक़ीक़ा बाक़ी न उठा रखेगी।

यह एक बुद्धिमानी की बात होगी कि इस विधान के बनाने में केवल एक रूसी, एक अङ्गरेज और केवल एक अमरीकी हिस्सा लें। तीन व्यक्तियों की ही यह विधान कमेटी होनी चाहिये। हां, उन्हें सलाह देने के लिये विद्वान और निपुण सहायक रहेंगे। किन्तु ये सलाहकार आवश्यकता पड़ने पर ही सहायता देंगे। मुझे विश्वास है तीन व्यक्तियों की यह कमेटी एक सर्व सम्मत विधान बनाने में सफल होगी। छै, सात या अधिक आदमियों की कमेटी को सम्भव है वह सफलता न प्राप्त हो।

जब ये तीन बड़ी शक्तियां विश्व-सरकार का इस तरह का विधान बना लें तब ये छोटे-छोटे राष्ट्रों को उसमें सम्मिलित होने का निमंत्रण दें। सम्मिलित करने में उनके ऊपर किसी तरह का दबाव न डाला जाय। यदि वे न शामिल होना चाहें तब भी अपने को सुरक्षित समझें। उन्हें विश्व-सरकार से बाहर रहने की पूरी स्वतंत्रता हो। मुझे विश्वास है वे उसमें शामिल होना चाहेंगे। उन्हें विधान में संशोधन के सुझाव पेश करने की भी अनुमति होगी किन्तु चाहे छोटे राष्ट्र सम्मिलित हों या न हों तीनों बड़ी शक्तियों को विश्व-सरकार का संगठन करना ही है।

विश्व-सरकार को सैनिक सम्बन्धी समस्त अधिकार होंगे। उन्हें एक शक्ति और होगी। वह यह कि जब अल्पमत बहुमत के ऊपर अत्याचार कर रहा हो और ऐसी परिस्थिति पैदा कर रहा हो जिसमें युद्ध अवश्यम्भावी हो जाता है, जैसी परिस्थिति स्पेन और अर्जेंटिना में है, तो उसमें इस विश्व-सरकार को दख़ल देने का पूरा अधिकार होगा। हस्तक्षेप न करने की नीति समाप्त हो जानी चाहिये क्योंकि हस्तक्षेप शान्ति की स्थापना के उद्देश्य से ही किया जायगा।

विश्व-सरकार की स्थापना तो तुरंत होनी ही चाहिये। इसके लिये यह शर्त न होनी चाहिये कि उपरोक्त तीनों देशों में स्वतंत्रता की एक ही स्थिति हो। यह सच है कि सोवियत् रूस में अल्पमत की हुकूमत है। किन्तु किसी देश की आन्तरिक स्थिति अपने आप में दुनिया की शान्ति के लिये ख़तरा नहीं है। एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि सोवियत् रूस की जनता को यथेष्ट राजनैतिक शिक्षा नहीं प्राप्त हुई। वहां छोटे से अल्पमत या दल को देश की हालत सुधारने के लिये इस वास्ते अग्रसर होना पड़ा चूंकि वहाँ कोई बहुमत इस काम के करने योग्य न था।

विश्व-सरकार की स्थापना में इसके सैनिक व्यवस्था विभाग को इस बात की आवश्यकता न होगी कि वह इन तीन बड़ी शक्तियों के आन्तरिक शासन में परिवर्तन करे। जो तीन व्यक्ति विश्व-सरकार का विधान बनायेंगे वे इस

बात का ध्यान रखेंगे कि तीनों देशों की आन्तरिक व्यवस्था में भिन्नता के होते हुये भी उस भिन्नता में एक समन्वय हो ताकि तीनों देश मिलकर दुनिया के भावी सङ्कट को टाल सकें।

क्या इस विश्व-सरकार के निरङ्कुश होने का भी ख़तरा है? हां, है। किन्तु भावी युद्ध के ख़तरे के सामने इस ख़तरे का कोई मूल्य नहीं। कोई भी सरकार एक हद तक ख़तरे का कारण बन सकती है। किंतु एटम बाम्ब के ख़तरे के आगे विश्व-सरकार की निरङ्कुशता का ख़तरा कोई बिसात नहीं रखता। यदि समझौते से इस तरह की विश्व सरकार बन जाती है तो उसकी रूप रेखा दुनिया के लिये बेहद हितकर होगी अथवा विश्व-सरकार अपने समस्त ख़तरों के साथ बनकर ही रहेगी। प्रत्येक युद्ध एक विशेष राष्ट्र को शक्तिशाली बना देगा और वह अपनी श्रेष्ठ सैनिक शक्ति से दुनिया को अपनी मरज़ी के मुताबिक़ चलने पर विवश करेगा।

अब हमने अणु-शक्ति का पता लगा लिया है। हमें उसे व्यर्थ नहीं जाने देना है किन्तु हमें शीघ्रातिशीघ्र इस बात को स्पष्ट कर देना है कि हम एटम बाम्ब का अपने को शक्ति शाली बनाने के लिये उपयोग न करेंगे बल्कि विश्व सरकार के द्वारा समस्त विश्व में शांति स्थापना के लिये हम उसका प्रयोग करेंगे।

यह एक सन्तोष की बात है कि कुछ विचारवान व्यक्ति ऐसे हैं जो विश्व-सरकार की स्थापना को मानव उन्नति का चरम लक्ष्य मानते हैं। किन्तु वे उस ओर धीरे-धीरे अग्रसर होना चाहते हैं। किन्तु धीरे-धीरे क़दम उठाने में, और वह भी एटम बाम्ब के साथ, सबसे बड़ा ख़तरा यह है कि जिन लोगों के पास एटम बाम्ब नहीं है वे हमसे भयभीत रहेंगे और जहां भय रहेगा वहां अविश्वास रहेगा। परिणाम यह होगा कि तीनों बड़ी शक्तियों में प्रतिद्वन्द्विता रहेगी और उनका आपसी सम्बंध ख़तरनाक रूप से दिन-प्रति-दिन बिगड़ता रहेगा। इसलिये जो लोग धीरे-धीरे क़दम उठाकर यह समझते हैं कि वे विश्व-शांति की स्थापना में योग दे रहे हैं वे भूल करते हैं। वास्तव में वे भावी युद्ध को निकट ला रहे हैं। हमारे पास बरबाद करने के लिये समय नहीं। यदि युद्ध को रोकना है तो हमें फ़ौरन ही एक मज़बूत क़दम उठाना चाहिये।

यह एक निश्चित बात है कि एटम बाम्ब का भेद हम अधिक दिनों तक अपनी बपौती बनाकर नहीं रख सकते। यह तर्क पेश किया जाता है कि दूसरे देशों के पास इतना धन नहीं कि वे एटम बाम्ब बना सकें। किंतु धन से तो एटम बाम्ब नहीं बनता। एटम बाम्ब बनता है जन शक्ति और खनिज द्रव्यों से और यदि किसी देश के पास जन शक्ति या खनिज द्रव्य हैं तो वह देश निश्चय ही एटम बाम्ब बना सकता है।

मैं अपने आपको कोई अणु-शक्ति का अनुसन्धान कर्त्ता नहीं मानता। मेरा उसमें बहुत अपरोक्ष हिस्सा था। मैं यह भी नहीं समझता था कि मेरे जीवन काल में अणु शक्ति का पता लग जायगा। किंतु मैं अणु शक्ति को सैद्धान्तिक रूप से पूरी तरह सम्भव मानता था। अणु शक्ति का व्यावहारिक उपयोग अकस्मात ही मालूम हो गया। बर्लिन में प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक हैन (Hahn) को परमाणु शक्ति पर अनुसन्धान करते हुये अणु के विस्फोटक तत्त्व का पता चला। यद्यपि उस समय हैन स्वयं अपनी खोज के वास्तविक मूल्य को न समझा था। बाद में लाइज़ मेटनर (Lise Meitner) उसके मूल्य को ठीक ठीक आंक कर जर्मनी से चम्पत हो गया। मेटनर ने वह भेद प्रसिद्ध डैनिश वैज्ञानिक नील्स बोहर (Niels Bohar) को बताया जो उस भेद को संयुक्त राष्ट्र अमरीका लाया।

मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता कि बड़े-बड़े कार्पोरेशनों की तरह विज्ञान का सङ्गठन करके अणु विज्ञान का महान युग सम्भव बन सकता है। जो अनुसन्धान हो चुके हैं उन्हें तो सङ्गठित किया जा सकता है किन्तु भविष्य में होने वाले अनुसन्धानों को सङ्गठित नहीं किया जा सकता। एक स्वतन्त्र व्यक्ति ही अनुसन्धान कर सकता है। क्या आप वैज्ञानिकों के ऐसे सङ्गठन की कल्पना कर सकते हैं जो अपने सङ्गठित प्रयत्न से चार्ल्स डारविन की खोजों की पुनरावृत्ति कर सकें?

संयुक्त राष्ट्र अमरीका के बड़े बड़े निजी कार्पोरेशन भी मेरे विचार मे अणु शक्ति की उन्नति के उपयुक्त साझीदार नहीं हो सकते। अमरीका की सरकार को अणु शक्ति पर पूरा पूरा नियंत्रण रखना होगा। इसलिये नहीं कि राष्ट्रीयकरण आवश्यक रूप से अच्छी चीज़ है बल्कि इसलिये कि जो आविष्कार सरकार ने धन लगाकर

फल किया उसका उपयोग किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को दे देना जनता के हितों के प्रति विश्वासघात करना होगा। जहां तक समाजवाद का सम्बन्ध है जब तक उसका क्षेत्र और प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय नहीं होता, कि जिससे सफलतापूर्वक युद्ध को बचाया जा सके, तब तक उसमें पूँजीवाद से भी अधिक शक्ति का केन्द्रीकरण होगा और युद्ध की सम्भावना कहीं अधिक बढ़ जायगी।

इस बात का अन्दाज़ा लगा सकना असम्भव है कि अणु शक्ति का उपयोग रचनात्मक कामों के लिये कब हो सकेगा। इस समय केवल इतना ही ज्ञात है कि यूरेनियम का बड़ी निक़दार में किस तरह उपयोग किया जा सकता है। अभी से इस बात की भविष्य वाणी नहीं की जा सकती कि यूरेनियम को छोटी निक़दार में किस तरह उपयोग किया जा सकता है ताकि उससे मोटरकार या हवाई जहाज़ चलाया जा सके। यह भी नहीं कहा जा सकता कि यूरेनियम के बजाय अधिक पाई जाने वाली किसी धातु में से यह काम लिया जा सके। ज़ाहिर है इस तरह की धातु में भारी अणु शक्ति की उपस्थिति आवश्यक है। किन्तु इस तरह की धातुएँ बहुतायत से नहीं मिलतीं। अणु बमों के प्रयोगों से जो विश्रंखलकरण हुआ है उससे बहुत से ऐसे पदार्थ नष्ट हो गये हैं। यह सही है कि अणु शक्ति के रचनात्मक प्रयोगों से दुनिया को बहुत लाभ होगा किंतु अभी वह स्थिति बहुत दूर है।

मेरे अन्दर वह तर्क शक्ति नहीं कि जिससे मैं अधिक संख्या में लोगों को यह विश्वास दिला सकूँ कि दुनिया के सामने युद्ध की बहुत बड़ी मुसीबत खड़ी हुई है और उससे दुनिया को बचाने का सम्मिलित प्रयत्न करना चाहिये। आज मानव समस्याओं को विश्व-सरकार द्वारा ही हल किया जा सकता है मैं चाहूंगा कि ऐसे व्यक्ति, जिनमें अपनी बातों के समझाने की अद्भुत क्षमता होती है विश्व-सरकार की आवश्यकता के सम्बन्ध में जनमत तैयार करें। एमेरी रीव्ज़ ने Anatomy of Peace नामक पुस्तक लिखकर इस सम्बन्ध में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। उनकी पुस्तक स्पष्ट, संक्षित, दिल पर असर करने वाली और विस्फोटक शक्ति से भरी हुई है।

इस समय अणु शक्ति मानव जगत के लिये एक वरदान नहीं वरन अभिशाप है। शायद इसी में विश्व की इस समय भलाई है। इसी डर से सम्भवतः अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक सुव्यवस्था क़ायम हो जाय। बिना भय के सम्भवतः मानव जाति जिस भ्रमपाश में फंसी हुई है उससे मुक्त न हो सके।

मुझे विश्वास है मानवता अपनी इस समय की दारुण समस्या को सुलझाने में सफल होगी।

तीसरे महायुद्ध की सम्भावना

—श्री बर्ट्रेण्ड रसेल

प्रत्येक देश के विचारवान व्यक्ति तीसरे महायुद्ध की संघातिक सम्भावनाओं से आज पूरी तरह परिचित हैं। एटम बाम्ब भयंकर प्रलय के रूप में सारी दुनिया की ओर निहार रहा है। किन्तु दुनिया को इस मुसीबत से बचाने के लिये जितने शीघ्र हमें राजनैतिक उद्देश्यों में परिवर्तन करना चाहिये उतने शीघ्र हम वे परिवर्तन नहीं कर रहे हैं।

इस बात पर विचार करने के पूर्व कि हमें इस सम्बन्ध में क्या करना चाहिये हम उन समस्त सुझावों पर ग़ौर कर लें जो आम तौर पर पेश किये जाते हैं। कुछ लोग यह कहते हैं कि राष्ट्रों के बीच में इस तरह का समझौता होना चाहिये कि जिन राष्ट्रों के पास एटम बांब है वे युद्ध के समय उसका इस्तेमाल न करेंगे। किन्तु यह सम्भव नहीं। जिस समय युद्ध प्रारंभ होगा एटम बाम्ब को उपयोग करने का प्रलोभन विभिन्न राष्ट्र न रोक सकेंगे। उसे रोकने का एक ही उपाय है और वह है—युद्ध को रोकना।

इस बात का भी कोई परिणाम न होगा कि अणु की विस्फोटक संभावनाओं के संबन्ध में होने वाले अनुसंधान रोक दिए जाएं। यह एक निश्चित बात है कि हिरोशिमा और नागासाकी के ऊपर जो एटम बाम्ब फेंके गए थे उनसे कहीं अधिक ख़तरनाक बाम्ब बनाए जा चुके हैं कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय समझौता इन भयंकर बमों की तैयारी को नहीं रोक सकता।

कुछ लोगों को यह आशा है कि भविष्य में युद्ध को इस लिये रोका जा सकेगा कि लोगों को यह मालूम होगा कि इस तरह के युद्ध सर्वनाश के कारण होंगे। किन्तु हमारा पिछला अनुभव हमें इस तरह की बात से कोई आशा का संदेश नहीं देता। जब से बारूद की ईजाद हुई तब से जब जब भी नए नए विनाशकारी अस्त्र शस्त्र बनाए गए कुछ न कुछ नासमझ आदमियों ने इस बुनियाद पर उसका स्वागत किया कि इससे युद्ध की संभावना कम होगी; किन्तु क्या कभी ऐसा हुआ है! बल्कि युद्ध में अधिक से अधिक भयंकरता ही आती गई। केवल निश्चित रूप से हारने के डर से ही राष्ट्र युद्ध में प्रविष्ट नहीं होते। गत महायुद्ध में अनेक छोटे छोटे निष्पक्ष राष्ट्र बिना लड़े ही जर्मनी द्वारा अधिकृत कर लिये गए, किन्तु जब तक किसी भी राष्ट्र को युद्ध के जीतने की थोड़ी बहुत भी संभावना होती है तब तक वह इस बिना पर युद्ध में शामिल होने से नहीं रुकता कि युद्ध से विजेता और पराजित दोनों को हानि होती है।

मेरी राय में युद्ध को रोकने की केवल एक ही आशा हो सकती है और वह यह कि कोई एक पक्ष अत्यधिक शक्तिशाली और बलवान हो। किन्तु क्या यह एटम-बाम्ब के द्वारा सभव हो सकता है?

इस समय संयुक्त-राष्ट्र अमरीका ही एक ऐसा राष्ट्र है कि जिसके पास वास्तविक एटम-बाम्ब हैं और केवल ग्रेट ब्रिटेन ही ऐसा देश है जो भली-भांति इस बात को जानता है कि एटम-बाम्ब किस प्रकार तैयार किया जा सकता है किंतु यह स्थिति देर तक नहीं कायम रह सकती। ऐसी आशा की जा रही है कि सोवियत देश को अणु विस्फोट के सम्बन्ध का अनुसन्धानिक ज्ञान प्राप्त हो चुका है और यह सोचा जा रहा है कि सन् १९५२ के पहले पहले ही सोवियत् देश भी काफी संख्या में एटम-बाम्ब का संग्रह कर लेगा।

इस समय एटम बाम्ब के कारण अमरीका दुनिया का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र बना हुआ है किन्तु यह कोई स्थायी स्थिति नहीं है। यदि एटम-बाम्ब का उचित उपयोग करना है तो उपयोग करने वाले राष्ट्र के सामने उचित लक्ष्य होना चाहिए और उस लक्ष्य तक पहुँचने की निश्चित योजना भी होनी चाहिए।

दूसरे महायुद्ध की समाप्ति के बाद यू. एन. ओ. और दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने युद्ध को रोकने के सम्बंध में काफी चर्चा की है। अनेकों बार पर-राष्ट्र-सचिव-सम्मेलन किए गए। स्थायी समझौतों पर विवाद किया गया। किन्तु महान राष्ट्र किसी संतोष-जनक परिणाम पर नहीं पहुंचे। अब तो साफ साफ इस बात को मान लेना चाहिये कि युद्ध रोकने के लिए कोई तरीका नहीं निकाला जा सका। आज राजनीतिज्ञों के मुरझाए चेहरे इसे स्वीकार कर रहे हैं कि इस तरह का कोई तरीका संभव नहीं और मानव भूलों और मूर्खताओं का जो लम्बा लेखा जोखा हमारे सामने है उसे देखते हुए एक बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि—तीसरा

महायुद्ध होकर ही रहेगा। यह दूसरी बात है कि वह कब हो।

महान शक्तियों के बीच युद्ध रोकने की कागजी योजना तैयार कर देना बहुत सरल काम है किन्तु कोई महान शक्ति उससे सहमत न होगी। नब्बे फ़ीसदी जनमत मर जाना पसन्द करेंगे लेकिन अङ्कुश के साथ जीना पसन्द नहीं करेंगे। विश्व-शांति के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट आज राष्ट्रीयता साबित हो रही है। और इस रुकावट को एटम-बाम्ब भी नष्ट नहीं कर सकता।

दो महान शक्तियाँ

इस समय दुनिया में केवल दो महान शक्तियां हैं—एक अमरीका और दूसरा सोवियत् रूस। मुझे सन्देह है कि बहुत से अमरीकन इस बात को नहीं जानते कि ग्रेट ब्रिटेन आज वाशिंगटन का मातहत राष्ट्र बन गया है। इङ्गलैण्ड की महत्ता इसलिए थी कि वह सात महासागरों की लहरों पर शासन करता था। जब से उसकी सामुद्रिक सत्ता समाप्त हो गई है तब से उसकी महत्ता भी समाप्त हो गई है। आज ब्रिटेन को अपनी रोटी के लिए अमरीका के ऊपर निर्भर करना पड़ रहा है। आज यदि अमरीका की सरकार हमें यह आदेश दे कि हम समाजवादी शासन का परित्याग कर दें तो हम सर झुका कर उसे स्वीकार कर लेंगे और आज यदि वह हमें आज्ञा दे कि यहूदियों को प्रसन्न करने के लिए हम इस्लामी-दुनिया से जंग का ऐलान कर दें तो हमें आँख बन्द करके वह आज्ञा माननी पड़ेगी। संक्षेप में ग्रेट-ब्रिटेन आज कोई स्वाधीन देश नहीं रह गया है। कम से कम सोवियत् रूस के प्रति ब्रिटेन का क्या रुख हो इसमें ब्रिटेन को वाशिंगटन का आदेश ही मानना पड़ेगा।

आज मास्को और वाशिंगटन का सम्बन्ध अधिक मित्रतापूर्ण नहीं है। भविष्य में ऐसा होगा इसकी भी सम्भावना नहीं है। देर-सवेर दोनों में युद्ध ठन कर ही रहेगा। मैं रंचमात्र भी यह सुझाव नहीं पेश कर रहा कि युद्ध करने में दोनों में से कोई देश उचित कार्य करेगा। बल्कि मैं तो यह कहूंगा कि जब दोनों के पास एटम-बाम्ब हो जाए तो दोनों को एक दूसरे के निकट आत्म-समर्पण कर देना चाहिए। यही सबसे बुद्धिमानी की बात होगी। किन्तु राजनीतिक मामले और बुद्धिमानी में आज तक तो कोई सम्बन्ध देखा नहीं गया।

अब भी याद चेत जाँय

इस समय एटम-बाम्ब केवल अमरीका के पास है और आज यदि सोवियत् रूस और पश्चिमी जनतन्त्रों के बीच युद्ध छिड़ जाय तो पश्चिमी जनतन्त्र सरलता से युद्ध जीत सकते हैं; किन्तु कुछ वर्षों के बाद ही दोनों बराबरी का दरजा ले लेंगे। जो कुछ भी संसार में मूल्यवान है वह सब नष्ट हो जाएगा। सङ्गठित सरकार भी सम्भवत: क़ायम न रह जाएगी। वैज्ञानिक और वैज्ञानिकों की अनुसंधान-शालाएँ सब से पहले नष्ट की जाएँगी और अन्त में शायद एटम-बाम्ब बनाने वाला या किसी भी प्रकार का वैज्ञानिक युद्ध लड़ने वाला कोई भी व्यक्ति बच कर बाक़ी न रह जाएगा।

इस तीसरे महायुद्ध के बाद सम्भवतः कुछ सदियों तक हमें असभ्य किन्तु मुक़ाबिले तन कहीं अधिक शान्तिपूर्ण परिस्थितियों के बीच से निकलना पड़े, किन्तु वह दुनिया न तो अमरीका के आदर्शों के अनुरूप होगी और न सोवियत रूस के, क्योंकि दोनों ही समाज के लिए पेचीदा आर्थिक-संगठन की कल्पना करते हैं।

परिस्थितियों का यह चित्रण इस बात की ओर संकेत करता हुआ दिखाई देता है कि सोवियत रूस के विरुद्ध तुरन्त ही युद्ध छेड़ दिया जाय। किन्तु ऐसा फैसला करने में हम अनेक महत्वपूर्ण बातों को नज़र-अन्दाज़ करेंगे। पहली बात तो यह कि जब तक युद्ध छेड़ने का कोई नैतिक कारण न होगा तब तक अमरीका और ब्रिटेन की जनता ऐसे युद्ध में उत्साह के साथ सम्मिलित न होगी। फिर दूसरे महायुद्ध को थकान अभी तक मिटी भी नहीं। पहले महायुद्ध के बाद इन्हीं परिस्थितियों में रूस के विरुद्ध युद्ध छेड़ा गया था किन्तु वह असफल रहा और अब भी वह असफल होगा।

आज अपनी शक्ति के बल पर पश्चिमी जनतन्त्र एक बात कर सकता है कि वह ऐसा तरीक़ा निकाले कि भविष्य में युद्ध असम्भव हो जाए। इस लेख में हम इस बात पर विचार करेंगे कि यह तरीक़ा या प्रणाली क्या हो सकती है?

शान्ति की प्रणाली

युद्ध को रोकने के लिए सबसे पहिले इस बात की ज़रूरत है कि केवल एक जल-स्थल और हवाई सेना हो। विविध देशों की आन्तरिक सुरक्षा के लिए छोटे छोटे पुलिस के दस्ते भी रहेंगे किन्तु उनके हथियार मामूली दर्जे के होंगे। सेना एक राजनैतिक इकाई के आदेश पर चलेगी। पुलिस के दस्ते देशों को आन्तरिक अराजकता से बचाएँगे। जब तक हमारा उद्देश्य युद्ध को रोकना है तब तक यह बात गौण है कि सेना की इकाई एक देश की है अथवा अनेक देशों की। देशों के समूह की है—अथवा एक विश्वव्यापी संघ की। उसका मुख्य उद्देश्य संसार को भावी महायुद्ध से बचाना होगा।

यह कहा जा सकता है कि यदि यह सेना अन्याय और अत्याचार करने वाली हो तो वह अपने उद्देश्य में विफल हो जाएगी। इसके विरुद्ध विद्रोह खड़ा हो जावेगा। किन्तु किसी भी शक्तिशाली सेना को केवल बग़ावत से नहीं विफल किया जा सकता। उसके लिए उतनी ही शक्तिशाली सेना खड़ी करने की ज़रूरत है। एटम-बाम्ब बनने के बाद विद्रोह से जीतने की आशा करना केवल दुराशा मात्र है।

जनतन्त्र के समर्थक पहले यह दलील पेश किया करते थे कि किसी एक शक्ति को किसी दूसरी शक्ति के आन्तरिक मामलों में दख़ल नहीं देना चाहिए। किन्तु किसी भी एक देश की अराजक आन्तरिक अवस्था के कारण जनतन्त्र का सिद्धान्त सम्मान न प्राप्त करेगा। शान्ति और जनतन्त्र की स्थापना के उद्देश्य से इस शान्ति सेना का दूसरे देशों की आन्तरिक अवस्था सुधारने में दख़ल देना अनुपयुक्त न होगा।

सुरक्षा या स्वाधीनता

उपर्युक्त प्रश्न को ठीक ठीक समझने के लिये हमें सुरक्षा और स्वाधीनता दोनों में से एक को चुनना होगा। जब तक दुनिया में एक से अधिक राष्ट्र सार्वभौम सत्ता का दम भरने वाले रहेंगे तब तक आज नहीं तो कल युद्ध भी ठन कर ही रहेगा। और अगले दो या तीन वर्षों के अन्दर यदि दुनिया को तीसरे महायुद्ध के बीच से गुज़रना पड़ा तो, यदि मानव जाति का नहीं तो कम से कम सभ्यता का नाश हो ही जायगा।

किन्तु दुनिया में यदि एक ही सार्वभौम सत्ता रह गई तब भी दूसरे राष्ट्रों की राष्ट्रीय स्वाधीनता का अन्त हो जायगा। लीग आफ़ नेशन्स की तरह विश्व-संघ की स्थापना एक दूसरा सुझाव है। इसमें विविध राष्ट्रों को अपने अपने अधिकारों का अंश देकर एक निष्पक्ष विश्व-संघ की स्थापना करनी होगी।

सिद्धान्ततः यह एक उपयुक्त हल है किन्तु व्यवहार में यह सम्भव नहीं। न तो अमरीका और न सोवियत् रूस दोनों में से कोई शक्ति अपनी सैनिक व्यवस्था में किसी बाहरी शक्ति का ज़रा सा भी दख़ल पसन्द करेंगे। छोटे छोटे देशों की बात जाने दीजिये। कम से कम जिस बात पर दोनों एक राय हो सकते हैं वह है वह कमज़ोर ढाँचा जो सान फ्रान्सिसको में तय्यार किया गया था। किन्तु एटम-बाम्ब के मुक़ाबले में वह ढाँचा निहायत लचर और कमज़ोर है। यदि विश्व की सुरक्षा क़ायम रखनी है तो उसके लिये कोई उपयुक्त साधन तय्यार करना ज़रूरी है।

एक ही आशा

मेरी दृष्टि में इस सुरक्षा को सम्भव करने का एक ही उपाय है और वह है अमरीका के अधिनायकत्व में एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना। यदि न्यूयार्क, शिकागो, फ़िलेडेल्फिआ और सान-फ्रान्सिसको को अगले दस वर्षों में राख की ढेरी नहीं बन जाना है तो अमरीका को इस सम्बन्ध में नेतृत्व ग्रहण करना है। उसे उन समस्त राष्ट्रों का सङ्गठन करना है जो रूसी प्रभाव-क्षेत्र से बाहर हैं। सबसे पहले इसमें पश्चिमी यूरोप को शामिल करना है। स्पेन को भी इसमें शामिल करना होगा और वहाँ से जनरल फ्रैंको की तानाशाही मिटानी होगी। इसमें इटली और यूनान को भी शामिल करना होगा, और वहाँ की जनता को चुनाव की पूरी स्वाधीनता देनी होगी। अमरीका को वास्तविक अर्थों में भारत और चीन को भी स्वतंत्र बनाना होगा। उसे जहाँ कहीं सम्भव हो जनतंत्रात्मक आधारों पर शासन कायम करने में सहायता देनी होगी।

त्याग की आवश्यकता

जहाँ कहीं भी अवैधानिक उपायों से जनतंत्र विरोधी शासन कायम करने की चेष्टा की जाएगी उसे दबाना

होगा। इसमें यदि बल प्रयोग करना पड़े तो वह भी करना चाहिए। जिन देशों में जनतंत्रात्मक सत्ता कायम है उन्हें कुछ शर्तों पर बाहरी आक्रमण के विरुद्ध अमरीका की सहायता देने का विश्वास दिलाना होगा। इसमें एक शर्त यह भी होगी कि इस तरह के सहायता-प्राप्त राष्ट्र अमरीका के विरुद्ध किसी भी युद्ध में न तो स्वयं हथियार उठाएँगे और न किसी समूह के साथ शामिल होकर अमरीका के विरुद्ध युद्ध में भाग लेंगे।

इस तरह से बहुत जल्द एक विश्व-संघ की बुनियाद पड़ जाएगी। इसमें समस्त अंग्रेजी बोलने वाले राष्ट्रों के अतिरिक्त पश्चिम और दक्षिण योरोप के देश और भारत और चीन भी शामिल होंगे। अगले कुछ वर्षों में अमरीका की दोस्ती और दुश्मनी का इतना अधिक मूल्य होगा कि इन राष्ट्रों से यह मांग की जा सकती है कि वे अमरीका की सहायता के बदले में अपनी राष्ट्रीय सत्ता अपनी सैनिक सत्ता और अपनी वैदेशिक नीति के मामले में थोड़ा बहुत त्याग करें। किन्तु यह त्याग उतना ही होगा जितना युद्ध बचाने के लिए आवश्यक हो। जिस समय यह विश्व-संघ काफी मज़बूत हो जाएगा उस समय अमरीका का यह राजनैतिक प्रभुत्व भी समाप्त कर दिया जायगा।

सोवियत् देश के साथ सम्बन्ध

रूस के साथ क्या सम्बन्ध होगा यह समस्या ज्यों की त्यों बनी रहेगी। सोवियत् सरकार पूँजीवाद और जनतंत्रवाद दोनों के विरुद्ध है। इसका अर्थ यह है कि यदि अमरीका और रूस में वास्तविक एकता क़ायम करनी है तो दोनों को एक दूसरे के इस अधिकार को मानना होगा कि अपने-अपने प्रभाव क्षेत्र में वे अपने-अपने विश्वास के अनुरूप शासन प्रणाली चलाते रहें। यह पहला क़दम होगा। किन्तु उस समय तक दुनियां अपने को सुरक्षित नहीं समझ सकती जब तक समस्त सैनिक शक्ति एक अन्तर्राष्ट्रीय इकाई के मातहत नहीं हो जाती और जब तक अणु शक्ति के संचालन पर और एटम बाम्ब के बनाने पर एक विश्व-शक्ति का नियंत्रण न हो।

यदि तीसरे महायुद्ध के भयंकर परिणामों से दुनिया की रक्षा करनी है तो यूरेनियम पर और हर ऐसे द्रव्य पर नियंत्रण रखना होगा जिससे एटम बाम्ब बनते हैं। किन्तु यह नियंत्रण केवल कूटनीतिक और राजनीतिक नियंत्रण न हो बल्कि सैनिक नियंत्रण भी हो। जल, स्थल और हवाई सेना होगी उन पर भी इस तरह का नियंत्रण रहेगा ताकि वे किसी भी राष्ट्र की अपनी राष्ट्रीय आकांक्षाओं को पूरा करने में इस्तेमाल न की जा सकें। व्यक्तिगत राष्ट्र अपने हथियार रख सकेंगे किन्तु यह हथियार भयंकर न होंगे। जो भी राष्ट्र राष्ट्रीय शस्त्रीकरण के बाबत बने हुए कानून को तोड़ेगा उस पर विश्व-संघ की सेना को फौरन ही हमला करना होगा।

यदि यह सब बातें पूरी हो जाएँगी तो एटम बाम्ब और उसके और अधिक भयानक उत्तराधिकारी बाम्ब शांति और सुरक्षा की गारंटी बन जाएंगे। जब तक यह नहीं होता तब तक वैज्ञानिक प्रयोग मानव-सभ्यता के विनाशकारी शत्रु बने रहेंगे।

कौन सा ख़तरा उठाया जाय?

बहुत से लोग अन्तर्राष्ट्रीय सैनिक इकाई पर इस दृष्टि से आक्षेप करते हैं कि वह भविष्य में फासिस्टी डिक्टेटरशिप की हेतु बन जायगी। निःसन्देह यह ख़तरा तो है ही। सत्रहवीं सदी में इंग्लिस्तान में यह कहा जाता था कि कोई स्थायी राष्ट्रीय सेना न बनाई जाय वर्ना ख़तरा है। किन्तु इंग्लिस्तान और अमरीका ने सफलता पूर्वक अपनी स्थायी सेनाओं पर राजनैतिक प्रभुत्व कायम कर लिया। इसी तरह से इस अन्तर्राष्ट्रीय सेना पर भी राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया जा सकता है। किन्तु यदि इसमें ख़तरा है तो वह उस ख़तरे के सामने नगण्य है जो कि अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता क़ायम रहने से पैदा होगा। इस समय दुनिया की सबसे बड़ी आवश्यकता शासन-प्रणाली है। व्यक्तिगत और राष्ट्रगत बातों का स्थान दूसरे नम्बर पर है।

इसलिए यदि अगले कुछ वर्षों में अमरीका की सरकार शक्ति और सुलह की बातें करे, जनतंत्रात्मक आदर्शों और उद्देश्यों की स्पष्ट चर्चा करे, युद्ध रोकने का दावा करे और इन उद्देश्यों से एक बलवान विश्व-संघ की स्थापना करे तो यह असम्भव न होगा कि सोवियत देश भी इस अन्तर्राष्ट्रीय संघ में उचित भाग लेना स्वीकार कर ले। यदि यह नहीं होता तो तीसरा

महायुद्ध होकर ही रहेगा और उसके परिणाम भी अति भयंकर होंगे।

फिर गुफा की ओर

अणु शक्ति के प्रयोग से मानवता को अनेक लाभ पहुंच सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संघ के हाथों में एटम बाम्ब दुनिया को सुरक्षित रक्खेगा। यदि विद्रोह होंगे तो वे क्षणिक होंगे और उन्हें शीघ्र ही दबाया जा सकेगा।

औद्योगिक क्षेत्र में अणुशक्ति के उपयोग से जनशक्ति की इतनी आवश्यकता न रह जायगी। न फिर गरीबी रह जायगी और न अतिरिक्त श्रम। न लोग भूखों मरेंगे न नङ्गे रहेंगे। आर्थिक सुरक्षा होने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय सैनिक इकाई पर फिर नाममात्र का खर्च रह जायगा। आज युद्ध की तैयारी में और युद्ध चलाने में जो असीम धन खर्च होता है वह फिर शान्ति को स्थायी करने में व्यय किया जायगा।

ये अच्छी बातें तभी सम्भव हो सकती हैं जब राष्ट्र अपने राष्ट्रीय अभिमान, अपने लोभ और अपनी आशंकाओं को जीत सकें। यदि राष्ट्र ऐसा करने में सफल नहीं होते तब मानव इतिहास में वैज्ञानिक युग की अवधि बहुत संक्षिप्त समझी जायगी। प्रकृति के गूढ़ तत्त्वों का पता लगाकर लोग एक दूसरे का नाश करने में व्यस्त हो जायँगे। मानव को फिर से आदिम युग के अपने पूर्वजों की तरह कन्द-मूल-फल खाकर गुफाओं में रहना पड़ेगा। निस्सन्देह सभ्यता फिर उठेगी किन्तु इसी तरह विनाश के पथ पर फिर अग्रसर होगी। क्या मानव केवल नाश और निर्माण के इसी क्रम को पूरा करने के लिये ही पैदा हुआ है ?

यदि हमें सम्मिलित नाश से बचना है तो हमें यह समझना चाहिये कि महान देशों के आपसी झगड़े ग़ालिमाना और कुशासित सरकार से भी कहीं अधिक बुरे हैं। पिछले युद्धों और गत द्वितीय महायुद्ध के लिये पर्याप्त कारण थे। अर्थात् बुराइयों को दूर करने के लिये और अधिक बुराइयां फैलाने के काफ़ी प्रलोभन मौजूद थे।

एक नई आशा

विविध राष्ट्रों को अपने आपसी मतभेद समझौते द्वारा दूर करने चाहिये। उन्हें यह समझना चाहिये कि आपसी समझौता कराने में अन्तर्राष्ट्रीय संघ बड़े काम की चीज़ साबित होगा। किन्तु यदि वे पुरानी परिपाटी पर राष्ट्रीय सम्मान की बात सोचते रहें और अपने को सर्वथा सही और दूसरे को सर्वथा ग़लत मानते रहें तब भावी ख़तरे से उन्हें कोई नहीं बचा सकता।

इस समय जो सबसे महत्वपूर्ण बात करने की है वह यह है कि मानव-समाज के ऐसे वर्ग को जो राजनीतिक दृष्टि से चीज़ों पर ग़ौर करता है न केवल भावी ख़तरे से ही आगाह किया जाय बल्कि उसके सामने आशा की नई ज्योति भी रखी जाय। उसे बताया जाय कि शक्ति शाली अन्तर्राष्ट्रीय सरकार बन जाने से सुरक्षा और समृद्धि का एक नया युग शुरू हो सकता है।

इस समय मानव-जाति प्रगति के चौराहे पर खड़ी है। उसे दो में से एक बात चुनना है—महान सुख या भयङ्कर सर्वनाश। यह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम कौन सा मार्ग चुनें।

विश्व का भावी अन्न-संकट

—डाक्टर लतीफ़ दफ़्तरी

खाद्य के विशेषज्ञ १९४७-४८ के फ़सल सम्बन्धी आँकड़े पेश करके हमें इस बात की सूचना दे रहे हैं कि दुनिया को सन् १९४८ में अन्न-सङ्कट का सामना करना पड़ेगा। वे यह भी कहते हैं कि यदि यथेष्ट प्रयत्न न किया गया तो दुनिया के अनेक हिस्सों को अकाल का भी सामना करना पड़ेगा। दुनिया में गेहूँ और चावल बुनियादी अन्न हैं। इनकी पूर्ति जिन अनाजों से की जा सकती है उनकी मिक़दार बहुत थोड़ी है।

वनस्पति-घी युद्ध के पहले जितना तय्यार किया जाता था उसका ६० प्रतिशत केवल इस समय तय्यार होता है। ह्वेल मछली का तेल भी युद्ध-पूर्व आँकड़ों के हिसाब में केवल २५ फ़ी सदी तय्यार किया जा रहा है। ये दोनों पदार्थ भोजन तय्यार करने के निमित्त चिकनाई के रूप में व्यवहृत किये जाते हैं। चीनी का अवश्य, अन्दाज़ से अधिक उत्पादन किया गया है। चुकन्दर की चीनी युद्ध से पहले जितनी तय्यार होती थी उसमें अब केवल २७ फ़ी सदी की कमी रह गई है। जावा और फ़िलिप्पाइन अगले दो वर्षों तक प्रयत्न करके भी चीनी के उत्पादन को युद्ध-पूर्व-स्तर तक न पहुँचा सकेंगे। क्यूबा में भी काफ़ी मिक़दार में चीनी का उत्पादन होता है किन्तु कारीबीन क्षेत्र में अनावृष्टि के कारण क्यूबा में चीनी का उत्पादन काफ़ी घट गया है। दक्षिण अमरीका में भी चीनी का उत्पादन काफ़ी बढ़ा है किन्तु उसी अनुपात से खपत भी बढ़ी है। जहाँ तक यूरोप का सम्बन्ध है वहाँ चीनी के कारख़ानों को चलाने के लिये ईंधन की समस्या ने काफ़ी विकट रूप ले लिया है। वहाँ चुकन्दर पैदा करना इतना कठिन नहीं जितना शक्कर के कारख़ानों के लिये ईंधन जुटाना।

दक्षिण-पूर्व की स्थिति

चीनी और वनस्पति-घी के बाद हम चावल और गेहूँ के आँकड़े लें। इसके लिये हम सब से पहले पूर्व के चावल खाने वाले देशों की कैफ़ियत पर ग़ौर करें। मानव-जन-संख्या के एक-तिहाई लोग पूर्वीय देशों में रहते हैं और चावल खाते हैं। बहुत से द्वीप जो पहले चावल के उत्पादन में आत्म निर्भर थे इस समय वे अन्न-सङ्कट की स्थिति में हैं।

फ़िलिप्पाइन में सन् १९४६-४७ में जितनी एकड़ भूमि में चावल की फ़सल बोई गई है वह युद्ध-पूर्व के आँकड़ों के अनुपात में केवल ३० प्रतिशत है। जावा और आस पास के द्वीप समूह, जो पहले चावल के लिये दूसरों के मोहताज न थे, इस समय अन्न सङ्कट में पड़े हुये हैं। अस्थिर राजनैतिक स्थिति इसका मुख्य कारण है। डच सेनाएँ चावल की खेती नष्ट करने में अभिमान महसूस करती हैं। वे जावानियों को भूखा मारकर उनकी आज़ादी की आकांक्षा को ठण्ढा करना चाहती हैं!

इस द्वीप-समूह में घनी आबादियों वाले शहर और समुद्र के किनारे के क्षेत्र पहले बाहरी चावल के आयात पर निर्भर करते थे। यह चावल थाइलैण्ड और बरमा से आता था। मलाया प्रायद्वीप के रबर पैदा करने वाले क्षेत्र चावल के इसी बाहरी आयात पर निर्भर करते थे। बरमा, हिन्द चीन और जावा ये तीनों क्षेत्र अपने आप में इतना चावल पैदा करते थे कि न केवल दक्षिण-पूर्व के ये समस्त देश चावल की दृष्टि से आत्म-निर्भर होते थे बल्कि भारत में बङ्गाल और मद्रास और चीन के कई प्रान्त दक्षिण-पूर्व के इस चावल के कारण अन्न-संकट की समस्या से बचे रहते थे। युद्ध के दौरान में अब इन्हीं देशों में लोगों के रहने-सहने का स्तर ऊंचा हो गया है और किसान और मज़दूर पहले से कहीं अधिक चावल खाने लगे हैं। इसका परिणाम यह है कि चीन की तरह भारत में भी दक्षिण-पूर्व के चावल के आयात में कमी होने के कारण २० लाख टन चावल की कमी होजायगी। जितना चावल और गेहूं भारत में खाया जाता है उसके अनुपात में यह २० लाख टन कुछ अधिक मिक़दार नहीं है किन्तु चूंकि इसकी कमी केवल दो प्रान्तों को भुगतनी पड़ेगी इसलिये अपने प्रभाव में यह काफ़ी मारक साबित हो सकती है।

बरमा की जो परिस्थिति है इसमें यह आशा नहीं कि बरमा का किसान अपने ख़र्च से अधिक धान इस समय उपजायेगा। हिन्द-चीन की जैसी राजनीतिक परिस्थिति है उसे देखते हुए हिन्द-चीन से भी अधिक उम्मीद नहीं की जा सकती। स्याम के पास बेशक कई लाख टन अतिरिक्त चावल है किन्तु इससे बहुत काम नहीं बनेगा।

दक्षिण-पूर्व के देशों को छोड़ कर बाक़ी दुनिया में बहुत कम चावल पैदा होता है—कुल खपत का शायद पाँच फ़ीसदी। ब्राज़िल के पास बहुत थोड़ा सा अतिरिक्त चावल है किन्तु यह सब दक्षिण-यूरोप के चावल खाने वालों के काम आजायगा। ये लोग भी खासी मुसीबत में हैं। स्पेन और इटली दोनों देशों में सन् १९४७ को चावल की फ़सल युद्ध-पूर्व औसत से ४० फ़ीसदी कम हुई है।

अतिरिक्त गेहूँ

इस तरह हम देखते हैं कि हमें अधिकांशतः गेहूं की फ़सल पर निर्भर करना होगा। किन्तु प्रश्न यह है कि अधिक से अधिक गेहूँ पैदा करने वाले अमरीका और आष्ट्रेलिया के देश हमें कितना अतिरिक्त गेहूं दे सकेंगे? इसी अतिरिक्त गेहूँ पर हमें सन् १९४८ में निर्भर करना होगा। बहुत से वक्तव्य इस सम्बन्ध में प्रकाशित हुये हैं। सब आँकड़ों का लेखा-जोखा करने के बाद हमें पता चलता है कि हमें इन देशों से लगभग दो करोड़ तीस लाख टन गेहूं प्राप्त हो सकता है। इसमें लगभग ७५ प्रति शत हमें अमरीका से प्राप्त होगा और यह सम्मिलित भोजन समिति (Combined Food Bourd) जिसमें अमरीका, ब्रिटेन और कनाडा के प्रतिनिधि हैं, के पास बटती क्षेत्रों में बटवारे के लिये रहेगा। सोवियत् रूस बल्कान के देशों के लिये अपने यहां से गेहूं देने को तय्यार है। किन्तु इसकी मिक़दार कोई बहुत अधिक न होगी। तो अब हमें देखना है कि इस दो करोड़ तीस लाख टन गेहूँ का बटवारा किस प्रकार होगा? आंकड़ों से पता चलता है कि उत्तर अफ़रीका को अपनी बुनियादी ज़रूरत के लिये १० लाख टन गेहूं चाहिये। जहां से पहले साढ़े सात लाख टन गेहूँ बाहर निर्यात होता था वहां गेहूँ की इतनी कमी बड़े दुर्भाग्य की बात है। किंतु युद्ध के कारण और अनावृष्टि के कारण ये देश लगभग मोहताज हो गये हैं। डैन्यूब की उपत्यका के जो देश साधारणतया अपनी आवश्यकता से अधिक गेहूं का उत्पादन करते थे आज अपनी ज़रूरत भी पूरी नहीं कर पा रहे हैं। अमरीकी जाँच के अनुसार इन देशों को भी साढ़े सात लाख से लेकर दस लाख टन तक गेहूँ देने की ज़रूरत पड़ेगी। अभी हाल में रूस ने रूमानिया को तीन लाख टन गेहूं उधार दिया है।

अपने यहां की फ़सल की अत्यधिक ख़राबी से यूरोप आज बाहरी देशों की दया पर निर्भर करता है। विविध देशों की आवश्यकता के जो आंकड़े इकट्ठा किये गये है उन्हें देखते हुये यह पता चलता है कि अकेले यूरोप के देशों को हमें १ करोड़ १० लाख टन गेहूँ उनकी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने के लिये देना पड़ेगा। और ये ज़रूरतें केवल बुनियादी ज़रूरतें हैं।

पश्चिमी यूरोप की आवश्यकताओं की ठीक ठीक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। किन्तु जर्मनी की आवश्यकताओं का ठीक-ठीक पता लगना कठिन है। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन स्वयं अपने लिये तीस लाख टन गेहूं आयात करना चाहेगा। इस तरह हम देखते हैं कि अकेले यूरोपीय क्षेत्र की आवश्यकताएँ एक करोड़ साठ लाख टन के लगभग पहुंच जाती हैं तब यह सोचने की बात है कि दो करोड़ तीस लाख टन में से यदि एक करोड़ साठ लाख टन यूरोप की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये दे दिया जाय तो इतने बड़े एशिया के लिये केवल ७० लाख टन गेहूं बच जाता है। किंतु यह तो उचित और न्याय्य बटवारा न हुआ। इसका अर्थ यह होगा कि एशियाई देशों में अकाल फैलेगा। कम्बाइन्ड फ़ूड बोर्ड को न्यायोचित तरीक़े से अन्न का बटवारा करना होगा।

भूखी दुनिया की परिस्थिति को देखते हुये ब्रिटेन को अपनी भोजन नीति पर फिर से ग़ौर करना होगा। यूरोपीय देशों में से वह सबसे अधिक अन्न आयात करने वाले देशों में से है। ब्रिटेन ने हाल ही में 'अन्न अधिक पैदा करो' की नीति का परित्याग करके 'पशु-धन बढ़ाओ' का नया नारा लगाना शुरू किया है। उसे अपनी इस नई नीति को बदलना होगा। ब्रिटेन की इस नीति के कारण चन्द महीनों में ही ब्रिटेन में अन्न और वनस्पति-घी के उत्पादन में दस फ़ीसदी की कमी हो गई। इसी अवधि में उसने अपने पशु-धन को इतना अधिक बढ़ा लिया कि अब १९४४ के आंकड़ों को देखते हुये उसमें केवल ५.७ प्रति शत की कमी रह गई है। अब यदि वह फिर अन्न-उत्पादन को बढ़ाने की नीति ग्रहण करता है तो वह अपने किसानों को कह सकता है कि उसकी भावी नीति किसानों को सहायता करने की होगी।

सम्भव है अन्न के सङ्कट को रोकने के लिये शुद्ध गेहूं के बजाय मिलावटी आटे का सहारा लिया जाय; और हर तरह के स्टार्च वाले पदार्थों को आटे के रूप में व्यवहार किया जाय, जैसा कि युद्ध काल में होता था। इस तरह से ब्रिटेन कई लाख टन गेहूं अधिक ज़रूरतमन्द लोगों के लिये बचा सकता है और विश्व के भावी अन्न सङ्कट को रोकने में सहायता कर सकता है।

कम्बाइन्ड फ़ूड-बोर्ड, हमें विश्वास है, रङ्ग और जाति-भेद से ऊपर उठकर अन्न का हर तरह से न्यायोचित बटवारा करने का प्रबन्ध करेगा।

नव परिचिता से !

—श्री रामकुमार चतुर्वेदी

हम बटोही हैं, न रुक सकते हमारे पाँव पागल !

(१)

हम चले जब से, रही है धूप ही छाया हमारी,
सङ्कटों की गोद में पलती रही काया हमारी !
तुम मिलीं मधुभाषिणी ! समवेदना तुमने दिखाई
भेद कितने कह गई पल में चपल चितवन लजाई !
"पाँव ठहरो ले चलूं तुमको प्रसूनों की डगर पर"
ज़िन्दगी का तप हमारा है दुखी यह बात सुनकर !
मानते हैं हम—सुकोमल हैं तुम्हारे भाव बाले !
किन्तु मरहम से नहीं भरते हमारे घाव बले !

पग हमारे कंटकों में ही
सुखी रहते सुनयने !

मत बिछाओ तुम हमारी राह में कोमल कुसुम-दल !
हम बटोही हैं, न रुक सकते हमारे पांव पागल !

(२)

है क्षुधा हमने बुझाई सर्वदा अपनी क्षुधा से !
जन्म से ही विष मिला अब क्या करें परिचय सुधा से !
हम अभागे हैं, महाभागे ! हमारा पथ न रोको !
इस कसकती, इस सुलगती ज़िन्दगी का रथ न रोको !
सत्य मानो, हम सुनाते हैं तुम्हें अपनी कहानी,
एक अंधड़ था लड़कपन, एक झोंका है जवानी !
कह रही हो तुम "बटोही ! स्नेह-सरि के तीर आओ !
स्वच्छ शीतल नीर हर लेगा डगर की पीर आओ !"

किन्तु बाले ! स्नेह सरि के
तीर आकर क्या करें हम ?

निज हृदय के रक्त से हमने बुझाई प्यास प्रतिपल !
हम बटोही हैं, न रुक सकते हमारे पांव पागल !

(३)

तुम न क्षण भर की नई पहचान को बन्धन बनाओ !
तुम न हाहाकार से अपना मधुर गायन मिलाओ !
तुम कली हो और हम तूफ़ान लेकर चल रहे हैं
हम हृदय की ठौर पर पाषाण लेकर चल रहे हैं !
पूछती हो तुम—"पथिक ! विक्षिप्त से क्यों बोलते हो ?
मेद कुछ अपनी व्यथा का क्यों न निष्ठुर खोलते हो ?"
चाहती हो किन्तु बाले ! सुन सकोगी यह कहानी ?
भौंह में बल भी न आये, आंख में आये न पानी !
लो सुनो—नारी-हृदय से ही मिली यह आग हमको !
एक नारी ने दिये हैं वे सुलगते राग हमको !
एक नारी का लिया है देख दुर्व्यवहार हमने !
देख नारी का लिया है प्यार से खिलवार हमने !
पुष्प का प्रतिदान नारी से ज्वलित अंगार पाया !
कुछ क्षणों के चन्द्र दर्शन से चिरन्तन ज्वार पाया !
हम उसी दिन से भयंकर वेष लेकर चल रहे हैं,
अग्निमय लोचन, बिखरते केश लेकर चल रहे हैं !
हम उसी दिन से विकट उन्माद लेकर चल रहे हैं !
सुन जिसे विधि रो पड़े फ़रियाद लेकर चल रहे हैं !
राह छोड़ो, हम प्रलय को हो प्रणय अब मानते हैं !
रास्ता छोड़ो कि हम नारी-हृदय को जानते हैं !
इन क्षणिक आकर्षणों में वह फँसे जिसको सुभीता,
दूध से जो जल चुका वह छाँछ को भी फूँक पीता !
ये चपल कुन्तल, सुभग आनन, अधर, उन्मत्त लोचन,
यह सुकोमल तन, सुभग परिधान, मनहर कण्ठ-कम्पन;
यह मदिर यौवन-विभा, यह गज-गमन, यह नाद झनझुन,
कुछ नहीं नारी तुम्हारा रूप है केवल प्रवंचन !

है तुम्हारा प्यार जब
विश्वास से दूरस्थ नारी !

आंख का पर्दा न बन सकता तुम्हारा बूँद दृगजल !
हम बटोही हैं, न रुक सकते हमारे पांव पागल !

भारत की मौलिक एकता

—डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त

आधुनिक भारत के शिक्षित वर्ग के लोगों में यह एक आम धारणा है कि गोरे रङ्ग के कुछ यूरोपीय वर्ण के लोग उत्तर पश्चिम के दर्रे से भारत में आये। ये लोग अपने को 'आर्य' कहते थे। ये लोग पहले पहल पञ्जाब में आकर बसे। बाद में इन्होंने उत्तर भारत को जीत कर उसे पूरी तरह आर्यों का देश बना लिया।

संस्कृत साहित्य के अध्ययन के प्रकाश में इस तरह की भावना नितान्त निराधार प्रतीत होती है। पश्चिमी विद्वानों ने अपने-अपने देशों के औपनिवेशिक साम्राज्य-वाद के प्रचार के दिनों में इस भ्रान्त धारणा का प्रतिपादन किया था। इसीलिये आर्यों का आर्य जाति कह कर ज़िक्र किया गया है। यूरोप में ज्यों ज्यों साम्राज्य वाद की भावना ज़ोर पकड़ते गई त्यों-त्यों 'जाति' का प्रश्न भी प्रमुखता ग्रहण करता गया। यूरोप के सांस्कृतिक इतिहास में 'आर्य' शब्द को लेकर काफ़ी विवाद चला। जर्मन विद्वानों के अनुसार आर्य एक आदर्श ट्यूटन है और फ़रांसीसी विद्वानों के अनुसार आर्य एक वास्तविक केल्ट (Celt) है। इस तरह मौलिक आर्य शब्द यूरोप की प्रमुख जाति के लिये समानार्थी रूप में व्यवहार किया जाने लगा। इसी को लेकर जर्मनी में 'श्रेष्ठ जाति' (Herren-Volck) का आन्दोलन चला और इसी आन्दोलन के फल स्वरूप दूसरे महायुद्ध की बुनियाद पड़ी।

जो कुछ संस्कृत साहित्य में उद्धृत है उसके विपरीत यूरोपीय विद्वानों ने एक नई आर्य जाति बना डाली और उसे हमारे सांस्कृतिक इतिहास पर लाद दिया। हमने अपनी मूर्खता में और अपने हीन भाव में इन स्वार्थी विद्वानों के कथन को दैवी सत्य मान लिया। जब ये सिद्धान्त हमारी पाठ्य-पुस्तकों के आधार बन गये तो हम उन्हें इतिहास का चरम सत्य समझ कर उन्हें दोहराने लगे।

किन्तु भारतीय संस्कृति और इतिहास की यह भ्रान्त धारणा भारत की पराधीनता के युग की है। किन्तु आज के स्वाधीन और नवजाग्रत भारत में हमें अपने इतिहास को नये दृष्टिकोण से देखना होगा। हमें अपने विज्ञान का सरकारी बन्धनों से उद्धार करना होगा और सत्य को हमें निर्भीक होकर कहना पड़ेगा।

इतिहास हमें बताता है कि आर्यों का देश पञ्जाब की पाँचों नदियों से बँधा हुआ था। किन्तु यह एक सफ़ेद झूठ है। ऋग्वेद के आर्य किस तरह उस छोटे से भू भाग में बन्द रह सकते थे? यदि पश्चिमी पञ्जाब के रहने वाले शिवि कुल के राजा की वैदिक ऋषियों में गणना थी तो पूर्व में काशी के राजा दिवोदास के दो बेटों की भी ऋषियों में शुमार थी और ऋग्वेद में उनका भी वर्णन आता है। युवनाश्व के बेटे मानधाता भी वैदिक ऋषि थे। पुराणों के अनुसार मानधाता अयोध्या के सूर्यवंशी राजा थे। चेदिराज कशु का भी कई बार महान दानी के रूप में वर्णन आया है। और चेदि का राज्य विन्ध्या की पश्चिमी तलहटी पर था।

इन बातों को देखते हुये यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ऋग्वैदिक आर्यों का आर्यावर्त सम्भवतः आधुनिक बङ्गाल को छोड़कर समस्त उत्तर भारत तक फैला हुआ था। किन्तु ऋग्वेद के दसवें मण्डल में पूर्वी और पश्चिमी समुद्र में बसने वाले वातरासन मुनि का वर्णन आता है (सूक्त १३६, ऋ० ३ ५)। इस तरह हम देखते हैं कि निचले गङ्गा काँठे से वैदिक आर्य अपरिचित नहीं थे।

विश्वमित्र के एक मन्त्र में किकात के देश का ज़िक्र आता है (III,५३,१४)। वेदोपरान्त युग में वैयाकरणी यस्क (६ ३२) इसे अनार्यों का देश कहता है। इस बात को लेकर बहुत से यूरोपीय विद्वान इसे नान-इण्डो-यूरोपियन लोगों का देश कहते हैं। किन्तु यूरोपीय 'आर्यन' और संस्कृत 'आर्य' शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ रखते हैं। ऋग्वेद और अथर्ववेद में वैदिक आर्यों के शारीरिक अवयवों का हम विविध अवसरों पर निम्न लिखित वर्णन पाते हैं। कक्षिवन्त इन्द्र से इस बात की प्रार्थना करता है कि वह उसे 'स्वर्ण कर्णी' पुत्र प्रदान करे। ऋषि कण्व काले (कृष्ण) रङ्ग के थे और श्यावाश्रिमती का पुत्र श्याम रङ्ग का था। अथर्ववेद में किसी व्यक्ति के सर के काले बालों का ज़िक्र आता है। संक्षेप में वैदिक आर्यों का रङ्ग स्वर्णचम्पी से लेकर श्यामल तक था और उनके सर के बाल काले होते थे। नृवंश-विद्या के अनुसार वे 'ब्रूनेट' वर्ग के थे और

आजकल के हिन्दुओं से अपनी विशेषताओं में भिन्न नहीं थे।

जहाँ तक किकात का सम्बन्ध है हमारे प्राचीन इतिहासवेत्ता हेमचन्द्र, त्रिकांड शेष और वल्लाल ने इसे मगध कहकर वर्णन किया है। मगध की जो भाषा बुद्ध-पूर्व युग में प्रचलित थी वह जैन आजीवक और बौद्ध लेखों के अनुसार पाली और संस्कृत से भिन्न किन्तु आर्य भाषा थी। वह मागधी प्राकृत का ही एक रूप थी। ओल्डनबर्ग और बड़ुआ भी इस कथन से सहमत हैं। यस्क के अनुसार पूर्व की भाषा यद्यपि मध्य-देश की भाषा से पृथक थी किन्तु उनमें समता भी काफ़ी थी। पूर्व की भाषा संस्कृत का ही एक रूप थी और जितना फ़र्क आज पूर्व और उत्तर की भाषा में है उतना ही फर्क तब था।

परन्तु इन सब मिसालों से हम आर्यावर्त्त की सुदूर पूर्वीय सीमा के सम्बन्ध में निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँच पाते हैं। हमारा तात्पर्य आजकल के बङ्गाल से है। किन्तु ऐतरेय ब्राह्मण (७.६) में पुंड्र लोगों का वर्णन आता है और एक बहुत बाद की पुस्तक ऐतरेय आरण्यक (२.६२) में इन लोगों का वङ्ग, मगध और चेर जनपद के नाम से वर्णन आता है। इन नामों को हम आजकल के नामों में पहचान सकते हैं, जैसे—पूर्वीय बङ्गाल के रहने वालों का वङ्ग नाम से उल्लेख किया गया है और बगध एक जाति है और उसे आज कल बागड़ी कहते हैं। यह लोग अधिकतर पश्चिमी बङ्गाल में रहते हैं। कदाचित प्राचीन काल में यह लोग बिहार के दक्षिणी हिस्से में रहते थे कि जिसे उस समय मगध कहा जाता था। चेर छोटा नागपुर पहाड़ों के आस पास बसने वालों को कहते थे। उन्हें आज भी 'चेर महतो' कहकर पुकारा जाता है। जहाँ तक पुंड्र का सम्बन्ध है पुराणों और बाद के इतिहास में पुन्ड्र नगर या पुन्ड्र वर्धन की चर्चा आती है। यह पुन्ड्र नगर उत्तरी बङ्गाल में स्थित था। मनुस्मृति के अनुसार आधुनिक बङ्गाल आर्यावर्त्त में शामिल था। और उसकी सीमाओं को पहाड़ से पहाड़ और समुद्र से समुद्र बताया गया है। यह वर्णन उत्तर भारत के अनुरूप है। यही वर्णन विष्णु-पुराण में भी पाया जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से आजीवकों के सम्बन्ध में जैन इतिहास में पुन्ड्र देश का वर्णन आता है (देखिये बी० एम० बड़ुआ कृत (History of the Ajiwikes)। इसमें एक महापम्म (महापद्म) का वर्णन आता है जो पुन्द नगर का राजा था और जो जैनों का शत्रु और आजीवकों का मित्र था। इसी ग्रन्थ में पुन्द राज्य को विंझा पर्वत (विन्ध्य पर्वत) की तलहटी में बसा हुआ बताया गया है। आजीवकों के इतिहास में शाभूमि और वज्रभूमि का वर्णन आता है। यह दोनों पश्चिमी बंगाल के प्रान्त थे। जैन ग्रन्थों में पश्चिमी बंगाल के भाग 'रहर' का भी वर्णन आता है। इस सम्बन्ध में हमें पुन्द के राजा महापद्म के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। कलिंग के राजा खरवेल के शिलालेखों में यह वर्णन आता है कि वह नंद द्वारा ले जाई गई कलिंग-जिन-मूर्ति को मगध देश से वापस लाया था। यदि यही नन्द महापद्म था, कि जो जैनों के विरुद्ध था, तो हम ठोस ऐतिहासिक बुनियादों पर आ जाते हैं। जो यूनानी लेखक सिकन्दर के साथ भारतीय हमले के समय आए थे वे प्राच्य और गंगारिदा के राजा नान्द्र का वर्णन करते हैं। इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि नन्द आधुनिक बिहार और बङ्गाल का राजा था। आजीवकों में वर्णित पुन्द के सम्बन्ध में विष्णु पुराण और दूसरे ग्रन्थों में लिखा है कि पुन्द का जनपद उत्तर बङ्गाल में बोगरा जिले से लेकर दक्षिण-पूर्व बिहार में पालमऊ के जिले तक फैला हुआ था। इस तरह हम देखते हैं कि यूनानियों का नन्द्रु, पुराणों का महापद्म नन्द और आजीवकों का महापौम एक ही व्यक्ति था। मगध पुन्द इत्यादि पूर्वीय भारत के राजनैतिक केन्द्र रहे हैं।

पुराणों में लिखा है कि वंग, अंग, कलिंग, उद्र, मगध पुन्ड्र ऋषि कक्षिवन्त के बेटे थे। और इन लोगों ने अपने नाम के अनुरूप विविध राज्यों की बुनियाद डाली। कुछ पुराणों में इन्हें ऋगवेद में वर्णित ऋषि दगनात्मज की संतान कहा गया है। यह लोग अंग जनपद के राजा बालि और रानी सुदेषणा की संतान बताए जाते हैं (देखो वल्लाल चरित और पुराण आदि)। पुराणों की इस कथा का वास्तविक तात्पर्य यह है कि उपरोक्त ऋषि के यह तथाकथित बेटे अपने

नाम की जातियों के कुलनायक थे। जाति विद्या की दृष्टि से यह लोग एक ही समूह के थे और इनमें सांस्कृतिक और भाषा सम्बन्धी समता थी। इन बातों में आज भी वैसी ही सच्चाई है।

वेदोपरान्त युग में राजनैतिक उथल-पुथल के समय में हम देखते हैं कि बंग, पुन्ड्र, सुह्म, और रहर आदि नाम प्रमुख रूप से वर्णन किये जाते हैं। एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि ऋग्वेद के समय से जब विश्वामित्र तिरस्कार के साथ किकाल देश का वर्णन करते हैं वेद-विभिन्न मतावलम्बियों के समय तक पूर्वीय भारत के लोग भरतों और उनकी संतानों द्वारा प्रचलित और स्वीकृत वैदिक कर्मकांडों और रूढ़ियों को बराबर अस्वीकार करते रहे हैं। ब्राह्मण परम्पराओं में इस बात का उल्लेख मिलता है कि कपिल नामक नास्तिक दार्शनिक ब्राह्मणों के अत्याचारों से त्रस्त होकर मिथिला से बंगाल भाग आये थे।

<u>जातीय समानता</u>

ऐसी स्थिति में बहु काल तक बङ्गाल अपने ही रास्ते चलता रहा। अनेक जातियों और क़बीलों का वह सङ्गम तीर्थ बना रहा। पूर्व-द्राविड़, बोडो-मिमान (मंगोलों की एक जाति), प्राचीन मेडीटरेनियन निवासी (जिन्हें ग़लती से पहले द्राविड़ कहा जाता था) और गंगा काँठे से आर्य जातियां सब आकर इस क्षेत्र में मिलीं और सब का यहां समन्वय हुआ। आर्य जातियां यहाँ ऋग्वेद काल से अनवरत आकर बसती रही हैं। यदि हम बंगाल के रहने वालों के अस्थिपञ्जर की परीक्षा करें तो हम पायेंगे कि उनकी खोपड़ी मध्यम साइज़ की है और उनकी नाक भी साधारण साइज़ की (Mesocepinalic mesorrhiue) है।

भारतीय जनता के अवयवों की परीक्षा एच० एच० रिज़ले ने भी की है। पञ्जाब से लेकर बंगाल तक बसने वाली विविध जातियों के अवयवों के सम्बन्ध में रिज़ले ने जो कुछ लिखा है उसका परीक्षण इस लेख के लेखक ने भी किया है। इस परीक्षण से पता चलता है कि पञ्जाब के जाट और सिखों के लम्बे सिर और पतली नाक होती है। रिज़ले ने इस वर्ग को (Dolichoid) कहा है। यह इन लोगों की विशेषता है जब कि उत्तर भारत के रहने वालों की, जिनमें बङ्गाली भी शामिल हैं, साधारण साइज़ की नाक और लम्बा सर होता है। इन्हें रिज़ले ने (Dolichoid mesorrhimy) कहा है।

इस बायोटाइप को मेडीटरेनियन टाइप भी कह सकते हैं। ब्रेसला विश्वविद्यालय के डाक्टर इक्स्टेड (Eickstedt) ने विविध प्रकार के भारतीयों की परीक्षा करते हुये उन्हें पूर्वीय मेडीटरेनियन जातियों के वर्ग में रखा है।

इसके बाद १९११ की जन संख्या की रिपोर्ट पर ग़ौर किया जाय। इस रिपोर्ट का रिपोर्टर लिखता है कि पञ्जाब की रहने वाली विविध जातियां बावजूद अपने विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के एक ही जाति की हैं। बंगाल के सम्बन्ध में यह रिपोर्टर लिखता है—"ब्राह्मणों और कायस्थों का घनिष्ठ सम्बन्ध है और महिष्य और नमशूद्र मौलिक रूप से एक हैं। ब्राह्मणों और कायस्थों का वैद्यों और स्वर्ण-वणिकों से घनिष्ठ सम्बन्ध है।"

इस तरह हम देखते हैं कि विभिन्न जातियों के बीच कोई जातीय भेद नहीं है। प्रत्येक जाति में विविध अवयवों वाले लोग हैं। जाति एक सामाजिक और आर्थिक समूह है। किसी भी जाति की हैसियत उसकी जातीय महत्ता पर निर्भर करती है।

इसके बाद प्रश्न आता है विविध धर्मावलम्बियों के जातीय भेद का। हमने ऊपर पञ्जाब की चर्चा की है। जहाँ तक बङ्गाल का संबंध है रिज़ले की रिपोर्ट के अनुसार पूर्वीय बङ्गाल के मुसलमान वहाँ के हिन्दुओं के साथ पूरी समता रखते हैं और एक ही रूप-रङ्ग और एक ही जाति और वंश के हैं। सन् १९०१ की भारतीय जनसंख्या की रिपोर्ट में गेट ने बङ्गाल के सम्बन्ध में लिखा है—"सबसे पक्की गवाही तो वह ठीक नाप है जो रिज़ले द्वारा की गई है। पूर्वी बङ्गाल के १८५ मुसलमानों के सिर की नाप ठीक वही थी जो ७७ चाण्डालों (नमशूद्रों) की थी। मुसलमानों की नाकें चाण्डालों से अधिक बड़ी थीं किन्तु चाण्डालों के भाई बन्द पाओं की नाकों के मुक़ाबले में मुसलमानों की नाकों में कुछ अधिक अन्तर न था। और फिर चौड़ी नाक आर्यों और यहूदियों की अपेक्षा द्राविड़ों की विशेषता है।" आगे चलकर

गेट लिखता है—"पूर्वी और उत्तरी बङ्गाल के अधिकांश मुसलमानों की असलियत के सम्बन्ध में कोई शक नहीं है।...पूर्वी बङ्गाल के मुसलमानों और उत्तर बङ्गाल के चायडालों, पाडों, राजबंशियों और कोचों में अद्भुत शारीरिक समता दिखाई देती है।"

शारीरिक समता

इस लेख के लेखक ने छोटे क्षेत्र में जो उस विषयक जांच पड़ताल की है उसके अनुसार जातीय स्थिति में हिंदू और मुसलमानों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। कुछ थोड़े से मुसलमानों के शारीरिक अवयवों की मैंने परीक्षा ली तो वे मुझे हिन्दुओं से तनिक भी भिन्न नहीं दिखाई दिये। किन्तु कुछ मुसलमान लेखकों ने बङ्गाली मुसलमानों के मूल रूप से विदेशी होने की चर्चा की है। इस सम्बन्ध से मुझे नीचे लिखा उद्धरण दिखाया गया —"द्विज हिन्दू मुसलमानों की अपेक्षा अधिक ऊँचे होते हैं।" हाथ की चौड़ाई, हाथ की लम्बाई और बीच की उंगली की लम्बाई में बङ्गाल के हिन्दू और मुसलमानों में कोई अन्तर नहीं होता। शारीरिक दृष्टि से जो जांच पड़ताल मैंने की है उसके अनुसार मुसलमानों और शूद्र जातियों में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। दोनों के शारीरिक अवयव और ढांचे एकसाँ होते हैं। दोनों के शारीरिक गठन में कोई विशेष अन्तर नहीं है। मुसलमानों के जिस समूह का मैंने परीक्षण किया वह मेरे द्वारा परीक्षित शूद्र जातियों और मज़दूर वर्ग के लोगों से काफ़ी साम्य रखता था। मुसलमानों, शूद्र वर्ग और मज़दूर वर्ग में औसत दरजे एक ही प्रकार के लोग पाये गये। इसके अतिरिक्त श्री मैकफ़रलेन ने बङ्गाल में छोटी जाति के हिन्दुओं और मुसलमानों के रक्त और सीरम का जो परीक्षण किया उसमें दोनों के रक्त में एक तरह के गुण, अवगुण और समानता पाई गई। (देखिये साइंस कांग्रेस की रिपोर्ट में श्री मैकफ़रलेन का रक्त परीक्षण)।

कोई जातीय अन्तर नहीं

इन सब बातों से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि मुसलिम जनता अपने पड़ोसी हिन्दुओं से शारीरिक दृष्टि से पूरी समता रखती है। धार्मिक विभिन्नता की बुनियाद में रंचमात्र भी जातीय विभिन्नता नहीं है। नृवंश शास्त्र की दृष्टि से भी बङ्गाल के विभिन्न धार्मिक समूहों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। भाषा में, लिपि में, दिन-प्रति-दिन के रहन-सहन में दोनों धर्मावलम्बियों में समानता है। यहां तक कि स्थानीय अन्ध-विश्वास और अक़ीदों में भी समानता है। बरमी लुंगी पहनने से, या सलवारनुमा पाजामा पहनने से, या यूनानी-अलबानी फ़ेज या तर्बूश पहनने से बङ्गाल या पञ्जाब के मुसलमान नृवंश-शास्त्र की दृष्टि से स्थानीय हिन्दुओं से कोई अलग जातीय समूह नहीं बन जाते। जो लोग इसलामी इतिहास से परिचित हैं वे जानते हैं कि बग़दाद की ख़िलाफ़त के समय अरबों ने ईरानियों से पाजामा पहनना सीखा। ईरानियों ने भी मदों (Medes) से पाजामा पहनना सीखा था। अब भी दक्षिण के अरब सिंहलियों और दक्षिण भारतीयों की तरह लुङ्गी पहनते हैं।

दसवीं सदी के समय इब्न हौक़ल और इस्तख़री जैसे अरब और ईरानी यात्री सिंध में मंसूरा के अरब उपनिवेश का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि अरब लोग भारतीयों की तरह मूँछें रखते थे और भारतीयों की तरह ही चोगा और पाजामा पहनते थे। हिंदुओं से चोगा, चपकन और सलवार वास्तव में प्राचीन शकों से लिये गये हैं। भारत में नागार्जुन कोण्डा की शक मूर्तियों और अफ़ग़ानिस्तान में पाई गई मूर्तियों को देख कर इसकी सचाई साबित हो जाती है। इसके अतिरिक्त मुसलमानों की अचकन और सलवार या इज़ार भी प्राचीन शक पहिरावा था जो हिन्दुओं के द्वारा मुसलमानों ने अपनाया। वास्तव में हिंदू-मुसलिम पोशाक, रहन-सहन और रीति-रिवाज शुद्ध भारतीय हैं और उनका दूसरे इसलामी देशों से कोई सम्बन्ध नहीं है। (इस लेख का लेखक मोरक्को से तुर्किस्तान तक घूमा है और प्रत्येक क़िस्म के मुसलमानों से मिला है और यह बात वह अपने निजी अनुभव से लिख रहा है)। आचार विचार में जो थोड़ा बहुत अन्तर भारतीय मुसलमानों और हिन्दुओं में दिखाई देता है वह इसलामी अन्तर नहीं है। यह प्राचीन ईरानियों और ज़रथुस्त्रियों से मुसलमानों में आया है, जैसे चटाई पर बैठ कर खाना आदि। किंतु आचार-विचार और रहन-सहन का एक भारतीय तरीका है जो प्रत्येक धर्म के भारतीयों में एक सरीखा है।

अति प्राचीन काल से भारत "एक" था। यह, कोई भौगोलिक एकता नहीं थी। भूत काल में राजनैतिक पार्थक्य के कारण भारत का भौगोलिक बटवारा हुआ है फिर भी जातीय और सांस्कृतिक एकता को इस भौगोलिक बटवारे से कोई ठेस नहीं पहुँची। प्राचीन काल में भारत को टुकड़े-टुकड़े करने के समस्त प्रयत्न निष्फल हुये। जिस समय तुर्क भारत आये उस समय उनके साथ भी भारतीयों में एक जीवन्त एकता क़ायम थी। उस समय तो भारत में कोई अखिल भारतीय मुसलिम राज भी क़ायम नहीं था। पृथ्वीराज के पतन के ८० वर्ष बाद अमीर ख़ुसरो का जन्म हुआ। उसने भारत के सम्बन्ध में लिखा है—"जो भारत की गङ्गा से दूर रहते हैं वही दजला और फ़िरात की बात सोचते हैं और कहते हैं कि इनका जल बहुत सुन्दर है। यह सच है कि हिंदू सांवला है किन्तु यह देश संसार का सर्वोत्तम देश है। इस देश में और स्वर्ग में कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य है, अन्यथा आदम और मोर स्वर्ग से सीधे इस देश में क्यों उतरते?"

मुसलिम वैष्णव

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है भारतीय इसलाम अन्य देशों के इसलाम से भिन्न है। समन्वय की क्रिया के परिणाम स्वरूप यह परिवर्तन सम्भव हो सका है। सूफ़ियों, सन्तों और नव-वैष्णवों के व्यावहारिक प्रेमादर्शों ने दोनों सम्प्रदायों के दृष्टि कोण पर बड़ा सुन्दर प्रभाव डाला। जैसा कि प्रोफ़ेसर होकुलस लिखते हैं—

"विश्वास में, व्यवहार में, आचार-विचार में और सामाजिक रहन सहन में भारतीय मुसलमानों के ऊपर हिन्दू संस्कृति और दृष्टिकोण का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।"

यदि उत्तर भारत में अमीर ख़ुसरो ने खड़ी बोली हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया तो बङ्गाली मुसलमानों में शेख़ फ़ैज़ुल्ला ने अपनी 'गोरक्ष-विजय' नामक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक 'नाथ सम्प्रदाय' के सम्बन्ध में है। बाद में शेख चांद ने वैष्णव धर्म के ऊपर 'रसूल-विजय' नामक पुस्तक लिखी जो मलधर बसु के 'श्री कृष्ण-विजय' नामक ग्रन्थ के नमूने पर लिखी गई है। उसी ज़माने में योग के ऊपर सय्यद सुल्तान ने 'ज्ञान-प्रदीप' नामक ग्रन्थ लिखा। मुसलिम वैष्णव कवियों के लिखे हुये अगणित गीत बङ्गाल में प्रचलित पाये गये हैं। सय्यद अलाउल ने मलिक मोहम्मद जायसी के हिन्दी काव्य "पद्मावत" का संस्कृत-प्रधान बङ्गला में काव्यानुवाद करके बङ्गला साहित्य में एक नया अध्याय प्रारम्भ किया। 'पद्मावत' में कवि ने राजनैतिक कहानी के बहाने सूफ़ी विचार-धारा को पूरी तरह व्यक्त किया है। हिन्दी और बङ्गला साहित्य में सूफ़ियों और सन्तों के प्रेम-मार्ग की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। दोनों के भव्य समन्वय से हिन्दी और बङ्गला साहित्य परिपूर्ण है। हिन्दू गुरुओं ने अनेक मत क़ायम किये और उनके अगणित मुसलमान शिष्य होते थे। उसी तरह मुसलमान गुरुओं के हिन्दू शिष्य होते थे। कबीर पन्थी, दादू पन्थी, नदिया के साहबधानी और पञ्जाब और पश्चिमी युक्तप्रान्त के पञ्चपीर के पुजारी इसकी ज़बरदस्त मिसाल हैं। सुन्दर बन के मुसलमान 'बन बीबी' की उपासना करते थे। हैज़े से बचने के लिये हिन्दू मुसलमान दोनों 'ओलाबीबी' की उपासना करते थे। मुसलमान पीरों के अगणित हिन्दू भक्त होते थे। 'सत्यपीर' की पूजा दोनों सम्प्रदायों के लोग मिलकर करते थे। प्रोफ़ेसर सरकार लिखते हैं—

"यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारतीय मुसलमानों के अनेक आचार-विचार हिन्दुओं के संस्कारों से बिल्कुल मिलते जुलते हैं। भारतीय मुसलमानों और हिन्दुओं का रहन-सहन दोनों के रहन-सहन पर बङ्गाल किंवा भारत के पूर्व-हिन्दू, अहिन्दू और पूर्व-मुस्लिम आदि-वासियों की छाप है।"

इन समस्त सच्चाइयों को ध्यान में रखते हुये हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विविध धर्म और आचार-विचार जनता को प्रेमपूर्ण इकाई बनाने या उनमें राजनैतिक राष्ट्रीयता पैदा करने में कोई बाधा नहीं हैं। यूरोप के देशों में चीन और जापान में ज़बरदस्त धार्मिक मत-विभिन्नता है किन्तु फिर भी उनके देश शक्तिशाली राष्ट्रीय इकाई हैं। यहां भारत में इस बात के नारे लगाये गये कि हिन्दू संस्कृति और इसलामी संस्कृति जुदा जुदा हैं। इसका अर्थ यह है कि भारत के हिन्दू और मुसलमानों में सांस्कृतिक विभिन्नता है। यदि ऐसा है तो वे दो अलग क़ौमें हैं और उन्हें दो अलग राष्ट्रों में रहना चाहिये। परिणाम स्वरूप भारत के कई खण्ड

कर दिये गये और बङ्गाल को भी दो टुकड़ों में बांट दिया गया।

किन्तु हमने उपरोक्त पैराग्राफ़ों में भारत के ऊपर जो सांस्कृतिक दृष्टि से, नृवंश विद्या की दृष्टि से और क़ौमियत की दृष्टि से जो विचार किया है उसके अनुसार इन तीनों दृष्टियों के बावजूद और धार्मिक मतभेदों के रहते हुये भारत के रहने वालों में कोई अनैक्यता नहीं है। आजकल के मानव जाति शास्त्रियों के अध्ययन के अनुसार भारत में मौलिक रूप से विभिन्न जातियां और क़ौमें नहीं रह रही हैं बल्कि शारीरिक बनावट में विभिन्न कई समूह रह रहे हैं। इस तरह यह कहा जा सकता है कि भारत में एक ही जाति रह रही है। इस सम्बन्ध में एच. एच. रिज़ले ने लिखा है—"अनेक ज़ाहिरा फ़र्कों के पीछे भारत में एक मौलिक एकता है जो समस्त मानव जाति से भारतीयों को एक अलग समूह बनाती है।"

भारत के रहने वाले एक हैं

मानवजाति शास्त्रियों, नृवंश विद्या विशारदों और समाज शास्त्रियों के मत के अनुसार हम देखते हैं कि भारत के रहने वाले एक हैं। जातीय दृष्टि से वे एक हैं। भाषा और संस्कृति की दृष्टि से भी वे एक हैं। पुराने ज़माने में दिल्ली या गौड़ के तख़्त पर कौन बैठा था, अथवा मुर्शिदाबाद या कलकत्ता से बङ्गाल पर किसने हुकूमत की थी इससे कोई बहुत अन्तर नहीं पड़ता। भारत के रहने वाले विविध धर्मावलम्बी सबका एक ही आचार-विचार और रहन सहन था। हाथ के धन्धे, व्यापार, वाणिज्य, सामाजिक जीवन आदि में यद्यपि दोनों सम्प्रदायों की पूरी मिलावट नहीं हुई थी फिर भी दोनों सम्प्रदायों के लोगों में पारस्परिक प्रतिक्रिया होती रहती थी। अध्ययन करने वाले बताते हैं कि हिंदुओं ने मुसलमानों से प्रभावित होकर अपनी सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन किये। इसी प्रकार मुसलमानों ने अपनी सामाजिक व्यवस्था के लिये हिन्दू समाज व्यवस्था को आधार बनाया। भारतीय मुसलमानों की समाज व्यवस्था का अभी तक गहन अध्ययन नहीं किया गया है किन्तु इतना पता अवश्य लगा है कि अनेक मुसलिम जातियों ने इसलाम स्वीकार करने के बाद अपनी जाति व्यवस्था ज्यों की त्यों क़ायम रखी और अपने अन्ध विश्वासों में भी कोई परिवर्तन नहीं किये।

बङ्गाल की मर्दुम शुमारी करने वाला सुपरिनटेण्डेण्ट अपनी १९२१ की रिपोर्ट में लिखता है—"हिन्दुओं की तरह इसलाम धर्म जात पांत को स्वीकार नहीं करता किन्तु फिर भी यह एक सचाई है कि एक शेख़ एक कालू की बेटी से ब्याह नहीं करेगा और ऊँचे दरजे के मुसलमान नीच जातियों के मुसलमानों के साथ बैठकर खाना नहीं खायेंगे। टिपरा में पालकी उठाने वाले मुसलमान 'बेहरा' कहलाते हैं। इन बेहरों के साथ साधारण मुसलमान किसान बैठकर भोजन नहीं करते।"

सर ई. गेट ने ५५ मुसलमान जातियों का ज़िक्र किया है। ब्राह्मण और शूद्रों की तरह मुसलमानों में भी 'अशराफ़' और 'अतराफ़' होते हैं। शूद्रों की जो दुर्दशा हिन्दू समाज में है वही मुसलमानों में भी है। लालबेगी, अबदली और बेगिया आदि मुसलिम शूद्र जातियों की बड़ी बुरी कैफ़ियत है। हिन्दू कालू मुसलमान 'खालू' बनने पर भी अपनी जाति-पंचायत ज्यों की त्यों क़ायम रखता है। (देखिये गेट की एथनालाजिकल रिपोर्ट)। हिन्दू 'जुगी' मुसलमान बनने पर 'जुलाहा' कहलाने लगा। बाद में वह अपने को मोमिन कहने लगा किन्तु उसने अपना बुनाई का पेशा ज्यों का त्यों क़ायम रखा। अशराफ़ (शरीफ़) जुलाहों के साथ शादी ब्याह नहीं करते। बाज़-बाज़ जगह वह उसके साथ खाना भी नहीं खाते।

राजपूत मुसलमान बनने के बाद 'खञ्जरेब' या 'रांगड़' कहलाते हैं। मुसलिम लीग के प्रसिद्ध नेता मलिक फ़िरोज़ खाँ नून ने कुछ वर्ष पूर्व लन्दन की एक सभा में कहा था—"मुझे इस बात का अभिमान है कि मेरे अन्दर राजपूत रक्त है।" यही कैफ़ियत जाट और गूजरों की है। बम्बई के इसमाइली मुसलमान जिनमें बोहरा; खोजा और मोमिन आदि शामिल हैं स्थानीय बनियों से मुसलमान हुये थे और अब तक अपने बाप दादों का पेशा करते जाते हैं। क़ानूनी मामलों में हाल तक वे याज्ञवल्क्य स्मृति को ही मानते थे।

इन सब बातों को देखते हुये यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दू, मुसलमान और हाल में बने ईसाई कोई अलग-अलग क़ौमें हैं। संस्कृति की प्रगति के नियमों को देखते हुये यह भी नहीं कहा जा सकता कि भारत में भिन्न-भिन्न स्वाधीन संस्कृतियां हैं। यहाँ

पर एक प्रश्न पूछा जा सकता है कि हिन्दू संस्कृति का कितना अंश भारतीय है और भारतीय मुसलिम संस्कृति का कितना अंश अभारतीय है।

साम्प्रदायिकता का अन्त

कुछ उपरी कर्मकाण्डों, रीति-रिवाजों और आचार-विचारों के फ़र्क़ के कारण यदि सम्प्रदायवादी सभ्यता की गतिविधि को ही विभिन्न बताने लगें और इस कारण अपने को अलग अलग राजनैतिक कैम्पों में रखें तो उपरोक्त विश्लेषण के अनुसार ये फ़र्क़ जादू-टोने के शमन-विश्वासों और टोटेम की प्रथाओं के कारण पैदा हुये। किन्तु जैसे जैसे लोग सुसंस्कृत होते जाते हैं वैसे-वैसे असभ्य-युग के अपने विश्वासों से भी वे ऊपर उठते जाते हैं। जिस समय भारत औद्योगिक उन्नति करेगा उस समय नई आर्थिक समस्यायें नई सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था पैदा करेंगी और दुनिया के सामने नई विचार-धारा आयेगी।

हमने ऊपर जो छान बीन की है उसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि एक विशेष धर्म को मानने वाले भारतीय एक अलग राष्ट्र हैं। राष्ट्रीयता एक राजनैतिक-आर्थिक अभिव्यक्ति है कि जिसकी कल्पना यूरोप के सामन्ती युग की समाप्ति के बाद लोगों ने की। फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति ने यूरोप में राष्ट्रीय सरकारों की स्थापना को सम्भव किया। इससे यह प्रश्न पैदा होता है कि—राष्ट्र है क्या? इसकी शुद्ध राजनैतिक परिभाषा यह होगी—"एक स्वतंत्र देश के अन्तर्गत भौगोलिक क्षेत्र में स्वतन्त्र जनता राष्ट्र बनाती है।" इस परिभाषा के अनुसार स्वीटज़रलैंड एक स्वतन्त्र राष्ट्र है और बावजूद शरीर विज्ञान के अनुसार तीन जातियों, भाषा की दृष्टि से चार भाषाओं और दो धर्मों के होते हुये स्विस लोग एक राष्ट्र हैं। राष्ट्र की एक सांस्कृतिक परिभाषा है—'समान ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उन्नति के साथ-साथ एक सा भविष्य और हित किसी देश को राष्ट्र बनाते हैं।' स्तालिन राष्ट्र की परिभाषा करते हुये कहते हैं—

"भाषा क्षेत्र, आर्थिक जीवन, मनोवैज्ञानिक भावनाओं, सांस्कृतिक और एकता ऐतिहासिक उन्नति द्वारा किसी राष्ट्र का निर्माण होता है।"

इन दोनों मार्कसिस्ट वक्तव्यों की छान-बीन करने से पता चलेगा कि ये दोनों एक दूसरे के विपरीत नहीं हैं। ये दोनों परिभाषाएं हिन्दुस्तान के ऊपर खपती हैं। जहाँ तक मनोवैज्ञानिक मेक-अप का प्रश्न है वह किसी ख़ास जाति की पैदाइशी विशेषता नहीं है। उसका सम्बन्ध तो वातावरण से है। जो जाति एक ही ढङ्ग से ऐतिहासिक-सांस्कृतिक प्रगति करेगी उसका एक तरह का मनोवैज्ञानिक मेक-अप हो जायगा। खोपड़ी की बनावट, भाषा या धर्म बाहरी कारण हैं। जो लोग एक ही राजनैतिक और आर्थिक स्थिति में रहते हैं उनमें एक संस्कृति और एक राष्ट्रीयता पैदा हो जायगी। भाषा और धर्म की एकता इसकी प्रगति में केवल सहायता पहुँचाती है। भारत में यही स्थिति है। बङ्गाल में तो यह विशेष रूप से है। वहां पूरी-पूरी सांस्कृतिक, भाषा सम्बन्धी, और आर्थिक एकता है। इन बातों ने बङ्गाल को स्वयं एक राष्ट्र बना दिया है।

बङ्गाल के सनातनी हिन्दू दो हिस्सों में बँटे हुये हैं—वैष्णव और शाक्त। फिर प्राचीन जैनों के अवशेष भी वहां हैं जिन्हें 'सारक' कहते हैं (देखिये कवि कंकण की चण्डी)। ये लोग बाँकुड़ा और बीर भूम के ज़िलों में रहते हैं। अनेक जातियों के मुसलमान भी यहाँ रहते हैं जिनमें 'हनफी' सबसे अधिक हैं। चट गांव में बौद्ध रहते हैं। यथेष्ट संख्या में ईसाई भी यहां रहते हैं और ये सब समान संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं। किन्तु ये सब मिलकर बङ्गाल का निर्माण करते हैं। इन सब भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियों में एक बङ्गलियत है। इन सबों ने मिलकर बङ्गला भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाया है। आज मुसलिम लीग ने धर्म की बिना पर भारत का बटवारा करा दिया। बङ्गाल जो भारत की पुनर्जागृति का प्रतीक था, उसके भी टुकड़े हो गये। आज बङ्गाली विविध राज्यों में बट गये हैं। बङ्गला बोलने वाली जनता, जिनमें हिन्दुओं की प्रधानता है, पश्चिमी बङ्गाल में रहते हैं जो भारतीय यूनियन में सम्मिलित है, जबकि बङ्गाली मुसलिम प्रधान जनता पूर्वी बङ्गाल में रहती है जो पाकिस्तान में सम्मिलित है।

इस तरह जो लोग हज़ारों वर्ष से एक ही ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्रगति के पथ के पथिक रहे, जिनकी एक संस्कृति और एक ही आर्थिक जीवन रहा है वे धार्मिक

भेद के कारण दो टुकड़ों में बांट दिये गये। किन्तु इस बीसवीं सदी में धर्म की बिना पर राष्ट्र का निर्माण एक समझ में न आने वाली बात है। आज मानव समाज सीधे-सादे समाज से पेचीदा सामाजिक ढांचे में प्रवेश कर रहा है। वह भिन्न-भिन्न राष्ट्रों से एक राष्ट्र की ओर प्रगति कर रहा है। सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से दुनिया की भिन्न-भिन्न इकाइयां "एक दुनिया" के अन्तर्गत आ रही हैं। यह कोई कोरी कल्पना नहीं है। आज की सभ्यता विश्व-संघ बनाने की ओर लम्बे लम्बे डग भर रही है। आर्थिक आवश्यकताओं से प्रेरित होकर लोग आज एक दुनिया बनाने की बात सोच रहे हैं। मानव जाति अलग अलग अछूत मुहल्लों में बन्द नहीं रह सकती। उन्हें विवश होकर अपनी राष्ट्रीयता के दायरों से निकलकर एक अखिल मानवता में अपने व्यक्तित्व को विलीन करना होगा।

जब दुनिया की यह कैफियत है तो हम भारत वासी, जो कि स्वाभाविक रूप से एक इकाई हैं, विविध देशों में कैसे बटे हुये रह सकते हैं? पश्चिमी भारत कैसे अपने प्रमुख अङ्ग से कटा रह सकता है? किस तरह बङ्गाल जो कि न केवल जातीय और सांस्कृतिक दृष्टि से एक है, बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी एक इकाई है, दो टुकड़े होकर रह सकता है?

युग का गीत

श्री शीतलासहाय श्रीवास्तव

कब तक आंसू ये विषाद के बहते जायें!

टूटे बन्धन बहुत दिनों में इन हाथों के,
ताज स्वर्ण के चमक उठे हैं इन माथों के,
युग बदला है अभिशापों को पुण्य बनाने,
दिन बदले हैं नव हर्षों के पर्व मनाने,
प्रस्तर बनकर फिर हम क्यों घन सहते जायें!

माप रहा है यह समाज सुख की सीमायें,
डोल रहा है मधु-समीर फिर दायें-बायें,
अन्धकार के छाले झलमल नभ में झलकें,
या सपने दिन के प्रकाश के खोलें पलकें,
नूतन देख पुरातन में क्यों रहते जायें!

आज मुक्त ने अपने केश-वेश हैं साजे,
टूटी रीढ़ रूढ़ि की जन-गण-मन हैं जागे,
ऐक्य सूत्र में बँधे मनुज ने लाँघे खन्दक,
मङ्गल-क्षण में जले गृहों में शत-शत दीपक,
कब तक हम कर द्वेष गर्त में ढहते जायें!

—

उत्तराधिकार और हिन्दू स्त्रियाँ

श्रीमती सन्तोष आनन्द एम० ए०

जिस समय गत केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में हिंदू कोड प्रस्ताव रूप में आया उस समय काफ़ी चील पुकार मची थी। लोगों की यह धारणा थी कि इसके पास होते ही हिन्दू समाज पर पूरी तबाही आ जाएगी। उन्होंने यह समझा था कि इसके आते ही संयुक्त हिन्दू परिवार तथा सम्पत्ति तीन-तेरह हो जाएगी तथा चट शादी पट तलाक होने लगेंगे। स्मृतियों और पुराणों का समर्थन भी अपने इस कथन की पुष्टि में पेश किया गया कि धर्म और संस्कृति के संकट का समय आ गया है। किन्तु यदि इस प्रस्तावित हिन्दू कोड का ज़रा उदारता पूर्वक अध्ययन किया जाय तो इन आक्षेपों की निस्सारता सम्मुख आ जाएगी। जो कुछ भी परिवर्तन उपस्थित किये गए हैं वे क्रांतिकारी होना तो दूर किनार इस बदलते हुए युग के अनुरूप भी नहीं हैं।

परिवर्तन तो समाज में सदैव होते रहते हैं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है किन्तु परेशानी तो यह है कि जब कभी भी कोई सुधार या नवीन योजना सम्मुख आती है तो बहुत थोड़े लोग ही उसका स्वागत करते हैं। अधिकतर उसे सदेह और अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं। वैज्ञानिक गैलिलो का इसलिये वध कर दिया गया क्योंकि वह कहता था कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। यह सत्य ईसाई धर्म के अनुमोदित सिद्धांत के विपरीत जो था। भारत में जब सती प्रथा बन्द हुई तब भी यह समझा गया था कि हिन्दू धर्म अब रसातल को चला जायगा और पंडितों ने तो प्रीवी कौंसिल तक अपील भेज दी। किन्तु वह नामंज़ूर होगई। चील-पुकार सुनाई दी और अब फिर एक बार और हिन्दुओं और उनके हिन्दुत्व पर प्रस्तावित सुधार आक्रमण समझे गये।

स्त्रियाँ और सम्पत्ति

स्त्रियों को सम्पत्ति पर अधिकार दिया जाय इसके विरुद्ध बहुत हायतोबा मचाई गई। आपत्ति यह थी कि स्त्रियां अनपढ़ तथा जल्द ही दूसरों से प्रभावित होने वाली होती हैं। वे रुपये लुटा देंगी तथा आचरणहीन हो जाएंगी और सम्पत्ति टुकड़े-टुकड़े हो जायगी। सबसे पहले देखा जाय तो हमारा देश एक गरीब देश है। आबादी के ज़्यादा हिस्से के पास कोई सम्पत्ति नहीं है और जिनके पास थोड़ी बहुत है भी वे अधिकतर ज़मींदार हैं। जिनके पास ज़मीन है वे इस वर्तमान कोड के बाहर हैं। और वसीयत के उत्तराधिकार के हिस्से में ऐसी ही सम्पत्ति हैं जैसे गवर्नमेंट सिक्योरिटी, स्टाक और शेयर, इमारतें, और कारबार वग़ैरह। यह समझना मुश्किल है कि यदि किसी व्यक्ति के नौ लड़के हैं तो उसकी जायदाद टुकड़े टुकड़े नहीं होती यद्यपि वह उनमें बटेगी ज़रूर और वही जायदाद टुकड़े-टुकड़े हो जाती है अगर उसके आठ लड़के हों और एक लड़की और जो केवल एक हिस्से की हकदार है और हकीकत में लड़के के हिस्से की आधे की ही हकदार है। वास्तव में यदि भाई चाहें तो वे बहिन के हिस्से को खरीद कर जायदाद को अविभाजित बनाए रख सकते हैं। यह भी दलील पेश की जाती है कि लड़कों को पैतृक क़र्ज़ों को अपने हिस्सों में से चुकाना होता है और लड़की पर ऐसी कोई ज़िम्मेदारी नहीं है। यह मुश्किल भी जायदाद को बांटने के पहिले ही कर्ज़ चुका देने से दूर की जा सकती है। काम करना हो तो रास्ता निकल आएगा। अकसर लड़के अपनी मौरूसी जायदाद पर इसलिये हक़ छोड़ देते हैं ताकि उनकी क़र्ज़ और मुक़दमे बाज़ी से बचत हो जाए। इसी तरह से लड़कियाँ भी अपना हक़ छोड़ सकती हैं। मुझे ऐसे उदाहरण मालूम हैं जहाँ लड़कियों ने अपने छोटे भाइयों और बहिनों की ज़िम्मेदारी बग़ैर किसी लाभ की दृष्टि से अपने ऊपर उठाई है। और वास्तव में यह देखा गया है कि लड़कियां लड़कों की बनिस्बत अपनी माता के खानदान से अधिक मोह रखती हैं। अगर लड़कियों को भी लड़कों की तरह हिस्से दिए जायं तो उनके सम्बन्ध कितने अच्छे हो जायेंगे ! कहीं कहीं तो यह भी दलील पेश की जाती है कि आज कल लड़के अपनी बहिनों का ज़्यादा ख्याल रखते हैं क्योंकि वे उनके हिस्सों में अपना दावा नहीं रखतीं। किन्तु यह तो बहुत स्वार्थमय प्रेम है। दूसरे के हक को न मानना तो कोई प्रेम नहीं है।

अधिकार और देन

अधिकार चाहे जितना भी कम हो हमेशा उपहार की अपेक्षा ज़्यादा अच्छा लगता है फिर चाहे वह

उपहार कितना ही बड़ा क्यों न हो। यह बात मान ली जाती है कि लड़की के हिस्से से कहीं ज़्यादा रक़म उसको दहेज के अन्य अवसरों पर मिलने वाली सौगात में मिल जाती है। यह उपहार तो केवल परम्परागत हैं। और कानून इसको स्वीकार नहीं करता। इसका नतीजा यह है कि यह अकसर एहसान के रूप में होती है और बहुत ग़लतफ़हमी और बदमज़गी पैदा करती हैं। इस समय तो वास्तविक स्थिति यह है कि एक हिन्दू लड़की जो शादी के पहले अपने पिता के घर में हुकूमत करती है शादी के बाद अपने मैके में एक मेहमान बन जाती है! उसका अपने बाप के घर में किसी प्रकार का हक नहीं। उसे बिल्कुल अपने भाइयों और भौजाइयों की इच्छा पर निर्भर करना पड़ता है।

यदि उनके पिता उन्हें अपनी वसीयत में नावारिस करार कर दें तो यह भी बहस की जाती है कि लड़कियाँ अपना दहेज तथा अपने पिता की सम्पत्ति पर अधिकार दोनों ही खो बैठेंगी। ये समालोचक यह भूल जाते हैं कि बहुत थोड़े ऐसे पिता मिलेंगे जो अपनी कन्या के विरुद्ध वसीयत बनायेंगे। वसीयत देने के लिये बनती हैं छीनने के लिए नहीं। साथ ही अधिकतर वसीयतनामे वर्तमान विधान के अनुसार बनाये जाते हैं। ईसाई और मुस्लिम पिताओं को अपनी कन्याओं के भाग छीनते हुए बहुत कम देखा गया है जबकि हिन्दू पिताओं के अपनी कन्याओं को भाग देते हुए कम उदाहरण हम देखते हैं। लेकिन यदि विधान उनकी सहायता के लिए मार्ग दिखाने आ जाएगा तो वे अपनी कन्याओं को सम्पत्ति में भाग देने लगेंगे। साथ ही हमारा खून चूसने वाली दहेज की कुप्रथा भी बन्द हो जायगी। लड़कियां भी ससुराल वालों के बराबर दिये गये हुये दहेज के बारे में ताने सुनने से बच जाएंगी। दहेज का अन्त विधान बना देने से न हो सकेगा क्योंकि विधान बनते ही दहेज़ का चोर बाज़ार बन जाएगा। इस प्रथा का स्थान उत्तराधिकार का नियम ही ले सकता है।

इसी तरह का दूसरा कथन कि लड़कियाँ अपनी मां के स्त्री-धन को पाती हैं बहकाने वाला और व्यर्थ है। सबसे पहले बहुत कम बेटियाँ अपनी माँ के स्त्री-धन की वास्तविक हक़दार होती हैं क्योंकि ज़्यादातर स्त्रियां अपने गहनों को अपनी बहुओं के लिए रखती हैं। अथवा अपनी लड़कियों की शादी के अवसर पर दे डालती हैं। विवाह के समय लड़की जो ज़ेवर और अन्य भेंटें पाती है वह स्त्री-धन कहलाता है। किन्तु बहुत कम अपना हक़ पाती हैं क्योंकि ससुराल में उसे घुसते देर नहीं लगती कि इस 'स्त्री-धन' का एक बड़ा भाग उसके इस नवीन परिवार की सदस्यों में बट जाता है।

कोमलांगियों के विरुद्ध जो दूसरा अभियोग है वह उसी तरह लड़कों पर भी लग सकता है। क्या अमीर लड़के शराब, जुआ और न जाने कितनी बदमाशियों के चक्कर में पड़कर अपना भविष्य समाप्त नहीं कर लेते! विद्या, धर्म तथा सामाजिक और लौकिक भावनाएँ ही इस सामाजिक बुराई को रोक सकती हैं। ज़्यादातर तो यही देखा गया है कि लड़कियां अधिकतर हाथ रोक कर ख़र्चा करनेवाली होती हैं तथा रुपये पैसे का प्रबन्ध पुरुषों से अधिक कुशलता पूर्वक करती हैं क्योंकि उन्हें नित्यप्रति के गृहस्थी के छोटे छोटे ख़र्चे को चलाना पड़ता है और आय और ख़र्च दोनों का समन्वय अकसर ख़राब परिस्थिति में करना पड़ता है। स्त्री-धन अलग नहीं होना चाहिए। लड़कों को भी मां के स्त्री धन में बराबर का अपना भाग मिलना चाहिए तथा लड़कियों को भी अपने पिता की जायदाद में बराबरी का भाग मिलना चाहिए। कितनी निराश्रित विधवा बहिनों के गरीबी से लड़ते हुए जीवन-यापन के उदाहरण हमारे संमुख हैं जब कि उनके धनी भाई उनकी ख़बर भी नहीं रखते हैं।

प्रस्तावित सुधार विधवा पतोहुओं के ससुर की जायदाद में हिस्से के पहलू को भी नहीं देखता। विधवा बहू को ख़र्च मिलता है किन्तु ससुर की मृत्यु के बाद वह पूर्णतया अपने देवर जेठों की दया पर जीती है। ठीक तो यह है कि ख़र्चे का विषय ही न रहे और उसे अपने पति का भाग ससुर की मृत्यु के बाद जायदाद से मिले। ख़र्चे का विषय बहुत हेय और लज्जास्पद है जो आधुनिक स्वाभिमान से मेल नहीं खाता।

विवाह

विवाह तथा तलाक की प्रथा के सम्बन्ध में परिवर्तन पेश करने पर और भी अधिक फ़साद हुआ। हर तरह के समालोचकों ने प्रस्तावित परिवर्तनों के सम्बन्ध में अपनी आवाज़ें उठाईं।

पंडितों, सनातनियों, हिन्दू महासभा वाले और कुछ नवीन प्रगति के विचारकों और पढ़े लिखे सज्जनों ने भी किसी न किसी पहलू पर विरोधी विचार प्रकट किये। समालोचकों ने बहुत बुरी तरह से सुधारकों पर आक्षेप किये कि वे विवाह के पवित्र बन्धन को नियमों में बांधकर अपवित्र कर रहे हैं। उनका कहना है कि टूट सकने वाला वैवाहिक बंधन एक बड़ा फ़रेब है। किन्तु ये आलोचक यह भूल जाते हैं कि कोड के आवश्यक प्रतिबन्धों में वही विधान हैं जो प्राचीन काल में भी थे। उन नियमों का होना तो आवश्यक ही है और अगर यह न होंगे तो विवाह अपने आप ही पूर्ण न होगा। शर्तें यह हैं—(१) विवाह के समय दूसरी पत्नी या पति जीवित न हो, (२) पति या पत्नी पागल अथवा बिलल्ली न हो, (३) वे एक दूसरे के सपिंड नहीं होने चाहिएँ और कोड के अनुसार परस्पर सम्बन्धी नहीं होने चाहिएँ, (४) यदि लड़की सोलह वर्ष की है तो उसके अभिभावकों की अनुमति आवश्यक है, (५) विवाह रूढ़ि प्रथा के अनुसार हो सकता है, (६) विवाह की लिखा पढ़ी पति और पत्नी की इच्छा पर पवित्र बंधन में बँधने पर होनी चाहिए। सिविल मैरिज़ की प्रथा यही है। केवल आयु सोलह के स्थान पर बीस कर दी गई है और वह रजिस्ट्रार के सम्मुख होती है। यह समझ में नहीं आता कि विवाह की प्रथा सिविल मैरिज़ से मिलने पर और ऐसी आवश्यक शर्तों के होने पर कैसे अपवित्र हो जाएगी। असल में तो सामाजिक नियमों की कसौटी तो उनका फल है और जब हम यह देखते हैं कि हिन्दू युवक हिंदू-धर्म को छोड़ कर अपनी मांगों को पूर्ण करने के लिए अन्य धर्मों का आश्रय ले रहे हैं तब हम अपने नियमों को किसी तरह भी ठीक नहीं समझते। पुराने ख़याल वालों को यह चेतावनी अच्छी तरह मिल जानी चाहिए कि उन्हें अपने नियमों को परिवर्तनशील और समय की आवश्यकताओं के साथ चलने वाला बनाना है।

तलाक

सभ्यता की उन्नति के साथ एक-पत्नीव्रत की प्रथा आ रही है। बांझ होने के कारण दूसरे विवाह की आवश्यकता सन्तान को गोद लेकर हट सकती है। यह सच है कि दूसरी पत्नी द्वारा सन्तान होने पर आदमी की पिंडदान की परेशानी दूर हो जायगी। किंतु दूसरे ब्याह के स्थान पर तलाक कहीं अच्छा रास्ता है क्योंकि यह दोनों साथियों को दूसरे ब्याह की पूर्ण सुविधा देता है और उन्हें बुराइयाँ किसमें हैं इस ओर भी ध्यान दिलाता है। वास्तव में एक पत्नीव्रत बिना किसी प्रकार के तलाक की प्रथा होने के चल भी नहीं सकता। विधान सताए हुए की रक्षा के लिए सताने वालों के विरुद्ध बनते हैं। जो सुखी और प्रसन्न हैं उनको उसके आश्रय की आवश्यकता नहीं लेकिन यदि लँगड़ों के लिए बैसाखी मिल सकती है तो इसके लिए लोगों को अपने आप लँगड़ा नहीं बनना चाहिए। यह समझ में नहीं आता कि तलाक की प्रथा आने पर वैवाहिक बंधनों में क्यों ढील होने लगेगी। या तो समालोचकों ने प्रस्तावित सुधारों का अध्ययन नहीं किया है और न तलाक के नियमों पर ध्यान दिया है अथवा वे पूरी तरह से उसके ख़िलाफ़ हैं। तलाक की शर्तों का उद्देश्य हिन्दू विवाह अथवा सिविल मैरिज़ की प्रथा की शर्तों का पूरा होना ही है। वह यह हैं—(१) अगर यह साबित हो कि पति अथवा पत्नी का मस्तिष्क विकार ग्रस्त है और उपचार के बाहर है तथा सात वर्ष इलाज करने पर भी ठीक नहीं हुआ है, (२) या पति अथवा पत्नी कोढ़ से ग्रस्त हो जो एक दूसरे की देन न हो, (३) सात वर्ष तक दोनों में से किसी ने दूसरे का परित्याग किया हो, (४) धर्म परिवर्तन करने पर, (५) दोनों में कोई सात वर्ष से गुप्त रोग का शिकार हो जो एक दूसरे से न मिला हो, और (६) या दोनों में से किसी का गुप्त प्रेमी हो जिसके साथ वह व्यभिचार करते हों। कोड के अनुसार तलाक सरल नहीं है किन्तु ख़ास मौक़ों पर वह सम्भव और उचित हो सकता है। वास्तव में सात वर्ष का अरसा लाइलाज रोग तथा परित्याग के लिये काफ़ी लम्बा अरसा है। उन बेचारों की ज़िन्दगी का एक लम्बा अरसा इस तरह दुख सहते हुए बीत जाता है। पुराने ज़माने में यह लम्बा अरसा उचित भी था जबकि यात्रायें वर्षों में समाप्त होती थीं लेकिन आधुनिक युग में तीन वर्ष परित्याग के लिए काफ़ी होने चाहिएँ। यहाँ तक कि अनेक स्थानों पर नारद ने भी विवाह विच्छेद के लिए सात वर्ष से कम समय माना है। प्राचीन काल में भी हिन्दू धर्म में, कुछ अवसरों पर तलाक की प्रथा आयज़ थी। श्रीयुत श्रीनिवास आयंगर तलाक के

लिए ठीक तुला उपस्थित करते हैं, जब वे कहते हैं कि वैवाहिक बन्धन का अन्त वहां बहुत कम होना चाहिए जहां वह जीवन को पवित्रता के धरातल पर ले आता हो। लेकिन इतना नहीं होना चाहिए कि वैवाहिक बन्धन असह्य हो उठे तथा अनाचार और हिन्दू परिवार के अन्त का कारण बन जाए।

स्त्रियों का विरोध

कोड के विरुद्ध स्त्रियों के विरोध को काफी महत्व दिया गया है। इनमें से अधिकांश स्त्रियां पुराने विचार वाली हैं जो किसी भी सुधार के प्रति खिलाफ आवाज उठायेंगी और कुछ लोग अपढ़ हैं जो यह नहीं जानतीं कि क्या उनके भले के लिए है और क्या बुरे के लिए। फिर कुछ स्त्रियां उच्च श्रेणी के धनाढ्य वर्ग की हैं जिनको अपनी अभागी बहिनों के कष्टों का अनुभव नहीं जो कानूनी असमर्थता के कारण हैं और अन्ततः बहुत सी ऐसी स्त्रियां हैं जो उन पुरुषों के द्वारा संगठित की जाती हैं जो इस कोड का घोर विरोध करना चाहते हैं।

हिन्दू विवाह को कानूनी बनाने में कुछ जाति बन्धनों को हटाने में भी घोर विरोध हुआ है किन्तु अगर वे बंधन ध्यान से देखे जांय तो यह मालूम होगा कि शास्त्रों में इस रूप में ये ही नहीं और आज भी व्यवहार में उनका लाना असंभव है। आज कल यातायात और व्यवसाय की होड़ में जात पाँत इस क़दर ढीली हो चुकी हैं कि अब उनको दृढ़ रखना व्यर्थ है। बन्धनों को रोके रखने में कोई श्रेय नहीं है बल्कि यह एक दुखद बन्धन सा मालूम होगा जो कि व्यवहार में भी पसंद नहीं आएगा। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न उपजातियों में भेद जानना बहुत मुश्किल हो गया है और भिन्न-भिन्न उपजातियों में होने वाली शादियाँ क़ानून द्वारा जायज़ मानी जाने लगी हैं। यह बात समझ में नहीं आती कि वह समाज जो गान्धर्व विवाह और स्वयंवर की आज्ञा देता था और जो स्त्रियों को ऊँचा स्थान देता था वही अब आज स्त्रियों के अधिकार और स्वतंत्रता में क्यों बाधक बन रहा है !!

विदा-वेला !

—प्रो॰ मित्तल, एम॰ ए॰

यह विदा की करुण वेला !
मधु-मिलन को भूल जाओ,
मधुर गीतों को न गाओ;
प्यार के संसार में—
कर्त्तव्य का दीपक जलाओ।
बाँध दो तलवार कटि में, और कर में वीर-कंकण।
आँसुओं से वीर बोले !
नयन भर लाओ नहीं तुम,
करुण लहरी को उठाकर
आज भरमाओ नहीं तुम !
अर्चना का थाल साजे, आज करलो वीर पूजन !
प्रेम की मंदाकिनी तुम,
सिंह की हुंकार हो तुम;
वीर पुत्री, वीर भार्या,
देश की पतवार हो तुम !
वीर आर्या के सदृश हे ! काट दो सब मोह बंधन !
मोह से चिर मुक्त होकर,
राग से निर्लिप्त होकर,
काट दूंगा दस्युओं को,
क्रोध से संतप्त होकर !
तुम अमर होगी, अमर होगा सदा को नारि जीवन।
सुनो आर्ये ! बज उठी
रणभेरि, लो अब चल दिया मैं
अरि दलों को खंड करने
यह बिछुड़ कर चल दिया मैं !
राजपूती आन रखना, अमर रखना लाजपावन।

खिचिङ्ग की मूर्ति-कला

प्रोफेसर हेमेन्द्रनाथ दास

खिचिङ्ग की नगरी किसी समय मयूरभञ्ज राज्य के पश्चिमार्ध की राजधानी थी। उड़ीसा की २४ गढ़जात रियासतों में क्षेत्रफल के विस्तार में मयूरभञ्ज सबसे बड़ी रियासत है। मयूरभञ्ज राज्य के ऊपर भञ्जकुल के राजा राज करते हैं। प्रारम्भिक भञ्ज राजाओं के समय खिचिंग का नाम खिजिङ्गकोटा था। उस समय खिजिङ्गकोटा का नगर अत्यन्त समृद्ध और वास्तुकला का केन्द्र था। यहां हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म साथ-साथ अपने अपने आदर्शों के अनुकूल प्रगति कर रहे थे। उड़ीसा और उत्तर भारत के कला-आदर्शों का समन्वय करते हुये खिचिंग की कला एक नई और स्वतन्त्र कला को जन्म दे रही थी।

किन्तु इस समय खिचिंग वैरबन्धन और कांटाकारा नदियों के सङ्गम पर बसा हुआ एक वृहत ग्राम मात्र रह गया है। प्राचीन मन्दिरों के भग्न खण्डहर ग्राम के चारों ओर फैले हुये हैं। पश्चिम और दक्षिण दिशा के खंडहर कटे हुये पत्थरों और ईंटों के ढेर बने हुये हैं। पूर्व की ओर से ग्राम में प्रवेश करते समय यात्री का ध्यान सबसे पहले एक छोटे मन्दिर की ओर आकर्षित होता है जिसे लोग 'कुटाइ तुंगिड' कहते हैं। मन्दिर में शिव-लिङ्ग-प्रतिमा स्थापित है। इस प्रतिमा को लोग 'नील कण्ठेश्वर' कहते हैं। इस मन्दिर का निर्माण नागर-कला के अनुरूप हुआ है। फर्ग्युसन के अनुसार यह स्टाइल इण्डो-आर्य स्टाइल से ही ली गई है। इस मन्दिर के गर्भ-गृह पर एक लम्बा शिखर बना हुआ है। ग्राम के पश्चिमी खण्डहरों में चार विशालकाय खम्भे दर्शक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इनका आकार अजीब प्रकार का है। नीचे से इन खम्भों का आकार-प्रकार भारहुत कला से मिलता-जुलता है। इसे देखकर यह प्रतीत होता है कि इनकी रचना अत्यन्त प्राचीन समय में हुई है।

यह एक आश्चर्यजनक बात है कि पर्सिपोलि (ईरान) की कला ने यहां इतनी दूर किस प्रकार प्रभाव डाला। इस खम्भे के अधो-भाग पर अशोक कालीन कला का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इन खम्भों के निकट दो मन्दिरों के खण्डहर हैं। चूंकि इन मन्दिरों में कोई शैव मूर्ति आदि नहीं है इसलिये कुछ विशेषज्ञ इन्हें वैष्णव मन्दिर बताते हैं। शैव मन्दिरों में या तो लिङ्ग-प्रतिमा होती है अथवा 'अर्घ' होता है किन्तु इन मन्दिरों में दोनों में से कोई चिह्न नहीं है।

पूर्व दिशा में दक्षिण की ओर आधा मील दूर एक अत्यन्त सुन्दर शैव मन्दिर है। यह मन्दिर 'बराकर कला' का सुन्दर नमूना है। मन्दिर के निचले हिस्से में तरह-तरह की पच्चीकारी है जबकि ऊपर का हिस्सा सादा है। इससे प्रकट होता है कि मन्दिर प्राचीन काल का है किन्तु बाद में उसका जीर्णोद्धार किया गया है। कुछ लोग कहते हैं कि मन्दिर राजा मानसिंह का बनवाया हुआ है। ऊपर के भाग का परीक्षण करते हुये पता चलता है कि हर पत्थर अलग अलग काटकर पालिश किया गया है। जब इस मन्दिर को खोद कर निकाला गया तो कुछ प्रमुख पुरातत्त्व वेत्ताओं का अनुमान था कि शुरू में पूरा मन्दिर बना लिया गया तब पालिश किया गया किन्तु बाद में पता चला कि हर स्तर पालिश करके तैयार किया गया बाद में दूसरा स्तर बनाया गया। पूरे मंदिर का निर्माण होने के बाद तब सब मूर्ति आदि खींची गई। अगणित मन्दिरों में यही प्रणाली बरती गई है। मध्य प्रांत के अन्तर्गत अमरकण्टक के प्रसिद्ध मन्दिर को भी पहले बनाया गया है बाद में उसमें पच्चीकारी का काम किया गया है, यद्यपि यह पच्चीकारी पूरी नहीं हुई है। खिचिंग के इस शैव मन्दिर के निकट अनेक टीले और मूर्तियां हैं। इनमें से अनेक बौद्ध मूर्तियों से मिलती-जुलती हैं। अधिकांश मूर्तियां टूट चुकी हैं किन्तु जो थोड़े बहुत खण्डित अङ्ग प्राप्त हैं उनसे इन मूर्तियों की अत्यन्त श्रेष्ठ-कला का पता चलता है। इन मूर्तियों का सौन्दर्य अनुपम है।

कला के खजाने

मयूरभञ्ज के अन्य स्थान हरिपुरा, मान्भी, बरसाइ आदि भारत के अन्य पुरातत्त्व स्थानों की अपेक्षा कहीं अधिक समृद्ध हैं। इनका हर कोना-कतरा भग्न मन्दिरों के अवशेषों से भरा पड़ा है। दो क़िलेनुमा महलों के अवशेष भी यहां प्राप्त हैं। इनमें एक खैर बन्धन नदी के किनारे है और विराटगढ़ कहलाता है और दूसरा कीचकगढ़ कहलाता है। विराटगढ़ काफ़ी बड़ा है। ये दोनों महल महाभारत के पात्र विराट और कीचक के नाम से बने हैं। खिचिङ्ग में ठकुरानी के

मन्दिर की वास्तुकला पुरातत्त्व की दृष्टि से काफ़ी दिलचस्प है। ठकुरानी या किंचिकेश्वरी राजकुल की इष्ट देवी हैं। मूर्ति एक बड़े चबूतरे पर स्थापित है और पत्थर के तीन टुकड़ों से निर्मित की गई है। ठकुरानी के मंदिर के सामने एक खण्ड-देवल या अधूरा मन्दिर है। इस मन्दिर को पुराने मन्दिरों के पत्थर लेकर बनाया गया है। इसकी चारों दीवारें पूरी हैं। इसकी चौखट पर, द्वार पर और दीवारों पर जो कला-कृतियां अंकित की गई हैं वे कला की उत्कृष्ट नमूना हैं। गङ्गा और यमुना की आकृतियां तो अत्यन्त सुन्दर हैं। उनकी सुन्दर आकृति, उनका लयपूर्ण पोज़ और सन्तुलित मुद्रा सब अपूर्व हैं।

खण्ड-देवल के आस पास अगणित खण्डित मूर्तियां पड़ी हुई हैं। इनमें से अधिकांश मूर्तियों के मुख जैसे के वैसे हैं, कहीं से टूटे फूटे नहीं हैं। किन्तु बाक़ी अङ्ग टूट फूट गये हैं। इन मूर्तियों में बौद्ध और जैन दोनों प्रभाव स्पष्ट देखे जा सकते हैं। किंतु चबूतरे के चित्राङ्कन और खचित रेखाचित्रों से यह स्पष्ट है कि खिचिङ्ग के वास्तुकला विशारदों की अपनी अलग मूर्तिकला प्रणाली थी। यह कला समकालीन मूर्तिकला से सर्वथा भिन्न थी। द्वार पर बनी पच्चीकारी और द्वारपालों की मूर्तियां और विशेषकर 'चण्ड' और 'प्रचण्ड' की मूर्तियां अत्यन्त सुन्दर हैं। उनका शारीरिक सौन्दर्य और मुख-मुद्रा अत्यन्त ऊँचे दरजे की कला प्रकट करती है। इन मन्दिरों में द्वारमंडप नहीं है और यह पहलू इन्हें उड़ीसा की निर्माण कला से भिन्न कर देता है।

ठकुरानी के मन्दिर के आस-पास अनेक छोटे-बड़े मन्दिर के खण्डहर फैले पड़े हैं। कुछ वर्ष पूर्व यहाँ से 'अवलोकितेश्वर' और 'भूमि स्पर्शी-बुद्ध' की मूर्तियाँ खोद कर निकाली गई थीं। किन्तु इन मूर्तियों का देखने से पता चलता है कि ये खिचिंग-कला के ह्रास के समय की हैं। ये मूर्तियाँ देखने में सुन्दर हैं और इनकी आकृतियाँ भी आकर्षक हैं। ये मूर्तियाँ पहले 'ईंट-मन्दिर' में संग्रहीत थीं। खिचिंग की यह भी एक विशेषता है। यहाँ के समस्त मन्दिर पत्थरों से काटकर या पत्थरों के टुकड़ों के ही नहीं बनाये गये हैं बल्कि छोटी छोटी ईंटों के भी बनाये गये हैं जैसे कि बङ्गाल के मन्दिर बनते हैं।

ठकुरानी के मन्दिर के पास एक दूसरा 'कुटाइतुण्डि' मन्दिर है। इसमें भी द्वार मण्डप नहीं है और यह इण्डो-आर्यन स्टाइल का बना हुआ है। इस मंदिर के अनेक पच्चीकारी किये हुये पत्थर आज ग़ायब हैं। यद्यपि जगह-जगह से यह मन्दिर टूट-फूट गया है फिर भी यह अपनी सुन्दर कला के कारण दर्शकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। यह मन्दिर अपनी कला में भुवनेश्वर के मन्दिर से बहुत मिलता जुलता है। यह कला का अपूर्व नमूना है किन्तु अनेक जगहों से इसमें इतनी बड़ी-बड़ी दरारें पड़ गई हैं कि उससे यह नष्टप्राय होगया है।

खुदाई से पता चलता है कि खण्ड-देवल प्राचीन शिव-मन्दिर के भग्नावशेष पर बनाया गया था। सम्भवतः शिव-मन्दिर टूट-फूट गया होगा और उसकी बुनियादें नया मन्दिर बनाने के निमित्त काम में आगई होंगी। खण्ड-देवल के प्रमुख चबूतरे का परीक्षण करने से पता चलता है कि पहले वहाँ कोई बड़ी मूर्ति रही होगी। पुराने मन्दिर का तल-चबूतरा काफी विस्तृत था। उस पर खण्ड-देवल की तरह तीन प्लास्टर थे जबकि भुवनेश्वर के अधिकांश मन्दिरों में पांच प्लास्टर हैं। एक प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता का कथन है कि शिव-मन्दिर के नीचे एक और उससे अधिक प्राचीन मन्दिर था। चमकती हुई नींव यके-बाद-दीगरे कई मन्दिरों को खा गई और अब खण्ड-देवल को भी जर्जर कर चुकी है और वह भी काफ़ी धंस चुका है।

खिचिंग की वास्तुकला का परीक्षण करने से पता चलता है कि उसे कई प्रकार की कलाओं ने प्रभावित किया किन्तु दो बातें ख़ासतौर पर ध्यान देने योग्य हैं। खिचिंग की कला प्रमुखतया उड़ीसा की कला से मिलती-जुलती है, हां, उसकी अपनी जो विशेषता है वह अलहदा है। जहां तक नाग और नागिनी की मूर्तियों का सम्बन्ध है वह मोटे तौर पर उड़ीसा की कला के अनुरूप हैं किन्तु नागिनी के चेहरे की मुस्कराहट, उसका दैहिक सौन्दर्य, उसका इकहरा बदन, उसकी सन्तुलित मुद्रा और अपूर्व लोच आदि बातें उसे ऐसा सौन्दर्य प्रदान करती हैं जो स्थानीय कला-प्रणाली की अपनी विशेषता है।

किसी पुराने मन्दिर के खण्डहर से शिव की एक अत्यन्त सुन्दर मूर्ति निकली है। मूर्ति के कई टुकड़े हो चुके हैं किन्तु चेहरे का गम्भीर भाव ध्यान आकर्षित करता है। मूर्ति की कुल ऊँचाई सात फुट तीन इञ्च है। मूर्ति का मुख और शिर के पीछे का कुल भाग ज्यों का त्यों है। ऊपर के दोनों हाथ और छाती का दाहिना आधा हिस्सा भी खंडित नहीं है। मूर्ति की अपनी एक विशिष्ट भाव-मुद्रा है। शिव की मूर्ति के पास दो देवियों की मूर्ति हैं। वे दोनों देवदासियां हैं। वे दोनों लय-मुद्रा में खड़ी हैं। उनकी भाव-भङ्गी में रञ्च मात्र भी हल्का-पन नहीं है। ये दोनों मूर्तियां सौजन्य और शिष्ट भाव की प्रतिमा हैं। दाहिने हाथ की ओर जो देवदासी की मूर्ति है वह उस फूल की ओर ग़ौर से देख रही है जिसे वह अब तोड़ने वाली है। उसके मुख पर हल्की मुस्कराहट का प्रकाश है। बाईं ओर खड़ी हुई देवदासी ध्यानमग्न अवस्था में है। पोशाक की अतिशयता मूर्ति के दैहिक सौन्दर्य को ज़रा भी कम नहीं करती। दाहिनी ओर की मूर्ति पर कलाकार ने उत्तरीय की रेखायें अंकित की हैं। उत्तरीय के नीचे का घेर इतनी खूबसूरती के साथ हवा में उड़ता दिखाया गया है कि उससे आकृति के गठन में कोई अन्तर नहीं पड़ता। साड़ी का पल्ला भी हवा में लहरें लेता दिखाया गया है। जिन वास्तुकारों ने भी इन प्रतिमाओं को गढ़ा है वे वास्तव में अत्यन्त योग्य कलाकार और कला-मर्मज्ञ थे। उन्हें अपने छेनी-हथौड़े पर कमाल का नियंत्रण प्राप्त था।

नाग और नागिनियों की मूर्तियां इतनी बहुतायत से हैं कि मालूम होता है उस काल में वे अत्यधिक प्रचलित थीं। साधारणतया नागों की मुख-मुद्रा काफ़ी गम्भीर होती थीं। किन्तु नागिनियें काफ़ी प्रफुल्ल दिखाई देती हैं। किन्तु इस प्रफुल्लता में किसी तरह की वासना की झलक नहीं मिलती। नागनियों को या तो वाद्य-यन्त्र बजाते या नृत्य करते हुये अथवा किसी फूल के गुच्छे को झुलाते हुये दिखाया गया है। इन आकृतियों के निर्माण में जो कलात्मक प्रतिभा दिखाई गई है वह अत्यन्त ऊँचे दरजे की है। वे न केवल अत्यन्त सुन्दर हैं बल्कि उनके चेहरों से अत्यन्त स्वाभाविकता टपकती है।

अन्य आकृतियाँ

हाल में जो अनेक छोटी बड़ी मूर्तियां मिली हैं उनमें सूर्य, भैरव, कार्तिकेय, लिंगराज, मारीचि, महिषमर्दनी आदि की मूर्तियाँ हैं। यहां के मध्यकालीन मन्दिरों में जो देवी देवताओं की मूर्तियां स्थापित थीं उनमें कुछ एक सी विशेषताएं हैं, जैसे छोटा और चौड़ा मुख, बड़ी आंखें (ये कमल के पंखुड़ी के आकार की बनाई जाती थीं), लगातार फैली हुई भौहें, पतली खड़ी नाक, फूले और फटे हुये ओंठ, फैले हुये कान, शंख-चक्र की तरह घुंघराले बाल, सिंह-कटि की तरह पतली कमर। पुरुष मूर्तियों के चौड़े कन्धे और फैली हुई छाती और स्त्रियों के सुडौल स्तन आदि।

खिच्चिंग के वास्तुकारों ने मुद्राओं, रस और लय द्वारा अनेक भावों को व्यक्त किया है। इन सब बातों का उन्होंने इतना सुन्दर सन्तुलन किया है कि कहीं भी व्याघात या बेडौलपन दिखाई नहीं देता। इन कलाकारों की छेनी और हथौड़े ने कभी भी सौन्दर्य और आकृति को अपनी आंखों से विस्मृत नहीं किया। उनमें तेज़ अन्तर्दृष्टि और वास्तविक सूचनात्मक शक्ति थी। उन्हें अपने विचारों के ऊपर यथेष्ट नियंत्रण था। उनकी साहसी पुरुष आकृतियां और नम्र स्त्री आकृतियां और उनकी जीवन्त परम्परा प्रशंसा के योग्य है। खिच्चिंग में फैले हुये टूटे मन्दिर और भग्न मूर्तियाँ भारत के इस एकान्त कोने के कलाकारों की आश्चर्यजनक प्रतिभा की गवाही दे रही हैं। आज इनकी कला की सुगन्धि मरुस्थल की हवा में खो गई है फिर भी उसकी भीनी-भीनी महक उनकी भग्न कलाकृतियों के जर्जर अंशों से आकर कला के पारखियों को विमोहित करती रहती है।

चौराहे पर !

श्री देवेन्द्र एम० ए०

आई उदास,संध्या मैं भी घर से निकला,था कुछ न काम।
भीतर कुछ संस्मृतियाँ जागीं
बाहर थी काफ़ी चहल - पहल;
सड़कों के तट पर हँसते थे
वे मन्दिर, मस्जिद, बड़े महल।
रजनी के अंचल की छाया
फैली, फिर फैला अन्धकार,
पल में नभ की गोदी में था
शशि - तारों का अनुपम सिंगार,
मैं अनजाने ही पहुँच गया
पुर के उस भव्य चतुष्पथ पर,
जिसकी शोभा पर करता था
अभिमान हमारा महानगर,
मैं विस्मित-सा था देख रहा
वसुधा पर उतरा मूर्त स्वर्ग
कितना कोलाहल,चहल.पहल कितनी सजधज यह टीम-टाम !
सहसा भिखमंगा एक पार्श्व
में गिरा, भूमि पर हाथ पैर
था पटक रहा, मुँह रगड़ रहा
सहमे जो थे कर रहे सैर,
आगे के टूटे चार दाँत
माथे की थी छिल गई खाल,
मुँह से बहता था रक्त, रूप
लगता था उसका अति कराल !
मैंने पूछा—'क्या हुआ इसे ?'
बोले अनेक कुछ विमन भाव
"इसका तो ऐसा ही जीवन
इस पर मिर्गी का है प्रभाव !"
मैंने सोचा—किसकी खातिर
भारी सरकारी अस्पताल !
किसकी खातिर है मुफ्त खुला
औषधागार नूतन विशाल !
जिनके कारण समझे जाते
अकसर धनवाले दयावान् !
जनता आदर, जय जय करती
पूजा करती है बड़ा मान !
क्या कभी चौरहे से पुर के
गुजरी होगी उनकी न कार !
क्या छू तक नहीं सका उनका
अन्तर, इसका यह चीत्कार !
यदि कुछ पैसों की दवा बिना
सोने-सा मानव तड़प मरे !
उनका धन झूठा,यश झूठा,मिथ्या है जग में बड़ा नाम !!
मैं सोच न पाया था रोगी
के कष्ट निवारण का साधन,
इतने में देखा कुत्ते से
लड़ बैठा जर्जर मानव-तन !
भू पर फेंके थे बाबू ने
अधखाये पत्ते इधर-उधर,
कूड़े करकट में खोज रहा
था गिरे हुये दो-चार मटर !
पिछले दो दिन से भूखा था
पानी पीकर था भरा उदर,
कुत्ते से जीत न पाया वह
औ' अपना पेट न पाया भर !!
होकर निराश आया मेरे
सम्मुख फैलाया अपना कर,
बोला—'भगवान भला कर दें'
फिर दिये न जाने कितने वर !
मैंने कुछ पैसे दिये उसे
सोचा अब फिर मैं चलूँ कहाँ ?
आया था मन हलका करने
कुछ बोझिल ही हो गया यहाँ !
चलने को पैर बढ़ाये थे
इतने में मुझको लिया घेर
कितने ही भिखमंगों ने फिर
मैं सह न सका, मुँह लिया फेर !
कुछ बच्चे थे औ अबला भी
सच मानो बिल्कुल नंगी थीं !
उसकी लज्जा तक ढक न सकी
दुनिया ऐसी बेढङ्गी थी !
मैं अखबारों में पढ़ता था
गाँठे सड़ गईं हजारों में,
निकली साहूकारों के घर

लाखों ही चोर-बाजारों में!
क्यों दूर! वहीं पर देख रहा
कपड़ों से भरी दुकानें थीं!
धन का अभाव! आश्चर्य वहीं
सोने चाँदी की खानें थीं!!
वे उस प्रकाश में क्षुधा-विकल
दुख की छाया में घूम रहे,
बाबू ज़ीरा-जल पीते थे
लाला चूरन थे चूम रहे!
कोई अजीर्ण से खा न सके
कोई ज्वाला से जला करें!
जलते हैं फिर भी कहते हैं
भगवान तुम्हारा भला करें!
मैं उन अनजानों को क्या कह दूँ
जो अपना दुख न समझ पाये,
औ समझ न पाये दोषी वे
जिनको वरदान लिये आये!
मैंने सोचा यदि ईश्वर है
क्यों जन्म दिया जग में इनको?
डरती है जिनसे मौत और जीना भी जिनका है हराम!
मैंने सोचा—'अब लौट चलूँ'
सहसा आँखें फिर गईं उधर,
ऊपर छज्जों पर बालायें
बैठी थीं रूप धरे मनहर!
चाँदी के टुकड़ों पर बिकता
था खुले आम नारी का धन!
वासना—नगर की छाती पर
करती थी अप्रतिहत नर्तन!!
कोई उसमें से विधवा थी
जिसको समाज ने जगह न दी,
कोई—कहती लोलुप नर ने
छोड़ा अब मेरी पत हर ली!
कोई कहती है प्रिय न हमें
अपना यह घृणित, दुखद जीवन,
मजबूरी में तन बिक जाता
है किन्तु न बिक पाता यह मन!
हैं आज वही पूजा करते
जो कल करते थे तिरस्कार,
हैं चरण चूमते आज वही
मन्दिर, मस्जिद के खुले द्वार!
यह पाप जगत का पुण्य बना
वासना नगर की शोभा है,
व्यभिचार पुरुष का यह कुत्सित
क्या कभी बताओ होगा लय?
जब स्वयं हमारे सम्मानित
नेता, पंडित! मौलवियों की,
छाया में पनप रहा है वह
आशीष मिल रही कवियों की!
जो सदाचार पर हैं प्रवचन
करते प्रतिदिन गम्भीर गहन,
पर रात काटते यहां और दिन में भजते हैं राम राम!
थी रात जा चुकी अधिक और
मैं भी कोलाहल से ऊबा,
लौटा घर को अपनी-जग की
चिन्ताओं में खोया, डूबा!
कुछ पग चल पाया ही हूँगा
सहसा मैंने खाई ठोकर,
कुछ लगा क्रोध पथ पर रक्खे
कूड़े पर औ' अपने ऊपर!
लेकिन उस कूड़े पर रक्खे
चीथड़े हिले कुछ शब्द हुआ,
मैं सहम गया मानव था वह
कितना निर्मम प्रारब्ध हुआ!!
मैं बोला—भाई, क्षमा करो
वह हो विनम्र बोला—हुजूर!
हमरे कुछ लागी चोट नहीं
हम मनई ना, पाथर—मजूर!
मैं बोला—'जाओ घर सोओ
क्यों यहां मार्ग पर सोते हो?
वह बोला—है घर बार कहाँ
बाबू मुझ पर क्यों रोते हो?
उत्तर के प्रति हो उदासीन
उसने अपनी करवट बदली!
मन में कितने हो भाव लिये मैं लौटा ले उसका सलाम!

शिक्षा और धर्म

मौलाना अबुलकलाम आज़ाद

राजनीतिक परिस्थिति में परिवर्तन होने से हमारे कार्य के स्वरूप पर भी उसका बहुत अधिक असर पड़ा है। हम शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं को जिस तराजू पर तौलते थे, वह अब बहुत पुरानी पड़ गयी है। अब हमें नये तराजू और नये बाटों की ज़रूरत पड़ेगी। आज की राष्ट्रीय समस्याओं की विशालता या कटुता की नाप पुराने पैमानों से नहीं की जा सकती। नवीन भारत की नवीन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए नवीन दृष्टिकोण की आवश्यकता पड़ेगी और उसकी समस्याओं को हल करने के लिए नवीन उपायों का अवलम्बन करना पड़ेगा।

आप यह तो जानते हैं कि धार्मिक शिक्षा देने के सम्बन्ध में उन्नीसवीं शताब्दि का उदारतापूर्ण दृष्टिकोण अब समाप्त हो चुका है। प्रथम महायुद्ध के बाद से ही एक नये दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव हो गया था और उसके बाद दूसरे महायुद्ध के परिणाम स्वरूप जो बौद्धिक क्रांति हुई, उसके कारण इस समस्या को एक निश्चित रूप दे दिया गया है। प्रारम्भ में यह ख्याल किया गया था कि बच्चे के बौद्धिक विकास में धर्म बाधक रहेगा, लेकिन अब यह अनुभव किया गया है कि हम धार्मिक शिक्षा को सर्वथा तिलांजलि नहीं दे सकते। यदि राष्ट्रीय शिक्षा में इसका कोई स्थान नहीं रहेगा तो नैतिक उपयोगिता अथवा मानव चरित्र को उदार बनने का महत्व ही नहीं समझा जा सकेगा। यह तो आप जानते ही होंगे कि पिछली लड़ाई में रूस को भी अपना सिद्धांत छोड़ देना पड़ा। ब्रिटिश सरकार को भी १९४४ में अपनी शिक्षा में सुधार करना पड़ा।

जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है इस समस्या का स्वरूप सर्वथा भिन्न है। यूरोप और अमरीका को धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता इसलिए अनुभव हुई कि धार्मिक प्रभाव के बिना लोग हर एक बात पर आवश्यकता से अधिक बौद्धिक दृष्टिकोण से विचार करने लगे। लेकिन जहाँ तक भारतीय जीवन का सम्बन्ध है वहां समस्या का दूसरा ही पहलू काम कर रहा है। हमें इस बात का डर नहीं कि लोग अत्यधिक बौद्धिक दृष्टिकोण से काम लेने लगेंगे। इसके विपरीत हमारे यहाँ धर्म का बहुत अधिक बोलबाला है। यूरोप की भाँति हमारी वर्तमान कठिनाइयां भौतिक दृष्टिकोण के बजाय, धर्मान्धता के कारण हैं। अगर हमें इन कठिनाइयों से छुटकारा पाना है तो इसका उपाय प्रारम्भिक शिक्षा में से धार्मिक शिक्षा को तिलांजलि देना न होकर सीधे अपनी निगरानी में ठोस और स्वस्थ धार्मिक शिक्षा देने की समुचित व्यवस्था करनी है, ताकि शैशवावस्था में ही बच्चे पर अन्धविश्वास का प्रभाव न पड़े।

स्पष्ट है कि लाखों ही भारतीय अपने बच्चों को अधार्मिक वातावरण में शिक्षा देने के लिये तैयार नहीं हैं और मुझे विश्वास है कि आपकी भी यही राय है। यदि सरकार ने विशुद्ध रूप से धर्मनिरपेक्ष शिक्षा देने का बीड़ा उठाया तो पता नहीं उसका क्या परिणाम निकले। स्पष्ट है कि लोग गैर-सरकारी रूप से अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने की चेष्टा करेंगे। ये गैर-सरकारी संस्थाएं आज किस रूप में काम कर रही हैं और भविष्य में करेंगी—इससे आप लोग भली भांति परिचित हैं। इस बारे में, मैं भी कुछ जानकारी रखता हूँ और यह कह सकता हूँ कि न केवल देहातों में, बल्कि शहरों में भी धार्मिक शिक्षा देने का काम ऐसे अध्यापकों के जिम्मे होता है जो यद्यपि साक्षर अवश्य हैं, फिर भी शिक्षित नहीं कहे जा सकते। उनके लिए धर्म का अर्थ सिवाय धर्मान्धता के और कुछ नहीं। इसके अलावा उनके पढ़ाने का ढङ्ग भी ऐसा होता है कि उसमें उदार दृष्टिकोण की गुंजाइश ही नहीं होती। तब यह बिल्कुल साफ जाहिर है कि प्रारम्भिक अवस्था में बच्चे को जो शिक्षा दी जायगी और उसके दिमाग में जो विचार ठूंस दिये जायंगे, उन्हें आप बाद में कभी भी नहीं निकाल सकेंगे भले ही आप उसे कितनी ही आधुनिक शिक्षा क्यों न दें। यदि हमें अपने देश के बौद्धिक जीवन को इस खतरे से बचाना है तो हमारे लिये यह और भी अधिक जरूरी हो जाता है कि हम प्रारम्भिक अवस्था में बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने की जिम्मेदारी गैर-सरकारी सूत्रों पर न डालें। इसके विपरीत यह काम हमें सीधे अपनी निगरानी में ले लेना चाहिए। निस्संदेह एक विदेशी सरकार धार्मिक शिक्षा से अपना कोई वास्ता नहीं रख सकती थी। लेकिन एक राष्ट्रीय सरकार इस जिम्मेदारी से किसी भी हालत में अपना

पिंड नहीं छुड़ा सकती। देश के सुकुमार बालकों के मस्तिष्क को उचित आधार पर विकसित करना उसका सर्वोपरि कर्तव्य है। भारत में हम धर्म के बिना कोई बौद्धिक विकास नहीं कर सकते।

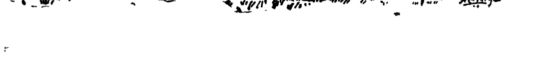
यदि धार्मिक शिक्षा को आधारभूत शिक्षा का अंग बनाना ही है, तो उसमें उसका क्या स्थान होना चाहिए, इसका प्रबन्ध कैसे किया जाय, इन प्रश्नों पर हमें अच्छी तरह से विचार करना होगा। निस्सन्देह हमारे मार्ग में कई कठिनाइयां आ जायंगी। हमें उनका निराकरण करना होगा। परन्तु इस समय हमें विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं। यदि मुख्य प्रश्न हल होगया तो विवरण तो बाद में भी ढूंढे जा सकते हैं। फिरभी मैं आप से निवेदन करूंगा कि इस प्रश्न पर पूरी तरह से विचार करने के लिए आप एक कमेटी नियुक्त करें।

एक और भी समस्या है जिसके बारे में अंतिम निश्चय करना है। हमारी शिक्षा का माध्यम क्या हो? मैं कह सकता हूं कि दो बातों पर आप सब सहमत होंगे। प्रथम भविष्य में अंग्रेजी हमारी शिक्षा का माध्यम न रह सकेगी। दूसरे इस शिक्षा में परिवर्तन शनैः शनैः होना चाहिए। मेरा विचार है कि हम फैसला कर लें कि उच्च शिक्षा पहले की भांति अंग्रेजी में ही ५ साल तक दी जायगी और इसके साथ-साथ ही हमारे विश्वविद्यालय आगामी परिवर्तन के लिये प्रबंध कर लें। आप सब कृपया अपने सुझाव खूब सोच विचार कर सरकार को दें।

भारतीय भाषा का प्रश्न आधारभूत प्रश्न है। इस सम्बन्ध में हम परिवर्तन कैसे लायें? क्या युनिवर्सिटियों में शिक्षा किसी समान भारतीय भाषा में दी जाय या प्रान्तों को अपनी भाषाओं को उपयोग करने की छूट हो? अंग्रेजी विदेशी भाषा है और इसके माध्यम रहने के कारण हमें बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। हां अंग्रेजी द्वारा यह लाभ हमें अवश्य हुआ कि देश के शिक्षित समुदाय में विचारों का परस्पर आदान प्रदान सुगम होगया। अंग्रेजी राष्ट्रीय एकता में सहायक हुई। यह इतनी बड़ी बात है कि मैं अंग्रेजी माध्यम के आगे भी रहने के पक्ष में होता यदि अंग्रेजी विदेशी भाषा न होती। और विदेशी भाषा में शिक्षा प्रदान करना सर्वथा अनुचित है। आप ही बतायें, यदि मद्रासी, बंगाली, पंजाबी को विदेशी माध्यम द्वारा शिक्षा प्राप्त करने में विशेष दिक्कत नहीं हुई तो किसी भारतीय भाषा द्वारा शिक्षा प्राप्त करने में उन्हें क्या कठिनाई होगी? यदि अंग्रेजी के स्थान पर हम कोई भारतीय भाषा अपना लें तो हम उस बौद्धिक एकता को कायम रख सकेंगे जो हमें अंग्रेजी के कारण प्राप्त हुई। अन्यथा हमारी बौद्धिक एकता को थोड़ा बहुत धक्का अवश्य पहुँचेगा।

दूसरा विकल्प हमारे सामने यह है कि विश्वविद्यालयों में प्रान्तीय भाषायें माध्यम हों और केन्द्रीय सरकार और अन्तःप्रान्तीय सम्पर्क के लिए अलग एक समान भाषा का ज्ञान अनिवार्य हो।

[शिक्षा सम्मेलन के व्याख्यान का अंश]



भिखारिन

—श्री दत्त रघुनाथ कवठेकर

उस दिन भी मैं खिड़की में से झांक रहा था। आज कल, जाने कितने दिनों से, वह लड़का जब भी मेरे दरवाजे के पास से निकलता, खिड़की के समीप ही बाहर टँगे हुए साइन-बोर्ड की ओर देखता रहता। उसके फड़कते हुए ओठों से ज्ञात होता, जैसे वह मन ही मन विज्ञापन पढ़ रहा हो। कई बार उसके ओठों से इन अक्षरों का अस्फुट उच्चारण भी होने लगता। शाब्दिक परिचय कम होने से उसका चकित होना तथा आश्चर्यान्वित होकर देखना मुझे आनन्द-सागर में मग्न करने लगता।

अत्यंत सुन्दर, चुस्त और फुर्तीला था वह। उसके वस्त्र साधारण किन्तु स्वच्छ थे। सिर पर सफ़ेद टोपी, बगल में लटकता हुआ रंगीन 'बस्ता' और मेरे घर के समीप आते ही उसका किंकर्तव्य विमूढ़ होकर रुक-रुक कर चलना यह सब देखकर उसके प्रति मेरी जिज्ञासा दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी।

परन्तु आज, नित्य नियमानुसार पाँच बजे मेरे घर के सामने से निकलता हुआ वह दिखाई न दिया। मैं बहुत देर तक खिड़की से झाँकता रहा। अकल्पित रीति से मैं उसीका चिंतन कर रहा था। इतने में किसी ने किवाड़ थपथपाया। हमेशा की आदत के अनुसार मैं पूछ बैठा—"कौन है ?"

बाहर के व्यक्ति से किवाड़ का पल्ला खुल नहीं रहा था, इसलिये मुझे स्वयं उठकर किवाड़ खोलना पड़ा।

जिस लड़के के विषय में मैं कुछ ही क्षण पूर्व विचार कर रहा था उसे ही प्रत्यक्ष पा मैं हैरान हो गया।

"सौ साल की उम्र है पट्ठे की" मैंने मन ही मन कहा।

"क्यों क्या चाहिये ?" हँसते हुए उसकी पीठ पर सप्रेम हाथ फेरते हुए मैंने पूछा। क्षण भर के लिये वह घबरा-सा गया। कुछ संकोच-वश रुक-रुक कर, वह बोला—"उस खिड़की पर—बाहर, विज्ञापन है....... आप ही का है वह ?"

"हाँ; क्यों ?"

"कुछ नहीं....योंही...कुछ काम था आपसे.... ।"

"आओ...अन्दर आओ—" कह कर कुर्सी पर बैठते हुए मैं बोला—"बैठो वहाँ कुर्सी पर, बताओ क्या काम है ?"

कुर्सी पर न बैठकर वह टेबिल के एक कोने पर हाथ रख, नीची दृष्टि किये खड़ा ही रहा।

"क्या काम है, तुम तो बोलते ही नहीं !..."

"आपको किसी नौकर की आवश्यकता है ?"

"हाँ, क्यों ?" मैं और भी द्विविधा में पड़ गया।

आज कितने दिनों से "नौकर की आवश्यकता है" सूचक एक पाटी बाहर टँगी हुई थी। प्रकाशक था मैं! दूकानों में पुस्तकें भेजने के लिये, बिल की वसूली के लिये और अन्य दूसरे खटर-पटर कामों के लिए, मुझे एक विश्वस्त नौकर की आवश्यकता थी। वह अपने बड़े भाई अथवा पिता के लिये नौकरी की याचना करने तो नहीं आया है ! यह सोचते ही मैं उसकी ओर और भी चकित दृष्टि से देखने लगा।

"आपको अधेड़ नौकर चाहिये या बालक ?"

उसके इस प्रश्न से मुझे आश्चर्य हुआ और साथ ही साथ हँसी भी आई। मेरी मुद्रा देखकर वह कुछ चौंका और लाज की लालिमा उसके चेहरे पर दिखाई दी।

"मुझे तो बड़ा नौकर चाहिये।"

"कितनी तनख्वाह देंगे आप उसे ?"

"पंद्रह रुपये।"

"तो फिर छोटे नौकर को साढ़े सात ही देंगे ?"

मैं चक्कर में पड़ गया। इतने में मेरी ओर देखते हुए उसने धीरे से कहा—"मुझे नौकरी पर रखेंगे ?"

आश्चर्य-चकित हो मैं उसकी ओर एक-टक देखने लगा।

"रखेंगे मुझे नौकरी पर ? मैं आपका सब काम कर दिया करूँगा...स्कूल की छुट्टी होने पर सीधा आपके यहाँ आया करूँगा।"

"अरे भाई! मुझे तो दिन भर काम करने के लिये नौकर चाहिये !" सप्यार मैंने कहा।

"परन्तु मैं दो घंटे काम करूँगा न आपके यहां। मुझे नौकरी की आवश्यकता है। हर माह मुझे दो तीन रुपये ही दिया कीजिये।"

"परन्तु तुम्हें अभी से नौकरी की ऐसी कौन सी आवश्यकता पड़ गई?"

"आवश्यकता है इसीलिये तो आया हूँ। यदि आपकी इच्छा न हो, तो अधिक दिनों तक न रखिये। दिवाली तक ही रख लीजिये। केवल दो-तीन महीने।"

"कौनसी कक्षा में पढ़ते हो तुम?"

"आठवीं कक्षा में।"

"अरे वाह!—और उम्र?"

"दस साल। घर का सारा काम-काज मैं ही करता हूँ। मंडी जाता हूँ; हाट बाज़ार करता हूं। मां को तो फ़ुरसत ही नहीं रहती—"

"क्या काम करती है तुम्हारी मां?"

"सीने-पिरोने का काम करती है।"

"घर में और कौन-कौन हैं तुम्हारे?"

"मां और तारा! बस, हम तीन ही हैं।"

"और तुम्हारे बाबू जी?"

"नहीं हैं वे। उनकी मृत्यु हो गई, पांच-छः साल हुए। वे हमारे लिये कुछ पूँजी छोड़ गये थे परन्तु मां कहती है कि मामा को कुबुद्धि उपजी और तभी से वह सीने-पिरोने का काम करती है।

"तो तुम गरीब हो?"

"जी हम लोग गरीब हैं, परन्तु हम किसी से भीख नहीं मांगते। मां कहती है, खून पानी करके पैसा कमाना चाहिये और सम्मान सहित जीवन व्यतीत करना चाहिये। हमारे मकान की मालकिन मां को रोटी पकाने बुलाती हैं; परन्तु वह नहीं जाती। कहती है—उसमें अनादर होता है जो बाबूजी को सह्य न होगा।"

"परन्तु तुम्हारे तो बाबूजी नहीं हैं; अभी अभी तुम कह रहे थे?"

"क्या हुआ जो वे नहीं हैं? वे स्वर्ग से तो देखते हैं। हम क्या क्या करते हैं, उन्हें सब दिखाई देता है। वे हमें बहुत चाहते थे। मैं बड़ा होकर खूब पढ़ूं-लिखूं और खूब रुपये कमाकर मां और तारा को सुखी करूं, यह उनकी उत्कट अभिलाषा थी—मां कभी-कभी मुझसे कहती है।"

"तो फिर स्कूल में फीस माफ होगी?"

"न-न! मुझे स्कालरशिप देते हैं हेडमास्टर! मैंने उनसे कहा था कि फ्री-शिप मुझे नहीं चाहिये। स्कालरशिप ही दीजिये मुझे। उस समय तो हंस दिया उन्होंने, किन्तु स्कालरशिप देते हैं। बहुत भले हैं वे। इतने बड़े हैं फिर भी......!"

"कौन सा नम्बर है कक्षा में तुम्हारा?"

सगर्व छाती फुलाकर उसने कहा—"पहिला, पहिला ही रहता हूं मैं हमेशा।"

"मां सिलाई करती हैं उसमें गुजर नहीं होती तुम्हारी?"

"मां कहती है उतने पैसे नहीं पूरते। और...."

"और क्या?"

"और—सब लोग कपड़े तो सिलाकर ले जाते हैं परन्तु समय पर पैसे कोई नहीं देता। दरजी को जरूर सिलाई दस आने दे देंगी, परन्तु मां को चार आने देते हुये भी पड़ोसिनें चिख-चिख करती हैं।"

"मां ने कहा है तुमसे नौकरी करने के लिये?"

"जी नहीं! नौकरी लग जाने पर बता दूंगा उसे। अभी बता दूं तो वह नाराज़ होगी। वह कहती है 'अभी तेरी उम्र काम करने लायक नहीं है'। उमर न होने से क्या? मेरी उम्र के लड़के कितना परिश्रम करते हैं। मधू को देखिये—उसकी मां अंधी है, इसलिये वह समाचार पत्र बेचता है और पढ़ता है। मां दिन भर काम करती है, यदि मैं दो घंटे खेलने के बजाय आपका काम किया करूं तो क्या बुराई?"

"किंतु दो-तीन रुपये मिल जाने से ही तुम्हारा क्या होगा? और मां से क्या बिना पूछे तुम नौकरी करोगे? जब तुम पैसे ले जाओगे, तो क्या उसे पता न चलेगा? या, ऊपर के ऊपर तुम सफा कर जाया करोगे?"

"जी नहीं! यदि इस प्रकार करूंगा तो मां को पता न चल सकेगा परन्तु बाबू जी को तो दिखाई देगा न? वे क्या कहेंगे मुझे? मेरे स्वप्न में भी आवेंगे वे।"

"तुमने देखा है उन्हें?"

"जी हां, उनका फोटो जो है हमारे घर में। सोने के पूर्व हम उन्हें भक्ति-पूर्वक नमन करते हैं।'

"तुम्हारे बाबू जी क्या करते थे ?"

"मेरे बाबूजी ? लेखक थे। बहुत-सी जगह उनकी जान-पहिचान थी। अनेकों व्यक्ति उनसे मिलने भी आते थे।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?" उसके पिता लेखक थे यह सुनते ही साश्चर्य मैंने पूछा।

"श्रीकांत ब्रह्मपुत्रे। लेकिन मुझे सब कोई केवल 'श्री' ही कहते हैं।"

"तो तुम गोपाल राव के लड़के हो ?"

"जी हां, वे ही मेरे पिता हैं ! आप उन्हें कैसे जानते हैं ?"

"भाई, वे तो नामी लेखकों में थे। बहुत बड़े आदमी थे वे।"

किसी समय जिसका नाम सर्वतोमुखी था, उस अकिञ्चन दुःखों से छुटकारा पाए हुये प्रसिद्ध लेखक का पुत्र दयनीय अवस्था में मेरे समक्ष उपस्थित था। उसकी उस विपन्नावस्था का चित्र मेरे नेत्रों में नाचने लगा। क्रमशः वे अश्रुपूर्ण हो उठे। साश्चर्य और सादर मैं उसकी ओर देखता ही रह गया।

"यदि तुम्हें नौकरी पर रख लूँ, तो तुम उन पैसों का क्या करोगे ?"

वह पुनः चकराया। उसके चकराने का कारण मैं न समझ सका।

"ऐसा करो। तुम हर महीने की पहिली तारीख को मेरे पास आ जाया करो। मैं तुम्हें दो रुपये दिया करूंगा।—क्यों ठीक है न ?"

"बिना नौकरी किये ही—यों ही ?"

"हां।"

"मुफ्त में आपके रुपये मुझे नहीं चाहिये—क्या मैं अंधा, लंगड़ा अथवा अपाहिज हूँ ? मां क्या कहेगी; बाबू जी क्या समझेंगे ? और जिस काम के लिये मुझे रुपयों की आवश्यकता है, उसमें मुझे संतोष ही क्यों कर हो सकेगा ? मुझे वे रुपये..."

"कहो न रुक क्यों गये ?"

"अभी वह मैं नहीं बता सकता। मां से भी नहीं बताऊंगा।" कह कर वह किसी सुखद कल्पना में लीन हो गया।

उसका वह स्वाभिमान, बात करने का ढङ्ग और प्रत्येक शब्द से प्रकट होने वाला आदर तथा उसका निर्लिप्त बाल-हृदय देख कर मैं चकित हो गया।

"अच्छा" कल से आया करो—कल ही पहिली तारीख है। तुम्हें साइकिल चलाना आता है न ?"

"जी हां ! अच्छी तरह।"

लौटते समय कितना प्रफुल्ल वदन था वह। उसके जाने के पश्चात् मैं जाने कितनी देर तक उसके विषय में सोचता रहा। उसे रुपयों की आवश्यकता थी, किंतु किसलिये ? मैं न जान सका। दूसरे दिन से वह नियमित रीति से मेरे यहां आने लगा। मैं भी उसे खटर-पटर काम बताने लगा। आगे चलकर वह दूकानों में जाकर किताबें भी दे आने लगा। छोटे मोटे बिल भी वह वसूल करके ले आता। उसकी फुर्ती, कार्य-कौशल्य और विश्वास देखकर मुझे उससे अधिकाधिक स्नेह होने लगा। एक माह तक उसने मुझे नौकर की आवश्यकता प्रतीत ही न होने दी ! चार घण्टे में भी न हो सकने वाला काम वह केवल दो घंटे में करके प्रसन्न वदन घर लौट जाता।

एक माह पश्चात् पहिली तारीख को जैसे ही मैं उसे दो रुपये निकालकर देने लगा, वह बोला—

"अभी मुझे आवश्यकता नहीं है इनकी। मेरे पास से खो जावेंगे। आप इन्हें अपने पास ही रख छोड़िये। जब मुझे आवश्यकता होगी मैं आपसे मांग लूँगा।"

दूसरे महीने भी उसने यही कहा। उससे पूछने का मैंने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु निष्फल ! मैं कुछ भी मालूम न कर सका। जब वह कुछ न बोला तब मैंने पूछा—

"क्यों जी तुम्हारी मां को मालूम हुआ कि तुम मेरे यहां दो घंटे काम करते हो ?"

"नहीं।"

"फिर वह पूछती नहीं कि तुम दो घंटे कहां रहते हो ?"

"जी नहीं। वह समझती है कि मैं खेलने जाता हूं। मैं पहिले भी तो नित्य खेलने जाता था।"

"और जो उसने पूछा, तब ?"

"वह पूछेगी ही नहीं—पहिले जिस प्रकार मैं घर आया करता था, अब भी उसी प्रकार आता हूं।" कुछ विचित्र सा होकर वह बोला।

"फिर मैं ही जाकर कहूं तुम्हारी मां से।"

उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। अत्यन्त खेद के साथ मेरी ओर एक बार देखकर सिर नीचा करके आर्त्त स्वर में उसने कहा—"आप सचमुच बता देंगे मां को ?"

उसकी वे सलोनी आंखें आंसुओं से डबडबा आईं। मैंने शीघ्र ही उठकर उसके आंसू पोंछ दिये।

"नहीं बताऊँगा रे। पागल हो गया है क्या। इस प्रकार भी कोई रोता है। तुम्हीं ने कहा था न कि मां को पता न चलने पर भी बाबू जी से कुछ छिपा न रहेगा। मां को न बताते हुए तुम नौकरी करते हो; रुपये जोड़ते हो, क्या यह तुम्हारे बाबू जी से छिपा रहेगा ?"

"उन्होंने तो यह देखा ही होगा। किंतु वे नाराज़ नहीं होंगे मुझ पर। वे जानते हैं मैं नौकरी क्यों करता हूं ? उलटा इससे उन्हें आनन्द ही होगा। यदि वे इस समय जीवित होते तो मेरी प्रशंसा ही करते।"

उस बात को ज्यों ज्यों भूलने का प्रयत्न करता त्यों त्यों वह रहस्य जानने के लिये मैं उतावला होने लगता। आख़िर कितने दिन यह छिपाकर रखेगा मुझसे—! मैंने अपनी उत्कण्ठा को उस पर प्रकट न होने दिया।

तीसरे महीने मैं उसे पुनः उसका वेतन देने लगा, वह बोला—"अभी मुझे आवश्यकता नहीं है; किन्तु अब शीघ्र ही काम पड़ेगा। इकट्ठे छः रुपये देंगे न आप मुझे मैं जब चाहूंगा ? अलग ही निकाल रखियेगा। नहीं तो ख़र्च हो जाएँगे।"

मैं बिना हंसे न रह सका।

"यह देखो—इस खंड में रखे देता हूँ। अब तो खुश होगये न ?"

पांच-छः दिन पूर्व ही हमारे यहाँ दिवाली का उत्सव आरंभ होगया था, इसलिये मैं अपने साथ उसे भी जलपान के लिए लेगया, किन्तु खाने से उसने साफ इन्कार कर दिया। मैंने बहुत मनाया फिर भी वह तत्पर न हुआ। जब मैंने कृत्रिम क्रोध से उसे डाँटा तो आंखें पोंछते हुये उसने कहा—तारा को अकेली छोड़ कर मैं कभी कुछ नहीं खाता। मां कहती हैं सबको बांट-बाँट कर खाना चाहिये। अकेले-अकेले खाने से पेट में सोना थोड़े ही होता है।"

मेरी पत्नी की आँखें अश्रुपूर्ण होगईं। तुरंत ही काग़ज़ में सब पदार्थ रखकर वह उसका पुड़ा बनाकर उसे देने लगी। उसने वह भी नहीं लिया।

उसके हृदय की तह तक मैं पहुँच ही नहीं पाता था।

"क्यों जी—ऐसा क्यों करते हो" कुछ क्रोध से मैंने कहा। लो, कहते ही लड़कों को ले लेना चाहिये; समझे।"

अब उसके आंसू न थम सके। आखें छलछला आईं। अपने को किसी प्रकार सम्हालकर अस्फुट स्वर में वह बोला—

"हम इस प्रकार किसी का दिया हुआ नहीं लेते। हम लोग गरीब हैं, इसलिये सब हमें इसी प्रकार कुछ न कुछ देते रहते हैं और बाद में अंगुलियां उठाते हैं, चिढ़ाते हैं। काम करने को कहते हैं।"

उसने जो कुछ भी कहा था, सब सच था। गरीबी से ही मैं भी गुज़रा था। दुनिया के भले बुरे का पर्याप्त अनुभव था मुझे।

नरक चौदस के दिन भी नित्यनियमानुसार वह मेरे यहां साढ़े पाँच बजे आया। उस दिन कोई काम न था।

मैंने कहा—"आज तुम्हारी दिवाली की छुट्टी है, जाओ—कल परसों और भैय्या दूज तक।"

"परन्तु आपका हर्ज न होगा ?"

"मैं स्वयं कर लूंगा।"

"ऐसा क्यों ? मैं रोज एक बार पूछ लिया करूंगा।" कह कर वह दरवाजे तक जाकर लौटा, फिर मेज पर की पुस्तकें इधर-उधर करते हुए धीरे से बोला—"देंगे आप वे रुपये ? आज चाहियें मुझे।"

छः रुपये निकालकर मैंने उसके हाथ पर रख दिये।

अत्यंत उत्साह से और उल्लसित हृदय से वह हंसता-कूदता चला गया और पुनः कुछ घंटों में लौट आया।

उसके हाथ के बंडल की ओर आश्चर्य देखते हुए मैंने पूछा—"क्या है उसमें ?"

"एक चीज है।"

"चीज ! कैसी चीज ? देखूं...बता ना ज़रा।"

"ऊहुं ! आप मुझे रखने देंगे यहां पर वह बंडल ? मैं किसी समय आकर ले जाऊंगा। परन्तु कोई उसे, खोल कर न देख पाए।"

उसने वह बंडल एक किताबों की आलमारी में एक कोने में रख दिया; और चला गया। कुछ ही देर में वह पुनः लौट आया और अपनी जेब से एक रुपया निकाल कर मेरे सामने टेबिल पर रखते हुए बोला—"यह रुपया भी ऐसा ही रख लीजिये। इस बंडल के साथ ही वह भी ले जाऊंगा।" और सानन्द वह बाहर चला गया।

मेरी जिज्ञासा अपनी चरम सीमा को पहुँच चुकी थी। धैर्य न होने से मैंने वह बंडल खोल कर देखा। देखते ही मैं चकरा गया। किन्तु फिर भी कुछ समझ में न आया। सोच विचार में ही मेरे दो दिन बीत गये। दो दिन पश्चात् श्री आया—वह भी भैया दूज के समय, शाम को। आते ही उसने अधीरता से अपना बंडल निकाल कर देखा।

"खोलकर देखा था न आपने ?"

मैं झेंप सा गया, तभी हंस कर अपनी झेंप मिटा डाली। मैं क्यों हंसा, उसने कितने शीघ्र ताड़ लिया। मैं यह समझता था कि वह उदास हो जावेगा, किन्तु इसके विपरीत वह हंसकर बोला—

"वह रुपया देते हैं मुझे ? और आप चलेंगे आज हमारे यहां ? मां से मैंने पूछ लिया है।"

"किस लिये ?"

"यों ही। आपने कहा नहीं था कि मुझे तेरा घर देखना है। आज चलिये।"

"मैं नहीं चलता तेरे यहां। तूने परसों हमारे यहां जल-पान किया था ?...हम लोग सख्त नाराज़ हैं तुझसे। और वह क्या रहस्य है बताता भी नहीं। फिर हम क्यों चलें ?"

"आप चलिये तो सही ! वहीं सब बता दूँगा। मैंने न बताने को कहा ही कब था।..."

उसका दिल मैं न तोड़ सका।

वह रास्ते भर आनंद से बड़बड़ाता रहा। चलते-चलते बीच में वह रुक जाता और कुछ कहने के लिए मुझसे बिलकुल सटकर चलने लगता। अंत में उससे न रहा गया। वह बोला—

"हम लोग गरीब हैं। हमारी तारा में अभी समझ नहीं आई। वह हठ करने लगती है और मां को इससे रंज होता है। वह उनका हठ पूरा नहीं कर सकती इस लिये। दो साल पूर्व नीला गरम कोट चाहिये, कह कर मैं हठ करने लगा था। उस दिन मां ने कितना समझाया मुझे ! साड़ियां अच्छी नहीं रहीं, इसलिये वह कहीं बाहर नहीं जाती। सुबह से शाम तक दूसरों के कपड़े सीती रहती है। अब मैं कभी भी हठ नहीं करता। मां के पास अब एक ही, वह भी मैली सी धोती है। आप जानते हैं वह क्या कहती है ? वह कहती है मेरा श्री बड़ा होगा, खूब पैसे कमा कर लावेगा और तारा को अच्छे अच्छे जम्पर, मुझे नई नई साड़ियां और जाने क्या क्या ले देगा ! आज मैं उसे चकरा कर ही छोड़ूंगा तारा तो हर्ष से नाच उठेगी। मां फूली न समायेगी।—है न ?"

"अपनी मां से तुमने नौकरी का हाल बताया था ?"

"जी हाँ—कब का ! किंतु इस विषय में कुछ भी नहीं कहा है।" इस प्रकार बातें करते हुए हम श्री के यहां आ पहुंचे।

मुझे देखते ही उसकी मां संकोच वश खड़ी हो गई।

'मां—यही हैं वे ! इन्हीं के यहां मैं दो घंटे काम करता हूं। बहुत अच्छे हैं ये। बिलकुल हमारे हेडमास्टर सदृश।"

कहते हुए उसने वह बंडल अपनी मां के पास रख दिया। "इसमें तारा के लिये एक चीज़ लाया हूँ; और मां तेरे लिये भी। देख तो सही ! तीन महीने में जो छः रुपये मिले, उसमें यह साड़ी, यह जम्पर का कपड़ा और मैय्या दूज का यह बचा रुपया—इतना लाया हूँ। तुझे पता तक नहीं लगने दिया—और इन्हें भी।"

आनन्दातिरेक, वात्सल्य और श्री सदृश छोटे बालक के अकृत्रिम प्रेम से माँ का हृदय भर आया।

भावना-विवश हो वह थर-थर कांपते हुए नीचे बैठ गई। इसके पूर्व ही तारा ने वह बंडल खोल डाला था।

[मूल मराठी से, अनुवादक—श्री दिम्बरराव पराड़कर]

मज़हब और साइन्स

पं० सुन्दर लाल

एशिया वालों के विचार धर्म–मज़हब की तरफ़ ज़्यादा जाते हैं और आजकल के यूरोप वालों के साइंस–विज्ञान–की तरफ़। दुनिया के सब बड़े बड़े मज़हब, जिनके नामलेवा मौजूद हैं और लगभग वे सब भी, जिनके नामलेवा नहीं रहे, ऐशिया ही में पैदा हुये। एशिया वालों की सारी ज़िन्दगी पर मज़हब छाया रहता है। हिन्दू, मुसलमान, यहूदी, पारसी, बौद्ध, कन्फ़्यूशियस और रोमन कैथोलिक ईसाइयों के भी रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार सब पर धर्म की छाप रहती है। हर मज़हब वाला यही चाहता है कि मेरा मज़हब ज़िंदगी के हर काम में मुझे रास्ता दिखावे—मैं क्या खाऊं-पियूँ, क्या पहरूं, कैसे रहूं-सहूँ, क्योंकि एक न एक दिन इन सब कामों के लिये मुझसे पूछताछ की जावेगी। हर मज़हब अपने देश और काल के मुताबिक़ इस फ़र्ज़ को पूरा करने की कोशिश भी करता है। धीरे धीरे हर मज़हब में कुछ लोग पैदा हो जाते हैं, जो इन्हीं बातों में बाल की खाल निकालने लगते हैं, छोटी छोटी बातों पर बेजा ज़ोर देने लगते हैं। उनका मज़हब ठस, कट्टर और बेजान होने लगता है। उसका लचीलापन जाता रहता है। वह ज़रूरत के मुताबिक़ अपने रीत-रिवाजों को भी नहीं बदल सकता। वह निकम्मी, गैरज़रूरी चीज़ों से चिपट जाता है; ज़रूरी और काम की चीज़ों को भूल जाता है। यहां तक कि जो रास्ता नेकी और भलाई का रास्ता था, वही बुराई और बरबादी का रास्ता बन जाता है; क्योंकि बहुत करके इन्हीं ग़ैर-ज़रूरी चीज़ों में मज़हब मज़हब में फ़र्क़ और लड़ाई झगड़े होते हैं।

एक और बात है। सब मज़हब मानते हैं और ठीक मानते हैं कि आदमी का नाता किसी ऐसी बड़ी शक्ति के साथ जुड़ा हुआ है, जो हमारे हाथ, आंख, कान की पहुँच से बाहर है। हमारी दुनियावी ज़िन्दगी बड़े दरजे तक उस शक्ति के आधीन है। वह शक्ति इस ज़िन्दगी के बाद भी अपना काम करती रहती है, चाहे उसे हम ईश्वर या खुदा कहें, या आत्मा या चैतन्य। इसीलिये मज़हब के मानने वालों की निगाह दूसरी दुनिया की तरफ़ जाती रहती है। पर कभी कभी यह चीज़ इतनी बढ़ जाती है कि बीमारी बन जाती है और दूसरी दुनिया की बेजा फ़िक्र में हम अपनी यह दुनिया भी बिगाड़ लेते हैं। होता यह है कि हम अपनी कमसमझी, काहिली या कमज़ोरी की वजह से दूसरी दुनियाकी आड़ लेकर इस दुनिया के फ़र्ज़ों को छोड़ देते हैं।

यह तो रही एशिया वालों की हालत। अब ज़रा यूरोप वालों को लीजिये। थोड़े दिनों पहले तक यूरोप के सोचने वाले अगुआ उन चीज़ों की तरफ़ से बेपरवाह होते जाते थे, जो हमारे हाथ, कान, आंख, नाक की पहुँच से बाहर हैं। वे समझते थे कि उन्हें ऐसी किसी चीज़ से कोई वास्ता ही नहीं। तरह तरह की साइन्सों के अन्दर भी बहुत सी ऐसी चीज़ें हैं, जो सिर्फ़ ख़याली हैं और जिनके बिना इन साइन्सों का काम नहीं चल सकता। ये साइन्सें हमें बार बार बताती रहती हैं कि हाथ, कान, आंख, नाक की पहुंच के अन्दर की चीज़ों और इनकी पहुंच से बाहर की चीज़ों दोनों में गहरा और अटूट नाता है। फिर भी पिछली सदी के आख़िर तक यूरोप वालों का ध्यान इस बात की तरफ़ बहुत कम गया। वे दूसरी दुनिया से बेपरवाह होकर इसी दुनिया को सब कुछ और आख़िरी चीज़ समझ बैठे। पर उनका दिल और दिमाग़ इस दुनिया में इतना फँसा कि वे इससे भी ज़्यादा बुरे रोग के शिकार हो गये। उसी रोग का नतीजा है कि दो भयंकर महायुद्ध हो चुके और उनसे ज़्यादा भयंकर तीसरे युद्ध का डर लगा हुआ है।

हमें अब देखना है कि तरह तरह के मज़हबी विचारों में कोई एकता है या नहीं, ऐसे ही यह कि साइन्स साइन्स में कोई एकता है या नहीं, और फिर यह कि मज़हब और साइन्स में कोई मेल है या नहीं। इसके लिये हमें मज़हब मज़हब का मुक़ाबला करना होगा, साइन्स साइन्स का मुक़ाबला करना होगा और साइन्स मज़हब का मुक़ाबला करना होगा।

कुछ लोगों को साइन्स की बुनियादी एकता तो दिखाई देती है, पर अलग अलग मज़हबों में फ़र्क़ और झगड़े ही नज़र आते हैं। कुछ और लोग हैं जिन्हें नई नई साइन्सों के रोज़ के नये नये वसूलों, डाक्टरी की नई नई दवाओं और नई नई खोजों के नये नये

नतीजों में ऐसा दिखाई देता है कि साइन्सों में कोई बुनियादी एकता है ही नहीं। सची बात यह है कि जैसे मज़हबों में तंगनज़री और कट्टरता होती है, वैसे ही साइन्स में भी होती है। जैसे मज़हबों में अन्धी मनमतायें होती हैं, वैसेही साइन्सों में भी होती हैं। सल्तनतों और कूटनीति की बांदी बनकर, साइन्स ने मज़हब से कहीं ज़्यादा मारकाट की है। पर ये सब झगड़े न सची साइन्स के हैं और न सच्चे धर्म के। ये झगड़े हैं, हमारे अन्दर के शैतान, हमारी खुदी, हमारे स्वार्थ और हमारे अहंकार के। हम अपने छोटे, झूठे और चन्द रोज़ा फायदे के लिये साइन्स और मज़हब दोनों से ग़लत काम लेते और दोनों को बदनाम करते हैं।

हर आदमी के अन्दर जो कुछ होता है, वही वह बाहर देखना चाहता है, और जो वह चाहता है, वही वह देख लेता है। जो एकता देखना चाहते हैं उन्हें एकता दिखाई देती है, ; और जो झगड़े देखना चाहते है, उन्हें झगड़े दिखाई देते हैं। जो सच्चाई से ठीक ठीक समझना चाहते हैं, वे दोनों को समझ लेते हैं। सचाई बहुत करके दो निगाहों के बीच में होती है। सच यह है कि दुनिया की सब चीज़ों में बुनियादी बातों में एकता है और ऊपरी बातों में फ़र्क़। जड़ एक और डाल-पत्ते अलग अलग। यही बात साइन्स की है और यही मज़हब की। सच्चाई एक और उसके कहने, सुनने और उसके समझने के ढंग अलग अलग। ईश्वर अल्लाह एक और उनकी पूजा बन्दगी के तरीके अलग अलग। आदमी बराबर और उनकी तबियतें अलग अलग। कोई दो चेहरे एक-से नहीं होते। कोई दो दिमाग एक तरह नहीं चलते। दुनिया नाम ही रंगारंगी और बहुरूप का है। फिर भी एक दरजे तक सब आदमी एक-से दिखाई देते हैं और एक तरह सोचते हैं। सबमें एक-सी कमज़ोरियाँ, एक-सी उमंगें और एक-सी भलाइयाँ हैं। यह न होता, तो हम एक दूसरे को न समझ पाते और न मिल कर रह सकते। यह एकता ही सारी इन्सानी सभ्यता और तहज़ीब की जड़ है। इस तहज़ीब को ज़िन्दा रखने और बढ़ाने के लिये सब मज़हबों की बुनियादी एकता, और मज़हब और साइन्स की एकता को देखना, समझना और सामने लाना ज़रूरी है। इस एकता को दरशाना और चमकाना दुनिया का भला चाहने वाले विद्वानों का काम है। इसी से रीति-रिवाज और तबियतों के फ़र्क़ भी इसी एकता के रंग में रंगे दिखाई देंगे और हमें दुख पहुंचाने की जगह दुनिया में सुख और सुन्दरता को बढ़ावेंगे। यूरोप के अन्दर से आपसी लड़ाइयों और एशिया से ख़ासकर हिन्दुस्तान से, मज़हब के नाम पर होने वाले लड़ाई दंगों के मिटाने का यही तरीका है। इसी से दोनों जगह जनता की गुलामी, बरबादी और लूट मिट सकती है, और प्रेम, शान्ति और सची खुशहाली का राज्य हो सकता है।

दुनिया से मज़हब को मिटाने की कोशिश ऐसी ही है, जैसे रोग को दूर करने के लिये शरीर को काट डालने की कोशिश। जब तक दुनिया में दुःख और मौत हैं, तब तक लोगों को मज़हब की ज़रूरत है, और उससे उन्हें तसल्ली भी मिलेगी। ऐसे ही जब तक लोगों को यह बताया जाता रहेगा कि बुनियादी बातों में भी सब मज़हब एक दूसरे के खिलाफ़ हैं, तब तक लोग अपने अलग अलग मज़हबों के नाम पर लड़ते रहेंगे। दूसरी तरफ़ अगर उन्हें बताया जावेगा कि बुनियादी बातों में सब मज़हब एक हैं, तब लोगों के दिल एक दूसरे के नज़दीक आवेंगे और वे सब को अपना भाई समझकर एक दूसरे से प्रेम करना सीखेंगे।

इसी तरह जब लोगों को मज़हब और साइन्स की एकता दरशाई जावेगी, और उस एकता का दौर आवेगा, तब वह नया ज़माना शुरू होगा जिसे वैज्ञानिक धर्म, साइन्टिफ़िक मज़हब, या मज़हबी साइन्स का ज़माना कह सकेंगे। उसमें मज़हब निकम्मे रीत-रिवाजों और ग़लत मानताओं से आज़ाद होगा, और साइन्स इस दुनिया को दूसरी दुनिया के साथ जोड़ते हुये हमें अपनी आत्मा को समझने और ईश्वर अल्लाह तक पहुँचाने में मदद देगी। तब ही हरएक को सबके भले में अपना भला दिखाई देगा और सब सबके भले में लगेंगे।

सब बड़े बड़े साइन्स वाले अब यह समझने और कहने लगे हैं कि साइन्सें अलग अलग नहीं हैं, बल्कि सब साइन्सें एक ही साइन्स हैं। साइंस और मज़हब भी एक ही सचाई के दो रुख हैं। एक ही हकीकत है, जिसकी रोशनी में हम अपने को समझ सकते हैं और

इस दुनिया और दूसरी दुनिया दोनों का रास्ता हँसीखुशी तय कर सकते हैं।

दुनिया में जब जब कोई नया मज़हब आया है, तब तब इसलिये आया है कि उससे पहले के मज़हब निकम्मे रीत-रिवाजों और झूठी मानताओं से इतने ढक गये थे कि उनकी असली शुरू की शकल पहचानी तक नहीं जा सकती थी। किसी महान आत्मा ने अपने तप, अपने अन्दर की रूहानी आग से उसी पुराने सनातन मज़हब के ऊपर के मैल को जलाकर उसे फिर से चमकाया, उसमें नई जान डाली, और उसे नये सिरे से दुनिया के सामने रखा। ढाँचा बदल गया, चीज़ वही थी। शब्द बदले, पर माने वही थे। अब इस ज़माने में जिस दीन-धर्म की ज़रूरत है, वह भी कोई नया दीन न होगा। वह वही पुराना सबका साइन्टिफिक, इन्सानी धर्म होगा जिसके लिये ज़रूरत है सब मज़हबों और सब साइन्सों के सोचने वालों के मिलकर उन बुनियादी सचाइयों को चमकाने की, जो सब मज़हबों और सब साइन्सों की जड़ और जान हैं। यह काम शुरू हो चुका है। उसे बढ़ाना और फैलाना है।

आख़िर में इस बात को दिखाने के लिये कि साइन्स और मज़हब अब एक दूसरे के कितने नज़दीक आते जा रहे हैं, हम दुनिया के कुछ बड़े साइन्स वालों के बयान नीचे देते हैं।

सर ओलीवर लाज ने सन् १९३० में कहा था—

"हम एक ऐसी रूहानी दुनिया में रह रहे हैं, जो इस मिट्टी-पानी की दुनिया पर क़ाबू पाये हुये है। वह रूहानी दुनिया ही सच्ची दुनिया है। उसकी ज़बरदस्त ताक़तों को हमने अभी कुछ समझना शुरू किया है।"

ग्रेट ब्रिटेन की रायल सोसायटी के सेक्रेटरी सर जेम्स जीन्स ने लिखा है—

"पहले हम जड़ माद्दे को असली चीज़ और मन या आत्मा को उससे पैदा हो जाने वाली चीज़ समझते थे। अब मालूम होता है बात उल्टी है। अब हमें ऐसा लगने लगा है कि मन या आत्मा ही जड़ जगत को पैदा करता और चलाता है। मेरा मतलब हमारी अलग अलग आत्माओं से नहीं है, बल्कि उस बड़ी, सब जगह मौजूद, आत्मा से है, जिसके विचार-ज़र्रों से हमारी अलग अलग आत्मायें बनी हैं।"

हरबर्ट स्पेन्सर ने सन् १९०० में कहा था—

"जिस चीज़ को मैं 'हमारे जानने की पहुँच से परे' (अननोएबल) कहता हूँ, वह किसी तरह मज़हब को नहीं काटती, बल्कि उसे ताक़त पहुँचाती है।"

सब बड़े बड़े मज़हब वाले कह गये हैं कि यह 'हमारे जानने की पहुंच से परे' चीज़ ही आत्मा है।

'दी ग्रेट डिज़ाइन' (१९३४) नाम की किताब में चौदह बड़े बड़े साइन्स वालों ने अपनी सब की यह मिली हुई राय ज़ाहिर की है कि :

"यह दुनिया बेजान मशीन नहीं है। यह इत्तफ़ाक़ से यूँ ही पैदा नहीं हो गयी है। मिट्टी-पानी के इस परदे के पीछे एक दिमाग़, एक जान, एक चेतन शक्ति काम कर रही है, चाहे उसे हम कुछ भी नाम क्यों न दें।"

इस सदी का सबसे बड़ा साइन्स का पंडित एलबर्ट आइन्स्टाइन लिखता है—

"मैं ख़ुदा को मानता हूं। इस दुनिया की तरतीब में और सृष्टि के मेल और सुरीलेपन में ख़ुदा साफ़ ज़ाहिर हो रहा है। मैं मानता हूँ कि सारी कुदरत में चैतनता काम कर रही है।"

सर आर्थर एस० एडिंगटन ने लिखा है—

"यह पुराना ख़याल कि ख़ुदा नहीं है, अब जाता रहा। मज़हब का नाता रूह और अन्दर की दुनिया से है। इसलिये मज़हब को डिगाया नहीं जा सकता।"

बड़े बड़े साइन्स वाले अब मानने हैं कि दरख़्तों, पौधों और छोटे से छोटे कीड़ों से लेकर इन्सान तक सब में रूह ही का ज़हूर है। लन्दन, बोन, लेडिन, लीपज़िग और दूसरी बहुत सी यूरोप और अमेरिका की युनिवर्सिटियों में रूहानी चीज़ों की खोज के लिये ख़ास महकमे खुलते जा रहे हैं जहां पुराने मिस्री की मज़हबी किताबों से लेकर हिन्दुस्तान के योग या सूफ़ियों के मसलक तक की तालीम दी जाती है।

- जब साइन्स और मज़हब के बीच की दीवालें टूटेंगी तो मज़हब मज़हब के बीच की दीवालें भी टूटे बिना नहीं रह सकतीं। तभी मुल्क मुल्क और क़ौम क़ौम के बीच की दीवालें भी टूटेंगी। तभी सब क़ौमों सब मुल्कों और सब इन्सानों के दिल मिलेंगे। [हरिजन सेवक]

अहिंसा के आचार्य श्री मश्रुवाला

—श्री रामनारायण उपाध्याय

जीवन-दर्शन सिद्धान्त-दर्शन के बिना अधूरा है। और किसी भी सिद्धांत को समझने का सबसे आसान तरीका उसका जीवन में दर्शन करना है। कोई धर्म और राजनीति के समन्वय पर लाख समझाये, और पांडित्य पूर्ण तर्क पेश करे लेकिन वह वास्तव में तब तक समझ में नहीं आपाता जब तक कि गांधी जैसा युग पुरुष उसे अपने जीवन में उतार कर हमारे समक्ष न रख दे। काय वाणी से अधिक बोलता है। और यह हमारा महान सौभाग्य है कि हम एक ऐसे युग में जन्मे हैं जब हम सृष्टि के शाश्वत सिद्धांतों को अपने जीवन में उतारने वाले महान साधनाशील आचार्यों के इस धरित्रि पर अपने समक्ष दर्शन कर सकते हैं। यों तो अनेकों धर्म ग्रंथों में हमने अहिंसा का संदेश सुना है लेकिन तब वह हमारे महज पूजा उपासना का सिद्धांत था, जीवन में उतारने की वस्तु नहीं। लेकिन जब गांधी ने उसे अपना जीवन मंत्र बनाकर कार्य शुरू किया तो वह लक्ष-लक्ष जनता के मन प्राण में उतरने की वस्तु बन चुका है और एक गांधी जी ही नहीं आज तो स्वतंत्र सत्य उपासक, विश्व के महान चिंतक सन्त "विनोबा" और अहिंसा को अपने जीवन में उतारने वाले, महान साधनाशील आचार्य किशोर लाल जी मश्रुवाला जैसी महान विभूतियों के आप भारत में दर्शन कर सकते हैं।

एक शब्द में कहें तो श्री मश्रुवाला जी—"अहिंसा" के आचार्य हैं। अहिंसा के सिद्धांत को सम्पूर्ण हृदयंगम कर उसे कसौटी पर कसते हुये अपने जीवन द्वारा, व्यक्ति से लगाकर समाज, धर्म और राजनीति जैसे विचित्र क्षेत्रों में आपने उसके सफल प्रयोग किये हैं। आप अहिंसा के आचार्य ही नहीं वरन, सत्य के शोधक, प्रेम के प्रवर्तक, गांधीवाद के प्रखर गम्भीर पण्डित हैं। और यही वजह है कि आप जीवन में अत्यन्त ही सादगी पसंद सरल स्वभाव के, रचनात्मक प्रवृत्तियों में संलग्न निराभिमानी लोक प्रिय व्यक्ति हैं। एक बार आपसे मिलकर कोई भी व्यक्ति आपके सरल शांत महान व्यक्तित्व से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता।

एक बार स्वयं गांधी जी ने आपके बारे में लिखा था—"किशोरलाल मश्रुवाला हमारे विरले कार्य कर्ताओं में से एक हैं। काम करते हुये वह कभी थकते नहीं। वह अत्यंत जागरूक रहते हैं।

"उनकी जाग्रत दृष्टि से ब्यौरे की कोई भी बात नहीं छूट पाती। वह एक तत्व वेत्ता हैं और गुजराती के एक लोकप्रिय लेखक। गुजराती के वह जैसे विद्वान हैं वैसे ही मराठी के भी हैं। वह जातीय, सांप्रदायिक या प्रांतीय अहंकार या दुराग्रह से बिलकुल मुक्त हैं। वह एक स्वतन्त्र चिन्तक हैं। वह राजनीतिज्ञ नहीं एक पैरायशी समाज सुधारक हैं। समस्त धर्मों के विद्यार्थी हैं। उनमें धार्मिक कट्टरता का कोई चिन्ह नहीं। वह जिम्मेदारी ओढ़ने और विज्ञापन बाजी से भागते हैं। इतने पर भी कोई ऐसा आदमी न मिलेगा जो जिम्मेदारी ले लेने पर उसे उनकी अपेक्षा अधिक पूर्णता के साथ पूरा कर सके।"

सत्य की खोज, सत्य का इसी संसार में साक्षात्कार करने का प्रयत्न और उसी हेतु से सत्यमय साधन द्वारा असत्य के प्रतिकार का जो मन्त्र बापू ने बनाया है उसे हर एक देश में, हर एक मानव समुदाय में और जीवन के हर एक क्षेत्र में आजमाये जाने के उद्देश को लेकर जिस "गांधी सेवा सङ्घ" की स्थापना की गई श्री मश्रुवाला जी एक लम्बे अरसे तक उसके अध्यक्ष रहे हैं। सङ्घ के अध्यक्षीय पद से दिये गए आपके भाषण, और समय समय पर व्यक्त किए गए विचार, आज की सत्य और अहिंसा की शोध की दिशा में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

अहिंसा के प्रति अपनी श्रद्धा आस्था के सम्बन्ध में एक जगह स्वयं आपने लिखा है—

"मैं एक बहुत छोटा लेकिन स्वतंत्र सत्य का पुजारी रहा हूं। मुझे उसमें बापू से और औरों से भी मार्ग दर्शन मिला है। बापू जी ने कहा है कि वे जन्मतः सत्योपासक हैं—अहिंसक नहीं। (अहिंसा उन्हें बाद में मिली)। मेरा इससे भिन्न रहा है। मैं स्वभावतः अहिंसा का उपासक हूं। सत्योपासक बाद में हुआ। बापूजी को सत्य की शोध में अहिंसा प्राप्त हुई और मुझे अहिंसा द्वारा सत्य की झांकी मिली। इसलिये मेरी यद्यपि, यह दृढ़ श्रद्धा हो जाती है कि अमुक वस्तु सत्य है। तब भी उस पर अमल करने में जहां तक हो सके

सब का अविरोध सर्वदा चाहता हूँ।" आगे चलकर वे लिखते हैं—जगत के लिये भले ही अहिंसा के मानी हिंसा का अभाव, उतना ही होता हो, हमारे लिये अहिंसा से मतलब, केवल अहिंसा का अभाव नहीं बल्कि प्रेम का सद्भाव (अस्तित्व) या प्रभाव (जोरदार अस्तित्व) है।

अपने जीवन में अहिंसक होने की बात को स्पष्ट करते हुये एक जगह आपने बताया है कि—

"यह तो मैं बिना संकोच के स्वीकार करूंगा कि युद्धविरोध अथवा शांति प्रियता कई पीढ़ियों से मेरा खून के द्वारा उतरा हुआ स्वभाव है। उसके अनुशीलन के लिये स्वयं मुझे अशोक के जैसे अनुभवों में से जाने की या बुद्धि के बहुत कसने की जरूरत नहीं हुई। मेरे जिन पूर्वजों ने सैकड़ों वर्ष पूर्व हिंसक विचारों को छोड़ कर बौद्ध या जैन या वैष्णव संप्रदाय को स्वीकार किया होगा, वे बेशक इरादतन हिंसा से अहिंसा की ओर गये होंगे। अनेक पीढ़ियों तक अपने इस परिवर्तन को हृदय में दृढ़ करते करते, मेरे इन पूर्वजों ने अहिंसा-वृत्ति की जड़ अपने स्वभाव में इतनी मज़बूत जमा दी कि बाद में वह मेरे लिये एक हद तक अपने प्रयत्न से प्रयत्न करने की सम्पत्ति नहीं रही बल्कि पूर्वपार्जित संपत्ति के रूप में मुझे विरासत में मिली। परंतु संपत्ति पूर्वजोपार्जित होने से ही वह कोई कुसपति या विपत्ति तो नहीं हो जाती और न उसमें शरमाने जैसी ही कोई बात होती है। हमारे लिये अपनी कोशिश से उस संपत्ति को बढ़ाना शक्य है।"

आप सत्य अहिंसा के चिन्तक और शोधक ही नहीं वरन गाँधी जी द्वारा प्रस्तुत सर्वोपकारी रचनात्मक कार्यक्रम के ज़रिये उसे अपने जीवन में उतारने वाले मौन साधक भी हैं। विधायक कार्यक्रम पर आपने बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रभाव डाला है। वे लिखते हैं—

"हमारे देश के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में दो बातें स्पष्ट रूप से प्रकट होती हैं। गत पचास वर्ष में एक तरफ से हमारी राजनैतिक महत्वाकांक्षा ऊँची उठती गई है और दूसरी तरफ से सामाजिक सुधार या राष्ट्रीय पुनर्विधान की प्रवृत्ति गहरी होती गई है। असल बात यह है कि भारतवर्ष में हमें अपने पुराने किले की जगह नया किला बनाना है। किन्तु हम रहते भी उसी किले में हैं। अतः पुराने को बिल्कुल तोड़ फोड़ कर, फिर नया बनाने में भी हम असमर्थ हैं। इसलिये पहली प्रेरणा हमको, कुछ इधर-उधर थोड़ी सी मरम्मत करके, काम चला लेने की होती है। हम मान लेते हैं कि इतने से काम चल जायगा। और शत्रु के साथ हम मुकाबला कर सकेंगे। लेकिन अनुभव होने पर मालूम होता है कि अभी और सुधार करना होगा। कुछ भाग तो बिलकुल ही तोड़ डालने होंगे। तब एक दूसरा विधायक कार्यक्रम बनाया जाता है। वह पूरा हुआ न हुआ कि, इतने में और भी गहरे बिगाड़ पर ध्यान पहुँचता है। और एक तीसरा कार्यक्रम बनाया जाता है। इस प्रकार का हमारा प्रगति मार्ग है। मैं समझता हूँ कि इस तरह आखीर में हमको मानव जीवन के प्रधान मूल तक पहुँचना होगा। मैं मानता हूँ कि मानव जीवन का प्रधान मूल उसकी अध्यात्मिक, या धर्म दृष्टि है। जिस तरह हमारा यह निश्चय हुआ है कि अस्पृश्यता निवारण, कौमी एक्य, स्त्री जाति का उत्कर्ष, खादी, ग्रामोद्योग आदि में स्वराज्य है उसी तरह एक दिन हमें यह निश्चय करना होगा कि, अस्पृश्यता, कौमी विरोध, स्त्रियों की अवनति, औद्योगिक विनाश आदि के मूल में हमारी भूतभरी धर्म दृष्टि है और इससे उस जड़ के अर्थात् धर्म के ही संशोधन से स्वराज्य (वास्तविक अर्थों में) प्राप्त होगा। हमें आवश्यक तपश्चर्या करके आध्यात्मिकता की, धर्म की, एक नई दृष्टि प्राप्त करनी होगी। और उस नई दृष्टि से हमारे वर्तमान, हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि सभी धर्मों को शुद्ध करना होगा। अथवा उनके स्थान में नव धर्म निर्माण करना होगा।

आज के इस मौजूदा धर्मान्धता के काल में ये शब्द कितने सही उतरते हैं। क्या हम ऐसा करेंगे!

इसी तरह सत्याग्रह की परिभाषा, और विधायक कार्यक्रम के उद्देश के बारे में एक जगह उन्होंने लिखा है—

"असत्य, अन्याय और अधर्म अथवा एक ही शब्द में कहें तो, हिंसा का दर्शन करके उसका सत्य न्याय और धर्म—अहिंसा से निवारन करने के उद्देश से, सत्याग्रह तत्त्व का जन्म हुआ। स्वराज्य आन्दोलन,

नमक कानून का भंग, अस्पृश्यता निवारण, खादी, ग्रामोद्योग, आदि सब प्रवृत्तियाँ इसी के परिणाम स्वरूप हैं। साम्यवाद और सत्याग्रह सिद्धांत में और चाहे जितने भेद हों एक बात पर सत्याग्रही की स्थिर बुद्धि है। वह यह कि जहाँ, दरिद्र और दलित का शोषण हो, वहां सत्याग्रही का स्थान शोषित पक्ष में होता है। शोषित समाज को उठाना, उसे प्राणवान बनाना, और तेजस्वी बनाना यही हमारे सब विधायक कार्यक्रमों का, एक सर्व साधारण उद्देश है।

अंत में अहिंसा के ही मार्ग से जो लोग, जनता की सेवा और देश की भलाई साधना चाहते हैं उनके उद्देश सिद्धांत और बर्ताव कैसे हों, इसकी रूप रेखा "अहिंसा विवेचन" नामक एक अपनी पुस्तक में आपने प्रस्तुत की है। आइये हम उन्हें भी देखें, उन्हें सबके और अपने जीवन में उतारने के रूप में उनके प्रति सच्चे और ईमानदार साबित हों। उसके कुछ सूत्र वाक्य ये हैं—

जीवन का सच्चा आधार या बुनियाद "अहिंसा" ही है न कि हिंसा।

'मैं' और 'मेरे' के तंग दायरे में बँधे रहने से ही हिंसा पैदा होती है। यह दायरा लगातार बढ़ाते जाना ही "अहिंसा की साधना" है।

सारा मनुष्य समाज एक ही परिवार (खानदान) है। स्त्री-पुरुष भी समान हैं। परन्तु उस परिवार में देश, राज्य, वंश, रङ्ग, वर्ण (धन्धा), जाति, धर्म, शिक्षा, पैसा, भाषा, लिपि वगैरा के भेदों के सबब से जुदा-जुदा टोलियाँ बनाई हैं। इन्हीं भेदों की वजह से व्यक्तियों, और कौमों में भी, विशेषतायें या खासियतें पैदा हो जाती हैं।

इन फर्कों या खासियतों को टालना, या नज़र अन्दाज़ करना मुमकिन नहीं, लेकिन उन पर घमण्ड या गुरूमान करना ठीक नहीं। ये फर्क और खासियतें जिस हद तक मानव परिवार की, भलाई और सुख बढ़ाने में मदद पहुँचाते हैं उसी हद तक उनको हिफ़ाज़त करना चाहिये और उन्हें बढ़ाना चाहिये। अपनी इस तरह की विशेषतायें, मानव परिवार की सेवा में लगा देना, और अगर वे मनुष्यों की किसी भी जमात को तकलीफ देने वाली हों तो खुशी से उन्हें छोड़ देना, अहिंसा की साधना है।

अहिंसा में जीवन का धारण, पोषण, और विकास करने की शक्ति भरी हुई है। और होनी ही चाहिये। इसलिये जिन अन्यायों या बुरे कामों के खिलाफ, हिंसक उपाय काम में लाने को जी चाहता है उनके अहिंसक उपाय भी होने ही चाहियें। जो सच्चे दिल से अहिंसा की साधना करेगा वही उन्हें खोज सकेगा।

सच्ची संस्कृति की बदौलत मानव परिवार के हर शख्स का जीवन सदा संयमी, मज़बूत, मेहनती और साफ-साफ, निरोग, निडर, स्वाभिमानी और मीठा होना चाहिये। यही सर्वोदय (सभी की भलाई) की संस्कृति है। ऐसी संस्कृति का कायम होना "अहिंसा" के द्वारा ही मुमकिन है।

शरदागम

—श्री उमाशंकर राम त्रिपाठी 'उमेश'

लो शरद के जागरण का क्षण मधुर आया !
रिमझिमों की मदभरी बरसात वह बीती,
अलसतम उस घन तिमिर की रात वह बीती,
खुल चलीं पलकें उनींदीं बह चले बादल;
व्योम की आँखें खुलीं जग जग उठा अविकल !
चेतना की साँस भर कर पवन लहराया !
लो शरद के जागरण का क्षण मधुर आया !

खोल घन घूँघट अबाधित आज की ऊषा,
भर तुहिन-कण-मणि लुटाती स्वर्ण मंजूषा,
भर उठा आँचल धरा का हो उठा दीपित,
दीप्त हो यौवन प्रकृति का खिल उठा कुसुमित,
ज्योति की नव रश्मियों ने गीत नव गाया !
लो शरद के जागरण का क्षण मधुर आया !

द्युति भरी रवि रश्मियाँ लो भूमि पर उतरीं,
आर्द्रता सूखी धरा की स्नात छवि निखरी,
सूख सिकता कण चमकते फिर रजत कण से,
ताप से तप के तपस्या के ज्वलित क्षण से,
तेज से ज्योतित जगत की जग उठी काया !
लो शरद के जागरण का क्षण मधुर आया !

दीप्त है हिमगिरि पहन कर कल किरण माला,
द्युति भरी नर्तित थिरकती निर्झरी बाला,
आज तट की युगल बाहों में लिपट तटिनी,
बह चली फिर मान की ज्यों बाढ़ तज अपनी,
जल विमल है, है न उर में कलुष की माया !
लो शरद के जागरण का क्षण मधुर आया !

रश्मियाँ रवि की हटातीं अंबु की चादर,
जग पड़ीं राहें विनिद्रित चल पड़ीं सत्वर,
नीड़ के खग ने सुविस्तृत नील नभ देखा,
उड़ चला छूने समुत्सुक क्षितिज की रेखा,
सुप्त प्राणों ने चपल उल्लास फिर पाया !
लो शरद के जागरण का क्षण मधुर आया !

पद्म मुकुलित सर सुवासित गूँजते मधुकर,
दिख रहे लघु मीन चंचल तिर रहे सुन्दर,
आज क्रीड़ातुर कुमारी थपथपाती जल,
दूर के उस घाट पर लोलुप युवक चंचल,
तीर के तरु की झलकती अंबुगत छाया !
लो शरद के जागरण का क्षण मधुर आया !

घाम से आकुल पसीने से पथिक लथपथ,
तरु तले आया विरम लेटा कि थककर श्लथ,
आज के मध्याह्न की यह छाँह मीठी है,
घास की शय्या जगाती चाह मीठी है,
'पी कहाँ' कह चातकी ने अमृत बरसाया !
लो शरद के जागरण का क्षण मधुर आया !

प्यार से पुलकित विजन में ग्वालिनें क्षण-क्षण,
छीलती हैं घास मंजुल मुखर अरहर बन,
भर गया उल्लास से उर्वर धरा का उर,
मृदुल गेहूँ के उगे लो खेत में अंकुर,
प्रकृति ने जग को नया परिधान पहनाया !
लो शरद के जागरण का क्षण मधुर आया !

जल उठे नभ तारकों के दीप फिर मंजुल,
रस भरी राका जुही की गन्ध से आकुल,
रात रानी की उसासों से विकल तन मन,
प्राण पागल चाहते हैं गाढ़ आलिङ्गन,
शर्वरी की गोद में शशि मंजु मुसकाया !
लो शरद के जागरण का क्षण मधुर आया !

रूसी साहित्य

—श्री रामकुमार एम० ए०

संसार के किसी कोने में भी जब रूसी साहित्य का नाम लिया जाता है तब उसका तात्पर्य रूस के उपन्यासों से ही होता है। यह बहुत कुछ हद तक तो ठीक है क्योंकि साहित्य में केवल उपन्यास ही एक ऐसी वस्तु है जो बड़ी सुगमता से दूसरे देशों तक पहुँच जाती है, दूसरे रूसी साहित्य का प्रधान और महत्वपूर्ण अंग १६वीं शताब्दी का उपन्यास ही रहा है। उपन्यासों के अतिरिक्त यद्यपि कविता इत्यादि भी लिखी गई है परन्तु यह न तो इतने ऊँचे दर्जे की है और दूसरे अन्य देशों के लोग कविता में इतनी उत्सुकता नहीं दिखाते जितनी कि उपन्यास में।

यद्यपि १६वीं शताब्दी में साहित्य का आरंभ रूस के दो महान कवियों पुशकिन और लेरमोन्टोव से ही आरम्भ होता है परन्तु इसका विकास और इसकी उन्नति उपन्यास में ही होती है। इन दोनों की कविता पर कवि बायरन का विशेष प्रभाव पड़ा था और इनकी कविता में बायरन की प्रतिच्छाया विशेष रूप से दिखलाई पड़ती है।

पुशकिन रूसी साहित्य के जन्मदाता माने जाते हैं। कवि, नाटककार होने के साथ साथ यह आख्यायिका लेखक भी थे। उनके पश्चात आने वाले रूसी लेखकों पर पुशकिन की कृतियों का बहुत प्रभाव पड़ा है। इनका लिखने का ढंग बहुत सरल और स्पष्ट था। ये जो कहना चाहते थे, उसको साफ शब्दों में प्रकट कर देते थे।

लेरमेन्टोव की कविता पर बायरन के अतिरिक्त शैली की भी छाप थी। ये अपनी कविता तथा उपन्यासों में अपने चरित्रों की आध्यात्मिक और नैतिक उन्नति की ओर अधिक ध्यान देते थे। इनके उपन्यास "हमारे समय का नायक" ने काफी ख्याति प्राप्त की। इस उपन्यास के चरित्रों में मानसिक संघर्ष को विशेष स्थान दिया गया है। इनका रूस के आने वाले सब साहित्यकारों पर बहुत प्रभाव पड़ा।

पुराने रोमांस को छोड़ कर जीवन की वास्तविकता का उपन्यासों में दिग्दर्शन कराने का ध्येय निकोलै गोगल को ही दिया जा सकता है। उन्होंने साहित्य के लिये एक नया पथ खोज निकाला। इनके उपन्यास में हास्य रस को भी विशेष महत्व दिया गया है परन्तु अन्य भाषाओं में अनुवाद करते समय यह रस समाप्त हो जाता है। इनके उपन्यास "मृत आत्माओं" का साहित्य में अच्छा स्थान है। बहुत से लोगों का मत है कि रूस के आने वाले साहित्यकारों ने गोगल का इतना अनुकरण नहीं किया जितना पुशकिन का। पुशकिन की धारा पर ही रूसी साहित्य ने अपना विकास किया है, परन्तु इसमें किसी को भी सन्देह नहीं है कि गोगल बहुत पहले से लोक-प्रिय बन चुके हैं और अब भी लोग उनके साहित्य को बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं।

रूस के वास्तविक साहित्य का जन्म उस काल की तीन महान विभूतियों तुर्गनेव, दोस्तोवस्की और टालस्टाय द्वारा हुआ। इन तीनों की साहित्यिक और आध्यात्मिक शक्ति ने रूसी साहित्य को विश्व साहित्य में बड़ा ऊंचा स्थान दे दिया। एक ही समय में इन तीन कलाकारों का पाया जाना बहुत आश्चर्यजनक है। इस दिशा की ओर पहला और महत्वपूर्ण कदम तुर्गनेव ने उठाया। उसने संसार के सम्मुख अपनी कृतियों द्वारा प्रगट कर दिया कि उपन्यास केवल मनोरंजन और रोमांस की सामग्री ही न बन कर किसी देश की राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक स्थिति का परिचय देकर वहां की सरकार को प्रभावित कर सकते हैं और साथ ही साथ दूसरे देशों को उन लोगों के जीवन का परिचय भी मिल जाता है। अपने प्रथम उपन्यास "एक खिलाड़ी के संस्मरण" में तुर्गनेव ने रूस के किसानों की दुर्दशा का वर्णन किया जिससे अधिकारियों को भी थोड़ी बहुत चेतावनी मिली। इस उपन्यास का टालस्टाय की कृतियों पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा था। "पिता और पुत्र" में आधुनिक विचारों वाले युवकों और पुरानी परिपाटियों पर चलने वाले बूढ़े लोगों में संघर्ष दिखलाया है। इस प्रकार तुर्गनेव ने सरकारी अधिकारियों को अप्रसन्न कर दिया जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें कुछ दिनों की क़ैद भुगतनी पड़ी।

तुर्गनेव एक सच्चे कलाकार थे और अपने विचारों को बिना किसी अतिशयोक्ति के प्रगट कर देते थे। वे पैरिस में रहा करते थे परन्तु अपने उपन्यासों के लिये

मसाला ढूंढने के लिये वे जल्दी जल्दी रूस के चक्कर लगाया करते थे। पैरिस के कलामय वातावरण ने उनको सच्चे शब्दों में एक कलाकार बना दिया। टालस्टाय और दोस्तोवस्की को भय लगा करता था कि कहीं तुर्गनेव पर पैरिस की छाया न पड़ जाये जिससे उनका रूसी अस्तित्व समाप्त हो जाये। परन्तु तुर्गनेव एक सच्चे रूसी रहे। वे अपने उपन्यासों को बड़ी सावधानी से लिखा करते थे और यह गुण उन्होंने पैरिस में सीखा था। उन्होंने रूसी चरित्रों का विशेष रूप से अध्ययन किया था और उनका मनोवैज्ञानिक दिग्दर्शन उन्होंने अपने उपन्यासों में कराया।

तुर्गनेव के पश्चात दोस्तोवस्की हमारे सम्मुख एक उच्चकोटि के कलाकार के रूप में आते हैं जिनके उपन्यासों ने रूसी साहित्य में ही क्या विश्व साहित्य में एक प्रकार की क्रान्ति सी मचा दी। रूसी साहित्य ने शायद आज तक इतने उच्चकोटि के मनोवैज्ञानिक साहित्यकार को जन्म नहीं दिया था। उन्होंने उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता की पुट देकर लोगों के सम्मुख एक नई चीज रक्खी और एक नवीन धारा को जन्म दिया। दोस्तोवस्की स्वयं राजनैतिक क्रान्तिकारी थे जिसके फलस्वरूप उनको चार वर्ष का कारावास भुगतना पड़ा। अपनी साइबेरिया की स्मृतियों का वर्णन इन्होंने 'एक मृत घर के संस्मरण' नामक पुस्तक में किया है। इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'अपराध और सजा' है। इस उपन्यास का कोई लम्बा चौड़ा कथानक नहीं परन्तु इसमें मनोवैज्ञानिकता का बड़ा सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है। एक निर्धन छात्र किसी धनी विधवा की हत्या करके क्या अनुभव करता है और अन्त में कितने अन्तर्द्वन्द्वों के पश्चात वह पुलिस के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और सजा भुगतने के लिये साइबेरिया चला जाता है।

दोस्तोवस्की के सब उपन्यासों में एक प्रकार की उदासी सी छाई रहती है, परन्तु इसका दोष लेखक को न देकर हमें अपने वर्तमान जीवन और आधुनिक सभ्यता को देना चाहिये, दोस्तोवस्की ने अपने उपन्यासों के कथानक प्रतिदिन के जीवन से ही तो लिए हैं। इनका उपन्यास 'कारामज़ोव भाई' एक प्रसिद्ध और सफल कृति है। उसमें लेखक की काल्पनिक शक्ति और विस्तृत अनुभवों की प्रतिछाया का वर्णन होता है। दोस्तोवस्की के उपन्यासों में नायक का अभाव खटकता है। नायिकाओं में बहुतसी मर्मस्पर्शी, दया और श्रद्धा की पात्र होती हैं। "हास्य रस" की कमी इन उपन्यासों को मनोरंजक न बनाकर बहुत गम्भीर बना देती है। इनके उपन्यासों में बहुत सी घटनाऐं बड़े विस्तार से दी गई हैं। उदाहरणार्थ 'कारामज़ोव भाई' में अन्त का मुकदमा बड़े विस्तार में दिया गया है, परन्तु पाठक इन विस्तारों में कभी रूखापन अनुभव नहीं करते। दोस्तोवस्की की राष्ट्रीयता ने इनके उपन्यासों को बहुत वर्षों तक कम से कम बाहर प्रचलित नहीं किया, परन्तु मानवता के सद्गुणों के दिग्दर्शन ने एक दिन सारे विश्व में दोस्तोवस्की की योग्यता की धाक जमा दी।

यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि अपने देश की इतनी भारी जिम्मेवारियों को अपने ऊपर लेकर रूसी साहित्यकार उच्च कोटि के कलाकार भी रह सके या नहीं परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि केवल इन दोनों में परस्पर समानता ग्रहण करके ही वे इतनी उन्नति कर सके। रूसी साहित्यकारों में टालस्टाय जैसी महान विभूति अन्य कोई भी नहीं थी। वे अपने सम्मुख उच्च उद्देश्यों को रख कर अपनी क्रियात्मक लेखनी और निजी अनुभवों द्वारा आगे बढ़ते जा रहे थे। वे पुरानी परिपाटियों पर चलने वाले एक रईस परिवार के पुत्र और सिपाही थे, परन्तु उनकी आत्मा विद्रोह कर उठी। क्रीमियन युद्ध के अनुभवों के पश्चात उन्होंने युद्ध सम्बन्धित कुछ कहानियां लिखीं जिससे वे तत्क्षण प्रसिद्ध हो गये। युद्ध का उन्होंने सदा विरोध किया। अपने उपन्यासों में भी उन्होंने यही प्रदर्शन किया है। प्रसिद्धि पाकर भी वे अपने गांव में रह कर आम जनता की भलाई के विषय में ही सोचा करते थे, और यही उनकी शक्ति थी जिन्होंने उनको इतना मार्मिक बना दिया था।

टालस्टाय का "युद्ध और शान्ति" केवल एक उपन्यास ही नहीं, यह उससे कहीं बढ़ चढ़ कर है। इसमें नैपोलियन के साथ रूस की लड़ाई का वर्णन है। टालस्टाय ने अपने चरित्रों को केवल उपन्यास के साधारण पात्र न बना कर उनमें प्राण डाल दिये हैं। वे मुरदे नहीं बल्कि इसी जगत के जीते जागते प्राणी हैं। वर्णन करने की अद्भुत शक्ति इनमें पूर्ण रूप से विराज-

मान थी। चाहे युद्ध का दृश्य हो या मास्को में किसी परिवार के अन्दर का दृश्य हो, टालस्टाय ने इतने विस्तार और इतनी स्वाभाविकता से इन सब का वर्णन किया है कि पाठकों के सम्मुख उन दृश्यों के चित्र सही रूप से उतर आते हैं। इतने बड़े उपन्यास में इतने पात्रों के साथ नाटक खेलना किसी साधारण लेखक के लिये पूर्णतया असम्भव। था केवल टालस्टाय ने ही अपने चमत्कार और अपनी योग्यता के द्वारा इतनी सफलता से इस कथानक को निभाया। वे अपने सामने वाली चीज़ों को बड़ी स्वाभाविकता से देखा करते थे परन्तु इनको लिखते समय वे अपनी कल्पना शक्ति का सहारा पकड़ते थे। "युद्ध और शान्ति" का इतना दोष अवश्य है कि इसमें बहुत कुछ ऐसी चीज़ें दी हैं जो बड़ी आसानी से नहीं दी जा सकती थीं और कुछ का वर्णन बहुत विस्तार से किया गया है जो पाठकों को अखर जाता है।

"अना करीना" का कथानक इतना लम्बा चौड़ा नहीं है। इस उपन्यास में अना का चरित्र चित्रण बहुत सुन्दर ढङ्ग से किया गया है। किस प्रकार वह अपने पति, प्रेमी और समाज को छोड़ बैठती है और शान्ति उसको आत्म हत्या में ही मिलती है। मानव जीवन के मानसिक संघर्षों की प्रतिछाया इसमें अच्छी पड़ती है।

टाल्स्टाय ने अपना बहुत सा समय धर्म, कला और सरकार की समस्याओं का अध्ययन करने में व्यतीत किया। 'कला क्या है' नामक पुस्तक में उन्होंने सर्वश्रेष्ठ कलाकारों की कृतियों की तुलना रद्दी कागज़ों से की है क्योंकि वे आम जनता के लिये न होकर केवल कुछ लोगों के मनोरञ्जन की ही सामग्री हैं। पुरानी परिपाटियों पर चलने वाले गिर्जों की भी उन्होंने कड़ी आलोचना की है। यदि टालस्टाय निर्धन होते या उनको इतनी शक्ति न होती तो रूसी सरकार अवश्य ही उनको जेल में ठूंस देती परन्तु उनके पीछे सारा यूरोप था। इनका उपन्यास 'पुनर्जन्म' भी बहुत प्रसिद्ध हुआ है। टालस्टाय ने रूसी साहित्य में प्राण डाल कर विश्व के सामने उसकी प्रतिभा का दिग्दर्शन कराया। वे प्रथम लेखक थे जिनकी कृतियों की धूम रूस से बाहर इतनी अधिक हुई। टालस्टाय के सहारे अन्य रूसी लेखक भी चमके। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि टालस्टाय विश्वविख्यात लेखकों में से एक हैं।

चेखव ने अपने साहित्य में इतनी गम्भीरता और जीवन की गहराई अधिक मात्रा में नहीं दिखलाई थी। हास्य रस की मात्रा उनमें थी जिसके सहारे उन्होंने रूसी साहित्य को एक नई चीज़ दी। वे डाक्टर थे और अपने फालतू समय में अपने चारों ओर फैले हुये वातावरण से प्रभावित होकर वे कहानियां और छोटे नाटक लिखते थे। उनकी कहानियों की तुलना मोपांसा से की जाती है। इनका 'चेरी आर्चर्ड' नामक नाटक बहुत प्रसिद्ध है। इसमें इन्होंने 'दुख भरी हँसी' का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। किसी रूसी लेखक ने इनसे पूर्व ऐसी कोई नवीनता नहीं दी थी। टालस्टाय के शब्दों में 'यद्यपि लेखक की कृतियों में जीवन की गहराई का वर्णन नहीं है परन्तु फिर भी मैं उनकी कहानियां और नाटक बहुत पसन्द करता हूं।' इनकी कहानियां अपनी सादगी और सरलता के लिये ही प्रसिद्ध हुई हैं।

यद्यपि तुर्गनेव और टालस्टाय धनी परिवारों में उत्पन्न हुये थे परन्तु वे सदा निर्धन किसानों और शोषित वर्गों का ही साथ देते रहे। मैक्सिम गोर्की एक किसान थे अतः अपना संघर्ष ही इन्होंने समस्त रूस का संघर्ष समझा। जिसकी टालस्टाय और तुर्गनेव ने केवल कल्पना की थी वह गोर्की पर बीती अतः उनके अनुभवों के सहारे उसने अपने साहित्य में वास्तविकता का परिचय दिया। वे स्वयं ही अपने उपन्यासों के नायक थे। गोर्की की प्रत्येक पुस्तक उनका एक संघर्ष है। उनमें टालस्टाय, दोस्तोवस्की और तुर्गनेव के समान एक कलाकार नहीं बसा हुआ था परन्तु उनके लिखने में इतनी शक्ति होती थी कि लोग बहुत शीघ्र प्रभावित हो जाते थे। उनका 'मां' एक अमर उपन्यास है। यह आश्चर्य की बात है कि गोर्की ने अन्य लेखकों की अपेक्षा यूरोप में अधिक ख्याति प्राप्त की।

गोर्की के पश्चात हमारे सम्मुख एन्ड्रेव आते हैं। गोर्की के समान ये ज़िंदगी से संघर्ष करने के लिये प्रस्तुत न रह कर जीवन को समझने का प्रयास कर रहे थे। इनकी कहानियाँ 'सात आदमियों की फांसी' और 'लाल हंसी' भी भयानक कहानियां हैं जो बरबस पाठकों पर अपना आतंक जमा लेती हैं। इनके नाटक 'मनुष्य की

जिंदगी' तथा अन्य नाटक काफी लोक प्रिय हो चुके हैं। इनकी सब कृतियों में जीवन के अँधेरे और निराशामय पहलू पर ही प्रकाश डाला गया है। यह कहा जाता है कि जब इनका नाटक 'मनुष्य की जिंदगी' लेनिनग्राड में खेला गया था तब वहां के छात्रों पर इसका ऐसा प्रभाव पड़ा कि बहुत से छात्रों ने ऊब कर आत्म-हत्या कर डाली।

इनके अतिरिक्त बहुत से ऐसे रूसी लेखक भी हैं जिन्होंने सभी रूसी साहित्य को अपनी देन देकर उसको उच्च शिखर तक पहुँचाने में बहुत सहायता की। कुपरिन के हास्य रस को देखते हुए उन्हें चेखव के साथ रक्खा जाता है। इनका उपन्यास 'यामा दी पिट' और कहानी 'द्वन्द' लोगों ने बहुत पसन्द की हैं। आर्गो बैशफ की 'शेनिक' और 'आइवन लैंड की मृत्यु' काफी रोचक कृतियां हैं।

रूस की क्रान्ति के पश्चात, उसके आर्थिक और राजनैतिक संगठन की रूप रेखा को देखते हुए अन्य देशों में से कुछ रूस को जंगली और पिछड़ा हुआ समझते हैं और कुछ इसको उन्नति के शिखर पर पहुंचा हुआ पाते हैं। परन्तु रूस के साहित्य, उसका संगीत, उसकी नृत्य कला और उसका स्टेज देख कर कोई भी कह सकता है कि ये सब बहुत उच्च कोटि की हैं और विश्व की कलाओं में इनका विशेष स्थान है।

आधुनिक लेखकों में शोलोखोव का नाम ही अभिमान के साथ लिया जा सकता है। इनकी (And quiot flows the Don) एक विश्व विख्यात पुस्तक है। कुछ इनके साहित्य को अश्लील गन्दा और उकसाने वाला समझते हैं, परन्तु कुछ इसी को स्वाभाविक, स्पष्ट और उच्च कोटि का समझते हैं। आपको 'स्टालिन पुरस्कार' भी मिल चुका है।

एक मध्य-कालीन मुसलिम सन्त की डायरी

—मिरज़ा गुलाम गौस

[१]

एक दिन कहने लगे कि जब मेरी उम्र दस वर्ष की थी मेरी मां ने नाराज़ होकर एक दिन मुझसे कहा जा यहां से काला मुंह कर। मैंने कहा बहुत अच्छा। चुपके से घर से चल दिया। बीस कोस चलकर एक मौलवी साहब के पास जो हमारे कुटुम्ब को जानते थे ठहर गया। उधर तमाम बस्ती में ढूंढ़ मच गई। पता न लगा। एक महीने के पश्चात् घर वालों को मेरी सूचना मिली। चाचा साहब लेने आये। मैंने घर जाने से इनकार किया और कहा यहीं पढ़ूंगा। मौलवी साहब ने भी कहा कि क्या हर्ज है यह भी घर है और वह भी घर है। यहीं पढ़ने दीजिये। चाचा साहब वापस चले गये। कुछ दिनों के बाद माता जी ने एक मीरासी भेजा और संदेश दिया कि यदि अपनी ख़ैर चाहता है तो चुपके से चला आ नहीं तो मैं ख़ुद आकर सारे रास्ते जूतियां मारते लाऊंगी। जब यह संदेश पहुंचा तो लाचार होकर उसके साथ हो लिया। घर पहुँचकर डर के मारे मां के सामने नहीं जाता था। अन्त में ज्यों त्यों कर जी कड़ा करके गया और झट माता जी के चरणों पर जा गिरा। अब वे क्रोध तो भूल गईं छाती से लगाकर रोने लगीं और बहुत प्यार किया। सारांश यह कि जब सांसारिक प्रेम का यह हाल है तो क्या उस सच्चे परमात्मा को इतना भी प्रेम न होगा? नहीं, बरन् माता पिता के प्रेम से करोड़ों गुना अधिक होगा। खिलाना, पिलाना, सुलाना, जगाना, उठाना, बिठाना, तरह-तरह का पोषण, हर प्रकार की देख रेख रज़ारज़ को नाज़ बरदारी यह प्रतिक्षण कौन करता है!

ऐ तुरा बाहर दिले राज़े दिगर,
हर गदारा बरदरत नाज़े दिगर।
दर रबाबे इश्क़ तारे बेशनेहत,
हस्त हर जा नग़मओ साज़े दिगर।

अर्थात्—ऐ ईश्वर! प्रत्येक प्राणी के हृदय के साथ तेरा एक अलग ही रहस्य है और तेरे द्वार पर प्रत्येक भिखारी का अलग ही नाज़ है। प्रेम की सारङ्गी में एक भी तार फालतू नहीं है। उसका हर जगह अलग ही राग है और अलग ही साज़ है।

जब हज़रत नूह ने काफ़िरों के विषय में यह प्रार्थना की कि ऐ परमात्मा ज़मीन पर एक भी काफ़िर न बचे तो परमात्मा ने कहा कि अच्छा एक किश्ती बना ले और जो बैठे उसे बिठा ले। नूह का बेटा किश्ती में न बैठा। तूफ़ान आया और सब के साथ डूब गया। नूह ने परमात्मा से इसकी शिकायत की। उत्तर मिला कि अय नूह! हमने तेरी ख़ातिर अपनी सारी सन्तति को डुबा दिया। वे हमारी उपासना से तो इनकार न करते थे। यदि मूर्ति पूजा करते भी थे तो हमारा क्या हर्ज था? हाँ तुम्हारा कहना न मानते थे। हमने तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार की और सबको डुबा दिया। तुम्हें ज़रा भी दया न आई। अपने एक पुत्र के वास्ते तुम्हारा ऐसा जी दुखा। क्या हमें अपने बन्दों के साथ जिन्हें हमने पाला परवरिश किया इतना भी प्रेम न था।

मूसा ने एक बार कारूँ को श्राप दिया। कारूँ ज़मीन में धंसने लगा। घबरा कर उसने तीन बार पुकारा कि ऐ मूसा मुझे बचा ले। किन्तु मूसा ने एक न सुनी। उस समय ईश्वर के दरबार से आकाशवाणी हुई कि ऐ मूसा! तुझसे कारूँ ने इतनी अनुनय विनय की, तुझे कुछ दया न आई! यदि हमें वह एक बार भी पुकारता तो हम उसे तुरन्त बचा देते। हमारे बन्दों की क़द्र तुम क्या जानो? न तुमने पैदा किया, न पाला, यह बात तो हमीं समझ सकते हैं। अस्तु जिस परमात्मा को अपने बन्दों का प्रेम पैग़म्बरों और माता पिता से करोड़ों गुना अधिक है वह उन्हें जानबूझ कर यंत्रणा कैसे दे सकता है?

हक़ जहांरा अज़ मोहब्बत आफ़रीद,
हर दो आलम अज़ मोहब्बत शुद पेदीद।

अर्थात्—ईश्वर ने प्रेम से संसार को उत्पन्न किया और प्रेम ही से दोनों लोक प्रकट हुये।

और दूसरी बात यह है कि प्रत्येक प्राणी अपने रूप और सामर्थ्य के अनुसार कार्य करता है। क़ुरान में एक आयत है—

'कहदे ऐ मोहम्मद ! हर एक काम करता है अपने रूप के अनुसार।' एक दूसरे स्थान पर ईश्वर ने कहा है कि मेरी रहमत (दया) मेरे ग़ज़ब (क्रोध) से बढ़ी हुई है। वह कहता है कि मेरा नाम 'अरहुमर-राहमीन' (अर्थात दयावानों का दयावान) है। फिर हम कैसे मानें कि परमात्मा मरने के बाद किसी को यन्त्रणा देगा। यह बात उसकी शान के विरुद्ध है। किन्तु इसलाम की शरअ में जिस अज़ाब व स्वाब अर्थात दोज़ख़-जन्नत का वर्णन है वह केवल एक दूसरे की अपेक्षा से और अवस्था भेद की दृष्टि से है। जिसे जिस अवस्था में रखेगा उसी के अनुसार उसका अस्तित्व बना देगा। एक की अवस्था दूसरे के लिए अज़ाब और स्वयं अपनी-अपनी अवस्था सवाब होगी। बतख़ दरिया के अन्दर भी डूबना नहीं चाहते और समन्दर* को आग में भी किसी तरह का कष्ट नहीं होता। दरिया वाले ख़ुश्की से डरते हैं और ख़ुश्की वाले दरिया से। हवा के प्राणी आग से और आग के हवा से डरते हैं। हज की यात्रा में हमने स्वयं देखा है कि एक दिन समुन्दर की मछली के मुँह में जहाज वालों ने मीठा पानी डाल दिया, वह तुरंत मर गई। ऐसे ही मीठे पानी की मछली समुन्दर के खारे पानी में नहीं जी सकती। एक का दोज़ख़ मीठा पानी है दूसरे का खारा पानी है।

कहा जाता है कि एक दिन जिब्राइल फ़रिश्ते ने देखा कि दोज़ख़ का मालिक बैठा हुआ रो रहा है। जिब्राइल ने पूछा कि तुम क्यों रोते हो? तुम्हें किस बात का डर है? दोज़ख़ में तो तुम ख़ुद रहते हो, इससे ज्यादा डर की चीज़ क्या है? उसने उत्तर दिया कि मुझे इस बात का डर है ख़ुदा मुझे दोज़ख़ से निकाल कर कहीं जन्नत में न भेज दे। नहीं तो दोज़ख़ तो मेरे लिए ऐश की जगह है।

कहते हैं कि किसी महात्मा ने अपने चेले को हुक्म दिया कि चिलम भर ला। उसने कहा कि आग नहीं है। गुरु ने उत्तर दिया कि जा दोज़ख़ से ले आ। वहां पहुंचा तो देखा कि एक बंजर मैदान है। आग का पता भी नहीं।

*एक कीड़े का नाम है जो आग में होता है।

दोज़ख़ के मालिक से पूछा। उसने उत्तर दिया कि मियां! यहां तो कुछ भी नहीं। जो यहां आता है अपना दोज़ख़ अपने साथ लाता है। अर्थात् उसकी अपनी अवस्था और अपने विचार ही दोज़ख़ की आग हैं। किंतु हर एक की अवस्था चूंकि कि उसके उपयुक्त होती है इसलिए उसके लिए सुखदाई होती है और दूसरे की अवस्था की अपेक्षा दुःखद है। ठण्डे मुल्कों के रहने वाले गरम मुल्क को दोज़ख़ जानते हैं और गरम मुल्क वाले ठण्डे मुल्कों को। किन्तु जो मनुष्य गरमी और सरदी के बखेड़े से ऊपर है उसके लिए सब जगह बराबर है। इसीलिए अद्वैत और यकरंगी के संसार में न अज़ाब है न सवाब है। अद्वैतवादी न दोज़ख़ के डर से बन्दगी करता है और न बहिश्त की आशा से। जिस ओर तुम्हारा ख़याल और वहम पक्का होगा वही तुम्हारे सामने आवेगा।

दो भाई ब्राह्मण थे। उनके घर में एक मूर्ति थी। एक भाई ईश्वर भक्त था। वह सदा उस मूर्ति की पूजा करता था। दूसरा रिन्द था। वह प्रतिदिन प्रातःकाल उस मूर्ति के सर पर पांच जूते लगाता था। एक दिन भक्त ब्राह्मण ने स्वप्न देखा कि ठाकुर जी कहते हैं कि या तो अपने भाई को इस बुरे काम से रोक नहीं तो हम तेरी गरदन तोड़ देंगे। उसने कहा कि महाराज मैं तो आपकी पूजा करता हूं आप मेरी गरदन क्यों तोड़ेंगे? उसकी गरदन तोड़िये जो आपका अपमान करता है। ठाकुर जी ने कहा कि वह तो हमको मानता ही नहीं उसकी गरदन नहीं तोड़ सकते। तू मानता है इसलिये तेरी ख़बर अवश्य लेंगे। तात्पर्य यह कि जिस गुण को कोई मनुष्य अपनी हानि या लाभ का कारण समझता है उस पर वैसा ही उसका असर होता है। मानो तो देव नहीं तो भीत का लेव। ऐसे ही विविध धर्मों के लोग एक दूसरे के धर्माचार्यों को बुरा कहते हैं और एक दूसरे की पवित्र चीजों का अपमान करते हैं। कुछ किसी पर असर नहीं होता। किन्तु जिन पर वह विश्वास रखते हैं और जिनको मानते हैं उनका अपमान करें तो तुरन्त असर होता है। इसलिए जो ईश्वर भक्त अद्वैत के मानने वाले हैं, जिन्हें सुख दुख सब में एक ही परमात्मा दिखाई देता है, उनके लिए न दोज़ख़ है न बहिश्त।

एक आंखों वाला एक अन्धे को अपने साथ बाग में ले गया। उसे खड़ा किया और उसके कन्धे पर चढ़ कर सेब तोड़े। स्वयं खाया और उसे भी खिलाया। इतने में बाग के स्वामी को आते देखा। उस अंधे को वहीं छोड़ चम्पत हो गया। अब हम 'शरअ' की व्यवस्था पूछते हैं कि क्या इस अन्धे का कुछ क़ुसूर है? और उसे शरअ के अनुसार कुछ दण्ड मिलना चाहिए? ऐसे ही क्या जीव के कर्मों के कारण शरीर को दोज़ख़ की आग में जलाया जावेगा।

[२]

एक दिन हाफ़िज़ अब्दुर रहमान, जो नेत्रहीन थे, सेवा में पहुंचे और दो विद्वानों का हाल सुनाया और कहा कि उनमें से हर एक दूसरे को मानने से इनकार करता है और उसके धर्म ग्रन्थ पर एतराज़ करता है। आपने उत्तर में क़ुरान की एक आयत सुनाई जिसका अर्थ यह है—"यहूदी कहते हैं कि ईसाई पथ भ्रष्ट हैं, और ईसाई कहते हैं कि यहूदी पथ भ्रष्ट हैं यद्यपि वे दोनों अपने अपने धर्म ग्रन्थों को पढ़ते हैं। यदि विचार करो तो दोनों सच्चे भी हैं और झूठे भी हैं और तत्त्व की दृष्टि से देखोगे तो न कोई सच्चा है और न झूठा है।"

[३]

एक रोज कहने लगे कि जब हम दिल्ली की ज़ीनतुल मसजिद में ठहरे हुए थे तो बाक़िरशाह ने कम्बल पोश (एक मुसलमान फ़क़ीर) से प्रश्न किया कि तुम्हारे निकट हिन्दू धर्म और इसलाम में कुछ अन्तर है या नहीं? कम्बल पोश ने उत्तर दिया—'नहीं, कुछ भी नहीं।' दोनों ख़ुदा की शानें हैं। अंधेरे उजाले का सा हाल है। बाक़रशाह ने फिर पूछा कि तुम इनमें से किस पन्थ में हो? उत्तर दिया कि—किसी में भी नहीं। सरदी में धूप अच्छी मालूम होती है और गरमी में छाया। दिन की उजाला अच्छा लगता है और रात में अंधेरा। इसके बाद बाक़रशाह ने हमसे पूछा—कि तुम किस पन्थ में हो? हमने कहा—कि साहब ज़ाहिरा देखने में तो हम क़लमें में शरीक हैं, भीतर का हाल मालूम नहीं कि क्या है और कौन है? यदि भीतर का हाल मालूम होता तो कुछ बयान करते। कोई कहता है कि इसके अन्दर ख़ुदा है, कोई कहता है कि ख़ुदी यानी शैतान भी इसके अन्दर घुसा हुआ है। किन्तु जहां ख़ुदा हो वहां ख़ुदी का गुज़ारा कैसे हो सकता है। हां, यदि सेवक बनकर रहे तो हर्ज नहीं। यह बात सुन कर बाक़रशाह चुप होगए।

[४]

एक दिन कहने लगे कि दिल्ली की ज़ीनतुल मसजिद में एक किसी कम्बल पोश से मौलवी महमूद अली की बात चीत होने लगी। क़ुरान की एक आयत में 'बैत' शब्द आता है, जिसका शब्दार्थ 'घर' है। मौलवी साहब कहते थे कि 'बैत' से अभिप्राय काबा है। और कम्बल पोश कहते थे कि बैत से अर्थ मनुष्य का हृदय है। बहस होते होते दोनों में झगड़ा बढ़ गया। इतने में मौलवी फ़ज़ल हक़ वहां आ पहुंचे। दोनों की बात चीत सुनी और मुझसे कहने लगे कि आप चुप बैठे सुनते हैं, फ़ैसला क्यों नहीं कर देते? मैंने उत्तर दिया कि मौलवी साहब मुझे एक घटना याद आई। मेरठ में मैं लाला बांकेराय के मकान पर ठहरा हुआ था। जहां एक छोटा पीपल का वृक्ष था। एक दिन अकस्मात् एक गाय उस पीपल को चरने लगी। मैंने लाला बांकेराय से कहा कि गाय को हटा दीजिये। लाला बांकेराय बोले—मियां चुपके हो रहो। यह दोनों हमारे देवता हैं। आपस में स्वयं ही समझ लेंगे। हम दोनों के बीच में दख़ल क्यों दें। सो जनाब ये दोनों सज्जन हमारे देवता हैं। ये लड़ाई शरीयत और तरीक़त की लड़ाई है। भला मैं उनको क्या समझाऊँ। मैंने तो मौलाना रूम के इस शेर के अनुसार—

'मनज़ क़ुरां मग़ज़ रा बरदाश्तम् उस्तख़्वां पेशे सगां-अन्दाख़्तम्' क़ुरान में से मींग मींग अर्थात् उसका तत्व ले लिया है और हड्डियां कुत्तों के सामने फेंक दी हैं, चचोड़ा करें और आपस में लड़ा करें। आप बैठ जाइये और इन दोनों सज्जनों को लड़ने दीजिये। यह बात सुनकर वे दोनों हँस पड़े और कहने लगे कि वाह साहब आपने हम दोनों को कुत्ता बनाया।

[५]

एक दिन कहने लगे कि मन्सूर को सूली पर चढ़ाने का कारण यह हुआ कि हक़ (ईश्वर) के साथ उसने

हक़* (अहं) शब्द लगा दिया । नहीं तो हक़ हक़ सारी दुनिया ही पुकारती रहती है और कोई किसी पर एतराज़ नहीं करता। फिर किसी आदमी ने पूछा कि हज़रत मैंने सुना है अहले ख़िदमत मुसलमानों के अतिरिक्त और किसी क़ौम में नहीं होते । उत्तर दिया कि मुसलमानों के निकट तो यही बात है किन्तु अन्य धर्मावलम्बी कहते हैं कि अहले ख़िदमत हमारे ही पन्थ में होते हैं, मुसलमानों में नहीं होते । सच्ची बात यह है कि सब क़ौमों में होते हैं। ख़ुदा के काम किसी क़ौम विशेष पर परिमित या निर्भर नहीं हैं।

[६]

एक दिन कहने लगे कि एक नगर अन्धों का था उसमें हाथी आया। चार पाँच अंधे बड़े उत्साह से दौड़कर गए कि देखें हाथी कैसा होता है। टटोलना प्रारम्भ किया। किसी ने कान को हाथ लगाया, किसी ने दुम को, किसी ने पाँव टटोले, किसी ने पीठ, किसी ने सूँड़। जब अपनी जगह वापस गए तो इन ज्ञानियों ने हाथी के विषय में अपने अपने अनुभव बयान करने शुरू किये । एक ने कहा कि हाथी ठीक छाज की तरह है, दूसरे ने कहा वाह! हाथी खम्भे की तरह है, तीसरे ने कहा नहीं मैंने अच्छी तरह अनुसन्धान किया है, हाथी बिलकुल दीवार की तरह है, चौथे ने कहा कि मुझ पर सत्य प्रकट हो चुका है, हाथी एक लाठी है। सारांश यह कि सबने अपना अपना ज्ञान और अनुभव जो जिसको प्राप्त हुआ था प्रकट किया। यद्यपि इन सब के अनुभव अपने अपने स्थान पर बिलकुल ठीक थे और उनपर वास्तव में वही सत्य प्रकट हुआ था, तथापि हाथी की असलियत से सब अनभिज्ञ और अन्धे थे। ठीक इसी प्रकार ईश्वर को जानना भी अन्धों का हाथी है। इसीलिए मोहम्मद साहब ने भी कहा है—

मा अरफ़नाक हक़ मारेफ़तेक ।

अर्थात्—

इसका अभिप्राय यह है कि किसी भी पैग़म्बर या वली को पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि ईश्वर हमारे ख़याल व गुमान, वहम व अनुमान और जो कुछ हमने कहा व सुना व पढ़ा उन सब से कहीं ऊपर व बढ़ कर है।

[७]

एक दिन कहने लगे कि एक सय्यद राजा भरतपुर के यहां सवारों में नौकर था। ईद के दिन सय्यद ने गाय की क़ुरबानी की। राजा को ख़बर लगी, पकड़े गये। हुक्म हुआ कि कल प्रातः काल तोप के मुंह से बांध कर उड़ा दो। सय्यद ने हवालात में दीवान हाफ़िज़ मंगाकर शकुन देखा तो यह मिसरा निकला 'मरदे अज़ ग़ैर बेरूँ आयदो कारे बकुनद', सोचा कि ऐसा कौन है जो मुझे मौत के पंजे से छुड़ाएगा। दैव वशात् आधी रात के बाद राजा के घर पुत्र पैदा हुआ। प्रातः काल सैयद के क़त्ल का समाचार फैला। रानी के कान तक भनक पहुँची। उसने राजा को बुलवाकर कहा कि ऐसे शुभ दिन आदमी की हत्या और वह भी पशु वध के बदले में अपशकुन होगा। राजा ने उसी वक़्त सैयद को बुलाकर हुक्म दिया कि जाओ फिर ऐसा काम न करना। जब अगले वर्ष ईद आई तो सैयद ने फिर गाय की क़ुरबानी की। फिर पकड़े गए और फिर क़त्ल का हुक्म दिया गया। सैयद ने फिर शकुन देखा। शकुन अबकी बार भी अच्छा ही निकला। वह हैरान हुआ कि इस बार को। बचावेगा। दैव वशात् उस दिन प्रातः काल नवाब लखनऊ ने भरतपुर में प्रवेश किया। उनके कानों तक भी यह समाचार पहुँचा। उन्होंने राजा से कहला भेजा कि यह बात उचित नहीं कि एक पशु के बदले में मनुष्य का क़त्ल हो। आपके सवारों में एक आदमी धृष्ट भी सही, किन्तु यह आदमी बड़ा वीर मालूम होता है इसकी क़द्र कीजिये शायद किसी समय काम आजावे और उसके जौहर खुलें। राजा ने ख़ून माफ़ कर दिया और सैयद से कहा कि जाओ तुमको ईद के दिन की क़ुरबानी माफ़। फिर जो ईद आई तो सैयद ने गाय की क़ुरबानी न की। राजा ने बुलाकर कारण पूछा। उसने कहा कि जब आपने ज़िद छोड़ दी तो मैंने भी इन्सानियत अख़्तियार कर ली। यह बात राजा को पसन्द आई। उसे अपने महलों का दारोग़ा नियुक्त किया और अपने विश्वस्त अनुचरों में शामिल किया। जब भरतपुर की लड़ाई हुई तो वह

*मनसूर 'अनलहक़' कहा करता था जिसका अर्थ है 'सोऽहम्' अर्थात् 'अहम् ब्रह्म'।

वैसद भी सेना के एक भाग का सरदार था। बड़ी वीरता के साथ लड़ा और जब तक जीवित रहा भरतपुर को शत्रुओं के हाथों में न पड़ने दिया। अन्त में जब वह एक तोप के गोले से उड़ गया तो भरतपुर का क़िला भी शत्रु के हाथों में चला गया। वास्तव में वह बड़ा वीर मनुष्य था।

[८]

एक दिन मैं गुरू जी की सेवा में पहुँचा। आज़ादी और बेतकल्लुफ़ी का ज़िक्र होने लगा। आपने फ़ारसी के कुछ शेर पढ़े जिनका अर्थ यह था--

उस मनुष्य का जीवन और मृत्यु दोनों अच्छे हैं जिसने दुनिया को दुनियादारों के सुपुर्द कर दिया है। यदि मनुष्य तकल्लुफ़ न करे तो उसका जीवन सुखमय हो जाय और यदि संसार से आसक्ति न रखे तो उसकी मृत्यु सुखमय हो। अनासक्त होकर जीना ही वास्तव में जीना है। आसक्त होकर जीना वास्तव में रोना है। ऐ दिल अनासक्ति के मार्ग को तू मुर्ग़ाबी से सीख। जब तक जल में रहती है जल में रहती है और जब बाहर निकलती है तो पर सूखे। मैंने माना कि तेरा तख़्त बिल्लौर और जवाहरात का बना हुआ है तथापि जिस किसी की आँखें हैं वह जानता है कि यह सब पत्थर हैं। यह क़ाक़ुम, समूर और सजाब की मसनद बोथिये पर बैठने वाले फ़क़ीरों की नज़र में मुरदे के बाल हैं।

इसके पश्चात गुरूजी कहने लगे कि मियाँ सरमद और मियाँ हरे भरे* दोनों एक स्थान पर बैठे थे। सरमद ने एक शेर पढ़ा जिसका अर्थ था—

मेरे सर का दर्द मेरे सर के ऊपर की टोपी बन गया है और उसके ऊपर ऊनी टोपी दरदे सर के लिए चन्दन का काम दे रही है।

इसके उत्तर में मियाँ हरे भरे ने एक शेर कहा, जिसका अर्थ यह था--

मेरा सर ऊनी टोपी के बोझ को कैसे ढो सकता है जब कि मेरे सर के बाल ही उस सर पर टोपी का काम दे रहे हैं।

*सरमद और हरेभरे ये दोनों औरंगजेब के समय के दो विख्यात मुसलमान फ़क़ीर थे।

सच है जो लोग अनासक्त होते हैं बड़े मज़े से जीवन व्यतीत करते हैं।

[९]

एक दिन मैं सेवा में उपस्थित हुआ तो गुरू जी कहने लगे कि हम अजमेर में उर्स देखने गए तो बानवाओं* का गिरोह मादी मरातिब लेकर निकला। उनकी बातें हमें बहुत पसन्द आईं। एक विचित्र हालत थी। जुलूस का जो नेता है उसके आगे, पीछे, दाएं, बाएं चार आदमी हैं। पिछला आदमी कहता है—

दिल बदस्तावर के हज्जे अकबरस्त,
अज़ हज़ारां काबा यक दिल बेहतरस्त।

अर्थात्—दिल को अपने हाथ पर रख कि यही सब से बड़ी हज्ज (तीर्थ) है। हज़ारों काबों से एक दिल बेहतर है।

अगला आदमी बोलता है—

काबा बुनगाहे ख़लीले आज़रस्त,
दिल गुज़र गाहे जलीले अकबरस्त।

अर्थात्—काबा आज़र के बेटे ख़लील का मकान है और दिल उस महान 'तेज' परमेश्वर के आने जाने का रास्ता है।

फिर बाईं तरफ़ वाला आवाज़ लगाता है—

काबा हरचन्दे के ख़ाने बर्रे ऊस्त,
दिल मगर ईनीज़ ख़ानाबिर्रे ऊस्त।

अर्थात्—यद्यपि काबे का मकान भी ईश्वर की एक देन है तथापि दिल भी ईश्वर के रहस्यों का ख़ज़ाना है।

दाहिनी तरफ़ वाला पुकार कर कहता है—

ता बकर्द आं ख़ाने रा दर वैन रफ़्,
वन दरीं ख़ाने बजुज़ आंह ईन रफ़्।

सबके पश्चात जलूस के नेता बीच में से कहते हैं—

गर हक़ीदानी के दर हर दिल ख़ुदास्त,
पस्तुरा ताज़ीमे हर दिल मुहआस्त।

अर्थात्—यदि तू यह जानता है कि हर दिल के अन्दर ख़ुदा मौजूद है तो हरेक दिल की इज़्ज़त करना ही तेरे जीवन का उद्देश्य होना चाहिए।

*सूफ़ियों का एक सम्प्रदाय।

[१०]

एक दिन एक सज्जन ने आकर फ़क़ीरों के सत्संग में अविश्वास प्रकट किया। गुरू जी ने कहा हां सच है—

फ़ायदा क्या करे सोहबत जो न हो इस्तैदाद,[1]
बाग़ में जाके कभी ज़ाग़[2] ख़ुश[3] अलहां[4] न हुआ।

किन्तु सोहबत की तासीर भी होती ही है। अरबी की एक कहावत है कि यदि तुम्हें अल्लाह के पास बैठने की इच्छा है तो तुम फ़क़ीरों के पास जाकर बैठो। साधु सन्तों का सङ्ग ही अल्लाह की मजलिस है। हमने बाबरी में देखा कि एक कुत्ते को हड़क (पागलपन) उभरी। कुत्ते के मालिक ने आम के वृक्ष से उसे बांध दिया। जब हड़क का ज़ोर होता तो वह दरख़्त को भंभोड़ता। अन्त को तीन दिन में कुत्ता मर गया। महीने भर के बाद वह वृक्ष भी सूख गया। उस आदमी ने वृक्ष काटा और जलाने के लिए ले आया। जिस किसी को उसकी लकड़ी का धुआं लगा उसे भी हड़क उभरी।

भला जब बावले कुत्ते का यह असर है तो क्या साधु सन्तों में इतना भी असर नहीं। सच्चे गुरू का उपदेश कभी व्यर्थ नहीं जाता। कभी न कभी असर लाता ही है—

मरदाने ख़ुदा ख़ुदा न बाशंद,
लेकिन ज़ख़ुदा जुदा न बाशंद।

अर्थात्—ईश्वर के भक्त ईश्वर तो नहीं होते लेकिन ईश्वर से पृथक भी नहीं होते।

[११]

एक दिन कहने लगे कि एक बहुरूपिया था। नित्य नया रूप बनाकर राजा के सामने जाता कि धोखा देकर इनाम पावे किन्तु राजा कभी उसके दांव में न आता। इसके पाँव के चाल से ही उसे पहचान लेता। लाचार होकर बहुरूपिया एक हठयोगी के पास गया और कपाली चढ़ाना सीखा फिर योगी बन कर अपने शहर के बाहर आकर ठहरा। एक छोटा सा गुम्बद बनाया। चन्द चेले जमा किए और हठयोग की क्रिया के अनुसार समाधि लगाकर बैठ गया। गुम्बद का दरवाजा इस विचार से चुनवा दिया कि राजा यह समाचार सुनकर कि एक साधू इतने दिनों से मकान में बन्द है यहां आवेगा और मकान खुलवावेगा तो मैं फिर जीवित हो आऊँगा और उससे इनाम लूंगा। दैवयोगात् कुछ दिनों के अन्दर एक बहुत बड़ी क्रान्ति हुई। न वह राजा रहा और न वह राज्य। बस्ती की बस्ती उजड़ गई। जोगी के चेले भी भाग गए और गुम्बद वैसा का वैसा ही बन्द पड़ा रहा। दो सौ वर्ष के पश्चात् जब उस शहर में फिर रौनक और आबादी हुई तो किसी ने उस गुम्बद को गिरवाया। देखा कि एक आदमी समाधि लगाए बैठा है। लोगों की भीड़ होगई। इतने में एक जोगी आ निकला। उसने पहचान लिया और अपनी विधि के अनुसार इलाज किया। फिर से सारे शरीर के अन्दर जीवन आगया और सूझ बूझ सब ठीक होगई। उठ बैठा और बोला लाओ मेरा घोड़ा जोड़ा। लोग हैरान हुए कि इस मनुष्य को कैसा पागलपन है और क्या बकता है। उससे हाल पूछा। उसने अपना तमाम हाल कह सुनाया कि केवल घोड़े जोड़े के लिए ही मैंने यह समस्त क्रिया अमुक राजा के समय में की थी। अब जागा तो वही विचार रहा कि राजा ने मुझे उठाया। सारांश यह कि जो क्रिया कर्म, जप तप, पाठ इत्यादि जिज्ञासु करता है उसका फल निस्सन्देह उसे मिलता है। किन्तु जब तक उसके हृदय में ईश्वर के अतिरिक्त अन्य सब पदार्थों से पूर्ण वैराग्य उत्पन्न नहीं हो जाता सब व्यर्थ है। क्योंकि इन सब क्रियाओं और अभ्यासों में भी उसे वही सूझेगा जो दिल में बसा है। अपने पापों से डरे हुये लोग मोक्ष की इच्छा करेंगे और पुण्य की आशा रखने वाले बहिश्त का दम भरेंगे अर्थात् जो जिसका विचार है वही रहेगा। सब अपनी अपनी व्यक्तिगत वासनाओं और झूठे इष्टों में फंसे हुए हैं। ईश्वर का खोजी तो कोई बिरला ही निकलेगा—

मरदे आशिक़रा न बाशद इल्लते।
आशिक़ांरा मज़हबे ने मिल्लते।
मज़हबे इश्क़ अज़ हमह दींहा जुदास्त,
आशिक़ांरा मज़हबो मिल्लत ख़ुदास्त।

अर्थात—सच्चे भक्त के अन्दर किसी दूसरी वासना का रोग नहीं होना चाहिए। भक्तों के लिए न कोई

१ पात्रता २ कव्वा ३ मधुर स्वर वाला ४ पागलपन।

मज़हब है न कोई मिल्लत। प्रेम का धर्म सब धर्मों से पृथक है। केवल ख़ुदा ही भक्त का मज़हब है और ख़ुदा ही उसकी मिल्लत है।

एक दिन कहने लगे कि हजरत राबेया बसरी* को किसी ने एक वेश्या के हाथ बेंच दिया। राबेया बड़ी ख़ूबसूरत थी। उस बूढ़ी वेश्या ने उसे सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहना कर एक कोठे पर बैठा दिया। लोगों की भीड़ लगने लगी, किन्तु रात्रि के समय जिस मनुष्य को वह नायिका राबेया के पास भेजती उससे राबेया कहती कि पहले वज़ू करके दोगाना (नमाज़) पढ़ लो। जहां दोगाना पढ़ा और हज़रत राबेया ने अपने अनुपम ढङ्ग से उपदेश दिया कि उस मनुष्य की आंखें खुल जाती थीं और सुबह को चुप चाप चला जाता था। एक वर्ष तक इसी तरह उपदेश जारी रहा कि जो मनुष्य एक रात उनके पास रहा वह फिर कभी न आया। नायिका ने सोचा कि यह क्या बात है कि जो मनुष्य एक बार आता है फिर कभी सूरत नहीं दिखाता। इसके सौन्दर्य इत्यादि में तो किसी तरह की कमी है नहीं। एक रात को नायिका ने छिप कर सारी कैफ़ियत देखी। प्रातः काल राबेया के चरणों पर गिर पड़ी कि मेरा अपराध क्षमा करो मुझे यह हाल मालूम न था। आज से मैंने तुम्हें आज़ाद किया। राबेया ने उत्तर दिया तुमने मुझे आज़ाद किया या न किया उपदेश का सिलसिला तोड़ दिया। ख़ैर! ईश्वरेच्छा।

*बसरा की रहने वाली एक विख्यात मुसलिम स्त्री सन्त



हम भी मानव हैं, रहे ध्यान !

—श्री जगदीशशरण

(१)

ओ धन - कुबेर, सत्ताधारी
ओ मिल मालिक, ओ ज़मींदार,
ओ सड़कों पर चलने वाले
लेकर के अपनी फिटन-कार !

तुमने निर्बल मानवता का
कर दिया आह, जर्जर शरीर !
करके निर्धन का रक्त - पान-
तुम बन बैठे हो खुद अमीर !

लेकिन क्षण भर को सोचो तो,
यह है अनीति कितनी महान !
ओ धनमद में उन्मत्त जीव
हम भी मानव हैं, रहे ध्यान !

(२)

तुम असन - वसन से सदा तुष्ट
कर रहे वायु - पथ में विहार !
तृणमय कुटीर में रहते हैं
हम नित्य दिगम्बर, निराहार !

हम श्रमजीवी हैं, अहोरात्रि
हम श्रम करते हैं सपरिवार,
मिल में, खेतों में, खानों में,
सर्वत्र हमारा ही प्रसार।

फिर भी हमको अवकाश नहीं
जग में न हमारा कहीं मान।
ओ पूँजीपति अब भी चेतो
हम भी मानव हैं, रहे ध्यान !

(३)

हम करें अन्न का उत्पादन,
तुम करो नित्य उसका विलास
आश्चर्य हमारे ही बच्चे,
माँगें रोटी का एक ग्रास !

यह, धृति सहिष्णुता, क्षमा, शान्ति,
बन गईं हमारे लिए शाप !
अन्नपीड़ा के क्रन्दन को
तुमने समझा पागल - प्रलाप !

हमने दधीचि के तुल्य जिन्हें—
दे दिया सर्वहित अस्थिदान
वे ही कृतघ्न निकले, परन्तु
हम भी मानव हैं, रहे ध्यान।

(४)

हम सह न सकेंगे यह अनीति,
अब रह न सकेगी और शान्ति
सस्कृति के वर्ग - विभागों में
आने वाली है एक क्रान्ति !

वह क्रान्ति करेगी अग - जग के
पापाचारों का सर्व क्षार !
मानव समाज में समता का
फिर फैलेगा पावन विचार।

जीवन में परिवर्तन होगा—
होगा समाज का नव - विधान
ओ नवयुग के रचने वालो,
हम भी मानव हैं, सावधान !!

देवनागरी लिपि में सुधार

—डाक्टर गोरख प्रसाद

इस लेख के लिखने में दो बातों पर ध्यान रक्खा गया है, एक तो यह कि भाषा इतनी सरल हो कि वह हिंदुस्तानी में गिनी जा सके, दूसरे यह कि देव नागरी-सुधार के बारे में मैं अपनी राय बता सकूं। भाषा को सरल रखने के विचार से बहुत से ठेठ हिंदी के शब्द रक्खे गये हैं जो न संस्कृत के हैं और न अरबी-फ़ारसी के; बहुत बार तो इस विचार से संस्कृत शब्द न आवे, बोलने का ढङ्ग ही बदल दिया गया है।

मैं भी चाहता हूँ कि देवनागरी में—हिन्दी के लिखने के आज-कल के ढङ्ग में—सुधार किया जाय और देव-नागरी को और भी अच्छा बनाया जाय। मैं सुधार से चिढ़ता नहीं, मैं सुधारों का चाहने वाला हूं। सुधार कैसा हो इसे दूसरों ने भी बताया है। कुछ सुधार मुझे अच्छे जान पड़ते हैं, कुछ बुरे। श्रीयुत श्री निवास जी ने हाल में ही कुछ सुधार बताये हैं जिसे, न जाने क्यों, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने भी कुछ-कुछ पसन्द किया है। मुझे तो अचरज होता है कि सभा को श्री निवास जी का सुधार अच्छा लगा है। मेरी राय में तो श्री निवास जी के सुझाव में बहुत सी बुराइयां हैं और उनको अपनाने पर देवनागरी अपने आज के रूप से भी बुरी हो जायगी।

सुधार क्यों ?

पहले हमें यह समझ लेना चाहिये कि हम क्यों सुधार चाहते हैं और आज कल की देवनागरी में क्या कमी है। मेरी राय में सुधार नीचे लिखी बातों के लिये हो सकते हैं।

(१) सुधारी गई देवनागरी ऐसी हो कि वह बहुत जल्द लिखी जा सके।

(२) वह बहुत जल्द हाथ से सीखी जा सके।

(३) वह बहुत सस्ते में छापी जा सके और उसकी छपाई में इतने कम अक्षर लगें कि बहुत कम पैसे में ही प्रेस वाले तरह-तरह के टाइप रख सकें और इसलिये वे बहुत सुन्दर छपाई कर सकें। अँग्रेज़ी में रोमन इटैलिक्स और ऐंटीक ये तीन तरह के टाइप बहुत सी पोथियों में लगे रहते हैं, पर आज कल की देवनागरी के एक केस के लिये इतने अक्षर रखने पड़ते हैं कि दो से ज़्यादा तरह के टाइपों का ख़रीदना प्रेस वालों के लिए बहुत भारी हो जाता है।

(४) सुधारी हुई देवनागरी ऐसी हो कि वह लाइनो टाइप मशीन पर छापी जा सके।

(५) वह टाइप राइटर पर चल सके।

(६) वह टेलिप्रिंटर पर भी चल सके।

अब मैं इन बातों पर एक एक करके विचार करता हूं। महात्मा गांधी, और देश की भलाई चाहने वाले कई और लोग भी, चाहते हैं कि हिंदी और देवनागरी ऐसी हो कि उसे बहुत चटपट ही नौसिखिये सीख सकें। उनका कहना है कि ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं और अः की मात्राएँ अक्षर को लिख लेने पर लगायी जाती हैं और यह मात्राएँ अक्षर की दाहिनी ओर या नीचे लगाई जाती हैं, तब फिर क्यों छोटी इ की मात्रा को अक्षर के पहले लगाया जाय और उसे अक्षर के लिखने के पहले लिखा जाय।

मैं कहता हूँ कि यह सुधार बहुत आवश्यक नहीं है। इतना याद रखना कि इ की मात्रा बायीं ओर लगती है, उ और ऊ की मात्राएँ नीचे लगती हैं, ए और ऐ की मात्राएँ ऊपर और बाक़ी सब मात्राएँ दाहिनी ओर, बहुत कठिन नहीं है। जो कोई क, ख, वग़ैरह ४० अक्षरों के रूपों को सीख सकता है वह इ की मात्रा को बाईं ओर लगाना भी सीख सकता है।

इ की मात्रा को बाईं ओर से हटा कर दूसरी जगह ले जाने पर देवनागरी फिर देवनागरी सी नहीं लगती। मेरी राय है कि जहां तक हो सके सुधार कम किया जाय, पर लोग अगर पूरा सुधार चाहते हैं तो क्यों न हिन्दी को बदल कर एलफ़ैबेटो कर दिया जाय और देव-नागरी को सुधारी हुआ रोमन, जिसमें २६ अक्षर से भी कम अक्षर रहें!

केवल सिद्धांत के लिए देवनागरी में इतना सुधार करना कि आज कल के हिन्दी पढ़े लोग हमारी सुधरी हुई हिन्दी को बेधड़क न पढ़ पावें मुझे ठीक नहीं जँचता।

बिना सुधारी हुई देवनागरी भी जल्द लिखी जा सकती है। अब जल्द लिखने पर विचार कीजिये।

साधारण देवनागरी में हर अक्षर के माथे पर डांड़ी लगाई जाती है जिसे शिरोरेखा कहते हैं। लिखने में बहुत से लोग इस शिरोरेखा को छोड़ देते हैं, साथ ही इ, ड, वग़ैरह के फ़ालतू शोशों को छोड़ देते हैं। ऐसा करने से देवनागरी जल्द लिखी जा सकती है। यदि यह शर्त लगायी जाय कि एक का लिखा दूसरे लोग भी धड़ाधड़ पढ़ते चले जायँ, कहीं कोई शक न पड़े और जिस शब्द के पढ़ने में शक पड़े उसे गलत माना जाय तो दावे के साथ कहा जा सकता है रोमन और उर्दू दोनों से हिन्दी जल्द लिखी जा सकती है। मैंने इस बात की पूरी जांच की है। एक ही पैराग्राफ़ को मैंने कई लोगों से शर्त लगा कर लिखाया है कि देखें वे कितना जल्द लिख सकते हैं। पता चला कि एक मिनट में ४० शब्द तक हिन्दी ऐसी लिखी जा सकती है जिसके पढ़ने में किसी को अड़चन न हो। इस ४० में का, कि, के, में, से आदि को अलग अलग शब्द माना गया है। इसी से एक मिनट में लिखे जाने वाले शब्दों की गिनती इतनी अधिक है। तो भी, जब उसी हिन्दुस्तानी भाषा के पैराग्राफ़ को फ़ारसी अक्षरों में लिखाया गया तब लिखावट इतनी गिच पिच हो गई कि दूसरे लोग उसे ठीक से नहीं पढ़ पाते थे। जब कभी कोई देखना चाहे मैं तेज़ लिख कर दिखा सकता हूँ।

इसलिये मेरी राय में देवनागरी में इसलिये सुधार करने की ज़रूरत नहीं है कि वह धीरे धीरे ही लिखी जा सकती है। यह मैं मानता हूँ कि हिन्दी आज कल के शार्ट हैंड की बराबरी नहीं कर सकती, तो भी, जब कोई और भी तेज़ लिखना चाहे तो वह मुड़िया में लिख सकता है। मात्राओं को छोड़ देने से हमें मुड़िया मिलती है। उर्दू में भी बहुत सी मात्राएँ छोड़ दी जाती हैं, मुड़िया में सभी छोड़ दी जाती हैं। इस बात में मुड़िया उर्दू (या फ़ारसी) से भी बढ़ कर है। हां, यह ज़रूर ठीक है कि मात्राओं के न रहने से कभी कभी कुछ का कुछ पढ़ा जा सकता है। 'बाबा जी अजमेर गए' को 'बाबा जी आज मर गए' पढ़ने की बात तो सभी ने सुनी होगी। फ़ारसी लिखावट में भी ऐसी भूल हो जाती है।

सस्ती छपाई

सस्ती छपाई बहुत ज़रूरी बात है। देवनागरी की छपाई में यह अड़चन पड़ती है कि उसमें बहुत तरह के अक्षरों के रखने की आवश्यकता पड़ती है। बहुत से पढ़े लिखे लोग छपाई के बारे में कुछ भी नहीं जानते और इसलिये सुधार की बात समझ नहीं पाते, या ग़लत समझ लेते हैं। इसलिए यहां सब बातें अच्छी तरह समझाई जा रही हैं।

हिन्दी की छपाई के लिये नीचे लिखे अक्षर रहते हैं।

अक्षर	गिनती
(१) अ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, क, ख, वगैरह क्ष त्र ज्ञ तक	४७
(२) चूल कटे अक्षर (जिसे प्रेस के लोग कर्न वाले अक्षर कहते हैं)।	४७

कर्न कटे रहने से जब चूल में रेफ़ (याने अक्षर के ऊपर लगाने वाला आधार) बैठाया जाता है तब रेफ अक्षर के ठीक ऊपर आता है। जैसे कि यदि कर्न न हो तो रेफ़ बग़ल में छपेगा, जैसे क ं जो अच्छा नहीं लगता।

(३) आधे अक्षर जैसे क, ख, ग वग़ैरह। इनमें त्, द्, वगैरह और कृ, रु, वगैरह भी गिन लिए गये हैं। १८

(४) उ, ऊ, ए, ऐ, की मात्रा लगे अक्षर, याने कु, खु, वग़ैरह; कू, खू, वग़ैरह; के, खे, वग़ैरह; और कै, खै, वग़ैरह। इन अक्षरों के बिना भी काम चल सकता है क्योंकि कर्न वाले अक्षरों में उ, ऊ, वग़ैरह की मात्रा लगा देने से कु, कू, वगैरह बन सकते हैं। मोनोटाइप कम्पनी की मशीन से ढले टाइपों में यह नहीं रहते। १५७

(५) कर्न कटे कु, खु, वग़ैरह, जिसमें इन पर रेफ़ या चन्द्रबिन्दु लगने पर वह अक्षर के ठीक ऊपर आवे, जैसे कुं, न कि कुँ। इनकी पूरी गिनती क़रीब ८० है, पर बहुत कम प्रेसों में सब अक्षर रहते हैं। रेफ़ वग़ैरह को बग़ल में लगा कर काम चला लिया जाता है। ... ८०

(६) ऋ की मात्रा लगे अक्षर जैसे कृ वग़ैरह १६

(७) ऋ की मात्रा वाले कर्न कटे अक्षर (प्रेसों में सब अक्षर नहीं रहते, पर रहें तो उनकी भी गिनती १६ होगी) ... १६

(८) मिले हुये अक्षर। इनमें से अब बहुत से धीरे धीरे छूटते चले जा रहे हैं। जैसे पहले च में च जोड़ने के लिए एक टाइप रहता था जिसमें च के नीचे च रहता था अब सभी लोग च की बग़ल में च रखते हैं, जैसे च्च। मोटे हिसाब से इनकी गिनती ७० मानी जा सकती है। ... ७०

(९) कर्न कटे मिले हुए अक्षर, (प्रेसों में सब अक्षर नहीं रहते, पर रहना चाहिये) ... ७०

(१०) बिंदी लगे अक्षर, जैसे क़, ख़, वग़ैरह ... ७

(११) कर्न कटे बिंदी लगे अक्षर, ... ७

(१२) एकहरी मात्राएं, और दो दो मात्राएँ एक साथ, जैसे ॣ या ॆ, एक साथ ही मात्रा और रेफ़ वग़ैरह ... ४७

(१३) रुपया, आना, पाई, मन, सेर, छटाक, तथा गणित के लिये ... १२

(१४) गिनती १, २, वग़ैरह ... १०

(१५) कामा, फ़ुलस्टाप, पाई वग़ैरह ... १५

कुल ६३९

मोनोटाइप कम्पनी ने उन अक्षरों को जो कर्न कटे अक्षरों में मात्रा बैठाने से बन सकते हैं छोड़ दिया है और इस प्रकार उनकी मशीन से ढाल कर बेचे जाने वाले टाइप में क़रीब ३५० अक्षर होते हैं।

मैं कहता हूं इतना भी बहुत है। इतने अक्षरों के रहने के कारण कोई भी प्रेस एक ही नाप के अक्षरों में तीन चार मेल का 'फ़ेस' आसानी से नहीं रख सकता। गणित की छपाई में इससे बड़ी अड़चन पड़ती है। अंग्रेज़ी में मोटे और बिना सेरिफ़ (शोशा वाले अक्षर से बिंदु, मोटे और सेरिफ़वाले अक्षरों से वेक्टर (Vectors), तिरछे (इटैलिक्स) अक्षरों से गिनती लिखी जाती है। साधारण अक्षरों में भी कैपिटल्स (Capitals), स्माल कैपिटल्स (Small Capitals) और छोटे (Lower Case) अक्षरों से बड़ा सुभीता रहता है। हिन्दी में अब तो पतले मोटे और तिरछे ये तीन तरह के अक्षर बनने लगे हैं, पर ऐसा ही कोई प्रेस होगा जिसमें साधारण छपाई के लिये ये तीनों टाइप काफ़ी ज्यादा रहते हों। नेवता वग़ैरह तो छप सकता है क्यों कि उसमें दो चार लाइन ही फैंसी छपाई रहती है, पर पुस्तक छपने भर का टाइप रखना दूसरी बात है। सवा छै सौ अक्षरों में से कोई न कोई बराबर घटा ही रहता है, और यदि तीन तरह का टाइप रक्खा जाय तो और भी असुविधा होती है।

फिर, हेडिंग के लिए अंग्रेज़ी में केवल २६ अक्षरों से काम चल जाता है, पर हिन्दी छापने के लिये, बंबइया स्टाइल में भी, जिसमें ऊपर लगाने वाली
ि ॅ ` ै वग़ैरह
मात्राएँ अलग से कंपोज़ की जाती हैं, क़रीब २०० अक्षर लगते हैं।

इन सब अड़चनों को दूर करने के लिये सुधार की आवश्यकता है। श्रीनिवास जी ने भी सुधार ख़ासकर इसी मतलब से किया है। पर उन्होंने ज़रूरत से ज्यादा सुधार कर डाला है। अक्षरों को उन्होंने इतना बदल डाला है कि उनके नये अक्षर और मात्राओं को आज कल की हिंदी जानने वाला पहचान नहीं पाता। इसलिये मैं कहता हूं कि उनकी सुधारी हुई देवनागरी सच पूछिये तो देवनागरी ही नहीं रह गयी। मेरे मत में तो सुधार इतना कम होना चाहिये कि हो सके तो लोगों को पता ही न चले कि सुधार किया गया है; या पता चले भी तो वह खटके नहीं, कम से कम सुधार ऐसा न हो कि इस सुधारी हुई देवनागरी को सब लोग पहली ही बार बेधड़क पढ़ न सकें।

मेरी राय तो यह है कि अक्षरों की गिनती कम करने के लिये मात्राओं को कुछ दाहिनी ओर हटा कर लगाना चाहिये। इससे कर्न कटे अक्षरों की ज़रूरत न रहेगी और इसलिये तब क़रीब आधे अक्षरों से काम चल जायगा। यदि यह बात मान ली जाय तो अक्षरों की गिनती यों होगी:

(१) अ इ ई उ ऊ ए ऋ क ख ग वग़ैरह और ड़ ढ़ ४३

(२) गिनती १, २, ३, वग़ैरह १०

(३) मात्राएँ ा, ि, २३

(४) कामा वग़ैरह १५

(५) आधे अक्षर २५

(६) मिले हुए अक्षर ३०

कुल १४६

केवल इतने ही अक्षरों से छपी हिन्दी को बानगी साथ में है। इसके पढ़ने में कहीं रुकावट नहीं पड़ती। बहुत बुरी भी नहीं है। जब इस स्टाइल के लिए अक्षर ख़ास करके ढाले जायँगे तब शिरोरेखा मात्राओं के लगने पर टूटने नहीं पायेगी और छपाई इससे भी सुन्दर लगेगी।

यह तो मानी हुई बात है कि भारतीय वर्णमाला संसार की सभी वर्णमालाओं में अधिक वैज्ञानिक और सुगम है। भारतीय लिपियों का एक मात्र स्रोत अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि है। प्रांतीय लिपियाँ ब्राह्मी की केवल रूपांतर मात्र हैं।

ऊपर की कंपोज़िंग में केवल निम्न अक्षर लगे हैं:—

अ इ ई उ ऊ ए ऋ क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ ण ड़ ढ़ त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह क्ष त्र ज्ञ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ० ा ि ी ु ू े ै ो ौ : . ् ! ; , ' ([ँ - — ऽ । ‑ = ✽ ❀ क्ख ग्ग ट्ट ड्ड द्य ह्म च्च ञ्च ष्ट ट्ठ ड्ढ न्न ह्न ह्य द्ध त्य स्थ क्त द्व ँ ं ु ू ृ ॄ ॢ क्र ख्र ग्र घ्र ज्र द्र ट्र ड्र ध्र प्र फ्र ब्र भ्र म्र व्र स्र ह्र श्र ड्ड ह्व त्त द्द च्र ङ्क द्ध ङ्ग ह्ल श्र ङ्ग ह्व

इस प्रकार मात्राओं को नाम मात्र दाहिनी ओर खिसका देने से ही हमारा काम अच्छी तरह चल जाता है। हम क्यों अक्षरों के आज कल वाले रूप को इतना बिगाड़ें कि बिना क ख ग घ फिर से सीखे हम नई छपाई को पढ़ ही न सकें!

ऊपर मैंने उन सब अक्षरों को रक्खा है जिनमें आज कल की छपाई से मिलती-जुलती छपाई की जा सकती है। पर हम यदि कुछ और सुधार मान ले सकें तो अक्षरों की गिनती और कम हो सकती है; जैसे—

(१) यदि इ, ई, उ, ऊ, ए, ऋ के बदले हम अि, अी, वग़ैरह लिखें तो ये ६ अक्षर कम हो जायँगे।

(२) क, ख, वग़ैरह के लिये क्, ख् वग़ैरह रक्खें तो १२ अक्षर और कम हो जायँगे।

(३) यदि हम ऐसे स्थानों पर जहाँ दो मात्राएँ साथ लगती हैं मात्राओं को एक की बग़ल में एक रखें तो ुँ ूँ वग़ैरह की ज़रूरत न पड़ेगी और सब ९ टाइप और कम हो जाएँगे।

इन तीन सुधारों से १० अक्षर कम हो जायँगे और इस तरह से कुल ११६ अक्षरों से काम चल जायगा। परन्तु इन अक्षरों का छोड़ना मुझे अच्छा नहीं लगता। इनकी गिनती कुल ३० है, पर इनके न रहने से देवनागरी का रूप बहुत बदल जाता है। इ, ई, वग़ैरह के बदले अ पर मात्रा लगा कर तो कई लोगों ने पुस्तकें छपाई हैं, पर बहुत से लोगों को अपर इ ई वग़ैरह की मात्रा लगाने से चिढ़ है।

छोटे अक्षर

डिक्शनरी, रेलवे टाइम टेबुल, वग़ैरह को इस तरह छापने में कि वे फूल कर बहुत बड़े न हो जांय—वे इतने छोटे रहें कि उनको बार बार उठाने में और देखने में सुभीता रहे—छोटे अक्षरों की ज़रूरत पड़ती है। हिन्दी के बहुत से अक्षरों में इतना घुमाव फिराव है कि अभी तक बहुत छोटे टाइप बन नहीं पाये हैं। सब से छोटी छपाई जो कंपोज किये अक्षरों से अभी तक हिन्दी में हो सकी है ऐसी है कि एक इञ्च में ८ लाइनें आ सकती हैं। प्रेस वाले टाईप का नाप प्वाइंट में करते हैं और १ इञ्च में ७२ प्वाइंट मानते हैं। इसलिये ऊपर के टाइप को वे ९ प्वाईंट का टाइप कहेंगे। अंग्रेज़ी में ५ प्वाइंट तक का टाइप बनता है। पर इतना छोटा टाइप कम चलता है। जहां छोटे अक्षरों की ज़रूरत होती है वहां अङ्गरेज़ी में अकसर ६ प्वाइंट वाला टाइप ही लगाया जाता है। ऐसे टाइप से एक इञ्च में १२ लाइनें छप सकती हैं।

हिन्दी में छोटे टाइप के न रहने से बड़ी हानि होती है। काशी-नागरीप्रचारिणी सभा से छपी हिन्दी की सबसे बड़ी डिक्शनरी, जिसका नाम शब्द-सागर है, कई जिल्दों में छपी है और बड़ी महंगी हो गयी है। यदि हिन्दी में भी ६ प्वाइंट का टाइप होता तो इस पुस्तक के पन्ने घट कर ४००० के बदले कुल ८०० ही रह जाते और ऐसी पुस्तक लड़ाई के पहले पाँच रुपये में बिक सकती थी!

एक बहुत साधारण सुधार करने से छोटे अक्षर हिन्दी में भी बन सकते हैं। यह वही सुधार है जिसे हाथ से लिखने में बहुत से लोगों ने अपना लिया है। यदि अक्षरों में से शिरोरेखा हटा दी जाय तो हिन्दी में

६ प्वाइंट के टाइप आसानी से बन सकते हैं। शिरोरेखा के रहने से छोटे टाइपों में स्याही भर जाने का डर रहता है। १२ प्वाइंट के आज कल के टाइपों से कंपोज़ किये मैटर का प्रूफ़ जब आता है तब उसमें न, और व, प और ष, कों कों वग़ैरह में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। ६ प्वाइंट के शिरोरेखा वाले टाइप की छपाई तो इस बारे में बहुत ही ख़राब होगी।

लाइनो टाइप पर देवनागरी

लाइनो टाइप मशीन से कंपोज़ करने में अख़बार वालों को बहुत सुभीता होता है। इस मशीन से काम बहुत जल्द होता है और टाइप के गिर कर बिखर जाने का, या छपते समय एक दो टाइप के उखड़ कर निकल जाने का डर नहीं रहता, क्योंकि लाइनो टाइप मशीन से हर बार नया टाइप ढलता है और एक-एक अक्षर अलग ढलने के बदले लाइन की लाइन ही ढलती है। मशीन का नाम लाइनो टाइप इसलिये पड़ा है कि इससे लाइन आफ़ टाइप अर्थात टाइप की पूरी लाइन ढलती है। इस मशीन में टाइप राइटर के की बोर्ड की तरह कीबोर्ड होता है, और जैसे टाइप किया जाता है उसी तरह इसमें कंपोज़ किया जाता है। कुल मिला कर इसमें ९० ही चाभियां होती हैं, इसलिये इस मशीन पर साधारण हिन्दी के कंपोज़ करने में अड़चन होती है। हरि जी माविल के सुझाव पर चल कर लाइनो टाइप कम्पनी ने देवनागरी की छपाई के लिये भी अक्षरों के साँचे बनाये थे, पर मशीन में केवल ९० अक्षरों के लिये ही जगह रहने से अच्छी छपाई न हो सकती थी और मशीन चल न पायी। अब कंपनी देवनागरी के अक्षर नहीं बनाती। तो भी, यदि कुछ आधे अक्षरों के बनाने के लिए हलंत को काम में लाया जाय और कुछ पूरे अक्षरों को आधे में पाई जोड़कर बनाया जाय, जैसा कि तो ९० चाभियों से ही चल सकता है। लाइनो टाइप कंपनी उस आदमी को काफ़ी रुपया देगी जो ९० ही चाभियों से ऐसी कंपोज़िंग का ढंग बता सके जिसे हिन्दी वाले सुन्दर समझें।

टाइप राइटर पर हिन्दी

टाइपराइटर पर हिन्दी छप तो जाती है, पर हिन्दी में, जैसा हम देख चुके हैं, अक्षर बहुत हैं और टाइपराइटर में कुल ८४ अक्षरों के लिए जगह रहती है। इसलिये हिन्दी जल्द टाइप नहीं हो पाती। अंग्रेजी में एक मिनट में ४० शब्द टाइप करना साधारण बात है, पर टाइप राइटर से हिन्दी की इतनी तेज़ छपाई नहीं हो पाती क्योंकि बार बार शिफ़्ट-की को दबाना पड़ता है (शिफ़्ट-की वह चाभी है जिसके दबाने से, अंग्रेजी छापने वाले टाइप राइटरों में, छोटे के बदले कैपिटल अक्षर छपते हैं; हिन्दी में इस चाभी को दबाने पर समूचे के बदले, आधे अक्षर छपते हैं या ऐसा ही कोई दूसरा उपाय रहता है)। तेज़ छाप सकने के लिये यह ज़रूरी जान पड़ता है कि हलंत से आधा अक्षर बनाने का ढङ्ग अपना लिया जाय। अब भी लोग टाइप राइटर पर द्वारा के बदले द्‌वारा छापते हैं और लोग इस भोंडेपन को माफ़ हो कर देते हैं।

श्री निवास जी ने जो सुधार बताया है उससे टाइप राइटर का काम कुछ ज्यादा तेज़ नहीं हो सकेगा, क्योंकि उनकी बात मानी जाय तो एक अक्षर के लिये अक्सर दो चाभियां दबानी पड़ेंगी और उसमें समय लगेगा। मेरी राय में तेज़ टाइप करने के लिये आधे अक्षरों के बनाने में क़रीब सब जगह हलंत को काम में लाना चाहिये। अक्षरों और मात्राओं का रूप बदलने से यह उपाय कहीं ज़्यादा अच्छा है।

टेलिप्रिंटर पर देवनागरी

टेलिप्रिंटर वह मशीन है जिससे तार की ख़बरें आती हैं और बिना किसी के हाथ लगाये आप-से-आप एक-एक अक्षर करके छपती जाती हैं। इसमें कुल मिला कर ६० अक्षर तक रह सकते हैं।

टेलिप्रिंटर की छपाई जनता के लिये नहीं है। इसकी छपाई को कंपोज़ीटर पढ़ ले। बस इतना ही चाहिये। यदि (१) आधे अक्षर सब हलंत से बनाये जांय और (२) इ, ई वग़ैरह के बदले अ पर मात्रा लगायी जाय तो टेलिप्रिंटर पर आज कल की देवनागरी अच्छी तरह काम देगी और जनता समझ भी न सकेगी कि कहीं भी कभी अड़चन थी। सच पूछा जाय तो ६० से बहुत कम चाभियों के रहने से भी काम अच्छी तरह चल जायगा। पहले बताये गये दो नियमों के ऊपर से बस एक और यह नियम लगाना पड़ेगा कि ख, घ, छ वग़ैरह के बदले क', ग', च', वग़ैरह लिखा जाय।

टेलिप्रिंटर की छपाई को जनता तो पढ़ेगी नहीं। उसे तो कंपोज़िटर एक मिनिट में याद कर लेगा कि जहां क' हो वहां ख कंपोज़ करो, जहां क हो वहां क कंपोज़ करो। इसलिये टेलिप्रिंटर के लिये देवनागरी में किसी-भी सुधार की ज़रूरत नहीं है।

इस तरह हम देखते हैं कि देवनागरी में इतना ही सुधार से काम चल सकता है कि मात्राओं को थोड़ा-सा दाहिनी ओर हटा दिया जाय। इससे प्रेस का काम बहुत सुभीते से हो जाया करेगा। फिर, जब बहुत छोटे अक्षरों की ज़रूरत हो तब शिरोरेखा हटा दी जाय। बस इन्हीं दो सुधारों से बहुत कुछ काम चल सकता है। कुछ समय बीतने पर, जब ये अच्छी तरह चालू हो जांय, नये सुधारों की बात सोचनी चाहिए। सुधारों के बारे में हमें धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिये।

सागर का फूल

— श्री अनन्त कुमार 'पाषाण'

हिन्द-महासागर के ऊपर एक खिला था फूल,
एक फूल—चालीस कोटि पांखुरियों वाला फूल!
एक फूल—जिसके सौरभ से रंजित था आकाश,
एक फूल जो मुरझाता था कभी न बारह मास!

एक फूल जिसकी जड़ में थी बलिदानों की धूल,
एक फूल जो दुनिया में था सिर्फ एक ही फूल,
सोना मिट्टी बनकर जिसकी कभी बना था खाद!
एक फूल जिसका सौरभ था फैल रहा आज़ाद!

शतदल कमल, नील उत्पल, शुचि पुण्डरीक- शत नाम!
भारत, हिन्दुस्तान, इण्डिया—खिला सदा अविराम!
किन्तु एक पागल ने आकर काट गिराया फूल!
दो टुकड़े हो गये, पीर से चिल्लाया वह फूल!

चिल्लाया वह फूल कलप कर रो आया वह फूल!
पांखुरियाँ मिल फूल—एक के दो न हुए हैं फूल!
सौरभ प्यारा मन भावन था हाय, मिल गया धूल!
पांखुरियों को छेद रहे थे खुद पौधे के शूल!

फूल एक है—पांखुरियां मिल कहलाती हैं फूल!
पश्चिम की मातमी हवाएँ बिखराती हैं फूल!
पूरब की वह लाल भोर पर देखो आँखें खोल—
हिन्द-महासागर - लहरों में अविकल है वह फूल!

स्वराज्य और रचनात्मक संस्थायें

—श्री धीरेन्द्र मजुमदार

गांधी जी राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ साथ रचनात्मक कार्य के लिये स्वतंत्र जन-संस्थाओं का संगठन करते रहे हैं। उन्होंने प्रथम से ही इन संस्थाओं को राजनीति से अलग रक्खा है। गांधी जी की इस नीति का समर्थन प्रायः सभी दिशाओं से हुआ है। यह समर्थन अलग अलग लोग अलग अलग दृष्टिकोण और विचार से करते रहे हैं। कोई यह समझते थे कि राजनीति में पड़कर बहुधन्धी हो जाने के कारण लोग विशेषज्ञ के रूप में विशेष संस्था का काम नहीं कर सकेंगे। कुछ लोग ऐसा भी समझते थे कि राजनीति से अलग रहने से ये संस्थायें सरकारी दमन से बच जायें और ऐसी बचत समय समय पर हुई भी है। कुछ और लोग राजनैतिक पहलू से भी इसका विचार करते रहे हैं। वे इसे अंग्रेजी सरकार से लड़ने के लिये जनता में अनुशासन और संगठन पैदा करने का एक साधन समझते रहे हैं। कुछ थोड़े लोग ऐसे भी थे जो गांधी-जी के इस कार्यक्रम को अधिक व्यापक दृष्टि से देखते थे। वे ऐसा समझते थे कि जहां गांधी जी मुल्क के एक हिस्से को अंग्रेजों से राजनैतिक सत्ता ले लेने के काम में लगाये हुये हैं, वहां वे कुछ लोगों को सत्ता लेने के बाद जिन कार्यक्रमों को व्यापक रूप में चलाना चाहते हैं, उनके लिये प्रयोग के काम में लगाये रखना चाहते हैं ताकि सत्ता मिलने के बाद राष्ट्रीय संगठन के लिये निश्चित शैली या तरीकों की रूपरेखा साफ़ रहे, वरना सत्ता हाथ में आने पर दिशा-निर्देश के अभाव से सफल क्रान्ति के बाद भी किसी किस्म की प्रतिक्रान्ति मुल्क पर हावी न हो सके।

आज भारत से अंग्रेज हट गये। विदेशी राज्य के स्थान पर स्वदेशी राज्य स्थापित हो गया। स्वभावतः लोग इस समय इस बात को जोरों से सोचने लगे हैं कि आज इन संस्थाओं की रूपरेखा क्या होगी; क्या उन्हें अलग अस्तित्व रखने की आवश्यकता है? अगर है तो सरकार से उनका क्या सम्बन्ध हो? उनसे कहां तक आर्थिक पोषण लिया जाय? अगर सरकार से अलग भी रहें तो तो क्या सरकारी ताकत को अपने कब्जे में लेने के लिये वैधानिक चेष्टा की जाय? इत्यादि। केवल संस्थाओं के कार्यकर्ताओं के बीच ही इन बातों की चर्चा है ऐसा नहीं, बल्कि आम जनता में भी इस सम्बन्ध में काफी शंका है। अभी हाल में चरखा जयन्ती के सिलसिले में खादी कार्य के लिये धन एकत्रित करने में विशेष रूप से जनता के पास पहुँचने का मौका मिला था। सभी स्थानों में करीब करीब एक ही प्रश्न पूछा जाता था कि जब आपको सारे सरकारी साधन प्राप्त हैं तो आप इस मांगने की पद्धति को क्यों जारी रखे हुये हैं? अब तक आपकी संस्थाएं जनता के प्रत्यक्ष दान से चलती थीं क्योंकि सरकार खिलाफ़ थी। अब तो राष्ट्रीय सरकार और राष्ट्रीय संस्थाएं सब एक हैं। फिर सरकारी कोष से ही संस्थाओं का काम चलाना चाहिये। इसलिये जनता से प्रत्यक्ष पोषण लेने की आवश्यकता क्या है? इत्यादि। ऐसी शंका सिर्फ एक स्थान की नहीं है, बल्कि देशव्यापी है। अतः समय आ गया है कि हम इन बातों पर गम्भीरता से विचार करें।

किसी संस्था का स्वरूप निर्णय करने के लिये आवश्यक है कि संस्था के उद्देश्य पर विचार किया जाय। गांधी जी का स्वप्न, अपनी बनाई हुई संस्थाओं के द्वारा, स्वावलंबन के आधार पर अहिंसात्मक समाज-रचना करना ही है। वस्तुतः ऐसे समाज में शासन का कोई स्थान नहीं है, क्योंकि समाज के स्वावलंबी और अहिंसात्मक होने पर शासन की आवश्यकता ही नहीं रहती। शासन की आवश्यकता तो व्यक्तियों के स्वार्थ और हिंसा को मर्यादित रखने के लिये ही होती है। ऐसी शासनहीन समाज रचना की कल्पना गांधीजी की ही नहीं है, बल्कि शताब्दियों से दार्शनिक लोग ऐसी बात करते आ रहे हैं। ईसा का पृथ्वी पर 'स्वर्ग राज्य', कार्ल मार्क्स का 'शासन-हीन समाज' और गांधीजी का 'रामराज्य' सभी पर्यायवाची शब्द हैं। सभी का इशारा मनुष्य द्वारा वैधानिक शासन के अन्त की ओर है। अब प्रश्न यह है कि यह स्वप्न पूरा कैसे हो? यूरोप में इसका प्रयोग हुआ। वहां उन्होंने सोचा कि समाज के शासन यंत्र, उत्पादन यंत्र और व्यवस्था यंत्र, सभी पर उन्हीं लोगों का कब्जा होना चाहिये जिनका स्वप्न शासन का अन्त करना है। क्योंकि इन यंत्रों का कब्जा दूसरों के हाथों में रहने पर वे इन्हें संभालते ही रहेंगे,

इन्हें कभी विघटित न होने देंगे। इस हेतु उन्होंने वहाँ शासन यंत्रों पर कब्जा किया और उसके जरिये जनता को अपना कार्यक्रम पालन करने के लिये बाध्य किया। उनकी मुक्ति के लिये उन पर जबरदस्ती और दमन ठीक उसी तरह से किया, जिस तरह से पुराने जमाने में आध्यात्मिक शुद्धता की रक्षा करने वाले, दुरात्माओं की आत्म शुद्धि के लिये उनको जिन्दा जला देना भी करुणा प्रदर्शन ही मानते थे। लोकतन्त्रता का विकास और शासन यंत्र का विनाश करने के लिये उसी यंत्र पर कब्जा कर के वे उसे क्रमशः मजबूत करते रहे, ताकि शासन की शक्ति अनंत होने से अपने रास्ते चलते हुये कोई शक्ति उनका मुकाबला न कर सके।

यूरोप का इस प्रयोग का नतीजा कुछ उलटा ही हुआ। शासन का विघटन और प्रजा की स्वतंत्रता के बदले अधिनायक तंत्र का विकास और प्रजा की स्वतंत्रता का निर्दलन होने लगा। जो लोग शासन पर आरूढ़ हुये, उन्होंने अपनी गद्दी को विघटित नहीं करना चाहा, बल्कि कड़ाई से अपनी मुष्टिगत ही रखना चाहा। ऐसा करना स्वाभाविक ही था, क्यों कि स्वभावतः मनुष्य-प्रकृति अपने स्थिर स्वार्थ को पकड़े रहना ही चाहती है। यद्यपि आज कल आर्थिक भाषा में संपत्ति को ही स्थिर स्वार्थ समझा जाता है फिर भी क्या यह बात किसीसे छिपी है कि शासन सत्ता संपत्ति से भी अधिक स्थिर स्वार्थ की सामग्री है? यही कारण है कि यूरोपीय विचारक शासन शक्ति हाथ में लेकर समाज को अपने आदर्श के अनुसार बनाने में विफल हो रहे हैं।

प्रथम से ही गांधी जी की दृष्टि प्रकृति के इस तथ्य पर रही है। वे समझते रहे हैं कि किसी भी उद्देश्य पर उसके विरुद्ध रास्ते चल कर नहीं पहुँचा जा सकता। उनकी राय में चलने का रास्ता उद्देश्य की दिशा में ही होना चाहिये। यही कारण है कि गांधी जी शासन का अंत करने के लिये उसके यंत्र को अधिकतर संगठित करने के रास्ते पर न चला कर उत्तरोत्तर विघटित करने के रास्ते को ही पकड़ते हैं। अगर शासन का विनाश करना है तो उसकी प्रगति जन-स्वावलंबन का संङ्गठन और शासन तंत्र के विघटन की ओर ही होनी चाहिये, ताकि ऐसी प्रगति की अन्तिम स्थिति में शासन तंत्र शून्य तथा जनस्वावलंबन पूर्ण हो सके। यही कारण है कि वे बारबार जनता को जिन्दगी की आवश्यकताओं की प्राप्ति तथा समाज की मौलिक व्यवस्था के लिये सरकार पर भरोसा न करके आत्मस्वावलंबन पर भरोसा करने के लिये कहते हैं। आज जो वे जिंदगी की मौलिक आवश्यकताओं के लिये सरकारी कंट्रोल हटाने का आन्दोलन कर रहे हैं, वह इसी दिशा में चेष्टा मात्र है।

गांधी जी की दृष्टि एक और बात पर भी है। जिस तरह किसी चीज पर कब्जा कर के उसको विघटित करना मानव प्रकृति के लिये संभव नहीं होता, उसी तरह किसी चीज के साथ शामिल होकर फिर उसका नाश करना भी मनुष्य शक्ति के बाहर है। किसी चीज का अंग बन कर उसे नाश करने की चेष्टा, किसी वृक्ष की डाल पर बैठ कर उसे काटने का प्रयास ही है। अतः अगर संस्थाओं का उद्देश्य शासन तंत्र का नाश करना है तो उन्हें उस तंत्र के बाहर रह कर लगातार आघात करते रहना ही पड़ेगा। बाहर रह कर स्वतंत्र दृष्टि कायम रहने के कारण तंत्र को विघटित करने के हर पहलू को स्पष्ट रूप से देखा भी जा सकता है। वस्तुतः अगर विकेन्द्रीकरण और स्वावलंबन के आधार पर समाज रचना का उद्देश्य है तो उसे प्राप्त करने का तरीका भी विकेन्द्रीकरण और जन-स्वावलंबन का ही होना चाहिये। उसे प्राप्त करने के लिये हमें जनता का स्वतंत्र संगठन कर के उनकी विचार धाराओं को सही दिशा में परिवर्तित करने का प्रयत्न करना होगा। केन्द्रीय शासन तंत्र पर कब्जा करके उसके द्वारा जनता पर विकेन्द्रीकरण और स्वावलंबन की विचार धारा लादने की चेष्टा युद्ध द्वारा युद्ध का अन्त करने की कल्पना जैसी ही होगी। आज संसार के सभी देश अति आधुनिक लड़ाई का सरंजाम इकट्ठा कर के संसार में शान्ति स्थापना की चेष्टा कर रहे हैं। लेकिन जिनको जरा भी संसार का ज्ञान है, वे इसका नतीजा अच्छी तरह से जान सकते हैं।

जिस तरह युद्ध की तैयारी से युद्ध का अंत नहीं हो सकता है, उसी तरह से केन्द्रीय शासन यंत्र द्वारा विकेन्द्रीकरण, स्वावलंबन या अहिंसा की विचार धारा जनता पर लादी नहीं जा सकती है। इस बात को हमारी संस्थाओं को समझना होगा और यह समझ कर

सारी संस्थाओं को अपने भविष्य-स्वरूप का निर्णय करना होगा । इस प्रकार अपना स्वरूप निर्णय करके हमारी संस्थाओं के सामने भविष्य की समाज-रचना की बहुत बड़ी जिम्मेवारी आ पड़ी है।

जब तक अंग्रेजी सत्ता रही तब तक हमारी क्रान्ति जनता को संगठित करके सत्ता को हस्तगत करने की दिशा में रही । आज हमें दूसरी क्रान्ति करनी होगी । याने जनता को संगठित करके शासकों के सत्ता पर हावी न होने की स्थिति पर लाना होगा । पिछली क्रान्ति से यह ज्यादा कठिन और व्यापक है, क्योंकि आज की लड़ाई बाहर की न होकर घर की है । और दुश्मन की लड़ाई से कुटुम्ब की लड़ाई अधिक नाजुक हुआ करती है। ऐसे अवसर पर अगर हम क्षणिक मोह में पड़ कर सत्ता अधिकार दिशा में चले जावेंगे तो हम अपने देश को उसी संकट में फंसा देंगे जिसमें आज यूरोप फँस गया है । रचनात्मक कार्यकर्ताओं के सामने आज अग्नि परीक्षा का समय है । क्या हम इस परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे ?

कृतार्थ

श्री आरसी प्रसाद सिंह

कुछ नहीं ऐसा कि जो अनिवार्य हो;
विधि-निषेधों का नियम व्यवहार्य हो !

वासनाओं का कहीं क्या छोर है !
मृत्यु-जीवन की मची-सी होड़ है !
छू रहा किसको असीम दिगन्त है !
जो जहाँ है, वह विराट् अनन्त है !

कर लिया कृतकृत्य जीवन जिस पुरुष ने,
बन गये संसार के जंजाल सपने;
हो रही है एक सुन्दर रास लीला;
और सब के बीच में वह नट रँगीला !

कर चुका जो दिव्य अपना आत्म-दर्शन;
हो गये तत्काल खण्डित कर्म-बन्धन !
क्या उसे कहिये कि जो कर्त्तार है;
आप अपनी बाहुओं से पार है !

मिल गया वह एक प्रभु में एक होकर;
बूँद जो था, बन गया परिपूर्ण सागर !
आप्तकामी को रही कैसी पिपासा !
और उस निर्द्वन्द्व को है कौन आशा !

जो न होता, कौन फिर वह कार्य हो !
कुछ नहीं ऐसा कि जो अनिवार्य हो !



स्वतन्त्र भारतीय नारी

श्रीमती अनसूया बाई काले

आज स्वतन्त्रता के प्रभात में हमारी सरकार हमारे रहन-सहन का स्तर ऊंचा करने के लिये प्रयत्नशील है। इसके लिये प्रति दिन हमारे महान राजनीतिज्ञ नई-नई योजनायें बना रहे हैं। मैं सरकार का ध्यान एक एक समस्या की ओर आकर्षित करना चाहती हूँ जो हमारे देश और हमारे जमाने की शायद सबसे गम्भीर समस्या बनती जा रही है। वह है सन्तान वृद्धि। भारत की आबादी इतनी तेजी से बढ़ती जा रही है कि हमारी सारी प्रगति में एक भयंकर रुकावट आगई है। यहां तक कि सर विश्वेश्वरैया जैसे व्यक्ति को भी बढ़ती हुई आबादी और उसमें घुटती हुई भारतीय नारी की दुर्दशा के लिये चेतावनी की आवाज़ उठानी पड़ी है। यदि हम वैज्ञानिक साधनों से भारत की आबादी की अस्वाभाविक बाढ़ को नहीं रोकते तो समस्त देश का आर्थिक ढांचा टूट जाने की सम्भावना है।

आर्थिक आंकड़ों से यह ज्ञात होता है अन्न का उत्पादन प्रति मनुष्य के हिसाब से १०२ पौन्ड से घटकर ८० पौन्ड रह गया है। १९३५ से १९४५ तक के दस वर्ष के अरसे में बराबर आबादी बढ़ती रही और अनाज का उत्पादन घटता रहा। अधिक अन्न उपजाने की नीति से भी कोई विशेष लाभ नहीं दीख पड़ा क्योंकि वह एक लम्बे अरसे की योजना है और इस समय हमारे पास इतनी पूंजी, मशीन और साधन नहीं हैं कि हम अन्न का उत्पादन फौरन आबादी के अनुरूप बढ़ा सकें। जब हम अन्न का उत्पादन नहीं बढ़ा सकते तो एक ही उपाय रह जाता है कि आबादी की वृद्धि घटायें। इस समस्या का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यदि हम आबादी नहीं घटाते और इसी भाव से यदि हम विदेशों से अन्न खरीदते रहें तो १० वर्ष के बाद हमारा दिवाला निकल जायगा। बच्चों की इस अनुपातहीन पैदाइश से न केवल एक भयंकर आर्थिक समस्या हमारे सामने आ रही है, वरन साथ-ही-साथ इससे हमारे राष्ट्रीय स्वास्थ्य पर बहुत ही बुरा असर पड़ा है। लोग बहुत निश्शक्त और कमज़ोर हो गये हैं और मलेरिया तथा तपेदिक जैसी बीमारियाँ हमारे लिए अभिशाप बन गई हैं। बीस लाख से ज्यादा हिन्दुस्तानी औरतें हर साल प्रसव और उससे सम्बन्धित रोगों के कारण मर जाती हैं। ४० लाख से ज्यादा स्त्रियां प्रसव से पहले ही रोगग्रस्त हो जाती हैं। ऐसी तो शायद ही कोई औरत मिलेगी जो ४ बच्चों के बाद बिल्कुल पीली न पड़ गई हो या हड्डियों का ढांचा न बन गई हो। नारी के ऊपर लादी जाने वाली इस वासना तृप्ति का परिणाम न केवल हिन्दुस्तान की माताओं वरन बच्चों को भी भोगना पड़ता है। भारत में बच्चों की मौत की संख्या संसार में सबसे ज्यादा है। जो बचते भी हैं वे सूखा, केचुये, कमज़ोरी और अन्य बीमारियों के शिकार बने रहते हैं।

स्त्री ही परिवार का केन्द्र होती है, घर की रानी होती है। वह अपने स्नेह से घर के सभी कामों का संचालन करती रहती है। यदि वही अशिक्षित हुई तो परिवार का भविष्य कितना अन्धकारमय होगा। इसलिये सबसे पहले तो उसे घरेलू शिक्षा में दक्ष बनाना होगा। दूसरी ओर उसे यह भी बताना होगा कि उसके कार्य क्षेत्र का विस्तार घर से बाहर भी है। वास्तव में वह एक खिड़की की तरह है जहां से बाहर की ताजी हवा के झोंके घर में आते हैं और घर की धीमी-धीमी रोशनी बाहर के अंधेरे में फैलती रहती है। उसे केवल घर में ही सीमित नहीं हो जाना चाहिये। वह वास्तव में घर और बाहर के मध्य की कड़ी है।

हमने अभी तक स्त्री के महत्व को नहीं पहिचाना है। हमने उसकी शिक्षा के लिये अपने राष्ट्रीय बजट में

कुछ भी रुपया नहीं रक्खा है लेकिन सच तो यह है कि कई लड़कों को शिक्षित करने की अपेक्षा एक लड़की को शिक्षित करना अधिक आवश्यक होता है क्योंकि वह आगे आनेवाली पीढ़ी की निर्मात्री होती है।

हिन्दुस्तान की औरतों को भी अब यह महसूस करना चाहिये कि उन्हें आगे बढ़कर राष्ट्रनिर्माण के कार्य में हिस्सा लेना है। उन्हें अपना कुछ समय निकाल कर राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेना चाहिये। लेकिन इस दशा में सरकार को भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य करना है। वह यह कि वह भारत के प्रान्तों का भाषा के आधार पर पुनर्विभाजन कर दे और हर प्रान्त की राजभाषा वहीं की भाषा हो। इसके कारण स्त्रियों को बहुत सुविधा हो जायगी और वे राष्ट्रीय कार्यों में खुलकर सहयोग दे सकेंगी।

एक सबसे बड़ी बात है जिसकी ओर मैं सरकार का ध्यान आकर्षित करती हूँ कि हर स्थान में अधिकारियों को एक सूची बनानी चाहिये कि कितनी स्त्रियों को अपने घरेलू कामों के बाद कितना फालतू समय बचता है। वे क्या सेवा करने के योग्य हैं। उसके बाद उन्हें समाज सेवा के क्षेत्र में आगे आकर काम करने के लिये उत्साहित करना चाहिये। इस प्रकार देश के रचनात्मक कार्यक्रम का बहुत बड़ा अंश पूरा होगा और इसके साथ ही स्त्रियों का भी मानसिक विकास होगा। मेरी तो यह गम्भीर सलाह है कि भारत-सरकार को एक विभाग कायम करना चाहिये जो भारत के सामाजिक उत्थान का काम करे। उस विभाग के अध्यक्ष को केबिनेट में भी स्थान मिलना चाहिये। तृतीय विश्व युद्ध समीप आरहा है और हमें इस पुनर्निर्माण के काम में देर न करनी चाहिये।

मजदूर क्या करें ?

श्री जयप्रकाश नारायण

आज हमारे देश के उद्योगों की स्थिति अंधकारपूर्ण है। सारे देश में मजदूर सभी जगह अशांत और आकुल हैं। आज़ादी के विहान ने एक तरफ नई ज़िंदगी रोशन की है, अभाव तथा शोषण से मुक्ति मिलने की आशा की गई है और दूसरी तरफ बिगड़ती आर्थिक स्थिति तथा गिरते उत्पादन ने निराशा की भावना पैदा की है। वह एक विकट परिस्थिति है। कुछ गैरज़िम्मेदार लोग, जैसे कम्यूनिस्ट जो इस अशांत वातावरण के द्वारा अपना उद्देश्य पूरा करना चाहते हैं, देश में अराजकता की स्थिति पैदा करना पसन्द करते हैं। इस संक्रांति काल में जब हमारी नई जीती हुई आजादी चारों ओर खतरे से घिरी हुई है, ऐसी अराजकता हमें वर्णनातीत कष्ट देगी तथा पूर्ण राजनीतिक तथा आर्थिक विनाश की ओर ले जायेगी। ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ताओं को जान लेना चाहिये कि आज उनके कन्धों पर बड़ा भारी दायित्व आ पड़ा है। एक तरफ, उसे मजदूरों को सङ्गठित करना है, तो दूसरी ओर उन्हें शिक्षित करना तथा शांतिपूर्ण ढङ्ग से चलाना भी है।

मजदूर व उत्पादन

आज यह मजदूरों की विश्वव्यापी मांगी है कि उनके वेतन में वृद्धि हो तथा उनके काम करने तथा रहने की हालत में सुधार हो। निस्संदेह, ये बातें जरूर होनी चाहियें। मजदूरों की प्राथमिक आवश्यकता, गुजर-बसर करने की मजदूरी तथा रहने के मकान की आवश्यकता की पूर्ति होनी चाहिये। कोई भी उद्योग जो अपने मजदूरों को गुजर-बसर की मजदूरी नहीं देता है, जिन्दा रहने का हकदार नहीं है। साथ ही मजदूर को महसूस करना चाहिये कि उनके वेतन में वृद्धि बिना अधिक उत्पादन के नहीं हो सकती। यदि उनकी मजदूरी बढ़ जाती है और उत्पादन ज्यों का त्यों रहता है या उसमें कमी होती है तो नतीजा होगा कि चीज़ों की कीमत बढ़ जायगी और वेतन में वृद्धि का फायदा खत्म हो जायगा। यदि अधिक वस्तुयें नहीं पैदा की जाती हैं तो मजदूर को उपभोग के लिये अधिक वस्तुयें नहीं मिलेंगी।

पिछले कुछ महीनों से उत्पादन लगातार घटता ही गया है। सारा दोष मजदूर का ही नहीं है, यद्यपि अपने दोष को उसे स्वीकार करना चाहिये। साम्प्रदायिक उपद्रव, राजनीतिक परिवर्तन, भविष्य की अनिश्चितता, इन्हीं सब बातों ने मजदूर के दिमाग में अस्थिरता की भावना पैदा कर दी है तथा वह अपने काम में उतना जी नहीं लगा सका है जितना उसे लगाना चाहिये।

मजदूर आँदोलन को मजदूरों को बताना चाहिये कि आर्थिक उत्पादन में उनकी भलाई है। साथ ही मैं सरकार तथा देश की आर्थिक नीति निर्धारित करने वालों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि जब तक मजदूरों में मनोवैज्ञानिक क्रांति नहीं की जाती तब तक वे निश्चेष्ट तथा उदासीन रहेंगे। जब तक मजदूर को विश्वास नहीं दिलाया जाता कि उसके साथ नया व्यवहार होगा, देश के औद्योगिक तथा आर्थिक और राजनीतिक जीवन में उसका स्थान है तथा राजनीतिक और आर्थिक साधनों और संस्थाओं के स्वामित्व तथा नियंत्रण में वह भी साझीदार है, तब तक अपने काम के प्रति सम्भवतः वह दूसरा रुख नहीं अख्तियार करेगा। यदि मज़दूर यह महसूस करता कि जिस उद्योग में वह काम कर रहा है उसमें उसका भी स्थान है, वह केवल किराये का टट्टू नहीं है, तो निश्चय ही वह अधिक श्रम करेगा, भले ही उसे खाने को काफी न मिले।

काम करने की प्रेरणा

उद्योगपति निजी व्यावसायिक व्यक्तिगत प्रोत्साहन की बात करते हैं, लेकिन ऐसे बहुत कम हैं जो मजदूरों को काम करने की प्रेरणा देने की सोचते हों। पूँजीपति तब तक कोई काम नहीं करेगा। जब तक उसे काफ़ी नफा कमाने का यकीन न हो; लेकिन भारतीय मज़दूर के इन बड़े समुदाय से आज यह आशा की जा रही है कि वह आधा ही पेट खाकर अधिक से अधिक उत्पादन करे। यह बड़ी ही तर्कहीन बात है। यदि स्वतन्त्र व्यवसाय को चलाया है तो उसके लिये पर्याप्त प्रेरणा होनी चाहिये, यद्यपि हिन्दुस्तान जैसे ग़रीब मुल्क में पूँजीपतियों को यह महसूस करना चाहिये कि अधिक उन्नति देशों की अपेक्षा उन्हें कम प्रेरणा मिलेगी। उसी तरह यदि मजदूर से पूर्ण रूप से उत्पादन कराना है तो उसे काम करने की प्रेरणा दी जानी चाहिये और जहाँ आर्थिक प्रेरणा न हो, वहाँ सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन कर वास्तविक मनोवैज्ञानिक प्रेरणा पैदा करनी चाहिये।

मजदूर प्रजातन्त्र

गुजर बसर की मजदूरी तथा रहने के मकान ही मजदूर के अंतिम उद्देश्य नहीं है। अन्य देशों के मजदूरों की तरह उसे विजय पानी है तथा देश की सरकार बनाना है। मजदूर आन्दोलन का अंतिम उद्देश्य मजदूर प्रजातन्त्र कायम करना है—मजदूर शब्द में वे सभी शामिल हैं जो अपने-अपने श्रम से रोटी खाते हैं, इसमें खेतों, फैक्टरियों या आफिसों में काम करने वाले सभी हैं। भारतीय परिस्थिति में इस उद्देश्य को पूरा होना मुश्किल नहीं लेकिन इसके लिए यह जरूरी है कि अब मजदूर आन्दोलन राजनीतिक तथा रचनात्मक कार्यक्रम के क्षेत्र में प्रवेश करे। मजदूर प्रजातन्त्र झूठा साबित होगा यदि उसमें मजदूरों का नैतिक, बौद्धिक तथा राजनीतिक विकास नहीं होता है। देश के मजदूर आन्दोलन को व्यापक मजदूर शिक्षा आन्दोलन चलाना होगा, जिसके द्वारा मौखिक शिक्षा तथा आंखों के सामने विभिन्न वस्तुओं को दिखाकर मजदूरों का मानसिक परिवर्तन करना होगा और उन्हें संस्कृति और ज्ञान के ऊंचे दर्जे तक उठाना होगा। मेरा यह भी विश्वास है कि मजदूर आन्दोलन ऐसे तथा अन्य रचनात्मक कार्य, जैसे मजदूर सहयोग आन्दोलन नशाबन्दी आदि को अपने हाथ में लेगा तथा उनका विकास करेगा।

मजदूर राजनीतिक पार्टी

नये प्रकार के मजदूर कार्यकर्त्ता को इन सब बातों में शिक्षित-दीक्षित होना चाहिये तथा उसे राजनीतिक कार्यकर्त्ता भी होना चाहिये। मेरे ख़्याल से वह समय आ गया है जबकि भारत का मजदूर वर्ग अपनी एक पार्टी बनाये। भारतीय मजदूरों के लिये वह दिन बहुत महत्वपूर्ण होगा तथा उस दिन से इस देश में एक नये राजनीतिक जीवन का प्रारम्भ होगा।

दिवंगत बापू की स्मृति में विश्वव्यापी श्रद्धाञ्जलि

भारत के इस अगाध दुःख में संसार के सभी देश और सभी सरकारें आज अपनी अश्रु पूर्ण सम्वेदना भेंट कर रही हैं।

ब्रिटेन के राजा छठवें जार्ज ने लार्ड माउण्ट बेटेन के पास निम्नलिखित सन्देश भेजा है--

"मुझे और रानी को गान्धी जी की मृत्यु से गहरा सदमा पहुँचा है। कृपया भारतीय जनता से, उनकी और समस्त मानवता की इस महान क्षति के अवसर पर, कि जिसकी पूर्ति असम्भव है, हमारी सच्ची सहानुभूति प्रकट कीजिये।"

प्रेजिडेण्ट ट्रूमैन ने अपने एक वक्तव्य में कहा है—

"महात्मा गान्धी एक महान अन्तर्राष्ट्रीय नेता थे। उनके जीवन का कार्य स्वयं उनकी सब से बड़ी यादगार होगा। जनता को ऊंचा उठाने के लिये उन्होंने समस्त जीवन जो निस्वार्थ संघर्ष किया वह भारत के नेताओं के लिये, जिनमें से अधिकांश उनके शिष्य हैं, एक आदर्श का काम देगा। मैं जानता हूँ कि न केवल भारत की जनता बल्कि समस्त विश्व की जनता भ्रातृ भाव और शान्ति के उस महान कार्य को पूरा करने में अधिक सचेष्ट होकर लग जायेगी कि गान्धी जी जिसके साकार रूप थे और जिसके लिये उन्होंने अपने आपको उत्सर्ग कर दिया।"

ब्रिटेन के प्रधान-मंत्री श्री क्लीमेण्ट एटली ने अपने एक ब्राडकास्ट भाषण में कहा—

"महात्मा गाँधी केवल भारत के ही नहीं बल्कि विश्व के सबसे महान व्यक्ति थे। उनमें ईश्वर प्रदत्त अलौकिक प्रतिभा थी। गत एकचौथाई शताब्दी से भारतीय समस्या के हर पहलू पर उनका पूरा व्यक्तित्व छाया रहता था। महात्मा गांधी की हत्या करके यद्यपि उनके पार्थिव शरीर को शान्ति और भाईचारे का सन्देश देने से रोक दिया गया है किन्तु मुझे विश्वास है उनकी आत्मा उनके देशवासियों को सदा शान्ति का मार्ग दिखलाती रहेगी।"

मिश्र के बादशाह फ़ारूक़ ने निम्नलिखित सन्देश भेजा है—

"पूरबी दुनिया ने एक महान नेता खो दिया और दुनिया एवं मानवता ने एक महान पथ प्रदर्शक खो दिया।"

मिश्र के प्रधान मंत्री नोकराशी पाशा ने कहा—

"महात्मा जी की मृत्यु से भारत का शान्ति दूत चल बसा। उनकी मृत्यु ऐसे समय में हुई जब वे भारत में साम्प्रदायिक एकता की स्थापना में लगे हुये थे। आधुनिक दुनिया के वे सबसे महान पुरुष थे।"

अरब संघ के प्रधान मंत्री अज्ज़ाम पाशा ने अपने वक्तव्य में कहा--

"दुनिया का सर्व श्रेष्ठ पुरुष चल बसा। गान्धी जी की हत्या मानवता के विरुद्ध सबसे बड़ा अपराध है।"

दक्षिण अफ्रीका के प्रीमियर फ़ील्ड मार्शल स्मट्स ने अपने वक्तव्य में कहा—

"मैंने अत्यन्त गहरे दुख के साथ गान्धी जी की हत्या का समाचार सुना। मुझे विश्वास है समस्त दुनिया को इस समाचार से गहरा दुःख पहुँचा होगा। गान्धी जी मेरे समय के महान पुरुषों में से एक हैं। उनके साथ मेरे ३० वर्ष के परिचय में उनके प्रति मेरी श्रद्धा दिन प्रति दिन अधिकाधिक बढ़ती गई है। आज हमारे बीच से मानवेन्द्र चला गया और हम भारत के अशेष दुख में दुखी हैं।"

लेक सक्सेज़ से सुरक्षा कौंसिल के अध्यक्ष एम. फ़र्डिनेण्ड वान लैंगेनहोव ने कहा—

"उच्चादर्शों के प्रति अपनी अटूट भक्ति का महान उदाहरण महात्मा गान्धी ने दुनिया के समक्ष रखा। उनकी मृत्यु के बाद भी उनके जीवन और उनकी शिक्षा का प्रभाव व्यापक रूप से दुनिया पर पड़ता रहेगा। भारत और दुनिया के देशों में जो भी उनके प्रति वफ़ादार हैं वे उनकी अहिंसा और सद्भावना के आदर्शों का प्रचार करते रहेंगे कि जिन पर यूनाइटेड नेशन्स की बुनियाद पड़ी हुई है।"

जार्ज बर्नर्ड शा ने गांधी जी की मृत्यु का समाचार सुनकर कहा—

"मुझे नहीं ज्ञात था कि सम्पूर्ण अच्छाई भी किसी की आंखों में इतना खटक सकती थी।"

भूत पूर्व भारतमंत्री लिओपोल्ड अमेरी ने कहा—

"पार्टी का भेद भाव छोड़कर इस दारुण घटना से आज प्रत्येक अंग्रेज को गहरा शोक है। इस बात को सोच कर अत्यन्त दुःख होता है कि जिसने सारे जीवन साम्प्रदायिक एकता का प्रचार किया उसी के जीवन का साम्प्रदायिक कटुता द्वारा अन्त कर दिया गया।"

लार्ड लिस्टोवेल ने कहा—

"यह एक दुर्घटना है। महात्मा गान्धी का निधन न केवल भारत का बल्कि समूचे विश्व का निधन है। आधुनिक दुनिया को शान्ति का सन्देश सुनाने वाले वे सर्वोच्च व्यक्ति थे।"

चीनी सरकार की ओर से डाक्टर हालिंगटन तोंग ने नीचे लिखा वक्तव्य दिया है—

"चीनी सरकार को महात्मा गान्धी की दुख जनक-मृत्यु का समाचार सुनकर गहरा आघात पहुँचा। एक महान आध्यात्मिक नेता हमारे बीच से छीन लिया गया। दुनिया इस क्षति की पूर्ति नहीं कर सकती। महात्मा गान्धी भारतीय स्वतंत्रता के निर्माता थे। बिना उनके वीरतापूर्ण नेतृत्व और त्याग के भारत अभी स्वतंत्रता के आदर्श से कहीं पीछे पड़ा रहता। अपनी जनता के उच्चादर्शों के वे साकार प्रतीक थे। महात्मा गान्धी को उस समय गोलियों का शिकार बनाया गया जिस समय वे भारत की साम्प्रदायिक एकता का पुण्य-प्रयत्न कर रहे थे। भारतीय एकता के निमित्त उनकी मृत्यु ने उन्हें अत्यन्त उच्च शिखर पर पहुँचा दिया। चीन इस दुःख को अपना दुख समझता है। महात्मा गान्धी एक महान एशियाई थे। भावी पीढ़ियों के लिये हमेशा वे प्रकाश का काम देंगे।

चीनी सरकार के मंत्री डाक्टर टी० एफ़ सियांग ने कहा—

"महात्मा जी की मृत्यु से एशिया ने अपना सर्वश्रेष्ठ जीवित सन्त खो दिया। इस प्राचीन महाद्वीप का ज्ञान और सभ्यता जितनी महात्मा जी के अन्दर मूर्तरूप हुई थी उतनी किसी के अन्दर नहीं। उनके आदर्श समस्त विश्व के कल्याण के लिये थे।"

सोवियत् रूस के उप पर-राष्ट्र सचिव आन्द्रे ग्राम्को ने कहा—

"सोवियत् की ओर से महात्मा गान्धी की दुःखद मृत्यु पर भारतीय जनता के प्रति मैं अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करता हूं। भारत के सर्वोच्च नेता की हैसियत से गान्धी जी ने भारत के इतिहास पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है।"

इटली के पर राष्ट्र सचिव काउण्ट कौरिओ स्फोर्जा ने रायटर के प्रतिनिधि से कहा—

"महात्मा गान्धी की हत्या उस हैवानी वातावरण का ही परिणाम है जो हमारे चारों ओर व्याप्त है। यूरोप ने राष्ट्रीयता का आविष्कार किया। राष्ट्रीयता के ज़हर ने आज एशिया और अफ्रीका में भी प्रवेश किया है और आज इन दोनों महाद्वीपों पर भी क़त्ल और खून के धब्बे लग रहे हैं।"

फ्रान्स की नैशनल असेम्बली के स्पीकर मोशिये लेव्यून ने कहा—

"महात्मा गांधी एक महान देशभक्त थे। वे एक महान विचारक थे। उन्होंने मनुष्यों को यह बताया कि प्रेम घृणा से कहीं अधिक दृढ़ होता है।"

फ्रान्स के प्रीमियर मोशिये राबर्ट स्कूमर ने कहा—

"मैं अपनी ओर से और अपनी सरकार की ओर से यह कह सकता हूँ कि इस दुःसंवाद से हमें बड़ा गहरा दुःख पहुंचा है। हम उनकी स्मृति में आनत मस्तक होकर यह आशा करते हैं कि उनकी मृत्यु से उनके देश को दुर्दिन न देखने पड़ेंगे।

यूक्रेन के पर राष्ट्र सचिव वेसिली तारासेङ्को ने कहा—

"गान्धी जी ने अपने अनुयाइयों को यह विश्वास दिला दिया कि घरेलू झगड़ों से जनता का हित नहीं होता। इनसे केवल शोषक वर्ग का ही हित हो सकता है।"

भूतपूर्व ब्रिटिश प्राइम मिनिस्टर विन्स्टन चर्चिल ने कहा—

"इस घृणित कृत्य से मेरे हृदय को गहरी चोट पहुंची है।"

चेकोस्लोवेकिया के राष्ट्रपति बेनेस ने अपने वक्तव्य में कहा—

"संसार को सद् प्रवृत्तियों की ओर ले जाने वाले व्यक्तियों ने गान्धी जी की मृत्यु से अपना एकमात्र मार्ग

प्रदर्शक खो दिया। गान्धी जी की मृत्यु से न केवल भारत ने बल्कि दुनिया ने अपना आध्यात्मिक नेता खो दिया।"

संयुक्तराष्ट्र अमरीका के वैदेशिक मन्त्री जार्ज मार्शल ने अपने वक्तव्य में कहा—

"गान्धी जी विश्वात्मा के मददगार थे। उनके निधन से अमरीका को भी उतना ही अगाध दुःख है जितना भारत को।"

आयरलैण्ड के प्रीमियर इमान डी वेलरा ने गान्धी जी की मृत्यु पर अपना वक्तव्य देते हुये कहा—

"भारतीय जनता को आज महान दुःख है और हम उनके इस दुख में हाथ बटाते हैं। आज उन्होंने अपना ऐसा नेता खो दिया जिसने उन्हें आज़ादी के दरजे तक पहुँचाया। हमारी यह प्रार्थना है कि इस महान बलिदान से भारतवासी भाईचारे की भावना को दृढ़ता से अपना सकें।"

कनाडा के प्राइम मिनिस्टर मैकेञ्जी किङ्ग ने कहा—

"यह कितने महान दुःख की बात है कि जिस महात्मा ने सारे जीवन हिंसा से बचने का उपदेश दिया आज हिंसा द्वारा ही उसका जीवन समाप्त कर दिया गया।"

पोप ने वैटीकान सिटी से निम्नांकित सन्देश दिया है—

"सद्भावना और सद् प्रवृत्तियों के आगार गान्धीजी की मृत्यु से न केवल भारत राष्ट्र को बल्कि विश्व को भीषण क्षति पहुँची है।"

स्वीडेन के प्रीमियर तागे अर्लेण्डर ने गान्धी जी की निर्मम हत्या पर कहा—

" गान्धी जी की मृत्यु से आज हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र को अगाध दुःख है। गान्धी जी की मृत्यु से आज दुनिया ग़रीब होगई।"

पुर्तगाल के प्रेसीडेण्ट मारशल ओस्कर कारमोना ने कहा—

"महात्मा गान्धी के उपदेशों के प्रकाश में दुनिया को अपनी अन्तरात्मा का आभास प्राप्त होरहा था। उनकी मृत्यु से आज सभ्य संसार में अन्धकार व्याप्त हो गया है।"

आस्ट्रेलिया के प्राइम मिनिस्टर जोसेफ़ चीफ़ले ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया है—

"आस्ट्रेलिया की जनता और सरकार को गान्धी जी की शोकजनक मृत्यु से अगाध दुःख पहुँचा है। आस्ट्रेलिया की जनता गान्धी जी को सदा याद करेगी कि वे मानवता के सहारा और शान्ति के उपासक थे।"

बरमा के प्राइम मिनिस्टर थाकिन नू ने अपने सन्देश में कहा—

"बरमा की सरकार और जनता महात्मा जी की हत्या के भयकर संवाद से क्षुब्ध है। भारत का दुःख बरमा का दुःख है। आज समस्त बरमा शोक ग्रस्त है। समस्त बरमा में आज हड़ताल है। बरमी जनता भारत के अगाध दुःख मे पूरी तरह दुःखी है।"

चीन के राष्ट्रपति चियाङ्ग काइ-शेक और मैडम-चियाङ्ग काइ-शेक ने निम्नलिखित सन्देश भेजा है—

"महात्मा जी की हत्या का संवाद सुनकर हम स्तब्ध रह गये और हमें गहरा दुःख पहुंचा। इस दुखान्त घटना की बात सुनकर कलेजा फटता है कि जिस महान सन्त ने अहिंसात्मक उपायों द्वारा शान्ति स्थापना का अथक प्रयत्न किया वह हिंसा का लक्ष्य बनाया गया। चीन की जनता इस महान दुःख में भारत की जनता के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रकट करती है।"

जापान के सम्राट मिकादो हिरोहितो ने सन्देश देते हुये कहा—

"विश्व के लिये यह एक महान शोक जनक घटना है।"

इण्डोनीशिया के राष्ट्रपति शिवकर्ण और उप-प्रधान-सचिव डाक्टर मोहम्मद हत्ता ने निम्न लिखित सन्देश दिया

"इण्डोनीशिया का प्रत्येक जन आज इस अगाध दुख से दुखी है। भारत का दुःख इण्डोनीशिया का दुःख है, नहीं, वह समस्त मानवता का दुःख है।"

इराक़ के रीजेण्ट ने निम्न लिखित सन्देश दिया है—

"महात्मा जी समस्त संसार में शान्ति के सबसे बड़े नेता थे। गान्धी जी की मृत्यु से न केवल भारत को बल्कि संसार को, संस्कृति को, मानवता को ज़बरदस्त धक्का लगा है। भारत के दुःख में मेरी दिली हमदर्दी है।"

सीरिया के राष्ट्रपति ने कहा—

"महात्मा जी की मृत्यु से आज दुनिया अनाथ हो गई। हमारी हार्दिक समवेदना भारत के साथ है।"

स्वीज़र लैण्ड के राष्ट्रपति ने कहा—

"महात्माजी हज़रत ईसा के साकार नमूना थे। उनके निधन से दुनिया ने अपना प्रकाश खो दिया। स्विज़र लैण्ड की जनता भारत के दुःख में दुःख बँटाती है।"

अफ़ग़ानिस्तान के प्राइम मिनिस्टर ने कहा—

"भारत के सर्व श्रेष्ठ नेता और संसार के सर्व श्रेष्ठ शान्ति दूत की इस निर्मम हत्या से आज समस्त अफ़ग़ान जनता क्षुब्ध है। भारत के इस महान दुःख में अफ़ग़ानिस्तान को गहरी हमदर्दी है।"

फ़िनलैण्ड के प्राइम मिनिस्टर ने कहा—

"महात्मा जी की निर्मम हत्या से आज फ़िनलैण्ड शोक-कातर है।"

नारवे के वैदेशिक मन्त्री ने कहा—

"इस मूर्खतापूर्ण जघन्य हत्या से, जिससे संसार का सर्वश्रेष्ठ महा पुरुष उठ गया। महात्मा जी ने सारे जीवन शान्ति की स्थापना और भाई चारे के प्रचार के लिये जो कुछ किया उसकी स्मृति नारवे में सदा सर्वदा बनी रहेगी।"

ब्राज़ील के वैदेशिक मन्त्री ने कहा—

"गान्धी जी के निधन से मानवता दुःखी है। इस हत्या से ब्राज़ील को उतना ही शोक है जितना भारत को।"

सिंहल के प्राइम मिनिस्टर सेनानायक ने कहा—

"महात्मा जी की असामयिक मृत्यु से दुनिया ने अपना सर्व श्रेष्ठ नेता खो दिया। किन्तु मुझे पूरा विश्वास है गान्धी जी का सन्देश अमर है और वह दुनिया को शान्ति और भाईचारे की ओर ले जायगा।"

वाइटनाम के प्रधान मंत्री ने कहा—

"महात्माजी की मृत्यु से एशिया का चमकता हुआ सूर्य अस्त होगया किन्तु वाइटनाम की जनता सदा गान्धी जी के आदर्शों से प्रेरणा प्राप्त करती रहेगी।"

ईरान के बादशाह मोहम्मद रज़ा पहलवी ने अपने सन्देश में कहा—

"मैं, मेरी सरकार और ईरानी जनता को गान्धी जी की हत्या से बेहद दुःख है। अल्लाह हमें उनके नक़्शे क़दम पर चलने की सुबुद्धि दे।"

महात्मा गान्धी की मृत्यु पर जापान-विजेता जनरल मैकआर्थर ने अपने शोकोद्गार में कहा—

"आधुनिक दुनिया के इतिहास में इस पवित्रात्मा की निर्मम हत्या से बढ़कर लज्जा जनक और मूर्खतापूर्ण कोई दूसरी दुर्घटना नहीं हुई। अपने जीवन, अपने कार्य और अपने विचारों के द्वारा उन्होंने जो प्रतिपादन किया उससे उन्हें हम शान्ति का साकार रूप कह सकते हैं। यह मानवता का दुर्भाग्य है कि शान्ति का यह महान सन्देश वाहक गोलियों का निशाना बनाया गया। सभ्यता की प्रगति में, यदि उसे जीवित रहना है तो, गान्धी जी के विचारों को प्रत्येक मनुष्य को अपनाना होगा। हिंसा द्वारा अपने दृष्टिकोण का प्रतिपादन न केवल मौलिक रूप से ग़लत है बल्कि उसके अन्दर आत्म हत्या निहित है। गान्धी जी उन पैग़म्बरों में से थे जो अपने समय से पूर्व पैदा होते हैं।"

प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती पर्ल बक लिखती हैं—

"गान्धी जी की मृत्यु विजय की प्रतीक है अथवा हार की यह तो भारत की जनता ही बतायेगी। यदि उनकी मृत्यु से उन विचारों और लोगों को बल और दृढ़ता मिले जो गान्धी जी को सत्य मार्ग का अनुयायी समझते थे तो इससे भारत और मानवता दोनों का कल्याण होगा इससे विपरीत अवस्था भारत और संसार दोनों के लिये दुर्भाग्य साबित होगी।"

डेनमार्क के प्राइम मिनिस्टर हैन्स हेडाफ़्त ने शोक प्रकट करते हुये कहा—

"भारत को अपने आश्चर्य जनक नेतृत्व मे स्वतन्त्र करने के बाद इस वृद्धावस्था में उन्हीं के देशवासी ने उनकी नृशंस हत्या कर डाली। यह घटना उस पाशविक वातावरण को प्रतीक है जिससे हम दूसरे महायुद्ध ने लोगों के दिमाग़ ज़हरीले बना दिये हैं।"

प्रसिद्ध निग्रो नेता जार्ज पैडमोर ने अपने सन्देश में कहा—

"संसार की शोषित निग्रो जनता महात्मा गान्धी को उसी तरह अपना उद्धारकर्त्ता और मार्ग प्रदर्शक समझती थी जिस तरह भारतीय जनता। महात्मा जी के सन्देश मे निग्रो जनता को सदा बल और आशा प्राप्त हुई है। महात्मा जी की हत्या से हमारा सहारा उठ गया। अब हम किसको और आशापूर्ण नेत्रों से देखेंगे।"

इथियोपिया के सम्राट हैलसिलासी ने अपने सन्देश में कहा—

"अत्यन्त शोक के साथ हमने महात्मा गान्धी की दुःख जनक मृत्यु का समाचार सुना। न केवल भारत बल्कि समस्त विश्व, मानवता के इस महान नेता की मृत्यु पर शोक मनायेगा।"

अमरीका के प्रसिद्ध शान्तिवादी डाक्टर जान हेनेस होम्स ने उपदेश देते हुये कहा—

"महात्मा गान्धी गौतम बुद्ध के बाद सबसे महान भारतीय थे और हज़रत ईसा के बाद दुनिया के सबसे महान पुरुष थे।"

तुर्की के राष्ट्रपति इस्मत इनेनु ने कहा—

"महात्मा गान्धी का निधन समस्त मानवता का दुर्भाग्य है।"

आग़ा ख़ां ने सन्देश दिया—

"न केवल भारत के लिये बल्कि समस्त विश्व के लिये इससे अधिक दुःख जनक और भयंकर कोई दूसरी दुर्घटना न हो सकती थी।"

पाकिस्तान के गवर्नर जनरल क़ायदे आज़म जिन्नाह ने कहा—

"गान्धी जी के ऊपर इस घातक क्रूर हमले का समाचार सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। हमारे जो भी राजनैतिक मतभेद रहे हों निस्सन्देह वे हिन्दू जाति के महानतम पुरुष थे और उन्हें उनकी अगाध श्रद्धा और आदर प्राप्त था। इस महान पुरुष की मृत्यु से जो शून्य हो गया है उसका भरना बहुत कठिन है।"

संसार के प्रत्येक देश से और देशों के प्रत्येक कोने से आज दुख और सहानुभूति के हज़ारों सन्देश आ रहे हैं। हे ईश्वर! हमें बल और सुबुद्धि दो कि हम अपने महान गुरु और पूज्य पिता बापू के बताये हुये मार्ग पर चल सकें।

यह अरथी भारत माता की!

श्री दिनकर

कैसा अभाग्य! अपने हाथों ही
हाय, स्वयं हम छले गये;
यह भी पूछें किस भाँति पिता!
क्यों हमें छोड़ तुम चले गये?
पापी तूने क्या किया हाय!
किस पर यह कुत्सित वार किया
यह बज्र गिराया कहाँ? हाय!
किसका दारुण संहार किया!

यह देख, फटी किसकी छाती!
पहचान, कौन बेहोश गिरा!
किसकी किस्मत में आग लगी?
किसका उगता सौभाग्य फिरा?
यह लाश मनुज की नहीं,
मनुजता के सौभाग्य-विधाता की
बापू की अरथी नहीं, चली
यह अरथी भारत माता की!

आत्मग्लानि!

श्री मैथिली शरण गुप्त

अरे राम! कैसे हम झेलें अपनी लज्जा उसका शोक!
गया हमारे ही पापों से अपना राष्ट्र-पिता परलोक!

तर्पण !

श्री नागार्जुन

बापू,
जिस बर्बर ने
कल किया तुम्हारा खून पिता,
वह नहीं मराठा हिन्दू है,
वह नहीं मूर्ख या पागल है,
वह प्रहरी स्थिर-स्वार्थों का
वह जागरूक वह सावधान
वह मानवता का महाशत्रु
वह हिरण्यकशिपु,
वह अहिरावण,
वह दशकन्धर,
वह सहस्रबाहु,
वह मनुष्यता के पूर्णचन्द्र का सर्वग्रासी—
महाराहु,
हम समझ गये !

चटसे निकाल पिस्तौल
तुम्हारे ऊपर कल
वह दाग गया गोलियाँ कौन !
हे परमपिता हे महामौन !
हे महाप्राण, किसने तेरी अन्तिम साँसें
बरबस छीनीं भारत-मां से
हम समझ गये !

जो कहते हैं उसको पागल
वह झोंक रहे हैं धूल हमारी आंखों में !
वह नहीं चाहते परम क्षुब्ध जनता
घर से बाहर निकले
हो अंध ध्वस्त
इन सम्प्रदायवादी दैत्यों के विकट खोह !
वह नहीं चाहते, पिता तुम्हारा श्राद्ध:
ओह !

भूखे रहकर
गंगा में घुटने भर धंसकर
हे वृद्ध पितामह

तिल-जल-से
तर्पण करके
हम तुम्हें नहीं ठग सकते हैं !
यह अपने को ठगना होगा !

शैतान आगया रह-रह हमको भरमाने
अब खाल ओढ़कर तेरी सत्य-अहिंसा की
एकता और मानवता के
इन महाशत्रुओं की न दाल गलने देंगे।
हम नहीं एक चलने देंगे।
यह शक्ति और समता की तेरी दीपशिखा
बुझने न पायगी क्षणभर भी
परिणत होगी आलोकस्तम्भ में कल-परसों
मैदानों के काँटे चुन-चुन
पथ के रोड़ों को हटा हटा
तेरे उन अगणित स्वप्नों को
हम रूप और आकृति देंगे !
हम कोटि-कोटि
तेरी औरस संतान पिता।

बापू का महा-प्रयाण !

— सम्पादकीय

अपने जिन देशवासियों के कल्याण के लिये बापू आजीवन निष्काम सेवा करते रहे उन्हीं में से एक ने बापू की निर्मम हत्या कर डाली।

शुक्रवार ३० जनवरी सन् १९४८ को सायंकाल ५ बजकर ३१ मिनट पर, जिस समय बापू अपनी नई दिल्ली के निवास स्थान बिड़ला-भवन के लान पर प्रार्थना के लिये जा रहे थे, नाथूराम विनायक गोडसे नामक एक महाराष्ट्र युवक ने बापू की चरण-धूलि लेने के बहाने नीचे झुककर रिवाल्वर निकाला और बापू पर चार बार गोलियाँ चलाईं। दो गोलियां बापू के पेट पर और एक सीने पर लगी। बापू ज़ख्मी होकर गिरने लगे किन्तु गिरने से पूर्व उन्होंने ओठों पर मुस्कराहट लाकर अपने हत्यारे के हाथ जोड़े। उनकी छाती से रक्त का फ़व्वारा छूट रहा था। उनकी पौत्रवधू आभा और पौत्री मनु गान्धी ने उन्हें थाम लिया। इसके बाद उन्हें बिड़ला भवन के अन्दर ले जाया गया। ५ बजकर ४५ मिनिट पर डाक्टर आये किन्तु ५ बजकर ५७ मिनिट पर भारत को अनाथ और सारे विश्व को अंधेरा करके बापू की आत्म-ज्योति महा-ज्योति में विलीन होगई।

उस दिन भी ठीक शुक्रवार था जब आज से १९१५ वर्ष पूर्व नाज़रथ के महान तपस्वी हज़रत ईसा को भी इसी तरह उनके देशवासियों ने सूली पर लटकाया था। और शायद अपने समय के महापुरुषों के साथ संसार इसी तरह का सुलूक करता है। आज से २७०० वर्ष पूर्व ज़रथुस्त्री ईरान ने अपने पैग़म्बर ज़रथुस्त्र को अहुरमज़्द की उपासना करते हुये क़त्ल कर दिया था। आज से २५०० वर्ष पूर्व अपने महान तपस्वी सुकरात को यूनानियों ने ही ज़हर का प्याला दिया था। हज़रत ईसा से लेकर अब्राहम लिंकन तक सैकड़ों ही महापुरुषों को इस पतित संसार ने सूली पर लटकाया है। महापुरुषों के अन्त की उस परिपाटी की भारत ने केवल पुनरावृत्ति ही की है।

जिस समय उस शुक्रवार की संध्या को टेलीप्रिंटर और रेडियो के तारों ने समाचार दिया कि गान्धी जी मरणासन्न हैं, गान्धी जी का प्राणान्त हो गया। तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो देश के हृदय की धड़कन बन्द हो गई ! एक हृदय विदारक मौन देश के कोने कोने में व्याप्त हो गया। और उसके बाद सहसा कोटि-कोटि कण्ठ दारुण विलाप में फूट पड़े। अश्रु बरसाते हुये करोड़ों व्यक्तियों के ओठों से रह रह कर गान्धी जी ! गान्धी जी ! की अस्फुट ध्वनि निकलने लगी। हृदय इस बात को स्वीकार करने से इनकार करते थे कि गान्धी जी सदा के लिये चले गये ! रह रह कर हृदय प्रश्न करते थे कि—क्या यह सम्भव है ? और आज हर कहीं और हर व्यक्ति अपने चारों ओर एक काटने वाला शून्य देख रहा है। मानवता की अन्तिम ज्योति विलीन होगई ! किन्तु क्या गान्धी जी इस तरह मर सकते हैं ? नहीं कदापि नहीं ! जिन्होंने हमारे देश को इतना दृढ़ विश्वास दिया क्या वे मर सकते हैं ? नहीं, कदापि नहीं। वे कोटि-कोटि भारतवासियों के हृदय में सदा सर्वदा के लिये जीवित रहेंगे।

साबरमती और सेवाग्राम का सन्त, दाण्डी का वीर सेनापति, और नोआखाली का एकाकी यात्री, जिसका सम्पूर्ण जीवन उत्सर्ग और तपस्या का जीवन रहा—कभी नहीं मर सकता। अपनी कीर्ति की नसैनी से वे केवल आकाश की ओर चले गये हैं।

उनके पार्थिव शरीर को यमुना के किनारे अग्नि की भेंट कर दिया गया। अब वे युग युग के अधिवासी हो गये। जब जब भी हमारे देश की आत्मा को दारुण पीड़ा होगी वे हमारे राष्ट्रपिता की हैसियत से हमें सदा प्रेरणा और प्रोत्साहन देते रहेंगे।

चार दिन के ग़म के बाद दुनिया फिर अपने रोज़-मर्रा के काम-काज में लग जायगी। हम सब फिर अपने भोग-विलास और छोटे-छोटे लड़ाई-झगड़ों में लग जायगे। किन्तु इस पवित्र वियोग के समय हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि हमने क्या खो दिया। किसी को दोष देने का यह समय नहीं है। उस पागल आदमी को भी नहीं जिसकी गोली से गान्धी जी के प्राण गये और पवित्र रक्त से हमारी असफलता की कहानी लिखी गई। हत्यारे की गोली के लक्ष्य गान्धी जी नहीं थे। उसका निशाना तो हमारा राष्ट्रीय जीवन था और

प्रत्येक भारतवासी को आज यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि गोली लगने से पहले ही देश की दारुण अवस्था को देखकर दुख और उदासी से उनका दिल फट चुका था ! जिस देश को वे कीर्ति के शिखर तक ले जाना चाहते थे उसके नैतिक अधः पतन को देखकर उन्हें भयंकर यातना हो रही थी। आज उनके महा परिनिर्वाण के बाद क्या साम्प्रदायिक कटुता, हिंसा और घृणा का वातावरण फिर से लौट आयेगा ? क्या संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष ने इस घृणा-भाव को मिटाने के लिये ही अपने प्राणों का बलिदान नहीं किया ? क्या अब भी हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-मेहतर एक दूसरे से घृणा करते रहेंगे ? क्या हम गांधी जी के अधूरे काम को पूरा करने की प्रतिज्ञा नहीं करेंगे ? क्या हम उनके हृदय की आकांक्षा के अनुसार नई दुनिया को नहीं गढ़ेंगे ? यदि हम यह नहीं करते तो हम अपने उस महान गुरू के प्रति विश्वासघात करेंगे। हम अपने उस राष्ट्र-पिता की अयोग्य संतान कहलाएंगे। हम अपने मुख पर लगी हुई कालिख को न धो सकेंगे।

गोडसे का जघन्य कृत्य पागल व्यक्ति की कुत्सा नहीं है। गोडसे का दिमाग़ उस ज़हरीले वातावरण से इस महापाप के लिये प्रोत्साहित हुआ जो आज हमारे देश में व्याप्त है और हम सबने जिस अंश में भी इस ज़हरीले वातावरण में योगदान दिया है उतने अंश में हम में से प्रत्येक व्यक्ति इस महापाप का भागीदार है। आज हम में से प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अपने हृदय को टटोलकर देखना चाहिए कि हमारे अन्दर कहां तक नफ़रत का ज़हर व्याप्त है और जिस अंश में भी वह है हमें उसे सख़्ती के साथ अपने दिलों से निकाल कर फेंकना होगा।

विदा राष्ट्र-पिता ! सम्पूर्ण राष्ट्र, नहीं वरन् सम्पूर्ण संसार तुम्हारी बिदाई पर आज शोकाकुल है। हमारी सारी खुशियाँ समाप्त हो गई हैं, केवल शेष है तुम्हारे वियोग का दारुण पश्चात्ताप ! किन्तु यह पश्चात्ताप राष्ट्र के कलुष को धो रहा है। वह हमारी आत्माओं को शुद्ध और पवित्र कर रहा है। माँएँ अपने दुधमुँहे बच्चों को तुम्हारा नाम लेना सिखाएंगी। देश और संसार के युवक तुम्हारे चरण-चिह्नों पर चलने का प्रयत्न करेंगे। राजनीतिज्ञ तुम्हारे सिखाये हुये ज्ञान के प्रकाश में अपने गम्भीर निर्णय करेंगे। तुम्हारे ओठ यद्यपि बन्द होंगे किन्तु तुम्हारे उपदेशों का अमृत समस्त संसार को चेतावनी देता रहेगा कि सत्य और अहिंसा में ही विश्व का कल्याण निहित है। प्रेम और भाईचारे की पुकार चारों ओर गूँजेगी। यद्यपि तुम्हारी आवाज़ आज शान्त हो गई है किन्तु उसकी प्रतिध्वनि आज अखिल विश्व में छाई हुई है। मृत्यु विदाई की सूचक है किन्तु तुम मृत्यु के उपरान्त भी विश्व के नेता हो। तुम सुदूर क्षितिज से उदास किन्तु दया पूर्ण नेत्रों से हमें लड़खड़ाते हुये अपने चरण-चिह्नों पर चलते देखते होगे। तुम्हारा महान् बलिदान अपनी दृढ़ता और गौरव में अनुपम है। मानवता तुम्हें अपने विजेता पुत्र के रूप में अपने हृदय के सिंहासन पर बिठायेगी। राष्ट्र-पिता, राष्ट्र-गुरू, राष्ट्र सेनापति और राष्ट्र-उद्धारक अपने इस महा परिनिर्वाण के मुहूर्त में हम कोटि कोटि श्रद्धानत मानव तुम्हारे चरणों में अन्तिम प्रणाम करते हैं !

गान्धी जी ने साम्प्रदायिक शान्ति के लिये अपने प्राणों का बलिदान किया। यह एक दुर्भाग्य की बात है कि भारत में किसी प्रकार की साम्प्रदायिक दुर्भावना मौजूद हो। हिन्दू धर्म समस्त प्राणियों को ओर समता और भ्रातृभाव का उपदेश देता है और इस्लाम का अर्थ ही शान्ति है। यह साम्प्रदायिक दुर्भावना का भूत ही गान्धी जी को खा गया। इसी दुर्भावना की वेदी पर गान्धीजी बलिदान हुये। जो गोली शान्ति के पैग़म्बर के पतले दुबले शरीर पर छोड़ी गई थीं उनका निशाना साम्प्रदायिक एकता थी। आज यदि हमें गान्धी जी की हत्या का वास्तविक दुख है तो हम इस बात की प्रतिज्ञा करें कि हम इस साम्प्रदायिक दुर्भावना को जड़मूल से नष्ट करेंगे। यदि हमने ईमानदारी के साथ इस ओर क़दम बढ़ाया तो निश्चय ही गान्धी जी की आत्मा स्वर्ग से हमें आशीर्वाद देती रहेगी और हमारी कल्याण कामना करती रहेगी। भारत राष्ट्र का यह ज़ोरदार नारा होना चाहिये—

साम्प्रदायिक कटुता को जड़मूल से उखाड़ कर फेंक दो !
साम्प्रदायिक ऐक्य की विमल धारा प्रवाहित करो !

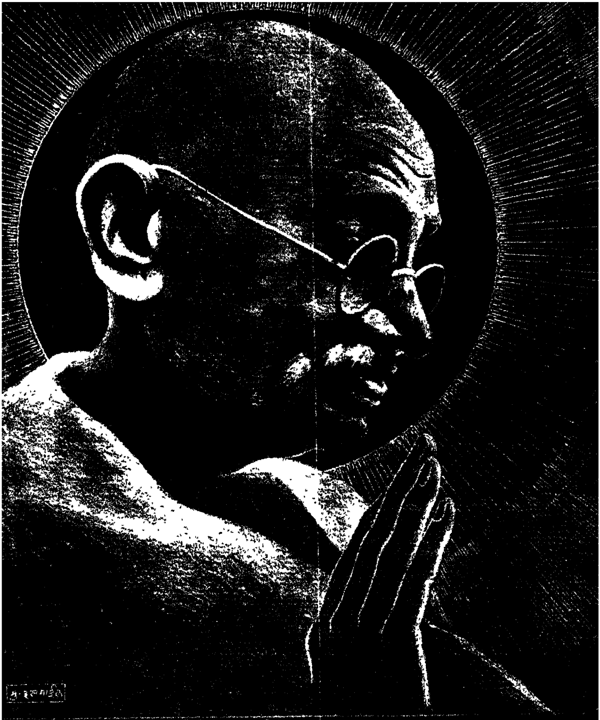


विश्ववाणी प्रकाशन

मूल्य दो रुपया

इस प्रगति शील कहानी समह मे डाक्टर रायपुरी ने समाज के पतित, दलित और सर्वहारा वर्ग की वास्तविक परिस्थिति का वर्णन अत्यन्त मनो-रंजक और कारुणिक शैली मे किया है। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी समाज की चिता में धधकती हुई मानवी लपट है।

[illegible] और प्रकाशक [illegible] विश्ववाणी प्रेस [illegible] इलाहाबाद।



विश्ववाणी

श्रद्धाञ्जलि-अङ्क



विषय-सूची

फरवरी-मार्च : १९४८

नोटः—इस अङ्क की सामग्री के सङ्कलन के लिये हम अपने कृपालु लेखकों के अतिरिक्त 'हरिजन सेवक', 'प्रदीप', 'योगी', 'निराला', 'अर्जुन', आवाज़', 'समाज', 'शुभचिन्तक' 'देशदूत', 'हिन्दुस्तान हैंडर्ड', 'नेशनल हेरल्ड' के कृतज्ञ हैं। हम आल इण्डिया रेडियो बम्बई और नई दिल्ली के भी कृतज्ञ हैं—सम्पादक।



चिर निद्रा में मग्न बापू



बापू की पवित्र काया महाज्वाला में समर्पित



गुरुदेव और बापू

[श्री कनु गान्धी के सौजन्य से]

विश्ववाणी

वर्ष ८, भाग १५]   फरवरी-मार्च : १९५८   [अङ्क २-३ पूरे ८७

महा-मानव गान्धी

स्व० गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सन् २१ में जब गांधी जी ने एक साल के भीतर ही स्वराज्य की आशा दिलाई, तब मुझे लगा कि एक महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए महात्मा जी ने हम लोगों के चरित्र की एक ऐसी आन्तरिक दुर्बलता को सन्तुष्ट करने के लिये चुन लिया है, जो हम लोगों के राजनैतिक जीवन की युग युग की विफलता की उत्तरदायी है। मैंने महात्मा जी को जनता के विश्वास की अतार्किक शक्ति का अनुचित लाभ उठाने के लिये दोषी ठहराया। राष्ट्र के नायक के रूप में महात्मा जी की कल्पना मेरे दिल में पहली बार इसी तरह शुरू हुई; किन्तु मेरे सौभाग्य से वहीं उसका अन्त हो गया।

सभी प्रगतिशील महान व्यक्तियों की तरह गान्धी ज़ी को भी अपनी रचनात्मक इच्छा शक्ति को पूरी तरह सामञ्जस्य करने के लिये एक बहुत बड़े माध्यम की ज़रूरत थी। जब उन्होंने देश को असंख्य सामाजिक खाइयों, दीवारों और ऊसर राजनीति के असीम सूनेपन को पार करके स्वतंत्रता तक पहुँचाने की बहुत बड़ी ज़िम्मेवारी ली थी, उस समय उन्हें अपने लिये इस माध्यम का विकास करना ही पड़ा। इस कोशिश ने उनके व्यक्तित्व को समृद्ध और परिपक्व बना दिया और उनकी प्रतिभा के वास्तविक रहस्य को प्रकाशित कर दिया। तभी से एक कलाकार के रूप में, उनके मत के सिद्धांतों और भ्रान्तियों से नहीं, किन्तु उनके असाधारण मस्तिष्क से परिचालित उनके आचरण से मैंने उन्हें पहचानना सीखा है। और उस रूप में जैसे जैसे मैं उन्हें पहचानता जाता हूँ, उनकी प्रभावपूर्ण मानवता पर मेरा विस्मय बढ़ता जाता है।

स्वयं तपस्वी होकर भी वे दूसरों के सुखों पर भौहें नहीं सिकोड़ते, किन्तु दिन रात उनके अस्तित्व को सजीव बनाने की चेष्टा करते रहते हैं। अपने जीवन में वह ग़रीबी का आदर करते हैं, किन्तु भारत की जनता के भौतिक कल्याण के लिये उनसे अधिक तत्परता से और किसी ने कोशिश नहीं की। क्रान्तिकारियों का उत्साह लेकर एक सुधारक के रूप में वे जिन इच्छाओं को उकसाते हैं, उन्हीं पर कठोर प्रतिबन्ध भी लगा देते हैं। मूर्ति पूजक भी और मूर्ति ध्वंसक भी, वे पुराने देवताओं को पवित्रता के धूलियम आलों में छोड़ देते हैं और प्राचीन पूजाओं को मानव के उपकार की ओर खींच लाते हैं। वर्णव्यवस्था का पालन स्वयं करते हुए भी उन्होंने उसके उस अङ्ग पर, जिसकी वह अधिक से अधिक रक्षा करना चाहती है, आघात किया है और जहाँ कोई दूसरा व्यक्ति तुरत ही जनता की आँखों से

उतर गया होता, वहां उनकी लोक प्रियता पर तनिक भी आंच नहीं आई।

वे विषय भोग के जीवन को मानव की नैतिक उन्नति का बाधक समझ कर उससे नफ़रत करते हैं और उससे उन्हें उतनी ही घृणा है, जितनी 'क्रूज़र सोनाता' (उपन्यास) के लेखक (टाल्सटाय) को थी किन्तु उन्हें टाल्सटाय की तरह उस वर्ग से जो उनके सम्बन्धियों को आकर्षित कर लेता है, कोई भी नफ़रत नहीं है। वास्तव में स्त्रियों के प्रति उनकी कोमलता उनके चरित्र की एक सर्वश्रेष्ठ और युक्तिपूर्ण विशेषता है और अपने देश की स्त्रियों में उन्होंने अपने आन्दोलन में सहायता देने वाली कितनी ही अत्यन्त बहुमूल्य सहकारिणियां पाई हैं।

वे अपने अनुयाइयों को बुराई करने वालों से घृणा किये बिना ही बुराई से घृणा करने का आदेश देते हैं। यह एक असम्भव सा उपदेश लगता है; किन्तु उन्होंने इसे अपने जीवन में सम्भव सीमा तक चरितार्थ किया है।

गान्धी जी के विषय में मुझे सबसे बड़ी विशेषता यह लगती है कि वे महान नैतिक सुधारक हैं; किन्तु इन सबसे अधिक वे महान पुरुष हैं। उनकी कोई क्रिया या उनका कोई पहलू उनकी मानवता को सीमित नहीं करता। उल्टे उनके सारे कामों को मानवता से ही स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती है। महान आशावादी होते हुए भी और अपने सारे आचरणों में अपने थोड़े से सिद्धान्तों को अमल करने के आदी होते हुए भी, वे वास्तव में मानवता के प्रेमी हैं, भावनाओं के नहीं, और इसी से अपनी क्रान्तिकारी योजनाओं में वे इतने सतर्क और सावधान हैं। यदि समाज के लिये वे किसी बलिदान का विधान करते हैं, तो पहले अपने आप पर ही उसकी परीक्षा करके देख लेते हैं। यदि कोई नया प्रयोग करना चाहते हैं, तो पहले स्वयं उसकी कठोरता सह लेते हैं। जब कि कितने ही समाजवादी इसी प्रतीक्षा में रहते हैं कि जब सबका सब छिन जाय, तब उन्हें त्याग करना पड़े। गान्धी सबसे पहले अपना सब कुछ होमकर तब दूसरों को त्याग करने के लिये कहने का साहस करते हैं।

साधनाओं की सत्यता और शुद्धता पर उनका जोर देना, जिससे कि उन्होंने अपनी अहिंसा का विकास किया है, उनकी गहन और दृढ़ मानवता का ही दूसरा स्वरूप है। क्योंकि वह इस बात की चेतावनी देता है कि मनुष्यों को व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से अपने अधिकारों के लिये युद्ध करते हुए मानवता के प्रति अपने प्रमुख कर्तव्य की अवहेलना नहीं करनी चाहिए, जिसका अर्थ यह है कि जीवन का आदर करना ही चाहिये। यह कहना है कि कुछ वर्गों के वर्तमान अधिकार या विशेषाधिकार शुरू में हिंसा से हासिल किये गये और हिंसा से ही, उनकी रक्षा की जा रही है, इसलिये फिर हिंसा से ही उनका नाश किया जा सकता है, यह तो एक अक्षय दूषित चक्र का निर्माण करना है, क्योंकि ऐसा कभी नहीं होगा, जबकि मनुष्य को अपनी तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के प्रति वास्तविक या फर्जी शिकायतें न हों और तब उस समय भी नैतिक कर्तव्यों से उसी प्रकार बचने की और अपने लक्ष्य तक रक्तपात के पथ से पहुँचने की वैसी ही चेष्टा करेगा, जैसी मनुष्य आज कर रहा है। उस दूषित चक्र को कहीं न कहीं तोड़ने का प्रथम श्रेय भारत को मिले। हो सकता है वे सफल न हों। हो सकता है, मनुष्यों को कुपथ से हटाने में वे भी वैसे ही असफल रहें, जैसे बुद्ध और ईसा रहे, किन्तु तब एक आदर्श जीवन के रूप में उनकी स्मृति युग युग तक अमर बनी रहेगी।

यमुना-तट की राख में से!

राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद

हमसे बोलने, हमें धीरज बँधाने, हमें बढ़ावा देने और हमारी रहनुमाई करने के लिये महात्मा गांधी आज हमारे बीच ज़िन्दा नहीं हैं। मगर क्या उन्होंने अक्सर हमसे यह नहीं कहा कि शरीर अस्थायी है और एक न एक दिन उसका नाश अवश्य होता है, और सिर्फ आत्मा ही अमर है और उसका कभी नाश नहीं होता? क्या उन्होंने हमसे यह नहीं कहा था कि जब तक भगवान को मेरे इस शरीर से काम लेना होगा, तब तक वह इसे बनाये रखेगा? हो सकता है कि उनकी आत्मा शरीर के बन्धनों से छूटकर ज़्यादा आज़ादी से काम करे और ऐसे साधन पैदा करे जो उनके अधूरे काम-को पूरा कर सकें। हो सकता है कि यमुना के किनारे पड़ी हुई उनकी राख में से ऐसी ताक़तें उठ खड़ी हों, जो ग़लतफ़हमी और अविश्वास के मारे कुहरे और बादल को उड़ा दें और शान्ति और मेल क़ायम करें, जिसके लिए वे जिये, उन्होंने काम किया और हाय! अन्त में हत्यारे की गोली के शिकार बने।

हिन्दू धर्म में या सच पूछिये तो इन्सानियत में जो महान् और श्रेष्ठ है, क्या वे उस सबके सा.र और साकार रूप नहीं थे? और तिस पर क्या वह एक हिन्दू का ही हाथ नहीं था, जिसने उस हृदय को अपनी गोली का निशाना बनाया, जो जाति, धर्म और देश की सीमाओं से परे था? इस पाप का मक़सद क्या हो सकता है? क्या यह हिन्दू धर्म को बचाने के लिए किया गया है? क्या इससे हिन्दू समाज की सेवा होगी? क्या ऐसा करने से हिन्दू धर्म बचा लिया गया? क्या इस तरह हिन्दू समाज की सेवा हो गयी? हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज के गिरावट भरे इतिहास के बेशुमार पन्नों को देख जाइये, आपको ऐसे बुरे और धोखे से भरे हुये काम का दूसरा उदाहरण नहीं मिलेगा। यह उस इतिहास पर अमिट कलंक है, जो किसी तरह नहीं धुलेगा।

हम दुःखी हैं। हम भौंचक्के-से हैं। तो क्या हम निराश हो जाँय? गान्धी जी का शरीर अब हमें देखने को नहीं मिलेगा। अब हम उनकी आवाज़ नहीं सुन सकेंगे। मगर क्या वे एक बेशक़ीमती मीरास हमारे लिये नहीं छोड़ गये हैं? अपने मार्ग में आगे बढ़ाने और सहारा देने के लिये क्या उन्होंने हमारी काफी रहनुमाई नहीं की और हमें काफी प्रेरणा नहीं दी है? हम संकट के समय उनकी ललकार हममें फिर से कर्तव्य की भावना जाग्रत करे। उन्होंने मिट्टी में से योद्धा पैदा किये। ग़ैरइन्साफ़ी, दमन और गुलामी के ख़िलाफ़ अपनी जीवन भर की लड़ाई में उन्होंने अपूर्व हथियारों का कुशलता से उपयोग किया। अच्छाई को क़ायम करने के लिए हिन्दुस्तान को वैसी ही बहादुरी की, वैसी ही ख़तरों की उपेक्षा करने की और उसी तरह नतीजों की तरफ़ से बेफ़िकर रहने की ज़रूरत है। गांधी जी ने उसे क़ायम करने के लिये अपनी जान दे दी। क्या हम गान्धी जी का, उनके अवसान के बाद उसी तरह अनुसरण नहीं करेंगे, जिस तरह हम उनके जीते जी करते थे?

यह क्रोध करने या बदला लेने का वक़्त नहीं है। गांधी जी के उपदेश में इनमें से किसी के लिये भी कोई अवकाश या जगह नहीं है। ज़रूरत इस बात की है कि हम आत्मा का हनन करने वाली उस संकुचित साम्प्रदायिकता को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने का पक्का निश्चय कर लें, जिसकी वजह से यह पाप सम्भव हुआ है। गांधी जी के सियासी, सामाजिक या आर्थिक कामों के हमेशा दो पहलू रहे हैं—नकारात्मक और स्वीकारात्मक। बुरी इच्छाओं का अवश्य ही ख़ात्मा कर देना चाहिये, ताकि अच्छी भावनाएँ उनकी जगह ले सकें। फ़िरक़ेवाराना अविश्वास और झगड़े ख़त्म होने चाहियें और आपसी मेल-मिलाप और भाईचारा क़ायम किया जाना चाहिये। यह गांधी जी की अन्तिम इच्छा थी। हमें उनकी यह इच्छा अवश्य पूरी करनी चाहिये और हम उसे पूरी करके रहेंगे।

विश्व-मानव : गांधी

श्रीमती सरोजिनी नायडू



विश्व के कोने कोने से आये संदेशों ने यह सिद्ध कर दिया है कि महात्मा गांधी विश्व के एक ऐसे मानव थे, जिसे शांति, न्याय और ईमानदारी के आदर्शों पर विश्वास करने वाले प्यार करते थे और पूजा की दृष्टि से देखते थे।

हम में से कुछ लोग महात्मा गांधी के साथ इतने घनिष्ठ सम्बन्ध में बंधे हुए थे कि हमारा और उनका जीवन एक दूसरे के अविच्छिन्न अंग थे। हम में से कुछ लोग सचमुच ही उनके साथ मर गये हैं। हम में से कुछ लोगों का उनकी मृत्यु से जीते-जी देहविच्छेद कर दिया गया है क्योंकि हमारे स्नायु, मांस-पेशियां, जीवनतन्तु, नसनाड़ियाँ, हमारे हृदय और रक्त उनके जीवन के साथ गुंथे हुए थे। किन्तु यदि हम निराश हो जायेंगे और यह मानने लगेंगे कि उनकी मृत्यु हो गई, यदि हम यह समझने लगेंगे कि उनके चले जाने से सब कुछ चला गया है तो हम द्रोह करके उनका साथ छोड़ने वाले बन जायंगे। हमारे विश्वास का, हमारी निष्ठा और आस्था का क्या मूल्य होगा यदि हम यह विश्वास करने लगें कि उनकी नश्वर देह के हमारे मध्य से उठ जाने से अब सब नष्ट हो गया है। क्या उनके उत्तराधिकारी, उनके आध्यात्मिक वंशज, उनके महान् आदर्शों की थाती संभालने वाले और उनके महान् कार्य को उनके पीछे चलाते रहने वाले हम जीवित नहीं हैं! दुख और विलाप का अब समय नहीं रहा। छाती पीटने और बाल नोचने का समय भी गुजर गया है। अब समय है जबकि हमें खम ठोक कर उन लोगों की चुनौती स्वीकार करनी चाहिये जिन्होंने महात्मा गांधी का विरोध किया।

हम उनके जीवित प्रतीक हैं, हम उनके सिपाही हैं, और युद्धक्रांत संसार में उनकी शान्ति-पताका फहराने वाले हैं। हमारी पताका है सत्य, हमारी ढाल है अहिंसा और हमारी तलवार है रक्तपात के बिना विजय करने वाली आत्मा की तलवार। क्या हमें अपने गुरू के पथ का अनुकरण नहीं करना है? क्या हमें अपने पिता की आज्ञा का पालन नहीं करना है? क्या हम उनके सिपाही नहीं हैं और क्या हम उसकी लड़ाई को विजयी नहीं बनायेंगे? क्या हम संसार को महात्मा गांधी का पूर्ण सन्देश नहीं देंगे? यद्यपि उनकी वाणी अब फिर उच्चरित नहीं होगी तो भी क्या हमारे कण्ठों में उनके सन्देश को वहन करने वाली छोटी-छोटी वाणियाँ नहीं हैं?

महात्मा गांधी का दुर्बल शरीर अग्नि शिखाओं में भस्म हो गया है, पर वे मरे नहीं हैं। पुरातन काल के ईसामसीह की तरह अपनी जनता की पुकार के उत्तर में, अपने पथप्रदर्शन, प्रेम, सेवा और प्रेरणा को जारी रखने के लिये संसार के आह्वान के उत्तर में वह फिर उठ खड़े हुए हैं।

१९१६ का साल था। कोई ३२ साल से ऊपर की बात है जब मैंने बापू को पहले पहल देखा था, और तबसे तो एक पूरा युग बीत गया है। लाज़मी तौर पर हम बीते हुये ज़माने की तरफ़ देखते हैं और बेशुमार यादें ताज़ा हो जाती हैं। हिन्दुस्तान के इतिहास में यह कितना अनोखा ज़माना रहा है! सारे उतार-चढ़ाव और हार जीत वाली इस सच्ची कहानी ने वीर रस के काव्य का अनोखा रूप ले लिया है। हमारी मामूली ज़िन्दगियों को भी रोमांचक कल्पना के प्रकाश ने छुआ, क्योंकि हम इस ज़माने में जिये, और हिन्दुस्तान के महान नाटक में कम या ज़्यादा हमने अपना पार्ट अदा किया।

यह ज़माना सारी दुनिया में लड़ाइयों, क्रान्तियों और हिलाने वाली घटनाओं का ज़माना रहा है। फिर भी हिन्दुस्तान की घटनायें उनसे बिल्कुल दूसरी सतह पर हुई थीं। अगर कोई बापू के बारे में काफ़ी जाने बिना इस ज़माने का अध्ययन करे, तो उसे ताज्जुब होगा कि हिन्दुस्तान में यह सब कैसे और क्यों हुआ! इसे समझाना कठिन है। बुद्धि के ठण्डे प्रकाश की मदद से यह समझना भी कठिन है कि हममें से हरएक मर्द या औरत ने जो कुछ किया, वह क्यों किया। कभी कभी यह होता है कि एक व्यक्ति या एक राष्ट्र भी किसी भावना या जोश में बहकर एक ख़ास ढंग का काम करता है। लेकिन वह जोश और वह भावना थोड़े समय बाद ख़तम होजाती है और व्यक्ति जल्दी ही कर्म और अकर्म की अपनी मामूली सतह पर लौट आता है।

इस ज़माने में हिन्दुस्तान के बारे में सिर्फ़ यही ताज्जुब की बात नहीं थी कि सारे देश ने एक ऊंची सतह पर काम किया, बल्कि यह भी थी कि उसने इतने लम्बे अरसे में लगातार कम या ज़्यादा उसी सतह पर काम किया। वह सचमुच तारीफ़ के लायक काम था। इसे तब तक आसानी से समझाया या समझा नहीं जा सकता, जब तक हम उस अचरज में डालने वाले व्यक्ति की तरफ़ नहीं देखते, जिसने इस ज़माने को बनाया है। एक बड़ी भारी मूर्ति की तरह बापू हिन्दुस्तान के इतिहास की आधी सदी में पांव फैलाकर खड़े हैं। वह



बड़ी भारी मूर्ति शरीर की नहीं, बल्कि मन और आत्मा की है।

हम बापू के लिये शोक करते हैं और अपने को अनाथ महसूस करते हैं। लेकिन उनके तेजस्वी जीवन को देखते हुये शङ्का मनाने को है ही क्या? सचमुच दुनिया के इतिहास में बिरले ही मनुष्यों के भाग में यह बदा होगा कि वे अपने ही जीवन में इतनी बड़ी कामयाबी देख सकें। बापू हमारी कमज़ोरियों और त्रुटियों के लिये दुःखी थे और हिन्दुस्तान को और ज़्यादा ऊँचाई पर न ले जाने का उन्हें अफ़सोस था। उस दुःख और अफ़सोस को हम आसानी से समझ सकते हैं। फिर भी कौन कह सकता है कि उनका जीवन असफल रहा? जिस चीज़ को उन्होंने छुआ, उसे कीमती और गुणवाली बना दिया। जो काम उन्होंने किया, उसका काफ़ी अच्छा नतीजा निकला—हालांकि शायद उतना बड़ा नहीं जितने की वे आशा करते थे। हम पर यही छाप पड़ती थी कि वे जो कोई काम हाथ में लेंगे, उसमें सचमुच असफल हो ही नहीं सकते। गीता के उपदेश के मुताबिक वे फल की इच्छा न रखते हुये स्थितप्रज्ञ की तरह उदासीन रहकर काम करते थे। इसलिये काम का फल उन्हें मिलता ही था।

कठिन कामों, हलचलों, और एकसी प्रवृत्ति वाले सामान्य जीवन से भिन्न अनेक साहसों से भरी हुई उनकी लम्बी ज़िन्दगी में बेसुरा राग शायद ही कभी

सुनाई पड़ता था। उनकी सारी विविध प्रवृत्तियों में ज्यादा मात्रा में ऐकरसता आती गई और उनके मुँह से निकलने वाला हर एक शब्द और हर एक चेष्टा इसमें ठीक तरह से जम गयी थी, और इस तरह बेजाने ही वे पूरे कलाकार बन गये; क्योंकि उन्होंने जीने की कला सीखी थी; अगरचे जीवन का जो ढङ्ग उन्होंने अख्तियार किया था, वह दुनिया के ढङ्ग से बहुत भिन्न था। इससे यह बात साफ़ हो गई कि सत्य और अच्छाई की लगन दूसरी चीज़ों के अलावा, जीवन में ऐसी कलात्मकता प्रदान करती है।

जैसे जैसे वह बूढ़े होते गये, उनका शरीर उनके भीतर की शक्तिशाली आत्मा का सिर्फ़ एक वाहन जैसा दिखाई पड़ने लगा। उनकी बात सुनते हुये या उनको देखते हुये लोग उनके शरीर को भूल जाते थे, और इसलिये जहां वे बैठते थे, वह जगह मन्दिर बन जाती थी, और जहां वे चलते थे, वह पूजा का स्थान बन जाता था।

उनके अवसान में भी एक अनोखी भव्यता और कला-पूर्णता थी। उन जैसे व्यक्ति के लिये और उनके जैसी ज़िन्दगी के लिये हर दृष्टिकोण से वह एक योग्य अन्त था। सचमुच उस मृत्यु से उनके जीवन का सबक ऊँचा उठ गया। मौत के समय वे अपनी शक्तियों से भरपूर थे, और प्रार्थना के वक़्त उनकी मृत्यु हुई, जबकि बेशक वे मरना पसन्द करते। दो फ़िरक़ों के बीच एकता क़ायम करने के लिये वे शहीद हुये। इसके लिये उन्होंने हमेशा काम किया था और ख़ास करके पिछले एक या ज्यादा बरसों से तो उन्होंने इसके लिये लगातार मेहनत की थी। वे अचानक मर गये, जिस तरह कि सभी लोग मरना चाहेंगे। उनके बारे में शरीर के घुलते जाने या लम्बे अरसे तक बीमार रहने की कोई बात ही पैदा नहीं हुई। ज्यादा उम्र में इन्सान की याददाश्त में जो कमी आ जाती है, वह भी उनमें नहीं आई। तब हम क्यों उनके लिये शोक करें? हमारी याद में वे उस 'गुरु' की तरह रहेंगे, जिनके डग अन्त तक फ़ुर्तीले रहे, जिनकी मुस्कान दूसरों के ओठों पर मुस्कान ला देती थी और जिनकी आंखों से हँसी छलकी पड़ती थी। उनकी शारीरिक और मानसिक शक्तियां अचूक थीं। अपने जीवन और मृत्यु दोनों में उनकी शक्तियां अपनी चरम सीमा पर पहुँची हुई थीं। वे हमारे मन में और जिस युग में रहते हैं, उसके मन में अपनी ऐसी तसवीर छोड़ गये हैं, जो कभी मिट नहीं सकती।

वह तस्वीर कभी धुँधली नहीं होगी। मगर उनकी सिद्धि इससे बहुत ज़्यादा है। उन्होंने हमारे मन और आत्मा के तत्त्वों में प्रवेश करके उन्हें बदला है और उनको नये ढङ्ग से तैयार किया है। गाँधी-युग की पीढ़ी का तो अन्त हो जायगा, मगर गांधी का वह असर बना रहेगा, और हर आनेवाली पीढ़ी को प्रभावित करता रहेगा, क्योंकि वह हिन्दुस्तान की आत्मा का एक अङ्ग बन गया है। अब इस देश में हम रूहानी तौर पर कंगाल होते जा रहे थे, बापू हमें समृद्ध और बलवान बनाने के लिये हमारे बीच में आये। और जो ताक़त उन्होंने हमें दी, वह एक दिन में या एक बरस की नहीं है, बल्कि उससे हमारी राष्ट्रीय विरासत में हमेशा के लिये भारी वृद्धि हो गई है।

बापू ने हिन्दुस्तान के लिये, दुनिया के लिये और हम ग़रीबों के लिये भी बहुत बड़ा काम किया है, और उन्होंने उसे आश्चर्यजनक रीति से अच्छा किया है। अब हमारी बारी है कि हम उन्हें या उनकी याद को धोखा न दें, बल्कि अपनी पूरी योग्यता के साथ उनके काम को आगे बढ़ाते रहें और जो प्रतिज्ञाएँ हमने इतनी बार ली हैं, उन्हें पूरा करें।

हमारा सूरज डूब गया!

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

वह सूरज जो हमें गर्म रखता और हमारी ज़िन्दगी में चमक लाता था, डूब चुका है। हम आज ठंड और अन्धकार में थरथरा रहे हैं। किन्तु वह डूबा सूरज हमें ऐसा अनुभव नहीं करने देगा। जब हम अपने हृदय को टटोलते हैं तो आज भी महात्मा गांधी द्वारा जलायी हुई प्रकाश-रेखाएँ मौजूद पाते हैं। और अगर ये वर्तमान रहीं तो हमारे इस देश से अंधकार दूर हो जायगा। उनका स्मरण कर और उनके बताए हुए मार्ग पर चल कर हम फिर से इस भूमि को रौशन करेंगे। हम लोग साधारण व्यक्ति हैं लेकिन उनकी प्रेरणा की सहायता

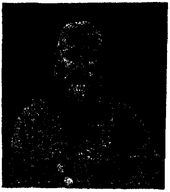
से हम निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ सकते हैं। गांधीजी की ऐसी हत्या पागलपन की एक पृथक् घटनामात्र नहीं। गत महीनों से देश में जो हिंसा और घृणा का वातावरण फैल गया है यह उसी का परिणाम है। हमें इस परिस्थिति का मुक़ाबला करना है, इससे जूझना है और इसके विरुद्ध तब तक संघर्ष करना है जब तक इसको हम जड़ से खत्म नहीं कर देते। जहां तक सरकार का सम्बन्ध है वह इसे खत्म कर देने में कोई कसर उठा न रखेगी। अगर हम उस हिंसा और घृणा का उन्मूलन करने में सफल न हुए तो हम गवर्नमेन्ट में रहने के योग्य नहीं, और न हम उस महान आत्मा के अनुयायी बनने के योग्य रहते हैं। यहां तक कि हम उनके प्रति श्रद्धांजलि प्रकट करने के योग्य भी नहीं ठहरते हैं। आनेवाली सदियों के लोग इस युग को याद करेंगे जब इस महात्मा का जन्म हुआ था और साथ ही वे हमें और हमारी भूमि को भी याद करेंगे। हम बहुत मामूली आदमी हैं। अतः हमें ऐसी कोशिश करनी चाहिये जिससे हम उस महान आत्मा के योग्य साबित हो सकें। दिवगत महान व्यक्तियों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करना एक प्रथा सी है। लेकिन मुझे शक है कि मैं या कोई भी इस कार्य के योग्य है क्योंकि व्यक्तिगत तौर पर तथा सरकार के प्रधान होने की हैसियत से मैं शर्म से गड़ा हुआ हूँ। शर्म इस बात की कि हम अपनी महानतम विभूति को बचाने में असमर्थ रहें ठीक उसी तरह जिस तरह गत दो महीनों में हम लोग अनेक निरीह जनता की रक्षा करने में असफल रहे। जिस व्यक्ति को हम सबसे अधिक प्यार करते थे, उसी की हम हिफाजत न कर सके। यह हम सबों के लिये घोर शर्म की बात है। एक हिन्दुस्तानी होने के नाते मैं शर्मिन्दा हूँ कि एक हिन्दुस्तानी द्वारा यह कुकृत्य हुआ। एक हिन्दू के नाते मैं शर्मिन्दा हूं क्योंकि एक हिन्दू ने हत्या की और उसकी जो हिन्द का सर्वश्रेष्ठ और युग का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति था। हम महान व्यक्तियों की प्रशंसा नपे तुले शब्दों में करते हैं लेकिन हम इस महात्मा की प्रशंसा कैसे करें। हम समझते हैं कि हमारे पास उनकी प्रशंसा के शब्द नहीं हैं क्योंकि अपने जीवनकाल में उन्हें इतना सम्मान मिला जितना इतिहास के किसी व्यक्ति को नहीं मिल सका है और फिर हम तो उनकी सन्तान हैं, कैसे उनकी प्रशंसा करें।

स्मारक के लिए महान पुरुषों की प्रस्तर मूर्ति बनायी जाती है। लेकिन हमारा गांधी तो करोड़ों जनता के हृदय में मूर्ति के रूप में वर्तमान है। और इससे हम सबों में उनके गुणों का कुछ हिस्सा आ गया है। भले ही यह हिस्सा उनकी तुलना में कण-मात्र हो। वे महलों में या चुनी हुई जगहों या असेम्बलियों तक ही नहीं पहुँच पाये थे बल्कि प्रत्येक दलितों और पीड़ितों की झोपड़ी तक पहुँच गये थे। गत ३० वर्ष का हिन्दुस्तान मुख्यतः उन्हीं का बनाया हुआ है। वे इस सदी में त्याग की उस चोटी तक पहुँच गये जिसकी बराबरी किसी में नहीं मिल सकती। लेकिन फिर भी अन्त समय में उन्हीं के बनाये हुये युग में ऐसे वाकयात हुए जिनसे उन्हें दुःख पहुँचा। वे पीड़ित हुए क्योंकि उन्हीं की सन्तानें उनके बताये हुए मार्ग से अलग हो गयीं।

युगों बाद इतिहास हमारे युग की सफलता असफलता पर विचार करेगा। हम इसके इतने नज़दीक हैं कि इस पर न्यायपूर्ण निर्णय नहीं दे सकते। हम सिर्फ इतना जनते हैं कि एक गौरव था जो अब नहीं है, हम इतना जानते हैं कि फिलहाल सामने अन्धकार है। लेकिन अवश्य ही अब जब हम अपने हृदय को टटोलते हैं तो वहां उस महान व्यक्ति की ज्योति-रेखा वर्तमान है। और अगर हमने इसे जला रहने दिया तो अन्धकार अवश्य मिट जायगा। अतीत के ही नहीं बल्कि भविष्य के भी वे सर्वश्रेष्ठ प्रतीक थे। आज हम नाजुक स्थान पर हैं। हमारी सबसे बड़ी मुसीबत है निराशा और असमर्थता की भावना। लेकिन आशा है कि यह शीघ्र दूर होगी। हम लोग सर्वदा गांधी जी का शोक मनायेंगे क्योंकि कभी भी हम अपने प्रिय पिता को भूल नहीं सकते। लेकिन मैं यह भी समझता हूं कि उनके अनुसार यह शोक ठीक नहीं। उनके प्रति अगर हम श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहते हैं तो हमें उनके उद्देश्य की पूर्ति में लग जाना चाहिये, तभी हम अपने को उनके योग्य साबित कर सकेंगे।

महान पुरुष का दिव्य अन्त

डाक्टर भगवानदास



उसने दूसरों को बचाया, किन्तु वह अपने को न बचा सका। क्या दूसरों को बचाने की यह शर्त नहीं है कि वे ही लोग उसे सूली पर चढ़ा दें जिनके कल्याण के लिए वह जीवन भर प्रयत्न तथा परिश्रम करता रहा है। गौतम बुद्ध और महावीर जिन सरीखे विरले अपवादों को छोड़कर, संसार के सभी मसीहों का यही अनिवार्य एवं वांछित अन्त रहा है। महात्मा जी के महान जीवन का भी यही संगत तथा पूर्वनिश्चित दिव्य अन्त हुआ। जो राजनीति में उनके शत्रु थे अथवा दोष देखने वाले थे वे भी आज उनके दोषों को भूल गये हैं, केवल उनके उत्तम गुणों का और सतत आत्म बलिदान का स्मरण करते हैं और मानवता के उस हितैषी और प्रेमी के लिए अभी तक शोक मानते और भग्न हृदय के आंसू बहाते हैं।

किन्तु जबकि महात्मा जी के लिए यह सुखद अन्त रहा है भारत के लिए इसका अर्थ होगा कि हिन्दू और मुसलमानों के बीच जो भयंकर कुहराम और आपसी मारकाट मची हुई है वह दस गुनी बढ़ जायगी और वह न केवल हिन्दू और मुसलमानों के आपसी कत्ल तक ही सीमित रहेगी वरन् हिन्दुओं और हिन्दुओं, हिन्दुओं और सिक्खों और मुसलमानों-मुसलमानों के पारस्परिक संहार का स्वरूप धारण करेगी। (पाकिस्तान के गवर्नर जेनरल की हत्या के तीन प्रयत्न हो ही चुके हैं और गवर्नर जेनरल महोदय तभी से छिपकर रह रहे हैं, शीया तथा सुन्नी आपस में लड़ते ही आये हैं और लखनऊ में हाल में लड़े थे। और चूंकि महात्मा जी एक महाराष्ट्रीय के हाथ मारे गये और यह बात प्रसिद्ध है कि हिन्दू महासभा के सदस्य मुस्लिम लीगियों और पाकिस्तानियों के सम्बन्ध में पक्षपात के कारण उनसे घृणा करते थे, दैनिक पत्रों की रिपोर्ट के अनुसार हिन्दुओं ने पूना तथा अन्य स्थानों में हिन्दू महासभा के नेताओं के घरों को जलाना और लूटना शुरू कर दिया था। बहुसंख्यक मोमीन सम्प्रदाय के अनेक भारतीय मुसलमान नेता पाकिस्तान के गवर्नर जेनरल और उनके अनुयायियों की जोरदार शब्दों में निन्दा कर रहे हैं।) हरि इच्छा!

किन्तु यह सम्भव है कि क्रोध और क्षोभ का पहला तूफान जब थम जाय तब लोगों की आंखें खुलें, वे इस पारस्परिक संहार के अविवेक और व्यर्थता को समझें और अपने हृदय और मस्तिष्क को शान्ति की ओर लगायें। तब धरती पर कम से कम एक शताब्दी तक शान्ति और सद्भावना का राज होगा! उस अवस्था में आज का यह घोर संकट एक महान आशीर्वाद के रूप में दिखाई पड़ेगा। प्रभु की इच्छा ऐसी ही हो।

संसार की आशा के मध्यबिन्दु : गांधी जी

श्रीमती पर्ल बक

अमरीका के एक गांव में स्थित एक शान्त घर में दिन अन्य दिनों की तरह प्रारम्भ हुआ। हम जल्दी उठे क्योंकि बच्चों को कुछ दूर के एक स्कूल में जाना था। हम खाने के लिये टेबुल पर बैठे और नित्य की तरह वार्तालाप करने लगे। बाहर बर्फ पड़ी हुई थी और आकाश अभी मेघाच्छन्न था। बच्चों को आश्चर्य हो रहा था कि क्या इससे अधिक बर्फ गिर सकती है?

एकाएक मेरे पति ने कमरे में प्रवेश किया। उनके मुख पर गम्भीरता थी। उन्होंने कहा—अभी रेडियो से भयानक खबर आई है।

हम एकटक उनकी ओर देखने लगे और इतने में उन्होंने कहा कि महात्मा गान्धी चल बसे।

मैं भारतीयों को यह बताना चाहती हूँ कि इन शब्दों का हिन्दुस्तान से हजारों मील दूर अमरीकन कुटुम्ब पर क्या प्रभाव हुआ? हमने नम्रतापूर्वक पूरा विवरण सुना। निश्चय ही यह मृत्यु साधारण नहीं हो सकती। जिन्होंने अपना जीवन मानव जाति के लिये समर्पित कर दिया, ऐसे शान्ति के पुजारी महात्मा गान्धी की हत्या की गई। हमारे दस साल के बच्चे ने आँखों में आंसु भर कर कहा क्या अच्छा होता, अगर किसी को बन्दूक बनाना न आता।

हममें से किसी ने गांधी जी को कभी देखा न था। हम जब भारत में थे, तब गांधी जी जेल में थे। किन्तु हम सब उन्हें जानते थे। बच्चे उनकी आकृति से ऐसे परिचित थे मानो वह हमारे साथ घर में सर्वदा रहते हों। हमारे लिये वे संसार की विभूतियों में से एक थे; वे उन थोड़े आदमियों में से थे जिनमें अपने विश्वास पर अडिग रहने की दृढ़ता होती है।

उनके जीवन एवं मृत्यु का प्रयोजन हमारी बातचीत का मुख्य विषय हो गया। हमें भारत के लिए गर्व है कि गान्धी जी ऐसे महापुरुष वहाँ पैदा हुये, साथ ही खेद भी है कि उनकी मृत्यु भी एक भारतीय के हाथ से ही हुई। तत्पश्चात खिन्न होकर चुपचाप हम अपने काम में लग गये।

भारत में आप लोगों को शायद आश्चर्य होगा यदि आप देखेंगे कि हमारे देश में लोग गांधी जी को कितना मानते हैं। एक घण्टे पहले एक किसान ने सड़क पर मुझे रोक कर पूछा, संसार में सभी की दृष्टि में गान्धी जी सत्पुरुष थे, फिर उनकी हत्या क्यों की गई? मैंने सिर हिलाया और कसते आहें भरते हुये कहा, मेरे विचार में जिस तरह महात्मा ईसा की हत्या की गई उसी तरह गांधी जी को भी मार डाला गया।

उसने सत्य ही कहा। ईसा की फाँसी से बढ़कर और कौन सी घटना हो सकती है जिससे गांधी जी की मृत्यु के महत्त्व की तुलना की जा सके। अपने देश के निवासी के हाथों की गई हत्या भी ऐसा ही एक दूसरा धर्म बलिदान है। गान्धी जी की मृत्यु का शोक केवल हमारे घर तक ही सीमित नहीं है। देश तथा विश्व में सर्वत्र, लोग जिन्होंने गान्धी जी को कभी देखा न होगा वे भी उनकी मृत्यु पर शोक मना रहे हैं। उनकी मृत्यु ऐसे समय में हुई जब उनका प्रभाव असाधारण हो चला था।

कुछ ही दिन पहले हमने अमरीकनों की गान्धी जी के प्रति दिलचस्पी का उल्लेख किया था। अमरीका में इससे भारत की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई थी।

लोगों के दिलों में गांधी जी का आदर जमता जा रहा था और लोगों की यह भावना होने लगी थी कि गांधी जी जो कहते हैं वही सत्य है।

यहाँ की बढ़ती हुई सैनिक शक्ति के बीच में हम यह समझने लगे थे कि गांधी जी जो कहते हैं वह सत्य है। हमारे पत्रों ने भी इस नई जाग्रति को पहचाना था। राष्ट्रों के बीच के मतभेदों को दूर करने के लिये गांधी जी द्वारा किये गये शान्ति पूर्ण आन्दोलन का हम पर बहुत प्रभाव पड़ा। मेरी कामना है कि भारत का प्रत्येक स्त्री पुरुष यह समझे कि उनके देश के प्रति अन्य देशों की क्या राय है।

आज भारत का महत्त्व पहले से अधिक है। भारत समस्त मानव जाति का प्रतीक है। चर्चिल तथा अन्य लोगों ने यह राय जाहिर की है कि सब लोगों को स्वतंत्र न होना चाहिये। उनका कहना है कि अधिकांश लोगों के हाथ में विश्व का प्रभुत्व होना अवांछनीय है।

हमें यह बताया जाता है कि कोई न कोई 'शासक' होना चाहिये और अगर हम यह नहीं चाहते कि कोई हम पर शासन करे तो हमें दूसरों पर शासन न करना चाहिए। परन्तु हम इसे नहीं मानते। हम ऐसे विश्व

की कल्पना करते हैं, जहाँ प्रजा खुद अपना शासन करे। हम भारत की खबरों के लिए आतुरतापूर्वक पत्रों की छान बीन करते हैं। क्या चर्चिल द्वारा बताया गया 'रक्तस्नान' सन्मुख होने वाला है ? क्या यह सत्य है कि लोग अपने मतभेदों को शान्ति पूर्ण उपायों से दूर नहीं कर सकते ! क्या युद्ध चिरस्थायी है !

जिन लोगों का मत है कि मनुष्य में विश्वास किया जा सकता है, उन सबके लिये गांधी जी ही आशा के केन्द्र बिन्दु थे। इसका यह अर्थ नहीं कि हमने उस कृशकाय, दुर्बल व्यक्ति को मूर्तिपूजा के लिए चुन रखा है किन्तु इसका यह अर्थ है कि हमें किसी तरह विदित होने लगा था कि गांधी जी ने मानव जीवन के मूल भूत सत्यों को हस्तगत कर लिया है। यह तो भारत के लोगों को अब बताना है कि उनकी मृत्यु इन सत्यों की विजय है या पराजय। यदि उनकी मृत्यु से उनके अनुयायियों में शक्ति और संकल्प बल का संचार हो तो यह भारत और मानवता के समर्थक सब लोगों लिए हितकर होगा। किन्तु अगर उनकी मृत्यु से निराशा और पराजय की भावना बढ़े तो संसार की समस्त मानवता की यह पराजय समझी जायगी।

हमारे विचार इसी एक बात पर केन्द्रित हैं। अमरीका में सबने गांधी जी की मृत्यु के प्रथम आघात को चुपचाप सहा। फिर वे एक दूसरे को देखकर कहने लगे नेहरू अभी विद्यमान हैं अतः अनिष्ट की पराकाष्ठा की अभी सम्भावना नहीं है। लोग ऐसी बात कर रहे हैं। इसका कारण केवल यही नहीं कि पाश्चात्य जगत भारत के अन्य किसी व्यक्ति की अपेक्षा नेहरू को अधिक जानता है किन्तु इसका कारण यह भी है कि हमें उनकी बुद्धिमत्ता, योग्यता और प्रमाणिकता में विश्वास है। यदि भारत में पारस्परिक मतभेद इस हद तक पहुँच जायँगे कि नेहरू जी को हटा दिया जायगा या उन्हें निराश होकर त्याग पत्र दे देना पड़ेगा तो भारत पाश्चात्य देशों की दृष्टि में बहुत गिर जायगा।

बुद्धिमान भारतीय ऐसी गलती करने के पहले बहुत सोचेंगे ऐसा मेरा विश्वास है। मैं एक अमेरिकन के नाते ऐसा कहती हूँ जिसे इस बात का थोड़ा ज्ञान है कि भारत न केवल अपने देश के किन्तु संसार के नेता की हैसियत से कितना बड़ा है।

भारत के सामने महान अवसर है। यदि वहाँ के निवासी अपने सुयोग्य नेताओं के आदेशों पर चलें और संकुचित विचार वाले निम्नश्रेणी के कुछ व्यक्तियों के बहकावे में आकर अपनी शक्ति विघटित न करें। मेरे ये शब्द चेतावनी रूप में हैं और आशा के रूप में भी।

गांधी जी की आत्मीयता

श्री घनश्यामदास बिड़ला

गांधी जी का मेरा प्रथम सम्पर्क १९१५ के जाड़ों में हुआ। वे दक्षिण अफ्रीका से नये-नये ही आये थे और हम लोगों ने उनका एक वृहत स्वागत करने का आयोजन किया था। मैं उस समय केवल २२ साल का था। गांधी जी की उस समय की शक्ल यह थी, सिर पर काठियावाड़ी साफा, एक लम्बा अंगरखा, गुजराती ढंग की धोती और पांव बिल्कुल नंगे। वह तस्वीर आज भी मेरी आंखों के सामने ज्यों-की-त्यों नाचती है। हमने कई जगह उनका स्वागत किया। उनके बोलने का ढंग, भाषा और भाव बिल्कुल ही अनोखे मालूम दिये। न बोलने में जोश, न कोई अतिशयोक्ति, न कोई नमक-मिर्च। सीधी-सादी भाषा और सो भी हिन्दी। हर सभा में वे एक बात दुहराते रहते थे। मेरे राजनीतिक गुरु गोखले की आज्ञा है कि सब चीजों का मैं दो साल तक अध्ययन करूं और चटपट अपनी राय न दूं! नर्ममिजाज गोखले की यह प्रशंसा मुझे अखरती थी और साथ में गांधी जी की स्पष्ट नीति कुछ असर भी डालती थी।

१९१५ में जो सम्पर्क बना वह अन्त तक चलता ही रहा और इस तरह ३२ साल का गांधी जी के साथ का यह अमूल्य सम्पर्क मुझ पर एक पवित्र छाप छोड़ गया है जो मुझे तमाम आयु स्मरण रहेगा। शुरू-शुरू में कई साल तक मैं गांधी जी का समालोचक होकर उनके पास जाता था। उनकी हर चीज को मैं लोकमान्य तिलक की चीजों से मिलान करता था और जहां गांधी जी नकल में, मेरी दृष्टि में कम उतरते वहीं उलाहना देता था। पर ज्यों-ज्यों मैं गहरे पानी उतरा, त्यों-त्यों उनकी बातों का सार मेरे दिल पर एक छाप लगाने लगा। उनका सत्य, उनका भोलापन, उनकी अहिंसा, उनका शिष्टाचार, उनकी आत्मीयता, उनकी व्यवहारकुशलता इन सब चीजों का मुझपर दिन-प्रति-दिन असर पड़ता गया और समालोचक से धीरे-धीरे मैं उनका भक्त बन गया। जब समालोचक था तब भी मेरी उनके प्रति श्रद्धा थी। जब भक्त बना तो श्रद्धा और भी बढ़ गयी। ईश्वर की दया है कि ३२ साल का मेरा एक महान आत्मा का यह सम्पर्क अन्त तक निभ गया। मेरा यह सद्भाग्य है।

गांधी जी को मैंने सन्त के रूप में देखा, राजनीतिक नेता के रूप में देखा और मनुष्य के रूप में भी देखा। मेरा यह भी ख्याल है कि अधिक लोग उन्हें सन्त या नेता के रूप में ही पहचानते हैं। मैं न तो उनकी राजनीति का अनुगामी रहा, न उनके पीछे साधु बना, इसलिये उनके जिस रूप ने मुझे मोहित किया वह तो उनका एक मनुष्य का रूप था। न नेता का न सन्त का। उनकी मृत्यु पर अनेक लोगों ने उनकी दुःख-गाथाएँ गायीं हैं और उनके अद्भुत गुणों का वर्णन किया है। मैं उनके क्या गुण गाऊं? पर वे किस तरह के मनुष्य थे यह मैं बता सकता हूं, क्योंकि लोग तो उन्हें जानते हैं महात्मा के रूप में मनुष्य के रूप में जानने वाले तो इने-गिने ही लोग हैं। मुमकिन है कि सुनने वालों को उनका मनुष्य रूप कैसा था इसमें ज्यादा दिलचस्पी हो।

मनुष्य क्या थे वे कमाल के आदमी थे। राजनीतिक नेता की हैसियत से वे अत्यन्त व्यवहार कुशल थे ही। किसी से मैत्री बना लेना यह उनके लिये कुछ चन्द मिनटों का काम था। द्वितीय राउण्ड टेबिल कान्फ्रेंस में जब वे इंगलैण्ड गये थे तब उनके कट्टर दुश्मन सेम्युल होर से मैत्री हुई तो इतनी कि अन्त तक दोनों मित्र रहे। लिनलिथगो से उनकी न निभी, पर यह दोष सारा लिनलिथगो का ही था, गांधी जी ने मैत्री रखने में कोई कसर न रखी, पर लिनलिथगो का स्वभाव पूरा साम्राज्यवादी था और इसलिए अन्त में निभी नहीं। लिनलिथगो से लड़ाई छिड़ी तो इतनी कि काफी कटुता भी आ गई। पर कटुता गांधी जी की ओर से नहीं थी। जिनसे गांधी जी मैत्री रखते छोटी चीजों में वे उनके गुलाम बन जाते थे। पर जहां सिद्धान्त की बातें आती थीं वहां डट के लड़ाई होती थी। पर उसमें भी वे कटुता न लाते थे। लन्दन में जितने रोज रहे बिना सेम्युल होर की आज्ञा के कोई वक्तव्य या व्याख्यान देना उन्होंने स्वीकार नहीं किया। लिनलिथगो से भी कई बातों में ऐसा ही सम्बन्ध था।

निर्णय करने में वे न केवल दक्ष थे पर साहसी भी थे। चौरीचौरा के कांड को लेकर सत्याग्रह का स्थगित करना और हिमगिरि जितनी अपनी बड़ी भूल मान

लेना इसमें काफी साहस की ज़रूरत थी। सत्याग्रह स्थगित करने पर वे लोगों के रोष के शिकार बने, गालियाँ खाईं, मित्रों को काफी निराश किया पर अपना दृढ़ निश्चय उन्होंने नहीं छोड़ा। १९३७ में कांग्रेस ने जब गवर्नमेंट बनाना स्वीकार किया तब गांधी जी के निर्णय से ही प्रभावित होकर कांग्रेस ने ऐसा किया पर गांधी जी ने जहां क़दम बढाया सब पीछे चल पड़े। कांग्रेस नायकों में उस समय झिझक थी, वे शंकाशील थे। १९४२ में जब कि क्रिप्स आये तब हाल इसके विपरीत था। कांग्रेस के कुछ नेता चाहते थे कि क्रिप्स की सलाह मान ली जाय और क्रिप्स प्रस्ताव स्वीकार किया जाय। पर गांधी जी टस से मस न हुए। बल्कि उन्होंने हिन्दुस्तान छोड़ो की धुन छेड़ी और लड़ पड़े। इस समय भी उन्होंने निर्णय करने में काफी साहस का परिचय दिया।

मुझे याद आता है कि राजनीतिज्ञों में उस समय करीब-करीब सन्नाटा था। लोगों में एक तरह की थकान थी। नेताओं में प्रायः एकमत था कि जनता लड़ने के लिये उत्सुक नहीं है।

बिहार से एक नेता आए। गांधी जी ने उनसे पूछा—जनता का क्या हाल है? क्या जनता लड़ने को तैयार है?

बिहारी नेता ने कहा—जनता में कोई तैयारी नहीं है, कोई उत्साह नहीं है। पीछे रुक कर उन्होंने कहा कि मुझे एक कथा स्मरण आती है। एक मर्तबा नारद विष्णु के पास गये। विष्णु ने नारद से पूछा नारद ज्योतिष के अनुसार वर्षा का कोई ढङ्ग दीखता है। नारद ने पंचांग देख कर कहा कि वर्षा होने की कोई सम्भावना नहीं है। नारद ने इतना कहा तो सही पर विष्णु के घर के बाहर निकले तो वर्षा से सुरक्षित होने के लिए अपनी कमली ओढ़ ली।

विष्णु ने पूछा नारद, कम्बल क्यों ओढ़ते हो? नारद ने कहा, मैंने ज्योतिष की बात बताई है पर आपकी इच्छा क्या है यह तो मैं नहीं जानता। अन्त में जो आप चाहेंगे वही जो होने वाला है, इतना कहकर उन बिहारी नेता ने कहा—बापू जनता में तो कोई जान नहीं है, पर आप चाहेंगे तो जान भी आ ही जायेगी। यह बिहारी नेता थे सत्यनारायण बाबू जो अब सरकार की असेम्बली में मुख्य सचेतक हैं। जो उन्होंने सोचा था वही हुआ। जनता में लड़ने की कोई उत्सुकता न थी, पर बिगुल बजते ही लड़ाई ठनी तो ऐसी कि अत्यन्त भयंकर।

आत्मीयता

पर, यह तो मैंने उनकी नेतागिरी और राज कौशल की बात बताई। इतने महान होने हुए भी किस तरह छोटों की भी उन्हें चिन्ता थी यह आत्मीयता उनकी देखने लायक थी। यही चीज उनके पास एक ऐसे रूप में थी कि जिसके कारण लोग उनके बेदाम गुलाम बन जाते थे। उनके पास रहने वाले को यह डर रहता था कि बापू किसी भी कारण अप्रसन्न न हों। और, यह भय इसलिये नहीं था कि वे महान व्यक्ति थे बल्कि इसलिये कि मनुष्य में जो सहृदयता और आत्मीयता होनी चाहिये वह उनमें कूट-कूट कर भरी थी।

बहुत वर्षों की बात है। क़रीब २२ साल हो गये। जाड़े का मौसम था। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। गांधीजी दिल्ली आये थे। उनकी गाड़ी सुबह चार बजे स्टेशन पर पहुँची; मैं उन्हें लेने गया। पता चला कि एक घण्टे बाद को ही जाने वाली गाड़ी से वे अहमदाबाद जा रहे हैं। उनके गाड़ी से उतरते ही मैंने पूछा—एक दिन ठहर कर नहीं जा सकते? उन्होंने कहा, क्यों मुझे जाना आवश्यक है। मैं निराश हो गया। उन्होंने फिर पूछा, क्यों? मैंने कहा घर में बीमार है। मृत्यु-शय्या पर है। आपका दर्शन करना चाहती है। गांधी जी ने कहा—मैं अभी चलूँगा। मैंने कहा—मैं इस जाड़े में ले जाकर आपको कष्ट नहीं दे सकता। उन दिनों मोटरें भी खुली होती थीं। जाड़ा और ऊपर से ज़ोर की हवाएं पर उनके आग्रह के बाद मैं लाचार हो गया। मैं उन्हें ले गया दिल्ली से कोई १५ मील की दूरी पर। वहां उन्होंने रोगी से बात कर उसे सान्त्वना दे दिल्ली कैन्टोनमेन्ट पर अपनी गाड़ी पकड़ी। मुझे आश्चर्य हुआ कि इतना बड़ा व्यक्ति मेरी ज़रा सी प्रार्थना पर सुबह के कड़ाके के जाड़े में इतना परिश्रम कर सकता है और कष्ट उठा सकता है, पर यह उनकी आत्मीयता थी जो लोगों को मुग्ध कर देती थी। मृत्यु-शय्या पर सोने वाली रोगी मेरी धर्म पत्नी थी।

कोढ़ी की सेवा

परचुरे शास्त्री एक साधारण ब्राह्मण थे। उन्हें कष्ट था। उनको गांधीजी ने अपने आश्रम में रखा सो तो रखा; पर रोजमर्रा उनको तेल की मालिश भी स्वयं अपने हाथों करते थे। लोगों को डर था कहीं कुष्ट गांधी जी को न लग जाय। पर गांधी जी को इसका कोई भय न था। उनको ऐसी चीज़ों से अत्यन्त सुख मिलता था।

४२ के शुरू में मैं वर्धा गया। कुछ दिन बाद उन्हों ने मुझसे कहा—तुम्हारा स्वास्थ्य गिरा मालूम देता है, इसलिए मेरे पास सेवाग्राम आ जाओ और यहां कुछ दिन रहो। मैं तुम्हारा उपचारक होना चाहता हूँ। मैंने कहा—वर्धा ठीक है। सेवाग्राम में क्यों आपको कष्ट दूं। मुझे संकोच यह था कि सेवाग्राम में पाखाना साफ करने के लिये कोई मेहतर नहीं होता। वहां के पाखाने की सफाई आश्रम के लोग करते हैं। जहाँ मुझे ठहराना निश्चित किया गया था, वहाँ का पाखाना महादेव भाई साफ किया करते थे। मैंने उन्हें अपना संकोच बताया कि क्यों मैं सेवाग्राम नहीं आना चाहता था। मैं स्वयं अपना पाखाना साफ नहीं कर सकता और यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि महादेव भाई जैसा विद्वान और एक तपस्वी ब्राह्मण मेरा पाखाना साफ करे। गांधीजी को मेरा संकोच निरा वहम लगा। पाखाना उठाना क्या कोई नीच काम है? महादेव भाई ने भी मजाक किया; परन्तु मेरे आग्रह पर मेहतर रखना स्वीकार कर लिया गया। आगा खां पैलेस में जब उनका उपवास चलता था तो मैं गया। वे बड़े बेचैन थे। बोलने की शक्ति करीब करीब नहीं के बराबर थी। मैंने सोचा कि कुछ राजनीतिक बातें करूँगा। पर आश्चर्य हुआ। पहुँचते ही हम सबका कुशल-मङ्गल, बच्चों के बारे में छोटे-मोटे सवाल और घर गृहस्थी की बातें। इसी में काफी समय लगा दिया। मैं उनको रोकता जाता था कि आप में शक्ति नहीं है, मत बोलिये; पर उनको इसकी कोई परवाह नहीं थी।

इसी तरह की उनकी यह आत्मीयता थी जिसने हजारों को उनका दास बनाया। नेता बहुत देखे, सन्त भी बहुत देखे, मनुष्य भी देखे, पर एक ही मनुष्य में सन्त, नेता और मनुष्य की ऊँचे दर्जे की आत्मीयता मैंने और कहीं नहीं देखी। मैं अगर गांधीजी का कायल हुआ तो उनके सन्तपने या नेतागिरी का नहीं, पर उनकी आत्मीयता का। यह सबक है जो हर मनुष्य के सीखने लायक है। यह एक मिठास है जो कम लोगों में पाई जाती है।

गांधीजी करीब पौने पाँच महीने इस मर्तबा मेरे घर में रहे। जैसा कि उनका नियम था उनके साथ एक बड़ी बारात आती थी। नये-नये लोग आते थे, और पुराने जाते थे। भीड़ बनी रहती थी। घर तो उनके ही सुपुर्द था। कितने मेहमान उनके ऐसे भी आते थे जो मुझे पसन्द नहीं थे, जो उनके पास वालों को भी पसन्द नहीं थे। बम गिरने के बाद बहुतों ने उन्हें बेरोकटोक भीड़ में घुस आने से मना किया। सरदार वल्लभ भाई ने उनके लिए करीब १० मिलिटरी पुलिस और १५-२० खुफिया बिड़ला हाउस में तैनात कर रक्खे थे जो भीड़ में इधर-उधर फिरते रहते थे। पर मैं जानता था, इस तरह से उनकी रक्षा हो ही नहीं सकती थी। जो लोग आते थे उनकी तलाशी लेने का विचार पुलिस ने किया मगर गांधीजी ने रोक दिया। हर सवाल का एक ही जवाब उनके पास था, मेरा रक्षक तो राम है।

उपवास के बाद उनका हाजमा बिगड़ा। मैंने कहा—कुछ दवा लीजिये। फिर वही उत्तर—मेरा वैद्य राम है, मेरी दवा राम है। कुछ अदरख, नींबू, घृत-कुमारी का रस, नमक और हींग साथ मिलाकर उनको देना निश्चय किया। आग्रह के बाद साधारण खानपान की चीज समझकर उन्होंने इसे लेना स्वीकार किया। पर वह भी कितने दिन। अन्त में तो राम ही उन्हें अपने मन्दिर ले गये।

शुक्रवार को करीब सवा पाँच बजे गांधीजी को गोली लगी और उसी दम उनका देहान्त हो गया। मैं उस समय पिलानी था। करीब ६ बजे कालेज के छात्र दौड़ते हुए आये और उन्होंने रेडियो की खबर बताई कि किस तरह गांधी जी चल बसे। सन्नाटा छा गया।

घर आने पर हुआ कि सुबह वायुयान से जाने से हम जल्दी पहुँच सकेंगे। सोया, पर रात भर बेचैनी रही। स्वप्न आने लगे। मानो मैं दिल्ली पहुँच गया। पहुँचते ही बापू के कमरे में गया तो देखता हूं जहां बापू

लेटते थे वहीं मृतक अवस्था में लेटे पड़े हैं। पास में प्यारेलाल, सुशीला बैठे हैं। मैंने जाकर प्रणाम किया। मुझे देखते ही गांधी जी उठ बैठे। कहने लगे अच्छा हुआ तुम आ गये। यह कोई नादान का काम नहीं है। यह तो गहरा षडयन्त्र था पर मैं तो प्रसन्नता के मारे अब नाचूँगा, क्योंकि मेरा काम तो अब समाप्त हो गया। फिर कुछ इधर उधर की बात करते रहे। अन्त में घड़ी निकाल कर कहने अब तो ११ बज गये हैं। तुम लोग अब तो मुझे श्मशान घाट ले जाओगे, इसलिये लेट जाता हूं। इतना कहकर वह फिर लेट गये।

बस इसके बाद मैंने बापू को चैतन्य रूप में नहीं देखा न उनकी बोली सुनी। यह भी तो सपना ही था। पर सपने ने भी प्रत्यक्ष का सा अनुभव दिया। दिल्ली पहुंचा तो बापू को पड़ा पाया। चेहरे पर उनके कोई विकृति नहीं थी। वही प्रसन्न मुद्रा, वही क्षमा भाव और वही मुसकान पर अब तो वह भी देखने में नहीं आयेगी।

एक दीपक बुझ गया पर हमारे लिये रोशनी छोड़ गया।

उनके अन्तिम उपवास ने उनके निकटस्थ लोगों में काफी चिन्ता पैदा की। उपवास के समय मैंने काफी बहस की। मैंने कहा, मेरा आपका ३२ साल का संपर्क है। आपके अनेक उपवासों में मैं आपके पास रहा हूँ। मुझे लगता है कि आपका यह उपवास नहीं है। पर गांधीजी अटल थे। पर यह कहना भी गलत है कि गांधीजी आस पास के लोगों से प्रभावित नहीं होते थे। बुद्धि का द्वार उनका सदा खुला रहता था। बहस करने वाले को प्रोत्साहन देते थे और उसमें जो सार होता उसे लेते थे, चाहे वह कितने ही छोटे व्यक्ति से क्यों न मिलता हो। बार बार बहस करते-करते मुझे लगा कि उनके उपवास के टूटने के लिए काफी सामग्री पैदा हो गई है। मुझे बम्बई जाना था। जरूरी काम था। मैंने उनसे कहा, मैं बम्बई जाना चाहता हूँ। मुझे लगता है कि अब आपका उपवास टूटेगा। न टूटने वाला हो तो मैं न जाऊँ। मैंने यह प्रश्न जानबूझ कर उन्हें टटोलने के लिये किया। उन्होंने मजाक शुरू किया। कहा जब तुम्हें लगता है कि उपवास का अन्त होगा तो फिर जाने में क्या रुकावट है। मैंने कहा—मुझे तो उपवास का अन्त लगता है, पर आपको लगता है या नहीं यह कहिये। उन्होंने मजाक जारी रखा और साफ उत्तर न देकर फंदे में फंसने से इनकार किया। मैंने कहा:—नचिकेता यम के घर पर भूखा रहा तो यम को क्लेश हुआ क्योंकि ब्राह्मण घर में भूखा रहे तो पाप लगता है। आप यह उपवास करते हैं तो मुझ पर पाप चढ़ता है। इसलिए अब इसका अन्त होना चाहिए। गांधी जी ने कहा—मैं कहाँ ब्राह्मण हूँ ? पर आप तो महाब्राह्मण हैं। इस पर बड़ा मजाक रहा। मैंने कहा—अच्छा आप यह आशीर्वाद दीजिए कि मैं शीघ्र से शीघ्र आपके उपवास टूटने की खबर बम्बई सुनूं। फिर भी उनका मजाक तो जारी ही रहा। मैंने कहा अच्छा आप यह बताइये कि आप आप जिन्दा रहना चाहते हैं या नहीं ? उन्होंने कहा—हां यह कह सकता हूं कि मैं जिन्दा रहना चाहता हूँ। बाकी तो सब राम के हाथ में है। उपवास तो समाप्त हुआ लेकिन राम ने उन्हें छोड़ा नहीं।

बापू जीवित हैं !

डाक्टर सुशीला नैय्यर

कहते हैं कि समुद्र-मन्थन में से अमृत निकला। हीरे-जवाहरात निकले और हलाहल जहर निकला। जहर इतना घातक था कि सारे जगत का नाश कर सकता था। उसे क्या किया जाय? सब इस बारे में चिन्तित थे। शिव जी आगे बढ़े और उन्होंने वह जहर पी लिया। हिन्दुस्तान के समुद्र-मन्थन से आज़ादी का अमृत निकला। साथ ही, आपस आपस की मारकाट का, दुश्मनी का, बैर का, हिंसा का जहर भी निकला। गांधी जी ने इसके समाने अपनी आवाज बुलन्द की। लोग अपनी मूर्छा से चौंके, लेकिन जागे नहीं। पाकिस्तान के लोगों के कानों में भी वह आवाज पहुँची। बापू की आवाज अकेली गगन में गूंज रही थी। 'इस आग को बुझाओ नहीं तो दोनों इस आग में भस्म हो जाओगे।' उनका हृदय दिन रात पुकारता था : 'हे ईश्वर—इस ज्वाला को शांत कर, नहीं तो मुझे इसमें भस्म होने दे। मैं इसका साक्षी नहीं बनना चाहता।'

जो बापू अनेक उपवासों में से अनेक हमलों से बच निकले थे, वे अपने ही एक गुमराह पुत्र की गोली से न बच सके। पुत्र के हाथ से हलाहल का प्याला लेकर वे पी गये, ताकि हिन्दुस्तान जिन्दा रह सके। किसी ने कहा, जगत ने दूसरी बार ईसा का सूली पर चढ़ना देखा है।

मुझे जब यह खबर मिली तब मैं मुलतान में थी। बहावलपुरियों की बापू को इतनी चिन्ता थी कि उन्होंने मुझे लेसली क्रास साहब के साथ बहावलपुर भेजा था।

३० जनवरी की शाम को ६ बजे के करीब डिप्टी कमिश्नर साहब की पत्नी हाँफती आईं और बोलीं 'दुनियां किधर जा रही है? गांधी जी को गोली से मार दिया!' सुनते ही मेरे हाथ-पांव ठण्डे पड़ गये। मैं सुन्न बैठ गई। मैंने कहा: नहीं, मुझे अभी लाहौर जाना है। कोई गाड़ी दिलवाइये। सच्ची खबर हो या झूठी, मैं जल्दी से जल्दी दिल्ली पहुँचना चाहती हूँ।'

डी० सी० ने अपनी मोटर दी। सुनसान सड़क पर मोटर पूरी रफ्तार से चली जा रही थी। आकाश में चांद निकल आया था। चारों तरफ शांति का साम्राज्य था। हृदय से बार बार आवाज निकलती थी : 'नहीं, बापू जीवित हैं।' बुद्धि कहती थी, चार गोलियां चलीं, यह बात बनावटी नहीं हो सकती। मगर मनुष्य निराशा में भी आशा को पकड़े रखने का आदी है। मैंने मन को समझा दिया—चार गोलियां चलीं, मगर क्या जाने लगीं या न लगीं? शायद बापू घायल हों भी मगर वे जीवित हैं। हृदय कहता है वे मरे नहीं हैं।

सुबह ६ बजे हमारी मोटर लाहौर पहुँची। किसी से कुछ भी पूछने की हिम्मत न हुई। डर था, कहीं कोई कह न दे कि जो अफवाह सुनी थी, वह सच है। आखिर एक दोस्त ने आकर मेरी कल्पना का महल ढा दिया। वे आँसू बहाकर सहानुभूति बताने लगे। इतने में रेडियो पर पंडित जी की दुःखभरी आवाज सुनी और मेरी रही सही आशा भी टूट गई। अभी तक जो आँसू दबे हुए थे, वे थामे न थमे। हम अनाथ बन गये!

हवाई अड्डे पर विमान के इन्तजार में क्षण क्षण सदियों जैसा लगने लगा। हवाई जहाज आ गया, हम ११। के करीब दिल्ली के वेलिंग्डन हवाई अड्डे पर पहुंच गये। मियां इफ़्तखारुद्दीन भी हमारे साथ आये थे। वे और मैं तुरन्त मोटर में बैठ कर बिड़ला-भवन की तरफ़ चले। डबडबाई आंखों से मोटर में मियां साहब ने कहा—'बापू का खून हम सबके सिर पर है। हम सबके हाथ खून से रंगे हुए हैं।' मुझे कई ऐसी चर्चाओं का ख्याल आया, जिनमें भले लोगों ने बापू की टीका की थी कि वे मुसलमानों का पक्षपात करते हैं। अच्छे अच्छे लोग कभी कभी सोचते थे; 'कहाँ तक मार खाते जावें?' बापू का बार बार यह कहना कि बुराई का बदला भलाई से दो, उनके गले नहीं उतरता था। मैंने सोचा, हममें से सब को कभी न कभी पाकिस्तान की ज़्यादतियों पर गुस्सा आया था। मन में ख्याल आया था कि लातों के भूत बातों से नहीं मानते। ये सब विचार बापू का खून करने वाले थे। इसलिए बापू का खून हम सबके सिर पर था। खूनी इसमें भी आगे गया। जो इन्सान ईंट का जवाब पत्थर से देने से रोक रहा था, उसे उसने हटा दिया।

गाड़ी बिड़ला-भवन के पिछले दरवाजे से दाखिल हुई। उधर भी बहुत भीड़ थी। दूर से एक ऊँचा फूलों का ढेर देखा। मैं भीड़ को पूरे जोर से चीरती हुई हांफती हांफती वहां पहुंची, जहां पालकी रवाना होने

के लिए तैयार थी। वहाँ सरदार अपने दिवंगत स्वामी के पाँवों के पास उदास और गम्भीर बैठे थे। उन्होंने मुझे ऊपर चढ़ाया। फूलों में से बापू का चेहरा ही दीखता था। हमेशा की तरह मैंने अपना सिर उनकी छाती पर रख दिया। बिना सोचे अन्दर से भावना उठी, अभी बापू एक प्यार की चपत लगा देंगे, पीठ पर ज़ोर की एक थपकी लगा देंगे! मगर मैंने तो उनकी आखिरी थपकी बहावलपुर जाते समय ही ले ली थी।

सिर के पास मनु और आभा खड़ी थी। 'सुशीला बहन! सुशीला बहन!' पुकार कर वे फूट फूट कर रोने लगीं। आंसुओं में से मैंने देखा बापू का चेहरा पीला था, पर हमेशा की तरह शान्त था। वे गहरी नींद में सोये दिखते थे। अपने आप मेरा हाथ उनके माथे पर चला गया। उनके चेहरे को मैंने छुआ। वह अभी भी मुझे गरम लगा, जीवित लगा। मेरा सिर फिर से उनके चेहरे पर झुक गया। माथा उनके गाल को जा लगा। किसी ने पुकारा—अब उतरो।

नीचे सिर की तरफ पंडित जी खड़े थे। दुःख और गम की गहरी रेखायें उनके चेहरे पर थीं। उन्होंने प्यार से हम तीनों को नीचे उतारा। पुराने ज़माने में महादेव भाई, देवदास भाई, और प्यारेलाल जी तीनों बापू के साथ हुआ करते थे—त्रिमूर्त्ति कहलाते थे। उसी तरह कुछ महीनों से आभा, मनु और मैं बापू के साथ त्रिमूर्त्ति सी बन गई थीं। उन तीनों में महादेव भाई बड़े थे, इन तीनों में मैं। दोनों लड़कियां दोनों तरफ से मुझे लिपट गईं। एक दूसरी को सहारा देते हुये हम आगे बढ़ीं। बापू चाहेंगे राम-धुन चले सो राम-धुन शुरू की। लेकिन बहुत चल न सकी।

शाम को जुलूस जमना जी के किनारे पहुँचा। ईंटों के एक छोटे से चबूतरे पर लकड़ियां रखी थीं। जिस तख्त पर बापू बैठा करते थे, उसी पर उनका शव था। उसे लाकर लकड़ियों पर रखा गया। ब्राह्मण ने कुछ मन्त्र पढ़े। हम लोगों ने छोटी-सी प्रार्थना की। देवदास भाई ने बापू के पाँव पर सिर रख कर प्रणाम किया। उसके बाद हम सबने प्रणाम किया। हृदय से एक ही पुकार निकल रही थी: बापू मेरे अपराध क्षमा करना। मेरी भूल चूक, त्रुटियाँ क्षमा करना। जीवन में कितनी बार आपको सताया, आपको मानवी पिता मान कर आपसे झगड़ा किया। आपके साथ दलीलें कीं। बापू, क्षमा करना! क्षमा करना!! क्षमा करना!!! मैं चिता से दूर हटकर बैठ गयी। मैं ज्यादा देख न सकी। मन में मैं गीता के ये श्लोक दोहराती रही:—

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात् प्रणयेन वापि ॥ १ ॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत् क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ २ ॥
पिताऽसि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समो ऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥ ३ ॥
तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४ ॥

बापू, आपने जो अगाध प्रेम मुझ पर बरसाया, जो अगाध विश्वास बताया; भूल पर भूल क्षमा की; तुच्छ, अज्ञान, मतिहीन को अपनाया; सिखाया; अपनी बेटी बनाया: उसके लायक बनाना। एक बार बापू ने महादेव भाई और भाई से बातें करते हुए कहा था—'सुशीला ने सब से आखिर में मेरे जीवन में प्रवेश किया, मगर वह सबसे निकट आई। मुझ में समा गई है।' हे प्रभु, उसी समय तूने मुझे क्यों न उठा लिया? उसके बाद सुशीला उनसे दूर चली गई। बापू की बात पर उसके मन में शंका आने लगी, मगर बापू ने धीरज से उसकी शंकाओं का निवारण करने का प्रयत्न किया। उसे अपने से दूर न जाने दिया। एक बार कहने लगे—'तूने Hand of Heaven कविता पढ़ी है। तू मुझ से भाग कैसे सकती है? मैं भागने दूं तब न?' इस नालायक बेटी के प्रति इतना प्रेम! हे प्रभो, जो

योग्यता उनके जीवन-काल में मुझ में न थी, वह उनके जाने के बाद होगी ?

शव पर चन्दन की लकड़ियाँ रखने लगे। सुगन्धित सामग्री डालने लगे। मैं जाकर सरदार काका के पास बैठ गई। घुटनों में सर रख लिया और देख भी न सकी। सारा जगत चक्कर खा रहा सा लगता था। भीड़ का जोर से धक्का आया। मनु, आभा, मैं और मणी बहन पास बैठी थीं। सरदार ने हमें साथ लेकर उस भीड़ में से बाहर निकालने की कोशिश की। धक्के पर धक्का आता था। हम गिरते-पड़ते मुश्किल से बाहर निकले। एक मिलिट्री ट्रक में बैठे। सरदार काका और सरदार बलदेव सिंह जी साथ थे। ट्रक चली। आभा ने मेरा हाथ खींचा। दूर से चिता की ज्वाला की लपटें आकाश को जा रही थीं। हृदय पुकार उठा, हे प्रभो, इस अग्नि में हमारे दोष, हमारी कमजोरियाँ भस्म हो जावें, ताकि हम बापू के बताये हुये मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़ सकें। जिस अग्नि में उनके प्राण गये, वह इस अग्नि के साथ शान्त हो। रात को बिड़ला-भवन में जिस गद्दी पर बैठ कर बापू काम किया करते थे, उस पर रखी बापू की फोटो के समाने बैठे मन में विचार आने लगा—कल सारी रात मोटर में बैठे हृदय मे जो ध्वनि निकल रही थी : 'बापू जीवित हैं। जीवित हैं!' वह क्या गलत थी ? वह ध्वनि इतनी स्पष्ट थी मगर क्या सब कल्पना का ही खेल था ? उत्तर मिला : नहीं, बापू जीवित हैं, सचमुच जीवित हैं। तुम्हारे एक एक विचार को एक एक आचार को देख रहे हैं। दूसरे दिन काल साहब अंग्रेजी कविता की कुछ लाइनें लिख कर दे गये। उनमें आखिरी लाइनों का भाव कुछ ऐसा था—

'याद रखो, अब उनके हथियार सिर्फ तुम्हारे हाथ और पाँव हैं। वे देखते हैं। संभालना कि किस चीज को तुम छूते हो, कहां पर कदम रखते हो।'

वे सुकरात, कृष्ण और ईसा के श्रेणी में गये

श्री किशोरलाल मशरूवाला

पूज्य बापूजी को कौन मार सकता था ? वे तो कब से ही अमर हो चुके थे। उन्हें गोली मारनेवाले ने तो उनको सुकरात, कृष्ण और ईसा मसीह की श्रेणी में बैठाकर उनकी अमरता पर मोहर लगा दी। जो गोलियां छूटीं, वे गांधी जी के जीवन का खात्मा नहीं कर सकीं। उनका महान जीवन तो और भी ज्यादा लम्बा होगया है। मगर इन गोलियों के छोड़ने वाले ने अपने ही धर्म को मारा है और अपने ही व्यक्तियों का नुकसान किया है।

सुकरात को मार कर ग्रीसवालों ने जिस तरह अपना नुकसान किया, कृष्ण को मार कर यादवों ने किया, और ईसामसीह को मार कर यहूदियों ने किया उसी तरह इस भाई ने गांधी जी को मारकर हिन्दू जनता और हिन्दू धर्म का नुकसान किया है।

अगरचे वियोग के आंसू गिरे बिना रह नहीं सकते, फिर भी बापू के लिये आंसू बहाने जैसी कोई बात नहीं है। सहानुभूति के पात्र बापू या बापू के सगे सम्बन्धी और भक्त नहीं, बलिक पागल बने हुये फिरकापरस्त लोग हैं।

बापू का उचित स्मारक

सरदार वल्लभभाई पटेल

विभिन्न रचनात्मक कार्यों के क्षेत्रों में महात्मा गांधी के निकट रह कर कार्य करने वाले दूर और समीपवर्ती स्थानों के कितने ही मित्रों ने मेरे पास ऐसे पत्र लिखे हैं जो तीव्र वेदना और शोक की भावना से ओतप्रोत हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस आकस्मिक शोक-प्रहार से वे अपने को हतोत्साहित एवं असहाय अनुभव करने लगे हैं। मैं उनकी अनुभूति की तीव्रता एवं निराशा की गम्भीरता की सराहना करता हूँ। फिर भी मैं उनसे निवेदन करता हूँ कि हम इस प्रहार को भूतकाल में महात्मा गांधी के उपदेश और व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय दुर्भाग्यों के प्रति स्वयं महात्मा गांधी के रुख से प्रकाश प्राप्त कर सहन करें। यदि वे इस दृष्टिकोण से विचार करें तो उन्हें ज्ञात होगा कि और अधिक शोक करना अथवा हतोत्साह होना पूर्णतया अस्वाभाविक है।

'राष्ट्र ने अनुकरणीय एवं आदर्श अनुशासन और निरन्तर एकाग्रता की भावना के साथ शोक के तेरह दिनों की अवधि समाप्त की। राष्ट्र से ऐसी ही आशा भी थी। साथ ही साथ शोक की अवधि की समाप्ति हमें इस बात का निश्चित रूप से संकेत करती है कि अब हमें अविलम्ब उन अनेक रचनात्मक कार्यों की पूर्ति में प्राण-पण से जुट जाना चाहिये जिन्हें महात्मा गांधी ने अपना बनाया था तथा जिनको जारी रखना हमारा पवित्र कर्त्तव्य है। शोक! अब हम उनके व्यक्तिगत पथ-प्रदर्शन में उन रचनात्मक कार्यों को नहीं कर सकते किन्तु उनके उपदेशों तथा जीवितावस्था में उनके द्वारा सदा दिये जाने वाले परामर्शों से हम अब भी प्रेरणा प्राप्त करते रहेंगे। अतएव कर्तव्य का पथ यह है कि अब हम अपनी क्षति का ध्यान करना अथवा शोक करना बन्द कर दें और नूतन उत्साह तथा संकल्प के साथ गांधी जी द्वारा अधूरे छोड़े गये रचनात्मक कार्यों की पूर्ति में लग जायँ। मुझे पूरा विश्वास है कि गाँधी जी यह चाहते हैं कि हम इन कार्यों को पूर्ण रूपेण एकाग्रचित्त होकर करें। अतएव मैं आशा करता हूं कि ये उदार मित्र मेरे परामर्श पर ध्यान देंगे तथा अपने क्षेत्रों में, जहां से उन्होंने इस हृदय-विदारक प्रहार के कारण कार्य करना छोड़ दिया था, पुनः कार्य प्रारम्भ कर देंगे।

महात्मा गांधी की स्मृति में मन्दिरों के निर्माण अथवा ऐसे स्मारक बनाने के, जिनमे मूर्तिपूजा की गन्ध आती है, जो प्रयत्न हो रहे हैं उन पर भी मुझे अत्यधिक दुःख है। मुझे पूरा विश्वास है कि इससे अधिक अन्य किसी भी वस्तु से महात्मा गांधी असन्तुष्ट नहीं होते। ऐसे विषयों पर उन्होंने अपने मत अनेक बार असन्दिग्ध शब्दों में व्यक्त किये हैं। अतएव मेरा निवेदन है कि जो व्यक्ति ऐसे प्रयत्न करने की इच्छा रखते हों वे अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कोई कार्य न करें। गांधीजी का सब से सुन्दर और सुखद स्मारक यही हो सकता है कि उनके अनुकरणीय उपदेशों के अनुसार कार्य किया जाय और हम उन रचनात्मक कार्यों में लग जाँय जिनका वे उपदेश करते थे तथा स्वयं भी जिन पर अमल करते थे। केवल इसी प्रकार हम गांधी जी को वास्तव में अपने हृदय-मन्दिरों में प्रतिष्ठित कर सकते हैं और यही एक ऐसा स्थान है जहां हम सभी उन्हें सदा-सर्वदा के लिए विराजमान देखना चाहेंगे।

मैं अनाथ हो गया !

श्री देवदास गांधी

मुझमें और बापू में पिता-पुत्र का जो स्वाभाविक प्रेम था उसका साक्षी ईश्वर है। वह दिन मुझे आज भी याद है जब कि लगभग २० वर्ष की आयु में, मैं बापू से अलग होकर विशेष अध्ययन के लिए काशी जा रहा था और तब बापू ने झट आगे बढ़कर बड़े प्रेम से मेरा माथा चूम लिया था। पिछले कुछ महीनों से जब से बापू दिल्ली में थे, मेरे तीन वर्षीय पुत्र को उनका लाड़-प्यार पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मेरे लिए अभी कुछ दिन हुए, एक बार बापू ने मुझसे कहा था कि जिस दिन तुम लोग बिड़ला भवन नहीं आते, उस दिन तुमसे भी ज्यादा मुझे गोपू की याद आती है। अब यह छोटा बालक जब वैसा मुँह बनाता है, जैसा उसके दादा उसका स्वागत करते समय बनाया करते थे, तो हमारी आँखों से आँसू निकल पड़ते हैं। इन बातों के बावजूद भी मैं इस बात पर ज़ोर देना चाहता हूं कि गांधी जी की गणना पारिवारिक व्यक्तियों में नहीं हो सकती। मैंने बहुत पहले ही यह ख्याल छोड़ दिया था कि वह अकेले मेरे ही पिता हैं। मेरे लिए वह वैसे ही ऋषि थे जितने आप में से किसी के लिए। मैं आपकी तरह उनका अभाव महसूस कर रहा हूं। मैं इस भयंकर विपत्ति को ऐसे प्राणी की तटस्थ भावना से देखता हूं जो मानों उत्तरी ध्रुव में रहता हो और जिसका उस महापुरुष के साथ रक्त या जाति का कोई सम्बन्ध न हो। उनकी हानि का तो हमको अभी धुँधला-सा ही आभास हो रहा है।

संवेदना के जो हार्दिक सन्देश मुझे और परिवार वालों को मिल रहे हैं, उनसे हमको बड़ी सान्त्वना मिल रही है। लेकिन हम मानते हैं कि संवेदना के भेजने वाले शायद हमसे भी कहीं अधिक दुःखी और संतप्त हैं। कौन किसको दिलासा दे?

बापू की आखरी साँस छोड़ने के करीब ३० मिनट बाद मैं वहाँ पहुंचा। उस समय तक उनका शरीर गर्म था। उनकी त्वचा हमेशा कोमल और स्वभावतः सुन्दर थी। जब मैंने उनके हाथ को धीरे से अपने दोनों हाथों में लिया, तो ऐसा लगा कि मानो कुछ हुआ ही नहीं है। किन्तु नाड़ी का पता न था। जिस तरह वह हमेशा सोया करते थे, उसी तख्ते पर लेटे हुए थे। उनका सिर आभा की गोद में रखा हुआ था। सरदार पटेल और नेहरू जी उनके निकट गुमसुम बैठे थे और दूसरे बहुत से लोग श्लोक और भजन बोलते बोलते सिसकियाँ भर रहे थे। मैं देर से पहुँचा था। इस बात के लिए मैंने बापू के कान में रोते हुए क्षमा माँगी, किन्तु निष्फल रहा। भूतकाल में न जाने कितनी बार उन्होंने मेरी भूलों को क्षमा किया था। मैंने कोशिश की कि इस आखरी बार वह मुझे फिर क्षमा कर दें और एक नजर मेरी ओर डालें। किन्तु उनके होठ मजबूती से बन्द थे और उनकी आँखें चिर निद्रा में बन्द थीं। उनकी आकृति में शांत दृढ़ता थी। ऐसा मालूम पड़ता था, मानो वह स्वभाव से ही समय की पाबन्दी न करने वाले अपने पुत्र से बिना कटुता के किन्तु दृढ़ता के साथ कह रहे हैं अब मेरी शांति को तुम भङ्ग नहीं कर सकते।

हम सारी रात जागते रहे। उनका चेहरा इतना शांत और स्थिर था और उनके शरीर के चारों ओर फैला हुआ दैवी प्रकाश इतना मधुर था कि मृत्यु का शोक करना या उससे डरना मुझे पाप-सा मालूम हुआ। उन्होंने १३ फरवरी को अपना उपवास शुरू करते हुए जिस मृत्युरूपी परम मित्र का जिक्र किया था उसने उन्हें बुला लिया था। हम लोगों के लिए सब से अधिक असह्य वेदना का क्षण वह था, जब हमने उस अलवान को उतारा, जिसे वह प्रार्थना सभा में ओढ़े गये थे और, जब हमने शरीर को नहलाने के लिए उनके कपड़ों को उतारा। अपने अल्प वस्त्रों की बाबत बापू हमेशा बहुत साफ़-सुथरे होते थे। उस दिन वह और भी स्वच्छ और साफ-सुथरे मालूम दिये। प्रार्थना-भूमि पर गोली खाकर गिर पड़ने के कारण ऊपर की चादर में मिट्टी और घास के तिनके लग गये थे। हमने उसे बगैर झाड़े उसी रूप में धीरे-धीरे समेट लिया। चादर में हमको एक गोली का खोल मिला, जिससे यह जाहिर होता है कि गोली बहुत निकट से चलाई गई थी। वह छोटा दुपट्टा जिसे वह छाती और कंधे पर डाले रहते थे, कई जगह खून से भरा हुआ था। जब सब कपड़े हटा लिये गये और उनकी प्रसिद्ध छोटी-सी धोती के अलावा कुछ न बचा, तो हम लोग अपने आप को अधिक न सम्भाल सके। बापू के वे घुटने, वे हाथ, वे खास तरह की अंगुलियां, वे सब पाक

थे। कल्पना कीजिए कि उस शरीर को मसाला लगाकर ज्योंका त्यों कायम रखने के सुझाव को न मानने में हमें कितनी कठिनाई हुई होगी। लेकिन हिन्दू भावना उसकी इजाजत नहीं देती और अगर हम उस सुझाव को मान लेते तो बापू ने हमको कभी क्षमा नहीं किया होता।

यद्यपि अखबारों में सही-सही विस्तृत विवरण छप चुका है फिर भी मुझसे बहुत लोगों ने पूछा है कि क्या मृत्यु तुरन्त हो गई! बापू उस दिन कमरे से प्रार्थना-भूमि में जाने के लिए शाम को ५ बजकर दस मिनट पर रवाना हुए थे। उनके सदा के विश्वस्त साथी उनके साथ थे, जिनका सहारा लेकर वह चला करते थे। आभा दाँई ओर थीं और मनू बाँई ओर। ज्योंही बापू उद्यान की सीढ़ियों पर चढ़े, उन्होंने कहा कि मुझे देर हो गई है। वह पांच बजे के बाद तक सरदार पटेल से बातें करते रहे थे और एक मिनट भी विश्राम किये बिना प्रार्थना के लिये चल पड़े थे। ठीक उसी समय वह आदमी कहीं से आगे आया और उनके निकट बढ़ा। मनू ने यह समझ कर कि वह दूसरों की भाँति सामने लेटना या गांधी जी के पांव छूना चाहता है, उसे हटाने की कोशिश की। किन्तु उसने मनु का हाथ झटक दिया और तीन बार गोली चलाई। सभी गोलियाँ गाँधी जी की छाती पर और छाती से नीचे दाहिनी ओर लगीं ज्योंही वह नीचे गिरे, आभा भी गिर पड़ी और उसने उनका सिर अपनी गोद में रख लिया। दोनों लड़कियों-ने गांधी जी को "राम"! "राम"! कहते सुना। स्त्री-पुरुष शोक से अपने सिर धुनने लगे और उसी समय बापू के प्राण पखेरू उड़ गये। वापस मकान में ले जाने में पांच मिनट लग गये होंगे। तब अँधेरा हो गया था।

जब हम उस विषाद-भरे कमरे में उस रात बापू के चारों ओर बैठे हुए थे, तो मैं प्रार्थना-पूर्ण और बाल-कोचित आशा लगाये रहा कि तीन घातक गोलियों के जख्मों के बाद भी वह बच जायेंगे और सूर्योदय के पहले-पहले जीवन किसी-न-किसी तरह लौट आयेगा। किन्तु जब समय आगे बढ़ता गया और सृष्टि की किसी भी बात से उनकी निद्रा भंग न हुई तो मैं यह कामना करने लगा कि सूर्य अभी उदय ही न हो। किन्तु फूल भीतर लाये गये और हमने अन्तिम यात्रा के लिए शरीर को सजाना शुरू किया। मैंने चाहा कि छाती खुली ही रहने दी जाय। बापू जैसी विशाल और सुन्दर छाती किसी सैनिक की भी नहीं रही होगी। तब हम उनके चारों ओर बैठ गये और वे भजन और श्लोक पढ़ने लगे जो बापू को बड़े प्रिय थे। लोगों की भीड़ रात भर आती रही और अगले दिन बड़े सवेरे बापू ने हरिजन फंड के लिए आखिरी बार पैसा एकत्र किया। लोग बारी-बारी से उनके दर्शन करते हुए गुजर रहे थे और फूलों के साथ बापू पर सिक्कों और नोटों की वर्षा करते जाते थे। विदेशी राजदूतों ने अपनी पत्नियों तथा कर्मचारियों के साथ आदर प्रकट किया। यह सब शिष्टाचार से बहुत परे था। वह उनसे विदा ले रहे थे जिन्हें वह खूब मानते थे।

मृत्यु से पूर्व रात मुझे अत्यन्त दुर्लभ अवसर मिला था। वह यह कि कुछ देर के लिए मैं अकेला बापू के पास रह पाया। मैं हमेशा की भांति रात के साढ़े नौ बजे मिलने गया था। वह बिस्तरे में थे और एक आश्रम-वासी को वर्धा की पहली गाड़ी पकड़ने के बारे में हिदायतें देकर चुप थे। मैं अन्दर गया और उन्होंने पूछा "क्या खबर है?" उनका यह हमेशा का तरीका था मुझे याद दिलाने का कि मैं अखबारनवीस हूं। मैं भलीभांति जानता था कि इसमें मेरे लिये एक चेतावनी है, किन्तु उन्होंने मुझसे कभी कुछ छिपाया नहीं। मैंने जिस बारे में उनसे पूछा, वह उसका सार मुझको बता दिया करते थे। कभी-कभी तो वह बिना पूछे खुद ही बता दिया करते थे। किन्तु आमतौर पर वह तभी बताते थे, जब मैं उनसे पूछता था, यह मान कर कि मैं तभी पूछूंगा जब बहुत जरूरी होगा और वह भी ऐसे काम के लिए जिसका अखबार की खबर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होगा। इन मामलों में वह मुझ पर उतनाही विश्वास करते थे जितना स्वयं अपने पर।

स्वभावतः मेरे पास कोई खबर देने को नहीं थी, अतः मैंने पूछा हमारी सरकार की नौका का क्या हाल है? उन्होंने कहा—मुझे यकीन है जो थोड़ा मतभेद है वह मिट जायगा किन्तु मेरे वर्धा से लौटने तक ठहरना होगा। इसमें ज्यादा समय नहीं लगेगा। सरकार में देश-भक्त लोग हैं और कोई ऐसी बात नहीं करेगा जो देश के हितों के विरुद्ध हो। मुझे यकीन है कि उन्हें हर हालत में

साथ-साथ रहना है और वे रहेंगे। उनके बीच कोई मतभेद नहीं है।' इसी तरह और भी बातचीत हुई और अगर मैं कुछ देर और ठहर जाता तो उस समय भी वहां भीड़ जमा होगई होती। अतः विदा होते-होते मैंने कहा: 'बापू क्या अब आप सोयेंगे ?' वह बोले: 'नहीं, कोई जल्दी नहीं है। अगर तुम चाहो तो कुछ देर और बात कर सकते हो।' किन्तु जैसा कि मैं कह चुका हूँ बातचीत जारी रखने की इजाजत फिर दूसरे दिन नहीं मिल सकी।

कुछ दिन पहले जब मैं रात को उनसे विदा ले रहा था, मैंने उनसे कहा कि मैं प्यारेलाल को अपने साथ खाना खाने के लिए ले जा रहा हूँ। वह बोले 'हां, हां, जरूर, किन्तु तुम मुझे तो कभी खाने को बुलाते ही नहीं, हमेशा की भांति खिलखिलाकर हँसते हुए उन्होंने कहा।

मैं बापू को मारने वाले उस आदमी को कोसता हूँ ठीक उसी तरह जैसे मैं अपने भाई या पुत्र को कोसता, क्योंकि बापू के साथ उसका यही रिश्ता था। मैंने उसे मूर्ख माना है। सचमुच वह कितना भयंकर मूर्ख सिद्ध हुआ है। उसे बदमाशों का प्रोत्साहन और समर्थन प्राप्त था। किन्तु वे भी असह्य मूर्ख हैं। याद रखिये कि मूर्ख की मूर्खता की कोई सीमा नहीं होती है। और इसलिये जिस तरह हम चोर से सावधान रहते हैं, उसी प्रकार हमको मूर्ख से भी सावधान रहना चाहिए। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के काम एक समय ऐसे थे कि उनके दिल में संघ के प्रति प्रशंसा की भावना उत्पन्न हो गयी थी। जब वह शुरू हुआ, शारीरिक व्यायाम, कवायद, सबेरे उठना और अनुशासित जीवन उसका आधार था। किन्तु शीघ्र ही कुछ दुःसाहसी बीच में कूद पड़े। कुछ को उसमें व्यक्तिगत उत्कर्ष और राजनैतिक मौका नजर आया। गिरावट तेजी से शुरू हुई। उसके कुछ नेताओं ने पहले तो खानगी में और बाद में सार्वजनिक रूप से भयकर बात कहनी शुरू की और आखिर किसी ने अपने दिल में बुरे-से-बुरे विचारों को भी धारण करना आरंभ कर दिया। लेकिन हम अपना लक्ष्य आंखों से ओझल न करेंगे। हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में ऐसे लोग हैं जो अगर उन्हें मालूम होता तो गांधी जी को बचाने के लिये अपने प्राण दे देते। और प्रकटतः यह बात उनमें से अधिकांश पर लागू होती है। केवल मुट्ठी भर आदमी हैं जिनका बम्बई और उसके आसपास जमघट है और जिनका इस गुनाह के साथ सम्बन्ध है। हमको सारे महाराष्ट्र को उन मुट्ठी भर महाराष्ट्रियों के साथ शामिल नहीं कर लेना चाहिए, जिनके अपराधी साथी दूसरी जगहों में भी हैं। मैं इस गिरोह के बारे में आज कुछ कहने का अपने को अधिकारी नहीं मानता। उनको दम्भ, असन्तोष और मानव के सब से अधिक शक्तिशाली विकार ईर्ष्या के संयोग से साहस और प्रेरणा मिली है।

कहा जाता है कि कुछ लोगों ने मिठाई बाँट कर इस घटना पर खुशी मनाई। यह इतना हास्यास्पद है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जिन्होंने ऐसा किया है परिणामों की उन्हें कोई चिन्ता नहीं है और उनके सामने कोई उद्देश्य भी नहीं है। कुछ बदनाम अखबार उनकी पीठ पर हैं, जिन पर कोई अंकुश नहीं रहा। सरकार को यह देखना है कि शरारतियों के साथ कैसा बर्ताव किया जाय जिनमें से कुछ खुले और कुछ गुप्त रूप में काम करते हैं। शरारती इतने थोड़े और इतने फैले हुए हैं कि आप लोगों को उनकी कोई खास चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। सरकार को उनके साथ निपटने को छोड़ देना चाहिये।

किसी भी रूप में बदला लेने का सवाल ही नहीं उठता। क्या उससे बापू लौट आ सकते हैं ? क्या वह यह पसन्द करेंगे कि हम रक्त की होली खेलने लग जाँय ? कदापि नहीं।

महान जीवन : महान मृत्यु

श्रीयुत कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

गांधी जी पर मैं कुछ लिखने में असमर्थ हूँ। उनके अंतिम क्षणों में जब मैंने उनके दर्शन किये, तभी से, इस आघात को बर्दाश्त करने के लिये मन ने एक संरक्षक आवरण रच लिया है। उनका प्रस्थान अभी भी झूठा सा लगता है। वे नहीं रहे, यह मैं जानता हूँ, किन्तु मैं इस विचार को नहीं सह सकता कि वे नहीं रहे। मेरे अंत:करण में यह उपचेतना जाग्रत है कि यदि मैं बिड़ला भवन के अपने कमरे से चलकर बापू जी के कमरे में जाऊँ तो वही स्नेहमय मुस्कुराहट मुझे प्राप्त होगी, जो पिछले गुरुवार की शाम को, उनके द्वारा मुझे प्राप्त हुई थी, जब कि मैं उनके कमरे में गया था।

यदाकदा मुझे वे यह अधिकार देते थे कि अहिंसा और सत्य के विषय में मैं अपना दृष्टिकोण उनके सामने रखूं। मेरे विचार में यह बात आ गयी थी कि उनका जीवन, योगसूत्र और भगवद्गीता की एक जीवित व्याख्या है। मैंने इस अवसर से लाभ उठाया और सन १९४५ की बात चीत के एक अधूरे सिलसिले को पुनः जारी करते हुए कहा:—

बापू, आपको अपना विनीत धन्यवाद सौंपते हुए मैं श्रीगणेश करता हूं।

क्यों, धन्यवाद क्यों? बापू जी बोले।

तब, मैंने उन्हें, योगसूत्र और टाल्स्टाय से संबन्धित अहिंसा पर मेरी और उनकी चर्चा की याद दिलाई। सन १९४५ में मैंने उनसे कहा था कि सन १९४२ का अहिंसात्मक आन्दोलन, अहिंसा की शास्त्रीय कसौटी पर इसलिये नहीं ठहरता कि उसके द्वारा शत्रु के हृदय में प्रेम के बदले क्रोध उत्पन्न हुआ था। और पतंजलि ने कहा है कि जिस व्यक्ति में अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है, उसके पास लोग प्रेम की भावना लेकर आते हैं।

किन्तु इस बार वह परीक्षा पूरी उतरी,—इस बार, जब आपने अनशन किया, तब, मुसलमान, जो अब तक आपसे नफरत करते थे, आपको चाहने लगे। जो हिंदू, आपको चाहते थे, उन्होंने आत्म संयम सीखा।

मैंने हैदराबाद की घटनाओं की एक तसवीर उनके सामने रखी। बात चीत यहां तक पहुँची थी कि राजकुमारी भी आ गई।

खैर। शाम को सात बजे मैंने उनसे विदा ली इस आशा के साथ कि अगले दिन मैं फिर उनके दर्शन करूंगा। लेकिन, अगली शाम को ५-२५ बजे, जब मैं रियासती विभाग के सचिवालय में था, बिड़ला के मोटर ड्राइवरों में से एक, यह खबर लाया कि गांधी जी पर गोली दागी गई है। मैंने इस समाचार पर विश्वास नहीं किया। शांति के देवदूत को भला कौन मारेगा?

मैं टेलीफोन के पास दौड़ गया। समाचार की पुष्टि की गई। मुझे तो जैसे काठ मार गया। झपट कर मोटर में बैठा, और भागा बिड़ला भवन की ओर। मेरा मन किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहा था।

मैं दौड़ा भीतर। उनके कमरे में गया। अपने सदा के बिछौने पर ही वे पौढ़े थे। उनके पीले चेहरे पर मृत्यु की छाया स्थिर पड़ चुकी थी। मनु, आभा तथा दीगर लड़कियाँ उनके सिरहाने, पास ही थीं। सरदार बैठे थे; शोकाभिभूत किन्तु सबल। उनकी एक भुजा पंडित जी से लिपटी, उन्हें तसल्ली दे रही थी। पंडित जी सिसक रहे थे। बगल में खड़े कर्नल भार्गव की ओर मैं मुड़ा। सिर हिला कर उन्होंने मौन उत्तर दिया। मृत्यु, कराल एवं निष्ठुर मौत, वहां मौजूद थी; गांधी जी को अपनी वज्र मुट्ठी में कसे हुए। मेरा दिल टूट गया गांधी जी चले गये थे। मैं पितृहीन हो गया।

एक दूसरे डाक्टर आये। गांधी जी की छाती पर उन्होंने स्टेथस्कोप रखा, और चादर हटा दी। तीन, खून उगलते हुए घाव मैंने देखे। वेदना-पीड़ित आत्मा रो उठी।

मनु, भगवद् गीता के मन्त्र पढ़ने लगी। पद-पद पर उसका स्वर टूट रहा था। मणि बेन, प्यारेलाल और मैंने भी मनु का साथ दिया। हम लोग गीता के श्लोक पाठ कर रहे थे कि मेरे मनोलोक में एक कल्पना आई। किसी पथ-भ्रष्ट बाण की चोट से श्रीकृष्ण की मृत्यु हुई; सुकरात जहर पीकर मरे; ईसा को सूली देकर मारा गया। गांधी जी गोलियों की चोट खाकर मरे। ये चारों उपदेष्टा अप्राकृतिक मृत्यु के आधीन हुए। किन्तु यह सम्भवतः, एक महान जीवन का उचित अन्त था। सुकरात और ईसा के साथ अपराधियों का सा

व्यवहार किया गया था। दोनों ने भयंकर विक्षोभित समाज के हाथों मौत पाई। श्रीकृष्ण की मृत्यु किसी अज्ञात कुलशील व्याध के हाथों हुई। गांधी जी का हत्यारा, शांति का शत्रु होने के नाते इस पृथ्वी की मानव जाति के भाग्य का भी शत्रु है।

गांधी जी ने भारत को संगठित कर एक राष्ट्र में परिणित किया। उन्होंने इस राष्ट्र को राष्ट्रीय भाषा प्रदान की। नई परम्परा इस राष्ट्र के लिए स्थापित की। एक शासन संस्था का भी निर्माण किया। इस जाति के स्वातन्त्र्य युद्ध का नेतृत्व भी उन्हीं ने किया। स्वतन्त्रता मिल जाने पर वे इसके संचालक बने। और जब वे मरे तब उन्हें इस राष्ट्र की अपरिसीम श्रद्धा और भक्ति प्राप्त हुई। जब वे मरे तब वे मानो एक सम्राट थे। उन्हीं की आज्ञा पर भारत का शासन संचालित होता था। और ये सारे सम्मान, एक सच्चे प्रजातंत्रवादी की भांति, अपनी वाणी और कलम के उपयोग से, अपने शत्रु के मस्तक के एक भी रोएँ को सताये बिना, उन्होंने प्राप्त किये।

किंतु ये राजनैतिक कृतियां, जिन्होंने महात्मा जी को, दुनिया के राजनैतिक उद्धारकर्ताओं का सिरमौर बना दिया है, उनकी नैतिक कृतियों की तुलना में नगण्य हैं। महात्मा जी ने गुलामों को आदमी बनाकर खड़ा किया। भारत के नारी समाज को उन्होंने शृंखला-मुक्त किया। समाज से उन्होंने अस्पृश्यता का कलंक धोया। उन्होंने उस लोहे के पिंजड़े को छिन्न भिन्न कर दिया जिसमें यह समाज बन्द कर दिया गया था।

परलोकवाद के प्रेत का उन्होंने विनाश किया। पिछली २ शताब्दी के विदेशी शासन ने, इस देश की समष्टि-गत अन्तर चेतना पर लघुता के जो अभिशाप डाल रखे थे, महात्मा जी ने उन्हें तिरोहित किया। उन्होंने भारतीयों में, अपनी संस्कृति का अभिमान, अपने बल का—अपने आत्म बल का विश्वास वापस लौटाया। भारत की अविनाशी संस्कृति को पुन: संगठित करके उन्होंने उसे विश्व-विजय के अभियान में प्रेरित किया। गांधी जी नवीन जीवन के प्रचारक देवदूत थे।

इससे भी अधिक। उन्होंने आर्य संस्कृति की मूल धारणाओं को अपने में अधिष्ठित करके उन धारणाओं की कीमत ताजी कर दी। आसक्ति, भय और क्रोध पर विजय प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व को सम्पूर्ण बनाने की दिशा में वे आजीवन प्रयत्नशील रहे। वे इस बात के प्रत्यक्ष उदाहरण थे कि नैतिक व्यवस्था ही जीवित शक्ति है। उन्होंने अहिंसा में अपने को प्रतिष्ठित किया। शत्रु भी उनके सामने आते थे तो प्यार लिये हुये। वे समझ गये थे कि सत्य और उसके कार्य स्थायी परिणाम उत्पन्न करने वाले होते हैं। भोगासक्ति का त्याग कर वे अक्षय शक्तिशाली बने रहे। रुपये-पैसे का लालच उन्होंने छोड़ दिया था। जिस महान उद्देश्य में वे हाथ डालते थे उसे पूरा करने के लिये धन बिना मांगे उनके पास इकट्ठा हो जाता था। वे अपरिग्रही थे। जीवन का अर्थ उन्हें ज्ञात था। परमात्मा का उनमें निवास था।

जैसे वे आये और दुनिया में रहे, वैसे ही परमात्मा के यज्ञ के रूप में वे चले भी गये। उनके जीवन का एक-एक पल, प्रभु की आराधना में सविनय समर्पित था। और उनकी मृत्यु !—प्रभु के आदेश पर, तत्काल कूच की तैयारी थी। उनका कर्तव्य समाप्त हो चुका था। उनका पर्यवसान महान था। एक राष्ट्र उनके चले जाने से बेचैन हो उठा, सारा विश्व शोक से चूर-चूर हो गया, घूर्णमान नियतिचक्र भी उनके अभिनंदन में क्षण भर स्तब्ध हो रहा।

सम्राट, देवदूत, योगी—मेरे पिता एवं पथ प्रदर्शक—तुम्हारे बिना, सहस्रों अन्य व्यक्तियों के समान, मेरा भी जीवन शून्य हो गया !

———

हमारा फ़र्ज़

माननीय श्री जयरामदास दौलतराम

समय जब बहुत दूर के धुँधले भविष्य की ओर तेजी से बढ़ेगा और सैकड़ों हजारों बरस बीत जायँगे, तब भी गांधी जी और उनके महान बलिदान की प्रतिध्वनि नित्यता की हमेशा पीछे हटती जाने वाली दीवालों से टकरा कर वापिस लौटेगी। दुनिया के इतिहास में कोई आदमी अपने जीवन में गांधी जी जैसा निर्दोष नहीं रहा, कोई आदमी गांधीजी की तरह अपनी जान कुरबान करके मानवता के ऊँचे-से-ऊँचे उसूलों का सम्मान नहीं कर सका। हम गांधीजी के इतने ज्यादा नजदीक हैं कि उनकी ऊँचाई को नहीं नाप सकते। युगों बाद आनेवाली पीढ़ियाँ उस आत्मा की सच्ची महत्ता की सही सही कीमत आँकेंगी जो इस तरह अचानक इस दुनिया से चली गई।

जैसे एक हीरे के कई पहलू होते हैं, उसी तरह गांधी जी के जीवन के भी कई पहलू थे। हालांकि मनुष्य-जाति की सेवा के लिये उन्होंने तरह तरह के काम किये, फिर भी एक ही ऊँचा मकसद उन सबको प्रेरणा देने वाला था। वह ऊँचा मकसद था मनुष्यता के नियम के मुताबिक—अहिंसा के नाम से पहचाने जाने वाले प्रेम के नियम के मुताबिक जीवन बिताना। मनुष्य को पशु के स्वभाव और उसकी भावनाओं से ऊपर उठना है। मनुष्य जिस हद तक उनसे ऊपर उठता है, उसी हद तक वह मनुष्य है। नैतिक क्षेत्र में मनुष्य की प्रगति ही सच्ची प्रगति है। गांधी जी ने अपने जीवन के ६० लम्बे और कठिन परीक्षा के वर्षों में अपने आपको प्रति घंटे इसी तरह गढ़ा और अपने क्रोध, द्वेष, ईर्षा, मोह वगैरह को उन बुनियादी भावनाओं से ऊपर उठाया, जो मनुष्य को अपनी पशु-योनि से विरासत में मिली हैं। उन्होंने इस बात पर अमल किया और अपने अमल के मारफत दुनिया को प्राणिमात्र के लिये प्यार के बुनियादी मानवी गुण का उपदेश दिया।

जिस हिन्दू धर्म में वह पैदा हुये थे, उसकी यह बुनियादी तालीम भी है। चूंकि उन्होंने हिन्दू धर्म की इस तालीम के मुताबिक जीवन बिताने का साहस किया, इसलिए उनकी एक हिन्दू के हाथों हिन्दू हितों के नाम पर हत्या हुई। मगर वह हिन्दू हत्यारा सचमुच उस ज़हनियत का बहुत बड़ा प्रतिनिधि है, जिसका अस्तित्व उस सिद्धान्त का विरोध करने के लिये है जिसके लिये गांधी जी जिये और उन्होंने काम किया। वह ज़हनियत नफ़रत और ग़ैर-बरबादी की निशानी है। वह दूसरों को विरोधी मत रखने और उसका प्रचार करने का हक़ नहीं देना चाहती। मगर वे जान का ख़तरा उठाकर ही ऐसा कर सकते थे। ग़ैर-बरबादी के इस राक्षस का प्रकट होना हिन्दुस्तान के लिये ख़तरे की चेतावनी है। उसका भविष्य अन्धकार में है, उसकी आत्मा हो ख़तरे में है। घृणा से घृणा ही पैदा होती है! वह एक ऐसा शस्त्र है जो सामने वाले को चोट पहुँचा कर ज़रूर वापस लौटता है। हिंदू समाज खुदकुशी कर रहा है।

बापू दुनिया से चले गये हैं। और फिर भी जब क़लम से यह बात निकल पड़ती है, तो दिमाग विरोध करता है कि बापू कभी नहीं मर सकते। वह देवताओं की कोटि के व्यक्ति हैं। उनका जीवित असर हिन्दुस्तान में करोड़ों के जीवन को और चोला के रूप को आकार देगा। ऐसा चाहने वाले सबको उनके प्रति वफ़ादार रहना चाहिये। उनके काम हमारे काम बनें: फिर भले उनका भार उठाने के लिये हम कमज़ोर ही क्यों न हों। भगवान हमें अपना फ़र्ज़ अदा करने के लिये ज़रूरी श्रद्धा और शक्ति दे।

युग-पुरुष गांधी

माननीय श्री जी० वी० मावलंकर

आज हमारे देश पर दोहरी दुर्घटना आ पड़ी है। एक दुर्घटना तो यह है कि हमारे युग का वह सर्वोच्च महा पुरुष जिसने हमारी दासता के बन्धन तोड़ कर हमें स्वाधीन बनाया आज नहीं रहा और दूसरी दुघटना यह है कि हमारे देश में राजनीतिक हिंसा में लोगों का विश्वास फिर प्रकट हुआ है। भारत के राजनीतिक गगन में उदय होने के समय से ही महात्मा गांधी हिंसा का विरोध करते आये हैं। हम लोग सोचने लगे थे कि उन्हें अपने कार्य में अत्याधिक सफलता प्राप्त हो चुकी है। यद्यपि पिछले महीने में साम्प्रदायिक उपद्रवों तथा लोकप्रिय भावों की अभिव्यक्ति से हमारा यह विश्वास बुरी तरह हिल उठा था, किन्तु फिर भी, हम आशा लगाये थे कि राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए जान-बूझ कर कुत्सित हत्याएँ करने का समय इस देश से लद चुका। गत शुक्रवार की शाम को अभागी एवं कायर घटना ने हमें निराश कर दिया है और हमारे सामने, राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हिंसा से काम लेने के विचार को आमूल नष्ट कर देने की एक नयी समस्या उपस्थित कर दी है। मालूम होता है कि हमें अभी यह अनुभव करना बाकी ही है कि राजनीतिक हिंसा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की और इस प्रकार लोकतन्त्र की सब से बड़ी शत्रु है। राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हिंसा की हम कड़े से कड़े शब्दों में निन्दा करते हैं, किन्तु पथ-भ्रष्ट लोगों और दुःखान्त कांड करने वाले पागलों की निन्दा मात्र करना पर्याप्त नहीं है। प्रत्येक विचारवान नागरिक पर आज यह जिम्मेदारी आ पड़ी है कि इस प्रकार कार्य करे और अपने जीवन को इस रूप में ढाले ताकि इस बात का पक्का निश्चय हो जाय कि हमारे इस देश में आतंकवाद को पनपने के लिये अनुकूल वातावरण प्राप्त न होगा। जैसा कि गांधी जी प्रायः कहा करते थे, "अहिंसा के बिना वास्तविक लोकतन्त्र सम्भव नहीं है।"

मेरा सौभाग्य था कि १९१५ से ही जब कि महात्मा गांधी ने स्थायी रूप से यहां निवास ग्रहण करने के लिये भारत भूमि पर कदम रखा, मैं उनके सम्पर्क में रहा। तब से आज तक के इन वर्षों में, मैं महात्मा गांधी की अनुप्रेरणा एवं पथ प्रदर्शन में जो कुछ भी मुझसे हो सका, थोड़ी बहुत जनसेवा करता आया हूं। स्वभावतः हमारे देश का इतिहास और पिछले ३४ वर्षों में स्वाधीनता प्राप्ति के लिये हमारे आन्दोलनों का चित्र आज हमारी आँखों के सामने आ जाता है। हमें स्वराज्य प्राप्त करने के लिये अपने उपायों, तरीकों आदि से सम्बन्धित उन दिनों के आदर्शों की याद आ जाती है और फिर हम यह सोचते हैं कि इन सब बातों को महात्मा गांधी ने अपने व्यक्तित्व द्वारा किस प्रकार प्रभावित किया। आज ऐसी अनेक बातें मेरे दिमाग में ताजा हो रही हैं, किन्तु सविस्तार उन सब का उल्लेख करने का यह समय नहीं। इतना ही कहना पर्याप्त है कि सत्याग्रह अर्थात अहिंसापूर्ण प्रतिरोध का अमोघ साधन प्रदान करके गांधी जी ने हमारा सारा निरुत्साह एवं निराशा नष्ट कर दी और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध हमारी लड़ाई में हमें नवीन आशाओं से अनुप्रेरित किया। उन्होंने हमें यह प्रत्यक्ष करके दिखाया कि जनता के लिये स्वराज्य का सच्चा अर्थ क्या है। हम में जो कुछ अपना था वह हमसे छिना नहीं और हम पश्चिम की नकल करने से बच गये। यह सब उन्हीं के पथ प्रदर्शन का परिणाम था। जीवन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो जो महात्मा जी के प्रभाव से अछूता बचा हो। उन्होंने हमारी राजनीतिक अर्थ-व्यवस्था तथा शिक्षा को एक नवीन युगान्तकारी परिवर्तन से प्रभावित किया और हमारे सार्वजनिक जीवन के प्रायः सारे अंगों को आध्यात्मिकता का जामा पहनाया। वह हमारे युग के सब से बड़े पुरुष थे। मानवता का प्रेम ही उनके हृदय में प्रज्वलित रहा और द्वेष एवं हिंसात्मक संघर्षों के अन्धकार पूर्ण अवसरों में भी प्रेम की उनकी यह आग न बुझी। गांधी जी अपने जीवन में कभी भी निराशावादी नहीं बने। ऐसे समय में भी नहीं जब उन्होंने अकेले ही अपनी आवाज उठायी हो। स्वयं अपने सिद्धान्तों एवं आदर्शों में इस प्रकार का अटूट विश्वास रखते हुए, स्वभावतः उन्होंने हमें साहस एवं बल प्रदान किया।

आज एक बहुत ही संकटपूर्ण समय में वे हम से छूट गये हैं। ऐसे समय में जो कि न केवल हमारे देश के लिये बल्कि शायद संसार के इतिहास में संकटपूर्ण

है। उनका दृष्टिकोण मानवता, अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृत्व तथा 'एक दुनिया' के भावों से परिपूर्ण था।

वे कभी भी किसी धारा सभा के सदस्य नहीं थे। एक बार को छोड़ कर वे कभी किसी भी धारा सभा की कार्रवाई भी देखने नहीं गये। जैसा कि अपनी आत्म कथा में उन्होंने स्वयं लिखा है, वे इस सभा की कार्रवाई में अपने जीवन में केवल एक बार उपस्थित हुए, उस समय जबकि रौलट बिल पर बहस हो रही थी। बिल के सम्बन्ध में स्वर्गीय श्रीनिवास शास्त्री की भावावेश पूर्ण वक्तृता का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं—"वाइसराय ऐसे ध्यान से सुन रहे थे मानों उन पर जादू हो गया हो। उनकी आंखें शास्त्री जी पर लगी हुई थीं। एक क्षण के लिये मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो वाइसराय पर इस वक्तृता का गहरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता ....किन्तु आप किसी मनुष्य को तभी जगा सकते हैं जब वह वास्तव में सो रहा हो....सरकार आगे की कार्रवाई करने के लिये केवल स्वांग कर रही थी....।"

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय की धारासभाओं के प्रति गांधी जी का रुख कैसा था। किन्तु आज स्थिति उससे सर्वथा भिन्न है। उनके प्रेरणापूर्ण पथप्रदर्शन एवं प्रयास द्वारा भारत ने स्वाधीनता प्राप्त की है और आज धारा सभा और सरकार दोनों ही हमारी हैं।

मुझे विश्वास है कि सारा देश इस बात से सहमत है कि महात्मा जी हम के पिता के समान रहे हैं और हम तथा हम में से प्रत्येक व्यक्ति आज उनके विछोह से तथा उनके पथप्रदर्शन के बिना अत्यधिक शोकग्रस्त है। ईश्वर से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा सदैव हमारे साथ रहे और ध्येय तक पहुंचाने में हमारा नेतृत्व करती रहे।

[शेष पृष्ठ १०६ से आगे]

समानता का भाव पैदा करने के लिए कितनी बड़ी देन दी और इस विशाल देश के स्वप्न को पूरा कर दिया। तत्ववेत्ताओं में वह "युग पुरुष" थे व जर्मन दार्शनिकों की दृष्टि में वे "दिव्याकार मानव"। उनके उच्च चरित्र के संक्रमण ने हमें सोते से जगाकर क्रियाशील किया, छुआछूत तथा सम्प्रदायवाद का भारत पर जो प्राचीन काल से कालिख पुता हुआ था उसे साफ करने में हमें बहुत दूर तक सफल बनाया तथा ऐसे भविष्य की ओर गतिमान किया जो ऐसी कालिख से पाक व साफ है। भारत को इस घड़ी में उनकी अतीव आवश्यकता थी। लेकिन वह प्रकाश जिसने ऐसे भूतकाल से हमें ऐसे भविष्य की ओर छलांग मार कर आने में पथप्रदर्शन किया और प्रोत्साहन दिया एक क्रूर हत्यारे द्वारा बुझा दिया गया।

ऐसे महामानव के निर्वाण के कारण ही यह विशाल देश दुःख के समुद्र में डूब गया है। लेकिन सिर्फ हम ही नहीं उनके निधन से दुखी हैं बल्कि समूचा संसार ही विलाप कर रहा है। उन्होंने हमें स्वतंत्रता का मन्त्र दिया और साथ ही हमें संसार को देने के लिए सन्देश भी दिया है। वह भारतीय राष्ट्र के राष्ट्र पिता ही नहीं थे वरन समूचे मानव समाज के गुरु थे। संसार की वर्तमान सभ्यता संकटावस्था में आ पहुँची है। आशंका है कि हम आज ज्वालामुखी के शिखर पर खड़े हैं और ऐसी शक्तियाँ कार्य कर रही हैं जो हमें पुनः बर्बर युग में ढकेल सकती हैं। हम जानते हैं कि इस बार बर्बर आक्रमणकारी कहीं बाहर के नहीं हैं। वे बर्बर जीव हमारे ही बीच में छुपे हुए हैं। ऐसे संकट से बचने के लिये उन्होंने प्रेम व अहिंसा का सन्देश दिया है। वह क्रांतिकारी थे और इन सिद्धांतों के अनुसार उन्होंने संसार को विचारों व संस्थाओं में क्रान्तिपूर्ण परिवर्तन करने के लिए तत्पर किया जिससे मानव समाज पुनः बर्बरता के गड्ढे में गिरने से बच सके। मानव मर्यादा पर आधारित नई सभ्यता व नई संस्कृति संसार को देने के लिए गान्धी जी का पदार्पण हुआ था जो इस महान देन को नहीं सम्भाल सका। इस अवस्था में ऐसे मसीहा के निधन पर समूचे संसार का विलाप करना स्वाभाविक ही है।

युगद्रष्टा महा-मानव

माननीय डाक्टर श्रीकृष्ण सिंह

गत कई वर्षों से हम लोग निर्लज्जता पूर्वक हिंसा व घृणा के गीत गाते आ रहे हैं और राष्ट्र को हम लोगों की इस मूर्खतापूर्ण करतूत का गहरा दाम चुकाना पड़ा है। वह पुरुष ही गोली का शिकार बनाया गया, जिसने भारत को आजाद किया, उसके मस्तक को संसार की दृष्टि में ऊंचा किया तथा उसे प्राचीन गौरव दिलाया। आजाद भारत में एक भारतीय के हाथों से राष्ट्र के महान पिता की हत्या हो, यह सुनकर विश्व स्तम्भित रह गया है। समस्त भारत की आंखों से अविरल अश्रु धारा बह रही है और घर-घर से प्रार्थना की पुकार उठकर उस महान दिवंगत आत्मा की शांति के लिए स्वर्ग को पहुंच रही है।

हम आज करुण विलाप करते हैं क्योंकि हमने अपने पिता, तत्ववेत्ता और पथ प्रदर्शक को खो दिया। गुलाम अवस्था में हमें निविड़ अन्धकार व हतोत्साह ने आच्छादित कर लिया था। बापू हमें वहाँ से निकाल कर प्रकाश में लाये और विजय पर विजय प्राप्त कराते हुए हमें स्वाधीन बनाया। स्वातंत्र्य संघर्षकाल में हमें सङ्कटों से गुजरना पड़ा तथा ऐसी समस्याओं का सामना करना पड़ा जब हम किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाते थे। वह ऐसे तत्ववेत्ता तथा राजनीतिज्ञ थे जिनमें मानव स्वभाव व चेष्टाओं के समझने की बेजोड़ पारदर्शी दृष्टि थी। ऐसे सङ्कटकाल में राष्ट्र ने सर्वदा उनकी ओर सहायता पाने के ख्याल से देखा और उन्होंने सर्वदा सफलता पूर्वक हमारा बेड़ा पार लगाया।

दासता से मुक्ति दिलाकर उन्होंने हमें स्वाधीनता दिलाई। नवजात स्वतंत्रता का प्रारम्भ सभी प्रकार के सङ्कटों से भरा रहता है। हमारे भाग्य में तो यह और भी बदा था। कल तक हम पर ऐसा शासन लदा था जो, निरंकुश एक तंत्रवाद पर आधारित था। स्वभावतः इससे हममें वह गुण नहीं विकसित हो पाता था जिसकी भित्ति पर लोकतंत्रात्मक राज्य का निर्माण हो सके। हमें परंपरानुकूल फूट का अभिशाप मिला हुआ था। ये केन्द्रीभूत धारणाएं हममें अब भी घर किये हुए हैं। हम अब भी उन भावनाओं के शिकार हैं जो फूट व भेद भाव पर ज़ोर देती हैं न कि एकता व सामञ्जस्य पर। यह वह आधार-शिला नहीं है जिस पर हम चिरस्थायी व मजबूत सरकार का निर्माण कर सकें। मनुष्य मनुष्य के सम्बन्ध में ही किसी सरकार के निर्माण का बीज निहित रहता है और चिरस्थायी व ठोस सरकार के लिए आवश्यक है कि इस सम्बन्ध का उपयुक्त सुधार हो। सुधार की बात में मत-भेद की बात निहित है। जब मतभेद के लिए ही मतभेद ज़िद पकड़ जाता है तो सरकार का चलाना कठिन कार्य हो जाता है। वर्तमान युग के बहुदली समाज में ऐसा असाध्य मतभेद सरकार का कार्य कठिन ही नहीं वरन असम्भव बना देता है। नवजात स्वतंत्रता के पुष्टिकरण तथा उत्तम व शक्तिशाली राज्य की स्थापना के लिए इस परंपरानुगत पृथकतावादी देन का उन्मूलन करना होगा तथा हमें अपने में समन्वय की यथेष्ट भावना पैदा करनी होगी जिसमें हम स्वार्थों व वर्गों के शोषण संघर्ष के विरुद्ध सर्वनिष्ठ भावना की विजय प्राप्त कर सकें।

हमने लोकतन्त्रात्मक राज्य की स्थापना का निर्णय किया है और केवल लोकतंत्रवादी श्रीगणेश कर रहे हैं। शिक्षा-क्रम द्वारा ही हम शांतिपूर्ण रहन-सहन की कला का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और इसके लिए कई पीढ़ियों को अभ्यास करना पड़ता है। शिक्षा व अभ्यास के द्वारा हम अपने में एकता की भावना पैदा कर सकते हैं जो नवजात स्वतंत्र राज्य के लिए नितांत आवश्यक है। अकेले उस महान पथ प्रदर्शक में, जिनकी अपूर्णीय क्षति के लिए हम सभी शोकाकुल हैं, ये सर्वगुण विद्यमान थे जो हमें वैसी शिक्षा देकर उस कला का अभ्यास करा सकते थे जो हमारा इस सङ्कट काल में बेड़ा पार करा देती। वह सच्चे अर्थ में लोकतन्त्रवादी व महान राज-नीतिज्ञ थे। जैसे ही भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में उनका पदार्पण हुआ उन्होंने स्पष्ट रूप से दिव्य दृष्टि द्वारा देख लिया कि स्वतंत्रता के लिये जातियों व धर्मों के इस देश में हम लोगों को मनुष्यों सा आचरण करना होगा और एक राजनीतिज्ञ की अचूक अन्तर दृष्टि ने उन्हें छूत छात व धार्मिक भेदभाव के विरुद्ध जेहाद घोषित करने के लिए प्रेरित किया। आने वाली पीढ़ियां इसका निर्णय करेंगी कि किस प्रकार उन्होंने अबाध गति से २५ वर्षों तक इस देश में यह जेहाद चलाया और हममें

[शेष पृष्ठ १०२ पर]

गांधीजी !

श्री होरेस अलेक्ज़ेंडर

बीस साल पहले, साबरमती आश्रम में, चारों ओर खेलते बच्चों से घिरे जब मैंने पहले 'पहल गाँधी जी को देखा था वही दृश्य आज एकाएक मेरे दिमाग़ में आ जाता है। मैंने उनके साथ एक हफ़्ता बिताया और इसी बीच गांधी जी को बच्चों के साथ रहने में जो आनन्द आता था उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ।

इसके बाद उनका तरो ताज़ा कर देने वाला मज़ाक। गवर्नमेंट और कांग्रेस में समझौता कराने के एक संगत आधार पर विचार विनिमय करने के लिये १६३० में लार्ड इरविन (अब लार्ड हैलिफैक्स) ने मुझे साबरमती जेल में जाने की आज्ञा दी। दो घन्टे की बातचीत के बाद मैं चलने के लिये तैयार हुआ। चलते समय मैंने उनसे पूछा, "क्या कोई और बात है जिसके लिये मैं रुकूँ?" गांधी जी ने झट जवाब दिया, "नहीं जब तक आप स्वयं जेल में रुकने और मेरे साथ रहने के लिये तैयार नहीं होते"।

इंगलैण्ड राउण्ड टेबुल कांफ्रेंस के समय तर्क और समझाने के प्रयत्न में भी उनके असीम धैर्य और सौजन्य से मैं बहुत प्रभावित हुआ। हफ़्तों तक वह राजनीतिज्ञों, पत्रकारों और राज्य व्यवस्थापकों से मिलने के लिये तैयार रहते और सबको अपने विचारों के युक्तिसंगत होने के विषय में समझाते रहते। दूसरे कभी कभी ज़िद्दी तुनुकमिजाज या अधैर्यवान हो उठते लेकिन उनमें इस तरह की कभी भी कोई बात नहीं पाई गई।

लेकिन कभी कभी मैं उनसे पूछता कि आप ऐसा क्यों कर रहे हैं तो वह तर्क करना छोड़कर सीधे सीधे लेकिन बड़े सरलरूप में कहते। "कभी कभी" वे कहते, "आप किसी मनुष्य के दिमाग़ को झूठे वहमों और अस्पष्ट धारणाओं से इस भांति प्रभावित पायेंगे कि कोई तर्क उसे समझाने में समर्थ नहीं हो सकता। तब उसे हृदय पर चोट करने वाली उपचार की आवश्यकता पड़ती है जो उसकी भावनाओं को स्पर्श कर सके और जो उसे अपनी मूल धारणाओं को फिर से टटोलने में सहायक हो सके"।

मैंने पहले कभी भी ऐसे आदमी को नहीं देखा था जिसका अपने असंख्य मित्रों से इतने निकट का सम्पर्क रहता हो। आपको सदैव यह भान होता रहता कि वह सचमुच आपके निजी और पारिवारिक जीवन की कड़ी चिन्ता करते थे। वह नाम और व्यक्ति में विस्तृत विवरण सदैव याद रखते। इस विषय में मुझे तुरंत उस समय की याद आ जाती है जब मैं और एक औरत के जो उनके लंदन के विद्यार्थी जीवन में उनकी मकान मालकिन थी, के साथ गाड़ी में बैठ कर कहीं जा रहे थे। वह गान्धी जी से दो चार बातें करने आई थी और इस काम के लिये यह सबसे उपयुक्त अवसर भी था। गांधी जी ने उससे उसके और उसके पारिवारिक जीवन के विषय में ख़ूब बातें कीं और ऐसा मालूम होता था जैसे साउथ अफ्रीका और भारत में उन्होंने सार्वजनिक जीवन के तीस साल बिताये ही न हों।

उन्होंने स्काटलैण्ड यार्ड के दो जासूसों से, जो उनके रुकने तक उनकी रक्षा के लिये नियुक्त किये गये थे, ख़ूब मित्रता कर ली। वहां से विदा होने के पहले गान्धी जी दक्षिणी लन्दन में उनमें से एकसे मिलने उसके घर गए। उस जासूस ने बाद में अपने यह विचार प्रकट किये, "जितने भी बड़े आदमियों की देखभाल में मैं नियुक्त किया गया हूँ उनमें लायड्जार्ज के बाद गान्धी जी सबसे अधिक व्यस्त आदमी हैं लेकिन यही पहले आदमी हैं जिन्होंने मुझसे मेरे घर पर मिलने के लिये समय निकाला है।"

मैंने अक्सर महसूस किया है कि बड़े शहरों में, राजनीतिज्ञों और मध्यस्थता करने वालों के बीच गांधी जी सचमुच प्रसन्न नहीं रहते थे। १६४६ में कैबिनेट मिशन के समझौते के थका देने वाले और एक तरह से परीक्षा के महीनों के बाद नोआखाली में देश के आदमियों के, जिन्हें वे प्यार करते और समझते थे, बीच उन्हें पाना कितना आश्चर्यजनक

था । एक गांव में जहाँ वे विश्राम ले रहे थे, उनके कमरे में एक सुन्दर कसीदा कढ़ा हुआ कपड़ा लगा था। कभी कभी कोई यह सोचता थ कि गांधी जी प्रकृति या कला के सौंदर्य पर कभी ध्यान नहीं देते। लेकिन जब मैंने उस कपड़े पर कुछ विचार प्रकट किये तो उन्होंने कहा, 'हां इन आदमियों को ऐसी चीजें बनाना अच्छा लगता है। वे बड़ी अच्छी बनी हैं और मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ।" जिन चीजों को वह नापसन्द करते थे उन्हें भी जोरदार शब्दों में कह सकते थे। नोआखाली की औरतें प्रसन्नता प्रदर्शित करने के लिये एक अजब सीटी बजाने के सदृश भाषा में उनका स्वागत करती थीं। उन्होंने एक बार टिप्पणी की, "यह बहुत भद्दा है और मेरे कानों को चोट पहुंचाता है।"

हाल ही में मैं उनसे बिड़लाभवन के बाग में मिला जब वह धूप से बचने के लिये चौड़े धारीदार तिनकों का एक हैट पहने हुये थे। वह कुछ ठीक नहीं लग रहा था। मैंने कहा, "मैं देखता हूँ कि आप नये किस्म का बर्मी हैट पहने हुए हैं।" "नहीं" उन्होंने मेरी भूल सुधारी, "यह नोआखाली के किसानों का हैट है। बर्मी हैट अच्छा और काम देने लायक दोनों होता है, यह सिर्फ काम देने लायक है।"

पिछले वर्ष का 'कलकत्ता का महान आश्चर्य' दिमाग में अब भी ताजा है और जो कोई भी पिछली १५ अगस्त को कलकत्ता में रहा होगा उसे वह भुला नहीं सकता। मैं उन भाग्यशाली दिनों में अपनी पार्टी के साथ बेलिया घाट में ठहरा हुआ था। एक मामूली किन्तु महत्वपूर्ण घटना मेरे दिमाग में अब भी है। जब गांधी जी के विरोधियों का क्रोध, जो कलकत्ता में उनके स्वागत के कारण पैदा हुआ था कुछ शांत हो गया तो कुछ विरोधी उनके पास आये और उनसे लम्बी चौड़ी बहसें कीं। उनके सोने के रोजाना के समय को बीते काफी अर्सा हो चुका था और आखिरकार उनके एक आलोचक ने कहा, "आज रात हम लोग आपको अब और अधिक देर तक नहीं रोके रखना चाहते।" "नहीं", गांधीजी ने हँसते हुये कहा, "आप लोगों ने मुझे बहुत देर तक तो यों ही रोके रक्खा है।" मैं सोचता था शायद यह उन लोगों को कुछ बुरा लगे लेकिन दूसरे दिन वही आलोचक लौटे और जैसा कि सभी जानते हैं आखीर में वह सभी लोग गाँधी जी द्वारा जीत लिये गए।

पिछले महीने एक दिन मैं दिल्ली से रवाना होने के लिये तैयार हो रहा था तब उन्होंने मुझसे जाने के पहले मिलने और एक पत्र लेने के लिये कहा। डाक्टर सुशीला नायर, प्यारेलाल और उनकी छोटी भतीजी यह सब उनके साथ थे। जब वह एक पत्र लिखना खत्म कर ही रहे थे, प्यारेलाल ने एक हाल ही में लिये गये कैमरा चित्र की ओर देखा जिसे वह समझते थे कि मैं देखकर खुश होऊँगा। इस चित्र में प्यारेलाल की छोटी भतीजी 'बापू' के चेहरे पर अपनी नाक रखकर दबा रही थी। जब मैं देख चुका तब फोटोग्राफ गांधीजी को दे दिया गया। उस दिन गाँधीजी का मौनव्रत था लेकिन उन्होंने उस छोटी बच्ची को बुलाया और फोटोग्राफ को देख देख कर दोनों ने खूब क़हक़हे लगाए।

जब मैं बिड़ला भवन से बिदा ले रहा था तो मैं सोच रहा था, "गांधीजी कितने आश्चर्यजनक रूप में प्रसन्न रहने वाले और बाल-प्रेमी व्यक्ति हैं। नौ घण्टे पश्चात उन्होंने जब तक दिल्ली में पूर्ण साम्प्रदायिक शांति स्थापित नहीं हो जाती तब तक उपवास करने की उन्होंने घोषणा की। और अब जबकि वे अग्नि परीक्षा में से सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हो चुके, मृत्यु ने उन्हें तीव्रता तथा भयानक रूप से उठा लिया। लेकिन उन्होंने मृत्यु का विजयी रूप में सामना किया। उन्होंने वीरतापूर्ण लड़ाई लड़ी और अपने में विश्वास रक्खा। आज शाश्वत सत्य का प्रकाश इस पृथ्वी पर और अधिक रूप से आलोकित है और वह भी गान्धी जी के कारण जिन्होंने उसे अपने दीर्घ जीवन के आत्मत्याग द्वारा बल प्रदान किया है।

बापू का बलिदान

पण्डित श्रीराम शर्मा

लगभग दो हजार वर्ष पूर्व ईसा-मसीह को सूली पर लटकाया गया तब मसीह के मुखार बिंद से शब्द निकले थे:—'हे मेरे ईश्वर तूने मुझे क्यों त्याग दिया है ? My god, My God, Why hast thou far—saken me) ईसा ने होंठो में जो शब्द कहे थे वे अविकल रूप से हीब्रो भाषा में थे : Eli Eli lama Sabchthani ! महात्मा गांधी जी के जब गोलियां लगीं और जब वे धराशायी हुए तब उनके मुखारबिन्द से केवल 'हे राम' 'हे राम' शब्द निकले। अपने वधिक को उन्होंने प्रणाम किया। दार्शनिक दृष्टि से वधिक नाथूराम विनायक गोडसे और महात्मा गांधी जी एक ही शक्ति के दो रूप हुए पर जहां महात्मा गान्धी 'हे राम' 'हे राम' के साथ भगवान के रूप में लीन हुए, उनका द्वैत-अद्वैत रूप में परिणत हुआ और भारत माता उस दिव्य ज्योति को खो-बैठी तो चारों दिशाएं—हिन्द महासागर की उत्ताल तरंगें और उसकी अगाध गहराई और भारत के प्रहरी हिमालय की चोटियाँ थर्राईं और सबने एक करुण-क्रन्दन में कहा—'हे मेरे ईश्वर तूने मुझे क्यों त्याग दिया' ! यदि भगवान् ने हमारा साथ न छोड़ा होता तो वह हममें से उसे न उठा ले जाता। जो हमारे पापों और दुःखों की गतिविधि को पहचानता था, जो मुसीबत में शिव रूप बनकर हमारे जीवन के गरल को पी लेता था। यदि ईश्वर हम से रूठा न होता तो इस संक्रामक स्थिति में वह हमारे सबसे बड़े सहारे को क्यों उठा लेता।

जहां तक स्वयं बापू जी का सवाल है, वहां तक मौत से तो उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ। मौत और जीवन उनके लिए एक ही पक्ष के दो रूप थे। पिछले कई महीनों से वे कुछ तिलमिला-से रहे थे। उन्होंने अपने पिछले दिनों के प्रवचनों में जो कुछ कहा था वह उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है:—

हिन्दू निर्णय कर लें

आज मैं आपसे ज्यादा कुछ कहने वाला नहीं हूं। लेकिन आज के दिन से हिन्दू निर्णय करलें कि हम लड़ेंगे नहीं। मैं चाहूंगा कि हिन्दू क़ुरान पढ़ें, जैसे वे भगवद्गीता पढ़ते हैं। सिक्ख भी वही करें और मैं चाहूँगा कि मुस्लिम भाई-बहन भी अपने घरों में ग्रंथ साहब पढ़ें गीता पढ़ें, उनके माने समझें। जैसे हम अपने धर्म को मानते हैं वैसे दूसरों के धर्म को भी मानें।

मृत्यु से क्या भय ?

आख़िर में सब इन्सानों को मरना है। जिसका जन्म हुआ है, उसे मृत्यु से मुक्ति मिल नहीं सकती। ऐसी मृत्यु का भय क्या करना ? मैं समझता हूँ कि हम सब के लिए मृत्यु एक आनन्ददायक मित्र है, हमेशा धन्यवाद के लायक है क्योंकि मृत्यु से अनेक प्रकार के दुःखों में से हम एक समय तो निकल जाते हैं।

हर उचित और महान् काम मुश्किल तो होता ही है। ऊपर उठना हमेशा मुश्किल होता है, नीचे गिरना आसान है और उसमें अक्सर फिसलन होती है। जिन्दगी वहीं तक जीने लायक है, जहां तक मौत को दुश्मन नहीं बल्कि दोस्त माना जाता है। जिन्दगी के लालचों को जीतने के लिए मौत की मदद लीजिये। मौत को टालने के लिए एक बुज़दिल आदमी अपनी इज़्ज़त अपनी औरत अपनी लड़की—सब कुछ खो देता है। और एक हिम्मतवर आदमी इज़्ज़त खोने के बजाय मौत से भेंटना ज्यादा पसन्द करता है। जब वक्त आएगा जो कि आ सकता है, तब मैं अपनी सलाह लोगों की कल्पना के लिए नहीं छोड़ूँगा बल्कि क्रिया की भाषा में उसे करके दिखा दूँगा। आज अगर सिर्फ़ एक आदमी मेरी सलाह पर चलते हैं या कोई नहीं चलते हैं तो इससे उसकी क़ीमत नहीं चली जा सकती। शुरूआत हमेशा कुछ ही लोगों से होती है। एक शख्स से भी शुरूआत होती है।

इतना है कि जो कुछ भी आप करें उसमें परिपूर्ण शक्ति होनी चाहिए। अगर यह नहीं है, तो कुछ भी नहीं है। अगर आप मेरा ख़्याल रखें कि मुझे कैसे ज़िन्दा रखा जाय, तो आप बड़ी भारी ग़लती करते हैं। मुझको ज़िन्दा रखना या मारना किसी के हाथ में नहीं है। वह ईश्वर के हाथ में है। इसमें मुझे कोई शक नहीं है, किसी को भी शक नहीं होना चाहिये।

आख़िर ३० जनवरी को दुर्घटना ने यह बता दिया कि हमारा स्नेह और उनके प्रति हमारी भक्ति उनके शरीर को नहीं बचा सकी क्योंकि महात्मा गांधी

भगवान् के अवतार के रूप में दुनिया में पधारे थे। उनकी दिव्य वाणी हम तक पहुँची ज़रूर उसने हमें मोह निद्रा में ग्रस्त होने से बचाया। तीनों लोकों में उनकी वाणी गूँजी पर जिस शक्ति ने उनको यहाँ भेजा उसने ही उनको अपनी ओर खींच लिया। ग़ुलाम भारत ने ऐसी शक्ति गाँधी के रूप में हमें दी। उसी देश में गोडमे के रूप में एक ऐसे व्यक्ति ने जन्म लिया जिसने स्वतंत्र भारत में उस दिव्य ज्योति के पंचभूत को मिट्टी में मिला दिया। ईसा के प्रति विश्वासघात करने वाला उसी के आदमी जूडास स्कारियट (Judas Jscariot) ने केवल ३० रुपयों की ख़ातिर ईसा के प्रति विश्वासघात किया। परन्तु लज्जा से बाद में उसने स्वयं फाँसी लगा ली। पर गोडमे का जघन्य कार्य जूडास स्कारियट के पाप से कहीं अधिक निन्दनीय है। गोडमे अपनी जननी अपने समाज और अपने देश के लिए कलङ्क है। हिन्दू धर्म पर उसने कालिख लगाया है। जूडास स्कारियट अपने पाप को समझ सका। पर भारतीय नराधम गोडमे अपनी करनी को युक्ति युक्ति बनाता है। कितने हैं, ऐसे विश्व-इतिहास में जो महात्मा गान्धी जी की कोटि में आ सकें। असल में महात्मा गान्धी जी भारत की आत्मा थे। वास्तविक भारतीयता के वे सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि थे। संसार में उनसे बड़े पण्डित हो गए हैं। शंकराचार्य की बौद्धिक निष्ठा की छाप संसार में है। बुद्ध और महावीर की अहिंसा-नीति सर्व-विदित है। पर महात्मा गांधीजी की सी सरलता और साथ ही साथ अपनी बात को कहने की वज्र-की-सी दृढ़ता और उसको कार्य रूप में लाने की क्षमता वाला महापुरुष तो कहीं दिखाई नहीं पड़ता। इतिहास में तो कहीं नज़र नहीं आता। स्वाभिमान, साहस, स्वावलंबन और अभयता के सद्गुणों को उन्होंने संसार को सिखाया। संसार में कोई उनका शत्रु नहीं था। बच्चों और बीमारों के वे सखा थे। ग़रीबों और किसानों के वे त्राता थे। पुरुषों में महापुरुष, प्राणों में महाप्राण, आत्माओं में महात्मा और विश्व में अद्वितीय थे।

यों तो उनके बलिदान पर हम सब रो रहे हैं पर इस रोने-धोने से काम न चलेगा। इन पंक्तियों के लेखक का विश्वास है कि बापू जी का बलिदान उनके अनुरूप ही हुआ है। इस तरह के बलिदान के लिए वे लालायित थे। उनका जीवन भगवान् के हाथों में था। यह तो स्पष्ट ही है कि जो काम वे अपने शरीर रूप में नहीं कर सके वह काम वे अपने बलिदान से करेंगे। अपना खून बहाकर उन्होंने शायद भारतीय राष्ट्रीयता, भारतीय स्वतंत्रता और विश्व मानवता को मज़बूत बनाया है। बापू जैसे महापुरुष का बलिदान देश में वह जागृति पैदा करेगा कि उनके अधूरे मिशन को पूरा करने में लोग जुट जायँगे।

आज उनके स्मारक के लिए चर्चा चल रही है। स्मारक बनने चाहियें पर आवश्यकता तो इस बात की है कि अनेक भौतिक स्मारकों के साथ हम उनका स्मारक अपने दिलों में बनाएँ। कोरे रुपयों पैसों से हम उनके सच्चे स्मारकों को नहीं बना सकेंगे उनकी स्मृति तो हम तभी क़ायम रख सकेंगे जब हम उनके बताए मार्ग पर आचरण कर सकें। अपने दिलों से घृणा और बदले की भावना निकाल दें। जब वे अपना शरीर हमारी ख़ातिर दे सके तब क्या हम इतने कृतघ्न हैं कि अपनी कुछ कमज़ोरियों को दूर करने की कोशिश न करें। यदि हमने उनके रचनात्मक कार्यों को किया होता जिसकी चर्चा उन्होंने अपने भौतिक जीवन के अंतिम दिन भी की तो शायद वह दुर्घटना न घटी होती। पर यदि भारतीय सङ्घ के सूबों के प्रत्येक जिले की आबादी से एक लाख व्यक्तियों के पीछे एक हज़ार व्यक्ति भी अपनी ज़रूरत के लिए कताई कर सकें; यदि अपने जीवन में हम ईमानदारी ला सकें। उनके बताए मार्ग पर हम ईमानदारी से चल सकें और अधिकारों की अपेक्षा अपने कर्त्तव्यों का पालन करें तो हम महात्मा गांधी का उचित स्मारक बना सकेंगे। अपने आप को उनका भक्त भी कह सकेंगे और देश को उस प्रलय से भी बचा सकेंगे जिसकी आशंका विश्व-भर कर रहा है। आगामी महायुद्ध और हमारी मुसीबतों का जवाब और हमारे स्मारक का स्वरूप केवल एक ही है और वह है महात्मा गाँधी के मिशन को पूरा करना और उनके बताए मार्ग पर आचरण करना।

विधिनिर्मित शुक्रवार

श्री प्यारेलाल

"इन्साफ़ पसन्द देव हर एक इन्सान को उसका कर्त्तव्य और उसका यश देता है।

"जो कोई सताई हुई दुनिया की ज़िन्दगी की हिफ़ाज़त अपने ऊपर लेता है और उसके लिए अपने जीवन की आहुति देता है, वह इस तरह मरकर भी जीता है।

"जो कोई सताई हुई दुनिया का पूरा बोझ उठाता है और उसकी हिफ़ाज़त करता है।

"उसे तकलीफ़ें सहना अच्छा ही लगता है; और अगरचे वह इन्सान के ही भाग्य का सामना करता है, फिर भी वह मर कैसे सकता है?

"यह देखते हुए कि मौत का उसमें अब कोई अंश नहीं रहा, उस पर मौत का कोई अधिकार नहीं रहा;

"उसने अपनी अनन्तता को अपनी छोटी-सी ज़िन्दगी से ख़रीद लिया है, और वह मरता नहीं है।

"घण्टे भर तक तुम उसे ढूंढ़ो, मगर वह तुमको नहीं मिलेगा।

"तब तुम अपनी आँखें ऊपर की ओर उठाओ और उसके ताज़पोश अमर चेहरे को देखो,

"याद के शिखरों पर, दुनिया की गहरी भावनाओं के झरने में, सब लोगों की आंखों में,

"जहां उसके जीवन का प्रकाश सभी पुरानी चीज़ों पर छाया हुआ है, वहां सिर्फ़ मौत ही मरती है।"

—ए० सी० स्विनबर्न

२९ जनवरी को सारे दिन गांधी जी को इतना ज़्यादा काम रहा कि दिन के आख़ीर में उन्हें ख़ूब थकान मालूम होने लगी। कांग्रेस-विधान के मसविदे की तरफ़ इशारा करते हुये, जिसे तैयार करने की जिम्मेदारी उन्हों ने ली थी, उन्होंने आभा से कहा—"मेरा सिर घूम रहा है। फिर भी मुझे इसे पूरा करना ही होगा। मुझे डर है कि रात को देर तक जागना होगा।"

आख़िरकार वे ९॥ बजे रात को सोने के लिए उठे एक लड़की ने उन्हें याद दिलाया कि आपने हमेशा की कसरत नहीं की है। "अच्छा, तुम कहती हो, तो मैं कसरत करूँगा"—गान्धी जी ने कहा और वे दोनों लड़कियों के कन्धों पर, जिमनास्टिक्स के पैरेलल बार की तरह, शरीर को तीन बार उठाने की कसरत करने के लिये बढ़े।

हमेशा की तरह काम

बिस्तर में लेटने के बाद गान्धी जी आम तौर पर अपने हाथ-पांव और अंग सेवा करने वालों से दबवाते थे—ऐसा करवाने में उन्हें अपना नहीं बल्कि सेवा करनेवालों की भावनाओं का ही ज़्यादा ख़याल रहता था। मन से तो उन्होंने अपने आपको इस बात से एक अरसे से उदासीन बना लिया था, हालां कि मैं जानता हूँ कि उनके शरीर को इन छोटी-मोटी सेवाओं की ज़रूरत थी। इससे उन्हें दिन भर के कुचल डालने वाले काम के बोझ के बाद मन को हलका करने वाली बात चीत और हँसी-मज़ाक का थोड़ा मौका मिलता था। अपने मज़ाक में भी वे हिदायत जोड़ देते थे। गुरुवार की रात को वे आश्रम की एक महिला से बात चीत करने लगे, जो संयोग से मिलने आ गई थी। उन्होंने उसकी तन्दुरुस्ती अच्छी न होने के कारण उसे डांटा और कहा कि अगर राम नाम तुम्हारे मन-मन्दिर में प्रतिष्ठित होता, तो तुम बीमार नहीं पड़तीं। उन्होंने आगे कहा—"लेकिन उसके लिए श्रद्धा की ज़रूरत है।"

उसी शाम को प्रार्थना के बाद प्रार्थना-सभा में आये हुये लोगों में से एक भाई उनके पास दौड़ता हुआ आया और कहने लगा कि आप २ फरवरी को वर्धा जा रहे हैं, इसलिए मुझे अपने हस्ताक्षर दे दीजिये। गांधी जी ने पूछा: "यह कौन कहता है?" हस्ताक्षर मांगने वाले हठी भाई ने कहा: "अख़बारों में यह छपा है।" गांधी जी ने हँसते हुये कहा: "मैंने भी गान्धी के बारे में वह ख़बर देखी है। लेकिन मैं नहीं जानता, वह 'गांधी' कौन है।"

एक दूसरे आश्रम वासी भाई से बात करते हुये गांधी जी ने वह राय फिर दोहराई, जो उन्होंने प्रार्थना के बाद अपने भाषण में ज़ाहिर की थी: "मुझे गड़बड़ी के बीच शान्ति, अँधेरे में प्रकाश और निराशा में आशा पैदा करनी होगी।" बात चीत के दौरान में "चलती लकड़ियों" का ज़िक्र आने पर गांधी जी ने कहा: "मैं लड़कियों को मेरी चलती लकड़ियां बनने देता हूं, लेकिन दरअसल मुझे उनकी ज़रूरत नहीं है। मैंने लम्बे समय से अपने आपको इस बात का आदी बना लिया है कि किसी बात के लिए किसी पर निर्भर न रहा जाय।

लड़कियां अपना पिता समझकर मेरे पास आती हैं और मुझे घेर लेती हैं। मुझे यह अच्छा लगता है। लेकिन सच पूछा जाय, तो मैं इस बारे में बिलकुल उदासीन हूं।" इस तरह यह छोटी-सी बात चीत तब तक चलती रही, जब तक गांधी जी सो न गये।

३० जनवरी को सुबह गांधी जी हमेशा की तरह ३॥ बजे प्रातः स्मरणीय प्रार्थना के लिये उठे। प्रार्थना के बाद वे काम करने बैठे और थोड़ी देर बाद दूसरी बार थोड़ी-सी नींद लेने के लिये लेटे।

आठ बजे उनका मालिश का वक़्त था। मेरे कमरे में से गुज़रते हुये उन्होंने कांग्रेस के नये विधान का मसविदा मुझे दिया, जो देश के लिये उनका आख़िरी वसीयतनामा था। इसका कुछ हिस्सा उन्होंने पिछली रात को तैयार किया था। मुझसे उन्होंने कहा कि इसे "पूरी तरह" दोहरा लो। "इसमें कोई विचार छूट गया हो, तो उसे लिख डालो, क्योंकि मैंने इसे बहुत थकावट की हालत में लिखा है।"

मालिश के बाद मेरे कमरे में से निकलते हुये उन्हों ने पूछा कि मैंने उसे पूरा पढ़ लिया या नहीं। और मुझसे कहा कि नोआखाली के अपने अनुभव और प्रयोग के आधार पर मैं इस विषय में एक टिप्पणी लिखूं कि मद्रास के सिर पर झूमते हुये अन्न-संकट का किस तरह सामना किया जा सकता है। उन्होंने कहा—"वहाँ का खाद्य-विभाग हिम्मत छोड़ रहा है। मगर मेरा ख़याल है कि मद्रास जैसे प्रान्त में, जिसे कुदरत ने नारियल, ताड़, मूँगफली और केला इतनी ज्यादा तादाद में दिये हैं—कई क़िस्म की जड़ों और कन्दों की तो बात ही जाने दो—अगर लोग सिर्फ़ अपनी खाद्य सामग्री का सँभाल कर उपयोग करना जानें, तो उन्हें भूखों मरने की ज़रूरत नहीं है।" मैंने उनकी इच्छा के अनुसार टिप्पणी तैयार करने का वचन दिया। इसके बाद वे नहाने चले गये। जब वे नहा कर लौटे, तो उनके बदन पर काफ़ी ताज़गी नज़र आती थी। पिछली रात की थकावट मिट गई थी। और हमेशा की तरह प्रसन्नता उनके चेहरे पर चमक रही थी। उन्होंने आश्रम की लड़कियों को उनकी कमज़ोर शारीरिक बनावट के लिये डांटा। जब किसी ने उनसे कहा कि सवारी न मिलने के कारण...अमुक जगह नहीं गई, तो उन्होंने तुरन्त कड़ाई से कहा—"वह पैदल क्यों न चली गई?" गांधी जी की यह कड़ाई कोरी कड़ाई ही नहीं थी। क्योंकि, मुझे याद है कि एक बार जब आंध्र देश के अपने एक दौरे में हमें ले जाने वाली मोटरों का पेट्रोल ख़त्म हो गया, तो उन्होंने सारे कागज़ात और लकड़ी की हलकी नांद लेकर वहां से १३ मील दूर दूसरे स्टेशन तक उनके साथ पैदल जाने के लिये हमसे कहा था।

उनका आख़िरी वसीयतनामा

बङ्गाली लिखने के अपने रोज़ाना के अभ्यास को पूरा करने के बाद गांधी जी ने साढ़े नौ बजे अपना सवेरे का भोजन किया। अपनी पार्टी को तितर-बितर करने के बाद जब वे पूर्व बङ्गाल के गाँवों में अपनी "करो या मरो" की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये नंगे पावों श्रीरामपुर गये, तब से वे नियमित रूप से बङ्गला का अभ्यास करते रहे हैं। जब मैं विधान के मसविदे को दोहराने के बाद उनके पास ले गया, तब वे अभी भोजन ही कर रहे थे। उनके भोजन में ये-ये चीज़ें शामिल थीं: बकरी का दूध, पकाई हुई और कच्ची भाजियाँ, सन्तरे और अदरख का काढ़ा, खट्टे नीबू और 'घृत-कुमारी'। उन्होंने अपनी विशेष सतर्कता से मसविदे में बढ़ाई हुई और बदली हुई बातों को एक एक करके देखा और पंचायती नेताओं की संख्या के बारे में जो ग़लती रह गई थी, उसे सुधारा।

इसके बाद मैंने गांधी जी को डा० राजेन्द्र प्रसाद से अपनी मुलाक़ात की विस्तृत रिपोर्ट दी। डा० राजेन्द्र प्रसाद की तबीयत अच्छी नहीं थी। इसलिये गांधी जी ने कल उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछने के लिये मुझे उनके पास भेजा था। मैंने गांधी जी को पूर्व बङ्गाल के बारे में ताज़ी से ताज़ी ख़बर भी सुनाई, जो मुझे डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने कल शाम को मिलने पर बताई थी। इस पर से नोआखाली के बारे में चर्चा चली। मैंने उनके सामने व्यवस्थित रीति से नोआखाली छोड़ने की बात रखी। लेकिन गान्धी जी का दृष्टिकोण साफ़ और मज़बूत था। उन्होंने कहा: "जैसे हम कार्यकर्त्ताओं को 'करना या मरना' है, उसी तरह हमें अपने लोगों को भी आत्म-सम्मान, इज़्ज़त और मज़हबी आज़ादी के हक़ को बचाने के लिये 'करने या मरने' को तैयार करना है। हो सकता है कि आख़िर में थोड़े ही लोग

बचें। लेकिन कमज़ोरी में से ताक़त पैदा करने का इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। क्या हथियारों की लड़ाई में भी बलवान करने वाले या कमज़ोर सिपाहियों की क़तारें मार नहीं दी जातीं। तब अहिंसक लड़ाई में इससे दूसरा कैसे हो सकता है?" उन्होंने आगे कहा: "तुम नोआखाली में जो कुछ कर रहे हो, वही सही रास्ता है। तुमने मौत का डर भगा दिया है और लोगों के दिलों में अपना स्थान बनाकर उनका प्यार पा लिया है। प्यार और परिश्रम के साथ ज्ञान को जोड़ना ज़रूरी है। तुमने यही किया है। अगर तुम अकेले भी अपना काम पूरी तरह अच्छी तरह करो, तो तुम्हीं सबके लिये काफ़ी हो। तुम जानते हो कि यहाँ मुझे तुम्हारी बड़ी ज़रूरत है। मुझ पर काम का इतना बोझ है। और मैं बहुत कुछ दुनिया को भी देना चाहता हूं। लेकिन तुम्हारे बाहर रहने से मैं ऐसा नहीं कर सकता। लेकिन मैंने अपने आपको इसके लिये कड़ा बना लिया है। नोआखाली का तुम्हारा काम इससे ज्यादा महत्व का है।" इसके बाद उन्होंने मुझे बताया कि अगर सरकार अपना फ़र्ज़ पूरा करने में चूके, तो गुण्डों के साथ कैसे निपटना चाहिये।

उनकी अन्तिम चिन्ता

दोपहर को थोड़ी झपकी लेने के बाद गान्धी जी श्री सुधीर घोष से मिले। श्री घोष ने और और बातों के अलावा लंदन टाइम्स की कतरन और एक अंग्रेज़ दोस्त के ख़त के कुछ हिस्से पढ़कर उन्हें सुनाये। इनमें लिखा था कि किस तरह कुछ लोग बड़ी तत्परता के साथ पण्डित नेहरू और सरदार पटेल के बीच फूट डालने की कोशिश कर रहे हैं। वे सरदार पटेल पर फ़िरक़ापरस्त होने का दोष लगाते हैं और पण्डित नेहरू की तारीफ़ करने का दिखावा करते हैं। गांधी जी ने कहा कि वे इस तरह की हलचल से वाक़िफ़ हैं और उस पर गहराई से विचार कर रहे हैं। वे बोले कि अपने एक प्रार्थना-सभा के भाषण में मैं पहले ही इसके बारे में कह चुका हूं, जो 'हरिजन' में छप गया है। मगर मुझे लगता है कि इसके लिए कुछ और ज्यादा करने की ज़रूरत है। मैं सोच रहा हूँ कि मुझे क्या करना चाहिये।

सारे दिन लोग लगातार मुलाक़ात करने के लिये आते रहे। उनमें दिल्ली के मौलाना लोग भी थे। उन्हों ने गांधी जी के वर्धा जाने के बारे में अपनी सम्मति दे दी। गांधी जी ने उनसे कहा कि मैं सिर्फ़ थोड़े दिनों के लिये ही यहाँ से ग़ैरहाज़िर रहूँगा और अगर भगवान की कुछ और ही मर्ज़ी न हुई और कोई आकस्मिक घटना न घटी, तो ११ तारीख़ को वर्धा में स्वर्गीय सेठ जमना लाल जी की पुण्य-तिथि मनाने के बाद बहुत करके १४ वीं तारीख़ को मैं लौट आऊँगा।

एक बात और थी, जिसके बारे में मुझे गांधी जी से सलाह लेनी थी। मैंने उनसे पूछा—"बापू, मुसलमान औरतों में अपने काम को आसानी से चलाने के लिए अगर ज़्यादा नहीं, तो थोड़े ही वक्त के लिये मैं...को नोआखाली ले जाऊँ? ज़रूरी छुट्टी के लिये मैं....से प्रार्थना करूँगा।" "खुशी से"—उन्होंने जवाब दिया। ये आख़िरी शब्द थे, जो मुझे सुनने थे।

साढ़े चार बजे आभा उनका शाम का खाना लाई। इस धरती पर उनका यह आख़िरी भोजन था, जिसमें क़रीब क़रीब सबेरे की ही सब चीज़ें शामिल थीं। उनकी आख़िरी बैठक सरदार पटेल के साथ हुई। जिन विषयों पर चर्चा हुई, उनमें से एक कैबिनेट की एकता को तोड़ने के लिए सरदार के ख़िलाफ़ किया जाने वाला गन्दा प्रचार था। गांधी जी की यह साफ़ राय थी कि हिन्दुस्तान के इतिहास में ऐसे नाज़ुक मौक़े पर कैबिनेट में किसी तरह की फूट पैदा होना बड़ी दुःखपूर्ण बात होगी। सरदार से उन्होंने कहा कि आज मैं इसी को अपनी प्रार्थना-सभा के भाषण का विषय बनाऊँगा। प्रार्थना के बाद पण्डित जी मुझसे मिलेंगे; मैं उनसे भी इसके बारे में चर्चा करूंगा। आगे चलकर उन्होंने कहा कि अगर ज़रूरी हुआ, तो मैं २ तारीख़ को अपना वर्धा जाना मुल्तवी कर दूँगा और तब तक दिल्ली नहीं छोड़ूंगा, जब तक दोनों के बीच फूट डालने की कोशिश के इस भूत का पूरी तरह ख़ात्मा न कर दूँ।

प्रार्थना-सभा को

और इस तरह चर्चा चलती रही। बेचारी आभा भी बाधा देने का साहस नहीं कर रही थी। इस बात को जानते हुये कि बापू वक्त की पाबन्दी को, और ख़ासकर प्रार्थना के बारे में उसकी पाबन्दी को, कितना महत्व देते हैं, उसने आख़िर में निराश होकर उनकी घड़ी उठाई और जैसे इस बात का इशारा करते

हुये उनके सामने रख दी कि प्रार्थना को देर हो रही है।

प्रार्थना-मैदान में जाने के पहले ज्यों ही गांधी जी गुसलखाने में जाने के लिये उठे, वे बोलेः "अब मुझे आपसे अलग होना पड़ेगा।" रास्ते में वे उस शाम को अपनी "चलती लकड़ियों" आभा और मनु के साथ तब तक हंसते और मज़ाक करते रहे, जब तक वे उठे हुये प्रार्थना-मैदान की सीढ़ियों पर नहीं पहुँच गये।

दिन में जब दोपहर के पहले आभा गांधी जी के लिए कच्ची गाजरों का रस लाईं, तो उन्होंने उलाहना देते हुये कहाः "तो तुम मुझे ढोरों का खाना खिलाती हो।" आभा ने जवाब दियाः "बा तो इसे घोड़ों की खुराक कहती थीं।" उन्होंने पूछाः "जिस चीज़ को दूसरा पूछेगा भी नहीं, उसे स्वाद से खाना क्या मेरे लिये बड़ी बात नहीं है?" और हंसने लगे।

आभा ने कहा : "बापू; आपकी घड़ी को ज़रूर यह लगता होगा कि आप उसकी परवाह नहीं करते। आप उसकी तरफ़ देखते भी नहीं।" गांधी जी ने तुरन्त जवाब दियाः "मैं क्यों देखूं, जब तुम दोनों मुझे ठीक समय बता देती हो?" लड़कियों में से एक ने पूछाः "लेकिन आप तो टाइम बताने वाली लड़कियों की तरफ नहीं देखते।" बापू फिर हंसने लगे। पांव साफ़ करते हुये उन्होंने आख़िरी बात कहीः "मैं आज १० मिनट देर से पहुँचा हूँ। देर से आने से मुझे नफरत होती है। मैं प्रार्थना की जगह पर ठीक पाँच बजे पहुँचना पसन्द करता हूं।" यहां बात चीत खतम हो गई। क्योंकि "चलती लकड़ियों" के साथ गांधी जी की यह शर्त थी कि प्रार्थना मैदान के अहाते में पहुंचते ही सारा मज़ाक और बातचीत बन्द हो जानी चाहिये—मन में प्रार्थना के विचारों के सिवा दूसरी कोई चीज़ नहीं होनी चाहिये। मन प्रार्थनामय हो जाना चाहिये।

"राम! राम!!"

जब गांधीजी प्रार्थना-सभा के बीच से रस्सियों से घिरे रास्ते में चलने लगे, उन्होंने प्रार्थना में शामिल होनेवाले लोगों के नमस्कारों का जवाब देने के लिये लड़कियों के कन्धों से अपने हाथ उठा लिये। एकाएक भीड़ में से कोई दाहिनी ओर से भीड़ को चीरता हुआ उस रास्ते पर आया। छोटी मनु ने यह सोचा कि वह आदमी बापू के पाँव छूने को आगे बढ़ रहा है। इसलिये उसने उसको ऐसा करने के लिये झिड़का, क्योंकि प्रार्थना को पहले ही देर हो चुकी थी। उसने रास्ते में आनेवाले आदमी का हाथ पकड़कर उसे रोकने की कोशिश की। लेकिन उसने ज़ोर से मनु को धक्का दिया, जिससे उसके हाथ की आश्रम भजनावलि, माला और बापू का पीकदान नीचे गिर गये। ज्यों ही वह बिखरी हुई चीज़ों को उठाने के लिये झुकी, वह आदमी बापू के सामने खड़ा हो गया—इतना नज़दीक खड़ा था कि पिस्तौल से निकली हुई गोली का खोल बाद में बापू के कपड़ों की पर्त में उलझा हुआ मिला। सात कारतूसों वाली आटोमेटिक पिस्तौल से जल्दी जल्दी तीन गोलियाँ छूटीं। पहली गोली नाभी से ढाई इंच ऊपर और मध्य-रेखा से साढ़े तीन इञ्च दाहिनी तरफ़ पेट की दाहिनी बाजू में लगी। दूसरी गोली मध्य-रेखा से एक इञ्च की दूरी पर दाहिनी तरफ़ घुसी और तीसरी गोली छाती की दाहिनी तरफ़ लगी। पहली और दूसरी गोली शरीर को पार कर पीठ पर बाहर निकल आयीं। तीसरी गोली उनके फेफड़े में ही रुकी रही। पहले वार में उनका पांव, जो गोली लगने से वक्त आगे बढ़ रहा था, नीचे आ गया। दूसरी गोली छोड़ी गई तब तक वे अपने पाँवों पर ही खड़े थे। और उसके बाद वे गिर गये। उनके मुँह से आखिरी शब्द "राम-राम" निकले। उनका चेहरा राख की तरह सफेद पड़ गया। उनके सफेद कपड़ों पर गहरा सुर्ख धब्बा फैलता हुआ दिखाई पड़ा। उनके हाथ, जो सभा को नमस्कार करने के लिये उठे थे, धीरे धीरे नीचे आ गये, एक हाथ आभा के गले में अपनी स्वाभाविक जगह पर गिरा। उनका लड़खड़ाता हुआ शरीर धीरे से ढुलक गया। सिर्फ़ तभी घबराई हुई मनु और आभा ने महसूस किया कि क्या हो गया है।

मैं दूसरे दिन नोआखाली जाने की अपनी तैयारी पूरी करने के लिये शहर गया था और वहाँ से हाल में ही लौटा था। प्रार्थना-सभा के मैदान तक बनी हुई पत्थर की कमानों के नीचे भी मैं नहीं पहुँच पाया था कि श्री चन्दवानी सामने से दौड़ते हुये आये। उन्होंने चिल्ला कर कहा—"डाक्टर को फोन करो। बापू को गोली मार दी गई है।" मैं पत्थर की तरह जहाँ का तहाँ खड़ा

रहा, जैसे कोई बुरा सपना देखा हो। मशीन की तरह मैंने किसी के द्वारा डाक्टर को फोन करवाया।

अवसान

हरएक को इस घटना से एक धक्का लगा। डा० राज सभरवाल ने, जो उनके पीछे आई, गांधीजी के सिर को धीरे से अपनी गोद में रख लिया। उनका कांपता हुआ शरीर डाक्टर के सामने औंधा लिटा हुआ था और आंखें अधमुँदी थीं। हत्यारे को बिड़ला-भवन के माली ने मज़बूती से पकड़ लिया था। दूसरों ने भी उसका साथ दिया और थोड़ी खींचतान के बाद उसे क़ाबू में कर लिया गया। बापू का शान्त और ढीला पड़ा हुआ शरीर दोस्तों के द्वारा अन्दर ले जाया गया और उस चटाई पर उसे रखा गया, जिस पर बैठकर वे काम किया करते थे। मगर कुछ इलाज करने से पहले ही नब्ज़ की आवाज़ बन्द हो चुकी थी। उन्हें भीतर लाने के बाद उनको जो छोटे चम्मच भर शहद और गरम पानी पिलाया गया, उसे भी वे पूरी तरह निगल न सके। क़रीब क़रीब फ़ौरन ही उनका अवसान हो गया।

डा० सुशीला बहावलपुर गई हुई थी, जहां बापू ने उसे दया के मिशन पर भेजा था। डा० भागव, जिन्हें बुलावा भेजा था, आये और 'एड्रेनलिन' के लिये डा० सुशीला की संकट के समय काम में आने वाली दवाइयों की सन्दूक की पागल की तरह तलाश करने लगे। मैंने उनसे दलील की कि वे उस दवाई को ढूँढने की मेहनत न उठायें, क्योंकि गांधीजी ने कई बार हमसे कहा है कि उनकी जान बचाने के लिये भी कोई निषिद्ध दवाई उनको न दी जाय। जैसे जैसे बरस बीतते गये, उन्हें ज्यादा विश्वास होता गया कि सिर्फ राम-नाम ही उनकी और दूसरों की सारी बीमारियों को दूर कर सकता है। थोड़े ही दिनों पहले अपने उपवास के दरमियान उन्होंने यह सवाल पूछ कर साइन्स की कमियों के बारे में अपने मत को पक्का कर दिया था कि गीता में जो यह कहा गया है कि 'एकांशेन स्थितो जगत्'—उसके एक अंश से सारा संसार टिका हुआ है—का क्या मतलब है? रामनाम की सब बीमारियों को दूर करने की शक्ति पर अपने विश्वास के बारे में बोलते हुये एक आह के साथ गांधीजी ने घनश्यामदासजी से कहा था—"अगर मैं इसे अपने जीते जी साबित नहीं कर सकता, तो वह मेरी मौत के साथ ख़त्म हो जायगा।" जैसा कि आख़िर में हुआ, डा० सुशीला की संकटकालीन दवाइयों की पेटी में एड्रेनलिन नहीं मिला, संयोगिक एड्रेनलिन की जो एकमात्र शीशी सुशीला ने कभी ली थी, वह नोआखाली के काज़ीरखिल कैम्प में छूट गई थी। गांधीजी उसकी इतनी कम परवाह करते थे।

उनके साथियों में सब से पहले सरदार वल्लभभाई पटेल आये। वे गांधीजी के पास बैठे और नाड़ी देखकर उन्होंने ख़याल कर लिया कि वह अभी भी धीरे-धीरे चल रही है। डा० जीवराज मेहता कुछ मिनट बाद पहुँचे। उन्होंने नाड़ी और आँखों की परीक्षा की और उदास और दुःखी होकर सिर हिलाया। लड़कियां सिसक उठीं। लेकिन उन्होंने तुरन्त दिल को कड़ा किया और रामनाम बोलने लगीं। मृत शरीर के पास सरदार चट्टान की तरह अचल बैठे थे। उनका चेहरा उदास और पीला पड़ गया था। इसके बाद पण्डित नेहरू आये और बापू के कपड़ों में अपना मुंह छिपा कर बच्चे की तरह सिसकने लगे। इसके बाद देवदास और डा० राजेन्द्र प्रसाद आये। तब बापू के पुराने रक्षकों में से बचे हुये श्री जय रामदास, राजकुमारी अमृतकुँवर और आचार्य कृपलानी आये। जब कुछ देर बाद लार्ड माउण्टबेटन आये, उस समय बाहर लोगों की भीड़ इतनी बढ़ गई थी कि वे बड़ी मुश्किल से अन्दर आ सके। कड़े दिल के योद्धा होने के कारण उन्होंने एक पल भी नहीं गंवाया, और वे पंडित नेहरू और मौलाना आज़ाद साहब को दूसरे कमरे में ले गये और महान दुर्घटना से पैदा होने वाली समस्याओं पर अपने राजनीतिक दिमाग़ से विचार करने लगे। एक सुझाव यह रखा गया कि मृत शरीर को मसाला देकर कुछ समय के लिये सुरक्षित रखा जाय। लेकिन इस बारे में गांधीजी के विचार इतने साफ़ और मज़बूत थे कि बीच में पड़ना मेरे लिये ज़रूरी और पवित्र फ़र्ज़ हो गया। मैंने उनसे कहा कि बापू मरने के बाद पार्थिव शरीर की पूजने का कड़ा विरोध करते थे। उन्होंने मुझे कई बार कहा था: "अगर तुम मेरे बारे में ऐसा होने दोगे, तो मैं मौत में भी तुम्हें कोसूंगा। मैं जहां कहीं मरूं, मेरी यह इच्छा है कि बिना किसी दिखावे या झमेले के मेरा दाह-संस्कार किया जाय।" डा० राजेन्द्र

प्रसाद, श्री जयरामदास और डा० जीवराज मेहता ने मेरी बात का समर्थन किया। इसलिये मृत शरीर को मसाला देकर रखने का विचार छोड़ दिया गया। बाकी की रात में गीता के श्लोक और सुखमणि साहब के भजन मीठी राग में गाये जाते रहे, और बाहर दुःख से पागल बने लोगों की भीड़ दर्शन के लिये कमरे के चारों तरफ़ इकट्ठा होती रही। आखिरकार मृत शरीर को ऊपर ले जाकर बिड़ला-भवन के छज्जे पर रखना पड़ा, ताकि सब लोग दर्शन कर सकें।

अलविदा

सुबह जल्दी ही शरीर को हिन्दू विधि के अनुसार नहलाया गया और कमरे के बीच में फूलों से ढककर रख दिया गया। विदेशी राजदूत सुबह थोड़ी देर बाद आये और उन्होंने बापू के चरणों पर फूल की मालाएँ रखकर अपनी मौन श्रद्धांजलि अर्पण की।

अवसान के दो दिन पहले ही गांधीजी ने कहा था : "मेरे लिये इससे प्यारी चीज़ क्या हो सकती है कि मैं हंसते हंसते गोलियों की बौछार का सामना कर सकूँ?" और मालूम होता है, भगवान ने उन्हें यह वरदान दे दिया।

११ बजे दिन को हमारे सब के अन्तिम प्रणाम करने के बाद मृत शरीर अर्थी पर रखा गया। उस समय तक रामदास गांधी हवाई जहाज में नागपुर से आ पहुंचे थे। डा० सुशीला नय्यर सबसे आखिर में पहुँची, जब अर्थी रवाना ही होने वाली थी। उसे इस बात का बड़ा दुःख था कि बापू के आखिरी समय में वह उनके पास नहीं रह सकी। लेकिन इस बात के लिये उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि वह अन्तिम दर्शन के समय पहुँच गई।

उस रात डा० सुशीला बार बार बहुत दुःखी होकर चिल्लाती रही : "आखिर मुझे यह सजा क्यों?" देवदास ने उसे आश्वासन देने की कोशिश की : "यह सजा नहीं है। बापू के आखिरी मिशन को पूरा करने में जुटे रहना बड़े गौरव की बात है—यह बापू का किसी को सौंपा हुआ आखिरी काम था।" यह बापू की एक विशेषता थी कि जिन्हें उन्होंने बहुत दिया था, उनसे वे ज्यादा और ज्यादा की आशा रखते थे।

जब मैं बापू का अपार शान्ति, क्षमा और सहिष्णु दया से भरा अचल और उदास चेहरा ध्यान से देखने लगा, तो मेरे दिमाग में उस समय से लेकर—जब मैं कालेज के विद्यार्थी के रूप में चौंधियाने वाले सपनों और उज्ज्वल आशाओं से भरा बापू के पास आकर उनके चरणों में बैठा था—आज तक के २८ लम्बे बरसों के निकटतम और अटूट सम्बन्ध का पूरा दृश्य बिजली की गति से घूम गया। और वे बरस काम के बोझ से कितने लदे हुये थे!

जो कुछ हुआ था, उसके अर्थ पर मैं विचार करने लगा। पहले मैं घबराहट महसूस करने लगा, लेकिन बाद में धीरे धीरे यह पहेली अपने आप सुलझने लगी। उस दिन जब बापू ने एक आदमी के भी अपना फ़र्ज़ पूरी और अच्छी तरह अदा करने के बारे में कहा था, तो मुझे ताज्जुब हुआ था कि आखिर उनके कहने का ठीक ठीक मतलब क्या है? उनकी मृत्यु ने उसका जवाब दे दिया। पहले जब गांधीजी उपवास करते, तो वे दूसरों से देखने और प्रार्थना करने के लिये कहते थे। वे कहा करते थे : "जब तक पिता बच्चों के बीच में है, तब तक उन्हें खेलना और खुशी से उछलना कूदना चाहिये। जब मैं चला जाऊंगा, तब आज मैं जो कुछ कर रहा हूँ, वह सब वे करेंगे।" अगर आज जो आग की लपटें देश को निगल जाने की धमकी दे रही हैं उन्हें शान्त करना है, और बापू ने जो आज़ादी हमारे लिये जीती है उसका फल हमें भोगना है, तो उनकी मौत ने हमें वह रास्ता दिखा दिया है, जिस पर हमें चलना है।

आत्म-मन्थन के वे निर्दोष क्षण

श्री विष्णु प्रभाकर

वह रात कान्त के लिये आत्ममन्थन की रात हो गई। उसने प्रारम्भिक शोक को जीत लिया था परन्तु उसका मस्तिष्क अब भी छुल कर जाता था। तब हृदय सुबक उठता था और कई क्षण तक उसे कुछ नहीं सूझता था। मनमें विचार उठता था—अब क्या होगा? शायद देश में हत्याकाण्ड मच उठे पर क्या यह ठीक होगा? क्या गांधी जी के प्रति यह उचित श्रद्धांजलि होगी? वह जानता है यह सब ग़लत है परन्तु भीड़ ने क्या कभी उचित काम किया है? यह एक पुरानी कहावत है। उसका मन इसे मानने को तैयार नहीं है परन्तु जनता को कौन समझावे? कौन ...।

अपने अन्दर ही से उत्तर मिला—तुम।

'मैं.......।'

'हाँ! तुम अपने को दृढ़ रखो। गांधी की राह पर स्थिरता से आगे बढ़ो। हो सकता है तुम गांधी की तरह न चल सको पर वह राह तुम्हें दिशा भ्रष्ट नहीं होने देगी। तुम उसी लक्ष्य पर पहुंचोगे जहां भारत की जय है। और वह राह 'मानव प्रेम' की राह है। मानव देवता है। वह शैतान भी हो सकता है। मानव को नष्ट करके तुम रोग का नाश नहीं कर सकते। शैतान का नाश शैतानियत के नाश में है। कान्त अपने विचारों पर आप ही गर्वित हो आया। उसने गांधी के प्रति मौन नमन किया और कहा—ओ महामानव! तुम जहां भी हो तुम्हें मेरा प्रणाम पहुंचे। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं मैं निरन्तर मानव बनने की चेष्टा करता रहूँगा।

चेष्टा नहीं—तर्क फिर जागा—इसका मतलब है तुम बनना नहीं चाहते। यह कायरता है।

'तो।'

'कहो मैं बनूंगा।'

कान्त ने मंत्रवत दोहराया—मैं मानव बनूंगा।

उसे लगा वह भार मुक्त हो गया है और स्नेह स्पर्श उसे पवित्रता से भर रहा है। इसी स्नेह स्पर्श के कारण अगले दिन सबेरे जब वह कोटि कोटि मानव समुदाय के साथ घन्टों राजमार्ग के किनारे खड़ा रहा तो तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उसने अपने जीवन में इतनी अपार भीड़ नहीं देखी थी। ऐसा लग रहा था जैसे चारों दिशायें और तीनों लोक उस महामानव की अन्तिम यात्रा देखने के लिये उमड़ पड़े हैं। देखा दूर दूर तक फैले हुये विशाल मार्ग, किनारे के वृक्ष, प्रकाश स्तम्भ, पुल, स्तूप, द्वार और रेलिंग सब कहीं मानव ही मानव हैं। उनमें नाना जाति, वर्ण, धर्म और वय के पुरुष हैं। नारियाँ हैं, अल्हड़ युवतियाँ, नवजात शिशुओं को गोद में दबाये प्रौढ़ायें, जीवन की अन्तिम यात्रा के लिये तैयार वृद्धायें। उनमें बालक भी हैं जो खिलती हुई कली के समान भविष्य की आशा और आकांक्षा के प्रतीक हैं। वे सब एक ही ओर देख रहे थे, एक ही बात सोचते थे, एक ही काम करते थे। उस समय तो 'सब कुछ' एक ही चरम बिन्दु में केन्द्रित था। वह चरम बिन्दु था 'गांधी'। वह उन सब का पिता था। वे राष्ट्र थे, वह राष्ट्र पिता था। उसने फिर दृष्टि उठा कर देखा—इन्डिया गेट तक राजमार्ग के दोनों ओर जन समूह पंक्ति बांधे खड़ा है। बीच में कभी कोई जलूस शान्त भाव से चला जाता है। कभी कोई उत्सुक स्त्री पुरुष इस ओर से उस ओर जाने के लिये शीघ्रता से आगे बढ़ जाते हैं। कभी कार, सैनिक गाड़ी, जीप या कभी प्रबन्धक कर्त्ता सैनिक आते हैं और चले जाते हैं। धीरे धीरे कोलाहल बढ़ने लगा। कान्त को बुरा लगा। महामानव की अन्तिम यात्रा पर यह कैसा आलोडन! क्यों नहीं ये सब लोग मौन रहते लेकिन दूसरे ही क्षण सोचा—मौन मृत्यु का लक्षण है। ये जीवन की साक्षी देना चाहते हैं। वे धीरे धीरे बोल रहे हैं। उनकी चर्चा उसी महामानव को लेकर है। कान्त ने सुना एक बन्धु कह रहे थे—गान्धी की मृत्यु नहीं हुई। गांधी अमर हैं। हत्यारे ने देश का नाश किया है।

'बेशक आप ठीक कहते हैं।'

बोलो अब क्या होगा, वही एक आदमी था जिसने शेषनाग की तरह इतनी बड़ी धरती का भार उठाया था। अब कौन नारियों की रक्षा करेगा? कौन हिन्दू मुस्लिम दंगे रोकेगा? कौन कश्मीर की समस्या को सुलझावेगा? कौन पाकिस्तान को जीतेगा......?'

'बेशक ये सब काम कौन करेगा।'

कोई नहीं कर सकेगा, कोई नहीं—वे बन्धु निराशा में भर कर बोले—अब देश का नाश होगा।

दूसरी ओर किसी ने और भी तीव्रता से कहा—उसने देश को आजाद कराया था क्या हुआ लाख दो लाख आदमी मर गये।

आगे पंजाबी औरतें थीं एक ने दूसरी से कहा—दुखी हम थे पर उसे क्या दुख था उसने उन्हें क्यों मारा?

दूसरी बोली—वह तो हिंदुस्तान में सुख से रहता था।

हाय! हत्यारे ने क्या किया—तीसरी स्त्री सहसा सुबक उठी

कान्त ने दृष्टि उठा कर उसे देखा। सहसा सामने के वृक्ष की डाल टूट पड़ी। एक व्यक्ति गिरा कुछ कोलाहल बढ़ा और फिर सब कुछ शान्त होगया। तभी देखा—लैम्प पोस्ट पर एक युवक हाथों के बल चढ़ा आ रहा है।

और इधर—मेरे साथी ने कहा—रेलवे पुल के कंगूरों पर कितनी भीड़ है वे गिर गये तो...

आज कोई नहीं गिरेगा—पीछे से कोई बोला।

कि दूर एक बन्धु क्रोध में आकर लड़ पड़े। तभी अनेक स्वर उठे—आज भी तुम क्रोध नहीं रोक सके। आज तो......

और वाक्य पूरा होते होते वे सब शान्त होगये। तब जीप में बैठा हुआ एक व्यक्ति पुकारता हुआ आया—भाइयो! महात्मा जी मुक्त होगये। आप शान्त रह कर उनका सम्मान करें......!

और समय बीतने लगा पर पीछे से किसी ने कहा—आज तो समय भी स्थिर होगया है।

'वह भी तो उनके दर्शन करना चाहता है।'

'और यह हवा! आज यह कितनी उतावली है, कितनी शीतल है!'

'पर मुझे तो जाड़ा नहीं लगता.... ...।'

कान्त को लगा वह कितना ठीक कह रहा था। कोटि कोटि मानवों के उठने हुये उच्छ्वासों की उष्णता ने उन्हें शीत से बचा लिया था। सच तो यह है उन सब का ध्यान तब एक ही बात पर केन्द्रित था—गांधी को किसी ने कैसे मारा? एक बन्धु ने करुण स्वर में कहा—आज हिन्दू धर्म कलंकित होगया। दुनिया वाले हमारी ओर उंगली उठा कर कहा करेंगे यह हिन्दू हैं, इन्होंने गांधी को मारा था।

दूसरे बन्धु ने शान्ति से जवाब दिया—और वह भी तो कहेंगे यह हिन्दू हैं, गांधी भी हिन्दू था।

लोगों ने सिर हिला कर उनकी मौन प्रशंसा की तभी सहसा शोर उठा लो वे आगये। बापू आगये।

कोलाहल व्यापक हो उठा पर जन समुदाय अपने स्थान से आगे नहीं बढ़ा। पृथ्वी की तरह वह अपनी धुरी पर आलोड़ित होता रहा। सैनिक गाड़ियां आईं; स्वयं सेवक आये। कान्त को खुशी हुई सबसे आगे अहरार और जमय्यत के स्वयं सेवक थे। उनके पीछे गवर्नर जनरल के अंग रक्षक पताकायें संभाले आये और फिर आया उस महायात्रा का महायान। शोक मग्न वैभव से परिवेष्टित उस फकीर की शान्त मौन मूर्ति को देखने के लिये कोटि कोटि नयन उठे और उठकर रह गये। कान्त ने अपने आगे पीछे रुदन का चीत्कार सुना और सुना दूर से उठता हुआ भीगा जय जयकार। देखा—राष्ट्रीय पताकाओं और पुष्पों से आच्छादित महा यान को भारत की जल, थल और नभ सेना के सैनिक खींच रहे हैं और यह किसकी मूर्ति है...क्या! ये तो नेहरू हैं। इनका सुन्दर मुख कैसा पाला पड़ गया है। कैसे लगते हैं ये, चित्रवत, रक्तहीन, मृत्यु के समान गम्भीर...। कान्त की आँखें भर आईं। दिल में हूक उठने लगी...और ये पटेल...वह जीवित व्यक्ति है अथवा प्रस्तर प्रतिमा। ये तो बापू के चरणों में जड़वत स्थिर हो गये हैं और ये कृपलानी, राजकुमारी, राजेन्द्र बाबू, देवदास, रामदास....रामदास कैसे हाथ जोड़ते हैं और रह रह कर पिता की पुष्प शैया को ठीक करने लगते हैं। पिता का शृंगार बिगड़ न जावे:—

करले शृंगार चतुर अलबेली साजन के घर जाना होगा!

और बापू आज साजन के घर जा रहे हैं। कैसा शृंगार है उनका, कैसा वैभव! इन्द्र और विष्णु भी ईर्षा से लाल हो रहे होंगे। ये राष्ट्र पिता हैं। हां! ये राष्ट्र पिता, बापू, महात्मा, मोहनदास कर्मचन्द्र गान्धी हैं। यह उनका मुख है शांत, स्निग्ध, मौन, करुण और क्षमाशील। वे मानो कह रहे हैं—देखो बच्चो! मैं अब थक गया हूँ, सोना चाहता हूं। विश्वास रखो समय पर फिर जागूंगा।

कृष्ण ने भी तो कहा था—मैं आऊंगा, फिर आऊंगा।

और ईसा भी तो तीसरे दिन जाग उठे थे
और पैगम्बर भी आने वाले थे

गांधी भी आयेंगे...महायात्रा का महायान आगे बढ़ने लगा। कान्त का ध्यान भङ्ग हो गया। नारियां चीत्कार कर रही थीं—हाय! अभागे, तूने क्या किया! सत्यानाशी! तेरे हाथ न टूट गये.......

एक पुरुष ने अग्नि की तरह उबल कर पुकारा—हत्यारा! अब तक जिन्दा है अभी तक! उसे काट क्यों नहीं डाला। उसके टुकड़े टुकड़े क्यों नहीं कर दिये...

कान्त ने चाहा उन्हें सान्त्वना दे, कहे...पर यह क्या! वह स्वयं रोने लगा। उसकी हिड़कियां बंध गईं। बापू! बापू!! बापू तुम कहाँ गये! तभी एकाएक भीड़ का आवेग बढ़ा। महायान और आगे बढ़ गया। उसके पीछे घुड़सवार, लक्ष लक्ष नर नारी, बाल वृद्ध, नेता और महाजन और वे विदेशी बन्धु, सब आये और गये। जय जयकार गूंजी, राम धुन गूंजी और धीरे धीरे सब समाप्त होने लगा। कान्त भीड़ में खो गया, ज्वार भाटे की तरह वह आगे बढ़ता और पीछे हट जाता। लोग रोते और भागते। धूल उड़ती और आकाश में छा जाती। तभी घहरा घहरा कर वायुयान आये और पुष्प वर्षा होने लगी और रेडियो वाला पुकारने लगा—चारों ओर मानव समुद्र दहाड़ें मार कर बढ़ रहा है....।

कान्त फिर यान के पास आ गया। उसने एक बार फिर बापू के शुभ्र और पीतवर्ण मुख को देखा और सोचा—कुछ क्षण और फिर यह भी समाप्त होगा।

तब संसार कहेगा गान्धी था।

नहीं, नहीं—वह फुसफुसाया—'गान्धी था' 'नहीं है'। वह सदा वर्तमान रहेगा, सदा...।

कि उसके पीछे से किसी ने कहा—कान्त! क्या तुमने दूर दूर तक फैले इन मोटर और ट्रकों को देखा है।

कान्त जनता था सैकड़ों मील दूर से लाखों नर नारी इनमें बैठ कर बापू के अन्तिम दर्शन करने के लिये रातों रात दौड़े थे। और ये ही क्यों? रेल और वायुयान ...कि उसे याद आया उसके सामने ही ट्रेन पुल पर रुक गई थी और बरसात के पतिंगों की तरह उसमें से मानव समुदाय उमड़ पड़ा था। कितने आदमी होंगे—उसने एक साथी से पूछा।

'दस लाख तो केवल बाहिर से ही आये हैं।'

'दस लाख' एक रात ....मैं।'

यह वह व्यक्ति था जिसने कभी राजमुकट नहीं पहिना, जिसने कभी कोई पद नहीं संभाला। उसका उतना सम्मान कि जिसका उदाहरण इतिहास नहीं दे सकता। शायद दे भी नहीं सकेगा। कान्त ने मन ही मन बापू को मूक प्रणाम किया। मन ही मन उस पवित्र शरीर का ध्यान किया जो वैभव की नगरी में वैभव शालियों को लजाता हुआ अन्तिम यात्रा कर रहा था। उसी पवित्र शरीर को लक्ष लक्ष नर नारियों के देखते देखते अग्नि के देवता ने अपने गर्भ में छिपा लिया। शिखायें उठीं और उठती चली गईं मानो वे उनके भौतिक शरीर को उस पार ईश्वर के हाथों में सौंप रही थीं वह अब काल, समय और स्थान की सीमा से परे था। वह अब सर्वव्यापक था। पुरोहित उपनिषद के मन्त्रों का उच्चारण कर रहा था "जैसे तुम आये वैसे तुम चले जाओ।" असंख्य नेत्र विदा की वेला में अर्घ्य देने के लिये हृदय का जल उड़ेल रहे थे और चन्दन की सुगन्ध लिये वायु स्वर्ग पथ को सुवासित कर रही थी।

और लपटें चढ़ रही थीं। वे ऊंची और ऊंची उठीं उठती चली गईं और उन्हीं के साथ कोटि कोटि मानवों की आशाओं का केन्द्र, उनकी अभिलाषाओं की प्रतिमा, उनके स्नेह का अधिकारी, उनका मसीहा, उनका सेवक, उनका पिता उनका सर्वस्व भी उठता ही चला गया। इतना उठा कि सबके हृदयों में समा कर रह गया। पंचभूत पञ्चभूतों में मिल गये, प्राण प्राणों में। मानो कबीर के शब्दों में प्राणों ने पुकार कर रहा—

प्राण कहे सुन काया मेरी तुम हम मिलन न होय,
तुम सम मीत बहुत हम कीना सङ्ग न लीना कोय।

कान्त ने गरदन को झटका दिया। उसे लगा यह दार्शनिकता क्यों? वह कहां गया क्या हुआ पर राज घाट सदा सदा के लिये विश्व का सबसे पवित्र तीर्थ बन गया। आने वाली सन्तति कहेगी—युगों पहिले इस देश में एक ईश्वर मानवों के बीच में घूमा करता था। वे उसे पहिचान न सके। उन्होंने उसकी हत्या करके यहां सुला दिया था। कांत कांपा—मानव ने ईश्वर की हत्या की है

हाँ आज मानव ने ईश्वर की हत्या की है। उसने आत्म हत्या की है।

वह मुस्कराया—और आज ही मानव अपने को पहिचान सकेगा। कैसी अनोखी बात है। ईश्वर चला गया और मानव को अपना रास्ता पूरा करना है। वह अपने बल पर उसे पूरा करेगा! हाँ वह करेगा और अवश्य करेगा!

सहसा कान्त का घुमक्कड़ मन कहीं दूर जा पहुँचा। उसका विश्वास था गान्धी जी साधारण मानव नहीं थे, महा मानव क्या यह नहीं जानता था कि उसका अंत आ पहुँचा है। यद्यपि अपने इस प्रश्न पर उसे स्वयं झिझक होने लगी पर तो भी सोचता चला गया। धीरे धीरे उसे बहुत सी बातें याद आने लगीं। उसी दिन जिस दिन संसार ने उनकी वाणी फिर नहीं सुनी उन्होंने कोलम्बिया रेडियो के विशेष प्रतिनिधि से कहा था—'मुझे अब १२५ साल जीवित रहने की आशा नहीं रही।' कारण पूछने पर उन्होंने बताया संसार में कैसी भयानक घटनायें हो रही हैं। मैं अन्धकार में नहीं जीना चाहता। ... मानो कवि ठाकुर के शब्दों में उन्होंने कहा था—

मरण तु आओ! रे आओ! तुहुँ मम ताप घुचाओ।

और यही क्यों जीवन की अंतिम रात्रि में उन्होंने अपनी पौत्री और पौत्रवधु से कहा था—यह कैसी अद्भुत दुनिया है। मैं कब तक यह खेल खेलता रहूंगा। लेकिन राजकुमारी अमृतकौर से उन्होंने जो कुछ कहा वह कितना अर्थपूर्ण है। बुधवार को राजकुमारी ने पूछा—बापू! आज तो किसी मूर्ख ने आपकी प्रार्थना में शरारत नहीं की।

नहीं तो—बापू ने उत्तर दिया—पर इसका यह मतलब तो नहीं है तू मेरी चिन्ता करती है। मैं तो भगवान के हाथों में हूं। वे जब चाहेंगे उठा लेंगे पर तू मुझे विश्वास दिला मेरे मरने पर तू एक भी आंसू न गिरावेगी।

उन्होंने अपने मंत्री से भी कहा बताते हैं कि सभी आवश्यक पत्र मुझे दे दो मैं आज उन्हें समाप्त करूंगा। और कान्त ने अपने कानों से सुना था। २९ जनवरी की अन्तिम प्रार्थना में बोलते हुये उन्होंने कहा था—मुझे लोग हिमालय चले जाने के लिये कहते हैं पर मैं तो इसी अशान्ति में से शांति पाना चाहता हूं। नहीं इसी अशांति में मिट जाना चाहता हूँ...।

और वे मिट गये। क्रांत द्रष्टा की भविष्यद्वाणी पूरी हो गई। कान्त को उस दार्शनिक की याद आ गई जिसने कहा था दिन भर मृत्यु मेरी बगल में रहती है, रात को मैं उसे तकिये के नीचे रख लेता हूं। बापू भी प्रति क्षण मृत्यु के समीप रहते थे। वे उसे प्यार करते थे क्योंकि वे जीवन को प्यार करते थे। २९ जनवरी को ही उन्होंने हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के श्री शकुरन की उनकी पुत्री की मृत्यु पर लिखा था "मृत्यु हमारी सच्ची मित्र है। यह हमारा अज्ञान है जिसके कारण हमें दुख होता है।" सुकरात ने भी लिखा है "जो लोग मृत्यु को दुख रूप मानते हैं वे भूल करते हैं...नीतिमान आदमी को जिन्दा रहने या मरने में कोई दुख होता ही नहीं।" दास कबीर जतन सो ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया! एक और पत्र में गान्धी जी ने लिखा था—"स्वतंत्रता का मूल्य मृत्यु है।" सच तो यह है वे उपनिषत्कार की भांति "तस्मैव भासा सर्वमिदं विभाति" के रहस्य को जानते ही नहीं थे उसे जीते भी थे। शेक्सपीयर ने जूलियस सीजर के मुख से कहलवाया है:—

Cowards die many times before their
death,
The valiant never taste of death but
once,
Of all the wonders I yet have heard,
It seems me most strange,
That man should fear saying that,
Death is inevitable end,
Will Come when it will come.

क्या युगों पहिले गीताकार ने इसी सत्य की घोषणा नहीं की थी:—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च,
तस्माद परिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितु मर्हसि ॥

वे इसी विश्व व्यापी सत्य को जानते थे तभी वे निर्भीक थे। वे नहीं चाहते थे कि प्रार्थना-सभा में आने वालों की तलाशी ली जावे। ईश्वर की भूमि में मृत्यु पर कैसा बन्धन! वह आती है तो आये। वह तो जीवन को

पूर्ण करती हुई आती है और नवजीवन देकर चली जाती है। वह जीवन का आदि और अन्त दोनों है। वह मनुष्य के सोचने का विषय नहीं है उसके विचार का क्षेत्र दूसरा है:—

In this broad field of battle,
In this bivoac of life,
Be not a dumb driven Cattle,
Be a hero in the strife.

और गांधी जी ऐसे ही वीर पुरुष थे। मृत्यु और जीवन ये भयातुर मनुष्य के मस्तिष्क के, अपनी कायरता को छिपाने के दार्शनिक आवरण हैं। बापू भयातुर नहीं थे। इसीलिये उन्होंने कभी उनकी चिन्ता नहीं की। उनके सामने एक लक्ष था—'कर्म'। कर्म वह जो आधारभूत मानवीयता की व्याख्या है। उनका जीवन इसी व्याख्या का सर्वोत्तम उदाहरण था। सच तो यह है वह इस व्याख्या का मूर्त रूप था। फिर उनके लिये शोक कैसा, हर्ष कैसा? उनके लिये विद्यापीठ, स्तूप और प्रतिमाओं की स्थापना कैसी? यदि किसी भी मानव ने उन्हें किसी भी क्षण श्रद्धा और स्नेह की दृष्टि से देखा है तो उसके लिये उनकी एक ही स्मृति-पूजा है— "आधार भूत मानवीयता का जीवन में प्रयोग।"

विश्वकवि रवि ठाकुर ने ऐसे महा मानव के लिये अपनी एक कविता में कहा है।

मरण सागर पारे तोमरा अमर—तोमादेर स्मरि।
निखिले रचिया गेले आपनारि घर—तोमादेर स्मरि॥
संसारे ज्वेले गेले जे नव आलोक
जय होक जय होक तारि जय होक—तोमादेर स्मरि॥
बन्दीरे दिये गेछ मुक्तिर सुधा—तोमादेर स्मरि।
सत्येर वरमाले साजाले वसुधा—तोमादेर स्मरि।
रेखे गेले वाणी से—जे अभय अशोक
जय होक जय होक तारि जय होक—तोमादेर स्मरि

मरण सागर के उस पार अमर हो गये हो; हम तुम्हारा स्मरण करते हैं। विश्व को तुम अपना घर बना कर चले गए हो, हम तुम्हारा स्मरण करते हैं। संसार में जो नवीन आलोक दीप तुम जला गये, उसकी जय हो, जय हो, तुम्हारा स्मरण करते हैं। बन्दी को तुम मुक्ति सुधा पिला गये; हम तुम्हारा स्मरण करते हैं। सत्य की वरमाला से वसुधा को तुम सुशोभित कर गये; हम तुम्हारा स्मरण करते है। जो वाणी—जो सन्देश-तुमने हमारे लिये छोड़ा है, वह भयहीन है शोकहीन है: जय हो उसकी जय हो; हम तुम्हारा स्मरण करते हैं।

कवि से क्षमा प्रार्थना करते हुये हम भी कहते है बापू! जो सन्देश तुमने हमारे लिये छोड़ा है वह भयहीन है, शोकहीन है: उसकी जय हो; हम उसका वरण करते हैं। और यदि हमारी पुकार सुनकर कोई नहीं आता तो अकेले चलेंगे, हम अकेले चलेंगे।

और फिर एक दिन देखेंगे सारा विश्व हमारे ही पीछे है।

तीर्थङ्कर के परिनिर्वाण की सन्ध्या में !

श्री वीरेन्द्रकुमार जैन

लोक के तीर्थंकर का परिनिर्वाण होगया है। सकल चराचर इस घड़ी स्तम्भित रह गया है। विश्व की प्राण-धारा मानो एकाएक लोप हो गई। अस्तित्व का आयतन थर्रा उठा है और तत्वों की गति जैसे थम गई है। पंच महाभूतों की समष्टि बिखर गई है, और अमर सत्य की लौ प्रकट होकर अनन्त में लीन हो गई है। यह वास्तविक दुनिया आज व्यर्थ हो पड़ी है; वह अपनी नहीं लग रही। जीव मात्र का पुण्य सिमट गया है, इसी से सर्व भूत का एकमेव जीवित आत्मीय इस धरती पर से अन्तर्धान होगया है।

गाँधी के मानवी बिछोह से समूचा प्राणीत्व अनाथ हो उठा है; वह 'त्राहिमाम' पुकार कर रो उठा है। इस आघात ने आज जन-जन के हृदय में वह रिक्त छोड़ा है, वह घाव किया है, जिसकी कल्पना भी नहीं रही होगी! गांधी ने आज प्राण देकर प्रमाणित कर दिया है कि सार्वभौम सत्ता के हृदय पर उसका सिंहासन बिछा था। समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी के चारों कोनों से सारी प्रभुताओं के प्रभु उसके इस आत्म-दान के सम्मुख आंसू भरी आंखों से विनत होगये हैं। कई सम्राट गये, अपने प्रताप और विक्रम से इस धरती को थर्रा देने वाले कई विजेता और चक्रवर्ती गये, कई देश-भक्तों ने अपनी बलियां चढ़ाईं, कई ज्ञान के धुरंधर और विभूतियों के धनी होगये, पर उनके बिछोह का शोक एक भूखण्ड तक ही सीमित रहा। पर गांधी के महा-प्रयाण पर आज सारी पृथ्वी की संयुक्त शक्तियों के झण्डे झुके हैं। क्या मनुष्य के जाने हुए इतिहास में ऐसा कभी हुआ है?

स्वयम् आत्म-देवता ने उसकी रक्त-मांस की काया में अवतार लिया था। हम अपने ही अज्ञान और पाप से इतने अधिक घिरे थे कि उसे पहचानने में समर्थ न हो सके। एक ओर यह अज्ञान और विद्वेष जितना ही प्रबलतर होरहा था, दूसरी ओर सत्य और प्रकाश की मांग उतनी ही तीव्रतर होरही थी। मनुष्य पर मनुष्य का अविश्वास इस सीमा तक बढ़ा कि परम पुरुष के मानवी रूप पर भी हम विश्वास न कर सके। हमने उसे त्याग दिया, उसके सारे विधानों की उपेक्षा कर दी; उसके सत्य, अहिंसा, चरखा और खादी सब कुछ को हमने अव्यवहारिक क़रार दे दिया! पर उसने इस बात का कभी गिला नहीं किया, शिकायत नहीं की; और अपने जीवन की आख़िरी अन्तिम सांस तक वह हमारे साथ खड़ा रहा। हमें उसके दैहिक व्यक्तित्व की सीमा जैसे असह्य हो उठी थी; हम सत्य को नग्न देखना चाहते थे। इसी से अनेक तीखे प्रश्नों और संशयों की जलती शूलियां हमने उसके आसपास खड़ी कर दी थीं। उस सारी आग को अपनी शैया की तरह अपना कर, उसमें अपने को दिन-रात तपा-तपा कर उसने अपने को गला देना चाहा, बहा देना चाहा, कि किस तरह अपनी बात वह हम तक पहुँचा सके। पर हमें सन्तोष न होसका, हमें विश्वास न होसका। हाय हाय रे अभागे मनुष्य! ऐसा प्रबल था तेरा पाप! तीर्थंकर ने चारों ओर के उस अभेद्य अन्धकार को अनुभव किया; उसने समझ लिया कि इस चोले की सीमा को तोड़े बिना निस्तार नहीं है। इसी से उसने हाथ जोड़ कर हंसते-हंसते हमारी खड़ी की हुई शूलियों पर अपना हृदय बिधवा लिया, और यों उस सांझ वह अपनी सत्ता के सत् को सिद्ध कर गया।

ओरे मनुष्य! क्या अब भी तेरे अभिमान का वज्र नहीं गलेगा? क्या अब भी धरती पर हिंसा का यह ख़ूनी खेल बन्द नहीं होगा? ओ मेरे भीतर के पामर प्रेत, ओ हिन्दुओं, ओ मुसलमानो, ओ जाति, संस्कृति, राष्ट्र, वर्ग और धर्म-भेद की निर्जीव पाषाण प्रतिमाओं के पुजारियो! बहुत दिन इन अज्ञान के पत्थरों से तुमने अपना सिर फोड़ा है; पर अपने ही आत्म-घात के सिवा तुम्हें इनमें से क्या मिल सका है? ओ अर्थ और सत्ता की महत्ता के गुलामों! ओ अमेरिका, ओ रूस, ओ इंग्लैण्ड, ओ प्रजातन्त्र के नाम पर सत्ता और शोषण की सौदागरी चलाने वालों, ओ हिंसा के मूर्तिमान दानव पूंजीवाद? क्या अब भी तुम्हारे ओठों की यह सर्वग्रासी तृष्णा नहीं बुझेगी? क्या अब भी भोग और अधिकार का यह सत्यानाशी मद नहीं उतरेगा?

ओ विश्व विजय के अभिमानियो! ओ हिंसा के पागलो! छिन भर रुको, झुको और देखो, दिल्ली की इस धरती पर यह व्यक्ति-गांधी का रक्त नहीं गिरा है; यह सम्पूर्ण

मानवता के आत्मघात का रक्त है। हमने अपने ही हाथों अपने ही हृदय में छुरा भोंक लिया है। इस रक्त के एक ओर अथाह जीवन का अमृत-सागर लहरा रहा है और इसके दूसरी ओर प्रलय का अन्ध काल-समुद्र गरज रहा है। ओ विश्व की गति-विधियों के शस्त्र-धारी प्रभुओं! चुनो, कौन सी दिशा तुम चुनना चाहते हो...? मत बढ़ो महायुद्धों की उस मरीचिका की ओर। वहां मानव-भाग्य का अन्तिम फैसला नहीं है, वहाँ जीवन नहीं है। वहाँ है केवल अन्तहीन मौत की अंधेरी रात, जिसका कोई कूल-किनारा नहीं।

ओरे आदम के बेटे! तुझे यह घमंड है कि तूने अपने विज्ञान से तत्व के अन्तिम अंश तक को तोड़ दिया है; तूने समुद्र और आकाश चीरे हैं, तूने हवाओं पर आरोहण किया है, तूने तत्व को बन्दी बना कर उसका मनमाना उपयोग किया है! तुझे गर्व है कि तूने इस निखिल प्रकृति के सीमा चिन्हों पर विजय पाई है! पर उसमें से क्या निकाला है तूने? मौत-सत्यानाश—जीवन मात्र का घात करने वाला महामरण—एटम-बम! लेकिन इधर देख, गांधी ने अपना हृदय चीर कर दिखा दिया है कि यहां छुपा है अमर जीवन का मर्म! उसके प्राणोत्सर्ग की यह लौ पुकार कर कह रही है, कि जीवन का सत्य तोड़ने में नहीं, जोड़ने में समाया है। प्रकृति के इस वल्लभ-विजेता गाँधी को देख! बलात्कार द्वारा नहीं, प्यार द्वारा उसने प्रकृति का हृदय जीता था। उसने अणु-अणु की स्पन्दन शील सत्ता के साथ अपने प्राणों को एक तान कर दिया था। इसी से उसके प्रकृति-विजय में से जीवन के स्रोत फूट पड़े हैं। उसका समूचा जीवन प्रकृति के अन्तर में बहने वाले अनहद आनन्द-संगीत की स्वर लिपि है। अपने दुरभिमानों के आवरण मस्तिष्कों पर से हटा कर, क्या आज भी हम उस स्वर-लिपि को समझने की कोशिश करेंगे?

अपने विचार-चिन्तन को लेकर आज कुछ भी कहने की इच्छा शेष न रह गई है। आत्मोत्सर्ग की इस अमर लौ ने दिशान्तों के पार निःसीम शून्य में प्रकाश की एक लकीर सी खींच दी है। मनुष्य की सारी जिज्ञासाएं, सारे ज्ञान विज्ञान और खोज, सारे तर्क-वितर्क और प्रश्न आज थक कर इस प्रकाश के सम्मुख प्रणत हो गये हैं। नाना सिद्धान्तों के वाद-विवाद और कोलाहल आज व्यर्थ होकर शान्त हो गये हैं क्योंकि आज प्रज्ञा स्वयम् नम्र होकर अपने तेज से प्राण-प्राण के अहत्व को चीर रही है। चरम दुर्भाग्य है उसका, जो इस अग्नि में अपने सारे मोह-मद और अहंकारों को जला कर अविकल्प प्रेम और श्रद्धा से अपनी आत्मा को नहीं भर लेता।

गांधी जी के आत्म-निर्माण की बात जब सोचता हूँ तो साठ-सत्तर वर्षों के ज्वालामय इतिहास को चीर कर, एक बूढ़ी श्रद्धामयी भारतीय माता का वत्सल मुखड़ा आँखों में झूल उठता है। माता पुतली बाई को हमने अपने चर्म-चक्षुओं से नहीं देखा; पर साक्षात भारत माता के रूप में, चालीस करोड़ भारतीयों के हृदय पर वह जगदम्बा विराजमान है, जिसने सनातन पुरुष गान्धी को अपनी कोख से जन्म दिया था। अब से साठ-सत्तर वर्ष पहले पोर बन्दर के दीवान-घराने के आंगन में उसी निरक्षरा मां की गोद में बैठ दस वर्ष के बालक मोहन ने हिमालय की आत्मा का अक्षर-दर्शन प्राप्त किया था। आदि संस्कार की उसी पवित्र भूमिका से बापू ने, अपनी 'आत्म-कथा' का आरम्भ किया है। माँ की उन्हीं सहज-सरल धर्म-शिक्षाओं के आधार पर गांधी ने अपने जीवन का वह देश-कालभेदी आलोक-शिखर उठाया था, जिसे देख कर युग के सारे ज्ञान-विज्ञान स्तम्भित रह गये; और जिसका प्रकाश युगान्तरों के अन्धकार को चीरता हुआ भावी के इतिहास का राज-मार्ग बन गया है।

जैनों और वैष्णवों की दयामयी, दानमयी, नम्र धर्म-साधना काठियावाड़ और गुजरात की सबसे बड़ी विरासत है। भक्त नरसिंह मेहता के विह्वल निवेदन में 'मां भोम' गुर्जरी का द्रवित हृदय गा उठा है—"वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे"। माता पुतली बाई के कण्ठ पर चढ़ कर यही दया की आर्द्र-वाणी बालक मोहन के रोम-रोम में रम गई। मां की अचल ईश्वर-भक्ति को देख कर वह आश्चर्य से स्तब्ध रह जाता है। जीवन का पल-पल भगवान के चरणों में अर्पित था, मानों जीवन ही भगवानमय था। भगवान से बाहर होकर किसी जीवन का कल्पना ही नहीं थी। खाना पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना, सोचना-विचारना जीवन की सभी क्रियाओं के भीतर चुप चाप इसी कृष्णार्पण का

यज्ञ चल रहा था। वह प्रभु और उसकी भक्ति सारे तर्क, ज्ञान और विचार से परे थी। जीवन के सारे आचरण-व्यवहारों में एक सहज संयम-नियम का सूत्र पिरोया हुआ था। जीवन को प्रभु की दी हुई थाती मान लिया गया था, उस पर किसी अधिकार का भाव मन में नहीं था; इसीसे जीवन को सबके लिये दे देने में ही उनका आनन्द समाया था। सारे व्रत-उपवास, पूजा-प्रसाद, आचरण-नियम संयम में यही सर्वस्वदान का भाव था। यह दान और संयम कृत्रिम और कष्ट साध्य न होकर सहज आनन्दमय था; उसे करके वे अपने को कृतार्थ अनुभव कर लीं। माँ का यह नित्य का नियम था कि भगवान सूर्य नारायण के दर्शन करके ही वे भोजन ग्रहण करतीं; बरसात के दिनों में कई-कई दिनों सूरज न निकलता तो वे कई-कई दिन निराहार और निर्जल ही बिता देतीं। बालक मोहन यह सब देखकर स्तम्भित रह जाता।

इसी अक्षुण्ण निष्ठा में से बापू को अपना राम मिला था। श्रद्धा के इसी हिमाचल में उनके सारे तेज और शक्ति का रहस्य समाया था। माँ ने बताया था कि जीव मात्र उसी भगवान के अंश हैं। हवा, जल, वनस्पति, दीमक, कीट-पतंग, पशु-पक्षी और मनुष्य सब में एक ही आत्मा का वास है। केवल बाहरी शरीर और रूप-आकार से वे अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं। इसी से सब को अपनी ही तरह प्यार करो। दूसरे का जी दुखाना या घात करना अपना ही जी दुखाने और घात करने के समान है। इसीसे जिस आचरण से हमें दुख पहुँचता हो, वह आचरण हम औरों के प्रति भी न करें। इसी कारण दया और अहिंसा सबसे बड़ा धर्म माना गया था और उन वैष्णवों के घर में बड़ी बारीकी से जीवमात्र की दया पाली जाती थी। सोलह वर्ष के किशोर मोहन को बैरिस्टरी पास करने के लिये विलायत भेजते समय माँ ने यही तीन-चार शपथें उन्हें दिलाई थीं। मर जाना पर मांसाहार न करना; सत्य बोलना; मदिरा पान न करना और सब स्त्रियों को अपनी मां-बहन की तरह समझना। वही आदिकाल की मोटी नीति-शिक्षाएँ हैं जिन्हें कई बार हम किताबों में पढ़ कर भूल गये हैं। पर मां ने अपनी विदा-बेला के आंसुओं से सार सार कर जो शिक्षाएँ उस क्षीण-काय, नरम-दिल गुजराती लड़के के हृदय पर लिख दी थीं, उस पर उसने निष्ठा की ऐसी अक्षय गाँठ लगाली कि उसके बाद फिर उसमें से विकास के उच्च से उच्चतर भवन ही खड़े होते गये। समुद्रों पार इंग्लैण्ड में अपार भौतिक ऐश्वर्य के बीच लोटने वाली उस उद्दाम विलासी सभ्यता के झाड़े में, मां की शपथों से बंधे युवा गाँधी को बड़ी कठिन कसौटियों से गुज़रना पड़ा। अन्तर-आत्मा के बड़े ही विषम द्वन्द्वों के बीच लड़ते हुए वह निष्ठावान युवा उन अग्नि-परीक्षाओं से बेदाग़ निकल आया। बस ठीक वहीं गाँधी की महानता की बुनियाद पड़ गई। जीवन के बाज़ार में वह फेल हुआ; वकालत और बैरिस्टरी उसे न लुभा सकी।...पुकार आई, और वह दक्षिण आफ्रिका चला गया। शासक अंग्रेज़ प्रभुओं ने वहां की प्रवासी भारतीय जनता को मानव के अधिकारों से वंचित कर, उसकी आत्मा का घोर अपमान किया था और उस प्रजा पर वह दारुण अत्याचार बरसा रही थी। गाँधी को वह असह्य हो उठा। वह बाग़ी हो गया। वहीं एक प्रहार गाँधी पर भी आया वह क्षण भर तिलमिला कर रह गया। उसने रुक कर सोचा इस प्रहार के बदले प्रहार देकर क्या इस शत्रु पर मैं विजय प्राप्त कर सकूंगा?....नहीं वह मुझे कुचल देगा। फिर क्या कोई ऐसा प्रतिकार नहीं—जिसका यह शत्रु प्रतिकार न कर सके? आत्म-देवता जागृत हो उठा इस ज्वलन्त प्रश्न की टकराहट से। गाँधी ने उस प्रहार का उत्तर एक निरुत्तर गम्भीर शान्त ख़ामोशी से दिया। प्रहार निःशस्त्र हो गया। उसका क्रोध निरर्थक हो गया। उसके पास गाँधी के इस शस्त्र का उत्तर नहीं था। बस यहीं गाँधी का नव-जन्म हो गया। अन्तर्मुहूर्त मात्र में व्यक्ति विश्व बन गया। इसके बाद तो फिर उसके भीतर से अनन्त शक्तियों के स्रोत फूट पड़े। पिछले तीस वर्षों का भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास उसी महा मानव गाँधी की विजय-यात्रा का इतिहास है।

गांधी जी की सबसे बड़ी शक्ति थी उनकी अद्भुत ईश्वर-निष्ठा। इस परम आत्मार्पण के बल पर वे अपने जीवन में सहज लीला और आनन्द के भाव से कितनी ही अग्नि-परीक्षाओं के बीच से तीर की तरह निकल गये। इसी मेरु-अचल निष्ठा के दिव्यास्त्र से उन्होंने साम्राज्यों को थर्रा दिया, और धरती के सबसे बड़े

साम्राज्य बरतानवी शाहंशाहियत को परास्त कर दिया।

हार उन्होंने कभी नहीं जानी, और जब चूक भी उनसे हुई तो उन्होंने उसे अपनी ऊपर चढ़ने की सीढ़ी बना लिया। सत्य ही उनका भगवान था। अहिंसा उस तक ले जाने वाली भगवती थी। अहिंसक रचना का प्रतीक था चरखा; खादी, खेती, स्वावलम्बन। जन-जन खेती करें और कपड़ा बुनें। फिर शोषण अपने आप ही असम्भव हो जायगा। सत्ता और पूंजी का केन्द्रीकरण नहीं हो सकेगा। अन्ततः जन-जन की स्वाधीनता क़ायम हो जायगी। किसी बाहरी सरकार की भी तब ज़रूरत नहीं होगी। स्वयम् प्रभु की ही सरकार तब चलेगी, और प्रेम ही एक मात्र उसका क़ानून होगा। अपने उस चरम स्वप्न को सिद्ध करने के लिए प्रभु फिर हमारे बापू को अनन्त शक्ति देकर हमारे ही बीच जन्म दें, यही इन बिछुड़न की विह्वल घड़ियों में हमारी कामना है।

नोट:—आल इंडिया रेडियो बम्बई से ता० ४ फरवरी ४८ को ब्राडकास्ट हुआ। स्टेशन की अनुमति से प्रकाशित।

बापू नहीं रहे!

श्री धीरेन्द्र मजुमदार

'बापू नहीं रहे'—सुनकर सारी दुनियाँ रो रही है। भारत के हिन्दू रो रहे हैं, मुसलमान रो रहे हैं, सिख, पारसी और ईसाई रो रहे हैं। जङ्गलों में कोल, भील और संथाल रो रहे हैं। जिसने देखा वह रो रहा है, जिसने नहीं देखा वह भी। सुदूर अमरीका का छोटा बच्चा रोकर अपनी माँ से कहता है, "ऐ माँ! सबको मना कर दे कि वे अब बन्दूक बनाना न सीखें!" पता नहीं इतने दूर देश में उस छोटे बच्चे को यह प्रेरणा किसने प्रदान की।

रो सब रहे हैं, लेकिन आज रोने से ही काम नहीं चलेगा। भारत के चालीस करोड़ नर नारियों को सोचना होगा कि यह क्या हुआ? गांधी जी की हत्या क्यों हुई? क्या संसार में नित्य प्रति जो हजारों हत्याएं हुआ करती हैं यह भी वैसी ही है, अथवा उससे भिन्न? महात्मा गांधी ईश्वर प्रेषित युगावतार रहे हैं। अवतारों के जीवन-मरण के पीछे ईश्वर का कुछ खास उद्देश्य रहता है। तो क्या गांधी जी की मृत्यु इष्ट थी? यह तो वही जान सकता है जिस सर्व शक्तिमान् ने उन्हें भेजा और फिर बुला लिया। हम क्षुद्र बुद्धि वाले क्या जान सकते हैं?

आज दिन गांधी जी युगावतार हो गये। ऐसे महापुरुष के जन्म होने का भी कुछ कारण रहा होगा। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है:—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत्। अभ्युत्थानं धर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्।

हमको सोचना है कि किस धर्म की ग्लानि हुई थी जिसके फलस्वरूप अवतार को इस देश में देह धारण करना पड़ा। भारत किसी धर्म विशेष का देश नहीं है। इसका धर्म सनातन है जो मानव समाज के धार्मिक विचार की अनन्त धारा है। वह किसी वाद में, किसी पन्थ में और किसी निश्चित विचार अथवा निश्चित दर्शन में बँधा हुआ नहीं है। यह प्रत्येक विचार, प्रत्येक साधना और हर प्रकार की उपासना का द्योतक है। भारत का यह सनातन धर्म स्वतः प्रवाहित है। इस प्रवाह में द्वैत अद्वैत, साकार निराकार, आस्तिक नास्तिक आदि प्रत्येक विचार धारायें शांति पूर्वक बहती चली आती हैं। यह धर्म किसी विचार धारा का विरोध नहीं करता है। हरेक मनुष्य अपने विचार धर्म और अपने आदर्श के लिये स्वतंत्र है। भारत ही एक ऐसा देश है जिसमें विचार स्वतंत्रता की पराकाष्ठा रही है। यहाँ के धर्म

में तेतीस कोटि नरनारी के लिये तेतीस कोटि देवताओं का स्थान है। आजादी का प्रत्येक व्यक्ति अपना धर्म अलग अलग रख सकता है फिर भी किसी को किसी से विरोध नहीं है। कोई जरूरी नहीं है कि पिता का देवता पुत्र का भी इष्ट हो। यह स्वाभाविक प्रकृति का अटल नियम है। सृष्टि की कोई दो वस्तुयें हूबहू एक जैसी नहीं होतीं फिर दो व्यक्तियों का एक धर्म किस प्रकार हो सकता है ? ईश्वर के अनन्त रूप में से जिसने जिस रूप को सोचा समझा या देखा वह उसी रूप की पूजा करता है। यह स्वाभाविक भी है।

भारत का वह उदार, वह महान धर्म कहां गया। आज तो किसी प्रकार का मतभेद, धर्म भेद और विचार भेद समाज को असहनीय हो गया है। मानव-धर्म की विशालता जाति और मजहब के संकुचित दायरे में घिर कर मृतप्राय हो गई है। अपना सनातन धर्म खोकर और तरह-तरह के संकीर्ण धर्म अपनाकर भारत में आज हिंसा द्वेष और असहिष्णुता का बाजार गर्म है।

ऐसे धर्म हीनता के युग में गांधी जी का जन्म लेना आवश्यक था। संसार में गांधी जी अवतरित हुए और विश्वव्यापी द्वेष, हिंसा और असहिष्णुता के विरोध में आवाज़ बुलन्द की। भयङ्कर नफरत को प्रेम से जीतना चाहा, पशुता को मानवता से मिटाना चाहा और सङ्कीर्णता को उदारता द्वारा दूर करना चाहा। ऐसी हालत में यह स्वाभाविक ही था कि नफरत, पशुता और सङ्कीर्णता अपनी सारी शक्ति लगाकर गांधी जी का विरोध करतीं। संसार में कोई भी अपना स्थायी कब्जा आसानी से नहीं छोड़ता है। फिर उन्होंने जो सदियों से मानव हृदय को पाश बद्ध कर रखा था, गांधी जी के एक बार कहने से ही बिना लड़े कब्जा कैसे छोड़ सकती थीं। आखिर देश की बढ़ती हुई भीषण नफरत ने गोली बन कर बापू की छाती पर आघात कर ही दिया।

गोली ने बापू का यह नश्वर शरीर छुड़ा दिया। उनकी अमर आत्मा अनन्त में विलीन हो गई। बापू अमर हो गये। लेकिन बापू के हृदय पर किसने गोली मारी ? क्या वह गोली गोडसे ने चलाई थी ? क्या वह निर्मम प्रहार राष्ट्रीय स्वयं सेवक सङ्घ वालों ने किया था अथवा हिन्दू महासभा ने ? उत्तर आसान है। उनकी मौत के घाट उतारने वाली गोली उनकी नहीं थी। वह भारत में क्रमशः अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित वातावरण की गोली थी जो भारत पर ही नहीं समस्त संसार पर गाज बन कर गिरी। पितृ हत्या के अपराधी भारत के असंख्य नरनारी हैं; जिन्होंने उस नफरत के वातावरण को पैदा करने में भाग लिया था। कहते हैं भगवान रामचन्द्र ने लङ्का पर विजय प्राप्त करने के लिये रामेश्वरम् का सेतु बाँधा था। पर सेतु बाँधने का श्रेय जहां राम के साथ उन अगणित नर वानरों को है, वहां सृष्टि की एक अत्यन्त ही क्षुद्र प्राणी गिलहरी को भी है, जिसने समुद्र तट से एक कण बालू उस अनन्त जलराशि में छोड़ा था।

ठीक उसी प्रकार जिसने इस द्वेष के अग्नि कुण्ड में प्रोत्साहन की जितनी घृताहुति की है वह इस महापाप का भागी उतना ही है। जिस तरह गिलहरी बालू का एक कण समुद्र में डाल कर अनंत काल से सेतु बंधन की पुण्यभागी बनी हुई है। उसी तरह हिंसा और द्वेष की अग्नि ज्वाला प्रज्वलित करने में एक बूंद भी घृत डालने वाला, राष्ट्रपिता की जघन्य हत्या का भागी, अनंत काल के लिये बन गया। इस गुरुतम पाप से पीढ़ि दर पीढ़ि तक हमारी सन्तानों का मस्तक विश्व के सामने नत रहेगा और वे हमें कोसती रहेंगी—धिक्कारती रहेंगी। आज देश के कोने कोने में लोग राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के नेताओं के घर हमला बोल रहे हैं, जगह जगह इकट्ठा होकर उन्हें गालियां दे रहे हैं और स्थान स्थान पर सभाओं में प्रतिशोध की बातें कर रहे हैं। लेकिन यह नफरत किससे और यह क्रोध किस पर ? आज हममें से प्रत्येक को अपना दिल टटोलना है कि क्या हमने अपनी बातों अपने विचारों और अपने कर्मों से क्रोध का वातावरण फैलाने में तनिक भी हिस्सा लिया है ? क्या बापू के प्रेम और एकता के अविराम कार्य क्रम को कभी भी उपेक्षा की दृष्टि से देखा है ? अथवा उनकी खिल्ली उड़ायी है ? उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर यदि स्वीकारात्मक है तो बापू की हत्या में हमारा भी जबरदस्त हाथ रहा है। अतः इस जघन्य कृति के लिये हम किससे नफरत करें। हममें से एकाध अगर इस भीषण पाप से बच भी गये हों तो उनके लिये भी हत्यारे के प्रति घृणा की गुंजाइश कहां ? घृणा और द्वेष के विरुद्ध लड़ते हुये बापू के प्राण चले गये। अगर

उस घृणा के हम भी शिकार हुए जिसने बापू की छाती पर गोली चलाई तो उससे यही सिद्ध होगा कि हिंसा द्वेष और संकीर्णता ने प्रेम, सहिष्णुता और उदारता पर विजय पायी। महात्मा ईसा को यहूदियों ने सूली पर चढ़ा कर केवल उनके शरीर पर आघात किया लेकिन आज ईसाई संसार विश्व व्यापी द्वेष और हिंसा में रत हो, युद्ध के तरह तरह के ध्वंसात्मक सामान जुटा कर महात्मा ईसा की आत्मा पर आघात कर रहा है। ठीक उसी प्रकार बापू की छाती पर गोली चलाने वाले ने केवल उनके शरीर को ही मारा, लेकिन अगर हम उसी प्रकार पुनः नफरत का वातावरण पैदा करेंगे तो हम भक्त बापू की आत्मा पर गोली मारेंगे जिस गुरुतर पाप का कोई प्रायश्चित ही नहीं होगा।

किंकर्त्तव्य विमूढ़ भारत के हरएक नरनारी जो आज रो रहे हैं उन पर महान दायित्व आ पड़ा है। उन पर भीषण पाप के प्रायश्चित्त की जिम्मेदारी है, उन पर पितृ हत्या के फल स्वरूप भारत के ललाट पर लगे कलंक की टीका धोने की जिम्मेदारी है, और जिम्मेदारी है सत्य असत्य, अहिंसा हिंसा, प्रेम द्वेष सहिष्णुता असहिष्णुता और उदारता अनुदारता के भीषण संग्राम में विजयी होने की जिसके सफल संचालन में बापू महान योद्धा की तरह वीर गति को प्राप्त हुए। अवतार विरोधी राष्ट्र कभी सुख नहीं प्राप्त कर सका है जिसका ज्वलत उदाहरण यहूदी जाति है जो ईसा को सूली पर चढ़ा कर आज मारी मारी फिर रही है। अतः उन्हें देश को विनाश के मुख से भी बचाने की जिम्मेदारी है।

भारत सन्तान अब रोना छोड़े। जब आँसू पोछने वाला ही नहीं रहा तब रोना कैसा! सभी को कृत संकल्प होकर उस महान कार्य को करना है जिसके लिए बापू ने प्राण तक की बाजी लगा दी। गत पच्चीस साल से बापू के चरण चिन्हों पर चल कर हमने राजनैतिक आजादी हासिल कर ली। इस प्रकार संसार से बिछुड़ते बिछुड़ते बापू जी हमें पुकार कर कह गये हैं, "भारतवासियो तुमने राजनैतिक आजादी हासिल कर ली। अब तुम्हें सात लाख गावों को आर्थिक, सामाजिक और नैतिक आजादी हासिल करानी है।"

इस आजादी की प्राप्ति के लिये बापू मुख्यतः पांच कार्यक्रम भी बतला गये हैं। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी आदि सभी धर्मों में एकता और समानता स्थापित करना, समाज में छुआछूत तथा ऊँच नीच का भेदभाव दूर करना, गोपालन और चरखा, स्त्री जाति का उत्थान और गाँव में स्वावलम्बी व्यवस्था कायम करना। इसके लिये भारत संतान को तैयार होना है और अपनी आत्मा शुद्ध कर इस पुनीत कार्य में योगदान करना है।

जिस विराट क्रान्ति को आरम्भ कर संसार को होश दिलाते हुये बापू मर कर शहीद हुए उस कार्य को करने के लिये लाखों नरनारी की आवश्यकता है जो मरकर नहीं, जिन्दा शहीद हो सकें। जो मानवता के महा समुद्र में अपने को डुबो सकें, जो दुखी दलित जन समूहों के त्राण में अपने प्राण दे सकें।

आज भारत के सामने अग्नि परीक्षा है। उसे आज महा प्रायश्चित्त करना है। ईश्वर भारत को इसके लिये बल दें।

———

बापू की रामोपासना

सुश्री शचीरानी गुर्टू एम० ए०

ऐसी विषम परिस्थितियों के मध्य, जब कि मानवता का मानव-क्षितिज अंधकार और बादलों से आच्छन्न था, जब उसके मार्ग में काँटों का जाल बिछा था, जब मनुष्य का मन शिथिल, उसका नैतिक-बल विस्मृत और आध्यात्मिकता मूर्च्छित थी तथा मानवता पशुता के नग्न प्रदर्शन से लज्जित थी और जबकि प्रगति का पथ तमिस्रा की कालिमा में भटकता सा प्रतीत हो रहा था, तब बापू आशा की ज्योति लेकर हमारे बीच आए थे। वे क्या थे? उनमें कौन सी दैवी शक्ति निहित थी? यह बताना तो कठिन है, किन्तु उनका समस्त जीवन एक पदार्थ-पाठ है। नित्य प्रति की साधारण से साधारण बातों में हम उनसे शिक्षा ले सकते हैं। अपने एक निजी और विलक्षण रूप में अंधकार से प्रकाश में आने का मार्ग उन्होंने दिखाया था। वे दूरांत प्रकाश देखने थे और उधर सङ्केत करते थे। जीवन के महान् क्षणों में वे एक विशेष वाणी सुनते थे, जो उन्हें प्रेरणा देती थी और जब वे इसे सुन लेते थे तब कोई भी पार्थिव शक्ति उन्हें इस आवाज़ के, जिसे वह परमात्मा की वाणी समझते थे, अनुसार कार्य करने से नहीं रोक सकती थी।

बापू को राम नाम में दृढ़ विश्वास था। कहते हैं बाल्यावस्था में ये भूत से बहुत अधिक डरते थे, अतः समय, कुसमय अंधेरे में जाने से इन्हें भय लगता था। एक दिन रंभा नाम की नौकरानी ने इन्हें बताया कि राम नाम में ऐसी अद्भुत शक्ति है जिसके उच्चारण मात्र से भूत भागता है। बालक गाँधी को राम नाम पर अटल विश्वास हो गया और शनैः शनैः उस पर श्रद्धा जमती गई। उठते, बैठते, सोते, जागते, जंम्हाई लेते या अंगड़ाई लेते हुए वे लम्बी श्वांस लेकर "हे राम, हे राम" का उच्चारण करते थे। इस उच्चारण में कुछ करुणा, कुछ दया और कुछ थकावट की ध्वनि होती। ज्यों ज्यों उनका अनुभव बढ़ा, उन्हें राम में अधिकाधिक विश्वास होता गया। हानि-लाभ-यश-अपयश प्रत्येक बात में वे ईश्वर की ही कृपा का आश्रय लेते। छोटी मोटी घटनाएँ भी यदि होती थीं तो वे कह देते थे कि "इसमें ईश्वर का हाथ है।"

एक बार किसी भक्त सज्जन ने बापू को लिखा कि मुझे स्वप्न हुआ है—आपका अन्त समीप है, अतः सब काम छोड़कर आप भगवान् के भजन में लग जाइए।" बापू ने उत्तर में लिखा "भाई, मैं तो एक क्षण के लिए भी ईश्वर-भजन को नहीं भुलाता। परन्तु मेरे लिये तो लोक सेवा ही ईश्वर-भजन है। दूसरी बात—समय समीप आ गया है—क्या इसलिए हम ईश्वर भजन करें? मैं तो यह मानता हूँ कि हमारी गर्दन हम जन्मते हैं उसी दिन से—यमराज के हाथ में है। फिर ईश्वर-भजन के लिए हम बुढ़ापे तक क्यों ठहरें? ईश्वर-भजन तो प्रत्येक अवस्था में हमें करना चाहिए।"

अपने पुत्रों की बीमारी में, बा की बीमारी में, अनेक अड़चनों, विघ्नों, विषम परिस्थितियों में इन्होंने राम नाम का सहारा लिया और वे सफल हुए। एक बार इनके द्वितीय पुत्र मणिलाल काल ज्वर से आक्रान्त हुए। डाक्टर ने उन्हें अण्डा और मुर्गी का शोरबा देने के लिए कहा, किन्तु बापू तो मांसाहार पाप समझते थे, अतः राम नाम का सहारा लिया। हालत खराब थी, किन्तु तो भी विश्वास अटल था। उस समय का विवरण देते हुए बापू लिखते हैं :—

"मैं खूब थक गया था। मणिलाल को उसकी माँ को सौंपकर मैं आधे घण्टे के लिए खुली हवा में ताज़गी और शान्ति प्राप्त करने के इरादे से चौपाटी की तरफ़ चला गया। रात के दस बजे होंगे। मनुष्यों की आमद-रफ्त कम हो गई थी, पर मुझे इसका ख़याल न था। विचार-सागर में गोते लगा रहा था—हे ईश्वर! इस धर्म सङ्कट में तू मेरी लाज रखना। मुख से 'राम राम' की रटन तो चल ही रही थी। कुछ देर के बाद मैं वापिस लौटा। मेरा कलेजा धड़क रहा था। घर में घुसते ही मणिलाल ने आवाज़ दी—"बापू! आगए!" कुछ दिनों पश्चात् मणिलाल पूर्ण स्वस्थ हो गए।

बापू की राम में श्रद्धा हर समय, हरेक काम में जैसे मूर्तिमान रहती थी। बात बात में ईश्वर को सामने रखकर काम करने और बात कहने की इनकी आदत कभी अव्यावहारिक सी लगती, किन्तु उनकी श्रद्धा और विश्वास को साधारण जीव कैसे समझते। कभी कभी भरी अदालत में भी ये ईश्वर का नाम लेते, अंग्रेज़ वाइसरायों से कहते "ईश्वर का आदेश मैं कैसे टालूँ।" राजकोट में जब इन्होंने आमरण उपवास किया तो

वाइसराय लिनलिथगो ने इन्हें तार दिया कि "उपवास प्रारम्भ करने से पूर्व आप कम से कम मुझसे पूछ तो लेते। आपने अकस्मात यह क्या किया?" बापू ने लिखा मैं क्या करता! ईश्वरादेश को मैं कैसे टालता। जब अन्तर्नाद होता है तो सलाह की किसे पर्वाह है। एक स्थल पर वे लिखते हैं :—

"मैं निश्चय पूर्वक तो नहीं कह सकता कि मेरे सभी कार्य ईश्वर की प्रेरणा से होते हैं, पर जब मैं अपने बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे काम का लेखा लगाता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है ये ईश्वर की प्रेरणा से किए गए थे, ऐसा कथन अनुपयुक्त नहीं होगा। मैंने ईश्वर का दर्शन नहीं किया, पर उसमें मेरी श्रद्धा अमिट है और उस श्रद्धा ने अब अनुभव का रूप ले लिया है। शायद कोई कहे कि श्रद्धा को अनुभव का उपनाम देना यह सत्य की फजीहत होगी। इसलिए मैं कहूंगा कि मेरी ईश्वर श्रद्धा का नाम करण करने के लिए मेरे पास और कोई शब्द नहीं है।"

इधर कुछ महीनों से पूज्य बापू ने शाम की प्रार्थना के बाद प्रवचन करने की प्रथा डाल दी थी। उसमें वे अपने आराध्य देव जनता-जनार्दन के आगे अपने हृदय की झंकार सुनाया करते थे। और उसके द्वारा देश के दुःख, दारिद्रय, वैमनस्य और इनसे होने वाले मानवता के उच्छेदन को रोकने का प्रयत्न करते थे।

शताब्दियों बाद जब मानव-समाज के कल्याण के लिए किसी महापुरुष का हृदय-स्रोत उमड़ पड़ता है और सनातन सत्य के ज्ञान की बाढ़ आती है तब उसका बहुत कम भाग ही उपयोग में आता है और अधिकतर यों ही बह जाता है। महर्षि की आर्षवाणी के तेज में हमारी बुद्धि चौंधिया जाती है और हमारा हृदय इतना उथला साबित होता है कि जिनको हमने अपना परम मार्ग-दर्शक माना उनकी बातें भी हमारे दिल में नहीं पैठतीं, हम सिर खुजाते रह जाते हैं और उनका वाक्-प्रवाह बहकर निकल जाता है।

आज हमारी भौतिक दशा गिर गई है। हमारा आध्यात्मिक पतन हो गया है। हम नास्तिक, विषयी, अधर्मी एवं लोलुप हो गये हैं। शक्ति, आत्म विश्वास, बुद्धि, बल, धर्म, ज्ञान, दया, उदारता आदि सभी गुण हममें से चले गये हैं; हम शनैः शनैः 'सत्य' से, जो ईश्वर का समकक्ष है वंचित हो रहे हैं। हमारे मन ओछे हैं, विचार ओछे हैं, हम बापू के व्यापक प्रेम—विश्व प्रेम को कैसे समझते। वे तो प्राणी मात्र में राम के दर्शन करते थे। उनके लिए शत्रु-मित्र समान थे। उनकी आस्तिकता धर्म, अहिंसा और सत्य में निहित थी। सत्य को वे एक दैवी गुण मानते थे। सत्य सनातन है, सत्य ईश्वर है। अहर्निश वे यही कहा करते थे "सत्य परमात्मा है और परमात्मा सत्य है"

ईश्वर में उनका कितना दृढ़ विश्वास था वह नीचे के उद्धरणों से ज्ञात होता है:—

"एक अलक्ष्य रहस्यमय शक्ति है जो वस्तु मात्र में व्याप्त है। मैं इसे देखता नहीं, परन्तु इसे अनुभव करता हूँ। यह अदृश्य शक्ति अनुभव द्वारा ही गम्य है। प्रमाणों से इसकी सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि मेरी इन्द्रियों से गम्य जो कुछ भी है, उस सबसे वह शक्ति सर्वथा भिन्न है।"

"यह युक्ति या तर्क का विषय कभी नहीं बन सकता यदि आप मुझे औरों को युक्ति द्वारा विश्वास करा देने को कहें तो मुझे हार माननी पड़ेगी, परन्तु मैं आपसे इतना कह सकता हूँ कि इस कमरे में आपने और आपके बैठे होने को मैं जितना निश्चित सत्य समझता हूं, उससे कहीं अधिक मुझे उसकी सत्ता का निश्चय है। मैं इस बात का भी सबूत दे सकता हूं कि बिना हवा और पानी के चाहे मैं जी जाऊँ, परन्तु बिना ईश्वर के जीना असम्भव है। आप मेरी आँखें निकाल लें मैं मरूंगा नहीं। आप मेरी नाक काट लें तब भी मरूँगा नहीं, परन्तु ईश्वर में मेरे विश्वास को उड़ा दें तो मैं मरा ही पड़ा हूं।"

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में लिखते हुए भी वही राम नाम साधकों के समक्ष रख देते हैं। "बिना उस प्रभु की शरण में गए विचारों पर पूर्ण आधिपत्य असम्भव है। पूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन के अपने इस सतत प्रयत्न में, हर पल, मैं इस सीधे-सादे सत्य का अनुभव कर रहा हूँ।"

अन्त में महा प्रयाण के समय भी राम नाम का उच्चारण किया। बापू! तुम धन्य हो। तुम्हारी आत्मा अमर है। तुम राम की गोद में सानन्द बैठे हो। हम अभागे हैं—हमने तुम्हें खो दिया।

बापू का बलिदान!

पण्डित सुन्दरलाल

सन् १९१६ से मुझे बराबर गान्धी जी के पास आते जाते रहने और महीनों लगातार उनके साथ रहने का सुभाग मिला है। छै दिसम्बर सन '४७ से उनके जीवन की आखरी घड़ी तक—केवल दो दिन को छोड़ कर जब उनकी आज्ञा से मुझे दिल्ली से बाहर जाना पड़ा था—लगभग मेरा सारा समय उनही के चरणों के पास बीता। आम तौर पर शाम की प्रार्थना में मैं उनके साथ साथ उनके कमरे से प्रार्थना की जगह तक जाया करता था। ३० जनवरी सन ४८' की शाम को मुझे अपने कमरे में कुछ मेओ भाइयों से बातें करते हुए देर हो गई। मैं जल्दी से अकेला सीधा प्रार्थना की जगह पहुंचा। गान्धी जी ठीक पाँच बजे वहाँ पहुँच जाया करते थे। उस दिन पाँच बज कर दस मिनट हो गए थे। वह अभी तक नहीं पहुँचे थे। मैं सोच ही रहा था कि इतने में वह आते दिखाई दिये। प्रार्थना के मैदान की चार पाँच सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद ज्योंही वह दोनों तरफ़ के आदमियों की क़तारों के बीच आए कि अचानक तीन फ़ायर हुए। बाद का हाल दुनिया भर के अखबारों में छप चुका है। मेरा अपना अन्दाज़ा है कि उन्हें गोली पाँच बज कर बारह और तेरह मिनट के बीच में लगी। सब को हाथ जोड़ कर "हे राम!" उनके आखिरी शब्द थे। उन्हें फौरन उठाकर उनके कमरे में पहुँचा दिया गया। खून के कुछ क़तरे उस जगह पर गिरे जहाँ वह खुद गोली खाकर गिरे थे। कुछ भाइयों ने तुरन्त गोली के निशानों पर उंगली रख दी जिससे कपड़ों पर या और कहीं बहुत कम खून लग पाया—गांधी जी जब अपने कमरे में बिछौने पर लाकर लिटा दिए गए उस वक़्त तक उन्हें थोड़ा बहुत होश ज़रूर था। चेहरे पर साफ़ मुसकराहट थी। यह मुसकराहट क़रीब क़रीब पाँच बज कर पच्चीस मिनट पर गुम हुई। चेहरा कुछ गम्भीर हो गया, मानो एकदम गहरी नींद आ गई हो। मुसकराहट का गुम होना ही उनका आखिरी साँस लेना था। मेरी निगाह इसके बहुत देर बाद तक टकटकी की तरह उनके चेहरे पर लगी रही। कमरे में रोती हुई आवाज़ों के साथ साथ ज़ोर ज़ोर से गीता पाठ जारी था। भीड़ बढ़ती जा रही थी। रात को गीता पाठ के साथ साथ, बीच बीच में, ग्रन्थ साहब से पाठ, क़ुरान शरीफ़ की तलावत, ईसाई धर्म के भजन, और उनकी यह प्यारी रामधुन चलती रही—

ईश्वर अल्लाह तेरे नाम
सबको सनमति दे भगवान

हर चीज़ के बहुत से पहलू होते हैं, महापुरुषों की ज़िन्दगी के भी बेशुमार पहलू होते हैं। गान्धी जी की ज़िन्दगी का वह पहलू जो मुझे सब से ज़्यादा अपनी तरफ़ खींचता था उनका पग पग पर अपने आप को अन्दर की कसौटी पर कसना था। खाने में, पीने में, किसी से बात करने में, बहस करने में, किसी चीज़ पर राय क़ायम करने में, कोई भी छोटा बड़ा क़दम उठाने में, हर बात और हर फ़िक्र में वह बराबर अन्दर ही अन्दर, देखते रहते थे कि कहीं वह अधीर तो नहीं हो रहे हैं, क्षमा के असूल का उल्लघन तो नहीं कर रहे हैं, कोई बात ख़ुदी या अहकार के असर से तो नहीं कर रहे है, दूसरे का हक़ तो नहीं छीन रहे हैं, कोई नापाक बात तो नहीं कर रहे हैं, स्वाद के बस तो नहीं खा रहे हैं, पूरी समझ और अपनी पूरी जानकारी से काम ले रहे हैं या नहीं, बाल बराबर भी सच्चाई से तो नहीं हट रहे हैं, दिल के अन्दर कहीं क्रोध की रमक तो नहीं है, इत्यादि। हाल ही में मैंने एक दिन बापू से कहा था कि आप जब दूसरों से या कांग्रेस नेताओं से बातें करते हैं तो मैं यह देख कर दंग रह जाता हूँ कि किस सावधानी के साथ आप हिंसा के बारीक से बारीक रूपों से हर क़दम पर बचने की कोशिश करते रहते हैं।

मैं गान्धी जी से अपने लगभग तीस बरस के साथ से यह कह सकता हूँ कि अगर कोई आदमी मैंने गीता के अनुसार या योग सूत्रों के अनुसार या मनु के दस लक्षणों के अनुसार जीवन बिताने की कोशिश करते हुए देखा है तो गान्धी जी को। इस निगाह से वे एक आदर्श पुरुष थे। इस बारे में

उनकी जिन्दगी ऊँचे से ऊँचे मुसलमान सूफियों की जिन्दगी से मिलती थी। इमाम ग़िज़ाली के मुताबिक़ वह सच्चे सूफ़ी और सच्चे मुसलमान थे। 'इमिटेशन आफ क्राइस्ट' के लेखक कैम्पिस के अनुसार वह सच्चे ईसाई थे। उनकी जिन्दगी सब धर्मों का संगम थी। वह आदर्श धर्मात्मा और सच्चे दीनदार थे। उनकी राजनीति भी इसीलिये ऊँची थी क्योंकि वह धर्म की इस कसौटी पर कस कर सामने आती थी। जिस किसी के दिल में भी दीन या धर्म की प्यास हो वह महात्मा गान्धी की जिन्दगी से अनमोल अमली सबक़ सीख सकता है।

हमारे इतिहास पर लगी कालिमा

श्री राहुल सांकृत्यायन

आज तक भारत में किसी अपने महान-पुरुष पर उसके विचारों की भिन्नता के लिये ऐसा नृशंस कार्य नहीं किया गया था। बुद्ध ने बहुत सी कड़वी मीठी बातें कहीं, समाज के कोढ़ों पर गहरा प्रहार किया। किन्तु वह अपना पूरा जीवन बिताकर निर्वाण प्राप्त हुये। महावीर के विचार तत्कालीन समाज के बहुत अंशों में विरोधी रहते हुए भी किसी ने उनके रक्त से अपना हाथ नहीं रँगना चाहा। जो घृणित कार्य हमारे सारे इतिहास में नहीं देखा गया, संस्कृति जिससे अपरिचित थी उसी की कालिमा हमारे इतिहास पर लगाई गई।

गान्धीजी की हत्या अत्यन्त कायरतापूर्ण कृत्य है। उनका प्राण लेना कोई कठिन काम नहीं था। वह सर्वथा अरक्षित लाखों की भीड़ में घूमते थे। उन्हें अपने जीवन की परवाह न थी। उन्होंने अपने सारे जीवन के एक एक क्षण का मूल्य चुका लिया था। उनका स्वप्न भारत की स्वतंत्रता सत्य हो चुका था। वह कृत-कृत्य थे। भार-मुक्त थे। उनके हत्यारे ने अपने इस जघन्य काम से क्या लाभ समझा था। हां गांधीजी की हत्या का पाप केवल गोडसे पर नहीं है। इसके पीछे बहुत छोटे बड़े लोग हैं, जिनके संकल्पों की भनक महीनों से हमारे कानों में आ रही थी। गांधीजी और देश के राष्ट्रीय नेताओं की हत्या करके जबरदस्ती राज्य शासन को हाथ में लेने की बातें कितने दिनों से हमारे वायुमण्डल में फैली हुई थीं। गान्धीजी अपराधियों को क्षमा कर सकते थे किन्तु राष्ट्र क्षमा नहीं कर सकता।

जो नहिं दण्ड करहुँ खल तोरा,
भ्रष्ट होहि 'सन्मारग' मोरा।

गान्धीजी ने जीवन के क्षण क्षण का मूल्य तो चुका ही लिया, उन्होंने मृत्यु का मूल्य भी वायें जाने नहीं दिया। ७८ वर्ष का वह निर्बल शरीर बुद्ध के वचनानुसार रस्सी से बाँधकर चलाये जाते शकट की तरह चल रहा था, कुछ दिन और चल जाता, उसे तो एक दिन विश्राम लेना ही था। गांधीजी ने असाधारण विश्राम लिया। उनकी यह मृत्यु भी जीवन की तरह यशस्वी हुई। जहां तक उसका गांधीजी से सम्बन्ध है गांधी जी वह महान पुरुष थे जिनका स्थान शताब्दियों में भी नहीं पूरा हो सकता। वह वास्तविक अर्थ में हमारे राष्ट्र के पिता थे। भारत के नये जन्म में उनका सबसे बड़ा हाथ है। भारत अमर है। उसके साथ गान्धीजी अमर रहेंगे। गान्धीजी ने वह रास्ता दिखलाया है, वह प्रदीप हमारे हाथ में दिया है, जिससे हम अपना पथ देख सकते हैं। यदि यह न होता तो उनके सारे जीवन का प्रयत्न निष्फल होता। निर्वाण शय्या पर लेटे बुद्ध की भाँति हमारे राष्ट्रपिता भी चाहते हैं— "अत्तदीपा भवथ, अत्तसरणा भवथ" आप अपने प्रकाश बनो, आप अपनी शरण बनो।

ईसा और बापू

आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की हत्या न केवल हिंदुस्तान बल्कि सारे संसार के इतिहास में एक ऐसी घटना है जिसकी मिसाल नहीं मिल सकती। १९४८ वर्ष पहले फ़िलिस्तीन में यहूदियों ने महात्मा ईसा को उनके उद्देश्यों के विरुद्ध अपना क्रोध प्रकट करने के लिए सूली पर टांग कर निर्दयता से प्राण लिए थे। लेकिन उस वक्त बहुमत यहूदियों के पक्ष में था और ईसा के नज़दीक के शिष्यों का भी विश्वास हिल गया था—फिर भी ईसा के बलिदान के बाद यहूदियों की क्या गति हुई और ईसाई धर्म का प्रचार सारे संसार में कितनी तेजी से हुआ यह सब हम जानते हैं। करीब दो हजार वर्षों के बाद भी आज यहूदियों की यह हालत है कि वे दुनिया में किसी देश को और किसी स्थान को अपना घर नहीं कह सकते। महात्मा गांधी की हत्या ऐसे समय हुई जब कि उनका आदर सिर्फ हिन्दुस्तान में ही नहीं किन्तु दुनिया के कोने कोने में जनता के दिल में समा चुका था और उनका मानव धर्म संसार के करोड़ों हृदयों में प्रवेश कर चुका था। ऐसा होते हुए भी साम्प्रदायिक मनोवृत्तियों में डूबा हुआ एक नवयुवक हिन्दू उनका प्राण ले सका। यह एक ऐसी विस्मय पूर्ण घटना है जिसको कि भारतवर्ष तथा जगत के लोग सदियों तक न भूल सकेंगे।

अभी तक हम यही समझते थे कि बुद्धिहीन और राक्षसिक कृत्य सिर्फ एक पागल जैसे नवयुवक का था। लेकिन जो समाचार देश के सभी हिस्सों से मिल रहे हैं उससे यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि हमारे राष्ट्रपिता की हत्या के पीछे एक बड़ा षड्यन्त्र है—जिसमें हजारों और शायद लाखों साम्प्रदायिक वृत्ति के लोग शामिल हैं। जगत के एक अवतार पुरुष को गोली से मार कर लोग मिठाई बांट कर खुशियाँ मना सकते हैं, इस बात की कल्पना करना भी बिल्कुल असम्भव था। लेकिन जिन लोगों ने वर्षों से जातीयता के जहर को जानबूझ कर पान किया है उनकी वृत्ति आज कितनी अस्वाभाविक और दूषित बन गई है यह हम अपनी आँखों देख रहे हैं। बापू के हत्यारे ने शायद यह सोचा होगा कि उनके प्राण लेकर उनकी विचार धारा को कुण्ठित किया जा सकेगा और इस देश में संकुचित वृत्ति को तेजी से फैला कर हिन्दू राज्य और हिन्दू धर्म स्थायी रूप से कायम किया जा सकेगा। किन्तु जिस हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति की रक्षा करने के लिए उस बहके हुए नवयुवक ने महात्मा गांधी की हत्या की—उसी धर्म की सबसे बड़ी हानि उसके हाथों हुई है। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अब हमारा देश साम्प्रदायिक वृत्ति का जड़ से नाश करके ही सांस लेगा और इस जातीय-वृत्ति के पोषकों और पुजारियों का हाल ईसा की हत्या करने वालों से कहीं ज्यादा दयनीय बनेगा।

लेकिन यह क्रांतिकारी परिवर्तन अगर सफल बनाना है तो वह महात्मा गांधी के बताये अहिंसा और सहिष्णुता के मार्ग से ही हो सकता है। अगर हम दूषित वृत्तियों को हिंसक मार्ग से कुचलना चाहें तो वह वृत्ति बढ़ेगी, घटेगी नहीं। हमने इस जीवन तत्त्व को गाँधी जी के जीवन काल में अच्छी तरह नहीं समझ पाया। लेकिन उनके उठ जाने के बाद तो हम उनके सूत्रों की अहिंसा के आदर्श को न भूलें। अगर हमने हिंसा का मार्ग अपनाया तो गाँधी जी के बलिदान के पवित्र असर को हम दिन दिन घटायेंगे—बढ़ायेंगे नहीं। महात्मा गांधी जी का सन्देश सारे संसार के शांति के लिए था। यह चिरशान्ति युद्ध व हिंसा द्वारा कभी स्थापित न हो सकेगी। आज हम ईश्वर से यही प्रार्थना करें कि वह हमें बापू के महान आदर्शों को समझने और उन्हें अपने जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव करने की शक्ति दे।

पितृघात !

प्रोफेसर राजाराम शास्त्री

आज मैं अपने को और अपने समाज को पितृघात के महा पाप का अपराधी अनुभव कर रहा हूं। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि मानवता के जन्म काल में नरपशु ने पितृघात किया था, जिसके अपराध की भावना से मनुष्य जाति आज तक मुक्त नहीं हुई। अनेक धार्मिक विधानों के द्वारा वह आज तक उस पाप का प्रायश्चित्त करती चली आ रही है। फिर भी उस पाप की प्रवृत्ति अभी तक हमारे हृदयों से नहीं निकली। क्या महात्मा ईसा को क्रास पर चढ़ाकर उसकी पुनरावृत्ति नहीं की गई? और क्या उस अपराध से आज तक एक विशिष्ट समाज लाञ्छित नहीं है। हमारे सामने आज यह महत् प्रश्न उपस्थित है कि क्या भारतीय समाज बापू की हत्या का लाञ्छन चिरकाल तक वहन करेगा या इसका तीव्रतम प्रायश्चित्त स्वीकार करके शीघ्र से शीघ्र इस कलंक को धो डालेगा। वही भारतीय समाज जो नर-पशुता से इतनी दूर निकल आया था कि उसे अपने प्रस्थान बिन्दु की याद भी नहीं रही थी और जिसके अग्रजन्मा मानव धर्म की व्याप्ति मनुष्य मात्र में थी, उसी भारतीय समाज ने एकबार पुनः पितृघात के आदिम अपराध से अपने को कलंकित करके अपने सांस्कृतिक पतन की संसार व्यापी घोषणा तो कर ही दी, अब क्या वह इस महान् विपत्ति से सबक भी न सीखेगा जो आदि मानव ने भी पितृघात करके सीखा था। कहा जाता है कि मानवता का प्रारम्भ इस पाप के ऐच्छिक स्वीकार तथा उसके प्रायश्चित्त की भावना से ही हुआ था। तब मानव सभ्यता का पहला नियम यह बना था कि हम पिता की हत्या न करेंगे और उसके नैतिक अधिकार का अपहरण न करेंगे। इस प्रकार आदि मानव ने शारीरिक पिता के अभाव की पूर्ति उसे आध्यात्मिक रूप में अपने अन्तर में स्थापित करके की थी। जो काम पिता के, उसकी दण्ड शक्ति से अथवा उसके बाह्य आदेश से होता था, वह 'अब सामाजिक नियम तथा उसके ऐच्छिक पालन द्वारा होने लगा। यदि ऐसा न होता तो उसी दिन मानव-समाज का अन्त हो जाता। उसका जन्मदाता अब वह पिता कहां था जो अपनी शक्ति से उसे बांधे रहता था। समाज तथा व्यक्ति ने उसे अन्तरात्मा के रूप में अपने हृदय में स्थापित किया। अब वही सामाजिक नियम और यही अन्तरात्मा उसकी सरहद विवेकिनी बुद्धि है, उसका 'उत्तम स्व' है। बाह्य पिता का इस प्रकार अन्तःकरण करके ही मनुष्य जाति ने अपनी रक्षा की और मानव संस्कृति को जन्म दिया। अब इसी अन्तःकरण की प्रवृत्ति उसके कर्मों का प्रमाण और बुरे भले का मानदण्ड है। अब यही हृदय में बैठा हुआ पिता उसे बुरे से निवृत्त और भले में प्रवृत्त किया करता है। पिता का अन्तःकरण ही अन्तःकरण शब्द की सार्थकता है। और बिना अन्तःकरण के मनुष्य की कल्पना नहीं की जा सकती। सहृदयता ही मानवता है—हृदयहीनता ही पशुता।

तो क्या भारतीय समाज उस महात्मा को हृदयंगम कर रहा है जिसके शरीर की उसने हत्या की है। केन्द्रीय सरकार ने महात्मा के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने की नीति ग्रहण करके इस प्रवृत्ति का परिचय अवश्य दिया है। किन्तु सरकार की बुनियाद तो समाज है। क्या उस भारतीय समाज में और उस कांग्रेस संघटन में भी उतना अन्तर्निरीक्षण हो रहा है जितना तीव्र गति से हमारे प्रायश्चित्त के लिए आवश्यक है। कानून से तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का अन्त कर दिया गया है। किन्तु पाप को अन्दर से निकालना पड़ेगा। भारतीय समाज में तथा उसके हृदय रूप कांग्रेस संघटन में संघ के आदर्शों से सहानुभूति रखने वाले तत्त्व पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। और कांग्रेस वह संघटन है जिसने राष्ट्रीय जीवन के सभी अंगों पर, सभी संस्थाओं पर, प्रचार के सभी साधनों पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। इसीलिए कांग्रेस का आन्तरिक पतन आज का सब से बड़ा खतरा है। खेद है कि कांग्रेस के नवनिर्माण सम्बन्ध में महात्मा गांधी की राय समय रहते नहीं ली गई। इस सम्बन्ध में बरसों से कांग्रेस के वर्तमान अधिकारियों की ओर से टालमटोल हो रही है। चोटी के नेताओं में से कुछ तो इस विषय को महत्व ही नहीं देते और इसे तात्कालिक समस्या न समझ कर आवश्यक राजनैतिक कार्यों से फुर्सत मिलने पर इस सम्बन्ध में विचार करना चाहते हैं, और कुछ जानबूझ कर इसको टाल रहे हैं। परिणामतः उस अन्तर्निरीक्षण का अवसर ही नहीं आने पा रहा जो महात्माजी के प्रयत्नों और आदेशों का मूल तत्त्व

था। किन्तु महात्माजी ने जो अन्तिम विचार कांग्रेस के सम्बन्ध में प्रकट किये हैं, उससे स्पष्ट है कि वे वर्तमान रूप में कांग्रेस के संघटन को जारी रखना नहीं चाहते थे। उनका प्रस्ताव था कि कांग्रेस अब देश सेवकों की संस्था बने। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अगला अधिवेशन अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा। हम आशा करते हैं कि कांग्रेस के कर्णधार उसे राष्ट्र के कल्याण के अनुकूल बनायेंगे और इस बात का पूरा प्रबन्ध करेंगे कि संस्कृति विरोधी तथा प्रतिक्रियाशील शक्तियां कांग्रेस की प्रतिष्ठा का लाभ न उठा सकें। यदि कांग्रेस सच्चे अर्थों में प्रगतिशील भारतीय संस्कृति का न कि इसकी विकृति का प्रतिनिधित्व करने लगे और उसके अन्दर ह्रासोन्मुख स्वार्थमय तत्वों का उन्मूलन हो तब और तभी हम यह कह सकेंगे कि समाज ने महात्माजी के अन्तःकरण की ओर एक सच्चा कदम उठाया और प्रायश्चित्त की दिशा में कुछ वास्तविक प्रयास किया।

दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः

श्री जे० सी० कुमारप्पा

आम जबान में कहा जाय तो ३० जनवरी को जब गांधी जी परम-पिता की गोद में चले गये तो दुनिया में एक बड़ी दुखद घटना हुई। जिसने भी यह नश्वर देह है उसे ढाढ़स बँधाना मुश्किल है और यह समझना मुश्किल है कि दिखाई देनेवाली वस्तुओं से अनदेखी वस्तुएं अधिक सच्ची हैं। दो हजार वर्ष पूर्व एक ऐसे ही हादसे के होने के ठीक पहले कहे गये ईसा मसीह के शब्द आज भी हमारे कानों में गूंज पड़ते हैं। ईसा को उसी के लोगों की एक जमात के लीडरों ने, जो ईसा के द्वारा होने वाली उनके रस्म-रिवाजों की निर्भीक आलोचना नहीं सहन कर सकने थे, षड्यन्त्र द्वारा सूली पर चढ़वा दिया। उस महात्मा ने सूली पर चढ़ने के कुछ समय पूर्व जो शब्द कहे थे उनमें आज हमारे लिये खास तत्व मालूम पड़ता है—

"मैं तुम सबके लिए शांति छोड़ जाता हूं। तुम्हारे दिलों में कोई क्षोभ न हो। यदि तुम्हें मुझसे मुहब्बत रही है तो तुम्हें खुशी मनानी चाहिये कि मैं अपने पिता के पास जा रहा हूँ।"

"अभी थोड़ी देर और, फिर दुनिया मुझे नहीं देख पायेगी। लेकिन तुम मुझे देखोगे। जो मेरे आदेशों को समझेगा और उन पर चलेगा वही मुझे सच्चा प्यार करता है और मैं भी उसी पर स्नेह रखूंगा और उसे अपने दर्शन दूंगा और परम पिता उससे प्यार करेंगे।"

"मेरे पिता की कीर्ति इसमे प्रकाशित होगी कि तुम मेरी आशाएं प्रतिफलित करोगे और उतने ही मेरे सच्चे शिष्य बनोगे।"

"अगर तुम मेरे दिये आदेशों पर चलोगे तो तुम मेरे प्रेम में निवास करोगे—वैसे ही जैसे मैंने अपने पिता के आदेशों का पालन करके उसके प्रेम को प्राप्त किया है। यह मेरी आज्ञा है कि तुम आपस में मुहब्बत रखो जैसी मैंने तुमसे मुहब्बत रक्खी है। जिसने अपने इष्ट मित्रों के लिए अपनी जान कुरबान कर दी उससे अधिक प्रेम कोई नहीं कर सकता।"

"मैंने ये बातें तुमसे इसलिये कही हैं कि मेरा आनन्द तुममें कायम रहे और तुम्हारा आनन्द सम्पूर्ण रहे।"

"हां ऐसा समय भी आयेगा, जब जो कोई भी तुम्हारी हत्या करेगा, समझेगा कि वह ईश्वर की सेवा कर रहा है और ऐसा वे तुम्हारे साथ करेंगे, क्योंकि वे परम पिता को नहीं जानते, न मुझे समझते हैं।"

"क्योंकि मैंने तुम्हें यह सब बताया है तुम्हारा दिल दुख से भर आया है।" "मैं जानता हूं कि सचमुच तुम रोओगे और दुःखी होओगे पर बाकी दुनिया खुशी मनायेगी और तुम्हें अफसोस होगा। लेकिन तुम्हारा यही दुख सच्चे आनन्द में परिवर्तित हो जायगा। वह आन्तरिक आनन्द तुम से कोई नहीं छीन सकता।"

"परम पिता जिसे ढाढ़स बँधाने को तुम्हारे पास भेजेगा —वह सत्य रूपी ईश्वर तुम्हें सच्चा मार्ग दर्शन करायेगा।" "परम पिता स्वयं तुम से स्नेह रखता है क्योंकि तुमने मुझसे प्रेम किया और विश्वास रखा कि मैं ईश्वर के पास से आया। मैं परम पिता के पास से आया और इस दुनिया में रहा और फिर भी दुनिया छोड़कर परम पिता के पास जाता हूं।"

"देखो समय आ पहुँचा है, आ गया है कि तुम अलग अलग हो जाओगे—अपने अपने घर—और मुझे अकेला छोड़ जाओगे पर मैं फिर अकेला नहीं हूं, परम पिता मेरे साथ है।"

"मैं तुमसे यह सब इसलिये बता रहा हूं कि तुम्हें शान्ति मिल सके। इस दुनिया में तुम्हें मुसीबतें सहनी पड़ेंगी पर हिम्मत न हारना। मैंने तो दुनिया को जीत लिया है।"

समय और स्थान की सारी सीमायें लांघ कर गांधी जी ने नश्वर देह त्याग कर सर्व व्यापी चिदात्मा में प्रवेश पा लिया है। ईश्वर हममें से उनको, जो उन्हें सच्चे दिल से चाहते थे, इतनी ताक़त दे और उन पर ऐसा अनुग्रह रक्खे कि वे गांधी जी के जीवन और कार्यों से प्रकाशित राह पर चल सकें।

अगर हम अपनी जिन्दगी गांधी जी के आदर्शों को पाने के लिये अर्पण कर दें तो जातीय भेदभाव आर्थिक लालच और ताक़त हथियाने की लालसा से विदीर्ण संसार के घृणा और सन्देह से भरे वातावरण में शांति लाने के लिये बहुत सा कठिन काम हमारे लिये पड़ा मिलेगा। लेकिन उनके लिये, जिनका सर्वशक्तिमान में पूरा भरोसा है, कुछ भी नामुमकिन नहीं है। क्या हम आज अपने आंसू पोंछकर, कमर कसकर, ईश्वर और मानव में अटल विश्वास रखकर अपने कर्तव्य का सामना करेंगे और अपने नेता, बापू-के द्वारा शुरू किये हुये कार्य को पूरा करेंगे?

मुक्तात्मा गांधी !

श्री काका कालेलकर

राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी ने जीवन भर की विविध और उत्कट तपस्या के द्वारा हिन्दुस्तान की सेवा तो की ही है, लेकिन उस सेवामन्दिर के कलश रूप अपने वीरोचित मरण के द्वारा उन्होंने हिन्दुस्तान की, हिन्दू धर्म की, हिन्दू समाज की और अखिल मानव-जाति की भी दिव्य सेवा की है। जीवन का पूरा पूरा मूल्य चुका देने के बाद मरण का भी पूरा पूरा मूल्य अदा करने वाले महात्मा अब मुक्तात्मा हो गये हैं। शरीर के द्वारा जो कुछ भी सेवा और साधना हो सकती थी, वह आखिरी बूँद तक पूरी करके उन्होंने अपना शरीर 'हे राम' के मंत्र के साथ भगवान के चरणों में अर्पण किया और भगवान् ने उनकी महान आत्मा को शरीर के बन्धन से मुक्त करके सारे विश्व में विलीन होने दिया।

आज हम दुःख करते हैं--उनके लिये नहीं, बल्कि अपने लिये दुःख करते हैं। उनको तो परम शान्ति मिली है। आज उनका विजयोत्सव है। अब वे न केवल हिन्दुस्तान के लोगों के हृदय में, किन्तु दुनिया भर के सज्जनों के हृदय में प्रतिष्ठित हो गये हैं। महात्मा गांधी की मृत्यु का दिन मुक्तात्मा बापू का जन्म-दिन है। शरीर को ही पहचानने वाले हत्यारे ने उनका तपःक्षीण शरीर ले लिया। लेकर उसने कुछ नहीं पाया है। पाया है, तो सारी मानव-जाति का धिक्कार।

हत्यारे की ओर और उसके जो कोई भी साथी हों, उनकी ओर प्रजा का क्रोध प्रकट होना स्वाभाविक है। लेकिन ऐसे समय—महान आत्मा की मृत्यु के समय हमें उसकी गम्भीरता को कलंक नहीं लगाना चाहिये। स्वराज्य-सरकार के कानूनों का अनादर करके हम हत्यारे दुर्जनों को हमारे पुण्य प्रकोप का भाजन बनायेंगे, तो हमारा पुण्य प्रकोप भी लज्जित होगा और महात्माजी के दिव्य बलिदान का अपमान होगा। पापियों की दुष्प्रवृत्ति को रोकना सरकार का प्राथमिक कर्त्तव्य है। सरकार वह करेगी। हमारा कर्त्तव्य है कि हम पूज्य बापूजी क और हमारे बीच ऐसी किसी भी तुच्छ वस्तु को न आने दें।

आज हमें अन्तर्मुख होकर अपना-अपना हृदय क्षुद्र स्वार्थ, मत्सर, साम्प्रदायिकता और क्रोध आदि दोषों से मुक्त करना चाहिये और उस हृदय-मन्दिर में बापू-भगवान की स्थापना करनी चाहिये।

आज सारा विश्व एक अपूर्व वेदना से पीड़ित है। दिनरात युद्ध का ही ध्यान करनेवाले मानव-शत्रु भी अब तीसरे और आखिरी विश्वयुद्ध के खयाल से काँप रहे हैं। ऐसे समय हरएक राष्ट्र के प्रतिनिधि एक ओर युद्ध टालने की भरसक कोशिश कर रहे हैं और दूसरी ओर नियति के प्रवाह में फँसकर उसी सर्व विनाशकारी विश्वयुद्ध को नजदीक भी ला रहे हैं। मानव-जाति को और मानव-हृदय को बचाने का एक ही तरीक़ा है, और वह भगवान ने पूज्य बापूजी के द्वारा नोआखाली के क्षेत्र में सर्व प्रथम प्रकट किया है। उस तरीक़े को समझने की हम कोशिश करें और उसकी साधना के योग्य हम बन जायँ। इसलिये व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन शुद्ध करने में हम आज से लग जायँ।

बापू और हरिजन

माननीय श्री जगन्नाथ चौधरी

विश्वविभूति बापू उठ गये पर उनका आदर्श आलोक और आचरण-आभा अमर है। उनकी अमरवाणी अब भी हवा में गूंजती रहेगी। आज विश्व उनकी सत सेवा सरिता के कल कल निनाद से ओत प्रोत है। स्नेह दीप-शिखा अन्तर्हित हो गई अवश्य, किंतु विश्व उस पावन प्रकाशपुंज में सदा अपना पथ खोज सकेगा, उनकी अमर वाणी में मूक मानव की मुखरित भावना को सुन उससे प्रेरणा ले सकेगा।

बापू निर्बल के बल थे, दलितों के जीवन, शोषितों के प्राण और वे पतितों के सहारा। उनका सारा भौतिक जीवन इन्हीं की सेवा में बीता। देश, काल और परिस्थिति के अनुकूल उन सेवाओं के साकार रूप बनते गये, किंतु सबों की आत्मा थी पतितोत्थान की भावना, उनके हेतु प्रयास। चूंकि सम्पूर्ण मानव जीवन को उत्कृष्ट बनाने वाले बापू का मुख्य कर्मक्षेत्र भारत रहा' उनकी सेवा वृत्तियों के साकार रूप पर भारतीय परिस्थिति और वातावरण की छाप भी अमिट है। किन्तु यदि कोई अन्तर्मुखी होकर इन साकार रूपों को देखे, उनकी आत्मा की खोज करे तो उसे मिलेगी वही आत्म सेवा देश काल और परिस्थिति के बन्धनों से मुक्त।

भारतीय परिस्थिति में बापू की सेवाओं का एक स्वरूप है हरिजन सेवा। बापू ने अपने को इन दलितों, पतितों और पदमर्दित मूक मानवों के साथ एक कर लिया था। उनकी सांसों में हरिजनों के प्राण बसते थे, जिह्वा पर उनकी मूक विद्रोहिणी वाणी और आँखों में करुणा सागर। बापू ने अपने को भङ्गी बनाया था और भङ्गी की बेटी को अपनी पुत्री, भङ्गी ही की कुटिया को अपना घर। सचमुच उनका जीवन एक विशुद्ध भङ्गी का जीवन था—गन्दगी को साफ करने के लिये अन्तर और वाह्यमल को धोने के लिए।

आदमी वही है जो जीने के लिए सदा मरने को तैयार हो। क्या बापू ने हरिजनों के लिए जान की बाजी नहीं लगाई थी? जब सारा सवर्ण हिंदू समाज उन्हें अपनी मंडली से निकाल कर उनका सर्वस्व अपहरण कर आत्म हत्या करने जा रहा था क्या बापू ने इस आत्म हत्या से उन्हें नहीं बचाया? और बचाया अपने प्राणों का अर्घ्य दे कर हरिजन और सवर्ण दोनों ही को। बापू की आवाज मानवता की आवाज थी, बापू का क़दम इतिहास का क़दम था और बापू की दृष्टि थी निर्भीक, निशंक, अडिग और अचूक। जब इस पदमर्दित मानवता का अन्तिम बल भगवान इनसे छीने जाने लगे, उनके द्वार भी इनके लिए अवरुद्ध कर दिये गये, बापू का पग बढ़ा और बढ़ी इस कपाट को खोलने सजग मानव की भावना, चिरदिनों की कामना।

जब मानवता अपने आप से घृणा करने लगी थी, अपने ही एक अंग को पवित्र और दूसरे को अपवित्र मान रही थी, जब मानव समाज कुत्तों से लिपटता और मनुष्य से छूत मानता था, बापू ने इसके भयङ्कर परिणामों का दिग्दर्शन कराया। मानवता ने विराट दर्शन किया और श्रद्धा के पुष्प उस अछूत की कुटिया में पड़े।

बापू जब एक ओर सवर्ण हिंदू समाज को दृष्टि उनके दोषों की ओर दिलाते थे तो दूसरी ओर निर्बलों को भी आत्मबल देते थे, उन्हें पूर्ण सङ्गठित होकर अपने अपहृत स्वत्वों को उचित उपाय से प्राप्त करने के मार्ग भी दिखलाते थे। बापू ने भारतीय जीवन का और भारतीय समाज के मनोविज्ञान का इतना गहरा और सूक्ष्म अध्ययन किया था कि हरिजन के छोटे से छोटे मसलों को वे हल किया करते थे और उन्हें जीवन में उतारने के लिए स्वयं सबसे आगे रहते थे।

आज चिरसुप्त हरिजन समाज में जो कुछ भी जागृति है, निश्चेष्ट मानवता में जो कुछ भी प्राण है, सूखी धमनियों में जो कुछ भी ताजगी आई है, उनमें जो कुछ भी रक्त प्रवाहित हो रहा है, सब बापू की ही तपस्या के, उनके ही मनोबल के, उनकी ही सेवा साधना के, और उनकी ही जागरण वीणा का फल है। बापू जहाँ जाते थे हरिजनों के लिए भिक्षा मांगते, उनके लिए बोलते, उनके लिए लिखते, और उनके ही लिए जीते थे। इतना ही नहीं, भारत की जनता बापू के साथ हरिजन को और हरिजन के साथ 'बापू को याद करने लगी थी।

एक ओर बापू हरिजनों को उनका कर्त्तव्य सिखलाते रहे थे, उन्हें निर्भीक और कर्त्तव्य परायण होने को कहते

थे जिसमें कोई उनके ऊपर उंगली न उठा सके, जिसमें उनका तिरस्कार करने वाले ही उनका आदर करने लगें तो दूसरी ओर सवर्णों और अधिकारियों को भी उनके कर्त्तव्य से आगाह करते आ रहे थे, हरिजन के प्रश्नों पर सवर्णों का क्या धर्म होना चाहिये, सरकार का क्या रुख होना चाहिये; सेवकों का क्या कर्तव्य होना चाहिये, उसे वे बराबर दुहराते आये हैं। मन्दिर प्रवेश के संबंध में उनका लेख उक्त नीति का द्योतक है। पाखाना कमाने के बर्तनों और झाड़ू वगैरह चीजों के लिए कानून ही बन जाना चाहिए। हरिजनों के लिए पानी का इन्तजाम सरकार की तरफ से होना चाहिये।

हरिजन सेवा के विभिन्न प्रश्नों और मसलों पर बापू की राय का उल्लेख करना इस श्रद्धांजलि का मकसद नहीं और न यह सम्भव ही है। मैं केवल इतना ही दिखलाना चाहता हूँ कि इन प्रश्नों पर किसके क्या कर्त्तव्य हैं और इस की विवेचना बापू कैसे करते थे। वे रहनुमा थे, पथ प्रदर्शक थे, अतः सबों को उसके कर्त्तव्य के विषय में जागरूक रखना वे अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते थे।

वे मानव की सत्य, शिव और सुन्दर भावना के अक्षय कोष अचल, अडिग और अमर प्रहरी थे। वे अपने उत्कृष्ट आचरण द्वारा इन आदर्शों की रक्षा ही नहीं करते थे उन्हें जन जन के हृदय में डाल उनका पोषण भी करते थे।

आज कुछ दिनों से बापू हिन्दू-मुसलिम प्रश्न पर कुछ विशेष सोचने लगे थे जरूर पर उनकी नजरों के सामने और भी प्रश्न थे और आवश्यकता पड़ने पर वे कभी चूकते न थे। वास्तव में उनका हृदय-मुकुर इतना विशाल और निर्मल था कि विश्व के सूक्ष्म प्रश्न भी उस में प्रतिविम्बित हुए बिना रह नहीं सकते थे किंतु हाय! आज वह मुकुर नहीं जिसमें सभी अपना दर्शन कर सकें। सभी अपना वास्तविक रूप देख सकें और प्रयास कर सकें विकृतता हटाने का।

हाय! उस कल्पतरु पर जिसके नीचे श्रान्त क्लान्त और पथ भ्रान्त आश्रय लेते थे। जिसकी सुखद शीतल छाया में सभी भौतिक ताप को दूर करने का प्रयास करते थे किसने वज्रपात किया!

आशा है सुनूंगा उस अमर गान को पंछियों के कलरव में नदियों के गुन गुन में और मेरे पथ पर रहेगी, वह अमर ज्योति अरुणा की अरुणिम आभा में क्रांतिकारणी ऊषा की स्वर्ण रश्मि में।

आज मानवता ही निपूती हो गई। भारत का सौभाग्य सिन्दूर लुट गया। रो मानवते! बहा दो अपने नयन नीर से घृणा को, ईर्षा को, द्वेष को, मन की मलिनता को। मानव की पशुता को आज सुला दो साकार शांत वृत के मजार पर। अपने प्रेम कण का जला दो स्नेह दीप। आशीष मिलेगा तुम्हें। मजार बोलेगा 'मानवता अमर हो।'

और हरिजन! तुम्हारा तो स्वर्वस्व लुट गया? तुम रोओ! खूब रोओ! रो रोकर अपनी परवशता मिटा दो। तुम रोते हो अपने भाग्य पर और आज विश्व रोता है इस दुस्सह संताप पर और हवा में गूंजती है—

अब निर्बल के अपने बल है
या उनके बल राम!

बापू और मजदूर वर्ग

माननीय श्री जगजीवन राम

आज न केवल भारत प्रत्युत् समस्त संसार शोक और दुख के पारावार में डूबा हुआ है। गांधीजी के निधन पर सर्वत्र शोक और दुख की जो स्वाभाविक लहर दौड़ गई, वैसी इतिहास अथवा मनुष्य के जीवन में पहले कभी नहीं देखी गई। कारण स्पष्ट है। गांधीजी ने जीवन भर सत्य और अहिंसा, प्रेम और सहिष्णुता, एकता और भ्रातृत्व और सद्‌भावना के जिन सार्वभौम सिद्धान्तों का प्रचार किया, उनसे मानव का अन्तःस्तल प्रभावित हो उठा। हिंसा और फूट के कटु वातावरण में गांधीजी के ये शाश्वत सिद्धान्त मानव समाज को सान्त्वना देते थे। महात्मा गांधी मुख्यतः एक आध्यात्मिक शक्ति थे और जहां आत्मा का साम्राज्य हो, वहाँ जाति और देश के बन्धन नहीं ठहर सकते। घृणा, विद्वेष, और अविश्वास से छिन्न-भिन्न संसार में महात्मा गांधी के सिद्धान्त मानो नैतिक अधःपतन और मानवता की अधोगति के विरुद्ध विद्रोह थे। उनके जीवन की सर्वाधिक उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण बात यह थी कि उनके कथन और आचरण में कोई भेद न था। वे जो कुछ कहते थे—वही करते थे। जो कुछ वे स्वयं नहीं करते थे, उसकी आशा वे दूसरों से कभी नहीं करते थे। गांधीजी सदैव गीता द्वारा प्रतिपादित स्थितप्रज्ञ के आदर्श पर चले। गीता के श्लोक उनकी दैनिक प्रार्थना का एक मुख्य अंग रहे। उनके सामने जीवन का प्रत्येक कार्य यज्ञ था। उन्होंने जो कुछ भी किया त्याग और उत्सर्ग की भावना से प्रेरित होकर ही किया। उन्होंने फल की कभी कामना नहीं की। जीवन और कर्त्तव्य के सम्बन्ध में उनकी विचारधारा एक कर्मयोगी की विचारधारा थी। उनके अनुसार कर्मयोगी मानव की समस्त महत्ता और श्रेष्ठता का प्रतीक है, जिसके द्वारा ईश्वर अपनी इच्छा पूर्ण करता है। गांधीजी में हिन्दू धर्म और निर्मल हिन्दू संस्कृति की सर्वश्रेष्ठ विशेषताएँ विद्यमान थीं। उनमें प्राचीन तथा अर्वाचीन का उल्लेखनीय संश्लेषण पाया जाता था।

गांधीजी का एक सर्वप्रिय भजन "काको नाम पतित पावन जग केहि अति दीन पियारे" था। ये सब भगवान के गुण हैं, किन्तु ये ही स्वयं महात्माजी में उल्लेखनीय रूप में पाये जाते थे।

भारत की पसीना बहाने वाली मूक जनता चाहे वह खेतों में काम करती हो अथवा कारखानों में, अथवा यों कहिए कि भारत का दरिद्रनारायण आधुनिक भारत के निर्माता और भारतीय राष्ट्र के पिता महात्मा गांधीजी के सब से निकट और प्रिय था। गांधीजी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने अत्याचार, शोषण और वर्गजन्य उच्चता की भावना के प्रति विद्रोह किया और उन्होंने देश की दरिद्र और उत्पीड़ित जनता को आशा की ज्योति दिखा कर प्रकाशमान किया। जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्होंने भारत की जनता को वह प्रतिष्ठा और मर्यादा दिलाने की चेष्टा की, जिनकी वह अधिकारी है, किन्तु जिनसे उसे वंचित रखा गया है।

अस्पृश्यता निवारण के प्रश्न पर गांधीजी के विचारों की दृढ़ता सामाजिक-क्रान्ति के क्षेत्र में एक बड़ा भारी पग था, क्योंकि केवल वही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिनमें यह सूझ-बूझ थी और जो इस बात की घोषणा साहसपूर्वक कर सकते थे कि अस्पृश्यता के रहते हुए हिन्दू समाज की प्रगति स्वाधीनता के लक्ष्य तक असम्भव है। किन्तु उनकी सहानुभूति केवल मौखिक न थी, बल्कि वे अस्पृश्यता के गढ़ को ध्वस्त करने के लिए ठोस कार्य करने को कटिबद्ध थे। उन्होंने हरिजनों के प्रश्न को अपना ही प्रश्न बनाया और कांग्रेस को उसे अपने कार्यक्रम के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया। उनके जीवन का उद्देश्य हिन्दू धर्म से इस बुराई को निकाल बाहर करने और उसके इस कलंक को धोने का था। यद्यपि अस्पृश्यता का भूत अभी तक हमारे देश में विद्यमान है, क्योंकि सामाजिक दुर्भावनाएं और कट्टरता बहुत दिनों में दूर होती हैं, फिर भी महात्मा जी ने इस बुराई के विरुद्ध जिन शक्तियों को जन्म दिया, वे अभी तक काम कर रही हैं और यह अत्युक्ति की आशंका के बिना ही कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता के दुर्ग पर विजय प्राप्त हो गई है और उसकी नींव हिल गई है। अभी एक और झटके तथा आयोजित प्रयत्न की आवश्यकता है जिसके परिणाम स्वरूप उसका भवन धराशायी होकर छिन्न-भिन्न हो जायगा।

धार्मिक सहिष्णुता और सद्भावना के उस आदर्शों का जितना सुन्दर सम्मिश्रण हमें गांधी के जीवन में मिलता है उतना और कहीं नहीं। आम लोगों के विरोध और प्रार्थना सभाओं में प्रतिक्रियावादियों तथा कट्टरपंथियों की तनिक भी परवाह न करते हुये गांधीजी ने सार्वभौम धर्म की शिक्षा दी और यह बताया कि सभी धर्म समान हैं और उनमें अच्छाइयां हैं। गांधीजी में ही यह साहस और शक्ति थी कि वे हिन्दुओं की भरी सभाओं में भी "ईश्वर अल्लाह तेरा नाम" सरीखा भजन गा सकते थे और कुरान की आयतें तथा बाइबिल पढ़ सकते थे। उनके जीवन की सहसा श्रेष्ठता और उत्कृष्टता का यही रहस्य था। संसार के इतिहास में सहिष्णुता और धार्मिक उदारता का इससे उज्ज्वल उदाहरण आपको कहीं मिलेगा।

गांधीजी ने श्रमिक वर्ग के उद्धार के लिए जो बहुमूल्य कार्य किया, वह उनकी अन्य चमत्कार पूर्ण सफलताओं की तुलना में कम महत्वपूर्ण नहीं था। पहले पहल दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह आन्दोलन के दिनों में उन्होंने मजदूर वर्ग के कल्याण सम्बन्धी कार्यों में अपना सहयोग प्रदान किया। यह आन्दोलन मुख्यतः उस देश में जाकर बसने वाले भारतीय मजदूरों के मौलिक अधिकारों की स्वीकृति के उद्देश्य से ही था। मजदूर वर्ग उनका विशेष रूप से आभारी है। देश के मजदूर आन्दोलन के निर्माण में यद्यपि उनका काफी हाथ रहा है, फिर भी मजदूरों के लिए उनकी अप्रत्यक्ष सेवाओं का महत्व कहीं अधिक व्यापक है। गांधीजी ने मजदूरों और मालिकों के औद्योगिक सम्पर्क की एक नई प्रणाली को जन्म दिया। अहमदाबाद की कपड़े की मिलों में काम करने वाले मजदूरों के ऐतिहासिक-आन्दोलन को गांधीजी से जो प्रेरणा मिली उसमें वे भारतीय मजदूरों के मान्य नेता बन गये। इस ऐतिहासिक आन्दोलन के अवसर पर गांधीजी ने सर्वप्रथम उपवास किया, जिसका उद्देश्य मालिकों को यह समझाना था कि औद्योगिक झगड़ों के निबटाने का और उपयोगी उपाय पंचायती निर्णय है। और हम देखते हैं कि अहमदाबाद के मिल मालिक और मजदूर आज तक इसी परम्परा और तरीके पर दृढ़ता से अमल कर रहे हैं। उनका मद्य-निषेध आन्दोलन वास्तव में श्रमिक वर्ग की भलाई के लिए ही था। मजदूरों के लिए उनकी यह एक महानतम सेवा थी।

यह हमारे लिए सदैव लज्जा की बात रहेगी कि उनकी हत्या एक भारतीय और विशेषकर एक ब्राह्मण द्वारा हुई। परन्तु जिस प्रकार आत्मा अजर और अमर है उसी प्रकार अवतारों के उपदेश और शिक्षाएं भी अमर हैं। यद्यपि आज गांधी जी का भौतिक शरीर हमारे मध्य नहीं है, फिर भी उन्होंने हमें जो प्रकाश दिखाया है; उससे हमारा पथ सदैव प्रकाशमान होता रहेगा। और ठीक मार्ग पर चलने के लिए हमें प्रेरणा मिलती रहेगी। जब कोई राष्ट्र अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ता है तो उसके जीवन में निराशा के कुछ क्षण भी अवश्य आते हैं जब कि उसका पथ अन्धकार से आच्छादित हो जाता है। ऐसे सभी अवसरों पर उसे निश्चित रूप से उस दैवी शक्ति से प्रेरणा मिलती है और वह उसी के सहारे अपने पथ पर बढ़ा चला जाता है। मेरी उस दयानिधान ईश्वर से यही एक मात्र हार्दिक कामना है कि वह हमें उस युग-पुरुष का योग्य अनुयायी बनने में सहायक हो जिसने मानवता के लिए अपना बलिदान दिया और जिसने हमारे सम्मुख त्याग, सेवा और सहिष्णुता का उच्चतम आदर्श उपस्थित किया।

बापू और लोकतन्त्रवाद

प्रोफेसर अब्दुल मजीद खां

सच्चा लोकतन्त्रवादी वह है जो दो सिद्धान्तों में विश्वास रखता हो—पहिला यह कि सृष्टि की रचना ईश्वर द्वारा हुई है और वही उसके भाग्य का निर्माता है ; दूसरा यह कि मनुष्य का व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन शान्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से संगठित किया गया है। गांधीवाद इन्हीं दो महास्तम्भों के सहारे खड़ा हुआ है। महात्मा गांधी मानव समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए, एक ऐसी कार्य-प्रद्धति का निर्माण करना चाहते थे जिससे सबका जीवन स्वतन्त्र तथा उन्नतिशील हो। उनका कहना है कि रामराज्य मनुष्य के लिये है। इसका उल्टा कहना असत्य होगा। उनके अनुसार अत्याचार तथा अनाचार के स्थान पर अनुरोध तथा शिष्टाचार का आभास होना चाहिए। गांधीवाद की विशेष सुन्दरता तो यह है कि गांधी जी के लोकतन्त्र सिद्धान्तों के अनुसार सरकार का शान्तिमय उपाय से परिवर्तन होजाना प्रायः अस्वाभाविक है!

गांधी जी सदा जातिभेद के विरुद्ध युद्ध करते रहे हैं और प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर का अंग मानते थे। जब-जब उन्होंने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध भारतवासियों के स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व किया तब-तब इस बात का विशेष ध्यान रखा कि कहीं जनता के मस्तिष्क में जाति तथा रंग-भेद का विष न घुस जाये। गांधी जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अर्पित कर दिया। वह शान्ति की अलौकिक प्रतिमा के गुण गाते थे और सदा अहिंसा के नैसर्गिक प्रकाश पर दृष्टिपात करते रहते थे। अर्थात प्रेम, दया तथा सहनशीलता के पाठ पढ़ाया करते थे।

लोकतन्त्रवाद के लिए चार बातें अनिवार्य मानी जाती हैं—(१) बहुमत राज्य ; (२) अल्पसंख्यकों का बहुसंख्यकों पर विश्वास ; (३) राजनीतिक दलों की उपस्थिति के बीच संकुचित साम्प्रदायिकता का भेद न होकर मूल सिद्धान्तों का भेद भाव हो ; (४) एक प्रगतिशील जनमत जिसका सम्बन्ध एकही दल से स्थायी रूप से न होकर किसी भी दल के अनुचित कार्य तथा विचारों व सिद्धान्तों पर टीका टिप्पणी और यदि आवश्यक हो तो उनका घोर विरोध भी कर सकने की शक्ति से ओत-प्रोत हो जिससे कि राज्य का कार्यक्रम उचित रूप से चलता रहे। प्रगतिशील जनमत से आशय है वे मताधिकारी जो वोट देते हैं और जिनमें राजनैतिक जागृति पाई जाती है। मध्यवर्ती यूरोप के तथा अन्य पिछड़े हुए कुछ देशों में लोकतांत्रिक संस्थाएं इसी कारण न पनप सकीं कि वहां की जनता अज्ञानावस्था में थी। इसी कारण गांधी जी सदा से इस पर ज़ोर देते रहे कि लोक-सत्तात्मक रथ का एक पहिया जागृति है और दूसरा शिक्षा। देश में बालिग मताधिकार का प्रचार हो, नागरिक शिक्षित और इस योग्य हों कि प्रतिद्वन्दी दलों के विज्ञापनों को सरलता पूर्वक अध्ययन करके अपना स्वतन्त्र मत देश तथा विश्वव्यापी बड़े-बड़े मसलों पर रख सकें। गांधी जी ने स्वयं एक स्थान पर लिखा है ; "लोकतन्त्रवाद यदि हिंसा के आधार पर खड़ा किया गया तो कभी भी निर्धन तथा निर्बल की रक्षा नहीं कर सकेगा। मेरा मत है कि लोकतन्त्रवाद का अभिप्राय यह है कि निर्बल नागरिकों को वही अधिकार एवं अवसर प्राप्त हों जो शक्तिशाली को प्राप्त हैं। संसार का कोई भी देश आज निर्बलों की रक्षा नहीं करता और इन्हीं लोकतंत्रवादी देशों को सुरक्षित रखने के लिए युद्ध छेड़े जाते हैं। क्या कारण है युद्ध होने का? क्या इनका आशय लूट के माल में हिस्सा बांटना नहीं है! भारतवर्ष एक ऐसे लोकतन्त्रवादी विचारों को जन्म दे रहा है जिसमें हिंसा को कोई भी स्थान प्राप्त नहीं। हमारा शस्त्र सत्याग्रह है।"

गांधी जी का विश्वास था कि सच्चा लोकराज्य नागरिकों की भावना तथा उनकी अभिलाषाओं के अनुकूल ही होता है। उनका अनुभव रहा है कि संसार के अनेक वर्तमान देशों में प्रचलित लोकतन्त्र पद्धति में कुछ गम्भीर त्रुटियाँ पाई जाती हैं जिनको मिटा देना एक सच्चे लोकतन्त्रवादी का धर्म है। यदि संसार लोकतन्त्रवादी व्यवस्था का लाभ पूर्ण रूप से उठाना चाहता है तो उसमें परिवर्तन लाना ही होगा। उदाहरणतः सामाजिक न्याय का विकास होना सर्वथा असम्भव-सा जान पड़ता है जब तक कि चार निम्नलिखित लोकराज्य के दोष दूर न कर दिये जाते; पहिला यह कि धन के वितरण में असमानता पाई जाती है, वह ख़त्म हो जानी चाहिए, दूसरा यह कि मुट्ठी भर पूंजीपतियों के हाथ में

प्रजा की शक्ति का विकास कदापि न होना चाहिए; बेरोजगारी का चिन्ह भी न रहना चाहिए; और अन्तिम आवश्यक बात यह है कि सच्चे लोक-राज्य में गंदे तथा तंग के बजाय बड़े और सुन्दर रहने के मकान दिखाई दें। यह सब उसी समय सम्भव हो सकता है जब कि लोकतन्त्र वादी अपने स्थान पर सतर्कता से काम करते रहें। इनमें कुछ ऐसे भी हैं जो दूरदर्शिता से वंचित हैं विशेष कर जब कि वे अपने उपनिवेशों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हैं या उनके सम्बन्ध में निर्णय करते हैं। उपनिवेशों के साथ आज जो व्योहार होरहा है वह तनिक भी सन्तोषजनक नहीं। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसे लोकतन्त्रवादियों का कर्तव्य है कि वे शीघ्र ही अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करें। तथा इन पिछड़े हुए उपनिवेशों के साथ अपने व्यवहार के ऊंचे आदर्शों को कार्यान्वित करें। युद्ध के पश्चात् पुनर्निर्माण के लिए सामाजिक व्यवस्था में बड़े-बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जाना अनिवार्य है तथा 'जीवन वेतन' प्रत्येक स्त्री-पुरुष को बिना किसी अड़चन के प्राप्त होना। घर का किराया, मोटर का व्यय तथा सफर खर्च को छोड़ कर भारतवर्ष में किसी भी व्यक्ति का वेतन चाहे वह कितना ही बड़ा पदाधिकारी क्यों न हो पन्द्रह सौ रुपया से अधिक किसी भी दशा में नहीं होना चाहिए। इसके अतिरिक्त मृत्यु-कर का भी लगा दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है।

संक्षेपतः गांधी जी हर प्रकार के साम्राज्यवाद तथा फ़ासिज़्म की घोर निन्दा एवं विरोध करते थे। उनकी इच्छा थी प्रत्येक नागरिक का उसके देश की शासन-पद्धति में हाथ हो। उनकी अभिलाषा थी कि शासन में एक सरकार से दूसरी सरकार का परिवर्तन होने के लिए शांतिमय उपायों का प्रयोग हो। वह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सर्वश्रेष्ठ प्रचारक थे तथा न्याय के आधार पर स्थापित की हुई शांति के प्रधान पोषक थे। और वह उस दिवस के आगमन की शुभकामना रखते थे जबकि मानव-समाज हिंसा के सिद्धान्त को तिलांजलि देकर मनुष्यता के औचित्य को चरितार्थ करेगा। उन्होंने ऊंचे कंठ से घोषित कर दिया है कि धरातल पर केवल एक ही परिवार है जिसके प्रत्येक सदस्य के मध्य बिना किसी जात-पाँत, रंग व मतभेद के पारस्परिक प्रेम, श्रद्धा, विश्वास तथा सहनशीलता का निवास होना चाहिए और उनके हृदय में न्याय कूट-कूट कर भरा हो जिसमें करुणा का विशेष स्थान हो।

गांधी जी वर्तमान युग में मानव समाज के सबसे महान कल्याणकारी थे। उनके निधन से आज संसार निर्धन होगया है।

बापू की विरासत

आचार्य विनोबा भावे

परमात्मा की असीम कृपा है कि उसने इस दुनिया पर हमेशा सत्पुरुषों की मालिका भेजी है। एक के पीछे एक आते जाते हैं। और जो आता है वह पहले आये हुये को पीछे छोड़कर आगे बढ़ता है। ऐसा ही महा-पुरुष आया और गया। और हम लोगों को वारिस बना गया। पिता की स्टेट के वारिस तो उसके लड़के बिना किसी तरह का प्रयत्न किये, केवल जन्म पाने के हक से ही बन जाते हैं। लेकिन इसके सच्चे वारिस साबित होने के लिए हमें महान् प्रयत्न करना होगा। सब सन्तों ने हमें तीन शिक्षाएं दी हैं। एक तो सिखाया अपने पड़ोसियों पर प्रेम करो। दूसरा सिखाया जो अपने को तुम्हारे दुश्मन कहते हों उनसे प्रेम करो। इन तीनों के लिये जरूरी वस्तु है कि हम आत्मा से प्रेम करना सीखें। और जो भी हमें मिलने आता है, दर्शन देता है, वह परमात्मा स्वरूप है, ऐसी भावना व्यवहार में निरंतर रखें। इस आखिरी वस्तु के सिवा सन्तों के तीनों आदेशों का पालन ठीक से नहीं हो सकेगा। दोष मनुष्य मात्र में होते हैं। गुण भी होते हैं। और अवगुण भी होते हैं। अगर गुण दोषों को देखा करेंगे तो सर्वत्र परमात्मा के दर्शन नहीं हो सकेंगे। जो हम इस भूमि में शरीर से रहने के अधिकारी बने हैं वे समझें कि हमारे इर्द गिर्द रहने वाले, और हम भी, परमात्मा के अंश हैं। यही भावना हमें दृढ़ करना चाहिये। इस एक मात्र आधार से बाकी के सारे आदेश सहज ही सिद्ध होंगे। हमारे यहां अनेक संस्थाएँ हैं। उनमें अनेक तरह के मतभेद भी हुआ करते थे, उनको मिटाने वाला, निश्चित निर्णय देनेवाला एक था। वह तो गया। अब कौन है? हमको अनुभूति आनी चाहिये कि वह गया जो सीमित शक्ति का था। अब वह है जिसमें अनन्त शक्ति है। और उसमे हमारा सीधा सम्बन्ध है। जो भी मिले वह भगवान है, ऐसा समझेंगे तो मतभेद और झगड़े का सवाल ही नहीं रहेगा, राग द्वेष दूर हो जायगे।

जिस क्षण चित्त में विकार आया वही क्षण व्यर्थ गया। और जिस क्षण चित्त में विकार नहीं है, वही सार्थक है। कार्य तो हमको बाहर से बहुत करने को है। क्योंकि शरीर इसीलिए है। शरीर का अस्तित्व ही उसकी निशानी है। इसलिये वह तो हम करते रहेंगे। लेकिन हमारा समय सार्थक गया है या नहीं इसकी कसौटी हम बाह्य कर्म से नहीं करेंगे, चित्त कितने क्षण निर्विकार रहा उस पर से करेंगे। सुबह से शाम तक जो किया उसकी डायरी लिखा करें यह बापूजी कहा करते थे। अगर हम ऐसी मानसिक डायरी रखें तो उसमें इसी वस्तु को नोट करलें कि दिन भर में भगवद् भावना कहाँ तक रही। ऐसा करते करते भगवान की कृपा से हमारी आँख में यह दृष्टि बैठ गयी तो हमारा बेड़ा पार है।

सेवा ग्राम आश्रम के लोग कहते हैं कि अब वे मुझ से काम लेना चाहेंगे। वह तो हो ही सकता है उसमें कोई कठिनता नहीं है। पर केवल एक दूसरे के सहारे से भी वैसा काम नहीं बनने वाला है, जैसा कि मेरे अभी बताये हुए विचार से बनेगा। अन्त में भगवान से प्रार्थना करता हूं कि इस भूमि पर बैठकर हम दृढ़ संकल्प करें कि जो भी स्त्री, पुरुष, बच्चा नज़र में आयेगा उसको हम भगवान स्वरूप ही देखेंगे।

यही योग्य अंजलि है

राजकुमारी अमृत कुँवर

बापू, मैं तो आपके जूतों को छूने लायक भी नहीं हूँ; आपकी इस बड़ी से बड़ी विजय के समय मैं आपके चरणों में क्या अंजलि अर्पण कर सकती हूँ!

आपके लिये उस पार का परदा खुल गया है। आप हमेशा यही कहा करते थे कि मृत्यु तो मित्र है, और हमें उससे न डरने की सीख दिया करते थे। हमें, आपके नादान बच्चों को, आपने बहुत सी बातें सिखाईं। आपके पहले के सन्त जिस सँकरे और टेढ़े मार्ग पर चले हैं, उसी पर खुद चलकर आपने हमें जीवन का मार्ग बताया है। आपने हमें दिखाया कि वैर और दुश्मनी के सामने कैसे प्रेम किया जाता है। हमें आपने यह सिखाया कि सत्य भगवान है। आपने अपने आचरण से हमें यह दिखाया कि उसकी सेवा में ही पूर्ण स्वतंत्रता है।

जब आप हमारे बीच थे तब आपके साथ जीवन की लड़ाई में आगे बढ़ना कितना आसान काम था! आपकी श्रद्धा, आपका प्यार, आपकी हिम्मत और आपकी ताकत हमें सहारा देती थी और हम अपनी जगह पर कायम रहते थे। हमने अपने सारे बोझ आप पर डाल दिये थे और आप उनको खुशी से उठाते थे। आपका हम पर अपार प्रेम था, इसलिये आपसे हमें अपार क्षमा मिलती थी।

ईश्वर की बुद्धि का पार नहीं। उसने अब आपको अपने पास बुला लिया है। हम तो कमजोर मानव हैं। इसलिये आपके चले जाने से हमें लगता है कि हम लाचार और अनाथ हो गये हैं। आपके बिना हमारा दिल तड़पता है, हमारी आँखों से आँसुओं की धार बहती रहती है, डर ने मन पर काबू जमा लिया है और हमारी श्रद्धा कमज़ोर हो गई है, क्योंकि आपने हमें ऐसे समय छोड़ा है, जब हमें आपकी सबसे ज्यादा जरूरत महसूस हो रही है। आपकी सबसे बड़ी विजय का समय हमारी सबसे बड़ी हार का समय है, क्योंकि हमारा ही एक भाई—आपका ही एक नादान बच्चा—सही रास्ते से हटा और उसने हमारी मातृभूमि को कलंक लगा दिया।

लेकिन कमजोरी और डर तो आपके शब्दकोश में कभी थे ही नहीं। आप उन्हें जानते ही नहीं थे। आप बुराई की ताकतों के खिलाफ लगातार लड़ने वाले योद्धा थे। बुराई की वे ताकतें आज सारे देश में आजादी से घूमती फिरती हैं; क्योंकि नफरत और हिंसा, पाप या बुराई की दो जुड़वाँ लड़कियाँ ही तो हैं। इनके साम्राज्य में हमें अपनी आत्मा के खो जाने का डर है। आपने जो सियासी आजादी हमें दिलाई, वह आपके सपनों के रामराज्य की पहली सीढ़ी ही थी।

इसलिये अपनी मानव कमजोरी के होते हुये और चारों तरफ शोक और दुःख का वातावरण फैला होने पर भी हमें सारा डर छोड़ देना चाहिये, और सत्य और अहिंसा के कभी न जीते जाने वाले हथियारों की मदद से अपनी लड़ाई को जारी रखना चाहिये। सिर्फ इसी तरह हम आपके बच्चे कहलाने लायक बन सकते हैं। आप चाहेंगे कि हम सिर्फ इसी तरह काम करें; इसी तरह हम आपके अटूट क्षमावाले प्यार की शक्ति में से सहारा पा सकेंगे।

भगवान करे महा शून्य में से हमें आपकी प्यारी वाणी का संगीत सुनने को मिले। आप जब हमारे बीच जिन्दा थे, तब आपके शब्द, आपके काम और आपके विचार हमें जिस तरह ताजा बनाने और प्रेरणा देते थे; उसी तरह अब उनकी मीठी याद हमें फुर्ती और प्रेरणा दे। आपका प्रेम हमेशा हम पर छाया रहे। आपकी दिव्य आत्मा का प्रकाश अभी भी हमें रास्ता दिखाये। न दिखते हुये भी आप सदा हमारे साथ रहें और टेढ़े रास्तों पर प्यार से हमारी रहनुमाई करते रहें। यही मेरी प्रार्थना है।

आपके जीवन-मार्ग में विश्वास रखने वाले हम लोगों को आपने जैसी सेवा की तालीम देने की कोशिश की, उसी सेवा की दीक्षा हम सब फिर से लें। सिर्फ वही अंजलि हम आपके चरणों में अर्पण करने की हिम्मत कर सकते हैं।

दोनों एक हो गये हैं

कुमारी मीराबहन

मेरे सिर्फ दो ही बेली थे—ईश्वर और बापू। और अब वे दोनों एक हो गये हैं।

जब मैंने बापू की मृत्यु की खबर सुनी, तो मेरे अन्तर की गहराई के आत्मा को बन्दी बनाने वाले दरवाजे खुले और बापू की आत्मा ने उसमें प्रवेश किया। उस पल से शाश्वतता की नई भावना मुझमें रहने लगी है।

यह सच है कि प्रिय बापू जीते-जागते रूप में हमारे बीच नहीं रहे, लेकिन उनकी पवित्र आत्मा तो आज हमारे ज्यादा नजदीक है। एक समय बापू ने मुझसे कहा था—"जब मेरा यह शरीर नहीं रहेगा, तब भी हम एक दूसरे से जुदा नहीं होंगे। तब मैं तुम्हारे ज्यादा नजदीक आ जाऊँगा। यह शरीर तो बाधा रूप है।" ये शब्द मैंने श्रद्धा से सुने थे। अब मैं अपने अनुभव से बापू के उन शब्दों का दिव्य सत्य जान पाई हूँ।

क्या बापू को आगे होनेवाली घटना का ज्ञान था? मेरे दिल्ली से हृषीकेश जाने से पहले, दिसम्बर महीने की एक शाम को बापू से मैंने कहा था—"बापू, जब मार्च में गोशाला तैयार हो जायगी और सारा काम व्यवस्थित हो जायगा, तब क्या आप गोशाला का उद्घाटन करने और हिन्दुस्तान की गरीब दुःखी गाय को आशीर्वाद देने का समय निकाल सकेंगे?" बापू ने जवाब दिया—"मेरे आने का खयाल मत रखो।"—और फिर मानो अपने आपसे कुछ कह रहे हों, इस तरह उन्होंने आगे कहा—"मुर्दे से किसी तरह की मदद की आशा रखने से क्या फायदा होगा?" ये शब्द इतने भयानक थे कि मैंने किसी के सामने उन्हें नहीं दोहराया, और ईश्वर की प्रार्थना के साथ उन्हें अपने दिल में रख लिया। उपवास आया और चला गया, और मुझे आशा हो गई कि बापू के उन शब्दों का मतलब उपवास के साथ खतम हो गया। लेकिन वे शब्द तो भविष्य-वाणी की तरह थे, और वह भविष्य वाणी पूरी हुई।

उस विधिनिर्मित शाम को जब मैं ध्यान में अचल बनकर बैठी थी, मैंने सारी दुनिया में से गुजरनेवाली सन्ताप की कँपकँपी का अनुभव किया। मनुष्य-जाति की मुक्ति के लिये एक बार फिर अवतार का खून बहा, और धरती इस भयानक पाप के डर और बोझ से कराह उठी।

वह पाप एक आदमी का नहीं है। वह युग युग में सारी दुनिया को ढंक लेने वाला पाप है। उसे एकमात्र ईश्वर के भक्तों का बलिदान ही रोक सकता है।

अब बापू हमारे लिये जो काम छोड़ गये हैं, उसे पूरा करने में हमें जमीन-आसमान एक कर देने चाहिये। बापू हम सब के लिये—हर मर्द, औरत और बच्चे के लिये—जिये और मरे। वे लगातार काम करते जिये और इसलिये शहीद की मौत मरे कि हम नफरत, लालच, हिंसा और झूठ के बुरे रास्ते से पीछे लौटें।

अगर हमें अपने पापों का प्रायश्चित करना है और बापू के पवित्र मकसद को आगे बढ़ाने में हिस्सा लेना है, तो हर तरह की साम्प्रदायिकता और दूसरी बहुत सी बातें खतमहोनी चाहियें। काला बाजार, रिश्वतखोरी, तरफदारी, आपसी जलन और ऐसी तरह हिंसा और असत्य के दूसरे काले रूप जड़मूल से मिट जाने चाहियें। इन सब के साथ हमें मजबूती से और बिना हिचकिचाहट के काम लेना होगा। बापू प्रेम और दया के सागर थे, लेकिन बुराई के खिलाफ लड़ने में वे बड़े कठोर थे।

बापू ने भीतरी बुराई पर विजय पाली थी, इसलिये बाहर की बुराई के सामने वे लड़ सके थे। भगवान हमें इस तरह पवित्र बनावे कि हम अपने सामने पड़े हुये बड़े भारी काम के लायक बन सकें।

अणु-शक्ति एवं आत्म-शक्ति

श्री जोगेन्द्र नाथ साहनी

बीसवीं शताब्दी की अणु शक्ति और आत्मशक्ति— ये दो सबसे महान खोज हैं जिन्होंने राष्ट्रों के उत्थान-पतन में महत्व का योग दिया है। संहार करने तथा व्यापक अन्त के फैलाने की अणु शक्ति में कितनी ताकत है इसका पर्याप्त अनुमान हिरोशिमा और नागासाकी की दुर्दशा से किया जा सकता है। किन्तु संसार को आत्म शक्ति के अपरिमित पराक्रम का परिचय मिलना अभी बाकी है।

अणु शक्ति के विपरीत, आत्म शक्ति संहारक नहीं अपितु रचनात्मक है। आत्म-बल ने किसी भयङ्कर आतंक से नहीं किन्तु अडिग आध्यात्म वृत्ति से लोगों के मस्तिष्क पर अपना प्रभुत्व जमा लिया है। इसकी असीम शक्ति जबरदस्ती जोर जुल्म में नहीं किन्तु, परिवर्तन में है। पिछले महायुद्ध की समाप्ति तक संसार केवल चार अणु बम बना सका था। अणु रहस्य को जानने वाले कुछ देशों में शायद अब यह संख्या कुछ सैकड़ों तक पहुँची हो। आत्मशक्ति बनाने का रसायन जरा टेढ़ा है। यही कारण है कि आधुनिक संसार ने अभी तक केवल एक ही आत्मिक बम की रचना की, वह रचना थी—महात्मा गांधी।

एक रंगविहीन, सुगन्धित, जलन करनेवाला तरल पदार्थ होता है जो काष्ठ तथा वनस्पति के मत सा सर्व साधारण के मूत्र तथा रक्त में सूक्ष्म मात्रा में विद्यमान रहता है। यदि मूत्र में इसकी मात्रा बढ़ी हुई हो तो प्रमेह के लक्षण समझने चाहियें और समझना चाहिए कि रोगी की मृत्यु निकट है।

कुछ वर्ष पहले स्व० डा० अंसारी ने अपना एक अनुभव मुझे बताते हुए कहा था कि वह अनुभव केवल चिकित्सा शास्त्र में ही नहीं, अपितु भौतिक शास्त्र में भी अपने ढङ्ग का निराला था। सन् १९२४ में जब महात्मा गांधी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए अपना २१ दिवस का ऐतिहासिक उपवास किया था तब डा. अंसारी तथा उनके साथी महात्मा जी की शुश्रूषा में थे। महात्मा जी ने आश्वासन दिया था कि यदि किसी समय डा. अंसारी या उनके चिकित्सक साथियों को मालूम हो कि घातक लक्षण बढ़ रहे हैं, तो वे उसी समय अपना उपवास छोड़ देंगे। १५ वें दिन डा. अंसारी के कथनानुसार महात्मा जी के मूत्र में उपरोक्त पदार्थ असाधारण मात्रा में बढ़ा हुआ दिखाई दिया, अतः उनका यह दुःखद कर्तव्य हो गया कि वे महात्मा जी को उपवास चालू रखने से सचेत कर दें। सभी चिकित्सा-शास्त्री इस बात से सहमत थे कि यदि महात्मा जी ग्ल्यूकोज अधिक परिणाम में नहीं लेते तो उनके प्राण खतरे से खाली नहीं हैं।

किसी प्रकार का हठ न करते हुए, महात्मा जी ने अपने चिकित्सक से दो दिनों का और अवसर माँगा और वचन दिया कि यदि दो दिन बाद घातक लक्षण बढ़ जायेंगे या उसी अवस्था में रहेंगे तो वे उपवास अवश्य छोड़ देंगे। इन अड़तालिस घण्टों में महात्मा जी से बहस करने वालों ने देखा कि महात्मा गांधी उनके भव्य संकल्प में विघ्न डालने वाले इन लक्षणों के निवारण के लिए सतत आध्यात्मिक संघर्ष कर रहे थे। चिकित्सकों ने १७ वें दिन आश्चर्य के साथ देखा कि मूत्र करीब करीब साधारण प्रकार का हो गया है और उपरोक्त तरल पदार्थ पूर्णतया लुप्त हो गया है। डा. अंसारी ने मुझे बताया कि चिकित्सा-शास्त्र में उपयुक्त औषधि देने के अतिरिक्त कोई ऐसा प्रकार नहीं है कि जिससे रोगी के ये लक्षण दूर किये जा सकें। इस चमत्कार का उससे कम चिकित्सा-शास्त्र के पास तो कोई जवाब नहीं था।

यह चमत्कार इससे भी अधिक अगम्य और महान रूप में उस समय दिखाई दिया जब गांधी जी ने आगा खां महल में उपवास किया था। उस समय उनकी हालत अशक्त और नाज़ुक थी। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने मुझे बताया कि १८ वें दिन वह तरल-पदार्थ असाधारण रूप में बढ़ा हुआ था जिसके फल स्वरूप २१ दिन के उपवास से उनके बचने की आशा बहुत कम थी। लार्ड लिनलिथगो अपने निश्चय पर अडिग थे। महात्मा जी के निकट के साथी श्री महादेव भाई देसाई की भी आगा खां महल में मृत्यु हो चुकी थी। महात्मा जी की पत्नी कस्तूरबा का भी रोग से लड़ते लड़ते स्वर्गवास हो गया था। यद्यपि सारा संसार महात्मा जी को मुक्त करने की माँग कर रहा था तथापि लिनलिथगो टस से मस न हुए। कुछ नीच लोग अधीरता से महात्मा जी की मृत्यु की खबर सुनने के लिये आतुर हो रहे थे,

जिससे व उस खबर का शराब की बोतलें चढ़ाकर स्वागत करें।

बम्बई प्रान्त की मेडीकल-सरवीसेज का डायरेक्टर, जो कि एक यूरोपियन मेजर-जनरल था, ही केवल महात्मा जी की चिकित्सा के लिये रखा गया था। १८ वें दिन जब हालत अधिक खराब हो रही थी तब उसने दिल्ली में सूचना भेज दी। उसके कथनानुसार यदि महात्मा गांधी अधिक परिणाम में ग्ल्यूकोज किसी न किसी रूप में नहीं लेते तो २४ घण्टों में उनकी मृत्यु निश्चित थी। वायसराय शायद महात्मा जी को मरा हुआ देखने को लालायित थे और उन्होंने उस गम्भीर हालत में भी महात्मा जी को छोड़ने की अनुमति नहीं दी। इतना ही नहीं, उन्होंने कार्यकारिणी की एक बैठक बुलाकर केवल महात्मा जी की दाह-क्रिया के लिये ही नहीं, अपितु देश में शांति और व्यवस्था कायम रखने की भी एक योजना बना ली। दिल्ली स्थित विदेशी सम्वाददाताओं को भी गुप्त सूचना दे दी गई थी कि वे इस दुःखद घटना के अवसर पर पूना में उपस्थित रहें।

१८ वें दिन, उस अंग्रेज डाक्टर ने मानव-सुलभ दयालुता के कारण महात्मा जी से बारम्बार प्रार्थना की कि वे अधिक परिमाण में ग्ल्यूकोज अथवा ग्लूकोज का कोई इनजेक्शन लेने को राजी हो जायं। किन्तु महात्मा जी पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। अन्ततः जैसे जैसे विपत्ति निकट आ रही थी और महात्मा जी घड़ियाँ गिन रहे थे, डाक्टर ने श्रीमती नायडू के पास आकर कहा कि चूंकि रोगी बेसुध अवस्था में है, इसलिये डाक्टर और मनुष्य के नाते उसका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह इन्जेक्शन दे और इस अमूल्य जीवन को बचाये। इतना कह कर इजेक्शन की पूरी सामग्री के साथ डाक्टर गाँधी जी के सोने के कमरे में गया। उसके आश्चर्य का पारावार न रहा जब महात्मा जी ने मुस्करा कर कहा कि वे बेसुध नहीं हैं, किन्तु पूर्ण जागृत हैं और डाक्टर के इरादे का भी उन्हें पूरा पता है। डाक्टर ने कहा कि महात्मा जी उसके हाथ में रोगी की तरह हैं। मानवता का तकाजा है कि चिकित्सक होने के नाते वह उनकी जिन्दगी बचाये। उसने महात्मा जी से प्रार्थना की कि वे उसे अपने कर्तव्य का पालन करने से न रोकें।

महात्मा जी ने धीमे स्वर में कहा "इंजेक्शन के द्वारा तुम मुझे बचाना चाहते हो किन्तु ऐसा कैसे हो सकता है? यदि मैं इस इंजेक्शन के कारण जीवित रहूँ तो यह मेरी आध्यात्मिक मृत्यु होगी, तुम मरे हुए को जीवित नहीं कर सकते। यदि मैं मर भी जाऊं फिर भी आध्यात्मिक रूप में सदा जीवित ही रहूंगा।" जब डाक्टर कमरे से बाहर आया, तो उसकी आंखों में आंसू थे। श्रीमती नायडू के शब्द में उसने 'ईश्वर की वाणी' सुनी थी।

इसके पश्चात् ही शीघ्र चमत्कार ने अपना काम प्रारंभ कर दिया। यद्यपि महात्मा जी क्षीणकाय और उदासीन थे, फिर भी उनके अन्तस्तल में भीषण युद्ध हो रहा था। उनकी हालत धीरे धीरे सुधर रही थी। वे तरल-पदार्थ धीरे धीरे कम होने लगे और सूर्योदय होने तक उनकी हालत खतरे से परे हो चुकी थी। अमरीकन सम्वाददाता जो कि आगा खां महल में छिपे बैठे थे और इस शताब्दी के सर्वोत्तम पुरुष की मृत्यु का समाचार अन्य लोगों से पहले देने की आशा में बैठे हुए थे, आश्चर्य में डूब गये जब डाक्टर ने आकर यह बताया कि एक चमत्कार होने के कारण रोगी उपवास के कारण उत्पन्न होने वाले मृत्यु के खतरे से दूर हो गया है।

इन दोनों चमत्कारों का उल्लेख करके यह बताया गया कि आत्म-बल में कितनी शक्ति है। दिल्ली में पिछले सप्ताह, यह चमत्कार फिर दिखाई दिया और जो व्यक्ति आत्म बल और पशु बल के भीषण युद्ध के साक्षी रह चुके हैं, वे ही बता सकते हैं कि अणु-शक्ति से आत्म-शक्ति कितनी बढ़ी चढ़ी है। इस बार चौथे ही दिन तरल-पदार्थों का बढ़ना प्रारम्भ हो गया। दिल्ली तथा अन्य प्रान्तों में मुसलमानों के प्रति घृणा का भाव गहरा हो नहीं, किन्तु व्यापक भी हो गया था। लाखों व्यक्तियों के घर-बार लूटकर उन्हें जबर्दस्ती घर से निकाल दिया गया था। इनमें से अधिकांश को आज भी रहने के लिए छत और जीवन-यापन के लिए साधन दुर्लभ हो रहे हैं। हजारों व्यक्तियों को अकथनीय यातनाएं और उनके सम्बन्धियों की हत्या और अपहरण की करुण कथाएं कहनी हैं, जिसे वे कभी विस्मृत नहीं कर सकते। उनकी दृष्टि में प्रत्येक मुसलमान शत्रु है जिससे प्रतिशोध लेने का उन्हें अधिकार है।

इस व्यापक घृणा रूपी अग्नि में बन्नू के हजारों निर्वासितों की हत्या तथा करांची की हिन्दू दूकानों की लूट पाट की खबरों से भी अधिक उत्तेजना ही फैली थी। इस घृणा और प्रतिशोध के अशान्त वातावरण में महात्माजी ने अपना उपवास प्रारम्भ किया। पहले दिन यह जान पड़ा कि महात्माजी ने एक असम्भव काम अपने हाथ में लिया है। ब्रिटिशों के विरुद्ध लड़ने में कहा जा सकता है कि महात्माजी को ४० करोड़ देश बन्धुओं का नैतिक सहयोग था। इस उपवास में उन्हें एक असफल सिद्धान्त के लिए लड़ना था और अपने ही लाखों देश बन्धुओं के असन्तोष का शिकार बनना था, क्योंकि मुसलमानों के दूसरे एकमात्र मित्र पंडित नेहरू ने भी ऐसी नीति अख्तियार करली थी जिसका परिणाम पाकिस्तान के विरुद्ध युद्ध में आ सकता था।

जैसे जैसे तरल-पदार्थ बढ़ने लगे, वैसे-वैसे ही नर नारियों के हृदय भी पिघल उठे। प्रतिक्षण लोगों की मनोवृत्ति में परिवर्तन होता दिखाई दिया। एकता-जुलूस और सभाओं में लाखों की भीड़ होने लगी। पांचवें दिन डाक्टरों ने बतलाया कि तरल पदार्थों का भीषण अभाव हो गया है। सहस्रों निर्वासितों और बिन-निर्वासितों के जंगी जुलूस निकले और जंगी सभाएं हुईं, जिससे लोगों के हृदय-परिवर्तन का प्रमाण सहज ही मिलता है। पंडित नेहरू और डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद इन जुलूसों और सभाओं से बिड़ला भवन को लौटे। छठे दिन चमत्कार दिखाई दिया और हृदय-परिवर्तन के फल-स्वरूप विभिन्न पक्षों के नेताओं को महात्माजी को यह आश्वासन देना सम्भव हो सका कि दिल्ली ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत मुसलमानों के लिए निरापद होगया है। इस बार कम से कम वायसराय-भवन में कोई लिनलिथगो नहीं था। गवर्नर जनरल लार्ड माउण्टबेटन ने महात्माजी के स्वास्थ्य के बारे में कई बार पूछ-ताछ की थी और उनके इस महान प्रयत्न में सफल होने की कामना भी प्रकट की थी। इस बार महात्माजी को अपने चमत्कार में सफल होने के लिये तरल-पदार्थों के निवार-णार्थ किसी प्रकार के आध्यात्मिक संघर्ष का सहारा लेने की आवश्यकता न हुई। अणु-बम ने हिरोशिमा और नागासाकी नगरों को नष्ट किया था किन्तु तब इस आत्मिक बम ने दिल्ली, हिन्दूधर्म तथा भारत की आत्मा को ही बचा लिया।

———

[१५३ पृष्ठ से आगे]

मात्र के साथ ऐक्य की साधना हो ही नहीं सकती। आत्म शुद्धि के बिना अहिंसा का पालन सर्वथा असम्भव है।" इसीलिये गाँधीजी ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आत्म शुद्धि पर जोर दिया। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र सब के लिये आत्म शुद्धि सच्ची उन्नति का एक निर्भ्रान्त उपाय है। आत्मशुद्धि उनके तत्त्वज्ञान का मेरुदंड है। और इस पर उन्होंने इतना जोर दिया है कि उनका तत्त्वज्ञान आध्यात्मिकता की अपेक्षा नैतिक ही अधिक लगता है। ऐसा उन्होंने मनुष्य की आध्यात्मिकता की रक्षा के लिये ही किया और चूंकि उन्हें धर्म को जटिलता से निकालना था इसलिये ज्ञान का एक सरल और सब की समझ में आने योग्य मार्ग उन्होंने रखा। इस प्रकार गाँधी तत्त्वज्ञान का सिलसिला बैठता है। सत्य या आत्म साक्षात्कार इसका ध्रुवतारा है।

———

गांधीजी और वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय अवस्था

श्री बुद्धप्रकाश एम० ए०

गांधीजी आज हमारे बीच में नहीं हैं। एक हत्यारे की गोली ने उनके कीमती जीवन का अन्त कर दिया है। एकता, समानता और स्वाधीनता की बलिवेदी पर, मानव जाति ने यह एक महान् नरमेध यज्ञ किया है। सृष्टि के प्रारम्भ में स्वयं प्रजापति ने अपने शरीर का उत्सर्ग किया था जिसके परिणाम स्वरूप विश्व, प्रकृति समाज और धर्म उत्पन्न हुये थे। आज फिर प्रजापति ने अपने शरीर का उत्सर्ग किया है जिससे विश्व, प्रकृति, समाज और धर्म विकसित हो सकें। इस महा यज्ञ में मानवता ने आत्मिक शुद्धि, आध्यात्मिक जागृति और मानसिक संस्कृति के निमित्त अपनी सर्वश्रेष्ठ निधि पूर्णाहुति में दे दी है। अतः विश्व-शान्ति की कामना और उसके लिए प्रार्थना करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है।

आज, विश्व विषमताओं में ग्रस्त है। भेद, विरोध और वैमनस्य के भाव अधिकाधिक दृढ़ और गम्भीर और विस्तीर्ण हो रहे हैं। वैयक्तिक प्रतिद्वन्द्विता जो पिछले दिनों जातीय प्रतिद्वन्द्विता बन गई थी, अब महाद्वीपीय प्रतिद्वन्द्विता का रूप धारण कर रही है। विश्व बड़े बड़े राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों में विभाजित हो गया है जो एक दूसरे को ईर्ष्या और स्पर्धा की दृष्टि से देखते हैं। रूस और पूर्वी यूरोप एक साम्यवादी व्यवस्था में सङ्गठित हो गए हैं। अमेरिका और पश्चिमी योरोप एक जनतन्त्रात्मक विधान की योजनाएं बना रहे हैं। चर्चिल योजना, मार्शल कार्यक्रम और ट्रूमैन-सिद्धान्त के पश्चात् अब ब्रिटेन के विदेश-मन्त्री श्री बेविन ने जनतन्त्रात्मक देशों के घनिष्ठ सम्बन्ध का एक नया सुझाव पार्लियामेण्ट के समक्ष रक्खा है। इन दो दलों साम्यवादी और जनतन्त्रवादी क्षेत्रों, के पारस्परिक सम्बन्ध ईर्ष्या, संशय, और विद्वेष से परिपूर्ण हैं। अत: विश्व के अन्य प्रदेश जो उन्नति के लिए इन बड़ी शक्तियों का मुह ताकते हैं इनके षड़यन्त्रों और कुचक्रों में फंसे पड़े हैं। हाल ही में अमरीका ने यूनान को हवाई सहायता प्रदान की है और उसी के इंगित पर तुर्की ने रूस से अपना राजदूत वापिस बुला लिया है। इसी प्रकार ईरान में नई सरकार बनाई गई है जो अमरीका से सहमत है और जिसने अमरीकी युद्ध-शास्त्रियों को अपनी सेनाओं के सुधार के लिए नियुक्त किया है। इराक़ और बर्तानिया में हाल ही में संधि हो चुकी है जिसके फलस्वरूप इङ्गलैण्ड को हब्बानिया और शैबा के हवाई अड्डे प्रयुक्त करने का अधिकार मिल गया है। मिस्र के साथ उसकी एक आर्थिक सन्धि हो गई है जिसके अनुसार इङ्गलैण्ड ने मिस्र को बहुत बड़ी रकम देने का निश्चय किया है और बदले में मिस्र ने इङ्गलैंड को काफी व्यापारिक सुविधाएं देने का वचन दिया है जिससे इङ्गलैण्ड की आर्थिक व्यावसायिक व्यवस्था सुधर सके। इस सन्धि से यह आशा होती है कि निकट भविष्य में एक राजनैतिक सन्धि भी हो जाएगी क्योंकि सर ह्यूबर्ट होव के विचार, जो सर ह्यूबर्ट हडल्स्टन की जगह सूडान के गवर्नर नियुक्त हुए हैं, बड़े उदार और प्रशस्त मालूम होते हैं। ट्रान्सजोर्डन के राजा अब्दुल्ला की समस्त योजनाएं और आशाएं इङ्गलैण्ड के ऊपर ही आधारित हैं और यद्यपि प्रदर्शन मात्र के लिये वह अपने प्रदेश से अंग्रेज़ी फ़ौजों को निकालना चाहता है तथापि उसका विचार इङ्गलैण्ड से पूर्ण मैत्री रखने का है। वहाँ का नया प्रधान मन्त्री तौफ़ीक अबुल-हौदा जो 'बृहत्तर सीरिया' की योजना का बड़ा पक्षपाती है शीघ्र ही इंग्लैण्ड से वार्तालाप प्रारम्भ करने वाला है। जहाँ तक पाकिस्तान का प्रश्न है वह तो इंग्लैण्ड के हाथों की कठपुतली ही है और हाल ही में जिन्ना साहब ने इंग्लैण्ड की बेरुखी की शिकायत भी की थी। इस प्रकार इस्लामी देश जनतन्त्र की शक्तियों की ओर झुके हुए हैं। सुदूर पूर्व में जापान अमरीका का गढ़ बना हुआ है, चीन के लिए मार्शल महाशय ने ५० करोड़ डालर की सहायता का अनुमोदन किया है। हिन्द-एशिया में साथी देशों का 'गुड आफिसेज़ कमीशन' काम कर रहा है और आस्ट्रेलिया सदा इन शक्तियों का साथी रहा है। चीन में साम्यवादी लड़ रहे हैं, ईरान के सामने आज़रबइज़ान की समस्या है, इराक़ में सालेह जब्र के विरुद्ध, जिसने इंग्लैण्ड से संधि की है, प्रदर्शन हो रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप उसने त्यागपत्र दे दिया है, तुर्की और ट्रान्सजोर्डन में कुर्दिस्तान का भय बढ़ रहा है और यूनान में वानर-युद्ध हो रहा है। साम्यवादी देशों ने

एक संस्था कोमिन्फार्म बनाती है जो प्रशान्त महासागर से मध्ययोरोप तक के विशाल भूप्रदेश के राजनैतिक एवं आर्थिक कार्यकलाप का समन्वय और संयमन रखती है। हाल ही में बल्गारिया से रूस की एक बीस वर्ष के लिए युद्ध-सम्बन्धी संधि हुई है। यह साम्यवादी प्रदेश जनतन्त्रवादी प्रदेश का विरोध करते हैं और जनतन्त्र-वादी प्रदेश साम्यवादी प्रदेश का विध्वंस चाहते हैं। इस प्रकार यह शतरंज का भयानक खेल चल रहा है जो शीघ्र ही मानवता को पराजय और विनाश की ओर ले जा रहा है।

इस विस्तृत सिंहावलोकन से यह स्पष्टतः परिलक्षित है कि विश्व-शान्ति के लिए एक नवीन दृष्टिकोण की आवश्यकता है। अपने अपने अधिकारों का जो स्वर अलापा जा रहा है, वह घातक और हानिप्रद है। अतः अधिकारों को कर्त्तव्यों के दृष्टिकोण से देखना अनिवार्य हो गया है। प्रत्येक मनुष्य, राष्ट्र और सम्प्रदाय अपना अपना कर्त्तव्य पूरा करें तो उनके अधिकार अनायास प्रसूत हो सकते हैं। गांधी जी ने यह दृष्टिकोण जगत् के सामने रक्खा है और इसे अपने और भारत के जीवन में चरितार्थ किया है। उन्होंने यहां तक कह दिया है कि जो अधिकार अपने कर्त्तव्य को ठीक तरह से पूरा किए बिना प्राप्त होते हैं वह रखने योग्य नहीं होते और उन्हें छोड़ना ही बेहतर होता है (दि हिन्दुस्तान टाइम्स् ३०-६-४७)। अतः जनसमूह के अधिकारों की अनियंत्रित चर्चा उनके लिए घातक नहीं तो हानिप्रद अवश्य है। अधिकार-उन्मत्त और कर्त्तव्य-विमूढ़ मनुष्य समाज के लिए अभिशाप होता है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य की सम्यक् कर्त्तव्य-पूर्ति से जो सामाजिक सामञ्जस्य और वैयक्तिक सम्पन्नता का भाव उत्पन्न होता है और जिसे अधिकार कहते हैं,, वह खतरे में पड़ जाता है। अतः कर्त्तव्य के बिना अधिकार असम्भव है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर इस दृष्टिकोण से देखने पर प्रतीत होता है कि आज प्रत्येक देश और दल अधिकारों की निरर्थक चर्चा करता है और कर्त्तव्यों की अनवरत अवहेलना पर उतारू है। साम्यवादी दल यह नहीं समझता कि साम्यवाद का लक्ष्य ऐसा समान और स्वाधीन समाज बनाना है जिसमें प्रत्येक मनुष्य के लिये विकास का समान और समुचित अवसर हो और जिसमें धन, धर्म, और राज्य की विषमताएं न रहें। इसी प्रकार जनतन्त्रवादी देश यह भूलते हैं कि जनतन्त्र का उद्देश्य ऐसा विधान स्थापित करना है जिसमें प्रत्येक मनुष्य अपने व्यक्तित्व और भाग्य का निर्माण स्वयं स्वतंत्र रूप से कर सकें और उसके इस कार्य में राजतंत्र और अर्थ-व्यवस्था समुचित सहायता प्रदान कर सकें। अतः साम्यवाद में जनतंत्र और जनतंत्र में साम्यवाद होना अनिवार्य है। दूसरे शब्दों में, ये दोनों एक ही भाव के द्योतक हैं और एक ही वस्तु के नाम हैं। अतः सैद्धान्तिक दृष्टि से रूस का दमन चक्र साम्यवाद के विरुद्ध है; अल्प संख्यकों का उन्मूलन, स्वतन्त्र मत प्रकाशन पर प्रतिबन्ध, राष्ट्र के साधनों का एक विशिष्ट नीति के समर्थन में उपयोग मनुष्य की समानता के आदर्श को कलङ्कित करते हैं। रूमानिया का राजा माइकेल परिस्थितियों से विवश होकर राज से अलग हो गया है; हंगरी में जनरल डिन्यू-येस् ने वहाँ की बहुसंख्यक स्माल होल्डर्स पार्टी को जिसे जनता का विश्वास और सहयोग प्राप्त था, कुचल कर निर्वासित कर दिया है। इधर रूसी षडयंत्र चीन में ज़ोरों से चल रहा है और मचूरिया के उद्योग और कारखाने नष्ट कर दिए गए हैं। इसी प्रकार जनतंत्रवादी देश न्याय के भवन में रक्त-रंजित हाथ लिए खड़े हैं। जन-तन्त्रवादी फ्रांस वियट-नाम के देश भक्तों पर गोलियाँ बरसा रहा है। वहां के राष्ट्रीय नेता डाक्टर हो-चिह-मिंह का तिरस्कार करके देशद्रोही-दल के सहायक भूतपूर्व बादशाह बाओ-दाई को उठाया और उकसाया जा रहा है जिससे सुदूर पूर्व में फ्रान्स का साम्राज्य अक्षुण्ण रह सके। इसी तरह डच-सरकार ने हिन्द-एशियाई द्वीपमंडल में जो भयानक रण-तांडव मचाया है और असंख्य नर-नारियों की हत्या करके अब संयुक्त-राष्ट्रों की संस्था के ज़ोर देने से जो सीमित अधिकार उन्हें दिए हैं वह जन-तन्त्र के सिद्धांत का उपहास नहीं तो और क्या है। इंग्लैण्ड ने यद्यपि प्रधान मंत्री श्री एटली के नेतृत्व में भारत, बर्मा और लङ्का को स्वतन्त्र करके अपनी साम्राज्य-वादी नीति में बड़ा परिवर्तन किया है तथापि दक्षिणी अफ्रिका में भारतीयों के विरुद्ध जो जातीय पक्षपात हो रहा है और कश्मीर पर जो नृशंस आक्रमणकारियों का अत्याचार हो रहा है वह अंग्रेजी कामनवेल्थ की जन-तंत्रात्मक विचार धारा को संदिग्ध कर रहा है। अमरीका

के राष्ट्रपति ट्रुमैन ने ११ जून सन् १९४७ को कनाडा की पार्लियामेण्ट में भाषण देते, हुए इस बात का आश्वासन दिलाया था कि "हम उनकी सहायता करना चाहते हैं जो अपनी हुकूमत अपनी इच्छानुसार बनाने पर तत्पर हैं और जो दूसरों के इस अधिकार का आदर करते हैं। हम उन्हें उठाना चाहते हैं जो व्यष्टि के गौरव का आदर करते हैं और कानून के अनुसार उनके साथ बराबरी का व्यवहार करने की गारण्टी करते हैं।" किंतु क्या फ्रांस, हालेण्ड और इंग्लैण्ड जिनकी अमरीका सहायता करने की योजना बना रहा है वियट-नाम, हिंद-एशिया, दक्षिणी अफरीका और कश्मीर में दूसरे के अधिकारों की सुरक्षा कर रहे हैं ? क्या अमरीका ने जनतंत्र के नाम पर उन्हे अपनी शोषण नीति छोड़ने पर विवश किया है ? उत्तर में यही कहना पड़ता है कि अमरीका और योरोप का जनतंत्रवादी कहलाने वाला दल अभी भी उपनिवेश-नीति और साम्राज्यवादी के प्राणहीन शव को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न कर रहा है और उसकी उदारता और उदीर्णता विश्व को धोखा देने के लिए दिखाई जाती है। इन्ही राजनैतिक चाल-बाज़ियों के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्रीय-संस्था विफल प्राय हो गई है। दक्षिणी अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों के अधिकारों की उसने पूर्ण अवहेलना की है और अब कश्मीर के प्रश्न पर व्यर्थ का वाद विवाद हो रहा है। और कश्मीर के दुःसह सङ्कट और आपत्ति पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इसी प्रकार यद्यपि फिलस्तीन का विभाजन निर्धारित कर दिया है परन्तु अमीन-अल-हुसैनी जैसे युद्ध-प्रचारकों के विरुद्ध कुछ नहीं किया जा रहा है जिससे घृणा, हिंसा और विरोध की भावनाएँ कम हों। अतः फिलस्तीन में अरबों और यहूदियों में जिहाद की तरह का युद्ध चल रहा है जिससे विश्व के लिए भयानक संकट उत्पन्न होगया है। क्या संयुक्त-राष्ट्रीय-संस्था सचमुच इतनी निर्बल है कि मध्य-एशिया की मुसलमान रियासतें उसकी आज्ञाओं की अवज्ञा कर सकें ? इसी तरह हिन्द-एशिया में युद्ध बन्द करने के आदेश के पश्चात् संयुक्त-राष्ट्रीय-संस्था प्रशान्त द्वीप-मंडल को डच साम्राज्य से मुक्त नहीं कर सकी। इन विशिष्ट प्रश्नों के अतिरिक्त इटली के उपनिवेशों का भविष्य, जर्मनी और जापान के तावान और व्योहार की समस्या, और मित्र-राष्ट्रों की संधि का सवाल अभी तक संयुक्त-राष्ट्रीय-संस्था ने छुए तक नहीं। सारांश यह कि युद्ध के पश्चात् अभी तक कोई स्थायी शान्ति स्थपित नहीं हो सकी है।

मित्र-राष्ट्रों का संधि का आधार विजेता और विजित का सम्बन्ध है। इस समय विजेता विजित देशों को हड़प जाना चाहते हैं। अमरीका और इंग्लैण्ड पश्चिमी जर्मनी को जो उनके आधीन है इतना सुदृढ़ बनाना चाहते हैं कि यदि रूस की ओर से कोई संकट आए तो जर्मनी उसे रोकने के लिए पर्याप्त हो सके। फ्रान्स जर्मनी को इतना निर्बल देखना चाहता है कि जिससे वह कभी भी फ्रान्स के विरुद्ध न जा सके। साथ ही फ्रांस की लोलुप दृष्टि रूर के कोयले पर केन्द्रित है। रूस पूर्वी जर्मनी को बिलकुल आत्मसात् करना चाहता है। अतः वहां साम्यवादी दल को उकसाया जा रहा है। इस वर्ष बर्लिन में पार्टीबाजी का भयानक दृश्य दिखाई देने वाला है। जापान में अमरीका अपना प्रभुत्व स्थायी रखना चाहता है और जनरल मेकार्थर वस्तुतः वहां के अधिनायक बन गए हैं। चीन और आस्ट्रेलिया की यह इच्छा है कि जापान को निर्बल और निष्प्राण बना दिया जाए। अब इस विषय में मित्र-राष्ट्रों का एक सम्मेलन हो रहा है।

इस विषय में मित्र-राष्ट्र यह भूल रहे हैं कि युद्ध का दोष सबके ऊपर बराबर है। विजेता और विजित सब पर इसका दायित्व है। अतः सबको समान रूप से इसका परिणाम भोगना चाहिए। सच्ची शान्ति वही हो सकती है जो न तो बदला लेने के उद्देश्य से स्थापित की गई हो और न दण्ड देने के दृष्टिकोण से सम्पादित की गई हो। साथ ही इतिहास की यह भी एक शिक्षा है कि विश्व में अगर कोई भी देश, जाति अथवा सम्प्रदाय असंतुष्ट और पददलित रहता है तो उससे समग्र विश्व की शान्ति संकटापन्न हो जाती है। सन् १९१८ में वरसाई की संधि से जर्मनी को जो अंगविहीन किया गया था इसी का परिणाम द्वितीय महायुद्ध था। अतः इस विषय में सतर्कता और बुद्धिमत्ता की आवश्यकता है। गांधी जी ने विश्व को यह संदेश काफी दिन हुए दिया था परन्तु इसकी ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। अतः अब उनकी प्रेरणा और प्रभाव से, जो उनके

महाप्रयाण के पश्चात् उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, सब देशों को समुचित मार्ग पर चलना चाहिए और ऐसे विश्व का निर्माण करना चाहिए जिसमें पूर्ण सन्तोष और विश्वास का भाव व्याप्त हो। भारतवर्ष और अन्य एशियाई प्रदेश जो अन्तर्राष्ट्रीय पक्षपात से रहित हैं और जो गांधी जी के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए स्वतन्त्रता तक पहुंचे हैं, इस विषय में विश्व का सम्यग नेतृत्व कर सकते हैं। गांधीजी ने अपने अन्तिम महाव्रत के आरम्भ में कहा था यदि भारत की आत्मा नष्ट हो जाती है तो समस्त दुखी, दरिद्र और अशान्त विश्व की आशा पर पानी फिर जायगा। अतः भारत पर विश्व के नेतृत्व का भार है। भारत को हमें समझना चाहिए और एक ऐसी सुदृढ़ राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था बनानी चाहिए जिससे जनतन्त्र और साम्यवाद के वास्तविक सिद्धान्तों का सम्यक समन्वय हो सके। साथ ही भारत को एशियाई शक्तियों का केन्द्र स्थल बनकर गांधीवादी संस्कृति को सम्पन्न और मङ्गलमय बनाना चाहिए जिससे वह विश्व को शान्ति की ओर ले जा सके। समस्त पूर्वी एशिया का एक सांस्कृतिक विधान बनना चाहिये जो विश्व-हित के लिये सतत् प्रयत्नशील रहे और इसकी समस्याओं का ठीक समाधान करे। इसके संरक्षण में विश्व अपनी विभिन्नताओं और विद्वेष को दूर करे। हाल ही में इस बात की प्रार्थना की गई है कि अमरीका और रूस पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में एक आपसी समझौता करें और उसमें गांधीजी के आदर्शों के अनुसार दोनों देश अपना वैमनस्य दूर करलें। यह भाव एक व्यक्ति का नहीं वरन् विश्व भर का है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि भारत अपने आपको एक वास्तविक गांधी-मन्दिर बनाले जिसमें सारा संसार अर्चना और आशीष के लिए आया करे।

गांधी जी का सन्देश आज विश्व की एक मात्र आशा है। सत्य, सेवा और अहिंसा जो जनतन्त्र और साम्यवाद दोनों के आधार-स्तम्भ हैं, गांधी जी ने दृढ़ता के साथ संसार में स्थापित कर दिए हैं। प्रेम, तप और सरलता जो संस्कृति के वास्तविक प्राण हैं उन्होंने प्रबलता के साथ मानव जाति में उत्पन्न कर दिए हैं। इस शताब्दी के प्रसिद्ध दार्शनिक ओसवाल्ड स्पेङ्गलर ने वर्तमान संस्कृति का मार्मिक विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित किया था कि सघन नगरों का बाहुल्य, कृति का ह्रास, धर्म की अवहेलना, भौतिकता का आधिक्य, आर्थिक दृष्टिकोण का आधिपत्य, और असंयत संस्कृति से प्रादुर्भूत मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक रोग वर्तमान संस्कृति के विनाश के परिचायक हैं। परन्तु गांधी जी ने सरल, सरस, और प्रेममय संस्कृति का सूत्रपात करके विश्व-संस्कृति को विनाश से बचा लिया है। पेरिस के एक अखबार "ल मोंद" (संसार) ने १० जनवरी १९४८ को एक सम्पादकीय लेख में लिखा है कि गांधी जी के द्वारा पूर्व ने पश्चिम को फिर यह सिखाया है कि घृणा की क्रांति के अतिरिक्त एक और भी क्रांति होती है जो प्रेम और सम्वेदना द्वारा विश्व को उन्नति के शिखर पर ले जाती है। परमाणु बम के युग में गान्धी जी का वह स्वर है जिसकी ओर मनुष्य को दत्तचित्त होना पड़ेगा। और वास्तव में विश्व इस मधुर स्वर की ओर दत्तचित्त है। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध विचारक श्री ब्रेल्सफोर्ड ने मार्मिक शब्दों में अपने देशवासियों से कहा है कि वह गांधी जी के नाम पर रूस के सामने एक बार फिर मित्रता का प्रस्ताव रक्खें। जनतंत्र और साम्यवाद, गांधीवाद के प्रकाश में अपने अपने वास्तविक स्वरूप को पहचाने। दोनों, विश्व के सब से महान् पुरुष की विचार धारा में, अपने कृत्रिम भेद भाव मिटादें; दोनों, विश्व के सब से महान् शुभ-चिन्तक की प्रेरणा से, विश्व-कल्याण के कार्य में संलग्न हों। रूस और अमरीका एक आध्यात्मिक जनतन्त्रात्मक सम्यवाद के अनुयायी बनें और साथ साथ मानव-सुख-शान्ति के प्रयास में सक्रिय रहें। यही साम्यवाद, गान्धी जी का आदर्श और लक्ष्य रहा है, यही विश्व संस्कृति का प्राण और प्रेरक रहा है, यही मानव जाति के विकास का रहस्य और संकेत रहा है, यही आज संसार की आशाओं और अभिलाषाओं का केन्द्र है। इसे ही श्रीमद्भगवद्गीता ने निम्नलिखित शब्दों में प्रतिपादित किया है—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

बापू की महानता

श्री मुकुन्दीलाल एम० ए०, बार-एट-ला

संसार का कोई ऐसा मुल्क अथवा कोई गण-मान्य व्यक्ति (सिवाय स्टालिन के) ऐसा नहीं जिसने महात्मा गांधी की महानता स्वीकार न की हो या जिसने उनके अवसान पर शोक प्रकट न किया हो। महात्मा जी की महानता का क्या कारण था या किस बात में उनकी महानता थी, इसको भारतवर्ष के भूतपूर्व मंत्री लार्ड पैथिक-लारेन्स ने बड़ी खूबी के साथ बताया है :—

"गांधी जी को सब बहुत प्यार करते थे। उनकी मृत्यु पर सब अत्यन्त शोक प्रकट करेंगे। अब उनका शरीर हमारे साथ नहीं, पर उनकी आत्मा (स्पिरिट) हमारे साथ है। उनका प्रभाव स्त्री-पुरुषों के दिलों और दिमागों पर किस कारण था। इसका रहस्य क्या है। मेरी राय में इसकी वजह यह थी कि महात्माजी ने स्वयं अपनी महानता अथवा उन अधिकारों तथा पदों का त्याग किया जो उन्हें अपने जीवन, व्यक्तित्व और बुद्धि और बड़प्पन के कारण प्राप्त थे, और वे साधारण मनुष्य की तरह रहने लगे।

"जब वे दक्षिण अफ्रिका में थे वहां उन्होंने अपने देशवासियों के प्रति किये जाने वाले अनुचित व्यवहार का विरोध किया। इसके लिये उन्होंने वह सजा और यन्त्रणा सही जो उन लोगों को दी जाती थी जिन्होंने उस दक्षिण अफ्रिका के सरकारी कानून को तोड़ा और उसे नहीं माना। जब उन्होंने भारत वर्ष में अंग्रेज सर्कार के साथ असहयोग करने की सलाह दी तो उन्होंने खुद असहयोग किया और सब से पहले जेल जाने को तयार हुये। जब उन्होंने आधुनिक मशीनों से बनने वाली चीजों के खिलाफ आवाज उठाई तो सबसे पहले खुद अपने घर में चर्खा चलवाया और स्वयं रोजाना कताई अपने हाथ से करने लगे। जब उन्होंने आपसी मारकाट का विरोध किया तो उन्होंने भोजन त्याग कर मरना चाहा। और अपने देश वासियों के पाप के लिये खुद दण्ड सहने लगे। वे अपने को बड़ा आदमी नहीं मानते थे। अपनी साधारण लोगों में शुमार करते थे। जो गलती उनसे हो जाती थी उसे वे फौरन स्वीकार कर लेते थे। और कुबूल करते थे कि मैं अपनी गलतियों से फ़ायदा उठाता हूँ। महात्मा गांधी सबके प्यारे व गरीब कमजोर, दु:खी और गुनहगारों के बन्धु और सखा थे। हमको चाहिये कि हम केवल शब्दों में ही उनकी तारीफ न करें वरन अपने जीवन को हम सचाई में लगायें। मानव जाति को प्यार करें। सब जातियों के दु:ख दर्दों को हटाने में जीवन व्यतीत करें।"

जितनी बातें पेथिक लारेन्स साहब ने महात्मा जी की महानता की कारण बताई हैं उन पर विचार कीजिये। आज करीब ५० वर्षों के उनके बड़े बड़े आश्चर्य जनक कारनामों के कारण सब ही उनको संसार का सब से बड़ा आदमी बताते हैं और मानते हैं। मैंने सन १९१० में ही गांधीजी को संसार का सब से बड़ा आदमी मान लिया था। उनके दक्षिण अफ्रिका के कारनामों को पढ़कर व सुनकर कि कैसे उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता का निर्माण व संगठन वहां किया और भारतीयों को अपने हक़ व अधिकारों के लिये मरना सिखाया। मुझ पर इतना प्रभाव पड़ा कि मैंने मोहनदास करम चन्द गांधी की जीवनी हिन्दी में पहले लेख माला के रूप में 'स्त्रीदर्पण' में प्रकाशित की। और बाद को पुस्तका-कार, अभ्युदय प्रेस से देश भक्त परम मित्र शिवप्रसाद जी गुप्त की सहायता से १९१२-१३ में प्रकाशित कराई। महात्मा जी सारे संसार और अपने शत्रुओं के भी सेवक थे। जब वे श्वेतांग लोगों के अत्याचार व अमानुषिक व्यवहार के खिलाफ अफ्रिका में सत्याग्रह शस्त्र से लड़ाई लड़ कर १९१४ में लंदन आए और हम भारतीय विद्यार्थियों को परामर्श दिया कि उस महायुद्ध में अंग्रेजों के घायल सिपाहियों की और भारतीय जखमी सिपाहियों की सेवा ऐम्बुलेंस कोर में सम्मिलित होकर करें तो मैंने इसका विरोध किया और गांधी जी से कहा कि अफ्रिका में श्वेतांग लोगों के हाथों अत्याचार सहकर आरहे हो। वहां हमारे ऊपर अमानुषिक व्यवहार होरहा है। भारत में हमको हमारे हक अंग्रेज नहीं देते। हमको स्वराज नहीं देते। और आप हमसे उनकी

सेवा कराना चाहते हैं। यदि अंग्रेज हमको फौज में किंग्ज कमीशन (अफसरी) देने को तयार हों तब हम ऐम्बूलेन्स कोर में शरीक होंगे। सकलतवाला ने और मैंने सभायें करके गांधी जी का विरोध किया। पर वे अपनी सेवा वृत्ति में लगे रहे। जिन भारतीय छात्रों ने उनका कहना माना वे अंग्रेजों के लाड़ले बने और हिन्दुस्तान लौटने पर उनको नौकरियां मिलीं। उसी पहले महायुद्ध के सिलसिले में गांधी जी ने भारत में आकर भारतीय (अंग्रेजी राज्य की) सेना में भर्ती होकर अंग्रेजों की सहायता करने के लिये अहिंसा व शान्ति के प्रचारक होते हुये भी हिन्दुस्तानियों को फौज में भरती होने की सलाह दी। इस पर तिलक महाराज और अन्य भारतीय नेता उनके खिलाफ होगये थे। पर गांधी जी अपनी सेवा वृत्ति पर अड़े रहे। उनका कहना था कि शत्रु की भी, उसकी आपदा में, सहायता करनी चाहिये। पहले महायुद्ध के समाप्त होने पर उन्होंने रौलेट ऐक्ट के कारण अंग्रेजों के खिलाफ फिर आन्दोलन शुरू कर दिया। हमारे भारतीय नेता पहले सरकार के साथ असहयोग करने को तयार नहीं थे! मुझे वह दिन याद है जब सितम्बर १९२० की विशेष कांग्रेस में कलकत्ते में महात्मा जी ने असहयोग करने का परामर्श दिया तो पं० मोतीलाल जी व देशबन्धु दास इत्यादि सब इसके खिलाफ थे। पहले पहल पं० जवाहरलाल जी ने असहयोग नीति को वहां विषय निर्धारिणी समिति जिसमें मैं मौजूद था स्वीकार किया और अपने पिता जी को भी उसका अवलम्बन करने को राजी किया। उसके बाद जो कांग्रेस दिसम्बर में नागपुर में हुई उसके मंच से मि० जिन्नाह ने असहयोग प्रस्ताव का विरोध किया। विरोध में बोलते हुये जिन्नाह साहब का जो फोटो मैंने लिया था वह अब भी मेरे पास है। जिन्ना ही ने कांग्रेस तब छोड़ दी। महात्मा जी ने अपनी डगर नहीं छोड़ी। उसी असहयोग शस्त्र के द्वारा महात्मा जी ने जिन्ना को और हमको स्वराज व आजादी दिलाई।

यदि हम महात्मा गांधी की महानता को मानते हैं और उनके सच्चे गुण ग्राहक और भक्त हैं तो हमको चाहिये कि हम उनके सिद्धान्तों और शिक्षा के अनुसार अपने समाज व राज्य का प्रबन्ध करें।

गांधी समितियां कायम कर उनके आदर्श और सिद्धांतों पर चलें। खासकर निम्नलिखित बातों पर हमको अमल करना होगा:—

(१) हिन्दूमुसलमान और सब जातियों में मेल व एकता।

(२) किसी भी भारतवासी पर, चाहे वह पाकिस्तान में हो या भारतीय-भारत में हो अत्याचार न करें।

(३) अछूतों को अपनायें, उनसे बराबरी का बर्ताव करें।

(४) जात पाँत तोड़कर सब भारतवासियों को एकता के सूत्र में बांधें।

हम भारतवासी महान पुरुष महात्मा गांधी के योग्य नहीं, जिस आजादी को उन्होंने हमारे लिये हासिल किया उस स्वतन्त्रता को प्राप्त कर हमने अपने ही देशवासियों भाई बहिनो के प्रति कैसा पैशाचिक, अमानुषिक व्यवहार किया। हम संसार में अपना मुँह दिखाने के काबिल नहीं रहे। हम इस हत्या का प्रायश्चित्त तब ही कर सकते हैं जब कि हम उनके उपदेश व आदर्श का अनुकरण करें। सबसे अच्छी बात महात्मा जी ने जब वे १९३१ में राउण्ड-टेबुल कानफरेन्स के लिये विलायत गये थे, उन्होंने अंग्रेज विद्यार्थियों से लन्दन में कही थी, उनके सवालों के जवाब में:—

"मुझे इस बात की ज्यादा फिक्र है कि मैं उस अत्याचार को रोक सकूं जो कि सारी मानव जाति के साथ किया जाता है बनिस्बत उसके जो मेरे हिन्दुस्तानी भाइयों के साथ किया जारहा है। जो जाति अपनी उन्नति, प्रभुत्व व विजय के लिये कमजोर जातियों को सताती व दबाये रखती है वह स्वयं पतित होती है। मानवता के उच्च आसन से नीचे गिरती है। यदि हम सब एक ही ईश्वर की सन्तान हैं तो चाहे हम किसी देश या जाति में पैदा हुये हों हम एक दूसरे के पाप के भागी हैं।"

अस्तु हम सब भारतीय नाथूराम के पाप के भागी हैं। हमको इसके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये।

मानवता को बापू की देन

श्री गोपाल कृष्ण मल्लिक

बापू, तपस्या का धधकता हुआ अंगारा थे। उनके बारे में कुछ कहना सहज नहीं है। किसी महापुरुष की अन्तः प्रेरणा का उहापोह करना खेल नहीं। वह बंधन में सीमित नहीं थे, वह संकुचित नहीं असीम थे और जगत के किसी मापदण्ड से उन्हें मापा नहीं जा सकता। बापू भी अनेक टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों से बने थे और साधारण आदमी तो उनके सम्पूर्ण रूप को देख भी नहीं सकता था।

एक बार फ्रांस के मनीषी स्व० रोमां रोलां ने गांधी जी के विषय में उद्‌गार प्रकट करते हुए एक छोटा सा पर मर्म एवं तत्व भरा किस्सा लिखा था—

"किसी विधवा स्त्री का एक ही लड़का था। जिसे उसने अनेक कष्ट सहकर पाला-पोसा। लड़का जब जवान हुआ तो मां को उससे बहुत-सी उम्मीदें बन्धीं। मगर लड़के का एक वेश्या से प्रेम हो गया। अपनी वेश्या प्रेयसी को वह बार-बार विश्वास दिलाता था कि—वह उसे बेहद प्यार करता है। एक दिन वेश्या ने उससे कहा—"क्या सचमुच तुम मुझे बहुत प्यार करते हो? और यदि करते हो तो जाओ अपनी मां को मारकर उसका कलेजा निकाल कर लाओ, तब मुझे तुम्हारे प्यार पर विश्वास होगा।" लड़का मां के पास पहुंचा। बूढ़ी मां को मारकर उसने उसका कलेजा निकाला और उसे मुट्ठी में दबा कर चलने लगा। चारों ओर खून फैला हुआ था। पैर फिसला, वह गिर गया और कलेजा उसके हाथ से दूर जा पड़ा। इतने में दूर पड़े कलेजे में से आवाज़ आई—"बेटा कहीं चोट तो नहीं लगी?" इससे बापू के शुद्ध पर महान व्यक्तित्व का अन्दाज़ा थोड़ा आपको मिल सकता है। उनकी आत्मा उनके हत्यारे को भी प्यार करती है, फिर अन्य की बात ही क्या सोचना है। "सर्व आत्म भूतेषु" उनका आदर्श था।"

सारा भारत आज एक भयंकर और डरावना स्वप्न देख रहा है। निश्चय ही मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध के नियम बदलेंगे। किसी कौम की क्षमता की कसौटी अब उसके नाखून और पंजे न होंगे, बल्कि प्रेम की भावना होगी। परिणामों ने यह साबित कर दिया है कि प्रतिस्पर्धा का मानव प्रेम और सहानुभूति से सम्बन्ध न हो तो, मनुष्य समाज का जीवित रहना और बढ़ सकना —असम्भव है। यह कहना कि कुछ वर्गों के वर्तमान अधिकार या विशेषाधिकार शुरू में हिंसा से प्राप्त किये गये हैं और हिंसा से ही उसकी रक्षा की जा रही है; इसलिए हिंसा से ही उसका नाश किया जा सकता है; यह तो एक अक्षय दूषित चक्र का निर्माण करना है।

महात्मा जी ने अपनी सत्य-अहिंसा की चिर-साधना के सहारे संसार को सत्याग्रह का दान दिया। यह सत्याग्रह—जिसका एक ही विराट रूप हमने भारतीय राजनीति के प्रांगण में देखा है—जगत के लिए दिव्य सन्देश है। इसकी सिद्धि में जगत् के लिए एक महान् आशा है, पीड़ित मानवता का त्राण है। राग-द्वेष और कलुष भरे इस संसार में, जहां भाई-भाई का गला काटने में लगा है, जहां के महान् कहे जाने वाले राष्ट्र, मुंह से शांति की मीठी-मीठी बातें करते हुए भी मौका पाते दूसरे को खा जाने की ताक में लगे रहते हैं,—इस दुर्वह अन्धकार में भी गांधी जी अपने आप चमकते रहे।

वह हमारी आशा के पुंज थे, हमारी जीवन-निशा के दीपक थे—और विश्व की आध्यात्मिक या नैतिक सहधर्मिता के प्रतीक थे। इस घोर अंधकार में उनकी देह हड्डी-पसली की मूर्ति ध्रुव तारे की तरह चमक रही थी। वह समग्र संसार के मध्य में खड़े थे और कई शताब्दियों का भार अपनी मुट्ठी में बन्द किये हुये थे।

जगत के इतिहास में कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता जब उनकी कोटि के किसी विचारक और महापुरुष ने सामाजिक घटनाओं के निर्णय में इतना जबर्दस्त भाग लिया हो तथा इतना कठिन काम कर दिखाया हो। भगवान कृष्ण ने अवश्य ही, अपने समय में अनेक कार्य में भाग लिया था और अपने समय के वे एक महान क्रान्तिकारी भी थे परन्तु उनके बहुरूपी एवं अनेकतामय जीवन में भी यह पक्ष गौण अतः नितान्त साधारण है। इसका कारण यह है कि संसार के इतिहास में कभी राजनीति को इतना प्रधान स्थान मिला ही न था। आज तो इसने जीवन के प्रत्येक अंग को ढक-सा लिया है। जीवन की कोई दिशा ऐसी नहीं जिधर कोई व्यक्ति इससे अछूता निकल जाय। शासन-व्यवस्था ने आत्म-चिन्तन एवं विशुद्ध धर्माचरण को भी अछूता नहीं छोड़ा।

पूर्व काल में साधक और धर्मोपदेष्टा राजा के द्वारा शासन-संस्था पर प्रभाव डालते और नियमन करते थे। आज राजनीति का विकराल दैत्य पृथ्वी को आत्मसात करके प्रबल हुंकार भर रहा है। गम्भीर विचार, तत्त्व-दर्शन एवं जीवन के पवित्र सिद्धान्तों की बात सुनकर वह अट्टहास करता है। इतने दिनों के प्रयोग और अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि यदि संसार को राजनीतिज्ञों के ऐन्द्रजालिक करिश्मों का शिकार नहीं होना है और गम्भीर और शुद्ध विचार-विनिमय एवं विवेक मार्ग पर चलना है तो हमारे विचारकों को राजनीति का क्षेत्र अपने हाथ में लेकर उसे पवित्र और सौम्य बनाना चाहिये तथा उसे एक मर्यादा में लाना चाहिए।

जिन्होंने विचार पूर्वक गांधी जी के जीवन का अध्ययन किया है वे जानते हैं कि उनके तात्विक-विवेचन में पूर्व और पश्चिम दोनों शामिल हैं। वे स्वयं कहते थे—"मेरे धर्म में कोई भौगोलिक बन्धन नहीं है।" राजनीतिक क्षेत्र मे स्वदेश का शंखनाद जो उनके सत्याग्रह शिविर से होता रहा, वह भी मानव-धर्म का एक अंग बनकर ही। उनकी देश-सेवा, मनुष्य जाति की सेवा से भिन्न नहीं—उसी का एक अंग थी।

सत्य और अहिंसा दोनो सामान्य और सर्वश्रुत शब्दों को गांधीजी ने अपने जीवन में विशेष साधन और विशेष अर्थ में लिया। वे स्वयं कहते थे—"जो सत्य है वही परमेश्वर है।" इस सत्य का प्रयोग, उनकी दृष्टि से, प्रत्येक क्षेत्र में किया जाना चाहिये, क्योंकि वह सार्वदेशिक है और उसके बिना किसी चीज की सत्ता नहीं। वह प्रत्येक मानव को विकास की अधिक से अधिक सुविधा देते हैं पर इस स्थान पर भी सत्य के साथ अहिंसा मिली रहने के कारण एक आदमी जहाँ आत्म-विकास की सुविधाएँ पाने का अधिकारी है वहाँ उसे दूसरे के विकास के लिए भी सुविधाओं का सम्पूर्ण ध्यान रखना पड़ता है।

गांधीजी का राष्ट्रवाद वस्तुतः उनके विश्व प्रेम का एक अंग है। "मानवता के लिए मरने की आकांक्षा के पूर्व भारत को जीना सीखना होगा।" यह उनका वाक्य है। इस वाक्य के भीतर उनके भारत प्रेम का भावी रूप झलकता है। वह विश्व को पंगु और पीड़ित भारत का दान करना नहीं चाहते थे, उसकी सेवा के लिए साहसी, पौरुषमय एवं आत्म विश्वासी भारत की भेंट करना चाहते थे। एक बार उन्होंने कहा था—"यूरोप के चरणों पर लोटता हुआ भारत मानवता को क्या आशा दे सकता है ! प्रबुद्ध और स्वतन्त्र भारत के पास निश्चय ही पीड़ित कराहते हुए विश्व को देने के लिए शांति एवं सदिच्छा का एक सन्देश होगा।" वे भारत को विश्व-सेवा का सबल साधन बनाना चाहते थे। आगे चल कर इसे उन्होंने और स्पष्ट भाषा में कहा है—"मेरा लक्ष्य विश्व-मैत्री है। हम विश्व भ्रातृत्व के लिए जीना और मरना चाहते हैं।"

इस प्रकार गांधीजी के राष्ट्रवाद में एक ओर भारत के पीड़ितों एवं दीन-दुखियों के उद्धार का भाव और दूसरी ओर भारत को विश्व-भ्रातृत्व और विश्व-सेवा का एक प्रबल साधन बनाने की आकांक्षा है।

सत्य, गांधीजी के तत्त्वज्ञान का केन्द्र है। आत्यन्तिक रूप में वही आत्मसाक्षात्कार या मोक्ष है। पर गांधीजी का आत्मसाक्षात्कार किसी बिन्दु पर जाकर समाप्त नहीं होता। यह बिन्दु पर प्रकट होकर जीवन को ओत प्रोत कर लेना चाहता है। जैसे रेखा अनन्त बिन्दुओं से बनती है और उसमें किसी ऐसे स्थान की कल्पना नहीं की जा सकती जहाँ बिन्दु न हो वैसे ही गांधीजी जीवन को सत्यमय बनाना चाहते थे, गांधीजी के तत्त्वज्ञान में सत्य की कोई अलग मंज़िल नहीं है। हर जगह सत्य का साक्षात्कार सम्भव है। सर्वव्यापी सत्य (जिसे गांधीजी परमेश्वर भी कहते थे।) के साक्षात्कार के लिए अहिंसा की साधना गांधी-तत्त्वज्ञान का अनिवार्य अंग है। अहिंसा के बिना सत्य-दर्शन सम्भव नहीं है। गांधी तत्त्वज्ञान की दृष्टि से संपूर्ण जगत् का अस्तित्व और विकास अहिंसा पर आश्रित है। गांधीजी कहते थे "सत्यमय थवाने माटे अहिंसा एज मार्ग छे।", "अर्थात् सत्यमय होने के लिए अहिंसा ही एक मार्ग है।" हिंसा से कोई विकास सम्भव नहीं है। जिनको गांधीजी के इस तत्त्वज्ञान पर विश्वास नहीं है वे इसका मज़ाक उड़ाते हैं। पर इसका कारण है कि वे अहिंसा के तत्त्व को समझ ही नहीं सकते, समझने की चेष्टा भी नहीं करते हैं।

इस अहिंसक-साधना के लिये आत्म-शुद्धि आवश्यक है। गांधीजी ने लिखा है—"आत्म शुद्धि के बिना जीव

[शेष १४५ पृष्ठ पर]

बापू का स्मारक

श्रीमती शान्ता पंडि

बापू के महापरिनिर्वाण के बाद उनके प्रत्येक देश-वासी के हृदय में यह भावना है कि उनका सर्वोत्तम स्मारक निर्माण किया जाय। इस सम्बन्ध में देश के कोने कोने से सैकड़ों तरह के सुझाव उपस्थित किये जा रहे हैं। किन्तु व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा प्रेषित इन सुझावों में गम्भीरता की मात्रा कम दिखाई देती है। यह हम मानते हैं कि इन सुझावों के पीछे गांधी जी के प्रति अखण्ड भक्ति भाव और प्रेम भावना काम कर रही है फिर भी इन सुझावों से और गांधी जी की महान शिक्षाओं और उनके सिद्धान्तों से कोई मेल नहीं बैठता। गान्धी जी युगावतार थे। इतिहास के स्तर पर फैले हुये हजारों वर्षों तक उनकी शिक्षाएं और व्यक्तित्व जीवित रहेगा। उन पर अमरता की छाप लग चुकी है। इसलिये हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम गाँधी जी के पवित्र नाम के साथ किसी ऐसी वस्तु का सम्पर्क न जोड़ें जो उनकी महत्ता के अनुरूप न हो। किसी मार्ग या सड़क के नाम के साथ गान्धी जी का नाम जोड़कर स्थानीय नेताओं या म्युनिसिपल कमिश्नरों की श्रेणी में गान्धी जी का नाम रखकर हम उनका वास्तविक आदर न करेंगे। सड़कों के साथ गान्धी जी का नाम जोड़कर हम एक तरह से उस महान नाम के साथ खिलवाड़ करेंगे। युगों पर्यन्त समस्त संसार महात्मा जी के नाम का आदर करेगा चाहे उनके नाम की एक भी तख्ती कहीं न लटकाई जाय। यह सुझाव ही कितना मूर्खतापूर्ण प्रतीत होगा यदि हम नई दिल्ली की सड़कों का नाम कृष्ण मार्ग, बुद्धमार्ग, ईसामार्ग या मुहम्मदमार्ग रखें। गान्धी जी भी इसी श्रेणी के अवतार, मसीहा या पैग़म्बर हैं।

मद्रास से निकलने वाले दैनिक 'इण्डियन एक्सप्रेस' के सम्पादक ने सुझाव पेश किया है कि अशोक और चन्द्रगुप्त के स्तूपों की तरह गान्धी जी की शिक्षाओं को भी स्तूप खड़ा करके उन पर अंकित किया जाय। मौर्यों के समय की दुनिया दूसरे प्रकार की थी। क्या हमें अपनी भावी पीढ़ियों को गान्धी जी के कार्य और उनके विचारों से अवगत कराने के लिये स्तूपों की आवश्यकता होगी? एक सुझाव यह है कि शुक्रवार को गान्धीवार कहा जाय और उस दिन साप्ताहिक छुट्टी रहे। एक दूसरा सुझाव है कि गान्धी जी की जन्म तिथि से गान्धी सम्वत प्रारम्भ किया जाय और इस वर्ष को ७९ वां गांधी-अब्द कहा जाय।

कुछ लोगों का यह सुझाव है कि नई दिल्ली का नाम बदल कर गान्धी नगर रख दिया जाय। बेशक यह हमारे हाथ में है कि हम इनमें से प्रत्येक सुझाव स्वीकार कर लें। किन्तु महात्मा जी इतने महान थे कि उनकी महानता के अनुपात में हमें ये स्मारक अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होते हैं। महात्मा जी इस युग के संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे। हमें कोई बात ऐसी न करनी चाहिये जिससे गान्धी जी की स्मृति राष्ट्रीय नायक के संकुचित सीमा क्षेत्र में बन्द हो जाय। कदाचित इसी बात को ध्यान में रखते हुये श्री देवदास गान्धी ने अपने रेडियो-भाषण में कहा था कि अरसा हुआ उन्होंने भौतिक दृष्टि से गान्धी जी को अपना पिता समझना बन्द कर दिया था। वे तो समस्त देश के बापू बन गये थे। हमको इस पर उचित ही अभिमान होना चाहिये कि गान्धी जी भारतवर्ष में पैदा हुये और सौभाग्य से हम उनके समकालीन थे। किन्तु बापू का जीवन तो भौगोलिक और जातीय सीमाओं को तोड़कर समस्त संसार में व्याप्त होगया था। इसलिये संकुचित दायरों में उन्हें सीमित करने का प्रयत्न इतिहास की दृष्टि में हास्यास्पद होगा।

हम उनके अधूरे काम को पूरा करें—यही बापू का सर्वोत्तम स्मारक होगा। हमें संसार को यह दिखाना होगा कि बापू का अपना देश उनके चरण-चिह्नों पर चलने का नम्र प्रयास कर रहा है। जब तक हमारे देश में सांस्कृतिक समन्वय और सर्व धर्म सम भाव का कार्यक्रम पूरा नहीं हो जाता, जब तक हमारे देश में किंचित-मात्र भी अस्पृश्यता बाकी है, जब तक हमारी महिलाएं समाज की बेड़ियाँ बनी हुई हैं, जब तक हमारे यहाँ एक भी अशिक्षित स्त्री या पुरुष है, तब तक हम कैसे गान्धी जी का स्मारक खड़ा करने के योग्य हो सकते हैं। इसलिये गाँधी जी का स्थायी और सर्वोत्तम स्मारक यही है कि हम उनके अधूरे छोड़े हुये काम को पूरा करने में जी जान से जुट जाँय।

अस्थि विसर्जन*

विश्वम्भरनाथ

तीर्थ राज प्रयाग के इस पवित्र सङ्गम तट पर बापू की यह दूसरी भौतिक यात्रा है। इसके पूर्व सन् १९३१ में ६ फरवरी के दिन बापू जीवन में एक बार और इस सङ्गम तट पर आये थे। उस दिन आज़ादी के एक महान सेनानी पण्डित मोती लाल नेहरू के पार्थिव अवशेष इसी तट पर चिता को समर्पित किये गये थे और बापू ने उनकी कीर्ति को सराहा था और पंडित जवाहर लाल और सारे देश को उस कठिन शोक पर धीरज बँधाया था। और आज ३० लाख से अधिक हम उनके शोकाकुल देशवासी स्वयं उनके अंतिम पार्थिव अवशेषों को गङ्गा और यमुना की लहरों को समर्पित करने के लिये एकत्रित हुये हैं।

बड़े से बड़े महाकुम्भ में भी इतनी भीड़ नहीं होती और यह अपार जन समुद्र बापू के प्रति गहरे प्रेम का परिचायक है। इतिहास का जब पहला पृष्ठ लिखा गया था तब से आज तक कभी किसी के निधन पर इतना विश्व व्यापी शोक नहीं मनाया गया। और इन लाखों नर-नारियों के चेहरे उदासी से भरे हुये हैं। रास्ते में जैसे जैसे अस्थि-घट-रथ आगे बढ़ता था आस पास बैठे हुये स्त्री-पुरुषों की आँखों से अविरल अश्रु धारा बहने लगती थी। जाति और राष्ट्रीयता, धर्म और समाज का भेद भाव भूल कर जन-जन उस महा पाप की पीड़ा को अनुभव कर रहा था जो गान्धी जी की हत्या से सारे देश में व्याप्त हो गई है।

पण्डित जवाहरलाल, मौलाना आज़ाद, सरदार पटेल और राम दास गान्धी ने रथ से उतार कर जिस समय अस्थि-घट डक-नौका पर रखा तो लाखों कलेजे टीस से कराह उठे। आसमान में सूरज के चारों ओर धुन्ध सी छा गई है। गढ़वाल और मद्रास रेजिमेण्ट के जिन सैनिकों ने वीरता के साथ इरीट्रिया, अल अमीन और यूनान की लड़ाइयां लड़ी थीं उनमें से अनेक अपने को ज़ब्त न कर सके और फफक-फफक कर रो रहे हैं। डक-नौका जल में उतर कर सङ्गम की ओर बढ़ रही है। यमुना की नील और गङ्गा की धवल लहरें नौका के प्रक्षालन के लिये होड़ सी बांध रही हैं। तट पर बैठे हुये १०१ मण्डलेश्वर वेद-मंत्रों की ध्वनि का उच्चारण कर रहे हैं और उनके साथ साथ हाफ़िज़ों, पादरियों, पारसी गुरुओं और सिखों के जत्थे क़ुरान, बाइबिल, ज़ेन्द-वस्ता और ग्रंथ साहब से उस परम पिता परमात्मा की स्तुति गान कर रहे हैं कि जिसकी दया का एक टुकड़ा मानव रूप धारण करके इस धरती पर आया था और जो हमारे दुर्भाग्य से उसी परम पिता में विलीन हो गया है।

नौका निरन्तर गहरे जल में चली जा रही है और कटीले तारों की परवाह न करके ५० हज़ार से अधिक नर-नारी गङ्गा की धारा चीरते हुये नौका की ओर बढ़ रहे हैं। वे कमर और गले तक पानी में आ गये हैं। उनकी मुद्राओं से अतीव व्यग्रता प्रकट होती है, मानो वे अपने बापू के अंतिम अवशेषों की हर तरह रक्षा करना चाहते हैं। गङ्गा और यमुना की धाराओं में भी काफ़ी व्यग्रता व्याप्त हो गई है। हर दो मिनिट के बाद सङ्गम में २०-२५ गज का अन्तर पड़ जाता है। इतनी महान थाती क्या इन पुण्य-सलिला धाराओं ने कभी समेटी है? युगों से इन्होंने विविध संस्कृतियों के सङ्गम को अपने तटों से निहारा है। समुद्र गुप्त से लेकर सम्राट हर्ष वर्धन तक अनेक पन्थों और मत मतान्तरों के पुजारी इसी सङ्गम तट पर इकट्ठा होकर विविध संस्कृतियों को एक सांचे में ढालकर समन्वयात्मक रूप देते रहे हैं। इसी सङ्गम तट पर अकबर महान ने एक महा कुम्भ के अवसर पर विराट सर्व धर्म सम्मेलन आयोजित किया था और इसी सङ्गम तट पर उस पार स्थित सोमेश्वर नाथ महादेव के मन्दिर को कट्टर सम्राट आलमगीर ने बड़ी जागीर अता की थी और इसी सङ्गम तट पर आज लाखों हिन्दू-मुसलमान-ईसाई-पारसी-सिख-बौद्ध-यहूदी मूक कण्ठ से इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि उनके बापू का जीवन इस देश की संस्कृतियों का सब से विराट सङ्गम था।

*१२ फरवरी, सन् १९४८ को अस्थि-विसर्जन के समय की रनिङ्ग कमेण्ट्री का एक अंश। आल इंडिया रेडियो, नई दिल्ली के सौजन्य से प्रकाशित—सम्पादक।

धरती के करुण निश्वास गुबार बन कर आसमान पर छा गये हैं। इस धुम्ब के उस पार अमरों की नगरी में आज बापू के महान स्वागत की तैयारी हो रही होगी। स्वर्ग आज धरती की क़ीमत पर खुशियां मना रहा होगा और मानवेन्द्र के अभूत पूर्व स्वागत के लिये तोरणद्वार सज रहे होंगे।

और हम मर्त्यलोक के वासी!

और एक अकेला कव्वा जल में घंसे हुये नर-नारियों के सर पर मंडराकर कांव कांव कर रहा है। और एक नौका दूर, बड़ी दूर उस पार के तट के निकट चली जा रही है और गङ्गा यमुना की लहरें शांत हो गई हैं, हवा थम गई है। और कुछ लड़कियां—

भज मन प्यारे राम रहीम!
भज मन प्यारे कृष्ण करीम!

की धुन चला रही हैं और बापू ने क्या उसी परम पिता परमात्मा की अखण्डता स्थापित करने के लिये अपने प्राणों की बलि नहीं चढ़ाई? और हमने धन और धरती के साथ-साथ उस प्रभु के बटवारे का भी आयोजन किया और तभी बापू की आत्मा ने तड़प कर पुकारा।

ईश्वर अल्ला तेरे नाम
सबको सन्मति दे भगवान!

और काश! इस पवित्र और महान बलिदान से हम इस शाश्वत सत्य को पहचान सकें। गङ्गा और यमुना की लहरें उसी सनातन समन्वयात्मक परम्परा की हमें याद दिला रही रही हैं।

डक-नौका सोमेश्वर महादेव के मंदिर के सामने स्थिर हो गई है। मंत्र-ध्वनि के बीच अस्थि विसर्जन का कार्य क्रम चल रहा होगा। और सङ्गम के इन्हीं तटों ने भारत के स्वाधीनता संग्राम के विविध युगों की कहानी लेख बद्ध की है। सन् १९२० के अगस्त मास में लोकमान्य तिलक की अस्थियां जब यहाँ विसर्जित की गई थीं तो भारत के नवयुग ने शपथ लेकर नया इतिहास गढ़ने की प्रतिज्ञा की थी। और तब से कितने ही देश भक्तों की अस्थियाँ यहाँ प्रवाहित हो चुकी हैं। और क्या संगम की इन्हीं धाराओं में आज से चार वर्ष पूर्व पूज्य बापू की जीवन-संगिनी बा की अस्थियां नहीं प्रवाहित हुई थीं और तब इन धाराओं ने इस महान देश की ग्लानि को लिपिबद्ध किया था और आज धरती का स्वर्ग राख बनकर इन अजस्र धाराओं में प्रवाहित किया जा रहा है। बा! तुम्हें बापू के लिये चार वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ी। और ये चार वर्ष हमारी लज्जा और ग्लानि के बोझ से इतने दबे हुये हैं कि उनके नीचे आज़ादी का नवांकुरित पौधा ठिठुर रहा है।

८ हवाई जहाज़ रह रह कर गगन से पुष्प वर्षा कर रहे हैं। और अस्थि नौका अपनी महान थाती को प्रवाहित कर के तट पर लौट रही है। पटेल, आज़ाद और नेहरू सबके चेहरे उदासी से भरे हुये हैं और लाखों नर-नारी किंकर्तव्य विमूढ़ से बैठे हैं। किन्तु उनका दिल अन्दर से एक स्पष्ट प्रतिज्ञा के बोझ से भारी हो रहा है। उनके नयन मूक निश्चय से भरे हुये हैं और रह रह कर उनके ओठों से अस्फुट ध्वनि निकल रही है—

बापू अमर हैं!

उनके अधूरे काम को हम निश्चय ही पूरा करेंगे!

विश्ववाणी

वर्ष ८, भाग १५]   फरवरी-मार्च: १९४८   [अङ्क २-३, पूरे अङ्क ८७

भारतीय इतिहास में नया दृष्टिकोण

प्रोफेसर मुहम्मद हबीब

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऐतिहासिकों की दृष्टि में भारत भूतकाल में भी एक था और भविष्य में भी एक रहेगा। भारत की एकात्मकता भारतीय नैतिकता का मूलतत्त्व है और भारतीय राजनीतिज्ञों की दृष्टि में एक केन्द्रीय शासन की आवश्यकता सदा वांछनीय रही है। हमारी अतीत की महत्त्वपूर्ण सफलतायें पाटलिपुत्र, कन्नौज, उज्जैन और दिल्ली में केन्द्रीय सत्ता स्थापित करने में रही हैं। भारत का दो राज्यों अथवा व्यवस्थापिका संस्थाओं में विभाजन, जिनमें नागरिकता का पृथक्करण हो और जिसके कारण विरोध की भावना जाग्रत हो तथा केवल सरकार में ही नहीं वरन् जनता में भी सर्वरूप से स्वतंत्रता और अलगाव की भावना की उत्पत्ति और उनमें से एक को धार्मिक तथा साम्प्रदायिक आधार पर स्थिति—यह एक ऐसी पैशाचिक भावना है जो हमारे देश के इतिहास में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती।

इंडसवैली युग तथा उससे पूर्व की शताब्दियों में भारतीय एकता और संस्कृति के संस्थापकों के विषय में स्मृति दिलाने वाली कोई गाथा अथवा गीत उपस्थित नहीं है किन्तु अपनी ऐतिहासिक स्मृति में हिन्दू अथवा इन्डियन (दोनों शब्द भारतीय सीमा पर स्थित सिन्धु नदी के आधार पर बने हैं) संस्कृति में एक्य भावना के प्रादुर्भाव का विवेचन सम्भव है। इसका आधार है 'धर्म' जो सर्व देशीय नैतिकता का नियम है और जो मनुष्य के मनुष्य से सम्बन्ध का द्योतक है। हिन्दू धर्म का कोई विशेष संस्थापक नहीं है और न विशेष निजी दृष्टि कोण है और यदि उदार दृष्टि से देखें तो न ऐसी दैवी पुस्तक है, जिसमें विश्वास करना सबके लिये आवश्यक हो।

ख्वारिज्म विद्वान अबू रैहान अलबेरूनी ने ११ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतीयों के धर्म में समस्त सिद्धान्तों की गवेषणा करते हुये पुनर्जन्म के नियम में और एक परोक्ष ईश्वर के रूप में दो निष्कर्ष निश्चित किये थे। उसके अनुसार किसी समझदार हिन्दू ने ईश्वर प्रतिनिधि स्वरूप निर्मित मूर्ति की पूजा का स्वप्न में भी विचार नहीं किया था परन्तु दार्शनिक नास्तिकवाद हमारे देश में सर्वदा प्रचलित रहा है और पुनर्जन्म में विश्वास भी इतना सर्वजनीन रहा है जैसा कि अलबेरूनी का विचार है।

उसकी दृष्टि में साधारणतः धार्मिक पारस्परिक विवादों का उनमें अभाव है। अधिक से अधिक उनका विवाद शाब्दिक होता है लेकिन यह कभी आत्मा किंवा

शरीर अथवा द्रव्य को धार्मिक विवादों के दाव पर नहीं लगाते थे। इतने बड़े देश में यह सम्भव नहीं था कि समस्त व्यक्ति एक ही विचारधारा का अनुकरण करते अथवा रहन सहन का एक ही स्वरूप अपनाते। अतएव लिखित इतिहास के प्रारम्भ से प्रत्येक भारतीय, यदि उसमें इतनी क्षमता थी, तो किसी भी प्रकार का सम्प्रदाय, दार्शनिक शाखा, धार्मिक संस्था या पंथ स्वतंत्रता पूर्वक स्थापित कर सकता था। हिन्दू कालीन नाम से पुकारे जाने वाले काल की महत्ता इन्हीं साम्प्रदायिक शाखाओं के इतिहास के कारण है। इन सांस्कृतिक शाखाओं का स्वतंत्र विकास सहिष्णुता के सिद्धांत पर ही अवलंबित था। धार्मिक अत्याचार हमारे देश के लिए एक विदेशी भावना रही है किन्तु इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक भारतीय के लिए किसी न किसी शाखा का सदस्य होना अनिवार्य हो गया। जिस व्यक्ति को अपने आचरण के प्रति किसी सांस्कृतिक शाखा की संरक्षता प्राप्त न थी वह हेय समझा जाता था।

इस्लाम के आगमन से हमारे देश के साधारण जीवन में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा परन्तु राजनीतिक अभिप्राय से जो पर्दा हमारे देश के मध्य कालीन इतिहास पर डाला गया है उसके स्पष्टीकरण के हेतु मैं कुछ कहने पर विवश हूँ। सोलहवीं शताब्दी के योरोप में विकसित Sovereignty और State शब्दों का स्पष्टीकरण करने के लिए अरबी अथवा फारसी के उच्चतम साहित्य में कोई शब्द सुलभ नहीं है। कुरान में 'अल्लाह' और उसके 'पैगम्बर' शब्द प्रयोग में आये हैं किन्तु गत १३ शताब्दियों में समस्त शिक्षित मुसलमानों का इमाम अबू हनीफा से मतैक्य रहा है कि हज़रत अली के अवसान के पश्चात् अल्लाह और पैगम्बर के राज्य की भावना प्रचलित रखना व्यर्थ है। तदुपरांत समस्त मुसलिम राज्य में ऐहिक संस्थायें, राजनीतिक अभिप्राय से-राजनीतिकों की गुटबंदियां और मध्य श्रेणी की समस्याओं के सुलझाने का प्रयत्न ही होता रहा है। न भारत में और न अन्य देशों में मध्यकालीन इस्लाम ने मुस्लिम शासकों से नियंत्रित सरकार के अतिरिक्त किसी 'मुस्लिम' राज्य का सिद्धांत उपस्थित किया है—यद्यपि एक प्रकार की आत्म संतोषदायक स्वर्ण-स्वप्न की भावना रही है कि ईसा मसीह के वापिस आने पर अथवा इमाम महदी के पुनरागमन पर अल्लाह और उसके पैगम्बर की सरकार एक बार फिर सम्भव हो सकेगी, प्रस्तुत राज्यों और उनके संभाव्य स्थानापन्न राज्यों के बारे में मुस्लिम धार्मिक उच्चतर भावनाएं इमाम हम्बल तथा इमाम अबू हनीफा की रीतियों की समर्थक रही हैं और उनको पापपूर्ण संस्था समझा गया है जिनमें अल्लाह के उपासकों की सेवा करने की आज्ञा नहीं है।

भारतीय मुसलमानों के धार्मिक साहित्य में दिल्ली के शासकों के प्रति जहां तक संभव हुआ है पूजा भाव नहीं रहा है और तत्कालीन शासकों का उल्लेख भी नहीं हुआ है।

इस देश के अधिकांश मुसलमानों का निश्चय ही भारतीय पितृत्व है। यह सत्य है कि असंख्य मुस्लिम कुटुम्ब अपना विदेशी उद्गम घोषित करते हैं परन्तु यह पूर्णतः कल्पित है।

उन दिनों में जब हम विदेशी सत्ता के भयंकर रूप के कारण जिसका विचलित होना असम्भव सा प्रतीत होता था राजनीतिक विषाद से पीड़ित थे, हमने मध्य कालीन राजपूत राजा तथा तुर्की सुलतानों के नामों से विशेष लाभ उठाया। अब उस दृष्टिकोण की आवश्यकता नहीं है और इस सत्य का उद्घाटन करना पड़ेगा कि समस्त मध्य कालीन युग में शासन पूर्णतया उच्च वर्ग के हाथों में था। उनमें से कुछ ने जनता के हितार्थ कार्य किया तथा अन्यों ने वस्तुतः नहीं परन्तु वे सब उच्च वर्ग के सर्वोत्तम अंश थे—हिन्दुओं में राजपूत और मुसलमानों में तुर्क और अफगान अमीर और उच्च वर्ग के लोग। युद्ध तथा राजनीति एक खेल था जिसे केवल उच्च वर्ग ही खेलने के अधिकारी थे। उस समय का शासन किसी भी दृष्टि से प्रजातन्त्र शासन न था। दिल्ली के मुगल तथा पूर्व मुगल कालीन शासन के अधिकारियों का विश्लेषण करने पर वह सत्य तथा दुःखप्रद तथ्य ज्ञात होगा कि भारतीय उत्पत्ति के मुसलमान उच्चतम सैनिक तथा इतर पदों से पूर्णतः वंचित रखे जाते थे। एक भारतीय मुसलमान को दिल्ली साम्राज्य में एक उच्च मन्सब प्राप्त करना उतना ही असम्भव था जितना एक हिन्दू शूद्र को राजस्थान की गद्दी प्राप्त करना।

भारतीय इतिहास का मुस्लिम काल नाम से पुकारा जाने वाला युग वस्तुतः तुर्की काल है जिसमें दो बार

अफगान सत्ता का छींटा लगा हुआ है। उस काल को मुस्लिम काल के नाम से पुकारना, जब भारतीय मुसलमानों को, केवल उनके भारतीय होने के दुःखद तथ्य के कारण समस्त उच्च पदों से वंचित रखा जाता था, कितना व्यंगात्मक मालूम देता है। यदि हम एक भद्दी उपमा का प्रयोग कर सकें तो हम कह सकते हैं कि मध्य कालीन इतिहास में भारतीय मुसलमानों का स्थान अंग्रेजी काल के ईसाइयों के स्थान से भिन्न न था। इस्लाम का प्रजातंत्र भाव तथा समता का सिद्धान्त देशी मुसलमानों में एक शक्तिशाली सामाजिक प्रवर्तक शक्ति रहा है परन्तु मध्य काल को इस्लामी प्रजातन्त्र किंवा इस्लामी समता का व्यंजक मानना व्यर्थ होगा। मध्यकालीन दो बड़े साम्राज्यों में से एक ने भी भारतीय मुसलमानों को उतना प्रतिनिधित्व न दिया जितना उनको वर्तमान कांग्रेस काल में मिला है।

सारांश यह है कि हिन्दू काल की शासन सत्ता उच्च वर्ग के हाथ में थी। वह कभी सांस्कृतिक शाखाओं अथवा उनके नेताओं के हाथ में न थी। तुर्क काल में भी राजनीतिक संगठन का यही सिद्धान्त प्रचलित रहा, केवल अधिकारी कर्मचारी वर्ग परिवर्तित हो गया।

इस चिर सम्मानित प्रणाली में जो अव्यावहारिकता होती जा रही थी, अकबर महान ने दो सुधार करने का प्रयत्न किया। प्रथम तो उसने महान सफलता के साथ मुगल साम्राज्य के अधिकारी वर्ग में उच्च पदीय तुर्क एवं राजपूतों का गठबन्धन किया। दूसरे सुलह-ए-कुल (विश्व शान्ति) की नीति का अनुसरण करते हुए, उसने समस्त भारतीय सांस्कृतिक शाखाओं का एकीकरण करने का भीषण प्रयास किया। अर्ध-धार्मिक तथा अधार्मिक क्षेत्रों जैसे शिल्प कला, चित्र कला एवं गायन विद्या में उसकी सफलता महत्त्व पूर्ण थी। परन्तु शुद्ध धार्मिक क्षेत्र में वह पूर्ण रूप से असफल रहा। हमें इस पर आश्चर्य न करना चाहिए कि हमारे महान से महान मध्य कालीन शासक उस आदर्श को प्राप्त करने में असफल रहे जिसे अकेला भारतीय लोकमत प्राप्त कर सकता है।

अंग्रेजी शासन सत्ता अपने अन्य योरोपीय प्रतियोगियों के विरोध में सफल हुई क्योंकि अन्य बातों के साथ ही साथ वह एक विद्वान सांस्कृतिक शाखा का सर्वाधिकार स्थापित करने के लिये सचेष्ट न थी, अपितु तत्कालीन स्वार्थी भारतीयों एवं ऐसे व्यक्तियों की सहायता से जिनका निर्माण विदेशी सत्ता के पोषणार्थ किया गया था, केवल एक आंग्ल शासक वर्ग का निर्माण करना चाहती थी। अतः एक ओर तो उसने सांस्कृतिक शाखाओं के संघर्षों को आर्थिक सहायता प्रदान की और अपने लिए उनके मध्य में एक मात्र सम्भावित न्यायकर्ता की प्रतिष्ठा स्थापित कर ली तथा दूसरी ओर उसने अनुभव किया कि एक शासन सत्ता होने के नाते वह सफलता पूर्वक कार्य न कर सकेगी जब तक कि वह सांस्कृतिक शाखाओं को उनकी शक्ति के विस्तृत क्षेत्र से विरत न कर दे। वर्तमान न्यायाधिकार के स्थापित होने का एवं आंग्ल-भारतीय कोड्स के प्रकाशन का यही कारण है परन्तु उसे भी एक ऐतिहासिक दृष्टान्त का अनुसरण करना पड़ा। प्राचीन काल में भी दण्ड-विधान शासन का एक कर्तव्य रहा है। मुगल साम्राज्य ने अपनी निजी 'दण्ड-विधान प्रणाली का विकास किया था जो कि शरियत तथा शास्त्रों से स्वतन्त्र थी और साथ ही निर्णय के सिद्धान्तों से युक्त थी जहां कि दो विभिन्न सांस्कृतिक शाखाओं का सम्बन्ध था।

इस समस्या पर मध्य युग की परिस्थिति के दृष्टिकोण से विचार नहीं करना है। परिस्थिति पूर्णतः परिवर्तित हो गई है। एक ओर अकबर तथा अन्य पूर्व शासक हमको केवल अखिल भारतीय अथवा साम्प्रदायिक शासन प्रदान कर सके थे, परन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन ने सर्व प्रधान किंवा व्यवस्थापक राज्य प्रदान किया है। दूसरी ओर ब्रिटिश शासन की दो शताब्दियों में सांस्कृतिक शाखाओं के उद्देश्यों के साथ साथ मूल तत्त्व भी पूर्णतः परिवर्तित हो गये हैं। प्राचीन सांस्कृतिक शाखायें अपने सदस्यों को मोक्ष मार्ग प्रदर्शित करती थीं। साथ ही साथ वे अपनी शाखा के प्रति ही 'स्वर्ग-विधान' प्रस्तुत किया करती थीं तथा इतर सांस्कृतिक शाखाओं को उस स्वर्ग के उपयोग से वंचित ठहराया करती थीं परन्तु इस विवाद-ग्रस्त विषय का निर्णय केवल परलोक में ही हो सकता था। अस्तु इस लोक में धार्मिक-सहिष्णुता के सिद्धान्त के प्रचलन में कोई कठिनाई प्रस्तुत न हुई। वर्तमान सांस्कृतिक शाखाओं का दृष्टि-

कोण पूर्णतः परिवर्तित हो गया है। उन्होंने समान रूप ग्रहण कर लिया है और वे दूसरे सम्प्रदाय तथा समस्त देश के अहित में भी अपना हित-साधन चाहते हैं। देश में उल्लेखनीय कोई भी धार्मिक-संघर्ष नहीं है। आज प्राचीन ऐतिहासिक शाखाओं के आर्थिक लाभ ही संघर्ष का विषय बन रहे हैं और क्योंकि आध्यात्मिक लाभ-मूल्य के विपरीत, द्रव्य-लाभ ही संघर्ष का कारण समझे जाते हैं, अतः एक शाखा बिना दूसरों के अहित के कुछ नहीं प्राप्त कर सकती। यह संघर्ष दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। वर्तमान दलों तथा ऐतिहासिक सांस्कृतिक शाखाओं में सम्बन्ध केवल भौतिक उत्पत्ति का है आध्यात्मिक लाभ जो उन प्राचीन साम्प्रदायिक शाखाओं का जीवन था, पूर्णतः विलीन हो गया है। भारतीय राष्ट्रवादी के दृष्टिकोण से इसका दुःखद पक्ष यह है कि ऐतिहासिक साम्प्रदायिक शाखाएं अधिकाधिक भौतिकवाद की ओर ही नहीं झुक रही हैं वरन् मुझे खेद पूर्वक कहना पड़ता है कि वे दलबन्दी की ओर जा रही हैं। वर्तमान युग में भी सम्प्रदाय या दल का आधिपत्य व्यक्ति के ऊपर उतना ही पूर्ण है, जितना कि मध्य युग में था। आज भी किसी भारतीय समुदाय के सदस्य होते हुए भारतीय होना असम्भव ही है। मेरा विश्वास है कि इस देश में कोई भी समाधि-स्थल ऐसा नहीं है, जिस पर प्रत्येक भारतीय का समान अधिकार हो। उनमें प्रवेश केवल साम्प्रदायिक रीत के अनुकूल ही सम्भव है। सन् १८७२ के कानून की थोड़ी सी अपर्याप्त धाराओं के अतिरिक्त, भारतीय नागरिकता में विवाह अथवा उत्तराधिकार सम्बन्धी नियमों का कदापि उल्लेख नहीं है। भूतकाल से भी अधिक सबल सामाजिक रीतियां तथा सामाजिक पक्षपात व्यक्तिगत दासता को अधिकाधिक सबल बना रहे हैं।

मेरा विश्वास है कि यह वर्तमान की प्रमुख चुनौती है। कुछ अवशेष रीतियों के अतिरिक्त न तो प्राचीन सांस्कृतिक शाखाओं की विशेष आध्यात्मिक विचार धारा और न जीवन के विशेष प्रकार का अब कोई अस्तित्व शेष रहा है। अकबर के समय से ही साधारणतया यह स्वीकार कर लिया गया है कि विभिन्न धर्मों के आधार भूत सिद्धांतों में कोई विशेष मतभेद नहीं है, और हमारे साम्प्रदायिक नेता कोई धार्मिक प्रश्न भी उपस्थित नहीं करते। वर्तमान साम्प्रदायिक व्यक्ति उस परम्परा का प्राणी है जो बर्बरता के समकक्ष ही दूषित है। भावी नागरिक जन साधारण के हितार्थ नियोजित नियमों की सृष्टि होगा। अतएव भारतीय सरकार का प्रमुख कार्य 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक शाखा' किंवा 'राष्ट्र-सम्प्रदाय' की सृष्टि है जिसमें समस्त प्राचीन सांस्कृतिक शाखाओं की अच्छी बातें सम्मिलित हों, तथा हमको स्वार्थपरता की दुष्ट-प्रवृत्ति से बचावें जो हमारे जीवन को पूर्णतः निमग्न करने को प्रयत्नशील हो रही हैं। धार्मिक मतभेद हैं और रहेंगे। इसमें कोई हर्ज भी नहीं है परन्तु यदि यह क्रांति सम्पूर्ण देश के लिए एक राष्ट्र, एक नियमावली तथा एक राष्ट्रीय सम्प्रदाय की सृष्टि करने में सफल नहीं होती, तो निस्सन्देह हमको एक ऐसी अराजकता के युग का सामना करना पड़ेगा जिसको हमारे देश ने अपने विस्तृत और सुशान्त इतिहास में कभी नहीं देखा है।*

* इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के सभापति के पद से दिये गये भाषण का एक अंश

मल्ल जाति और उसका प्रसार

त्रिपिटिकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

मल्ल वाशिष्ठ वंशी क्षत्रिय थे। उनके गोत्र के लिये पालि ग्रंथों में सर्वत्र 'वासिट्ठ' शब्द का प्रयोग हुआ है। जिस समय भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण कुशीनगर में हुआ और उनके परिनिर्वृत्त होने का समाचार चारों ओर फैला, तब पावा के मल्लों ने कुशीनगर के मल्लों के पास सन्देश भेजा—"भगवान भी क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं, हमें भी धातु मिलनी चाहिए[1] !"

अट्ठकथाओं में आया है कि मल्ल नाम का एक जानपद राजकुमार था, जिसके रहने का जनपद भी रूढ़ि शब्द से मल्ल कहा जाने लगा।[2] मल्ल-जानपद-राजकुमार इक्ष्वाकु परम्परा का था। महापरिनिर्वाण सूत्र से विदित है कि मल्ल, कोलिय, मौर्य, लिच्छवी, शाक्य, बुली आदि सब क्षत्रिय थे और सब अपने को इक्ष्वाकु परम्परा का मानते थे। वस्तुतः कुशीनगर, अनूपिया और पावा के मल्ल देवदह, रामग्राम आदि के कोलिय, पिप्प-लि वन के मौर्य, वैशाली के लिच्छवी, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप्प के बुली, मिथिला के विदेह.[3] कुण्ड ग्राम के ज्ञात्रि[4] और केसपुत्त के कालाम[5] एक ही ओक्काक (= इक्ष्वाकु) वंश के थे।

मल्ल जाति सम्पूर्ण मल्ल राष्ट्र में नहीं, प्रत्युत उसके समीपवर्ती चतुर्दिक प्रदेश में फैली हुई थी। भगवान के परिनिर्वाण के पश्चात् कुछ दिनों तक इस जाति का क्रमिक प्रसार होता रहा, किन्तु जब बुद्ध-परिनिर्वाण के तीसरे वर्ष लालची अजातशत्रु द्वारा लिच्छवियों की स्वतंत्रता हड़प ली गई, ठीक उसके बाद ही मल्ल जाति की भी स्वतंत्रता हर ली गई। जो मल्लराष्ट्र भारत के इतिहास में एक प्रमुख धार्मिक और राजनैतिक स्थान रखता था तथा तत्कालीन एक शक्तिशाली राज्य होता जा रहा था, वह मगध-राज्य में मिला लिया गया।[6] फिर भी मल्ल जाति अपने शौर्य और स्वभाव को ज्यों की त्यों बनाये रही।

पीछे पुष्यमित्र के समय में इस जाति को गहरा धक्का लगा और हर्ष के समय तक आते-आते अनेक अत्याचारों को सहना पड़ा। सम्भवतः गुप्त-काल में भी इन्हें सताया गया था। वस्तुतः उन्हीं दिनों मनुसंहिता आदि ग्रन्थों की रचनायें हुईं, जिनमें सारे बौद्ध धर्मा-वलम्बियों को फटकारा गया[7]; उन्हें अपनी स्मृतियों में शूद्रों की गणना में रखा गया। यही नहीं अंग, बंग, कलिंग, सुराष्ट्र, मगध आदि बौद्ध-प्रधान देशों में यात्रा करने के अतिरिक्त जाने पर पुनः संस्कार करने का विधान बनाया गया।[8]

मल्लों ने बौद्ध होने के कारण जाति-वाद की संकीर्णता को न मानकर पीछे ब्राह्मणों की कन्याओं को भी लेना प्रारम्भ कर दिया था। उस समय जाति-वाद यों ही ढीला पड़ गया था। पीछे जब गुप्तों के काल के बाद कन्नौज के प्रभुत्व के समय में जातियों का अलग-अलग गुट बनना प्रारम्भ हुआ, तब कितने ही मल्ल (जिनका कि ब्राह्मणों के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध पूर्व से था) ब्राह्मणों में में चले गये और कितने ही क्षत्रियों में।

१—"अथ खो पावेय्यका मल्ला कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—भगवापि खत्तियो, मयम्पि खत्तिया।" आदि।

२—मज्झिम नि० अट्ठ० १,२,३, दीघ नि० अट्ठ० ३,१, उदानट्ठकथा २, १० आदि।

३—लिच्छवी और विदेहों के राष्ट्र का नाम वज्जी था। वज्जी कोई अलग जाति नहीं थी। महापरिनिर्वाण सूत्र की टीका में लिखा है—"रट्ठस्स पन वज्जी समञ्ञा। अर्थात् वज्जी राष्ट्र का नाम था।

४—वर्तमान् जथरिया जाति।

५—वस्तुतः 'कलवार' शब्द कालाम का ही रूपान्तर है।" हैहय और कलचुरी शब्द से कलवार की उत्पत्ति न होकर कालाम से ही हुई है।

६—D. R. Bhandarkar, Carmichael Lectures, 1918, P. 79.

७—झल्लो मल्लश्च राजन्या व्रात्यालिच्छविरेव च।

८—अंग, वंग कलिंगेषु सौराष्ट्र मगधेषु च।

तीर्थ यात्रा बिना गत्वा पुनः संस्कारमेर्हति॥

—स्मृतिनां समुच्चयः पृष्ठ ८५।

वर्तमान सैंथवार, भूमिहार, बिसेन, चनऊ, पयासी के मिश्र और मलांव पांड़े जातियाँ मूल में मल्ल जाति के अन्तर्गत थीं।[९]

प्राचीन मल्ल राष्ट्र के भूमि-भाग में अब भी मल्लों के राज्य वर्तमान हैं, परन्तु उन राज्यों के मल्ल शासक अपने को मल्ल-वंशज न मानकर ब्राह्मणधर्मी क्षत्रिय समझते हैं। महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन का कहना है कि पडरौना के राजा साहब (जो आजकल सैंथवार कहे जाते हैं), हथुवा तथा तमकुही के बगोछिया (जो आजकल भूमिहार ब्राह्मण कहे जाते हैं), एवं मझौली के राजा साहब (जो आजकल बिसेन राजपूत कहे जाते हैं)—एक ही मल्ल-क्षत्रियों के वंशधर हैं।[१०]

९—विस्तार पूर्वक जानने के लिए देखिये मेरे "कुशी-नगर का इतिहास" का दशम प्रकरण।

नटश्च करणचैव खसो द्रविण एव च ॥ देखिये, मनुसंहिता तथा जैमनी ब्राह्मण १, २१४ ब्रं० सं० ५, २१, ४-५।

१०—देखिये, पुरातत्त्व निबन्धावली पृष्ठ १११

हिन्दू-मुसलमान

श्री नरेन्द्र शर्मा

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान, पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

मैं तुम्हें समझता रहा म्लेच्छ,
तुम मुझे वणिक औ दहकानी !
सदियों हम दोनों साथ रहे
यह बात न अब तक पहचानी—
दोनों ही धरती के जाये
हम अनचाहे मेहमान नहीं !

मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

हैं अलग अलग हम दोनों के
व्यवहार-मान, जीवन-दर्शन;
सांस्कृतिक स्रोत दोनों के दो
करते दो भावों का सिंचन;
पर दो होकर भी मिल न सके,
तो दोनों का कल्याण नहीं !

मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

तुममें देशान्तर की समष्टि,
मैं कालान्तर का दृष्टि-दीप !
जीवन सागर के दो मोती
हैं देशकालगत युगल सीप !
मोती को हम मिट्टी समझे
क्या दोनों का अज्ञान नहीं ?

मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

इस्लाम-पूर्व की संस्कृतियां,
भाषायें तुमने अपनाईं।
इस्लाम-पूर्व के शाहों की
गाथायें कवियों ने गाईं !
फ़ारस तुर्की को अपनाया
क्या अपना हिन्दुस्तान नहीं ?

मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

क़ाफ़िर थे, फिर भी अपनाये
इस्लाम पूर्व के ईरानी !
तुमने मंगौलों से सीखी
रण-चतुराई औ ख़ाक़ानी !
इस्लाम-पूर्व के हिन्द देश की
क्यों तुमको पहचान नहीं ?
मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

मैं हिन्दू हूँ, बोदा हिन्दू,
करता था तुमसे असहयोग !
था छूतभूत से दबा हुआ
पर घुसनेपन का रहा रोग !
मेरी जागृति का अमृत किन्तु
होगा तुमको विषपान नहीं !
मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

अब तो सदियों की नींद खुली
इतिहास, ज्ञान, विज्ञान मिले !
मुरझाये थे जो प्रेमफूल
कर नवजीवन-रसपान खिले !
गुल-कमल खिलेंगे साथ-साथ,
यह हिन्द अभी वीरान नहीं !
मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

मैं देशान्तर-व्यापी मुसलिम-
इतिहास करूँगा हृदयंगम !
पहले भी तो यवनों के संग
था हुआ हिन्दियों का संगम !
क्या हम दोनों, दोनों का ही
कर सकते अब सम्मान नहीं !
मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं !

तुमको प्यारी है खुद्दारी
मुझको विनम्रता आभूषण !
तुम आसमान के अभिलाषी
मुझको है प्रिय धरती के कण !
पर क्या भू में मिलती न देह ?
नभ में खो जाते प्राण नहीं ?
मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

जन-क्रान्ति जगाने आई है,-
उठ, हिन्दू ! उठ, ओ मुसलमान !
संकीर्ण भेद-संदेह त्याग,
उठ, महादेश के महाप्राण !
क्या पूरा हिन्दुस्तान न यह ?
क्या पूरा पाकिस्तान नहीं ?
मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं !

[नया साहित्य]

युक्त प्रान्त के किसानों की स्थिति

प्रो० जी० डी० अग्रवाल एम० ए०

गत महायुद्ध ने, जो सितम्बर १९३९ में प्रारम्भ होकर लगभग छै वर्षों तक चलता रहा, किसानों के आर्थिक जीवन पर काफ़ी प्रभाव डाला है। मोरचे पर सैनिक को रसद पहुँचाने और अनाज का आयात बन्द होने के कारण अन्न और दूसरी जिन्सों की क़ीमतें काफ़ी चढ़ गई थीं। इस छोटे से लेख में हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि युक्त प्रान्त पर इस मँहगाई का किस हद तक प्रभाव पड़ा और खाद्यान्न की कमी और औद्योगिक माँगों को पूरा करने के लिये कहां तक फ़सल की पैदावार बढ़ाई गई।

फ़सलों की थोक क़ीमतें

नीचे के आँकड़ों में सन् १९३९-४०से १९४६-४७ तक महत्वपूर्ण अनाजों की जो क़ीमतें रही हैं उनका ब्योरा दिया गया है।

[तालिका नं० १]

कानपुर की मण्डी में प्रतिमन पीछे ख़ास ख़ास अनाजों की क़ीमतें

अनाज	१९३९-४०	१९४०-४१	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४४-४५	१९४५-४६	१९४६-४७
चावल	४-७-०	५-०-०	६-१०-६	१०-०-०	२०-०-०	२०-०-०	....	२३-११-०
गेहूं	३-११-०	३-८-०	६-६-०	१३-४-०	११-८-०	११-११-०	...	१८-०-०
जौ	२-११-०	२-४-०	४-७-०	६-०-०	६-८-०	७-८-०	१२-०-०	१६-०-०
चना	३-५-३	२-१०-०	४-१२-६	९-०-०	६-८-०	६-८-०	१० ८-०	१६-०-०
ज्वार	२-१२-३	२-४-०	३-३-३	६-४-०	७-०-०	५-०-०	६-८-०	१०-०-०
बाजरा	३-२-३	२-८-०	३-३-३	६-१२-०	७-०-०	५-८-०	७-०-०	१०-०-०
मक्का	२-१३-०	२-१२-०	३-१-०	६-८-०	६-०-०	५-०-०	६-०-०	१०-०-०
अरहर	३-१४-०	३-५-०	५-०-०	१२-०-०	१३-०-०	१३-८-०	१३-०-०	२०-०-०
सरसों	५-११-०	३-१३-०	४-१०-०	११-०-०	१२-८-०	१३-०-०	१४-०-०	२२-१३-९
अलसी	५-११-०	३-१०-०	४-१२-०	१०-८-०	७-०-०	१०-०-०	११-८-०	१६-०-०
कपास	१९-१५-६	१५-४-०	१४-१२-०	२८-०-०	३२-०-०	२५-०-०	२६-०-९	३६-०-०
मसूर	४-११-३	२-४-०	४-८-०	८-०-०	७-८-०	९-८-०	९-८-०	१६-०-०

सन् १९३९ को बुनियादी वर्ष मानकर हम यह देखते हैं कि प्रारम्भ में गेहूँ, चावल, जौ की क़ीमतें लगभग ५० फ़ीसदी बढ़ीं, चना आदि की क़ीमतों में कोई ख़ास अन्तर नहीं पड़ा और तिलहन व कपास की क़ीमतें घट गई। सन् १९४२ में जापान के युद्ध में प्रवेश करने के बाद अनाज, तिलहन और कपास तक की क़ीमतें बहुत अधिक चढ़ गई। चावल के दाम ४२० प्रतिशत गेहूँ और जौ के दाम ३२० और ३०० प्रतिशत तक चढ़ गये। अन्य दूसरी खेतिहर जिन्सों की दरें भी दुगनी-तिगुनी तक बढ़ गई। केवल चावल को छोड़ कर अन्य अनाजों के भाव १९४५-४६ तक नहीं बढ़े। सन् १९४६-४७ में क़ीमतें यकायक बहुत चढ़ गई। चावल और गेहूं के दाम क्रमशः ६०० और ४९० प्रतिशत बढ़ गये जब कि तिलहन और गुड़ के दाम चार या पाँच गुना बढ़ गये। क़ीमतों के इस प्रकार चढ़ने के कारण ख़राब फ़सल, तिलहन का निर्यात, अन्तर्प्रान्तीय माँग और दुनिया की मौजूदा आर्थिक दुरावस्था। कण्ट्रोल की मशीनरी के ख़स्ता हो जाने के कारण भी क़ीमतों में इतनी बढ़ती होगई। बढ़ती क्षेत्रों से घटती क्षेत्रों में माल की निकासी न होने के कारण विविध क्षेत्रों की क़ीमतों में इतना ज़मीन-आसमान का अन्तर पड़ गया है। जैसे ही विविध क्षेत्रों की क़ीमतों में अन्तर पड़ता है लोगों में चोरी से उन क्षेत्रों में माल लेजाने की कैफ़ियत पैदा होजाती है और क़ीमतों में सट्टा शुरू होजाता है। कण्ट्रोल वाला अनाज बाज़ार से ग़ायब होजाता है और क़ीमतें और चढ़ जाती हैं।

खेती का कुल रक़बा

खेती के कुल रक़बे पर ऊंची क़ीमतों और 'अनाज अधिक पैदा करो' नीति का जो प्रभाव पड़ा है वह नीचे की तालिका से स्पष्ट है—

[तालिका नं० २]

युक्त प्रान्त में १९३७-४० में एकड़ों में खेती की बढ़ती या घटती लाखों में

औसत १९३७-३८ १९३९-४०	खेती का रकबा ३५६.३	अधिक खेती ८६.७	आबपाशी का रकबा
१९४०-४१	२.९	—९.०	—३.१
१९४१-४२	—०.९	—१३.४	—६.४
१९४२-४३	७.३	१.६	—९.१
१९४३-४४	९.३	१.९	—७.५
१९४४-४५	१०.०	०.९	—६.३
१९४५-४६	११.५	६.४	—३.१

इस तरह हम देखते हैं कि १९३७-४० में खेती के रक़बे पर १९४५-४६ में ११.५ लाख एकड़ अथवा ३.४ प्रतिशत की वृद्धि हुई। जहाँ तक एक से अधिक फ़सल की बोआई का सम्बन्ध है इसमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा क्योंकि १९४०-४१ और १९४१-४२ और बाद के वर्षों में कोई एक से अधिक फसल उपजाने में कोई ख़ास वृद्धि नहीं हुई। सन् १९४५-४६ में दोफ़सली रक़बे में ६.४ लाख एकड़ अथवा ७.४ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इससे अनुमान होता है कि 'अधिक फ़सल पैदा करो' आन्दोलन के आगे अच्छे परिणाम हो सकते हैं। आबपाशी के रक़बे में ६ से ९ लाख एकड़ तक की कमी होगई है यद्यपि किसी किसी क्षेत्र में नहरों, ट्यूब वेल और कुओं से सिंचाई का रक़बा बढ़ा है। युक्तप्रान्त में आबपाशी के रक़बे का विस्तार बाँध की सिंचाई में कमी होने के कारण घटा है। इन बाँधों पर हक़ मालिकाना ज़मीदारों का था और ज़मीदार इन बाँधों की सुरक्षा के लिये कोई प्रयत्न नहीं करते। सन् १९४३ के आबपाशी क़ानून या १९३९ के बङ्गाल तालाब उन्नति क़ानून जैसी चीज़ की युक्तप्रान्त को भी आवश्यकता है। इस क़ानून के बनने से सरकार लोगों के निजी तालाबों और कुओं की मरम्मत स्वयं कराकर उसका ख़र्च बाद में मालिकों से वसूल कर सकेगी।

फ़सल पर प्रभाव

नीचे लिखी तालिका से युद्ध के दौरान में विविध फ़सलें उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों की पैदावार में १९३७-४० की औसत से जो अन्तर पड़ा वह पाठकों को मालूम हो जायगा।

[तालिका नं० ३]

बढ़ती (+) घटती (—) लाखों एकड़ में

१९३७-३८ से १९३९-४० का औसत		१९४०-४१	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४४-४५	१९४५-४६	१९४६-४७
चावल	७८.४	-२.८	-१०.२	-५.४	-४.६	-४.१	.५.३	-१.४
गेहूँ	८०.५	-२.६	-३.३	-६.५	-५.३	-६.१	—१.५	०.८
जौ	३.८	-०.३	२.१	३.३	४.०	२.४	५.६	....
ज्वार	२१.६	-०.४	-१.१	२.३	१.२	०.१	२.८	०.६
बाजरा	२१.८	२.५	७.७	८.६	५.२	६.६	६.७	६.१
मक्का	२०.३	०.८	-१.१	३.९	४.३	३.९	५.०	३.९
चना	५५.६	-४.	-२.७	५.२	८.०	५.६	५.८	७.१
तिलहन	१०.५	-०.३	-१.२	-३.०	३.२	-३.०	-२.५	-३.३
रुई	५.७	-१.८	-१.४	-२.६	-२.०	-३.७	-३.८	-३.९
चीनी	११.०	-३.२	-१.५	—०.४	३.४	२.७	-०.६	१.३
टोटल	...	-५.२	-१२.६	१०.७	१५.०	१०.७	११.४	१०.९

चावल और गेहूं दो महत्वपूर्ण अनाज हैं किन्तु युद्ध के दौरान में दोनों की फसल का रकबा सन् १९३७-४० के रक़बे से कहीं कम है। सरकार के नाज वसूली के कार्य क्रम में किसानों को यह डर दिखाई दिया कि कहीं सरकार ज़बर्दस्ती ग़ल्ला वसूल न करले इसलिये भी किसानों ने ये अनाज कम पैदा किये। इसके अतिरिक्त खेतिहर मज़दूरों की कमी, खाद की कमी, बैलों की कमी और अच्छे बीज की कमी भी खेती के क्षेत्र को कम करने का कारण थी। किन्तु जौ, ज्वार, बाजरा, मक्का, चना और दूसरे अनाज के क्षेत्र में सन् १९३७-४० के मुकाबले में सन् १९४५-४६ में २९.१ लाख एकड़ अर्थात् १६.६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। ये फ़सलें साधारण मिट्टी और साधारण आबहवा में हो सकती हैं और युद्ध के समय किसान अपने साधारण ज़रिये से इन्हें पैदा कर सकते थे। इन फ़सलों की पैदावार में लागत भी कम लगती थी। चने की पैदावार इसलिये बढ़ी कि बहुत सी पड़ती ज़मीन जब पहले बार उठाई गई तो उसमें पहली फ़सल चने की बोई गई। न तो उसे अधिक खाद की ज़रूरत होती है और न आबपाशी की। चावल के रक़बे में कमी और ज्वार, बाजरा, मक्का आदि की खेती के रक़बे में वृद्धि से भी यह बात साबित होती है कि साधारण कोटि की अनउपजाऊ ज़मीन व्यवहार में लाई गई। इन फ़सलों के लिये आम तौर पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं जबकि धान को पानी की अत्यन्त आवश्यकता है। अन्न की कमी के कारण इन अनाजों की क़ीमतों में वृद्धि हुई। चूँकि गेहूं और चावल प्राप्त नहीं होता था इसलिये लोग ज़्यादा क़ीमत देकर मोटा अनाज ख़रीदते थे। तिलहन और रुई के फसली रक़बे की कमी का कारण इन जिन्सों के निर्यात की बन्दी थी। अनाज की बेहद मांग थी और किसान सिर्फ़ ऐसी फ़सल बोता था जिससे उसे अधिक से अधिक दाम मिलें। इधर हाल में निर्यात खुलने से तिलहन के दाम काफ़ी बढ़े और उसका असर सन् १९४७-४८ के तिलहनी रक़बे पर पड़ेगा। इस तरह हम देखते हैं कि आबपाशी की कमी, पड़ती ज़मीन का उठाना, खाद की कमी, आयात निर्यात की अड़चनें, पूँजी की कमी, मज़दूरों की दिक़्क़त, और भावों का चढ़ना-बढ़ना आदि बातें थीं जिनके कारण भिन्न भिन्न अनाजों के फ़सली रक़बे में घटती-बढ़ती होती रही है और किसान ने काफ़ी समझदारी से काम लिया है। यदि गेहूं और चावल के रक़बे में वृद्धि नहीं हुई तो उसका दोष किसानों पर नहीं बल्कि परिस्थितियों पर है।

उत्पादन में वृद्धि

नीचे लिखी तालिका से भिन्न-भिन्न अनाजों के उत्पादन में सन् १९३७-४० की पैदावार के मुक़ाबले में घटती-बढ़ती पर प्रकाश पड़ता है।

[तालिका नं० ४]

घटती (—) या बढ़ती (+) लाख टनों में

औसत पैदावार	चावल २-१३	गेहूं २८.४	जौ १२-३	बाजरा ३.३	मक्का ७.३	चना १५.१	ज्वार ४.६	टोटल
१९४०-४१	—३.३	—०.७	२.७	०.९	०.८	०.३	०.५	१.१
१९४१-४२	—५.३	—२.८	—०.२	१.२	—१.४	—१.१	—०.८	—१०.४
१९४२-४३	—३.३	—२.१	१.६	३.०	२.१	३.८	१.९	७.०
१९४३-४४	—२.७	—३.७	०.८	२.१	२.०	—०.३	०.८	१.१
१९४४-४५	—५.६	—२.५	३.३	१.९	२.३	१.३	०.४	-.८
१९४५-४६	—५.२	—५.२	२.२	१.६	२.३	—०.४	१.०	—७.१

[तालिका नं० ५]

१९३७-४० के औसत पर उत्पादित अनाजों के क्षेत्र और उत्पादन में घटती (—) और बढ़ती (+)

		१९४०-४१	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४४-४५	१९४५-४६
चावल	रक़बा	—३.८	—१३.७	—७.३	—४.२	५.५	—७.१
,,	उत्पादन	—१५.५	—२४.६	—१५.५	—१२.७	—२७.७	—२४.४
गेहूं	रक़बा	—३.२	—४.	—८.१	—६.८	—३.६	—२.४
,,	उत्पादन	—२.५	—९.९	—७.७	—१३.०	—८.८	—२०.८
जौ	रक़बा	—०.८	५.५	८.७	१०.५	६.३	१४.८
,,	उत्पादन	११.९	१.६	१३.०	६.५	२६.८	१७.९
ज्वार	रक़बा	—१.५	—४.६	१२.९	४.५	०.४	१२.४
,,	उत्पादन	१०.९	—१७.४	४१.३	१७.३	८.७	११.७
बाजरा	रक़बा	११.५	३५.७	३९.५	३३.६	३०.३	३०.७
,,	उत्पादन	२५.०	३३.३	८३.३	५८.३	५२.८	५२.८
मक्का	रक़बा	४.०	—५.२	१६.९	११.८	१९.२	२४.६
,,	उत्पादन	१०.९	—१९.२	२८.८	२८.४	३१.५	३१.५
चना	रक़बा	—८.३	—४.६	६.४	१४.४	१०.१	१०.४
"	उत्पादन	२.०	—७.१	२४.८	—३.९	८.५	—२.६

इस तालिका के अध्ययन से यह पता चलेगा कि खाद्यान्न के कुल उत्पादन में जो वृद्धि हुई है वह बहुत थोड़ी है। चावल और गेहूँ का उत्पादन ८.४ लाख टन घटा है और ज्वार बाजरा आदि में ९.२ लाख टन की वृद्धि हुई है। सन् १९४४-४५ में अतिरिक्त खाद्यान्न की पैदावार में ०.८ लाख टन की वृद्धि हुई। सन् १९४५-४६ में खाद्यान्न के उत्पादन में ४.१ लाख टन की घटती हो गई। कपास और सन आदि की पैदावार में भी कोई बढ़ती नहीं हुई। इन आँकड़ों को देखकर बड़ी निराशा होती है और मालूम होता है कि इस प्रान्त के कृषि-सङ्गठन में कोई भयानक ख़राबी है। 'अधिक अनाज उपजाओ' आन्दोलन को आगे बढ़ाने में काफी ताक़त लगाई गई, खाद्यान्न की क़ीमतें भी काफ़ी बढ़ीं हुई थीं किन्तु फिर भी फ़सलों के उत्पादन में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई। संयुक्तराष्ट्र अमरीका के कृषि-मंत्री ने गत वर्ष इस बात का विश्वास दिलाया था कि सन् १९३५-३९ के औसत से सन् १९४७ में प्रत्येक अमरीकन नागरिक को मिलने वाले खाद्यान्न में १२ फ़ी सदी की वृद्धि हो जायगी। न तो अमरीका में फ़सल का रक़बा बढ़ाया गया, न कोई ख़ास अच्छा मौसम था फिर भी वहां पिछली दशाब्दी से प्रति एकड़ पीछे इस समय खाद्यान्न में $\frac{1}{3}$ और प्रति खेत पीछे $\frac{1}{4}$ की वृद्धि हो गई है। इस वृद्धि का कारण नवीन कृषि टेकनीक, अच्छी खाद, फ़सल के अच्छे बीज, अच्छे पशु, कीड़े मारने का राष्ट्र भर में विस्तृत प्रबन्ध और भूमि रक्षा का वैज्ञानिक अनुसन्धान है। इस सम्बन्ध में हमारे क्या कारनामें हैं? ऊपर की तालिका के आंकड़े स्वयं अपनी कहानी कहते हैं और उन पर किसी तरह की टीका टिप्पणी व्यर्थ है।

निष्कर्ष

(१) बावजूद वैज्ञानिक उन्नति और अनुसन्धान के युक्त प्रान्त के किसान प्रकृति की दया पर निर्भर करते हैं। तालिका ४ और पाँच में दिये गये आंकड़े इस बात की सचाई प्रकट करते हैं। (२) एकड़ पीछे फ़सल की वृद्धि और ह्रास का सबसे प्रमुख कारण वर्षा है।

(३) जहाँ तक व्यक्ति का सम्बन्ध है खेती का विस्तार बढ़ाने में उसके प्रयत्न से कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता। सरकार ही आबपाशी के द्वारा पड़ती ज़मीन को सुन्दर खेतों में बदल सकती है। काँस निकालकर, मलेरिया को काबू में करके, ऊसर ज़मीन की जुताई करवाकर और भूमि रक्षा के तरीक़े निकाल कर भी

सरकार एकड़-विस्तार को बढ़ा सकती है। सन् १९४७ के यू. पी. टेनेन्सी एक्ट की धारा १२६ अ में सरकार ने यह परिवर्तन किया है कि यदि ज़मीदार खेती योग्य ऐसी ज़मीन को जहां खेती न होती हो जुताई के लिये न दे तो सरकार स्वयं विशेष अवसरों पर ऐसी ज़मीन को उठा सकती है। इससे भी आशा है खेती के विस्तार में वृद्धि होगी। लेखक ने भी सन् १९४४ की इण्डियन सोसायटी आफ़ एग्रिकल्चरल इकानामिक्स कान्फ्रेंस में इस तरह का सुझाव पेश किया था।

(४) 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन का प्रत्यक्ष प्रभाव इसलिये नहीं पड़ा क्योंकि गांव में किसानों का कोई सङ्गठन नहीं और न उनमें इस सम्बन्ध में किसी तरह का उत्साह है। लोगों को इस सम्बन्ध में जो व्यक्तिगत सुविधाएँ अर्थ और अन्य रूप में दी गईं उनका भी उचित उपयोग नहीं किया गया।

(५) किसान इसलिये भी अन्न के उत्पादन को नहीं बढ़ा सका चूंकि मज़दूरों की कमी थी और बैल, अच्छी खाद और अच्छे बीज की भी कमी थी। कृषि टेकनीक को इस्तेमाल करके प्रति एकड़ पीछे पैदावार को बढ़ाया जा सकता है चूंकि इस दिशा में यथेष्ट बढ़ती की गुञ्जाइश है। प्रत्येक गांव में ग्रामोन्नति समिति होनी चाहिये जो अपनी आवश्यकताओं की सूचना सरकार को देती रहे। हम इस सम्बन्ध में सोवियत् रूस के 'सेलो सोवियत्' या अमरीका, कनाडा, और आस्ट्रेलिया के 'किसान संघों' की नक़ल कर सकते हैं। इस तरह की समितियाँ उपरोक्त देशों में अन्न उत्पादन की वृद्धि में काफ़ी सहायता पहुंचा रही हैं। इस वृद्धि के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि किसान स्वयं इस योजना में व्यावहारिक दिलचस्पी ले। किसान और विशेषज्ञ दोनों को एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता है और दोनों को एक दूसरे के अधिक से अधिक निकट लाने का प्रयत्न करना चाहिये।



बापू की जीवन-संगिनी बा
[श्री कनु गान्धी के सौजन्य से]



बापू
[श्री कनु गान्धी के सौजन्य से]

महात्माजी के प्रति

श्री सुमित्रानन्दन पंत

निर्वाणोन्मुख आदर्शों के अन्तिम दीप शिखोदय !—
जिनकी ज्योति छटा के क्षण से प्लावित आज दिगंचल,·
गत आदर्शों का अभिभव ही मानव आत्मा की जय,
अतः पराजय आज तुम्हारी जय से चिर लोकोज्वल !

मानव आत्मा के प्रतीक ! आदर्शों से तुम ऊपर,
निज उद्देश्यों से महान, निज यश से विशद, चिरंतन ;
सिद्ध नहीं, तुम लोक सिद्धि के साधन बने महत्तर,
विजित आज तुम नर वरेण्य, गणजन विजयी साधारण !

युग युग की संस्कृतियों का चुन तुमने सार सनातन
नव संस्कृति का शिलान्यास करना चाहा भव शुभकर,
साम्राज्यों ने ठुकरा दिया युगों का वैभव पाहन—
पदाघात से मोह मुक्त हो गया आज जन अन्तर !

दलित देश के दुर्दम नेता, हे ध्रुव, धीर, धुरंधर,
आत्म शक्ति से दिया जाति शव को तुमने जीवन-बल;
विश्व सभ्यता का होना था नखशिख नव रूपांतर,
राम राज्य का स्वप्न तुम्हारा हुआ न यों ही निष्फल !

विकसित व्यक्तिवाद के मूल्यों का विनाश था निश्चय,
वृद्ध विश्व सामन्त काल का था केवल जड़ खंडहर !
हे भारत के हृदय ! तुम्हारे साथ आज निःसंशय
चूर्ण हो गया विगत सांस्कृतिक हृदय जगत का जर्जर !

गत संस्कृतियों का, आदर्शों का था नियत पराभव,
वर्ग व्यर्ग की आत्मा पर ये सौध धाम, जिनके स्थित;
तोड़ युगों के स्वर्ण पाश अब मुक्त हो रहा मानव,
जन मानवता की भव संस्कृति आज हो रही निर्मित !

किए प्रयोग नीति सत्यों के तुमने जन जीवन पर
भावादर्श न सिद्ध कर सके सामूहिक-जीवन-हित ;
अधोमूल अश्वत्थ विश्व, शाखाएं संस्कृतियां वर,
वस्तु विभव पर ही जनगण का भाव विभव अवलंबित !

वस्तु सत्य का करते भी तुम जग में यदि आवाहन,
सबसे पहले विमुख तुम्हारे होता निर्धन भारत ;
मध्य युगों की नैतिकता में पोषित शोषित-जनगण
बिना भाव-स्वप्नों को परखे कब हो सकते जाग्रत ?

सफल तुम्हारा सत्यान्वेषण, मानव सत्यान्वेषक !
धर्म, नीति के मान अचिर सब, अचिर शास्त्र, दर्शन मत,
शासन, जन गण तंत्र अचिर-युग स्थितियां जिनकी प्रेषक,
मानव गुण, भव रूप नाम होते परिवर्तित युगपत !

पूर्ण पुरुष, विकसित मानव तुम, जीवन सिद्ध अहिंसक,
मुक्त-हुए-तुम-मुक्त-हुए जन, हे जग वंद्य महात्मन !
देख रहे मानव भविष्य तुम मनश्चक्षु बन अपलक;
धन्य, तुम्हारे श्री चरणों से धरा आज चिर पावन !

वज्रपात !

श्री दिनकर

टूटी पहाड़-सी घोर अशनि, सब तरह हमारा ह्रास हुआ,
रोने दो, हम मर - मिटे हाय, रोने दो सत्यानाश हुआ।
है तरी भँवर के बीच और पतवार हाथ से छूट गई;
रोने दो हाय, अनाथ हुए, रोने दो किस्मत फूट गई।
कैसा अभाग्य ! अपने हाथों ही हाय स्वयं हम छले गये,
यह भी न पूछ सकते बापू ! क्यों हमें छोड़ तुम चले गये ?
पापी ! तूने क्या किया, हाय ! किस पर यह दारुण वार किया ?
यह वज्र गिराया कहाँ ? हाय किसका अकरुण संहार किया ?
वह देख फटी किसकी छाती ? पहचान, कौन निश्चेत गिरा ?
किसकी किस्मत में आग लगी ? किसका उगता सौभाग्य फिरा !
यह लाश मनुज की नहीं मनुजता के सौभाग्य विधाता की,
बापू की अरथी नहीं चली यह अरथी भारत माता की।
तप से पवित्र वह देह और वह हँसी अभय देने वाली
चालीस कोटि की नौका को वह एक मुनि खेने वाली
अब नहीं मिलेगी कहीं नयन ! दर्शन की व्यर्थ न आस करो,
बापू सचमुच ही चले गए भोली अँखियो ! विश्वास करो।
बापू सचमुच ही गए निखिल भूमण्डल का शृंगार गया,
बापू सचमुच ही गए, विकल मानवता का आधार गया।
बापू सचमुच ही गए, जगत से अद्भुत एक प्रकाश गया;
बापू सचमुच ही गए, मृत्ति पर से हरि का आभास गया।

किरणें समेट फिर नभी एक भूतल को कर श्री हीन चला,
फिर एक बार मोहन यसुदा को सभी भाँति कर दीन चला।

यह अवधपुरी के राम चले, वृन्दावन के घनश्याम चले,
शूली पर चढ़कर चले ख्रीष्ट, गौतम प्रबुद्ध, निष्काम चले!

प्यासे को शोणित पिला, तोड़ कोई अपनी जंजीर चला,
दानव के देशों पर हँसता यह स्वर्ग देश का वीर चला।

धरती को आकुल छोड़, मनजता को करके म्रियमाण चले,
बापू दे अन्तिम बार जगत को हृदय-विदारक दान चले।

आकाश विभासित हुआ, भूमि से हरि का लो! अवतार चला;
पृथ्वी को प्यासी छोड़ हाय, करुणा का पारावार चला।

चालीस कोटि के पिता चले, चालीस कोटि के प्राण चले,
चालीस कोटि हतभागों की आशा, भुजबल, अभिमान चले।

यह रूह देश की चली अरे, माँ की आँखों का नूर चला,
दौड़ो, दौड़ो, नज हमें हमारा बापू हमसे दूर चला।

रोको, रोको, नगराज! पन्थ भारत माता चिल्लाती है,
है जुल्म! देश को छोड़ देश की किस्मत भागी जाती है।

अम्बर की रोको राह, बढ़ो नगराज, शून्य में जा ठहरो,
बापू यह भागे जाते हैं, चरणों को बढ़ पकड़ो-पकड़ो।

पकड़ो वे दोनों चरण, पकड़ कर जिन्हें हमें सौभाग्य मिला,
पकड़ो वे दोनों चरण, जिन्हें छूकर जीवन का कुसुम खिला।

पकड़ो वे दोनों चरण, दासता जिनके सेवन से छूटी,
पकड़ो वे दोनों पद, जिनसे आजादी की गङ्गा फूटी।

जल रहा देश का अङ्ग-अङ्ग शीतल घन को पकड़ो-पकड़ो,
भारत माता कंगाल हुई, जीवन धन को पकड़ो-पकड़ो।

है खड़ा चतुर्दिक काल, दासता-मोचन को पकड़ो-पकड़ो,
माता खा गिरी पछाड़, भागने मोहन को पकड़ो पकड़ो।

है बीच धार में नाव खबर है प्रलय वायु के आने की,
थी यही घड़ी क्या हाय हमारे कर्णधार के जाने की।

दौड़ो, कोई जा कहो, नाव किस्मत की डूबी जाती है,
बापू! लौटो, आँचल पसार भारत माता गुहराती है।

किस्मत का पट है तार-तार, हा इसे कौन सी पायेगा?
बापू! लौटो यह देश तुम्हारे बिना नहीं जी पायेगा?

अपनी विपन्नता की गाथा यह रो-रो किसे सुनायेगी?
बापू! लौटो, भारतमाता रो बिलख-बिलख मर जायेगी।

दुनिया पूछेगी कुशल हाय, किससे क्या बात कहेंगे हम !
बापू ! लौटो, सिर झुका ग्लानि का कैसे दाह सहेंगे हम !
लौटो, अनाथ के नाथ, देश की ईति-भीति-हरने वाले !
लौटो, हे दयानिकेत देव ! शत पाप क्षमा करने वाले !
लौटो,दुखिया के प्राण ! निःस्व के धन ! लौटो निर्बल के बल
लौटो, वसुधा के अमृतकोष ! लौटो, भारत के गंगा जल।
लौटो, बापू ! हम तुम्हें मृत्यु का वरण नहीं करने देंगे,
जीवनमणि का इस तरह काल को हरण नहीं करने देंगे।
लौटो, छूने दो एक बार फिर अपना चरण अभयकारी।
रोने दो पकड़ वही छाती जिसमें हमने गोली मारी।
करुणा की सुनी पुकार, फिरो, या अपनी बाँह दिये जाओ,
संतप्त देश को राम सदृश हे बापू ! साथ लिये जाओ।

———

बापू की हत्या पर !

श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

श्वास न केवल वह, जिसकी धड़कन हो उरके पास ;
श्वास वास्तविक है मानव की 'लक्ष्य और विश्वास' !
छीन सका क्या घातक गांधी का अविचल विश्वास,
गिरि सा उच्चादर्श, विमल हिम-सा वह अक्षय हास ?

(१)

सब कुछ अजर-अमर बापू का, हास, लक्ष्य, विश्वास !
जन-जनके मन मन में फैला बनकर शुभ्र प्रकाश !
और कालिमा अपनी समझेगा उसको इतिहास,
जिस कायर ने उस शरीर का छल से किया विनाश !

(२)

केवल आत्मा के स्वर से भरकर भूगोल खगोल
गांधी ने शरीर का समझा था कितना सा मोल ?
जीवन भर जो रहा घूमता निज वक्षःस्थल खोल,
उसकी निर्भरता के आगे हिंसा का क्या मोल ?

(३)

रक्त-मांस को गान्धी समझा, इतनी भारी भूल !
गाँधी तो है निज युग की संस्कृति का व्यापक मूल !
सर्वश्रेष्ठ मानव को कहलाई यह जग में स्थान,
गांधी ने इसको दिलवाया था अपूर्व सम्मान;

(४)

घातक ने भारत-माता का करवाया अपमान,
जग का सबसे पतित मनुज भी है उसकी सन्तान !
मानवता के उस कलंक की लज्जा का इतिहास
जन्म भूमि युग युग तक ढो-ढो कर लेगी उच्छ्वास !

(५)

कोटि-कोटि मनुजों के उर में था उसका जो प्यार
बरबस बहा आंसुओं का बन-बन कर पारावार
भूमण्डल के कोने-कोने से आई आवाज--
मानवता का त्राता गांधी, हाय, कहां है आज !

(६)

देश वासियो, उत्तर दो सब, रोक अश्रु, उच्छ्वास—
सदा हमारे हृदयों में होगा गांधी का वास !
पूरा करो, अधूरा है जो उसका प्यारा काम ;
कलमष, बर्बरता, हिंसा से करो अथक संग्राम !

(७)

प्राण लगाओ, रक्त लगाओ और लगाओ स्वेद ;
नव जग का निर्माण करो, संयत कर उर का खेद !
जिस विष ने संक्षत हो—हा बापू पर किया प्रहार,
तुम्हें मुक्त उस विष से करना है सारा संसार !

बापू की हत्या !

श्री नरेन्द्र शर्मा एम० ए०

वयोवृद्ध बापू की हत्या, घटना यह सामान्य नहीं है !
यह कैसा हिन्दुत्व, हुआ पैदा जिसमें उनका हत्यारा !
चिन्तातुर हो पूछ रहा है भावी लोकतंत्र भारत का,
मौन निरुत्तर बिलख रहा है आहत अन्तःकरण हमारा !

सोमनाथ औ विश्वनाथ को बचा सका क्या वह हिन्दूपन ?
विजयनगर को और बंग की वीरभूमि को खो न दिया क्या ?
क्या न पेशवाई के मद ने पानीपत में माँगा पानी ?
सिक्खों ने सन सत्तावन में पक्ष शत्रु का नहीं लिया क्या ?

क्या कारण थे अधोपतन के, आओ चर्चा करें विचारें !
हिन्दू का व्यवहार क्षुद्र था, दर्शन कितना ही महान् हो !
छूत-छात थी, जातपात थी, आत्मबोध कुलधर्म-मात्र था,
था समाज में न्याय न बाकी, चाहे जितना शास्त्र-ज्ञान हो !

दो पंडित, थे कोटि निरक्षर, शास्त्र बन गये मात्र जीविका !
साधक आ बैठा कोने में, मठ में मठाधीश पाखंडी !
राजे-रजवाड़े गुलाम थे, व्यभिचारी, अतिचारी, व्यसनी;
शत्रु नहीं, बकरे खाती थी राजफिरंगी में मा चंडी !
ग्लानिमग्न भारत के त्राता, आये तब जनशरण महात्मन !
हरिजन बने, किसान बने, श्रमजीवी बने राष्ट्र के नायक !
तोड़ फोड़ पाखण्ड सत्य से, हरा दिया अन्याय विनय से,
बारह सदियों के रोगी के लिए बने संजीवन-दायक !
जन्मसिद्ध अधिकार हमारा दिखलाया जो लोकमान्य ने,
उसे महात्मा ने दिलवाया ! इतनी जल्दी गये भूल हम ?
सत्य हुए सपने युग युग के, देश आज अपना कहलाया,
चमके आज जवाहर बनकर मंदिरों तक पर रहे धूल हम !
राष्ट्र-पिता बापू की हत्या ! घटना यह सामान्य नहीं है !
कैसा नव हिन्दुत्व, हुआ पैदा जिनमें उनका हत्यारा ?
कोटि कंठ से पूछ रहे हैं आनेवाले हिन्द बच्चे—
लज्जित होकर बिलख रहा है आहत अन्तःकरण हमारा !

महानिर्वाण !

श्री मोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०

आँसू खुलकर बहो हो गया भङ्ग आज सब सुख सपना !
गया आज सर्वस्व तुम्हारा गया आज बापू अपना !
हिन्दू ! अपना हृदय खोलकर देख, कौन तेरा है आज ?
जिस पर तुझे गर्व था, वे ही चले गये गान्धी महराज !
मुसलमान ! रक्षक न तुम्हारा रहा आज कोई जग में
कहाँ आज त्राता, जो अपने प्राण बिछा दे आ मग में।
सिक्ख ! आज किस की जय करने के हित नग्न कृपाण लिये !
कहां सो गये तुम अचेत हो जब कि बधिक ने प्राण लिये !
ईसा के भक्तो ईसा की कौन सुनायेगा वाणी ?
क्षमा, दया करुणा की वर्षा हो न सकेगी कल्याणी !
ऐ एशिया ! प्रकाश बुझ गया तेरी राह अन्धेरी है,
पा किसका संकेत कहेगा—'आज विजय यह मेरी है !'
खंड खंड हो धरा धैर्य अब तुझको कौन बन्धायेगा ?
क्या कहती ओ जन्म भूमि ! मनमोहन कहीं न जायेगा !
कहीं नहीं वह गया महात्मा समा गया है मन मन में,
अमर प्रकाश पुंज आलोकित है, जननी के जन जन में।

चला गया !

प्रोफेसर 'अञ्चल' एम० ए०

देवों का देवत्व बढ़ा पर मनुज भूमि पर रोया !
भू से बिछुड़ा आज मरण-सागर पी जाने वाला
चला गया भू से अनयों की सीत ढहाने वाला
चला गया वह पुन्य-परार्थी आहत जग का त्राता
चला गया मानवता को चैतन्य बनाने वाला
चुक आया था स्नेह व्योम के रवि-शशि का तारों का
चुक आया था नीर मेघ-मालाओं की धारों का
शायद सूख चली थी गगन-शैलजा—अमृत चुका है
देवों का देवत्व बढ़ा पर मनुज भूमि पर रोया !
मद मत्सर-विरहित, तेजोमय जीवन-कला-प्रणेता
चला गया भू से शिवता का—ईश्वरता का नेता
पहले आज़ादी के सपने को ध्रुव सत्य बनाया
जाता अब हिंसक पशुता को प्राणों की बलि देता
रक्त-तृषित भाई को अपना खून पिलाने वाला
इस अधबने राष्ट्र की जड़ में शक्ति सजाने वाला
चला गया इतिहास न कर सकता था अधिक प्रतीक्षा !
देवों का देवत्व बढ़ा पर मनुज भूमि पर रोया !

चला गया जिसकी प्रतिमा थी मन्दिर में मन-मन के
चला गया विश्वास बना जो श्वासों में जन-जन के
चला गया जिसके बन्दन के स्वर स्थिर कभी न होंगे
चला गया जिसकी श्रद्धा से दीप जले तन-तन के
चला गया वह विभा खेलती जिसकी किरण मुखों पर
चला गया जिसकी करुणा छाई थी जगत-दुखों पर
चला गया जिसके बल पर जूझा यौवन अचलों से
देवों का देवत्व बढ़ा पर मनुज भूमि पर रोया !
चला गया संकल्पों को ही खड्ग बनाने वाला
चला गया मृत मिट्टी से हुङ्कार उठाने वाला
चला गया जिसने जन बल का नगपति खड़ा किया था
चला गया वह अबुझ दीप्ति का पर्व बनाने वाला
घट घट में जिस महासाधना ने अमरत्व जगाया
चला गया जिसने मरघट को अमरावती बनाया
परिक्रमा करतीं गत सदियाँ लोहू के फूलों से
देवों का देवत्व बढ़ा पर मनुज भूमि पर रोया !

बापू की चिता की राख !

श्री कुमारहृदय

इस चिता की राख में मेरा मसीहा सो गया है ।
सो गया है वह कि जो मुर्दा दिलों में जान लाया
सो गया है वह गुलामी में कि जो तूफान लाया
सो गया सोये हुए सपनों - भरे हम को जगाकर
सो गया किश्ती हमारे भाग्य की साहिल लगाकर
सो गया है वह कि जिसने स्वर दिया निर्भय बनाया
सो गया है वह कि जिसने बल दिया बलिपथ दिखाया
सो गया है वह कि जिसने स्नेह की दुनिया बसाई
सो गया है वह कि जिसने सत्य की मूरत बनाई

सो गया हतभाग्य हमने ही सुलाया देवता को
हाय री पूजा कि हमने बलि चढ़ाया देवता को
अब नहीं जागे जगेगा यह अहिंसा का पुजारी
युग-पिता युग-देवता यह स्नेह ममता का भिखारी
सो गया गांधी हमारा सो गया बापू हमारा
इस चिता की राख में है खो गया बापू हमारा
राख है—इस राख में मेरा नगीना खो गया है।
इस चिता की राख में कोई नया युग खोलता है।
यह चिता की राख है बापू यहीं छिप-से गये हैं।
भावना ऐसी कि इसमें देवता दिख-से गये हैं।
राख है—यह देश का अरमान है—ईमान भी है।
राख है—यह देश का आँसू—भरा वरदान भी है
राख है इसमें हमारे राष्ट्र का इतिहास भी है।
राख है इसमें हमारी प्रगति और विकास भी है।
यह चिता की राख है—इसमें स्वदेश समा गया है।
यह चिता की राख है इसमें नया युग आ गया है।
अश्रु-गीली राख यह इस देश को अवदात कर दे।
युग-पुरुष की राख यह फिर से नवीन प्रभात कर दे।
इस चिता की राख में मेरा मसीहा बोलता है।

महात्मा गांधी के निधन पर!

श्री बालकृष्ण राव, आई० सी० एस०

ज्योति ने पाई अमरता दीप ने निर्वाण।
आज पाया बिन्दु ने नव सिन्धु-रूप महान।
मूक होकर कोटि कण्ठों में
समाया स्वर तुम्हारा।
मिल गया मझधार में हो
कुशल नाविक को किनारा।
आज क्षण के साथ युग की हो गई पहचान।
राष्ट्र के शव में किया था
प्राण का संचार तुमने।
स्नायुओं में फिर प्रवाहित
की रुधिर की धार तुमने।
धूलि को पद-रज बना तुमने दिया सम्मान।
सत्य का ध्रुव ध्येय पथ
तुमने अहिंसा का दिखाया।
क्षितिज बन उन्नत गगन को
भूमि पर तुमने झुकाया।
विजय का तुमने विफलता से किया निर्माण।
दे तुम्हें अञ्जलि, हुए हैं
अश्रु जग के आज पावन।
मुक्त हो तुम, किन्तु दृढ़तर
हैं हमारे भक्ति बन्धन।
मूर्त्ति खोई, पर उपासक पा गया भगवान।
आज हिंसा के कठिन आघात से
अजय हुए तुम।
शरण देकर मरण को भी,
आज मृत्युंजय हुए तुम।
देश के हित आज तुमने कर लिया विषपान।

३० जनवरी की रात !

श्री 'बच्चन'

रेडियो सुनाता है यह कैसा समाचार
खिंचते जाते मेरे अंतर के तार-तार,
हो गया स्तब्ध है हृदय, सुन्न हो गई देह,
बैठा सुनता हूँ
विनत शीश
अवनत ग्रीव !
कितने सुख का अनुभव करता यह मन अधीर
यदि कोई कह सकता निशि का तम तोम चीर—
फिर बुझे दीप में जगी ज्वाल, भर गया स्नेह
हो उठे हमारे
बापू जी
फिर से सजीव !
किसकी आस्था, किसकी श्रद्धा-निष्ठा बनकर
वे जमे हुये थे तन-मन-जीवन के अंदर,
जो उनके उठ जाने से लगता है सत्वर—
हिल गई आज
मानवता की
फिर सुदृढ़ नींव

विश्व वंद्य बापू

डा० रामकुमार वर्मा एम० ए०, पी० एच० डी०

क्रिया शील दृढ़ हाथ और,
मुख पर मृदुतम मुस्कान।
कठिन साधना से निकली थी,
जैसे सिद्धि महान् ॥
एक तेज जिसमें कितने
सूर्यों का अभ्युत्थान !
एक मन्त्र जिससे अभिशापों—
से निकले वरदान।
स्वर जो विश्व-ताप की
सब अनुभूति लिए था साथ।
था स्वतन्त्रता के प्रदीप-सा
प्रिय भारत के हाथ

ये सब जैसे थीं विभूतियाँ,
जो ले कर अनुराग।
बापू ! सज्जित करने आईं,
सदा तुम्हारा त्याग ॥
वही त्याग जो वैभव के
स्वप्नावसान का ज्ञान—
बनकर जागृत था जीवन के—
क्षण-क्षण में सुख मान।
विश्व संपदा छोटी थी,
इतना महान था त्याग।
पद-बन्दन के लिये तुच्छ,
लगता था स्वर्ग—पराग ॥

कर्म योग के साधक तुम थे,
निर्बल के बल राम।
कितने कंठों में गूँजा था,
दिव्य तुम्हारा नाम!
विश्ववंद्य! तुमने खोजे थे,
निष्प्राणों में प्राण।
किया तुम्हीं ने जीवन में,
जीवन का नव निर्माण।
छिद्रों में संगीत भरा,
कर दिया उन्हें स्वर द्वार।

तुमने लघु संकेत किया,
गूँजा सारा संसार॥
बापू! तुमको पाकर युग का,
धन्य हुआ इतिहास।
सदा तुम्हारा वर्तमान
होगा भविष्य की साँस।
जिस पथ पर गति शील—
तुम्हारी छाया का आकार।
उस पथ पर ही था स्वतन्त्रता,
का मङ्गल-मय द्वार॥

हाय बापू!

श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह

हाय! वज्र टूटा न, व्योम से टूट गिरा दिनमान!
अमर सुहाग लुटा पृथ्वी का पल-पल ज्योतिर्मान?

सिसक रहे ग्रह-पुञ्ज, स्वर्ग वह द्वार खोल रोता है।
अन्धकार भी खड़ा-खड़ा आंसू से मुँह धोता है।
चीख उठी यह वायु मही मूर्च्छित हो कांप रही है।
मर्माहता प्रकृति संसृति से लिपटी हांफ रही है।
यही करुणतम साँझ सृष्टि की, अम्बर विकल खड़ा है।
शोकाकुल है क्षितिज-बन्ध, भारत निष्प्राण पड़ा है।
इस स्वतन्त्र हत भाग्य देश का रूठा भाग्य-विधाता!
राष्ट्र पिता खो गया हाय! प्यारे स्वदेश का त्राता!

विश्व-पिता बापू,—मिट्टी पर करुणा का अवतार।
दया क्षमा का देव, दीप्त साधना स्वयं साकार।

जीवन भर जो रहा मनुज की दुर्बलता से लड़ता।
अपनी ममताओं के बल पर उसका रूप बदलता।
जो पशुता की जंजीरों में बँधकर भी हँसता था।
खुलती जाती थी गांठें जितना कोई कसता था।
डस न सकी नागिनी गुलामी की जिसको जहरीली।
मुरझा सकीं नहीं ज्वालायें जिसको नीली-पीली।
क्षुधा-तृषा भी हार गईं जिसकी सतेज काया से।
वह कल्याण—तपी साधक था मुक्त मोह-माया से।
हाय, न पूरी हुईं उसी के जीवन की सब साध?
चला गया आलोक—पुरुष वह दूर बहुत, निर्बाध!

चला गया खाकर पशुत्व की अन्तिम चोट भयानक।
ठिठक गया इतिहास, कलम लिख पाती नहीं कथानक।
किया मनुज ने खून, खून उसका, जो स्वयं विनय था।
अपनी स्नेह-शिखा में बलता चिर-पुनीत, निर्भय था।
उसकी हत्या हुई, अहिंसा जिसकी साँस बनी थी।
उसकी छाती छिदी, छांह भी जिसकी सुधा-सनी थी।
अन्तिम विन्दु यही है भ्रम की घृणित कोप-कुत्साका।
हाय ! सदा को टूट झुकी भारत की कीर्त्ति—पताका !

झुलस गई वेदिका धर्म की, पाकर यह बलिदान।
स्वयं सत्य ही गिरा, हाय ! जिस पर सदेह, म्रियमाण !

बापू ! तुम तो चले गये अब बनकर अमर, चिरन्तन।
चले गये झकझोर, तोड़, जल-थल-नभ के सब बन्धन।
कौन रहा मानव के घावों को सहलाने वाला !
दानवता पर भी अन्तर का स्नेह जताने वाला !
धोने को जग के कलंक आंसू बरसाने वाला ?
कौन रहा अब प्रलय-घड़ी में भी मुसकाने वाला !
चारों ओर भयानक लगता, दिशा—दिशा विह्वल है।
पीकर ज्वलित ग्लानि मानवता बहती पिघल-पिघल है ?

त्याग विकल देखता मह्म कर तेरा उपसंहार।
विफल विश्व-बन्धुत्व हाय ! पाता न कहीं आधार।

बापू ! चले गये तुम, अन्तिम बार न कुछ कह पाये।
क्या जाने क्या मूक भाव नयनों में क्षण भर आये !
क्षण भर अन्तिम बार लगा कलुषित, कृतघ्न यह भूतल।
या कि दृगों को ढांक गया द्युति का विराट वह अंचल !
उस क्षण आशीर्वाद दिया तुमने अभिशापित जग को।
या प्रणाम कर चले, देख उस अमर ज्योति जगमग को।
लांघ गये तुम चिर-भविष्य की सपनों-भरी कहानी—
अपने आदर्शों से मिलजाने को, हे अभिमानी।

चले गये तुम घूर्णि-चक्र पापों का चलता छोड़।
हृदय-हीन भौतिक रूपों से अपना नाता तोड़।

निर्मोही बन अनल तुम्हारा तन कैसे छूपाया !
हा ! जल उठी धधकती चिन्मय स्वर्ण-प्राण की काया।
यमुना की व्याकुल जल-लहरें मूक नहीं रह पाईं।
हाहाकार मचातीं जड़कूलों पर भी बढ़ आईं।
आज त्रस्त तेरा स्वदेश प्रतिपग सशंक धरता है।
अपने पास खड़ी अपनी छाया से भी डरता है।

यह स्वतंत्रता आज पितृ-हीना-सी सिसक रही है।
अपने बापू के दुलार से वंचित बिलख रही है।
शान्ति-यज्ञ का स्वप्न देश-माता का हुआ न पूर्ण।
हा! सदियों के लिये रह गया यह संकल्प अपूर्ण।

बापू! तुम्हें नहीं रख सकती मुक्ति छीनकर हमसे।
तुम्हें नित्य आना होगा बन नूतन ज्योति गगन से।
चिरकलंकमय इस भूतल को तुम्हें क्षमा करना है।
देव! तुम्हें इस पथ के कण-कण में प्रकाश भरना है।

दो वरदान कि छोड़ न पाएँ हम आदर्श तुम्हारा।
बना रहे यह कोटि-कोटि दीनों का एक सहारा।
आंक रहा है काल अश्रु से तेरी अमर कहानी।
चमक रही अक्षर-अक्षर में लौ तेरी नूरानी।
अपने शोणित-चिन्हों पर दो खिला अमृत के फूल।
गमके बन शीतल पराग, धरती की जलती धूल।

मानवता का दीप

श्री राम सिंहासन राय 'उनमुक्त'

नीड़ उजड़ा देखकर तुम आज क्यों हैरान पंछी!

विश्व का यों चक्र चलता: एक बनता, एक मिटता,
एक हँसता, एक रोदन का यहाँ त्योहार रचता,
ध्वंस औ' निर्माण में है शेष क्या व्यवधान पंछी!

नीड़ वह ऐसा कि तेरा था नहीं केवल बसेरा,
हम सबों की जिन्दगी का था वही मधुमय सबेरा,
नीड़ उजड़ा, सामने है तम-घिरा तूफान पंछी!

साँझ—बेला, रात आएगी यहाँ काली, अँधेरी,
विश्व अट्टहास हँस उठेगा—सो गई तकदीर तेरी,
काल की प्रतिकूलता का था न तुमको भान पंछी!

शेष तुमको था चुकाना ज़िन्दगी का मूल्य अपना,
क्योंकि जग—परिचित नहीं था दूर तेरा स्वर्ण सपना,
आ, जगत-उन्माद पर दें अश्रु का हम दान पंछी!
नीड़ उजड़ा देख कर तुम आज क्यों हैरान पंछी!

बापू का निर्वाण !

श्री जगदीश शरण

यह विषम संवाद कैसा !

आज संध्या रो रही है, व्योमतल में तम समाया।
नील तारा जटित नभ की होगई श्री हीन काया।
शिशिर के शीतल अनिल में एक अनल-प्रवाह आया।
आज भारत चन्द्र पर सहसा दुराशय राहु छाया।
नियति तेरी नीति में यह प्रकट प्रलयोन्माद कैसा ?
यह विषम संवाद कैसा ?

भारती ने विरस होकर क्यों चढ़ी वीणा उतारी ?
मूर्छिता सहसा हुई क्यों मूर्च्छना गायक तुम्हारी ?
लीन विस्मृति में हुई क्यों भावनाएं आज सारी ?
राग ने वैराग्य साधा कल्पना कुण्ठित विचारी !
कवि तुम्हारे गान में यह आज करुणानाद कैसा ?
यह विषम संवाद कैसा ?

'पूज्य बापू का निधन' आश्चर्य, रे यह होगया क्या ?
कृष्ण लीला-संवरण का सस्करण फिर होगया क्या ?
पुनर्वीर अरण्य में अर्हंत सदा को सो गया क्या ?
विश्व पूजित देश जननी का मुकुट-मणि खो गया क्या ?
देवनर के कार्यक्रम का यह दनुज प्रतिवाद कैसा ?
यह विषम संवाद कैसा ?

तुम अमर हो देव तुमने मृत्यु पर चिर मुक्ति पाई।
अमिति करुणा की तुम्हारी ज्योति कण कण में समाई।
ओ सुदर्शन ! विश्वमैत्री विश्व में तुमने जगाई।
लोक मंगल की अहिंसा जन्य नव पद्धति दिखाई।
सत्य के बलदान का बलिदान में अनुवाद कैसा ?
यह विषम संवाद कैसा ?

मूर्ततन से आज यद्यपि प्रकट अन्तर्धान तुम हो !
किन्तु जन-जन के हृदय की भक्ति के उत्थान तुम हो !
तुम अलौकिक प्रेरणा हो, शुद्ध बुद्ध विधान तुम हो !
विश्व-उन्नति के शिखर-आरोह में पथगान तुम हो !
यह तुम्हारी चेतना का लोक अन्तर्नाद कैसा ?
यह विषम संवाद कैसा ?

बापू !

श्री राजनाथ राय

एक बिन्दु था, सिन्धु बन गया !
सीमित दुर्बल लघु तन उसका, विस्तृत व्यापक व्योम बन गया।
घृणा द्वेष के दानव आये,
क्रोध-नाग ने फन फैलाये,
पर उसने हंसते-हंसते ही
उन पर अपने कर सहलाये।
निज जन के हाथों गिर कर वे, बापू अमर शहीद बन गया।
एक बिन्दु था, सिन्धु बन गया !
छायी थी जब गहन तमिस्रा,
विश्व-व्याप्त विष, व्यापक ईर्ष्या,
करुण शान्त नयनों से तब वह
करता था अमृत की वर्षा।
अमर ज्योति था, महा ज्योति में मिलकर एकाकार बन गया।
एक बिन्दु था, सिन्धु बन गया !
वर्ग बद्ध है जग का जीवन,
पग-पग पर आत्मिक उत्पीड़न;
उसमें ही पाया था जन ने
नूतन मुक्ति-मार्ग का दर्शन।
अमृत-घट दे सब को, अपने जगती का विष पान कर गया।
एक बिन्दु था, सिन्धु बन गया !
जिसकी छाती की प्रति धड़कन,
—पीड़ित प्राणिमात्र का क्रन्दन।
हरि के जन की सेवा में ही
बीते जिसके क्षण,—अन्तिम क्षण।
मानवता के पतझड़ को वह
मिट कर स्वयं बसन्त कर गया।
एक बिन्दु था, सिन्धु बन गया।

— —

युग-पुरुष तुम्हें अन्तिम प्रणाम !

श्री शीतला सहाय

करुणा के पुंजीभूत गगन निस्सीम निखिल व्यापक विराट !
श्रद्धा से नीचे झुका हुआ पदतल पर हिमगिरि का ललाट !
गौरव के लेकर गीत बहा गंगा का निर्मल तरल स्रोत !
सागर पढ़ता है पुण्य श्लोक, बहते लहरों पर छंद-पोत !
तुम संजीवन जीवन अनंत ! पावन महिमा मय सत्य काम !

युग-पुरुष तुम्हें अन्तिम प्रणाम् !

तुम युग के अंतिम क्रांति-यज्ञ की आहुतिमय ज्वाला-प्रसार !
कर चुकी भस्म जो जन-गण-मन का संचित विजड़ित अंधकार !
प्राणों से पाप प्रभाव मिटा, धुल गई द्वेष-कालिमा-रेख !
संस्कृति के अधरों पर जिसने चिर रासों के लिख दिये लेख !
जिसने अशांति के मेघ हटा बिखरा दी ऊषा-छवि प्रकाम !

युग-देव तुम्हें अन्तिम प्रणाम् !

जन जीवन-विकल-महोदधि में तुम थे ऊर्जस्वित स्फीत ज्वार !
जो बहा ले गया युग-युग का उत्पीड़न औ दुःख-दैन्य-भार !
खुल गईं रूढ़ियों की गांठें, होगये प्रगति के पथ प्रशस्त !
टूटी अनीतियों की रीढ़ें, परिवर्तन यह है सृजनव्यस्त !
तुम चले चरण दो धरती पर, मिल गया मुक्ति को पथ-विराम !

युग-प्राण तुम्हें अन्तिम प्रणाम !

— —

अस्थि-विसर्जन

बैजनाथसिंह एम० ए०

आ रहे हैं फूल बापू के हृदय धीरज सम्भालो।
शूल जननी के हृदय के हा हृदय धीरज सम्भालो ॥

शांति की अवशेष आभा आ रही है ।
शक्ति की अवशेष प्रतिमा आ रही है ॥
सत्य की अवशेष प्रतिमा आ रही है।
प्रेम की अवशेष महिमा आ रही है ॥

आ रहे हम फूल गङ्गा के हृदय धीरज सम्भालो ।
आ रहे हम फूल यमुना के हृदय धीरज सम्भालो ॥

आज ये नेता हमारे रो रहे हैं।
कदन में सैनिक विचारे खो रहे हैं॥
और जन असहाय मूर्च्छित हो रहे हैं।
हाथ अपने मूल से हम धो रहे हैं॥

आ रहे अवसान के उपकूल ये धीरज सम्भालो।
हो रहे क्यों हाय यों निर्मूल से धीरज संभालो॥

ताम्र का वह पात्र पावन डूबता है।
'फूल' का वह गात्र पावन डूबता है।
देश का वह मात्र जीवन डूबता है।
ईश का वह भव्य भावन डूबता है॥

निधि त्रिवेणी ने छिपाली किंतु तुम धीरज संभालो।
विधि विधाता ने छिपाली किंतु तुम धीरज संभालो॥

सिंधु गंगा और यमुना बह रही हैं।
ब्रह्मपुत्रा नर्मदा सब सह रही हैं॥
ताप्ती गोदावरी भी बह रही हैं।
शेष नदियां भार भीषण सह रही हैं॥

जलधि में मिल 'फूल' बोलेंगे कि राष्ट्रस्वर संभालो।
ज्योति के बन स्तंभ बोलेंगे कि मेरा वर संभालो॥

अजर अमर बापू

श्री रमानाथ अवस्थी

रो मत मेरे देश अमर है तेरा यह सेनानी!
वह न मरेगा जब तक गंगा-यमुना में है पानी!

× × ×

जन जन में जीवन में उनका जीवन बोल रहा है,
कण कण के उनकी करुणा का ही स्वर डोल रहा है,
रोम रोम में समा गया है उनका पावन नाम,
मानव भूल रहा है अपना जै जै सीताराम,
आज पुरानी भक्ति कह रही अपनी नई कहानी!

× × ×

हिन्दू रोया, मुस्लिम रोया, रोया सकल जहान,
गंगा-यमुना रोई, रोया पत्थर का इनसान,
धनी-निर्धनी मिल मिल रोये, रोया कन्धा किसान,

दिल्ली रोई, लन्दन रोया, रोया पाकिस्तान,
फूट फूट रो रही विश्व में मानव की नादानी !

\+　　　+　　　+

राष्ट्रपिता की शक्ति स्वर्ग के मुंह में पानी लाई,
स्वर्ग-परी झुक गई धरा को मानवता चिल्लाई,
दीन हो गई धरा स्वर्ग ने घी के दीप जलाये,
दुनिया ने आंखों में भर भर कर आंसू छितराये,
प्रिय स्वदेश की स्वतन्त्रता ही उनकी अमर निशानी !

\+　　　+　　　+

—

बापू के प्रति !

श्री ओम प्रकाश वर्मा एम० काम

मेरे भारत के कर्णधार !

जब जग में गूंजा प्रलय घोष, खो गई शान्ति छा गया रोष ;
इस समय छोड़कर चले गये, अब कौन करेगा हमें पार ?
बन्धुत्व—प्रेम के संचालक, आजीवन सत्य-धर्म-पालक ;
हिंसा—ज्वाला को मेट कौन पतितों को देगा प्रेमहार ?

मेरे भारत के कर्णधार !

—

आह महात्मा गांधी !

श्री नज़ीर

तेरे मातम में शामिल हैं ज़मीं व आसमां वाले,
अहिंसा के पुजारी, शोक में हैं दो जहां वाले।
तेरा अरमान पूरा होगा ऐ अमनो अमां वाले,
तेरे झण्डे के नीचे आयेंगे सारे जहां वाले।

मेरे गांधी ज़मीं वालों ने तेरी क़द्र अब कम की,
उठाकर ले गये तुझको ज़मीं से आसमां वाले।
उसी को मार डाला जिसने सर ऊँचे किये सब के,
न क्यों ग़ैरत से सर नीचा करें हिन्दोस्तां वाले।

ज़बां आंखों से लेकर आंसुओं ने ताब गो पाई,
तुम्हारे शोक में ख़ामोश बैठे हैं ज़बां वाले।

जमीं पर उनका मातम है फ़लक़ पर धूम है उनकी ,
ज़रा सी देर में देखो कहाँ पहुँचे कहाँ वाले ।

पहुँचता धूम से मंजिल पे बढ़ता कारवाँ अपना ,
अगर दुश्मन न होते कारवाँ के कारवाँ वाले ।

सुनेगा ऐ नज़ीर अब कौन मज़लूमों की फ़रियादें ,
.फ़ुगाँ लेकर कहाँ जायेंगे अब आहो .फ़ुगाँ वाले ।

—

संसार में गांधी तो अमर होके रहेगा !

श्री 'बिस्मिल' इलाहाबादी

किस शान से दुनिया से सरे शाम सिधारा
हा डूब गया देश की क़िस्मत का सितारा
गांधी का तो मरना था बहर तौर गवारा
हमदर्द को क्या सोच के बेदर्द ने मारा !

आकाश में रोते हुए निकले हैं जो तारे ।
गांधी की चिता जलती है जमुना के किनारे

फिरता रहा दर-दर वह मुहब्बत का भिखारी
दुनिया उसे कहती थी अहिंसा का पुजारी
उपदेश इसी बात का, हर सांस में ज़ारी
ले दे के उसे देश की चिन्ता थी वह भारी

क्या उसकी तरह कोई भला काम करेगा ।
दुनिया में ज़माने में न ये नाम करेगा ।।

इल्ज़ाम किसी पर कभी धरते नहीं देखा
सच बात पर उसको कहीं डरते नहीं देखा
नफ़रत से भी नफ़रत कभी करते नहीं देखा
यूं हमने किसी और को मरते नहीं देखा

देता था मुहब्बत का वह पैग़ाम हमेशा ।
दुनिया की भलाई से रहा काम हमेशा ।।

—

बापू तुम इतिहास बन गये

श्री घनश्याम अस्थाना

सिसक रहा है सिन्धु, हिमालय चुपके से रोता है
यहाँ मसीहा मानव का चिर निद्रा में सोता है
तुम अलक्ष्य के पथिक बन गये, पी बुझ गये सारे
विश्व खोजता है पथ में खोये पग चिन्ह तुम्हारे

इस संकट की विषम घड़ी में कैसे पाप जगे हैं
अरे, कौन से युग सोये ये अभिशाप जगे हैं
मिटे तुम्हारा रक्त-पान कर अब तो यह दानवता
युग-युग तक भारत रोयेगा, रोयेगी मानवता

ज्वालाओं के पथिक, ज्योति की किरणें देते जाओ
कोटि कोटि जन की आँखों के आँसू लेते जाओ
राम, बुद्ध, ईसा, अशोक के तुम ओ महासमन्वय
बापू, महागरल पीकर तुम आज बने मृत्युञ्जय

बापू रोक नहीं पायेगी आज पुकार हमारी
किन्तु तुम्हारे साथ चलेगी जय-जयकार हमारी
सत्य-अहिंसा के प्रतीक हे, तुम ओ सदा अनश्वर
बापू, तुम इतिहास बन गये, युग-युग के परमेश्वर

लहू तुम्हारा नये जागरण का दिनमान् बनेगा
बापू, तव बलिदान नये युग का अभिमान बनेगा
तुम आधार शिला हो, इस पर दुर्ग महान् बनेगा
बापू, यह विषपान भविष्यत् का कल्याण बनेगा

विश्व-शांति के दूत, शांति की वेदी के बलिदानी
बापू, तुम बस शेष रह गये बनकर एक कहानी

तुम युग का विश्वास बन गये बलि वेदी पर चढ़कर
बापू, तुम इतिहास बन गये युग युग के परमेश्वर

——

परिशिष्ट—१

बापू का अन्तिम प्रवचन

बिड़ला-भवन, नई दिल्ली, २६-१-४८

कहने की चीज़ें तो काफ़ी पड़ी हैं। आज के लिए ६ चुनी हैं। १५ मिनट में जितना कह सकूंगा, कहूंगा। देखता हूं कि मुझे यहां आने में थोड़ी देर हो गई है। वह होनी नहीं चाहिये थी।

बहावलपुर को डेपुटेशन

सुशीला बहन बहावलपुर गई है। वहां के दुःखी लोगों को देखने गई है। दूसरा कोई अधिकार तो है नहीं, न हो सकता था। फ्रेण्डस् सर्विस के लेसली क्राम साहब के साथ वह गई है। मैंने फ्रेण्डस् यूनिट में से किसी को भेजने का सोचा था, ताकि वह वहाँ के लोगों को देखे, मिले और मुझे सब हालात बता दे। उस समय सुशीला बहन के जाने की बात नहीं थी। लेकिन जब उसने सुना कि वहाँ पर सैकड़ों आदमी बीमार पड़े हैं, तो उसने मुझे पूछा कि मैं भी जाऊँ क्या? मुझे वह बहुत अच्छा लगा। वह नोआखाली में काम करती थी, तब से फ्रेण्डस यूनिट के साथ उसका सम्पर्क था। वह आखिर कुशल डाक्टर है और पञ्जाब के गुजरात इलाके की है। उसने भी काफ़ी गँवाया है। क्योंकि उसकी तो वहां काफ़ी जायदाद है। फिर भी उसके दिल में कोई ज़हर पैदा नहीं हुआ। वह गई है; क्योंकि वह पंजाबी जानती है, हिन्दुस्तानी जानती है। उर्दू और अंग्रेजी भी जानती है। वह क्राम साहब को मदद दे सकेगी। वहां जाने में ख़तरा है। लेकिन उसने कहा, मुझको क्या ख़तरा है? ऐसे डरती, तो नोआखाली क्यों जाती? पंजाब में बहुत लोग मर गये हैं, बिल्कुल मटियामेट हो हैं, लेकिन मेरा तो ऐसा नहीं। खाना-पीना मिलता है, सब कुछ ईश्वर करता है। सो आप भेजेंगे और क्रास साहब ले जायेंगे, तो मैं वहां के लोगों को देख लूँगी। मैंने क्राम साहब से पूछा, सुशीला को आपके साथ भेजूँ क्या? वे खुश हो गये। कहने लगे, यह तो बहुत ही अच्छी बात है। मैं उनके मारफत वहां के लोगों से अच्छी तरह बात चीत कर सकूंगा। फ्रेण्डस् में कोई हिन्दुस्तानी जानने वाला रहे, तो बड़ी भारी चीज़ हो जाती है। सुशीला बहन आवें, उससे बेहतर क्या हो सकता है? क्राम साहब रेडक्रास के हैं। रेडक्रास के माने यह थे कि लड़ाई के मरीज़ों की दवा दारू करना। अब तो वे लोग दूसरा-तीसरा काम भी करते हैं। यह सवाल कि डाक्टर सुशीला क्राम साहब के साथ गई है या क्राम साहब डाक्टर सुशीला के साथ गये हैं, ज़रा पेचीदा हो जाता है। मगर पेचीदा नहीं है। वे दोनों दोस्त हैं। सेवा-भाव से गये हैं। पैसा कमाने की तो बात नहीं। क्राम साहब मेरे मित्र हैं और सुशीला तो मेरी लड़की है। मैं उसका बाप हूं। तो मैंने उसे बड़ी करने के लिये नहीं भेजा, कोई ऐसा न सोचे कि वह तो डाक्टर है और क्राम साहब दूसरे हैं। कौन ऊँचा है, कौन नीचा है, ऐसा भेद भाव न करें। क्राम साहब, औरत साथ हो, तो उसे आगे कर देते हैं। अपने आपको पीछे रखते हैं। मगर निस्स्वार्थ सेवा में ऊँचे-नीचे का भेद नहीं होता। अगर कोई भेद है, तो क्राम साहब बड़े हैं। सुशीला उनके साथ उनकी मदद के लिये गई है। वे दोनों आकर मुझे वहां के हाल बतायेंगे। मुझे नवाब साहब ने लिखा कि मुझे कई लोग झूठी बातें भी लिख देते हैं, उन्हें मानने का मेरा क्या अधिकार है? सो मैंने सोचा कि मुझे क्या करना चाहिये, और क्राम साहब को और सुशीला बहन को बहावलपुर भेजा। वहाँ के मुसलमानों का तार आ गया है कि वे वहाँ पहुँच गये हैं। वहां से लौटेंगे, तब मुझे सब सही हालत बता देंगे। तीन-चार दिन में लौटने वाले थे, मगर कुछ काम निकल आया होगा, सो नहीं आये।

मैं उनका सेवक हूँ

अभी बन्नू के कुछ भाई बहन मेरे पास आ गये थे। शायद चालीस आदमी थे। वे परेशान तो थे, पर ऐसी हालत नहीं थी कि चल न सकें। हां किसी की उंगली में घाव लगे थे; कहीं कुछ था, कहीं कुछ था, ऐसे थे। मैंने तो उनका दर्शन ही किया और कहा कि जो कुछ कहना हो ब्रजकृष्ण जी से कह दें, लेकिन इतना समझ लें कि मैं उन्हें भूला नहीं हूँ। वे सब भले आदमी थे। उनका गुस्से से भरा होना स्वाभाविक था, मगर वे मेरी बात मान गये। एक भाई थे। वे शरणार्थी थे या कौन थे, मैंने पूछा नहीं। उन्होंने कहा—"तुमने बहुत खराबी कर दी है। क्या और करते ही जाओगे? इससे

बेहतर है कि जाओ। बड़े महात्मा हो तो क्या हुआ? हमारा काम तो बिगाड़ते ही हो। तुम हमें छोड़ दो। हमें भूल जाओ। भागो।" मैंने पूछा, कहां जाऊँ? पीछे उन्होंने कहा, हिमालय जाओ। तो मैंने डांटा—वे मेरे जितने बुजुर्ग नहीं। वैसे तो बुजुर्ग हैं, तगड़े हैं, मेरे जैसे पाँच सात आदमियों को चट कर सकते हैं। मैं तो महात्मा रहा। कमज़ोर शरीर। घबराहट में पड़ जाऊँ, तो मेरा क्या हाल होगा? तो मैंने हंसकर कहा, क्या मैं आपके कहने से जाऊँ। किसकी बात सुनूं? कोई कहता है यहीं रहो, कोई कहता जाओ। कोई डांटता है, गाली देता है; कोई तारीफ़ करता है। तो मैं क्या करूं? ईश्वर जो हुक्म करता है, वही मैं करता हूं। आप कह सकते हैं, आप ईश्वर को नहीं मानते। तो कम से कम इतना तो करें कि मुझे अपने दिल के अनुसार करने दें आप कह सकते हैं कि ईश्वर तो हम हैं। तब परमेश्वर कहाँ जायगा? ईश्वर तो एक है। हाँ, यह ठीक है कि पंच परमेश्वर है। मगर यह पंच का सवाल नहीं। दुःखी का बेली परमेश्वर है, लेकिन दुःखी खुद परमात्मा नहीं। जब मैं दावा करता हूँ कि हर एक स्त्री मेरी सगी बहन है, लड़की है, तब उसका दुःख मेरा दुःख है। आप क्यों मानते हैं कि मैं आपका दुःख नहीं जानता, आपके दुःख में हिस्सा नहीं लेता, हिन्दुओं और सिक्खों का मैं दुश्मन हूँ, और मुसलमानों का दोस्त हूँ? इस भाई ने मुझे साफ़ कह दिया। कोई गाली देकर लिखते हैं, कोई विवेक से लिखते हैं कि हमें छोड़ दो। चाहे हम दोज़ख में जायें। तुमको हमारी क्या पड़ी है? तुम भागो। लेकिन मैं किसी के कहने से कैसे भाग सकता हूँ? किसी के कहने से मैं ख़िदमतगार नहीं बना। किसी के कहने से मिट नहीं सकता। ईश्वर की इच्छा से मैं जो हूँ, बना हूं। ईश्वर को जो करना है, करेगा। ईश्वर चाहे तो मुझे मार सकता है। मैं समझता हूं कि मैं ईश्वर की बात मानता हूँ। मैं हिमालय क्यों नहीं जाता? वहाँ रहना तो मुझे पसन्द पड़ेगा। ऐसा नहीं कि वहाँ मुझे खाना-पीना ओढ़ना नहीं मिलेगा—वहां जाकर शान्ति मिलेगी। मगर मैं अशान्ति में शान्ति चाहता हूं; नहीं तो उस अशान्ति में मर जाना चाहता हूँ। मेरा हिमालय यहां है। आप सब हिमालय चलें, तो मुझको भी अपने साथ लेते चलें।

मेहनत की रोटी

मेरे पास शिकायतें आती हैं—वे सही शिकायतें हैं—कि यहां जो शरणार्थी पड़े हैं, उनको खाना देते हैं, पीना देते हैं, पहनने को देते हैं। जो हो सकता है सब करते हैं, लेकिन वे मेहनत नहीं करना चाहते, काम नहीं करना चाहते। जो उन लोगों की ख़िदमत करते हैं, उन्होंने लम्बी चौड़ी शिकायत लिखकर दी है, उसमें से मैं इतना ही कह देता हूं। मैंने तो कह दिया है कि अगर दुःख मिटाना चाहते हैं, दुःख में से सुख निकालना चाहते हैं, दुःख में भी हिन्दुस्तान की सेवा करना चाहते हैं—उसके साथ अपनी सेवा तो हो ही जाती है—तो दुःखियों को काम तो करना ही चाहिये। दुःखी को ऐसा हक़ नहीं कि वह काम न करे और मौजशौक करे। गीता में तो कहा है, यज्ञ करो और खाओ—यज्ञ करो और जो शेष रह जाता है, उसको खाओ। यह मेरे लिये है और आपके लिये नहीं है, ऐसा नहीं है—यह सब के लिये है। जो दुःखी हैं उनके लिये भी है। एक आदमी कुछ करे नहीं, बैठा रहे और खाये। वह चल नहीं सकता। करोड़पति भी काम न करे और खाये, तो वह निकम्मा है, पृथ्वी पर भार है। जिसके पास पैसा है, वह भी मेहनत करके खाये, तभी बनता है। हाँ, कोई लाचारी है—पैर नहीं चलते, अन्धा है, बूढ़ा हो गया है, तो अलग बात है। लेकिन जो तगड़ा है, वह क्यों न काम करे? जो कोई जो काम कर सकते हैं, सो करें। शिविरों में जो तगड़े लोग पड़े हैं, वे पाखाना भी उठावें। चरखा चलावें। जो काम कर सकते हैं, सो करें। जो लोग काम करना नहीं जानते, वे लड़कों को सिखावें। इस तरह काम लें। लेकिन कोई कहे कि कैम्ब्रिज में जैसी पढ़ाई होती थी, वैसी करावें। मैं, मेरा बाबा कैम्ब्रिज में सीखे थे, लड़के को भी वहां भेजें, तो वह कैसे हो सकता है? मैं तो इतना ही कहूँगा कि जितने शरणार्थी हैं, वे काम करके खायें, उन्हें काम करना ही चाहिये।

किसान

आज एक सज्जन आये थे। उनका नाम तो मैं भूल गया। उन्होंने किसानों की बात की। मैंने कहा, मेरी चले तो हमारा गवनर-जनरल किसान होगा, हमारा बड़ा वज़ीर किसान होगा सब कुछ किसान होगा,

क्योंकि वहां का राजा किसान है। मुझे बचपन से सिखाया था—एक कविता है, "हे किसान, तू बादशाह है।" किसान ज़मीन से पैदा न करे, तो हम क्या खायेंगे ? हिन्दुस्तान का सचमुच राजा तो वही है। लेकिन आज हम उसे गुलाम बनाकर बैठे हैं। आज किसान क्या करें ? एम० ए० बने ? बी० ए० बने ? —ऐसा किया, तो किसान मिट जायगा। पीछे वह कुदाली नहीं चलायेगा। जो आदमी अपनी ज़मीन में से पैदा करता है और खाता है, वो जनरल बने, प्रधान बने, तो हिन्दुस्तान की शकल बदल जायेगी। आज जो सड़ा पड़ा है, वह नहीं रहेगा।

मदरास में खुराक की तंगी

अन्त में गांधी जी ने कहा, मद्रास में खुराक की तंगी है। मद्रास सरकार की तरफ़ से दूत यह कहने के लिये श्री जयरामदास के पास आये थे कि वे उस सूबे के लिये अन्न देने का बन्दोबस्त करें। मुझे मद्रास वालों के इस दशा से दुःख होता है। मैं मद्रास के लोगों को यह समझाना चाहता हूं कि वे अपने ही सूबे में मूँगफली, नारियल और दूसरे खाद्य पदार्थों के रूप में काफी खुराक पा सकते हैं। उनके यहां मछली भी काफी है, जिन्हें उनमें से ज़्यादातर लोग खाते हैं। तब उन्हें भीख मांगने के लिये बाहर निकालने की क्या ज़रूरत है ? उनका चावल का आग्रह रखना—वह भी पालिश किया हुआ चावल, जिसके सारे पोषक तत्व मर जाते हैं—या चावल न मिलने पर मजबूरी से गेहूं मंजूर करना ठीक नहीं है। चाँवल आटे में वे मूँगफली या नारियल का आटा मिला सकते हैं और इस तरह अकाल के भेड़िये को आने से रोक सकते हैं। उन्हें ज़रूरत है आत्म-विश्वास और श्रद्धा की। मद्रासियों को मैं अच्छी तरह से जानता हूं और दक्षिण अफ्रीका में उस प्रान्त के सभी भाषा वाले हिस्सों के लोग मेरे साथ थे। सत्याग्रह-कूच के वक्त उन्हें रोजाना के राशन में सिर्फ़ डेढ़ पौंड रोटी और एक औंस शकर दी जाती थी। मगर जहां कहीं उन्होंने रात को डेरा डाला, वहां जंगल की घास में से खाने लायक चीज़ें चुनकर और मज़े से गाते हुये उन्हें पका कर उन्होंने मुझे अचरज में डाल दिया। ऐसे सूझ-बूझ वाले लोग कभी लाचारी कैसे महसूस कर सकते हैं ? यह सच है कि हम सब मज़दूर थे। और ईमानदारी से काम करने में ही हमारी मुक्ति और हमारी सभी आवश्यक ज़रूरतों की पूर्ति भरी है।

परिशिष्ट—२

बापू जी का आखिरी वसीयतनामा

['विचिनिमित्त शुक्रवार' के लेख में कांग्रेस के विधान के जिस मसविदे का ज़िक्र आया है, वह नीचे दिया जाता है। गान्धी जी के अवसान की वजह से यह हिन्दुस्तान की प्रजा के लिये उनका आखिरी वसीयतनामा बन गया है।—प्यारे लाल]

देश का बँटवारा होते हुये भी, हिन्दी राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा तैयार किये गये साधनों के ज़रिये हिन्दुस्तान को आज़ादी मिलने के कारण मौजूदा स्वरूपवाली कांग्रेस का काम अब खत्म हुआ—यानी प्रचार के वाहन और धारासभा की प्रवृत्ति चलाने वाले तन्त्र के नाते उसकी उपयोगिता अब समाप्त होगई है। शहरों और कस्बों से भिन्न उसके सात लाख गांवों की दृष्टि से हिन्दुस्तान को सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आज़ादी हासिल करना अभी बाकी है। लोकशाही के मकसद की तरफ़ हिन्दुस्तान की प्रगति के दरमियान फौजी सत्ता पर मुल्की सत्ता को प्रधानता देने की लड़ाई अनिवार्य है। कांग्रेस को हमें सियासी पार्टियों और साम्प्रदायिक संस्थाओं के साथ की गन्दी होड़ से बचाना चाहिये। इन और ऐसे ही दूसरे कारणों से अखिल भारत कांग्रेस कमेटी नीचे दिये हुये नियमों के मुताबिक अपनी मौजूदा संस्था को तोड़ने और लोक-सेवक-संघ के रूप में प्रकट होने का निश्चय करे। ज़रूरत के मुताबिक इन नियमों में फेरफार करने का इस संघ को अधिकार रहेगा।

गांव वाले या गांव वालों जैसी मनोवृत्ति वाले पांच

बालिग़ मर्दों या औरतों की बनी हुई हरएक पंचायत एक इकाई बनेगी।

पास-पास की ऐसी हर दो पंचायतों की, उन्हीं में से चुने हुये एक नेता की रहनुमाई में, एक काम करने वाली पार्टी बनेगी।

जब ऐसी १०० पंचायतें बन जायँ, तब पहले दरजे के पचास नेता अपने में से दूसरे दरजे का एक नेता चुनें और इस तरह पहले दरजे के नेता दूसरे दरजे के नेता के मातहत काम करें। दो सौ पंचायतों के ऐसे जोड़ कायम करना तब तक जारी रखा जाय, जब तक कि वे पूरे हिन्दुस्तान को न ढँक लें। और बाद में कायम की गई पंचायतों का हरएक समूह पहले की तरह दूसरे दरजे का नेता चुनता जाय। दूसरे दरजे का नेता सारे हिन्दुस्तान के लिये सम्मिलित रीति से काम करें और अपने अपने प्रदेशों में अलग अलग काम करें। जब ज़रूरत महसूस हो, तब दूसरे दरजे के नेता अपने में से एक मुखिया चुनें, जो चुनने वाले चाहें तब तक, सब समूहों को व्यवस्थित करके उनकी रहनुमाई करे।

(प्रान्तों या ज़िलों की अन्तिम रचना अभी तय न होने से सेवकों के इस समूह को प्रान्तीय या ज़िला समितियों में बाँटने की कोशिश नहीं की गई। और किसी भी वक़्त बनाये हुये समूह या समूहों को सारे हिन्दुस्तान में काम करने का अधिकार रहेगा। सेवकों के इस समुदाय को अधिकार या सत्ता अपने उन स्वामियों से यानी सारे हिन्दुस्तान की प्रजा से मिलती है, जिसकी उन्होंने अपनी इच्छा से और होशियारी से सेवा की है।)

१. हर एक सेवक अपने हाथों कते हुये सूत की या चरखा-संघ द्वारा प्रमाणित खादी हमेशा पहनने वाला और नशीली चीज़ों से दूर रहने वाला होना चाहिये। अगर वह हिन्दू है, तो उसे अपने में से और अपने परिवार में से हर किस्म की छुआछूत दूर करनी चाहिये। और जातियों के बीच एकता के, सब धर्मों के प्रति समभाव के और जाति, धर्म या स्त्री-पुरुष के किसी भेदभाव के बिना सबके लिये समान अवसर और दरजे के आदर्श में विश्वास रखने वाला होना चाहिये।

२. अपने कार्य क्षेत्र में उसे हरएक गाँव वाले के निजी संसर्ग में रहना चाहिये।

३. गांव वालों में से वह कार्यकर्ता चुनेगा और उन्हें तालीम देगा। इन सब का वह रजिस्टर रखेगा।

४. वह अपने रोजाना के काम का रेकार्ड रखेगा।

५. वह गांवों को इस तरह संगठित करेगा कि वे अपनी खेती और गृह-उद्योगों द्वारा स्वयंपूर्ण और स्वावलम्बी बनें।

६. गांव वालों को वह सफ़ाई और तन्दुरुस्ती की तालीम देगा और उनकी बीमारी व रोगों को रोकने के लिये सारे उपाय काम में लायेगा।

७. हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की नीति के मुताबिक़ नई तालीम के आधार पर वह गाँव वालों की पैदा होने से मरने तक सारी शिक्षा का प्रबन्ध करेगा।

८. जिनके नाम मतदाताओं की सरकारी लिस्ट में न आ पाये हों, उनके नाम वह उसमें दर्ज करायेगा।

६. जिन्होंने मत देने के अधिकार के लिये ज़रूरी योग्यता अभी हासिल न की हो, उन्हें उसे हासिल करने के लिये वह प्रोत्साहन देगा।

१०. ऊपर बताये हुये और वक़्तन-फ़-वक़्तन बढ़ाये हुये मक़सद पूरे करने के लिये, योग्य फ़र्ज़ अदा करने की दृष्टि से, संघ के द्वारा तैयार किये गये नियमों के मुताबिक़ वह खुद तालीम लेगा और योग्य बनेगा।

संघ नीचे की स्वाधीन संस्थाओं को मान्यता देगा;

१. अखिल भारत चर्खा—संघ

२. अखिल भारत ग्रामोद्योग—संघ

३. हिन्दुस्तानी तालीमी-संघ

४. हरिजन—सेवक-संघ

५. गोसेवा-संघ

संघ अपना मक़सद पूरा करने के लिये गांव वालों से और दूसरों से चन्दा लेगा। ग़रीब लोगों का पैसा इकट्ठा करने पर ख़ास ज़ोर दिया जायगा।

परिशिष्ट—३

बापू-वाणी

"मैं एक सच्चा सनातनी हिन्दू हूँ। मेरा हिन्दू धर्म बताता है कि मैं हिन्दू प्रार्थना के साथ साथ मुसलमान प्रार्थना भी करूँ। पारसी प्रार्थना भी करूं तथा ईसाई प्रार्थना भी करूं। सभी प्रार्थना करने में मेरा हिन्दूपन है, क्योंकि वही अच्छा हिन्दू है जो अच्छा मुसलमान भी है और अच्छा पारसी भी है।"

"जो पैदा होगा वह मरेगा ही। पैदा होने में तो किसी अंश में मनुष्य का हाथ है भी; पर मरने में सिवाय ईश्वर के किसी का हाथ नहीं होता। मौत किसी तरह टाली नहीं जा सकती। वह तो हमारी साथी है, हमारी मित्र है।"

"प्रार्थना शुरू करने के बाद मैं रुकने वाला नहीं हूँ, चाहे कत्ल भी क्यों न हो जाऊं। और उस समय भी आप देखेंगे कि मेरी आखिरी साँस छूटती होगी तब भी मेरे मुंह से 'राम-रहीम', 'कृष्ण-करीम' का जाप चलता होगा। मैंने बता दिया कि मैं भंगी हूँ, ईसाई हूँ, मुसलमान हूँ, और हिन्दू तो हूं ही।"

"मरने का इल्म मैं जीवन भर सिखाता आया हूँ और सीख रहा हूं। मरना हो तो इस तरह गुस्से में मुझे नहीं मरना चाहिये। ठराडी ताकत से मरना चाहिये इस समय ये लोग ग़लत फहमी में हैं। वे समझते हैं कि गांधी ही यह सब कुछ बिगाड़ता फिरता है। इसलिये इस वक्त शान्ति को ही मेरी प्रार्थना समझिये। मैं जानता हूं कि पञ्जाब के कारण सब का खून उबल रहा है। क्या मेरा खून नहीं उबल रहा है? मेरे दिल में भी तो आग धधक रही है। मैं पञ्जाब की समस्या सही-सही समझता हूं। पञ्जाबी सब मेरे भाई हैं। वे इस समय गुस्से में हैं। उन्हें शांत होना चाहिये। बिहार भी गुस्से से भर गया था। उसका गुस्सा मैंने रोका है। इस समय गुस्से को रोक कर ही हम आगे बढ़ सकते हैं।"

"मैं खाला भङ्गी हूँ। मैं बाहर की सफाई करता हूं, बाहर के पाखाने उठाता हूँ, लेकिन हमारे सब के दिल में भी मैला भरा हुआ है। असली भङ्गी को भीतर की भी सफ़ाई करनी होती है जो मैं कर रहा हूँ। अगर इस मैले को हमने अपने दिल से नहीं निकाला, अगर ऊंच-नीच की यह बात हम में से नहीं हटेगी तो हिन्दू धर्म बचने वाला नहीं है। आज तक यह बचा हुआ है, क्योंकि यह बहुत बड़ा धर्म है। वह मरते-मरते भी टिका है फिर भी अगर हमने ऊंच नीच भाव न छोड़ा तो यह बड़ा होने पर भी कमज़ोर हो जावेगा।"

"लेकिन हिन्दू धर्म में किसी को शिकायत नहीं हो सकती। हमारे यहां १०८ उपनिषद् हैं। उनमें एक उपनिषद् का नाम अल्लोपनिषद् है। यही तो हिन्दू धर्म की खूबी है कि वह बाहर से आने वालों को अपना लेता है। लेकिन उसमें जो कमी है वह है अस्पृश्यता या ऊंच-नीच का भेद। यह ज़हर उसमें फैल गया है। उसके निकल जाने से ही वह बचेगा। ये लोग तलवार से हिन्दू धर्म को बचाने की बात करते हैं। ये तलवार लेकर क़वायद करते हैं। यह सब क्यों? मारने के लिये। इस तरह हिन्दू धर्म बढ़ने वाला नहीं है।"

"सत्य से ही धर्म बढ़ता है और यह बात तो मैंने हिन्दू धर्म से सीखी है। 'सत्यान्नास्ति परो धर्मः' और 'अहिंसा परमोधर्मः' भी हिन्दू धर्म ने सिखाया है। भगवान पतंजलि हैं जिन्होंने अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि पाँच व्रतों को हिन्दू धर्म में विधान का स्थान दिया और धर्मों में भी ये बातें हैं, लेकिन इनका विधान तो हिन्दू धर्म ने ही रचा है।"

"अगर मैं हिन्दू हूँ तो कुरान क्यों नहीं पढ़ सकता? जेन्दावस्ता क्यों नहीं पढ़ सकता? और हिन्दू की प्रार्थना में भी तो भेद कम नहीं है। कोई कहेगा वेद नहीं उपनिषद् कहो, उपनिषद् नहीं गीता कहो, यजुर्वेद नहीं अथर्वेद कहो। यानी सभी अपने अपने ढङ्ग की प्रार्थना करने के हक़दार हैं। यदि आप मुझे रोकना चाहें तो मैं आज भी खुद हार मान कर आपको जिताने

को तयार हूं। यदि आप में से कोई चाहे तो मुझे वह ज़हर का प्याला दे सकते हैं। कोई देगा तो मैं उसे खुशी-खुशी पीना चाहूंगा, और आप भी उसे सहन कीजिये। आपको पीना नहीं है, पर आप उसके साक्षी बनें। आप गुस्सा न करें और अपने दिल में समझें कि वह बुड्ढा जो ग़म खा रहा है वह ठीक ही कर रहा है।"

"मैं सनातनी हिन्दू हूं, इसलिये ईसाई, बौद्ध और मुसलमान होने का दावा करता हूं। कुछ मुसलमान भाई भी यह महसूस करते हैं कि मुझे क़ुरान की अरबी आयतें पढ़ने का अधिकार नहीं है। वे समझते हैं कि कलमा पढ़कर मैं मुसलमानों को धोखे में डालता हूं। ऐसे लोग यह नहीं जानते कि मज़हब भाषा और लिपि की सीमा से बाहर है। मैं कोई कारण नहीं देखता कि मैं कलमा क्यों नहीं पढ़ सकता, और मुहम्मद को रसूल यानी अपना पैग़म्बर क्यों नहीं मान सकता, मैं तो हर मज़हब के पैग़म्बर और सन्तों में विश्वास रखने वाला हूं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करूंगा कि मुझ पर इस्लाम लगाने वालों पर मुझे गुस्सा न आये, इतना ही नहीं बल्कि मैं उनके हाथों मरने के लिये भी तैयार रहूं; और मेरा विश्वास है कि अगर मैं अपने यक़ीन पर मज़बूती से क़ायम रहा तो मैं सिर्फ़ हिन्दू धर्म की ही नहीं इस्लाम धर्म की भी सेवा करूंगा।"

"बहादुर लोग मरते मरते भी मारने वालों की शिकायत नहीं करेंगे। न उन्हें सज़ा दिलवाने की बात सोचेंगे। मारने वाले सज़ा में से छूट जाने वाले नहीं हैं। ईश्वर उन्हें सज़ा देगा, हम सज़ा देने वाले कौन होते हैं! हम ईश्वर से भी नहीं कहेंगे 'हे भगवान तू उन्हें सज़ा दे।' क्योंकि ईश्वर दयावान है। हम तो उससे अपने लिये और दुश्मन के लिये भी रहम ही मांगेंगे। और मरते वक्त भी सबका, मारने वालों का भी भला चाहने की कोशिश करते हुये मरेंगे। इतने पर भी भगवान जो करेगा उसमें दया ही भरी होगी।"

"हम ऐसे भी हो गये हैं कि सवेरे उठते ही क़ुरान के बिना हमें चलेगा, गीता-रामायण के बिना काम चल जायेगा, लेकिन अख़बार के बिना हमारा काम बिल्कुल ही नहीं चलेगा। अख़बार न मिला तो हाथ-तोबा मच जाती है। अख़बार वालों ने भी हवाई बातें कर-करके सब को ग़ुलाम बना डाला है। लेकिन वे सारी बातें क़रीब-क़रीब निकम्मी होती हैं।"

"मैं कहूंगा कि ऐसे निकम्मे अख़बारों को आप फेंक दें। कुछ ख़बर सुननी हो तो दूसरों से ज्ञान पूछ लें। अख़बार न पढ़ेंगे तो आपका कोई नुक़सान होने वाला नहीं है। अगर पढ़ना ही चाहें तो सोच समझ कर ऐसे अख़बार चुन लें जो हिन्दुस्तान की सेवा के लिये चलाये जा रहे हों। फिर ऐसे अख़बार वालों को भी इतनी धांधली में पड़ने की ज़रूरत नहीं रहेगी कि उन्हें रात भर जागते रहना पड़े और दिन में भी चैन न ले सकें। तथा ऐसी बे बुनियाद ख़बरें छापने की दौड़ भी नहीं लगानी पड़ेगी।"

"मरने का इल्म सीखने के बाद ही धर्म में ताक़त पैदा होती है। धर्म के वृक्ष को मरने वाले ही सींचते हैं। धर्म उन लोगों के कारण बढ़ता है जो ईश्वर का नाम लेते हैं, ईश्वर का काम करते हैं, ईश्वर का स्तवन करते हैं, उपवास और व्रत करते हैं और ईश्वर से यह आरज़ू करते रहते हैं कि हे भगवान हमें रास्ता नहीं दीखता, तू ही दिखा। तब लोग कहते हैं कि वह तो भक्त है और उसके पीछे चलते हैं। धर्म इसी तरह बनता है। मार कर कोई नहीं धर्म पनपा; मर कर ही धर्म पनपा है यही धर्म की जड़ है।"

"राम-रहीम दोनों एक ही हैं, ऐसा आप मन में समझें। यानी हिन्दू धर्म और मुसलमान धर्म दोनों महान हैं। दोनों धर्मों में कोई भेद नहीं है। मेरी समझ में यह बात ही नहीं आती कि दो धर्म आपस में एक दूसरे को दुश्मन क्यों मानें, और किस वजह से मानें। इसलिये मैं चाहता हूं कि शांति में आपका यही मन्त्र हो कि तू ईश्वर है, तेरे हज़ार नाम हैं मैंने बताया था कि हमारे धर्म में विष्णु-सहस्र-नाम का बड़ा चलन है। बल्कि मैं तो मानता हूं कि दुनिया में जितने आदमी हैं उतने ईश्वर के नाम हैं। ईश्वर, भगवान, ख़ुदा, गाड,

रहेनवाली कुछ भी कह लो उसी के नाम हैं। और इन सब नामों से भी वह ज्यादा है"।

"मैं कई जगह मुसलमानों के घर में ठहरता हूँ। वहां बड़े आराम से और बिना संकोच के नियमित प्रार्थना करता हूँ। और वहाँ, नोआखाली में, जब मैं घूम रहा था तो खास मस्जिद तो नहीं पर बिलकुल ही मस्जिद के पास मैंने अनेक बार प्रार्थना की है। एक बार तो मस्जिद के अहाते में ही—मस्जिद के अन्दर के मकान में भी मैंने प्रार्थना की है। वहां तो मेरे साथ पूरा साज़-बाज़ रहता था। ढोलकी भी बजती थी और तालियों के साथ रामधुन भी होती थी। मस्जिद के अहाते में जब प्रार्थना हुई तब मेरे पास ढोलक तो नहीं थी परन्तु वहां भी तालियों के साथ रामधुन हुई थी। मैं वहां के मुसलमान भाइयों से कहता था कि जैसे आप रहीम का नाम लेते हैं वैसे ही मैं यहां रामनाम लूंगा। रहीम का नाम जो कहते हैं उन्हें रामनाम लेने वालों को रोकना नहीं चाहिये। और उन्होंने मुझे रामनाम लेने से रोका नहीं था।"

"ईश्वर के सामने हम सभी गोपियां हैं। ईश्वर स्वयं न नर है, न नारी है, उसके लिये न पंक्ति भेद है, न योनि भेद, वह 'नेति नेति' है। वह हृदय रूपी वन में रहता है और उसकी वंशी है अन्तरनाद। हमें निर्जन वन में जाने की आवश्यकता नहीं है। अपने अन्तर में हमें ईश्वर का मधुर नाद सुनना है और जब हममें से हरएक वह मधुर नाद सुनने लगेगा तब हिन्दुस्तान का भला होगा।"

"जब यहां भी ईश्वर है, वहां भी ईश्वर है और ईश्वर तो एक ही हो सकता है। तब दोनों अलग अलग नाम लें और एक दूसरे के नाम बर्दाश्त न कर सकें यह तो पागलपन सा ही दीखता है। तभी मैंने कल कहा था कि क्या हिन्दुस्तान में से हालांकि अब हिन्दुस्तान नाम तो हमें छोड़ना है—रहीम का नाम लेने वाले को चला जाना होगा? और वहाँ—पाकिस्तान कहे जाने वाले हिस्से में—राम का नाम त्याज्य रहेगा? क्या वहाँ कोई कृष्ण कहेगा तो उसे निकाल दिया जायगा? वहाँ कुछ भी हो, हमारे यहां यह नहीं हो सकता। हम कृष्ण को और करीम को दोनों को बराबर मानेंगे और दुनिया को भी बताएंगे कि हम पागल बनने वाले नहीं हैं।"

परिशिष्ट—४

गाँधी-युग

२ अक्टूबर १८६९ सुदामापुरी [पोरबन्दर] में श्री करमचन्द [उपनाम कबा] गांधी की पत्नी श्रीमती पुतली बाई के गर्भ से जन्म।

सन् १८७६ बालक गांधी के पिता पोरबन्दर से राजकोट आये। इसी वर्ष श्री गोकुलदास मानकजी की बालिका कस्तूरबा से सगाई।

सन् १८८३,१३ वर्षीय गांधी का अपने से ६ मास छोटी दुलहन के साथ विवाह।

सन् १८८४—सोने की चोरी की, किन्तु पिता के चरणों पर शीश झुकाकर क्षमा-याचना करली और भविष्य में कभी चोरी न करने की शपथ ली। सहृदय पिता की आँखों में आँसू उमड़ आये। "स्नेह के इन मोतियों ने मेरा हृदय निर्मल कर दिया और मेरे पाप को भी धो दिया। मेरे लिए अहिंसा का वह पहला पाठ था", बाद में महात्मा ने लिखा।

सन् १८८५,१६ वर्ष की आयु में पिता का अवसान।

सन् १८८७ राजकोट के काठिया वाड़ हाई स्कूल से मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास की और भावनगर जाकर सामलदास कालेज में भरती हुए। अध्ययन में रुचि न होने के कारण वर्ष समाप्त होने से पहले ही घर लौट आये।

४ सितम्बर १८८८ जातिवालों के घोर विरोध की

उपेक्षा कर कानून शिक्षार्थ इंग्लैंड को प्रस्थान। जाने से पहले मद्य, स्त्री और मांस से दूर रहने का वचन माता को दिया।

१२ जून, १८९१—बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त कर भारत को प्रस्थान।

सन् १८९३ से ९५—दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के प्रति दिखाई जाने वाली उपेक्षा का अध्ययन। स्वयं कई बार उपेक्षित और अपमानित, किन्तु शांत; प्रतिशोध की भावना का दमन; भारतीयों की समस्याओं में बढ़ती हुई रुचि, नैटाल में वकालत आरम्भ। २२ मई, १८९४—नैटाल भारतीय कांग्रेस को जन्म दान।

जून, १८९६—६ महीने के लिए भारत लौटे और भारतीय नेताओं से मिलकर दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के प्रति सहानुभूति जाग्रत की।

२८ नवम्बर १८९६—नैटाल से तार द्वारा बुलाये जाने के कारण अपनी पत्नी और ८ तथा ४ वर्षीय दो बच्चों के साथ दक्षिण अफ्रीका के लिए दूसरी बार प्रस्थान।

सन् १८९७ से ९८—नैटाल में गांधीजी पर यूरोपियनों का आक्रमण, ईंट पत्थर से चोट; नैटाल के औपनिवेशिक मन्त्री ने आक्रमण कारियों पर मुकदमा चलाने को कहा, किन्तु गांधीजी ने कहा—"नहीं उन्हें जब अपनी भूल मालूम होगी तो वे आप पछतायेंगे।"

सन् १८९९—बोअर युद्ध में घायलों की सेवा के लिए सेवा समिति की स्थापना।

नवम्बर, १९०१—दक्षिण अफ्रीका से भारत वापिस।

सन् १९०२—देश पर्यटन; रेल की तीसरी श्रेणी में यात्रा।

१ जनवरी, १९०३—दक्षिण अफ्रीका से फिर बुलावा: प्रिटोरिया पहुंचे।

अप्रैल १९०३—ट्रांसवाल की बड़ी कचहरी में नियमित रूप से वकालत आरम्भ; वहां ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन की स्थापना।

सन् १९०४—अंग्रेजी, तामिल, गुजराती और हिन्दी में प्रकाशित होने वाले "इंडियन ओपिनियन" का सम्पादन ग्रहण।

सन् १९०६—३७ वर्ष की आयु में आमरण ब्रह्मचर्य का संकल्प, कस्तूरबा द्वारा पुण्यपतिदेव के संकल्प का समर्थन।

सन् १९०७—भारतीय प्रवास सम्बन्धी कानून के विरोध में सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ; गांधीजी ने ५०० पौंड प्रतिवर्ष की आय का मोह छोड़कर वकालत छोड़ दी और आन्दोलन के संचालनार्थ अपनी बचाई हुई पूंजी अर्पित की।

१० जनवरी, १९०८—एक वीर सत्याग्रही के रूप में पहली बार दो मास के कारावास का दण्ड।

१५ अक्तूबर १९०८—सत्याग्रह के अपराध में दो मास के कारावास का पुनः दण्ड।

सन् १९१०—सत्याग्रह करने वालों के लिए टाल्सटाय आश्रम की स्थापना, जहां धर्म सेवा आदि की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया।

एक दिन में ५५ मील पैदल चले।

मार्च १९१३—महात्माजी के संकेत पर पहली बार महिलाओं ने सत्याग्रह में भाग लिया; अन्य स्त्रियों के साथ कस्तूरबा गिरफ़्तार की गईं।

५ नवम्बर, १९१३—कूच सत्याग्रह। नव० दिसम्बर, १९१३—कूच सत्याग्रह के सम्बन्ध में कई बार गिरफ़्तार और अन्त में बिना शर्त रिहा।

सन् १९१४—सत्याग्रहियों की नैतिक भूलों के प्रायश्चित रूप १४ दिन का अनशन। ४ अगस्त को प्रथम महासागर के आरम्भ होने पर घायलों के लिए सेवा-समिति की स्थापना। दिसम्बर में प्लूरेसी का आक्रमण होने के कारण भारत लौटे।

सन् १९१५—नये वर्ष के उपलक्ष में लार्ड हार्डिंग द्वारा कैसर हिन्द पदक प्रदान।

१८ फरवरी, १९१५—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक पत्र में गांधीजी को महात्मा कहकर सम्बोधित किया।

४ फरवरी, १९१६—महात्माजी ने काशी विश्व-विद्यालय के उद्घाटन समारंभ में कहा 'यदि मैंने भारत की मुक्ति के लिए अंग्रेजों का यहां से चला जाना आवश्यक समझा तो मैं यह कहने में संकोच नहीं करूँगा कि उन्हें ऐसा करना पड़ेगा और मुझे आशा है कि मैं इस बात के लिए मरने को तैयार रहूँगा।

इसी वर्ष उनका लखनऊ कांग्रेस में प्रतिनिधि के लिये नाम पेश हुआ किन्तु चुने न जा सके।

१० अप्रैल, १९१७—राजेन्द्र बाबू से प्रथम भेंट।

१७ जून, १९१७—साबरमती आश्रम की स्थापना।

११ अप्रैल, १९१९—रौलेट ऐक्ट का विरोध करने दिल्ली जाते समय पलवल में गिरफ़्तार।

१८ अप्रैल, १९१९—सत्याग्रह स्थगित किया।

८ अक्तूबर, १९१९—"यंग इण्डिया" और "नवजीवन" के साप्ताहिक संस्करण आरम्भ।

१४ नवम्बर, १९१९—अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन का सभापतित्व।

१८ जनवरी, १९२०—मौलाना आज़ाद से पहली भेंट।

१ अगस्त, १९२०—कैसरे हिन्द स्वर्णपद का परित्याग।

नवम्बर, १९२०—गुजरात विद्यापीठ की स्थापना।

जनवरी, १९२१—बम्बई में खादी भण्डार की पहली दूकान का संस्थापन।

१ अगस्त, १९२१—देश में कोने कोने में विदेशी वस्त्र की होली।

१६ अगस्त, १९२१ कुरता और टोपी का परित्याग कर केवल लँगोटी पहनने का निश्चय।

१० मार्च, १९२२—"यंग इण्डिया" में तीन राजद्रोहात्मक लेख लिखने के अपराध में गिरफ़्तार।

१९ मार्च, १९२२—६ वर्ष के कारावास का दंड, माता कस्तूरबा द्वारा लोगों से शांत रह कर रचनात्मक कार्यक्रम पर ध्यान केन्द्रित करने की अपील। इसी वर्ष कारावास में रहते हुए अपनी "आत्म कथा" गुजराती में लिखनी आरम्भ की।

५ फरवरी, १९२४—अस्वस्थ हो जाने के कारण बिना शर्त रिहाई।

२७ जून, १९२४—कांग्रेस की महासमिति के अहमदाबाद अधिवेशन में जब श्री चित्तरंजन दास आदि ने गांधी जी के उस प्रस्ताव का विरोध किया जिसमें उन्होंने गोपीनाथ साहा द्वारा की गई अर्नेस्ट डे की हत्या की निन्दा की थी, तो द्रवित हो महात्मा गांधी रो पड़े।

१८ सितम्बर, १९२४—बेलगांव में प्रथमबार कांग्रेस के सभापति।

सितम्बर १९२५—आल इण्डिया स्पिनर्स एसोसियेशन की स्थापना।

मार्च १९२९—कलकत्ते में गिरफ़्तारी।

१२ मार्च, १९३०—डांडी के लिये ऐतिहासिक कूच।

६ अप्रैल, १९३०—डांडी में नमक बना कर सरकारी कानून भङ्ग किया।

५ मई, १९३०—रात के पौन बजे सोते से जगाकर गिरफ़्तार किये गये।

२५ जनवरी, १९३१—इर्विन घोषणा, गांधी जी और ३० अन्य नेता रिहा।

४ मार्च, १९३१—गांधी इर्विन समझौता।

२५ मार्च, १९३१—"गांधी मर सकता है, किन्तु गांधीवाद सदा जीवित रहेगा", —गांधी जी ने कराची की एक सार्वजनिक सभा में कहा।

२७ अगस्त, १९३१—गोलमेज परिषद् में भाग लेने के लिये इंग्लैंड रवाना।

१२ दिसम्बर, १९३१—इंग्लैंड से लौटते समय रोम में मुसोलिनी से भेंट।

४ जनवरी, १९३२—सत्याग्रह पुनः आरम्भ। कांग्रेसी संस्थाओं पर प्रतिबंध, गांधी जी गिरफ्तार।

२० सितम्बर, १९३२—दलितवर्ग के लिये पृथक चुनाव की घोषणा के विरोध में यरवदा जेल से ऐतिहासिक आमरण उपवास आरम्भ।

२६ सितम्बर, १९३२—सरकारी विज्ञप्ति से संतोष होने के कारण उपवास तोड़ा।

फरवरी, १९३३—हरिजन सेवक संघ की स्थापना और साप्ताहिक 'हरिजन' का प्रकाशन।

८ मई, १९३३—आत्मशुद्धि के लिये २१ दिन का उपवास; उसी दिन जेल से रिहा।

२९ मई, १९३३—पर्ण कुटी, पूना, में उपवास सफलता पूर्वक समाप्त।

७ अप्रैल १९३४—सत्याग्रहियों के नैतिक आचरण से असंतुष्ट होने के कारण सत्याग्रह को स्थगित करने का आदेश।

अक्टूबर १९३४—कांग्रेस सदस्यता का परित्याग।

अप्रैल १९३५—इन्दौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन

का सभापतित्व और हिन्दुस्तानी को राष्ट्र भाषा बनाने की अपील।

११ अक्तूबर १९४०—व्यक्तिगत सत्याग्रह का सूत्रपात।

२७ मार्च १९४२—दिल्ली में सर स्टेफर्ड क्रिप्स से भेंट, क्रिप्स योजना को 'पोस्ट डेटेड चेक' कहना।

६ अगस्त १९४२—गांधी जी कार्य समिति के अन्य नेताओं के साथ गिरफ्तार। अगस्त १९४२-गाँधी जी के अभिन्न सहकारी श्री महादेव देसाई की मृत्यु।

१० फरवरी १९४३—आगाखाँ के महल में २१ दिन का उपवास आरम्भ।

३ मार्च १९४३—उपवास सफलता पूर्वक समाप्त।

२२ फरवरी १९४४—शिवरात्री के शुभ पर्व पर महात्मा गांधी की जीवनसंगिनी माता कस्तूरबा का हृदय रोग से अवसान।

५ मई १९४४—स्वास्थ्य गिरने के कारण जेल से मुक्ति।

६ सितम्बर १९४४— श्री जिन्नाह से ऐतिहासिक मुलाकात, १७ दिन के अनथक प्रयत्न के बाद भी वार्ता असफल।

जून जुलाई १९४५—शिमला में स्वधीनता वार्ता।

७ जनवरी १९४६—१८ धाराओं का रचनात्मक कार्य-क्रम प्रकाशित।

४ जनवरी १९४६—ब्रिटिश प्रतिनिधि मण्डल से भेंट।

१० फरवरी १९४६—३॥ वर्ष बाद 'हरिजन' पुनः प्रकाशित।

१५ मार्च १९४६—श्रीपुर में गांधी मंदिर की स्थापना।

२ अप्रैल १९४६—बृटिश मन्त्रिमिशन से भेंट और अविश्वास प्रदर्शन।

९ अप्रैल १९४६—वाइसराय व कमान्डर-इन-चीफ से भेंट।

२४ अप्रैल सन् १९४६—अमेरिका के 'अकाल कमीशन' के चेअरमैन मि० हूवर से भेंट।

१ मई १९४६—गाधी जी का शिमला में आना और वाइसराय तथा स्टेफर्ड क्रिप्स से भेंट।

१२ मई–१९४६ शिमला कानफ्रेंस में भाग।

नवम्बर १९४६—नोआखाली की पैदल यात्रा।

११ जनवरी १९४७— विधान परिषद् का नेहरू—प्रस्ताव का समर्थन।

१ सितम्बर—गांधी जी का कलकत्ता अनशन।

४ सितम्बर—अनशन समाप्त।

१३ जनवरी १९४८—दिल्ली में अनशन।

१८ जनवरी १९४८— अनशन समाप्त।

२० जनवरी १९४८—प्रार्थना सभा में बम।

३० जनवरी—प्रार्थना सभा में वीर गति।

सान्ध्य-प्रार्थना



परिशिष्ट—५

बापू की सान्ध्य-प्रार्थना

बौद्ध मन्त्र

नम्यो हो रेंगे क्यो।

संत् धर्म के प्रवर्तक भगवान् बुद्ध को नमस्कार करता हूँ।

उपनिषत् मंत्र

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

इस जगत में जो कुछ भी जीवन है वह सब ईश्वर का बसाया हुआ है। इसलिये तू ईश्वर के नाम से त्याग करके यथाप्राप्त भोग किया कर। किसी के धन की वासना न कर।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै —
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरा सुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र और पवन दिव्य स्तोत्रों से

जिसकी स्तुति करते हैं, सामवेद का गान करने वाले मुनि, अंग, पद, क्रम और उपनिषद् सहित वेदों से जिसका स्तवन करते हैं, योगी लोग ध्यानस्थ होकर ब्रह्ममय मन द्वारा जिसका दर्शन करते हैं और सुर तथा असुर जिसकी महिमा का पार नहीं पाते, मैं उस परमात्मा को नमस्कार करता हूं।

गीता: अध्याय २

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम ॥५४॥

५४. हे केशव ! स्थितप्रज्ञ अथवा समाधिस्थ के क्या लक्षण होते हैं ! स्थितप्रज्ञ कैसे बोलता, बैठता और चलता है ?

श्री भगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान्
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥

५५. हे पार्थ ! जब मनुष्य मन में उठती हुई सभी कामनाओं का त्याग कर देता है और आत्मा द्वारा ही आत्मा में सन्तुष्ट रहता है तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

५६. दुख से जो दुखी न हो, सुख की इच्छा न रखे, और राग, भय और क्रोध से रहित हो, वह स्थिर-बुद्धि मुनि कहलाता है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

५७. सर्वत्र राग रहित होकर जो पुरुष शुभ या अशुभ की प्राप्ति में न हर्षित होता है; न शोक करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

५८. कछुआ जैसे सब ओर से अङ्ग समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों को उनके विषयों से समेट लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर हुई कही जाती है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥५९॥

५९. देह धारी जब निराहार रहता है तब उसके विषय मन्द पड़ जाते हैं, परन्तु रस नहीं जाता है। वह रस तो ईश्वर का साक्षात्कार होने से ही शान्त होता है।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥

६०. हे कौन्तेय ! चतुर पुरुष के उद्योग करते रहने पर भी इंद्रियाँ ऐसी प्रमथनशील हैं कि वे उसके मन को भी बलात्कार से हर लेती हैं।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

६१. इन सब इन्द्रियों को वश में रखकर योगी को मुझमें तन्मय हो रहना चाहिये, क्योंकि अपनी इन्द्रियां जिसके वश में हैं उसकी बुद्धि स्थिर है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
संङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६२॥

६२. *विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष को उनमें* आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से कामना होती है, और कामना से क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

६३. क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न होती है, मूढ़ता से स्मृति भ्रान्त हो जाती है, स्मृति भ्रांत होने से ज्ञान का नाश हो जाता है, और जिसका ज्ञान नष्ट हो गया वह मृतक तुल्य है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥६४॥

६४. परन्तु जिसका मन अपने अधिकार में है और जिसकी इन्द्रियां रागद्वेष-रहित होकर उसके वश में रहती हैं, वह मनुष्य इन्द्रियों का व्यापार चलाते हुये भी चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करता है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

६५. चित्त प्रसन्न रहने से सब दुःख दूर हो जाते हैं। जिसे प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है, उसकी बुद्धि तुरन्त स्थिर हो जाती है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥६६॥

६६. जिसे समत्व नहीं, उसे विवेक नहीं। जिसे विवेक नहीं, उसे भक्ति नहीं। और जिसे भक्ति नहीं, उसे शान्ति नहीं है। और जहां शांति नहीं, वहां सुख कहां से हो ?

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥६७॥

६७. विषयों में भटकाने वाली इन्द्रियों के पीछे जिसका मन दौड़ता है उसका मन, जैसे वायु नौका को जल में खींच ले जाता है वैसे ही, उसकी बुद्धि को जहां चाहे वहां खींच ले जाता है।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

६८. इसलिये हे महाबाहो ! जिसकी इन्द्रियां चारों ओर के विषयों से निकल कर अपने वश में आ जाती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९॥

६९. जब सब प्राणी सोते रहते हैं, तब संयमी जागता रहता है। जब लोग जागते हैं, तब ज्ञानवान मुनि सोता रहता है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

७०—नदियों के प्रवेश से भरते रहने पर भी जैसे समुद्र अचल रहता है, वैसे ही जिस मनुष्य में संसार के भोग शान्त हो जाते हैं, वही शान्ति प्राप्त करता है, न कि कामना वाला मनुष्य।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥७१॥

७१. सब कामनाओं का त्याग करके जो पुरुष इच्छा ममता और अहङ्कार—रहित होकर विचरता है वह शान्ति पाता है।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

७२. हे पार्थ ! ईश्वर को पहचानने वाले की स्थिति ऐसी होती है। उसे पाने पर फिर वह मोह के वश नहीं होता और यदि मृत्यु काल में भी ऐसी ही स्थिति टिकी रहे, तो वह ब्रह्मनिर्वाण पाता है।

एकादश व्रत

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह ।
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन ॥
सर्व धर्मी समानत्व स्वदेशी स्पर्श भावना ।
ही एकादश सेवावी नम्रत्वे व्रतनिश्चये ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शारीरिक श्रम, अस्वाद, सब जगह भय का त्याग, सब धर्मों के साथ समान भाव, स्वदेशी धर्म का पालन, स्पर्शास्पर्श भावना का त्याग—इन ग्यारह व्रतों को पालन करने का नम्रता पूर्वक निश्चय करता हूं।

कुरान की आयत

अऊजु बिल्लाहि मिनश् शैत्वानिर्रजीम।
बिस्मिल्लाहिर् रहमानिर् रहीम ॥
अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल् आलमीन।
अर् रह्मानिर रहीम मालिकि यौमिद्दीन।
ईयाक नअबुदु व ईयाक नस्तईन्।
इह्दिनस् सिरात्वल् मुस्तक़ीम्
सिरात्वल् लज़ीन अन्अम्त अलैहिम्
ग़ैरिल्मग़् दूबि अलैहिम् व लद् दाल्लीन।

मैं पापात्मा शैतान के हाथों से (अपने को) बचाने के लिये परमात्मा की शरण लेता हूँ। हे प्रभो ! तुम्हारे नाम का ही स्मरण करके मैं सारे कामों का आरम्भ करता हूँ। तुम दया के सागर हो, तुम कृपामय हो। तुम अखिल विश्व के पालनहार हो। तुमही मालिक हो। मैं तुम्हारी ही मदद मांगता हूं आख़िरी न्याय देने वाले तुम ही हो। तुम मुझे सीधा ही रास्ता दिखाओ, उन्हीं को चलने का रास्ता दिखाओ जो तुम्हारी कृपा-दृष्टि पाने के क़ाबिल हो गये हैं. जो तुम्हारी अप्रसन्नता के योग्य ठहरे, जो ग़लत रास्ते से चले हैं उनका रास्ता मुझे मत दिखाओ। ईश्वर एक है। वह सनातन है, वह निरालम्ब है, वह अज है, अद्वितीय है, सारी सृष्टि को पैदा करता है, उसे किसी ने पैदा नहीं किया

जरतुश्ती गाथा

मज़्दा अत मोइ वहिश्ता
स्रवा ओ चा श्योथनाचा व ओचा।
ता—तू वहू मनंघहा
अशाचा इषुदेम स्तुतो
खमा का अथ्रा अहूरा फेरषेम्
वस्ना हइ श्येम् दाओ अहूम्

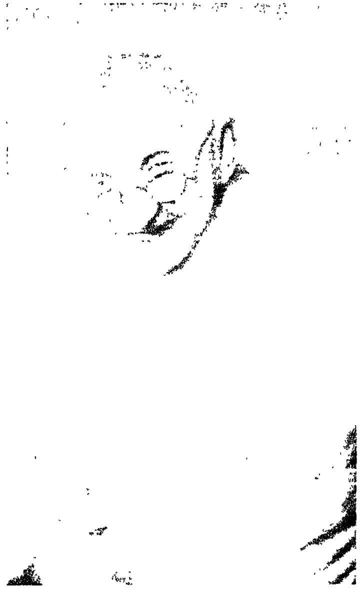
ऐ होरमज्द ! सर्वोत्तम धर्म के वचन और कर्म के विषय मुझे बता जिससे मैं सच्ची राह पर रह सकूं और तेरी ही महिमा को गा सकूं। तू अपनी इच्छा के अनुसार मुझे चला। मेरा जीवन चिर नूतन रहे और वह मुझे स्वर्ग-सुख का दान करे।

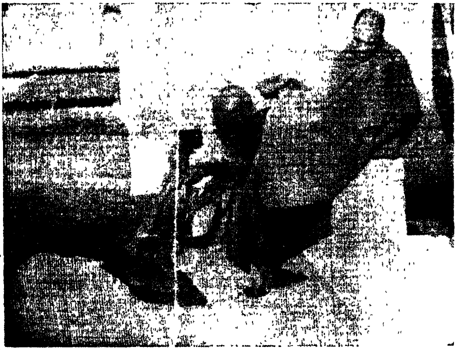
विश्ववाणी

वर्ष ७, भाग १४] [अङ्क ७९-८४

जुलाई-दिसम्बर १९४७

लेखक-वार विषय-सूची





कोढ़ रोग में ग्रस्त परचुरे शास्त्री की सेवा में मग्न बापू



[श्री कनु गान्धी के सौजन्य से]

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक — विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद।

विश्ववाणी

अप्रैल : १९४८

इस अङ्क में

विश्ववाणी संस्कृति केन्द्र,

की

काश्मीर की सुरम्य उपत्यका

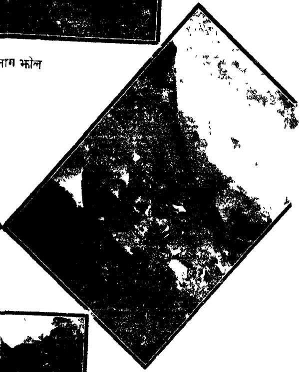
े कबीलों और पाकि-तानियों ने नरक बना दिया है



शेषनाग झील



षनाग झील से निकलती हुई नदी



वावजन में पड़ाव



पंचतरणी और शेषनाग के बीच एक जल प्रपात

मज़हब और साइन्स

डाक्टर भगवान दास

यह बात मशहूर है कि एशिया वालों के विचार धर्म मज़हब की तरफ़ ज़्यादा जाते हैं और आज कल के योरप वालों के ख़याल साइन्स की तरफ़ ज़्यादा झुकते हैं। दुनिया के सब बड़े बड़े मज़हब, जिनके नामलेवा इस वक्त मौजूद हैं, और लगभग वह सब भी जिनके नाम लेवा अब नहीं रहे, एशिया ही में पैदा हुए। एशिया वालों की सारी ज़िन्दगी पर मज़हब छाया रहता है। हिन्दू मुसलमान, यहूदी, पारसी, कन्फ्यूशियस यहां तक कि रोमन कैथोलिक फ़िरक़े के ईसाइयों के भी रहन सहन, खान पान, आचार विचार सब पर धर्म की गहरी छाप रहती है। इनमें से हर मज़हब वाला हर बात में यही सोचता है कि उसका मज़हब क्या चाहता है। नए मज़हबों में पुराने मज़हबों की निस्बत इनसाफ़, नेकी और सच्चाई पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है और रीत रिवाज पर कम। इसलिये बौद्ध, जैन और सिख मज़हब शायद आदमी की रात दिन की ज़िन्दगी और उसके छोटे छोटे कामों को इतना ज़्यादा नहीं कसते जितना इनसे पुराने मज़हब, पर हालत इन मज़हबों के मानने वालों की भी क़रीब क़रीब यही है।

सब मज़हब मानते हैं कि आदमी का नाता हर समय किसी ऐसी बड़ी शक्ति के साथ जुड़ा हुआ है जो हमारे ऊपरी हाथ, आंख, कान की पहुँच से बाहर है। आदमी की दुनियावी ज़िन्दगी बड़े दरजे तक उस शक्ति के आधीन है। वह शक्ति इस ज़िन्दगी के बाद भी अपना काम करती रहती है, चाहे उसे हम ईश्वर या ख़ुदा कहें या आत्मा कहें। इसीलिये इन मज़हबों के मानने वालों की निगाह दूसरी दुनिया की तरफ़ जाती रहती है। कभी कभी यह चीज़ इतनी बढ़ जाती है कि बीमारी बन जाती है और दूसरी दुनिया की बेजा फ़िक्र में हम अपनी यह दुनिया बिगाड़ लेते हैं।

हर धर्म का मानने वाला यह चाहता है कि मेरा धर्म ज़िन्दगी के हर काम में मुझे रास्ता दिखावे—मैं क्या ख़र्च करूं, क्या पहरूं, क्या खाऊं पिऊं, कैसे रहूँ सहूँ, कैसे रोज़ी कमाऊं, क्या काम करूं वग़ैरा। क्योंकि एक न एक दिन इन सब कामों के लिये मुझसे पूछ ताछ की जावेगी। हर मज़हब अपने ज़माने, मुल्क और हालत के मुताबिक़ इस फ़र्ज़ को पूरा करने की कोशिश भी करता है। धीरे धीरे हर मज़हब में कुछ ठेकेदार पैदा हो जाते हैं जो इन्हीं बातों में बाल की खाल निकालने लगते हैं, छोटी छोटी बातों पर बेजा ज़ोर देने लगते हैं। उनका मज़हब-ठस, कट्टर और बेजान होने लगता है। उसका लचीलापन जाता रहता है। वह ज़माने की

ज़रूरत के मुताबिक़ अपने छोटे मोटे रीत रिवाजों को भी नहीं बदल सकता। वह निकम्मी, ग़ैर ज़रूरी चीज़ों को इतना चिपटता है कि ज़रूरी और काम की चीज़ों को भूल जाता है। यहां तक कि जो रास्ता अगर समझ कर चला जाता तो नेकी और भलाई का रास्ता होता, वही बदी और बरबादी का रास्ता बन जाता है।

यह तो एशिया वालों की हालत रही। अब ज़रा योरप की हालत लीजिये। बहुत थोड़े दिनों पहले तक योरप के वह सोचने वाले जो समाज के आगे चलते थे, उन सब चीज़ों की तरफ़ से दिन दिन बेपरवाह होते जाते थे जो हमारे बाहरी हाथ, कान, आंख, नाक की पहुँच से बाहर हैं। गोया उन्हें इन चीज़ों से कोई वास्ता ही नहीं। तरह तरह की साइन्सों के अन्दर भी इस तरह की बहुत सी ख़याली चीज़ें हैं जिनके बिना काम नहीं चल सकता। और यह साइंसें लोगों को बराबर आगाह करती रहती हैं कि हाथ, कान, आंख नाक के पहुँच के अन्दर की चीज़ों और इनकी पहुँच से बाहर की चीज़ों दोनों में गहरा और अटूट नाता है। फिर भी योरप वालों का ख़याल दूसरी दुनिया की तरफ़ नहीं गया। पर इस दुनिया में इतना ज्यादा फंस गया है कि वहां के लोग हमसे भी ज़्यादा बुरे रोग के शिकार हो गए जिससे दो भयंकर महायुद्ध हो चुके और तीसरे उनसे ज्यादा भयंकर महायुद्ध का डर बना हुआ है।

हमें अगर यह देखना है कि एशिया वालों के तरह तरह के मज़हबी विचारों में कोई एकता है या नहीं तो हमें अलग अलग धर्मों का मुक़ाबला करना होगा। ऐसे ही यह देखने के लिये कि योरप वालों के अपने ख़यालों में एकता है या नहीं हमें अलग अलग साइन्सों और साइंस वालों के ख़यालों का मुक़ाबला करना होगा।

कुछ लोग कहते हैं कि सब साइन्सों की बुनियादी एकता साफ़ दिखाई देती है और मज़हबों के लड़ाई झगड़े और फ़रक़ भी उतने ही साफ़ नज़र आते हैं। दूसरे लोग कहते हैं कि नई नई साइन्सों के रोज़ के नए नए असूल, डाक्टरों की नई नई दवाएं, नई नई खोजों के नए नए नतीजे बता रहे हैं कि साइन्सों और साइन्स वालों में कोई एका नहीं। बात यह है कि जैसे मज़हबों में तङ्ग नज़री और कट्टरता होती है वैसे ही अपने ढङ्ग की तंगनज़री और कट्टरता साइन्सों में भी होती है। अन्धी मान्यताएं भी दोनों में होती हैं। सल्तनतों और कूटनीति की बांदी बनकर साइन्स ने मज़हब से कहीं ज्यादा मार-काट की है। पर यह सब झगड़ा न सच्ची साइन्स का नतीजा है और न सच्चे धर्म या मज़हब का। यह नतीजा है हमारे अन्दर के शैतान, हमारी ख़ुदी, हमारे स्वार्थ और हमारे अहङ्कार का। हम अपनी छोटी 'झूठी और चन्दरोज़ा ग़रज़ों के लिये साइंस और मज़हब दोनों का ग़लत इस्तेमाल कर लेते हैं, और दोनों को बदनाम करते हैं।

हर आदमी के अन्दर जो कुछ होता है वही वह बाहर देखना चाहता है, और जो वह चाहता है वही देख लेता है। जो एकता देखना चाहते हैं उन्हें एकता दिखाई देती है और जो झगड़े देखना चाहते हैं उन्हें झगड़े दिखाई देते हैं। जो बेलाग होकर दोनों पहलुओं को ठीक ठीक देखना चाहते हैं वह दोनों का देख लेते हैं। सचाई हमेशा दो पहलुओं के बीच में होती है। सच यह है कि दुनिया की सब चीज़ों में बुनियादी बातों में एकता है और ऊपरी बातों में फ़रक़। जड़ एक और डाल पत्ते अलग अलग। यही बात साइंस की है और यही मज़हब की इस एकता को दरशाना और चमकाना दर्शनशास्त्र यानी फ़लसफ़े और विद्वानों का काम है। कोई दो चेहरे एक से नहीं होते। कोई दो दिमाग़ एक तरह नहीं चलते। दुनिया नाम रङ्गा रंगी और बहुरूप का है। फिर भी एक दरजे तक सब आदमी एक से दिखाई देते हैं और एक तरह सोचते हैं। नहीं तो न हम एक दूसरे को समझ पाते और न मिल कर रह सकते। यह एकता ही हमारी आपसी हमदर्दी, मेल मिलाप और सारी सभ्यता, तहज़ीब की जड़ है। इसी इनसानी तहज़ीब को ज़िन्दा रखने और आगे बढ़ाने के लिये सब मज़हबों की बुनियादी एकता को देखना, समझना और सामने लाना ज़रूरी है।

जो लोग ख़ुद इस सचाई को देख सकें, उन्हें अगर एशिया और योरप दोनों की करोड़ों जनता से प्रेम है तो उनका धर्म है कि वह इस एकता को सामने लावें, चमकावें और फैलावें ताकि रीत रिवाज के फ़रक़ की चीज़ें भी इस एकता ही के रंग में रंगी रहें। इनसानी क़ौम के प्रेमियों को अपनी पूरी ताक़त इस काम में लगा देनी चाहिए। योरप के अन्दर मुल्क मुल्क के बीच लड़ा-

हयाँ, लाग-डाट और दुश्मनी और एशिया, ख़ासकर हिन्दुस्तान में हमारे जात पात, छुआछूत और मज़हब के नाम पर लड़ाई दंगे दिखा रहे हैं कि हमारी निगाहें इस एकता पर कम और ऊपरी फ़रक़ों पर ज़्यादा रहती हैं। यही दोनों जगह की आम जनता की ग़ुलामी, बरबादी, लूट और मुसीबतों का कारन है। दोनों जगह अमन, प्रेम, शान्ति और ख़ुशहाली को बढ़ाने का तरीक़ा यही है कि लोगों को समझाया जावे कि मज़हब मज़हब सब एक हैं और मज़हब और साइंस भी एक हैं। उनके सामने एक ऐसे इनसानी सङ्गठन का नक़्शा पेश किया जावे जिसमें सब तबियतों और सब उमरों के लोगों को अपनी अपनी शक्ति के अनुसार काम और अपनी अपनी ज़रूरत का सामान मिल सके। सब दुनिया को ठीक ठीक जिस्मानी और रूहानी दोनों तरह की ख़ुराक पहुँचाने का यही तरीक़ा है।

मज़हब के नाम पर झगड़े दुनिया में हुए हैं और होंगे। पर इन झगड़ों की वजह से मज़हब को दुनिया से मिटाने की कोशिश ऐसी ही है जैसे रोग को दूर करने के लिये शरीर को मार डालने की कोशिश। जब तक दुनिया में दुख और मौत हैं तब तक लोगों को मज़हब की ज़रूरत रहेगी और उसमें उन्हें तसल्ली भी मिलेगी। ऐसे ही जब तक लोगों को यह बताया जाता रहेगा कि बुनियादी बातों में भी सब मज़हब एक दूसरे के ख़िलाफ़ हैं, तब तक लोग अपने अपने अलग अलग मज़हबों के नाम पर लड़ते रहेंगे। दूसरी तरफ़ अगर उन्हें यह बताया जावेगा कि बुनियादी बातों में सब मज़हब एक हैं तब लोगों के दिल एक दूसरे के नज़दीक आवेंगे और वह सबको अपना भाई समझ कर एक दूसरे से प्रेम करना सीखेंगे।

इस तरह जब लोगों को सब मज़हबों की एकता और मज़हब और साइंस की एकता दरशाई और समझाई जावेगी और लोग उसे समझेंगे तब एक नया ज़माना शुरू होगा जिसे साइन्टिफ़िक मज़हब या मज़हबे साइंस का ज़माना कह सकेंगे, जिसमें हर एक को सबके भले में अपना भला दिखाई देगा और सब सब के भले में लगेंगे।

थोड़े दिनों पहले तक साइन्सों साइंसों में भी काफ़ी फ़र्क़ था, पर अब बड़े बड़े साइन्सदाँ यह समझने और कहने लगे हैं कि साइन्सें अलग अलग नहीं हैं, बल्कि सब साइन्सें एक ही साइन्स हैं। उसी एक साइन्स की रोशनी में और उसकी मदद से लोग बहुत जल्दी इस चीज़ को भी समझ लेंगे कि मज़हब अलग अलग नहीं हैं बल्कि सब मज़हब एक ही मज़हब है। आख़ीर में हम देखेंगे कि साइन्स और मज़हब भी दोनों एक ही सचाई के दो रुख़ हैं, एक ही हक़ीक़त है जिसकी रोशनी में हम अपनी ज़िन्दगी को समझ सकते हैं और इस दुनिया और दूसरी दुनिया दोनों में उसे काम का बना सकते हैं। मज़हब मज़हब और साइन्स और मज़हब की एकता में ही हमारी रूह या आत्मा के आगे के रास्ते खुल सकते हैं।

दुनिया में जब जब कोई नया मज़हब आया है तब तब इस लिये आया है कि उससे पहले का मज़हब या पहले के मज़हब ग़ैरज़रूरी निकम्मी बातों, ग़लत रीत रिवाजों और झूठी अंधी मानताओं से इतने ढक गये थे कि उनकी असली शुरू की शकल पहचानी तक नहीं जा सकती थी। एक नए मज़हबी ऐलान की ज़रूरत पड़ी। किसी महान् आत्मा ने अपने तप, अपने अन्दर की रूहानी आग से उसी पुराने सनातन मज़हब के ऊपर के मैल को जलाकर उसे फिर से चमकाया, उसमें नई जान डाली, उसका नए सिर से ऐलान किया, उसकी बुनियादी सचाइयों की तसदीक़ की। ढाँचा बदल गया, चीज़ वही थी। शब्द बदले, पर माने वही थे।

अब इस ज़माने में जिस नए ऐलान की ज़रूरत है वह भी किसी नए धर्म का ऐलान न होगा। वह हो सकता है कुछ लोगों के लिये नया, पर असल में वही व्यापक, आलमगीर साइन्टिफ़िक, इनसानी धर्म होगा, जिसके लिये किसी नए महापुरुष की ज़रूरत है सब मज़हबों और सब साइन्सों के सोचने वालों के मिलकर उन बुनियादी सचाइयों को चमकाने की जो सब मज़हबों और सब साइन्सों की जड़ और जान हैं। यह काम शुरू भी हो चुका है। उसे बढ़ाना, फैलाना और रूप देना है।

मज़हब और साइन्स एक दूसरे के कितने नज़दीक आते जा रहे हैं, इसे समझने के लिए दुनिया के कुछ बड़े साइन्स वालों के विचार नीचे दिये जाते हैं—

योरोपियन साइन्स के नामी पंडित सर ओलिवर

लाज ने मौत के बाद की ज़िन्दगी और रूह के बारे में बात करते हुए सन् १९१० में ब्रिस्टल में कहा था—

"इसमें शक नहीं वह वक्त नज़दीक आ रहा है जब साइन्स इन नए मैदानों में घुसेगी और उनका हाल जानने की कोशिश करेगी....सच यह है कि हम एक ऐसी रूहानी दुनिया में रह रहे हैं जो इस माद्दी दुनिया पर हावी है। वह रूहानी दुनिया एक बड़ी और सच्ची दुनिया है। वह सदा हमारे पास है। उसकी जबरदस्त ताक़तों को हमने अभी कुछ कुछ समझना शुरू किया है। अगर हमें यह भरोसा और तसल्ली न होती कि वह जबरदस्त ताक़तें एक ऐसी शक्ति के मातहत हैं जो सबका भला चाहती है, सब के बाप की तरह है और जिसका नाम प्रेम है, तो यह ताक़तें हमारे लिये बड़ी डरावनी होतीं।"

ग्रेट बृटेन की रायल सोसाइटी के सेक्रेटरी सर जेम्स जीन्स ने लिखा है—"पहले हम जड़ माद्दे को असली चीज़ और मन या आत्मा को उससे पैदा हो जाने वाली चीज़ समझते थे। अब मालूम होता है बात उल्टी है। अब हमें यह महसूस होने लगा है कि मन या आत्मा ही माद्दी दुनिया को पैदा करता है और उसे चलाता है। मेरा मतलब हमारी अलग अलग आत्माओं से नहीं है, बल्कि उस बड़ी सब जगह मौजूद आत्मा से है जिसके विचार ज़र्रों से हमारी अलग अलग आत्माएँ बनी हैं।

सन् १९३३ में 'दि न्यू बैकग्राउन्ड आफ साइन्स' नामी किताब में सर जेम्स जीन्स ने लिखा था—

"उन्नीसवीं सदी की साइन्स (फ़िज़िक्स) की ख़ास चीज़ माद्दीयत और माद्दी जगत के अटल और ऊंचे क़ानून समझे जाते थे। अब हम उससे शायद ज़्यादा ज़्यादा दूर होते जांयगे।"

सन् १९३७ में 'दि मिस्टीरियस यूनिवर्स' नाम की किताब में उन्होंने लिखा कि—

"जो नई बातें हमें पता चली हैं उनसे हम मजबूर हैं कि शुरू में जल्दी में आकर हमने जो राय बना ली थी उसे अब हम फिर से जाचें। अब मालूम होता है कि जिसे हम जड़ माद्दा और असली हक़ीक़त समझे थे वह असल में मन या आत्मा ही से पैदा हुआ है और उसी का एक ज़हूर या रूप है।"

प्रोफ़ेसर सर ए० एस० एडिंगटन ने हाल में कहा है—

"हम आजकल इस नतीजे पर पहुंच गये हैं कि कोई ग़ैर मालूम ताक़त काम कर रही है और हम यह नहीं जानते कि वह क्या कर रही है।"

और "आजकल की साइंस (फ़िज़िक्स) में से बेजान माद्दे का ख़्याल मिट गया। अब हमारे तजरबों में पहली और सबसे सीधी चीज़ मन, ख़्याल या आत्मा है। मैं समझता हूँ चेतनता या ख़याल ही बुनियादी चीज़ है। माद्दा इसी चेतनता या ख़याल से पैदा हुआ है।"

हरबर्ट स्पेन्सर ने सन् १९०० के क़रीब अस्सी साल की उमर में कहा था—

"जिस चीज़ को मैं 'हमारे जानने की पहुंच से परे' (अननोएबुल) कहता हूँ वह किसी तरह मज़हब को नहीं काटती, बल्कि उसे ताक़त पहुंचाती है।"

सब बड़े बड़े मज़हबों के क़ायम करने वाले कह गए हैं कि यह 'हमारे जानने के पहुंच से परे' चीज़ ही आत्मा है।

हरबर्ट स्पेन्सर और चार्ल्स डारविन के साथी ऐलफ्रेड रसल वैलेस ने अपनी किताब 'सोशल इनवाइरनमेन्ट एन्ड मारल प्रोग्रेस' में साफ़ लिखा है कि—'मुझे यक़ीन है कि रूह माद्दे को चलाती है।'

'दि ग्रेट डिज़ाइन' (१९३४) नाम की किताब में चौदह बड़े बड़े साइन्स वालों ने अपनी सब की यह मिली हुई राय ज़ाहिर की है कि—"यह दुनिया बिना रूह की मशीन नहीं है, यह इत्तफ़ाक़ ही से यूँही नहीं बन गई है। माद्दे के इस परदे के पीछे एक दिमाग़, एक चेतन शक्ति काम कर रही है चाहे उसे हम कुछ भी नाम क्यों न दें।"

इस सदी का सबसे मशहूर और सबसे बड़ा साइन्स का पंडित एल्बर्ट आइन्सटाइन लिखता है—

"मैं ख़ुदा को मानता हूं। इस दुनिया की तरतीब में और सारी सृष्टि के सुरीले मेल में ख़ुदा अपने को ज़ाहिर करता है। मैं मानता हूं कि सारी क़ुदरत में चेतनता काम कर रही है। साइन्स के काम की बुनियाद अब इसी यक़ीन पर है कि यह दुनिया यूंही इत्तफ़ाक़ से पैदा नहीं होगई है बल्कि इसमें एक तरतीब और मतलब है जो समझ में आ सकता है।"

जे० बी० एस० हैलडेन ने लिखा है—

"जिस दुनिया को हम एक बड़ी मशीन की तरह समझे थे वह असल में रूहानी दुनिया है जिसे हम अभी बहुत कम और बहुत अधूरा देख पाए हैं। रूहानी दुनिया ही असली दुनिया है। सच यह है कि दुनिया या विश्व की असलियत न माद्दा है, न कोई माद्दी ताक़त, न कोई और माद्दी चीज बल्कि असलियत मन या आत्मा है।"

सर आर्थर एस० एडिंगटन ने लिखा है—

"यह पुराना ख़्याल कि ख़ुदा नहीं है जाता रहा। मज़हब का नाता रूह और मन की दुनिया से है। इस लिये मज़हब को हिलाया नहीं जा सकता।"

आर्थर एच० काम्पटन ने लिखा है—

"मालूम होता है हमारी सोचना एक दरजे तक हमारे दिमाग़ से अलग भी होती है, जिसका पूरी तरह सबूत तो अभी नहीं होता, पर मालूम ऐसा होता है कि मरने के बाद भी चेतनता या रूह रहती है।"

राबर्ट ए० मिल्लीकान का कहना है—"इस दुनिया को एक डोरे में बांधने वाली ताक़त ख़ुदा की ताक़त है। विकासवाद (एवोल्यूशन या इरतक़ा) से पता चलता है कि अनगिनत युगों या बे अन्त जमाने के अन्दर प्रकृति में लगातार जान फूंक कर और आख़िर में एक दर्जे तक ख़ुदा की सी रूहानी ताक़तों वाले इन्सान को पैदा करके ख़ुदा अपने आप को ज़ाहिर करता है। इससे बढ़कर ऊंचा ख़्याल कोई इन्सान के दिमाग़ में अभी पैदा नहीं हुआ।"

सर जे० ए० टामसन 'दि ग्रेट डिज़ाइन' नाम की किताब में यह बताने के बाद कि दरख़्तों, पौदों और छोटे से छोटे कीड़ों से लेकर इन्सान तक सब में रूह ही का ज़हूर है, एक बिल्कुल नई और बहुत बड़ी अमरीकन यूनिवर्सिटी के दरवाज़े पर खुदे हुए इस दुआइया फ़िक़रे को दोहराता है—"ऐ ख़ुदा! तू मेरी आंखें खोल दे, ताकि मैं तेरी क़ुदरत की अजीब-अजीब चीज़ों को देख सकूं!"

लन्दन, बॉन, लेडेन, लिपज़िग और और बहुत सी योरप और अमरीका की यूनिवर्सिटियों में अब रूहानी चीज़ों की खोज के लिये ख़ास महकमे खुलते जा रहे हैं और ख़ास प्रोफ़ेसर रखे गए हैं जहाँ पुराने मिस्र की मज़हबी किताबों से लेकर हिन्दुस्तान के 'योग' और सूफ़ियों के 'सलूक' तक की तालीम दी जाती है।

आज कल की योरप की साइन्स बच्चे की हैसियत से मज़हब ही से पैदा हुई। जब वह जवान हुई तो मज़हब ने उसे ख़ूब सताया और दबाया। उसके बाद साइन्स ने बढ़कर बदला लिया और मज़हब पर हमले किये। फिर जब बदला हो चुका तो वही साइन्स अब शुरू के प्रेम का कर्ज़ा चुकाने के लिये एक ज़्यादा ऊंचे, ज़्यादा नफ़ीस, ज़्यादा समझदारी के और झूठे वहमों और अंधी मान्यताओं से पाक रूप में मज़हब को फिर से ज़िन्दा और जानदार बनाने की कोशिश में है।

जब साइन्स और मज़हब के बीच की दीवारें टूटेंगी तो मज़हबों के बीच की दीवारें भी टूटे बिना नहीं रह सकतीं। तब ही मुल्क-मुल्क और क़ौम-क़ौम के बीच की दीवारें भी टूटेंगी। तब ही सब क़ौमों, सब मुल्कों और सब इन्सानों के दिल मिलेंगे। तब ही सारी इन्सानी दुनिया, सारा मानव समाज सचमुच एक मिला जुला कुटुम्ब होगा। तब ही आदमी आदमी में सच्चा भाई-चारा होगा। आजकल की हमारी सारी मुसीबतें उसी सुनहरे दिन के आने की तैयारी हैं।

[अनुवादक—पण्डित सुन्दरलाल 'नया हिन्द']

धर्म, संस्कृति, और सभ्यता

श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला

क़ायदे आज़म जिन्नाह से जब पूछा गया कि क्या आप इस्लाम का 'थियाक्रैटिक' (साम्प्रदायिक या मज़हबी) राज क़ायम करना चाहते हैं? तब उन्होंने इसका ज़ोर से इन्कार किया। महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू और कांग्रेस के दूसरे नेताओं ने भी ज़ाहिर किया कि हिन्द में हिन्दू-साम्प्रदायिक या मज़हबी राज बनाने का उनका तनिक भी इरादा नहीं, बल्कि वैसी कोशिशों का वे सामना करेंगे।

फिर भी कांग्रेस का मुस्लिम लीग पर यह आक्षेप (इल्ज़ाम) है कि वह पाकिस्तान में मुस्लिम मज़हबी राज क़ायम करना चाहता है। इसके सबूत में क़ायदे-आज़म और दूसरे लीगी नेताओं के भाषणों और बयानों में इस्लाम के उसूल और क़ुरान की हिदायतों का जो बार बार ज़िक्र आता है, वह पेश किया जाता है। और यह बात ज़रूर है कि लीगी नेता कई बार कह चुके हैं कि पाकिस्तान एक इस्लामी राज (स्टेट) है और दुनिया के दूसरे इस्लामी राजों से दोस्ती बढ़ाना चाहता है।

दूसरी तरफ़ से मुस्लिम लीग का कांग्रेस पर इससे ठीक उल्टा इलज़ाम है। क़रीब ८ या १० साल पहले जिन्नाह साहब ने अपने एक भाषण में कहा था कि गांधी जी—जो कांग्रेस के सब कुछ हैं—सारे देश को गांधी आश्रम और गांधी सेवा संघ बनाना चाहते हैं। वे हिन्दुस्तान में 'राम राज्य' क़ायम करना चाहते हैं। उन्हें किसी न किसी तरह की वर्ण व्यवस्था (यानी पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही पेशा चलाने की रस्म,) सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि व्रत वग़ैरा का प्रचार करना है। उन्हें सारी जनता को 'हिन्दुइ' (Hinduize) कर डालना है। इस ज़माने की 'पश्चिम' की इल्मी तरक़्क़ी उन्हें पसन्द नहीं। इस तरह कांग्रेस न सिर्फ़ हिन्दू, बल्कि सवर्ण हिन्दू संस्था ही है। और सिर्फ़ नाम लेने भर के लिए और मेहरबानी के तौर पर वह दूसरी जातियों को कुछ जगह देकर सवर्ण हिन्दुओं का राज क़ायम करना चाहती है।

इस सिलसिले में एक बात ध्यान में लाने लायक़ है। अगस्त १४-१५ के दिन हुये भाषणों में पं० जवाहर लाल को अशोक का धर्मचक्र याद आया, लार्ड माउन्ट-बैटेन ने अकबर को याद किया और उन्हें जवाब देते हुये क़ायदे आज़म ने उलाहना दिया कि लोकशाही (डेमोक्रसी) को अकबर क्या जानता था? उससे कई सदी पहले हज़रत मुहम्मद पैग़म्बर लोकशाही की मिसाल दुनिया में पेश कर गये? ये तीन बातें तीन अलग अलग प्रकार के बने हुये दिल व दिमाग़ की गढ़न का परिचय देती हैं।

इस तरह दोनों राज के नेता साम्प्रदायिक-राज्य-वाद के हिमायती होने से इनकार करते हैं। लेकिन, दोनों ही अपने अपने मज़हबों से रंगी हुई बोली में ही अपने आदर्श पेश करते हैं, और उसी की बुनियाद पर अपने अपने राज्य की आइन्दा इमारत खड़ी करने की ख़्वाहिश रखते हैं। चुनांचे दोनों ही एक दूसरे पर मज़हबी राज क़ायम करने की मुराद का दोष लगाते हैं।

तब इस विषय को ज़रा गहरे उतर कर तटस्थ वृत्ति (ग़ैर जानिबदारी) से समझ लेने की ज़रूरत है।

मुमकिन है कि धर्म, संस्कृति और सभ्यता इन तीनों के फ़र्क़ को अगर हम समझ लें तो इस विषय को ज़्यादा साफ़ तौर पर हम समझ सकेंगे।

जो आदमी इस बात में यक़ीन करता हो कि 'अल्लाह एक है' उसके सिवा और कोई देव नहीं, मुहम्मद उसका पैग़म्बर है, क़ुरान उसकी भेजी हुई किताब है, और नमाज़, रोज़ा, ज़कात वग़ैरा उसके पाँच ख़ास (मुख्य) हुक्म हैं' उसे मज़हब से मुसलमान कहा जा सकता है। ऐसा मानने वाले का नाम चाहे अब्दुल्ला या हसन न होते हुये भगवान दास या झीना भाई हो, और चाहे वह पाजामा और फ़ेज़ के बजाय धोती और पगड़ी बांधता हो, फिर भी वह मुसलमान ही है।

इससे उल्टा जो मनुष्य वेद, पुरान, आगम वग़ैरा शास्त्रों में से और उनमें बताये हुये देव, अवतार, तीर्थंकर आदि में से किसी न किसी में श्रद्धा रखता है, पुनर्जन्म कर्म आदि सिद्धान्तों को मानता है और हिन्दू ग्रन्थों में समझाई हुई वर्ण व्यवस्था, धर्म के काम, विवाह वग़ैरा को अदा (पालन) करने में उत्साह रखता है वह धर्म से हिन्दू है। भले ही उसका नाम जवाहर, रोशन,

दौलत, गुलाब या दिलखुश हो और उसका रहन-सहन लिबास आदि अरब, पठान या ईरानी के जैसे हों।

मतलब यह कि जिस तरह आज हम देखते हैं कि कई हिन्दू मुसलमान अंग्रेज़ी ढब के रहन-सहन, व्यवहार, मान वग़ैरह को अपनाये हुये हैं उसी तरह एक आदमी धर्म से मुसलमान होते हुये भी उसकी सभ्यता—रहन-सहन और व्यवहार (तौर-तरीक़ा)—हिन्दू मानी हुई सभ्यता सी हो सकती है और इससे उलटा भी हो सकता है।

दोनों धर्मों में इस तरह की कुछ जमातें हमारे देश में हैं भी। यानी, धर्म-मजहब और सभ्यता—जिन्दगी का तौर-तरीक़ा एक दूसरे से स्वतंत्र, अलग किये जा सकते हैं।

इन दोनों के अलावा संस्कृति-तहज़ीब-कल्चर एक तीसरी ही चीज़ है। वह बहुत कुछ पैदा होती है सम्प्रदाय-मज़हब से, और अकसर उसके साथ ही रहती है लेकिन कभी कभी अलग भी रह सकती है।

पश्चिम पञ्जाब की मुस्लिम लीग के हाल ही में बने हुये सदर मियाँ इफ्तिख़ारुद्दीन के बारे में सुना है कि वे मार्क्सवादी ख़यालों के हैं। और भी कई मार्क्सवादी या कम्युनिस्ट मुसलमान हैं, जैसे, डा. सैयद महमूद के एक बेटे. मुमकिन है कि मुसलमान धर्म में उन्हें श्रद्धा नहीं रही। यानी, अल्लाह की हस्ती, हज़रत महम्मद का पैग़म्बरपन, कुरान की ईश्वर-प्रेरितता तथा नमाज वग़ैरह हिदायतों में वे विश्वास नहीं रखते। इसी तरह पंडित जवाहर लाल नेहरू और सैकड़ों ऐसे हिंदू पाये जायेंगे जिनको हिन्दू 'धर्म' यानी उसके किसी पंथ, शास्त्र या विधि में विश्वास नहीं रहा। ब्रह्म-समाज और प्रार्थना समाज के लोग भी 'धर्म' से वे हिन्दू हैं, ऐसा क़बूल न करेंगे। इनमें राजा राम मोहन राय, केशवचंद्र सेन, रवीन्द्र नाथ टागोर, महादेव गोविंद रानडे, नारायण गणेश चंदावरकर, नरसिंहराव भोलानाथ जैसे बड़े बड़े नाम शुमार किये जा सकते हैं।

फिर भी मियाँ इफ्तख़ारुद्दीन को प्रान्तिक मुसलिम लीग के सदर होने में मुश्किल पैदा नहीं हुई और दूसरे भी वैसे ख़याल के शख़्स हों तो उन्हें भी लीग या और कोई मुसलिम संस्था में शरीक़ होना मुश्किल न होगा। पंडित जवाहर लाल या मेरे जैसा कोई आदमी हिन्दू महासभा में शरीक़ होना चाहे तो उन्हें दाख़िल करने में उनकी हिंदू धर्म में अश्रद्धा के कारण कोई अड़चन पैदा न की जायगी। मुसलिम लीग (या हिन्दू महासभा) के मेम्बर बनने वाले के बारे में यह नहीं देखा जाता कि उसकी संस्कृति-तहज़ीब-उसके दिल और दिमाग़ का घाट मुसलमान (या हिन्दू) है या नहीं, और उसके बारे सामाजिक संबंध-रिश्ते मुसलमानों (या हिन्दुओं) से हैं या नहीं।

पीढ़ी दर पीढ़ी चलते आये सिलसिले और बचपन से मिले हुये पालन-पोषण और सम्बन्धों से हर एक समाज में एक एक ख़ास तरह का दिल व दिमाग़ का घाट (मानस) बँध जाता है। यह मानस पैदा होने में उस समाज के सम्प्रदाय-मज़हब के उसूल, विधियाँ, महापुरुषों के चरित्र, स्थानिक और जाति-पाँति की रूढ़ियाँ, इतिहास-पुराण आदि की कथायें, व्यवसाय-तालीम वग़ैरह की विशिष्टतायें (ख़ासियत) वग़ैरह अनेक बातें होती हैं। इन सब के असर में पला हुआ आदमी अपना असल धर्म और रहन-सहन (सभ्यता) आदि छोड़ दे तो भी उसके स्वभाव, बोली, विचारों का ढांचा, आदर्श वग़ैरा का असर उस पर क़ायम-सा रह जाता है। वह तभी जाता है जब उसने अपने पुराने धर्म या समाज को मन पर नफ़रत लाकर छोड़ा हो और दूसरे को बड़ी श्रद्धा से स्वीकार किया हो। वरना एक एक जमात की एक एक ख़ास मनोरचना ('दिमाग़ की गढ़न') बनती है। ऐसी हर समाज की ख़ास गढ़न (विशिष्ट मनोरचना) उस समाज की संस्कृति या तहज़ीब है।

ब्राह्मण, जैन, सिख वग़ैरा सम्प्रदाय एक दूसरे से बिलकुल अलग हैं। लेकिन, इन सब सम्प्रदायों के लोगों के मन की गढ़न बहुत हद तक मिलती जुलती है। सीलोन, बरमा, चीन, जापान वग़ैरा देशों के लोग बौद्ध धर्मी हैं। इस लिये (सुना है कि) उनके धार्मिक पूजा पाठ, शास्त्रों की पढ़ाई आदि हिन्दुओं की धार्मिक क्रियाओं के जैसी ही मालूम होती है। लेकिन, जिन्दगी की दूसरी बातों में बहुत फ़र्क़ है। इसलिये, उस हर एक देश की जनता का दिमाग़ और दिल की गढ़न—यानी, संस्कृति, तहज़ीब—जुदा जुदा तरह की है। चीन में मज़हब के नाम पर बौद्ध, लाओत्सेमे, मुसलमान, ईसाई वग़ैरह अनेक धर्म के लोग हैं; ब्राह्मण, जैन वग़ैरह की तरह ही—शायद उनसे भी ज़्यादा—वे एक दूसरे

से स्वतंत्र है। फिर भी, चीन की प्रजा का मानस और जिन्दगी का तरीक़ा श्येन फ्यु चांग (कंफ्युशियस) की परम्परा में गढ़ा है। इसलिये, चीन का आदमी व्यक्तिगत रूप में चाहे जिस धर्म का हो, वह संस्कृति की नज़र से श्येन-फ्यु-चांगी ही समझा जाता है। दूसरी तरफ़ से देखें तो (जहां तक मेरा ख़याल है) श्येन-फ्यु-चांग नाम का कोई धर्म या मज़हब नहीं।

गांधी जी जैसे महात्मा पुरुष सर्वधर्म समभाव दिखावें और सर्वधर्म-समभाव का दावा भी करें, फिर भी उनका जीवन और मनोरचना पर-मा तर हिन्दू संस्कृति को ही प्रकट करती है। पण्डित जवाहर लाल सब धर्मों के बारे में उदासीनता दिखावें लेकिन उनका भी मानस हिन्दू संस्कृति की ही गवाही देता रहता है। मैं हर एक धर्म पर चाहे जितने तटस्थ भाव से नज़र डालूं और उसकी नुक्ताचीनी करूं, और जिस संप्रदाय में बचपन से पला था उसमें से निकल गया ऐसा मालूम होऊं, फिर भी मेरा रहन सहन और स्वभाव उसका असर दिखाये बिना रह नहीं सकता। यही संस्कृति-तहज़ीब है। किसी ने संस्कृति की व्याख्या ही ऐसी की है कि याद की हुई सब बातें भूल जाने पर दिल और जीवन पर जो असर रह जाय वह संस्कृति है। (Culture is what remains after everything that has been learnt is forgotten).

इस नज़र से देखें तो ताज्जुब नहीं कि क़ायदे आज़म जिन्नाह को ऐसा मालूम हो कि अखंड हिन्दुस्तान में हिन्दू लोग चाहे जितनी धर्म-मत-सहिष्णुता, उदारता वग़ैरा दिखावें, राज, कारोबार में ग़ैर-हिन्दुओं को स्थान दें, फिर भी क्योंकि हिन्दुओं की ही हिन्दुस्तान में बहुत बड़ी आबादी है इसलिये सब कामों में विचार और काम करने का तरीक़ा हिन्दू-संस्कृति से रंगा हुआ ही रहेगा। इस बात को न जुदा जुदा मतदार-मंडल से, न हर मज़हब के लोगों के लिये अमुक जगह रख छोड़ने से, और न कांग्रेस जैसी असांप्रदायिक संस्था के ज़रिये मिटाया जा सकता है। चुनांचे, लोकशाही (डेमोक्रेटिक) आज़ाद हिन्दुस्तान में हिन्दू मानस—हिन्दू संस्कृति—ही प्रभुत्व पा सकती है दूसरी तरह के मानस—संस्कृतियों—का स्थान दोयम रहेगा। बरगद के नीचे उगने वाले नीम को बरगद भले ही उखाड़ कर फेंक न दे, तो भी साफ़ है कि बरगद की छाया में नीम पूरा पूरा पनप नहीं सकता। इसी तरह हिन्दू-संस्कृति की विशाल छाया में मुसलिम वग़ैरह तहज़ीबें पूरे जोश से खिल नहीं सकतीं। हिंदू महासभा के आन्दोलन और उनके तथा कांग्रेसवादी कुछ हिन्दू नेताओं के बयान लीगी नेताओं के इस ख़याल या डर को बढ़ाने वाले भी होते थे, और गांधी जी भी अपने सिद्धान्तों को समझने की रीत दूसरी तरह की होते हुये भी, लीग नेता की नज़र से देखें तो उनका दिल और दिमाग़ का ढांचा गीता और प्राचीन रामायण की बुनियाद पर बना हुआ मालूम होता है। उनमें पीढ़ी दर पीढ़ी चले आये धंधे, किसी न किसी प्रकार की जन्म से बनी हुई वर्णव्यवस्था, रईस-रैयत, धनिक-रंक, ज़मींदार-किसान, आदि की हस्ती (भले ही वे सम्बन्ध ट्रस्टीशिप के विचार पर हों) आदि पुराने ज़माने की कल्पनाएं भरी हुई हैं। इस ज़माने की पश्चिम की तहज़ीब से उनका विरोध तो ज़ाहिर ही है लेकिन लीग की नज़र से इस्लामी तहज़ीब को भी उनकी तजवीज़ में उतनी ही जगह मिल सकती है जितनी कि कोई कट्टर लेकिन उदार दिल का विष्णु-भक्त शिव-पार्वती को दे दे। यानी "वह भी भगवान के बड़े भक्त हैं, भगवान के साथ साथ दो फूल उन पर चढ़ा देने से हमारा क्या बिगड़ता है!" इसी तरह क़ुरान, अवेस्ता का कोई पाठ या कलमा या गायत्री मंत्र भी प्रार्थना में वे बोल लेंगे। इस्लाम की दृष्टि से यह बात उलटी उन्हें बुरी और हिंदू धर्म का ऐब मालूम होता है। जैसे कोई बनिया बहुत मेहरबानी करने का दिखावा करके एक दाना या किसी को कर्ज़ दे और फिर उसके सूद में ही उस आदमी की सारी जायदाद पचा डाले, वैसे दूसरे धर्म-संप्रदाय का एक छोटा हिस्सा स्वीकार कर उसे सारा का सारा पचा डालने की यह रीत है। हिंदू दृष्टि से यह समन्वयवाद (घुल मिल जाने का असूल) है। लेकिन, लीगवादी कहता है, "हो सकता है। मगर हमें अपना विशुद्ध (निर्मल) विकास सिद्ध करने में यह समन्वय अनुकूल नहीं। हमें तो हिंदू संस्कृति से अछूता रही हुई इस्लामी तहज़ीब को बढ़ाना है। और यह सिर्फ़ मज़हबी विधियों और घरेलू रस्मों में ही नहीं, लेकिन सब तरह के दुनियावी कारोबार में। इसलिये इस्लामी संस्कृति को हिन्दुस्तान में पनपने और हिंदू-संस्कृति में उसे विलीन

जाने से रोकने के लिये एक अलग और आज़ाद क्षेत्र चाहिये" ऐसी पुकार लीग ने उठाई।

संस्कृति और सामाजिक सम्बन्धों की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि हिंदुस्तान के हिन्दू मुसलमान ईसाई पारसी वग़ैरा अलग अलग समाज हैं। इन समाजों को अलग अलग क़ौम (नेशन) कहा जाय या दूसरा नाम दिया जाय यह महत्व का होते हुये भी अलग मुद्दा है।

फिर, यह भी एक महत्व का लेकिन अलग सवाल है कि क्या हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी वग़ैरा जमातें और तहज़ीबें हमेशा के लिये एक दूसरे से अलग और अछूत या विशुद्ध ही रहनी चाहियें। और क्यों इन सब की मेलमेल होकर एक बिल्कुल नई और मिश्र संस्कृति पैदा न होनी चाहिये?

फिर, यह भी एक सोचने लायक लेकिन अलग बात है कि अगर इस पुकार के पीछे रही हुई वेदना बिलकुल सच्चे दिल की होती और द्वेषयुक्त तरीक़े से प्रकट न की जा कर सात्त्विक रूप में प्रकट की जाती, तो उसका सन्तोषजनक रास्ता निकलना असंभव न था। इस विषय में मुसलमानों की तरफ़ से यह शिकायत की जा सकती है कि यह तरीक़ा द्वेष से भरा हुआ बना, उसके लिए हिन्दू महासभा के आन्दोलन और जाने अजाने कांग्रेसवादी हिन्दुओं की पुनरुद्धारक (revivalist) मनोवृत्ति भी बहुत कुछ ज़िम्मेदार है। लेकिन, यह भी एक अलग सवाल है। इस जगह मैं इन सब सवालों की चर्चा छेड़ना नहीं चाहता। इस लेख में मेरा इतना ही दिखाने का मक़सद है कि एक धर्म के सांप्रदायिक (मज़हबी-थियोक्रेटिक) राज और संस्कृति के (तहज़ीबी-कल्चरल) राज में फ़र्क़ है।

पाकिस्तान को एक इस्लामी राज बनाना है, ऐसा स्वीकार करने में लीग के नेता हिचकिचाते नहीं। लेकिन, इस बात को वे इस्लामी सांप्रदायिक (थियोक्रेटिक) राज के माने में नहीं, मगर सांस्कृतिक (कल्चरल) राज के माने में ही कहने का दावा करेंगे। मज़हबी राज में अहमियत धर्म गुरुओं-मौलवियों—की होती है। और हर एक हिस्सेदार अफ़सर को ज़ाहिर करना होता है कि उस का इस्लाम के 'मज़हब' में यक़ीन है। इंग्लैंड बहुत अर्से तक मज़हबी राज रहा और आज भी कुछ कुछ है। अगर फ़िलिप माउन्टबैटन ग्रीक चर्च को छोड़ कर अंग्रेज़ी चर्च की दीक्षा लेने से इनकार करता तो वह राजकुमारी इलिज़ाबेथ से शादी नहीं कर सकता। अगर इलिज़ाबेथ फ़िलिप से शादी करने के लिये ग्रीक चर्च की दीक्षा लेती, तो उसे इंग्लैंड की गद्दी से अपना हक़ खोना पड़ता। यह मज़हबी राज के निशान हैं। ऐसा कोई क़ानून बनाने की पाकिस्तान के नेताओं की मंशा हो, ऐसा नज़र नहीं आता। लेकिन, यह कहा जा सकता है कि पाकिस्तान के राज का सारा कारबार, तजवीज़ें, और संस्थाओं पर इस्लाम के ख़यालों और तहज़ीब की अच्छी-बुरी छाप रहेगी, और उस संस्कृति को पोसने की कोशिश रहेगी।

इसी तरह, हिंद-संघ हिंदू धर्म का सांप्रदायिक राज न होते हुये भी, मुमकिन है, कि उसमें हिन्दू संस्कृति ही ज़्यादा ज़ोर से खिल उठे। अगर उसमें दूसरी संस्कृतियों की मेलमेल करने की अनिच्छा रही, और जो कुछ मेलमेल हो चुका है, उसे भी धीरे धीरे हटाने की प्रवृत्ति बनी, तो कहा जा सकता है कि हिन्द संघ का हिन्दू सांस्कृतिक राज बनने की ओर झुकाव है। कहा जा सकता है कि कुछ हद तक ऐसी मनोवृत्ति है और बढ़ भी रही है। इस विषय में युक्त प्रान्त अगुआ हो रहा है। इस प्रांत को हिन्दू-मुस्लिम मिश्र संस्कृति का मुख्य केन्द्र माना जा सकता है। लेकिन, यहीं पुनरुद्धारक (Revivalist) वृत्ति ज़ोर कर रही है। मेरा ख़याल है कि गुजरात में श्री कन्हैयालाल मुन्शी का मानस भी इसी दिशा में काम कर रहा है। हिंदू महासभा का तो यह ध्येय ही है। अगर यह प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ जाय और लोगों में फैल जाय तो हो सकता है कि मुसलमानों की तरह दूसरे अ-हिन्दू लोगों में भी असन्तोष फैल जाय। परिणाम में पाकिस्तान की तरह दूसरे 'स्तानों' का अथवा एक तरफ़ हिन्दू (या सिर्फ़ सवर्ण हिन्दू) और दूसरी तरफ़ सब अहिन्दू (और अवर्ण हिन्दू) के बीच 'टूर्नामेन्ट' जम जाने का प्रसङ्ग आ सकता है।

हम किस तरफ़ जायेंगे यह हिन्दू संस्कृति के नेताओं की प्रकृति और बर्ताव पर निर्भर है।

मास्टर !

श्री राजनाथ राय एम० ए०, बी० टी०

(१)

शाम को स्कूल से लौटने के बाद अध्यापक नागेश्वर की तबीयत कुछ भारी-सी मालूम पड़ी। पिछले दो-तीन दिनों से वह कुछ-न-कुछ शिकायत अनुभव करता आया है— कभी सर-दर्द, कब्ज़ियत, कभी देह में दर्द। लेकिन आज तो जैसे शरीर अवसन्न-सा हो रहा है। इच्छा शक्ति और जवानी के बल पर जिस शरीर को, अस्वस्थ होने पर भी, काम में जोतता रहा है, आज वही उससे अवकाश की, आराम की भीख के लिए अड़ता-सा दीख पड़ रहा है। लेकिन, नागेश्वर के लिए अवकाश जैसी अमूल्य वस्तु कहाँ। पैंतीस रुपये महीना पाने वाले को, घर पर ब्याह लायक चचेरी बहन और चाची के रहते हुए, अवकाश तो दुर्लभ ही है।

फिर, यहाँ कितने काम हैं उसके सामने। माहल बेड़ा की बस्ती में रहना स्वयं ही एक विशेष जिम्मेदारी है। वह टाटा नगर ही का एक मुहल्ला है, लेकिन उसी तरह जैसे बिड़लाभवन के सामने रात को फुट-पाथ पर सोकर सर्वोदय की प्रतीक्षा करने वाला भिखमङ्गा बिड़ला का पड़ोसी है। सृष्टि के रहस्य को ढूँढने वाले दार्शनिकों की अमल्य ढूँढ़ है कि यह संसार 'द्वन्द्वात्मक प्रवृत्तियों का संघर्ष क्षेत्र है— 'करतार ने ही विश्व को गुण-दोषमय' कर रखा है। भगवान की सृष्टि के इस ध्रुव सत्य को जैसे व्यक्त करने के लिए ही जमशेदपुर के बनाने वालों ने जहाँ 'एन-टाउन' का स्वर्ग-खंड निर्मित किया है वहीं पर माहल बेड़ा को भी अपनी सार्थकता सिद्ध करने का अवसर दिया है।

नागेश्वर श्रीराम भवन की एक कोठरी में रहता है। उस भवन में १०-१५ कमरे हैं। प्रत्येक कमरे के सामने एक चारपाई डालने लायक बरामदा है। दीवालें, छत और फर्श कच्चे हैं। सामने, बरामदे के नीचे से, उसे छूकर नाली बहती है। जिन उदार मारवाड़ी सज्जन ने जन साधारण की सहूलियत का ख्याल रख कर इस श्रीराम-भवन का निर्माण कराया था, उन्होंने कोठरियों में खिड़की आदि को, अनावश्यक शौकीनी की चीज़ें समझ कर, स्थान नहीं दिया था। इसीलिए भाड़ा भी सात रुपये मासिक ही लेते थे, बाज़ार भाव से कुछ कम ही।

मुहल्ले में एक बड़ा पब्लिक पाखाना है, जिसे टाटा कम्पनी ने, सब की सहूलियत के लिए, दया पूर्वक बनवा दिया है। पानी के लिए एक सार्वजनिक नल है, जहाँ हुज्जत करने और गाली-गलौज सुनने का धैर्य होने पर पानी मिल भी सकता है।

लाल कंकड़ की सड़क सामने से गुजरती है जिसके किनारे दूर दूर पर, बिजली के खम्भे खड़े हैं। लेकिन श्रीराम भवन की कोठरियों में बिजली का प्रबन्ध न करके मकान मालिक ने दया ही की है। भाड़े को कम रखने की सहूलियत के साथ, भाड़ेदारों की आँखों की ज्योति को, सुदीर्घ बुढ़ापे तक, बनाए रखने में, उनकी इस विषय की यह असाधारण सतर्कता जैसे अचूक गारण्टी है।

नागेश्वर थोड़ी देर तक चारपाई पर पड़ा रहा। उठने को जैसे जी ही न चाहता हो। लेकिन जाड़े की शाम तो जल्दी ही अंधेरी हो उठती है। फिर, किरासन का तेल भी लाना ही है; नहीं तो लालटेन जलेगी कैसे?

उठा, बाजार गया। तेल लाया। एक पाव प्याज भी खरीदता आया। तरकारियाँ बहुत महँगी हैं। आलू उसे अच्छा तो लगता है, लेकिन सवा रुपये सेर है। और फिर, सरसों का तेल भी कौन सस्ता है। इसीलिए, दाल-भात के साथ कच्चे प्याज की संगति ही जैसे उसके लिए स्वाभाविक थी।

नल से एक बाल्टी पानी लाकर रख दिया। सवेरे माँजे हुए कुकर में खाना बैठा दिया। फिर, दरवाज़े पर ताला लगा, कँधे पर एक पुरानी ऊनी चादर डाल कर, प्राइवेट ट्यूशन के लिए निकल पड़ा।

आज क्लास में स्वास्थ्य-विज्ञान के घण्टे में मलेरिया के लक्षणों को पढ़ाने के समय ही उसे कुछ सिहरन-सी मालूम हुई थी। रात की ठंड में वह कुछ और बढ़ ही गई। लेकिन, प्राइवेट ट्यूशन पर गैर-हाजिर होना तो वह सोच ही नहीं सकता था। वहाँ न बीमारी की छुट्टी है और न आकस्मिक अवकाश। गैर-हाजिर होने पर वेतन हीन छुट्टी का साधारण नियम ही लागू होता है। और फिर, आबकारी के इन्सपेक्टर साहब वक़्त की पाबन्दी के बारे में मास्टर साहब को दो-एक दफ़ा स्पष्ट उपदेश

भी दे चुके हैं। उनके यहाँ सभी काम हिसाब-किताब से चलता है। पैसे देने में खरे हैं। तीन लड़के-लड़कियों को करीब २॥ घण्टे पढ़ाता है वह। महीने के अन्त में, बिना माँगे हुए, एक दस रुपये का और दूसरा पाँच रुपये का नोट नौकर से भेज देते हैं। तब गैर-हाजिरी का अगर काटते हैं तो उन्हें दोष भी कौन दे सकता है।

रात को दस बजे के कुछ ही बाद घर लौटा। शरीर को चारपाई पर डालकर रजाई में गर्मी लेने के लिए जो लेटा तो लेटा ही रह गया। 'कुकर' खोलने की नौबत ही नहीं आई।

सवेरे उठने पर जी हलका था, लेकिन भूख लगी हुई थी। रात का खाना कुकर में था ही। उसे निकाल कर पेट में डाला और ऊपर से दो गिलास पानी पी लिया।

फिर, नल पर से पानी लाया, बर्तन माँजे (क्योंकि बर्तन माँजने वाली पाँच रुपये महीना माँगती है।) और सवेरे की ट्यूशन पर जाने के लिए तैयार होगया।

मैट्रिक पास था, इसलिए पठित तो था ही और शिक्षक था, इसलिए शिक्षित होने में भी अधिक शक-व-शुबहा नहीं हो सकता। इसीलिए, इस दम घुटाने वाली दिनचर्या में भी उसे इतनी अक्ल बच रही थी कि समझ सके कि अस्वस्थ होने के लक्षण प्रकट होने पर डाक्टर की राय लेनी चाहिए ही।

कम्पनी के डाक्टर साहब डिस्पेंसरी में बैठते हैं। सवेरे ७ से ११ तक वहां दवा मिल सकती है। ट्यूशन से निबट कर, नौ बजते बजते वह वहां पहुँचा। मास्टर समझ कर डाक्टर भलमनसी से ही पेश आए। रोगी की बातें सुनने और जीभ-छाती देखने में भी, और रोगियों के मुकाबले में इन्हें दो-तीन मिनट अधिक ही दिया और मिक्श्चर का प्रेस्क्रिप्शन लिखते लिखते यह भी बताना नहीं भूले कि अगर असली कुनैन कहीं मिल सके तो वह उसी का सेवन करे। कंपनी के अस्पताल की दवा तो.........। इसके बाद एक खास तरह की हँसी हँस कर फिर दूसरे रोगी की ओर मुड़े।

मास्टर का दिल डाक्टर के प्रति पानी पानी होगया। होना ही चाहिये था; इतने बड़े रहस्य की बात जो इंगित कर दी। उन्होंने डेरे पर आकर एक खुराक दवा पी। असली कुनैन ढूढ़ने का काम शाम के लिए रख छोड़ा। खाना सवेरे खा ही लिया था। सोचा, न होगा स्कूल में अवकाश के समय एक आने का चना-चूर खरीद कर खा लेगा।

नहाने की झंझट थी नहीं, डाक्टर ने मना किया और फिर, स्कूल चल दिया।

(२)

जिस साल मैट्रिक पास किया उसी साल नागेश्वर के पिता का देहान्त हो गया। चाचा पहले ही मर गए थे, इसलिए बड़े होने के नाते परिवार का भार उसी पर आ पड़ा। माँ तो लड़कपन ही में चल बसी थी, चाचा ने ही पाल पोस कर बड़ा किया था। चाची, १६ साल की चचेरी बहन रमा, बूढ़ी दादी तथा गाँव की पाठशाला में पढ़ने वाला चचेरा भाई मोहन,—इन्हीं चार जनों का भार उस पर पड़ा। इसके सिवाय, अपनी सगी विधवा बहन की, साल में कुछ न कुछ, मदद करनी ही पड़ती थी।

लेकिन, यह भार ऐसा नहीं था कि कुछ अधिक परिश्रम करके छोटा नगर की नौकरी से न संभाला जा सके। जो वास्तविक मुश्किल थी वह रमा के ब्याह के लिये रुपये एकत्रित करना था। चाचा की दुलारी लड़की थी। वर घर कुछ अच्छा ही चाहिए; और फिर, कायस्थ की लड़की की शादी। लेकिन नागेश्वर ने ठान कर निश्चय किया कि वह इस मुश्किल को अवश्य हल कर सकेगा।

इसके लिए उसने अपने रहन-सहन के खर्च के बजट को बड़ी सावधानी से जाँचा-देखा। अधिक से अधिक कटौती जो की जा सकती थी की, और आमदनी बढ़ाने के लिये सुबह-शाम प्राइवेट ट्यूशन की संख्या यथा सम्भव अधिक से अधिक कर दी। इस तरह जीवनचर्या का एकदम प्लैन्ड कर लिया। चौबीस घण्टों में अधिक से अधिक दो बार रूखा-सूखा भोजन, चार-पाँच घण्टे सोना और बाकी वक्त काम में व्यस्त रहना।

लेकिन छः महीने ऐसा करने के बाद देखा कि घर भेज कर और अपने पर खर्च करके जो बचा, वह था तो अवश्य 'अच्छा' ही, लेकिन इस गति से रुपये इकट्ठा करने पर तो शादी की तिथि ४ साल से पहले शायद ही आ सके। और फिर, इतने दिनों के बाद जो शरीर की ओर नजर डाली तो एक बार तो सचमुच ही

डर गया। लेकिन स्थिरता थी कि शरीर की दुर्बलता को लेकर अधिक सोचने-विचारने का समय ही नहीं था।

उस दिन स्कूल से कुछ पहले ही छुट्टी मिल गई। घर आने से पहले असली कुनैन खरीदने के लिए बाहर ही बाहर बाज़ार चला गया। दवा की दुकानें तो कई थीं, दो-तीन तो काफी नामी-गरामी भी थीं। लेकिन डाक्टर की बतलाई हुई असली कुनैन उनमें से किसी के यहाँ नहीं मिली। अपने इस प्रश्न का कि—'क्या आपके पास कुनैन है?' संक्षिप्त उत्तर मिलता—'नहीं।' यह भी नहीं कि उत्तर देते समय उत्तर देने वाले का सर अपने सामने पड़ी हिसाब-किताब की बही पर से एक बार भी उठा हो, अथवा उसने 'अमृत बाजार पत्रिका' के उस दिन की ताजा खबरों की पढ़ाई में किसी तरह की बाधा ही स्वीकार की हो।

डेढ़ घण्टे इधर उधर व्यर्थ ढूँढ़ने के बाद, थोड़ा-सा साग लेकर वह घर वापस आये।

दवा न मिलने से उसे दुःख हुआ या सुख, यह ठीक ठीक वह नहीं समझ पाया।— आज बुखार तो आया नहीं, और पैसे बचने की कोई भी सूरत उसकी परिस्थिति के व्यक्ति के लिए तो अच्छी ही है!

तभी, दरवाजा खोलते ही उसकी नजर पड़ी दरवाज़े के समीप पड़े हुए लिफ़ाफ़े पर। डाकिये ने ही डाल दिया होगा दरवाज़े की सन्ध से।

मोहन के हाथ की लिखी हुई चाची की चिट्ठी थी। लिखा था— इस साल शादी अब और नहीं टाली जा सकती। सभी कहते हैं कि लड़की देखने-सुनने में बहुत अच्छी है। उठ' जाने पर पछताना पड़ेगा। ख्याल है, नक़द एक हज़ार के आस पास में ही मामला तै हो जायगा। अन्त में उससे कहा गया था कि वह भी आकर एक बार स्वयं सब बातें देख-सुन ले.

बड़े दिन की छुट्टी में अब भी दो महीने की देर थी। जब से टाटा नगर आया है, किसी छुट्टी में घर नहीं गया है। जाना सरल तो है नहीं। राह-खर्च की रक़म और ट्यूशन की वेतन हानि छुट्टी —जाने में इन बाधाओं को नज़र-अन्दाज़ करना उसके लिये सम्भव नहीं था।

मुँह पर एक अजीब दीनतापूर्ण वेदना का भाव लाकर वह चारपाई के बाजू पर बैठ गया। फिर धीरे लेट गया। सवेरे नींद खुली तब, जब दरवाज़े की दरार से सूर्य की प्रकाश-किरणें भीतर पहुँच गई थीं। टाटा नगर के उसके जीवन में यह एक कल्पनातीत बात थी। फिर नींद खुलने पर भी चारपाई से उठना सम्भव नहीं दीख पड़ा।

कम्पनी के डाक्टर के मिक्स्चर को व्यर्थ कर, ज्वर ने, न जाने कैसे, आने का मार्ग पा ही लिया।

दरवाज़ा खोल कर पाखाने तक पहुँच सकने का प्रयास किया, लेकिन सफलता नहीं मिली। बरामदे में पहुँचते पहुँचते पैर थरथराये और वह गिर पड़ा।

जब होश आया तो लोहे की चारपाई के गद्दे पर अपने को पड़ा पाया। बगल में नर्स और डाक्टर खड़े थे। अगल-बगल और रोगियों की चारपाइयाँ थीं।

ऐम्बुलेन्स-कार ने उसे कम्पनी के बड़े हस्पताल में पहुँचा दिया था।

जाँच के बाद मालूम हुआ कि 'टाइफ़ायड' है, अपनी मीयाद पर ही उतरेगा।

कम्पनी के नौकरों को दवा मुफ़्त मिलती है और अस्पताल में खाना भी बे-पैसे का ही मिलता है। यह जानकारी तो सन्तोष-जनक थी, परन्तु ट्यूशन की वेतन हानि छुट्टी, रमा की शादी के रुपये और बड़े दिन की छुट्टी—नागेश्वर का कमज़ोर मस्तिष्क जैसे इन सभी उलझनों को सुलझा नहीं पा रहा है।

(२)

लगभग तीन सप्ताह के बाद नागेश्वर को अस्पताल से छुट्टी मिली। अभी भी कमज़ोर था; अस्पताल में ४-५ रोज़ और रह पाता तो लाभ ही होता। लेकिन उसने अपने तईं कुछ कहा नहीं, तब, डाक्टर को ही उसे रोक रखने का आग्रह क्यों होने लगा।

आते वक्त जिस ऐम्बुलेन्स गाड़ी पर आया था, जाने के समय उसकी सुविधा न हो सकी। पैरों पर अब खड़ा हो सकता है तो ऐम्बुलेन्स कार क्यों फँसायी जाय, —उसे और भी तो काम हैं। लिहाज़ा, एक इतवार की सुबह को वह अस्पताल से बाहर कर दिया गया, अपने आप घर पहुँच जाने के लिये।

जब कोठरी खोली तो चाची की एक दूसरी चिट्ठी पड़ी हुई मिली—उसमें शीघ्र आने का आग्रह पुनः दुहराया गया था।

अस्पताल से छुट्टी तो मिल गई, लेकिन डाक्टर ने काम के लिए अभी 'फिट' नहीं किया था। कहा था, एक सप्ताह तक दूध और हार्लिक्स का सेवन करने के बाद 'ड्यूटी' जाने लायक हो सकेगा।

बरामदे की धूप में चारपाई पर बैठ कर वह सम्भवतः इस दूध और हार्लिक्स की ही बात सोच रहा था कि उसके स्कूल के सहयोगी शिक्षक अहमद साहब मिलने के लिए आ पहुँचे।—कुछ दिनों की छुट्टी में घर जा रहे हैं। अपनी ही शादी है......। बारात कहीं बाहर नहीं जाएगी......घर ही समझिए।

चाचा की लड़की से......जी हां। हम लोगों में तो यह आम रिवाज है......।

फिर, अफ़सोस ज़ाहिर किया इस बात पर कि उसकी बीमारी में उसके प्राइवेट ट्यूशन व लड़के दूसरों से पढ़ने लगे हैं.....। लेकिन, ख़ैर।

और दूसरे ही क्षण जल्दी ताकत आने में ख़ुदा की मदद की दुआ करते हुए उन्होंने नागेश्वर से विदा ली।

नागेश्वर सुन-सा कुछ देर बैठता सोचा रहा। फिर उठा। सन्दूक से डाकख़ाने की पास-बुक उठा लाया। खोल कर देखा। कुछ देर तक अन्तिम टोटल की रक़म को देखता रहा, देखता ही रहा। फिर, पास बुक को हाथ में लिए हुए ही चारपाई पर लेट गया। मुँह से अनजाने ही, एक गहरा निश्वास निकल गया।

कुछ वक़्त इसी तरह गुज़रा। तभी, बगल की तीसरी कोठरी में रहने वाली लुकालुकइना नन्दा ने आकर कहा—बहुत दुबले हो गए हो, बाबू। फिर भी कोई ऐसी बात नहीं। सब ठीक हो जायेगा; रोज़ मछली का झोल......।

नागेश्वर की थकी आँखें उसके मुँह पर आकर टिक गईं। कसे हुये सलूके में अधेड़ नन्दा अब भी जैसे युवती समझे जाने की ही आशा रखती है। मुसकराते हुए ओठों पर पान की लाली है। बड़ी ही स्वच्छन्द और चुलबुली है वह। विवाहिता होने का प्रमाण तो माथे पर है, परन्तु नागेश्वर ने इसके पति को कभी देखा नहीं था। जिस निस्संकोच भाव से बीमारी लेती है, उसी निर्लेप भाव से दूसरों को देती भी है। जैसे उसके लिए यही स्वाभाविक है। हां, बीच-बीच में इन्जेक्शन लेती रहती है।

नागेश्वर को उसकी निर्द्वन्द्वता पर रश्क हो आया।

नन्दो ने आँख की पुतलियों को शरारत से नचाते हुए कहा—बाबू, तुम अपनी घरवाली को क्यों नहीं लाता, वह अच्छा खिलाती-पिलाती।........

तभी नागेश्वर को ख़्याल आया अहमद का हँसता हुआ चेहरा। वह जा रहा है शादी करने...अपनी चचेरी बहन से....।

लेकिन सोचते ही मन जाने कैसा होगया।

घरवाली के बारे में नागेश्वर की उदासीनता देख कर नन्दो ने दूसरी बात छेड़ी—बाबू, तुम मास्टर लोग बहुत कंजूस होते हो। इतना कमाते हो पर कभी सगौती-मछली भी लाते नहीं देखा! सब बचाता ही तो है।.... यूनियन की मैदान वाली मीटिंग में कल गोपाल बाबू यही बोल रहा था। तुम लोगों को इतनी छुट्टी भी है और ट्यूशन भी, फिर तलब क्यों बढ़े।.... ऑफिस का बाबू लोग और तुम लोग बहुत गोलमाल करता है, यह बारी साहब को मीटिंग में भी कहा गया था...।

लेकिन नागेश्वर तो कुछ दूसरी ही बात सोच रहा था।

तभी नन्दो को ख़्याल आया कि मास्टर अभी अभी बीमारी से उठा है....बेचारा! वह हठात करुणा से जैसे भीग उठी।

'तुम्हारे लिए चाय बना लाऊँ पीओगे?'—उत्तर की प्रतीक्षा न कर वह चाय बनाने चली गयी। नागेश्वर ने जवाब देने की कोशिश भी नहीं की।

अहमद कह गया है, उसकी ट्यूशन दूसरों ने ले ली है। सेठ रामगोपाल की बात तो छोड़ ही दीजिए, यह इन्सपेक्टर साहब भी धैर्य नहीं रख सके।...लेकिन, किसी का भी क्या दोष,—परीक्षा जो इतने समीप है।

और, वह उसी तरह निर्जीव-सा सोचता रहा। धीरे धीरे थकी पलकें झँपने लगीं। बन्द होती हुई आँखों के सामने अनेकों अस्पष्ट चित्र, असम्बद्ध रूप में, एक दूसरे को ठेलते हुए आए...डाक्टर, दूध और हार्लिक्स, नन्दो, मछली का झोल, रमा, अहमद, और...।

चाय लेकर जब नन्दो लौटी तो मास्टर की आँखें बन्द थीं। पीले, सूखे गालों पर आँसू की बूँदें अपनी आर्द्रता खो चुकी थीं, लेकिन उनका पथ-चिन्ह अभी भी देखा जा सकता था।

वाल्ट ह्विटमैन की कुछ कविताएं

अनु० श्री चन्द्रबली सिंह, एम० ए०

[१६ वीं शताब्दी का यह अमरीकन कवि अपने विचारों और अपनी काव्य-शैली में कितना आधुनिक था यह देखकर आश्चर्य होता है। इसीलिए अपने युग में वह एक विद्रोही समझा जाकर उपेक्षित किया गया। उसकी कविताओं के विषय राजनीति और व्यवसाय से लेकर उसकी रहस्यानुभूतियों तक हैं। उसके शब्दों की स्पष्टता विक्टोरिया के युग के अमरीका में एक चैलेंज के समान जान पड़ती है। पादरियों ने तो उसकी वेदान्त से मिलती-जुलती विचारधारा के कारण उसे धर्मद्रोही समझा, किन्तु जनता ने भी इस "प्रजातन्त्र के कवि" को सम्मान न दिया क्योंकि उसकी नजरों में नैतिकता के विचार से वाल्ट ह्विटमैन एक खतरनाक आदमी और कवि था। विशेषतः उसकी नारी-पुरुष सम्बन्धी कविताओं ने तो उन्हें आतंकित-सा कर दिया था। किन्तु आज हम देखते हैं कि वाल्ट ह्विटमैन का सन्देश हमारे लिए कितना जीवित है और महत्व रखता है। वह समताओं का गायक था, वह प्रेम का गायक था, वह जनवाद का गायक था, उसके शब्दों में अन्तर-राष्ट्रीयता फूटी पड़ती है और हमारी अनेक आधुनिक समस्याओं पर कुछ-न-कुछ प्रकाश वह डालता ही है। - अनुवादक]

कब तक मूरख बने रहे हम दोनों।

[We Two, How. Long we were Fool'd]

कब तक मूरख बने रहे हम दोनों,
किन्तु अब रूपान्तरित हो, वेग से उन्मुक्त होते हैं हम प्रकृति की भाँति,
प्रकृति हैं हम, बहुत दिनों तक अन्यत्र रहे हैं हम, अब प्रत्यावर्तन होता है हमारा,
और हम बनते जाते हैं पौधे, तने, पत्ते, जड़ और वल्कल, पृथ्वी के वक्ष पर निश्चल पड़े हैं हम, शिलाएँ हैं हम,
पर्वत के वृक्ष हैं हम, रिक्त स्थलों में परस्पर पार्श्व में उगते हैं हम,
तृणभक्षी हम हैं, वन्य पशु-समुदाय में से दो हैं हम, उनमें से किसी की भाँति नियन्त्रण हीन,
सिन्धु में साथ संतरण करती हुई दो मछलियाँ हैं हम,
उत्तरी अमरीका के बबूल से वृक्षों के फूल हैं हम, प्रातः और सन्ध्या वेलाओं में गलियों में सुगन्ध वितरण करने वाले हैं हम,
हम वन्य पशुओं, शाकों एवं खनिजों में लगे कुरूप कालिमा हैं रोगों की, दो आखेट-प्रिय बाज़ हैं हम, हम आकाश में चढ़कर नीचे की ओर देखते हैं,
दो देदीप्यमान अमिताभ हैं हम, हम हैं जो अपने को वर्तुलाकार और नक्षत्रों की भाँति संतुलित रखते हैं, दो धूमकेतु हैं हम,
मृगया के लिए वन में भ्रमण करते तेज़ निकले दाँतों वाले चतुष्पद हैं हम, और हम हैं अपने आखेट पर कूद जाने वाले,
नभ में मध्याह्न के पूर्व और अनन्तर संतरण करते हुए दो मेघखण्ड हैं हम;
हम हैं मिलते हुए सिन्धु, हम हैं वे दो प्रसन्न तरंगें जो एक दूसरे पर ढँगराती जाती और एक दूसरे को नहलाती जाती हैं,
हम वायुमण्डल हैं, पारदर्शक, ग्रहणशील, रन्ध्रपूर्ण और रन्ध्र हीन,
हिम वर्षा, शीत, अन्धकार हैं हम, हम प्रत्येक इस पृथ्वी-गोलक के उत्पाद्य और प्रभाव हैं,
वृत्तों में परिक्रमा करते करते पुनः गृह पहुँचे हैं हम, हम दोनों,
और सबकी झोली खाली कर दी है हमने, अपनी स्वच्छन्दता अपने उल्लास के अतिरिक्त सबकी झोली।

*

मैंने अपने विरुद्ध यह दोषारोपण सुना है

[I Hear it was Charged against Me]

मैं संस्थाओं का विध्वंस करना चाहता था —मैंने अपने विरुद्ध यह दोषारोपण सुना है,
किन्तु मैं न तो संस्थाओं के पक्ष में हूं और न उनका विरोधी, (उनमें और मुझमें एक-सा क्या है ? अथवा उनके विध्वंस से लाभ क्या ?)

मैं तो केवल स्थापित करूँगा मनहटा में और इस संयुक्त राष्ट्र के अंतर में और सिन्धु-तट पर स्थिर प्रत्येक नगर में,
मैदानों और जंगलों में, एवं लघु अथवा विशाल प्रत्येक डोंगी में जो जल पर गहरी रेखाएँ खींचती जाती है,
भवनों का निर्माण किए बिना, नियम रहित, संरक्षक-विहीन और विवाद-मुक्त,
एक संस्था—साथियों के गहन प्रेम की संस्था।

*

समस्त आध्यात्म की आधार-शिला
[The Base of all Metaphysics]

और अब, सज्जनों,
मैं एक शब्द प्रदान करता हूँ तुम्हारे स्मृति-पटल और मन पर अंकित हो जाने के लिए
समस्त आध्यात्म की आधार शिला और उसका निष्कर्ष बनकर अंकित हो जाने के लिए
(जिस भाँति कोई वृद्ध आचार्य अपने विद्यार्थियों से कहता है, अपनी लम्बी व्याख्यान-माला के अंत में ।)
अभिनव और प्राचीन का अध्ययन करने के अनन्तर, यवन और जर्मन दर्शन-पद्धतियों के अध्ययन के अनन्तर,
कांट का अध्ययन और विज्ञापन कर, फीश्टे, शेलिङ्ग और हीगेल का भी अध्ययन कर,
प्लेटो की कथा का विज्ञापन कर, और महात्मा सुकरात का भी जो प्लेटो से अधिक महान था,
और सुकरात से अधिक महान दिव्य ईसा मसीह को ढूँढ़ और उसकी विज्ञप्ति तथा लम्बे काल तक अध्ययन कर,
आज फिर स्मृति की आँखों से उन यवन और जर्मन दर्शन-पद्धतियों को देख रहा हूं,
सभी दर्शन-पद्धतियों को, ईसाई-गिरजाघरों और उनके धर्म-सिद्धान्तों को देख रहा हूँ,
किन्तु सुकरात में स्पष्ट देखता हूं, दिव्य ईसा मसीह में देखता हूँ,
मनुष्य का अपने साथी के लिए प्रगाढ़ स्नेह, मित्र का मित्र के लिए आकर्षण,
सुखी दम्पतियों का पारस्परिक आकर्षण, संतति और जनक-जननी का पारस्परिक आकर्षण,
नगर का नगर के लिए और देश का देश के लिए आकर्षण ।

*

अभिलाषा की विकलता और चिंतन के इस क्षण में
[This Moment yearning & Thoughtful]

अभिलाषा की विकलता और चिंतन के इस क्षण में मुझ अकेले को,

ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य देशों में अन्य व्यक्ति भी हैं, जो मेरी ही भाँति अभिलाषा की विकलता और चिंतन में मग्न हैं,

ऐसा प्रतीत होता है मुझे कि दृष्टि-प्रक्षेपण कर मैं उन्हें जर्मनी, इटली, फ्रांस और स्पेन में देख सकता हूं,

अथवा दूरस्थ चीन, रूस, जापान में, अन्य बोलियों में बातें करते,

और मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि मैं उन्हें जान पाऊँ तो उसी भाँति उनके स्नेह-पाश में बँध जाऊँ जिस भाँति अपने देश वासियों के स्नेह पाश में,

ओह, मैं जानता हूँ कि हम बन्धु और प्रेमी बन जाएँ, और मैं जानता हूँ कि उनके साथ मैं प्रसन्न रहूँगा ।

*

नीचे देखो सुन्दर चाँद
[Look Down fair Moon]

नीचे देखो, सुन्दर चाँद, और इस दृश्य को नहला दो,
कोमल वर्षा कर दो रजनी रानी की ज्योत्सना के प्रवाह की इन भयावनी, सूजी और रक्त स्नात आकृतियों पर,
पीठों के बल पड़े हुए और इधर उधर बिखरी हुई भुजाओं वाले शवों पर,
अपनी उदार प्रभा को बरसा दो, चाँद ।

उलझन ग्रस्त संसार !

श्री लुई फिशर

गत पचास वर्षों ने उत्तरोत्तर उत्साह वर्द्धक प्रगति देखी है; किन्तु यह विकास, शान्ति और आवश्यक प्रचुर वस्तुओं के अभाव में हुआ है।

सन् १९१९-२० के समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में इस द्वितीय विश्व युद्ध के सम्बन्ध में बहुत सी युक्ति-संगत भविष्य वाणियां प्रकाशित हुई थीं। दूसरे महायुद्ध के बीच में और उसके समाप्त होने के बाद तृतीय युद्ध के बीजारोपण के विषय में भी बहुत कुछ चर्चा हो चुकी है। पूरी मानव जाति के सामने संशयात्मक शान्ति का प्रश्न चिन्ता का एक मुख्य कारण बन गया है।

डाक्टर चार्ल्स एफ० केटरिंग ने, जोकि जनरल मोटर कार्पोरेशन की अनुसंधान समिति के उपाध्यक्ष और वैज्ञानिक प्रगतिशील अमेरिकन संघ के सभापति हैं, कहा है, "कि सम्पूर्ण संसार के ढाई अरब निवासियों के लिये पर्याप्त भोजन सामग्री देने को हमारे पास यथेष्ट वैज्ञानिक प्रतिभा है।" इसके अनन्तर आपका यह भी कथन है कि संसार की तीन चौथाई अर्थात् डेढ़ अरब जनता को आधा-पेट ही भोजन मिलता है। मनुष्य द्वारा पैदा की हुई दूर की जाने लायक यह गरीबी आज के मानव समाज का दूसरा प्रश्न बन गया है।

बहुजन समाज युद्ध से भयभीत और वस्तुओं के अभाव की कठिनता से संत्रस्त है। मानवता रक्षा हीनता के आवृत्त में घिर गई है।

अनेक राष्ट्रों की सरकारें और कूटनीतिज्ञों के कार्य कलाप रक्षाविहीनता के प्रतिबिम्ब हैं। हरेक व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत प्रेरणा द्वारा इस भय को भूलने की चेष्टा करता है या फिर अपने पागलपन से भरे हुए प्रयत्नों द्वारा सुरक्षा को प्राप्त करने का यत्न करता है। राजनैतिक और आर्थिक अरक्षा का प्रश्न,—स्वास्थ्य, शक्ति, स्वभाव, नैतिकता, व्यापार, मत गणना, और कानून व्यवस्था को शक्ति हीन करता है।

कुछ व्यक्तियों के पास आर्थिक सुरक्षा की पूर्ति के लिये पर्याप्त पैसा है। किन्तु वे जानते हैं कि शान्ति अस्थिर वस्तु है। विफलता पूर्वक या अर्द्ध चेतना पूर्वक सुरक्षा प्राप्त करना कितना कठिन है—जबकि सारे भू-मण्डल में मनुष्य क्षुधाग्रस्त हैं, वस्त्रहीन हैं, और जिनके रहने के लिये झोपड़ी का भी ठिकाना नहीं है। और इन सब वास्तविक तथ्यों के बावजूद, विज्ञान और औद्योगिक शालाएं मनुष्य की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति करने का दम भरती हैं।

प्रगट रूप से बिना किसी हल के बड़ी बड़ी समस्याओं द्वारा वर्जित और बड़े बड़े प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने में असमर्थ होकर अरक्षा आत्म विश्रृंखलन की नीति में विराम का मार्ग खोजती है या फिर स्पष्टतया स्थायी, अभ्रान्त और शक्ति सम्पन्न होने की प्रेरणा करती है। इससे बहुत सी बातों का निश्चित फल प्राप्त होने की आशा बंधती है। अरक्षा राजनीति और धार्मिक ऐकान्त-वाद की इच्छा को जाग्रत करती है। बहुत से पुरुष जो सुखी नहीं हैं—वे किसी भी सम्भावनीय सुख की आशा से अपनी स्वतन्त्रता का भी परित्याग कर देते हैं। निराशा समष्टिवाद की ओर हमें अग्रसर करती है।

दरिद्र, रक्षा विहीन, असहाय और निराश व्यक्ति तानाशाहों के सरलता पूर्वक शिकार बन जाते हैं।

सुरक्षा पूर्ण शान्ति और विश्वकीय धनधान्य की बहुलता तानाशाहों को समाप्त कर सकती है।

संसार विपदसंकुल मार्ग के बीच से गुजर रहा है और इस संकट का सब से दुःखजनक लक्षण यह है कि बहुतेरे व्यक्ति सुरक्षा-लाभ की आशारूपी मृगमरीचिका में अपनी नैतिकता और स्वाधीनता को तिलाञ्जलि देने को तत्पर हैं। मुसोलिनी ने समय की गतिविधि के अनु-सार चाल चली। उसका हृदय कब पिघला जब उसने स्वाधीनता का अपहरण किया, अरण्डी के तेल से शत्रु समूह के प्राण लिये, जेलों को बन्दियों से भरा, और इथियोपियन लोगों को सुसंस्कृत बनाने का स्वांग रचते हुए उन पर विषैली गैस का प्रयोग किया। इसी भांति हिटलर ने भी माताओं को राष्ट्र से सहायता दी, शिशुओं को सुखद-भविष्य का आश्वासन दिया, श्रमिकों को काम दिया, देश भक्तों को छुट्टियों का वेतन दिया, फेक्टरियों के भोजनालयों में श्रुति मधुर सङ्गीत का आयोजन किया और सन् १९३९ के नूतन वर्षारम्भ के उपलक्ष में अपने दैनिक 'वोल किशर वेबाचर' नामक पत्र द्वारा अपने ही मुँह इन कार्यों की बड़ाई की। तब जर्मनी और अन्यान्य व्यक्तियों को क्या खबर थी कि वह राष्ट्र को दासता के बन्धन में बांध रहा है और

विश्व को रक्त-स्नान कराने की तैयारी में है।

इस्पात की बहुलता, ईंटों का आधिक्य, बन्दूकों-तोपों की प्रचुरता, शासन प्रणाली का उत्तरोत्तर दृढ़ सङ्गठन, निःशुल्क उपहारों की बहुलता, ये सब तानाशाहों की वक्रोक्तियाँ हैं। एक तानाशाही अपने नागरिकों के बंधनों को अधिकाधिक कसती जाती है व उन्हें धमकी-घुड़की से भयाक्रान्त करती है। किन्तु इसके साथ ही साथ उसी क्षण पहाड़ों के ऊपर निकले सतरंगी इन्द्र धनुष से स्वर्ग की ओर यह कहते हुए इशारा करती है कि वहीं उनकी राष्ट्रीय शक्ति संचित है और वहीं उनका स्वर्ग है। सुनहले भविष्य की सच्चाई सिद्ध करने के लिये, पेशगी के रूप में उनकी जेबों में अभी से थोड़ा थोड़ा पैसा डाल दिया जाता है। एक निरंकुश शासक की आंखों में स्वतन्त्रता और सिद्धान्त का कोई मूल्य नहीं है। वहां समस्त शासन प्रणाली सब से नये ट्रेक्टर या ब्लास्ट फरनेस प्राप्त करने में निहित है।

एक दीवाल बनती है। उस पर दूसरी तीसरी और चौथी दीवाल उठती है। उसके बाद तुरन्त ही निर्माता का बन्दी बनना पड़ता है और वहीं उसका जीवन मिथ्या भावना और कठिन सजाओं के कारण समस्या-कार्य हो जाता है।

भवन निर्माता के श्रमिकों अनिवार्यतः स्वतन्त्रता के सर्वांगीण ध्वंस का भावक अनुमान नहीं पाते। आधुनिक मिस्र आज से ऐसे पिरेमिडों या गुम्बजों की सहायता से निर्माण किया है जोकि दासता या बन्धन अनुभव कर भी, स्वाधीनता के स्वर्ग सदृश यारडनी[1] नामक स्थान में पहुँचने के लिये, प्रसन्नता पूर्वक ४० वर्षों तक बीहड़ स्थानों में भटकते रहने के लिये तैयार हैं।

जिस प्रकार पिरामिडों के भीतर गुप्त रूप से मृत शरीर सुरक्षित रखे गये थे और फिनिक्स देवी (Sphin)[2] उन पिरेमिडों की रक्षा करती थी,—उसी प्रकार से लगभग आजकल के फिनिक्स तानाशाह लोगों की सुरक्षा का भार अपने ऊपर लेकर, उन्हें भी एक तरह से मृतक सा बनाकर रखते हैं। वहां नैतिकता विहीन नग्न पाशविक शक्ति तो देखी जाती है, किन्तु मानव भावना का गहन संवेदनशील मृदुस्पन्दन वहां दृष्टिगत नहीं होता।

राष्ट्र, शस्त्रों के लिये, मक्खन और रोटी का भी परित्याग कर सुरक्षा के अनुसन्धान कार्य में, अनीतिवान लुटेरों का स्थान ग्रहण कर लेते हैं। किन्तु आज वह नाज़ी जर्मनी नहीं है! बड़े बड़े ऐसे राष्ट्र छोटे छोटे देशों को अपने प्रभाव क्षेत्र में लेकर, लघु राष्ट्रों की सुरक्षा को विनष्ट कर, केवल आंशिक सुरक्षा ही प्राप्त करते हैं। किन्तु उसके पश्चात् एक देश सम्भावित प्रकट महायुद्ध की स्थिति से बचता हुआ, अनिवार्यतः दूसरे क्षेत्र या छोटे समूह से संघर्ष मोल ले लेता है।

व्यक्तिगत स्वाधीनता कैसे सुरक्षित रह सकती है, जबकि तानाशाह की गुप्त पुलिस आपकी स्वतंत्रता पर बराबर प्रहार करती रहती है? उस सुरक्षा का ऐसे शासन के भीतर क्या अर्थ है जो कि बिलकुल— निरंकुश है। इसीलिये इसका कोई मूल्य नहीं है!

यह देखा गया है कि भवन निर्माण कर जिसने सुरक्षा का आश्वासन दिया है, उसी तानाशाह को बहुत से लोगों से समर्थन और मान्यता प्राप्त हुई है।

हमारे इस युग में जो विवाद या संक्रमण काल उपस्थित है, वह हमारे बिलकुल नैतिक पतन का द्योतक है। आज हम उस संसार में रह रहे हैं, जिसमें कि स्वातन्त्र्य प्रेम, उच्च नैतिकता के प्रति अनुराग, अत्याचारों के प्रति क्रोध की उत्तेजना, और मानव के प्रति आदर की भावना का उत्तरोत्तर ह्रास हुआ है।

१—जारडन पेलेस्टाइन के समीप सबसे बड़ी नदी है। यह लगभग दो सौ मील लम्बे क्षेत्र में बहती है। ईसाई इसे धार्मिक दृष्टि से देखते हैं और उनका विश्वास है कि इसमें स्नान करने से सारे पाप धुल जाते हैं। ईसाई पहले इस नदी में अपने बच्चों को नहलाकर जाति-संस्कार (Baptism) किया करते थे।

२—ग्रीक पौराणिक कथानुसार यह एक दानवी मानी गई है, जिसका कि ऊपरी भाग एक स्त्री के समान है और अधोभाग एक सिंहनी के समान है। मिश्र देश में पिरामिडों के पास ऐसी ही ६० फुट ऊँची एक मूर्त स्थापित है। ऐसा माना जाता है कि इसकी स्थापना मिश्र देश के राजवंश के मृतक शरीरों की, जो कि पिरामिडों में रखे गये थे, सुरक्षा हेतु हुई थी।

ऐसी बातें अन्याय और कारणों की अपेक्षा इन राजनीतिज्ञों की असफलता की प्रतीक हैं।

सैको (Sacco) और वैनजेटी (Vanzetti) के मुकदमों और फांसी के समाचारों ने अमेरिका तथा संसार वासियों को प्रकम्पित कर दिया था। और इसी तरह की हृदय द्रावक घटना Tam Mooney की भी है। किन्तु आजकल न्यायालयों द्वारा दी गई लाखों फांसियों के समाचार कभी अखबारों तक में प्रकाशित नहीं किये जाते। ज़ार के गुप्त पुलिस के साइबेरिया के पाप, बेलजियन कांगो के गुलामों के साथ हुये दुर्व्यवहार, यहूदी-विरोधी नीति और आर्मेनियनों के उन्नीसवीं बीसवीं शताब्दी के मनुष्य संहार ने, सुसंस्कृत राष्ट्रों की भावनाओं को काफी ठेस पहुंचाई है। किन्तु आज भी लाखों नज़रबन्द, जो जेलखाने जेलों में बन्द हैं, क्वचित ही उन्हें शान्ति पूर्वक विचार विनिमय करने की सुविधा दी जाती है! कम से कम दस लाख व्यक्ति (!) सन् ४२-४३ में बंगाल में दुर्भिक्ष के शिकार हुए। ५० लाख यहूदी हिटलर द्वारा मारे गये। और आज भी घड़ी से लाखों व्यक्ति चीन, भारतवर्ष और योरोप में क्षुधा से तड़प रहे हैं। (Tito) टिटो, (Franco) फ्रांको, (Salazar) सेलाजार, (Peron) पेरन और ऐसे ही अन्य तानाशाहों ने, अपनी प्रजा के हकों पर कुठाराघात किये हैं। (राष्ट्रीयता के प्रसार के साथ साथ जातीयता का पक्षपात भी बढ़ता जाता है)

प्रगतिशील आधुनिक संसार में धनिकवर्ग अपनी विपुल और व्यापक दुखान्तकारी घटनाओं और अत्याचारों के द्वारा, जनसाधारण की भावनाओं को कुचल कर भी संसार की दृष्टि में अच्छे बने रहते हैं। या कथंचित रूप से, हम आत्म रक्षा की भावना से, उन्हें अपनी स्मृति से दूर कर देते हैं। यदि हम लोग उनकी सारी बातों को सदैव अपनी स्मृति में रखें, तो इससे हमारा जीवन-यापन ही दुष्कर एवं कठिन हो जायेगा। कुछ व्यक्ति अज्ञानतावश निर्दयता, नृशंसता, और कष्ट सहने के आदी बन जाते हैं और कुछ लोगों में इनको सहने की क्षमता भी नहीं होती। समझदार व्यक्ति बहुधा अपना साहस छोड़ देता है या फिर उसके शरीर में घुन लग जाता है या फिर अज्ञानावस्था, उदासीनता, या उपेक्षा का आश्रय ग्रहण कर लेता है। वास्तव में वह अपनी महत्वहीनता, नपुंसकता या दुर्बलता के प्रति अधिक जागरूक रहता है। इसलिये राजनैतिक कार्यों या उन संगठनों में जो बुराइयों को उखाड़ फेंकने और जनता के कष्टों को दूर करने के कार्यों में तन मन से तल्लीन हैं इनके प्रति असहयोग और अरुचि का भाव, उसके हृदय में उदीप्त हो उठता है। हम चन्दे से सहायता करते हैं या अपना बहुमूल्य समय देकर सेवा करते हैं। पर इतने मात्र से, इतना विशाल कार्य हल नहीं किया जा सकता।

जितनी ही राजनैतिक क्षेत्र में जनसाधारण की उदासीनता बढ़ती जाती है और समस्यायें कठिन से कठिनतर होती जाती हैं, उतनी ही वहाँ पर चापलूसों, चाटुकारों, तानाशाहों, और राजनैतिक मक्कारों की पूरी तरह बन आती है।

समस्याओं के बाद समस्यायें इतनी द्रुतगति से सामने आती हैं कि आवश्यक विषयों पर ध्यान केन्द्रित करना ही कठिन हो जाता है। सम्मेलन पर सम्मेलन इतने जल्दी होते हैं और मन्त्रियों के मन्त्रियों में, इतनी मानसिक शक्ति और समय खर्च हो जाता है कि कूटनीतिज्ञ लक्ष्यबिन्दु पर अपनी दृष्टि स्थिर रख सकने में असमर्थ हो जाते हैं; या फिर वह केन्द्रबिन्दु दृष्टि-पथ ओझल हो जाता है। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के बीच का मार्ग, सफल सम्मेलनों, शान्ति की सन्धियों, अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री सम्बन्ध की हिलोरों पर हुए भाषणों, निरस्त्रीकरण पर हुए विवादों और लाभ की अनिवार्य आशाओं से निर्मित हुआ है। इसके प्रमाण लोकार्नो, थोयरी, सन् २८ का युद्ध विरोधी केलोग ब्रियान्ड (Kelloggt Briand Pac) समझौता और सन् १९३८ की म्यूनिक सन्धियाँ हैं। इन्होंने शासकों को काफी व्यस्त और उलझन ग्रस्त बनाये रखा है। प्रत्येक ऐसी घटना के बाद कूटनीतिज्ञों ने खूब सोचा विचारा, और अपने मुंह आशावाद के राग अलापे। थोड़े काल के बाद आगामी युद्ध का बीजारोपण होने लगा।

अन्तर्राष्ट्रीय और घरेलू राजनीति, सदैव सम्मेलनों के रूप में, सन्धियों की शकल में, प्रस्तावों, वाणिज्य व्यवसाय, तेल में रियायतों, गुटबन्दियों, मतों, कानूनों, मूल्यों, लाभों, करों, और नियुक्तियों आदि में, सन्निहित है। उक्त लेखा असत्य नहीं है, किन्तु मानव-भावना

की विचार शीलता और नैतिक चरित्र के बिना यह अपूर्ण है। सर्व प्रथम सिद्धांत-प्रसूत संगतता की आवश्यकता है। यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि सामाजिक मत से ही समन्वयता का जन्म होता है। किन्तु अवसरवादी मत गढ़ने वालों की छटपटाहट का इतिहास यह सिद्ध करने की चेष्टा करता है कि यह सब मिथ्या है। नैतिक सिद्धान्तों की ओर दृढ़ता और लगाव की भावना, वस्तु में सौन्दर्य और सामञ्जस्य लाती है।

मानव जाति को राजनीति और सिद्धान्त के बीच मित्रता की आवश्यकता है और इसी प्रकार व्यक्तिगत जीवन चरित्र और सिद्धान्त के बीच में बन्धुत्व भी अपेक्षित है। परन्तु इन सिद्धांतों से लोग प्रायः अनभिज्ञ रहते हैं। हरेक वस्तु का निर्णय ठोस फल के आधार पर होता है। अर्थात् उससे मुझे क्या फल प्राप्त होता है?

तानाशाही सामान्य राजनीति और सिद्धांतों दोनों की अवहेलना करती है। वह अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये असत्य से असत्य, भयंकर से भयंकर नरसंहार और युद्ध जैसा महान दुष्कृत्य करने में भी जरा संकोच नहीं करती। किन्तु प्रजातन्त्र को अपनी दृढ़ता और सात्विकता में भावना और व्यवहार नीति दोनों में सतर्क रहना पड़ता है।

जनरलिस्मो स्टालिन और महात्मा गांधी, तानाशाही और प्रजातन्त्र के जीते-जागते ज्वलन्त उदाहरण हैं। वर्तमान संसार में ये दोनों विभूतियाँ एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं।

जोसेफ स्टालिन, वर्गवादी तानाशाही, रूस के स्वेच्छाचारी निरंकुश शासक हैं। उनमें संगठन करने की अदम्य प्रतिभा और शक्तियों पर विजय प्राप्त करने की असीम क्षमता है। येन केन प्रकारेण अपने मनोरथ की पूर्ति-करना ही उनके लिये राजनीति है। उनकी चालें अच्छी हैं या बुरी इससे उन्हें कोई सरोकार नहीं। हिटलर के साथ ! नजरबन्द कैम्प ? छोटे छोटे राष्ट्रों को पद दलित कर पराधीन करना ! ये सब बातें उनकी दृष्टि में बिलकुल उचित हैं क्योंकि इससे उनका मनोरथ पूरा होता है। इससे शक्ति संचय तथा उसे अक्षुण्ण बनाये रखने की उनकी लिप्सा पूरी होती है।

महात्मा गांधी, एक ऋषि, राजनीतिज्ञ, भविष्य दर्शी, आदर्श वादी, समाज वादी, और शान्ति प्रिय हैं। उनमें राजनीति और सिद्धान्त दोनों एकाकार हो गये हैं।

इन दोनों महान व्यक्तियों में परस्पर में, मनुष्यों के प्रति व्यवहार नीति, और उद्देश्य पूर्ति के लिये मार्ग अवलम्बन और शाब्दिक योजना में जमीन आसमान का सा महान अन्तर है।

संसार गांधी जी (के बताये हुये मार्ग) से ही स्थायी शान्ति की आशा कर सकता है।

[अनु० स० सिं० श्री धन्यकुमार जैन]

जन-संस्कृति

श्री बैजनाथ सिंह एम० ए०

हमारे देश में अंग्रेज़ों की पराधीनता से जहाँ हमारी संस्थाओं, नैतिक प्रवृत्तियों और सांस्कृतिक परम्पराओं पर कुठाराघात हुआ, वहीं कुछ अर्द्ध सुप्त और अर्द्धचेतन शक्तियों का जागरण भी हुआ। पराधीनता के कशाघात से बाह्य जीवन में हमारे लिये गौरव हर्ष या अभिमान की कोई वस्तु न रही और हमारी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो गई। सर विलियम जोन्स, मैक्समूलर और ग्रियर्सन आदि विद्वानों के संस्कृत साहित्य सम्बन्धी अनुसन्धानों से हमने अपनी संस्कृति का महत्व दूसरों की दृष्टि से समझना सीखा और स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ और महर्षि दयानन्द सरस्वती की आलोकमयी वाणी से हमारे देश में एक सांस्कृतिक पुनरोदय हुआ जिससे देश ने अपने अतीत के गौरव को प्राप्त किया। हमारी अनंत निराशा समाप्त हुई और राष्ट्रीय जीवन में आशा का संचार हुआ।

इस युग में हिन्दी, बंगला और मराठी साहित्य में भी नवीन शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। साहित्य में व्यापक जीवन का चित्रण हुआ और नई आशाओं अभिलाषाओं एवं समस्याओं को अभिव्यक्ति मिली। परन्तु सामान्य जनता की आवाज़ युगाधार बापू के नेतृत्व में ही बल प्राप्त कर सकी। अब तक उपेक्षित असंख्य किसानों और गाँव में रहने वालों को समाज में स्थान मिला। मध्य वित्त और उच्च श्रेणी की दृष्टि अपने अन्नदाता किसानों की ओर फिरी। बापू के भारतीय भाग्याकाश के क्षितिज पर उदित होते ही राष्ट्रीयता, स्वावलम्बन, आत्म-विश्वास स्वाभिमान और मानवता आदि गुणों की प्रतिष्ठा हुई। जनता की वेश-भूषा, भाषा, रहन-सहन संस्कृति, सभ्यता—सब कुछ सम्मानित हुई। बापू ने हिन्दी को राष्ट्र भाषा हिंदी पन को राष्ट्रीय व्यवहार किसान को भगवान और पददलित अछूत को हरिजन का—भगवान के भक्त का ऊँचा आसन दिया।

अब दरबारी साहित्य की नायक नायिकायें निर्वासित हुई। भारत-भारती, पथिक, मिलन, स्वप्न, किसान आदि काव्यों और स्वर्गीय प्रेमचंद जी के अमर उपन्यासों में तत्कालीन राजनैतिक और नैतिक जीवन का स्वरूप निखरा। प्रिय-प्रवास, साकेत, पंचवटी, हिन्दू, राम की शक्ति पूजा, तुलसीदास और प्रसाद के अमर नाटकों में प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का उज्ज्वल रूप हमें देखने को मिला। इसी बीच हमारे भावुक मनीषियों का ध्यान हमारी संस्कृति की अनंत राशि, जो जनता के कण्ठ कण्ठ में बसी हुई थी, की ओर गया। पं० राम नरेश त्रिपाठी ने ग्रामगीतों का संकलन किया। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने सारे भारत के लोक गीतों के अनन्त सागर का मन्थन किया और फिर तो प्रत्येक जनपद की भाषा और बोली के प्रत्येक अवसर के गीतों का संकलन और गायन आरंभ हुआ।

अपनी संस्कृति की मृदुलता, सहिष्णुता, त्याग, तप, आनंदवाद इन लोक गीतों में चित्रित थे। उनमें अपने गौरव को सबल आधार मिला। इन प्राचीन गीतों में जनता की आशायें, अभिलाषायें; दुख-सुख, हर्ष-विषाद, स्वतन्त्र रूप से ध्वनित थे। इनमें झरने का सा स्वाभाविक प्रवाह, सौन्दर्य और माधुर्य था। इनमें समाज की कुरीतियों, नारी जीवन की तत्कालीन विवशताओं और भारतीयता के उज्ज्वल आदर्शों की सफल अभिव्यक्ति थी। इन गीतों ने जनता के ध्यान को आकर्षित किया।

अब हमारे लोक गीतों को असभ्यता और निम्न तर श्रेणी के अपमान के कलंक से छुटकारा मिला। विदेशों में हमारे लोक गीतों की मार्मिकता पर टिप्पणियाँ हुईं।

ज्यों ज्यों हमारी राजनैतिक चेतना समाज के ऊँचे स्तरों से नीचे स्तरों की ओर विकसित हुई, त्यों त्यों जन साहित्य की माँग बढ़ी। कविता, उपन्यास, नाटक और गद्य में किसान और किसान में काव्य उपन्यास, कथा और नाटक का प्रवेश हुआ। साहित्य के ये अंग जनता की प्रवृत्तियों के वाहक बने।

गाँवों में रहने वालों के बीच में से कुछ स्वाभाविक प्रतिभाशाली युवकों ने अपनी ग्राम बोलियों में अपनी भावनाओं को अनुरंजित किया। प्रेम, विरह, राष्ट्र भाव, समाज-सुधार के गीत इन बोलियों में लोक गीत के छंदों, सोहर, बिरहा, रसिया, कहरवा आदि में गाये गये।

इन गीतों को देखने से पता चलता है कि उनमें तीक्ष्ण व्यंग्य, मुक्त हास, वीर दर्प और दृढ़ निश्चय की व्यंजना है। भाषा साहित्य के बंधनों से मुक्त, सहज-

प्रवाह पूर्ण इन गीतों में नवीन प्रेरणा है, बल है और नई शक्ति संचारित करने की बिजली है। ये गीत जनता की कोमल भावुकता पर सीधा प्रहार करते हैं और कर्म की ओर प्रवृत्त करने में इनकी क्षमता अद्भुत है। हृदय के मार्ग में बुद्धि का व्यवधान नहीं पड़ता। उपमा और उत्प्रेक्षा जीवन के इतने निकट से लिये जाते हैं कि उन्हें पहचानने में समय नहीं लगता। बोली का चुटीलापन साहित्यिक भाषा की कठिनता से बाधित नहीं होता।

चुनाव की सभाओं, कवि सम्मेलनों और गोष्ठियों में जिन्होंने लोक गीतों की मार्मिक प्रभाव पूर्णता देखी है, उनके सामने यह कहना अनावश्यक है कि जन शिक्षा या सामान्य शिक्षा (Imformal Education) के लिये लोक गीतों और प्रहसनों से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं। जनता के सांस्कृतिक पुनर्निर्माण के लिये बड़े बड़े विद्वानों की दार्शनिक व्याख्या का वह प्रभाव कदापि नहीं पड़ेगा जो लोक गीतों के मार्मिक व्यंग का। इसलिये इस अस्त्र पर नया पानी चढ़ाना पड़ेगा, इसका प्रयोग सांस्कृतिक शिक्षण के क्षेत्र में भी करना पड़ेगा।

अब तक जनता के शिक्षण के जो प्रयत्न किये जाते थे, उनमें गृहकमी (विभागों) की निष्प्राणता का बोझ होता था। साक्षरता का प्रचार जब पैसे देकर किया गया तो पैसा-प्राप्ति मुख्य और साक्षरता-प्रचार गौण बन गया। अंग्रेजी राज्य काल में पुनरुद्धार के जितने भी प्रयत्न लादे गये उनमें वाह्याडंबर और प्रदर्शन के अतिरिक्त कुछ न था। उनके सामने शिक्षा लक्ष्य नहीं था, लक्ष्य था प्रवंचन।

परन्तु आज की कोई भी निर्माण योजना पुराने ढंग पर नहीं चल सकती। 'अपने देश में अपने राज' की स्थापना के बाद हम जो कोई क़दम उठायें, उसमें निश्चित योजना होनी चाहिये। अस्त व्यस्त और अनायोजित कार्यक्रम से जनता का अविश्वास बढ़ता है और भविष्य के प्रति उसका आत्मविश्वास घट जाता है। इसलिये यह प्रश्न विचारणीय है कि आर्थिक योजना की पृष्ठभूमि को सबल बनाने के लिये सांस्कृतिक शिक्षण या प्रचार कार्य को कितना घनीभूत बनाया जाय।

देश की सारी शक्ति संकलित करने के लिये जो आन्दोलन चलाया जाय उसमें जड़ता नहीं होनी चाहिये। केवल सरकारी प्रयत्नों से यह आन्दोलन सफल भी नहीं हो सकता। अपने उत्सवों और त्योहारों की पृष्ठभूमि पर यदि हम जन-शिक्षा का पर्व मनायें तो जनता का उत्साह उसमें बढ़ेगा, उसे एक कार्यक्रम मिलेगा और ग्रामसुधार का कार्य सांस्कृतिक और धार्मिक समारोह में सजीव हो उठेगा।

अक्षर-ज्ञान, भाषा-परिचय और साहित्य-परिचय से जो ज्ञान प्रौढ़ जनों को मिलेगा, वह आत्मसथ और स्थायी हो सकता है, परन्तु साक्षरता प्रचार केवल हस्ताक्षरता प्रचार न बना रहे, इसकी सावधानी हमें रखनी पड़ेगी। साक्षर प्रौढ-शिक्षण के लिये पथिक जी ने ज्ञान-विज्ञान इतिहास और साहित्य की जब सुलभ साहित्य-माला का जो सृजन आरंभ किया है, उससे जन-शिक्षा के क्षेत्र में अद्भुत सहायता मिलेगी, किन्तु उनकी प्रगति को द्रुततर बनाने के लिये जनोपयोगी ज्ञान का मौखिक प्रसार भी बहुत लाभकर होगा।

श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने अपनी प्रख्यात रचनात्मक प्रतिभा से वर्ष भर के लिये एक कार्य क्रम की रूप रेखा तैयार की है। उसका विशद रूप देने का मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। स्वतन्त्रता के पुण्य प्रभात में नाग पंचमी का जन-प्रिय समारोह भी पड़ता है। इस समय गाँवों में आल्हा आदि वीर गीतों का गायन और मल्ल युद्ध (कुश्ती) के दंगल होते हैं। इस कार्य क्रम की प्राण प्रतिष्ठा नवीन रूप से की जा सकती है। पहली अगस्त से पद्रह अगस्त तक स्वतंत्रता पक्ष मनाया जाय, जिसमें अपनी स्वतंत्रता-प्राप्ति के प्रति विजयोल्लास हो और भारतीय संस्कृति और प्राचीन इतिहास के प्रसिद्ध वीरों का जीवन-वर्णन हो। आल्हा और ऊदल हमारे राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन के विघटन युग के वीर हैं, परन्तु आल्हा छंद में यदि अर्जुन, भीम, कर्ण, हनुमान्, लक्ष्मण, अशोक, विक्रमादित्य, हर्ष, महाराणा प्रताप, शिवा जी और गुरु गोविन्द सिंह आदि वीर नायकों का संक्षिप्त जीवन गाया और गवाया जाय तो जनता को अपने इतिहास का परिचय मिलेगा और उनके जीवन में अद्भुत उत्साह बढ़ेगा।

इस पक्ष में प्रत्येक गाँव समिति द्वारा देशी खेलों जैसे कूद, दौड़, कबड्डी और कुश्ती की प्रतियोगिता की जाय। ग्राम समितियों के विजयी क्षेत्र संघों में जाँय

और उनके केन्द्रीय उत्सवों तथा प्रतियोगिता में भाग लें। इस प्रकार स्वतंत्रता-पक्ष में जो नई शक्तियां उन्मुक्त हों उनका वर्ष भर के संस्कृतिक-शिक्षण के कार्यक्रम द्वारा नियंत्रण और सम्यक् संचालन हो।

इसके बाद जन्माष्टमी का पर्व आता है। भगवान कृष्ण के जीवन और गीता के उपदेशों को सरल गीतों में प्रचलित किया जाय। ग्राम समितियों में व्याख्यानों का भी आयोजन किया जाय। प्रभात फेरी में ग्राम रक्षक दल के संगठन का उपयोग किया जाय और उसमें गीता के गीतों का उपयोग किया जाय।

विजया दशमी और दुर्गा पूजा के महोत्सव में अब तक धनी मानी सज्जनों का अधिक हाथ रहता रहा है, परन्तु अब उनका आयोजन क्षेत्र-सङ्घों या ग्राम समितियों द्वारा होना चाहिये और राम चरित मानस के प्रचार का संगठित प्रयत्न होना चाहिये। भगवान राम, भरत, भगवती सीता के जीवन का वर्तमान सामाजिक, महत्व जनता को बताना चाहिये। राम राज्य की कल्पना का अर्थ क्या है, इस लोकतांत्रिक शासन को राम राज्य बनाने का प्रयत्न करने में जनता का कितना हाथ हो सकता है। लोकतन्त्र को नौकरशाही के बंधन से बचने का प्रयत्न कैसे करना चाहिये, आदि प्रश्नों पर प्रकाश डालने से जनता की नागरिक प्रवृत्तियाँ शिक्षित होंगी और देश का राजनैतिक विकास उचित ढङ्ग पर होगा। राम लीला के नाटकों में भी नया दृष्टिकोण डालना चाहिये।

इसके उपरांत दीपावली के पक्ष में सफ़ाई का आन्दोलन चलाना चाहिये। गंदगी की हानियों पर प्रहसन और एकांकी नाटकों का अभिनय हो। घरों की स्वच्छता पर गाने लिखे जाँय और गाया जाय। सफ़ाई से निकले हुये कूड़ा, करकट, घास फूस आदि का प्रयोग कम्पोस्ट या मिलवाँ खाद बनाने में करना सिखाना चाहिये। दीपावली पक्ष में दरिद्रता को भगाने और लक्ष्मी को बुलाने या पूजने के रूपक का अर्थ समझाना चाहिये। जुआ आदि कुरीतियों पर संगठित आक्रमण करना चाहिये, जिसका सांस्कृतिक कार्य क्रम भी संयोजित होना चाहिये। भइया दूज के शुभ अवसर का उपयोग सामाजिक स्नेह और उत्तरदायित्व प्रसार में करना चाहिये।

पहली जनवरी से १५ जनवरी तक के पक्ष को संक्रांति पक्ष के रूप में मनाना चाहिये। इसमें युवकों द्वारा छोटी छोटी टोलियों में आस पास के गावों में यात्रा और ठहरने का प्रबंध करना चाहिये। एक पड़ोस के दल को दूसरे क्षेत्र में जाना चाहिये। रात्रि में उन्हें कैम्प फ़ायर या तमा समाज द्वारा समाज में फैली कुरीतियों—अंध विश्वासों आदि का प्रहसनात्मक खण्डन करना चाहिये। छोटे एकांकी नाटकों का भी संयोजन करना चाहिये।

१६ जनवरी से वसन्त पञ्चमी तक के पक्ष में साक्षरता या अक्षर-ज्ञान द्वारा जन शिक्षा का सङ्गठित आन्दोलन चलाना चाहिये। २६ या २७ जनवरी को निरक्षरता के निवारण की किसानों से प्रतिज्ञा लेकर प्रत्येक मिडिल पास व्यक्ति अपने ग्राम पास के कुछ प्रौढ़ों को साक्षर बनावे। इसका निरीक्षण उन संगठनों को करना चाहिये, जिनमें इन युवकों का सम्बन्ध हो।

होलिकोत्सव के अवसर पर पुरानी कुरीतियों के विरुद्ध प्रचार हो। और होली की अभद्रता को मिटाने और अछूतों के जीवन को उठाने का प्रयत्न किया जाय। इस पक्ष में मानव मात्र की समानता और सामाजिक शिष्टाचार का व्यापक प्रचार किया जाय।

इसके उपरान्त ६ अप्रैल से १३ अप्रैल तक के राष्ट्रीय सप्ताह में देश के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास पर प्रकाश डाला जाय। प्रभात फेरियों और स्वयं सेवक दल के द्वारा ऐसे नाटकों का अभिनय करना चाहिये जिनमें बापू जी, लोकमान्य तिलक, गोखले, लाला लाजपत राय, जवाहर और नेता जी के जीवन पर प्रकाश डाला जाय। विशुद्ध सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलन से आरंभ करके सांस्कृतिक शिक्षण के इस कार्यक्रम का अंत भी सामाजिक राजनैतिक आन्दोलन के साथ होना चाहिये।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस कार्यक्रम को चलायेगा कौन? सरकारी वेतन भोगी सेवकों द्वारा यह आन्दोलन नहीं चल सकता। अधिक से अधिक सरकारी कार्य-कर्ताओं को चाहिये कि वे इस कार्य-क्रम को जनता को ख़ूब अच्छी तरह समझा दें और गांव पञ्चायतें, रक्षक दल या गाँव समितियों के लोग इस कार्य क्रम को उठा लें। इस कार्य क्रम को आरंभ करने के

पहिले गांव समितियों (सहयोगी) का सङ्गठन नये सप्राण रूप से आवश्यक है। चाहे कार्य क्रम थोड़े ही क्षेत्र में चलाया जाय परन्तु ऐसे क्षेत्र में चलाना चाहिये जहां की ग्राम समितियां स्वेच्छा-निर्मित, जागरूक और उत्साही हों। कार्य क्रम का प्रत्येक अंग आत्म प्रेरित होना चाहिये—ऊपर से लादने की उपकार और दया वृत्ति गाँवों के पुनर्निर्माण में सहायक नहीं हो सकती।

साहित्य के सृजन का कार्य ज़िले के ग्रामोन्नति संघ द्वारा समर्थित ग्राम जीवन में सने हुये लोक गीत कारों और सरल लेखकों द्वारा होना चाहिये और प्रान्तीय सरकार के शिक्षा प्रसार विभाग तथा सूचना विभागों को ऐसे साहित्य के निर्माण और प्रकाशित कराने का सम्मिलित प्रयत्न करना चाहिये।

ग्रामोन्नति की आर्थिक योजना को सफल बनाने के लिये सांस्कृतिक आन्दोलन न केवल सहायक होंगे वरन् अनिवार्य भी। किसी एक को पूर्वापर का क्रम देना अवैज्ञानिक और अव्यवहार्य होगा।

बापू की सीख के मुताबिक चलो

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

बापू हनुमान थे।

उन्होंने राम की सेवा की, जैसे कि हनुमान ही कर सकते थे।

उन्होंने सीता को ढूंढ निकाला।

सत्य, प्रेम और उद्यमी जीवन, यह तीनों हमारी खोई हुई सीता हैं। उन्होंने उसे अशोक वाटिका में पाया। पर उसे हासिल करने के लिये हमें जी तोड़ परिश्रम करना है और वह आसान नहीं।

अगर हम वह सीख भूल जायंगे तो हत्यारे का ही उद्देश्य सफल होगा। बापू के ख़िलाफ उसे कोई व्यक्तिगत कारण या द्वेष नहीं था। बापू जिस मत को अथक प्रयत्न से फैला रहे थे, वह उसका खून करना चाहता था। और अगर हम बापू की मृत्यु के साथ उनके सिद्धान्तों को भूल जाते हैं, तब तो हम हत्यारे का उद्देश्य सफल करने में निःसंशय सहायक बनते हैं। अगर हम अहिंसा, सत्य और उद्यमी जीवन के मतों को खोना नहीं चाहते, बल्कि बापू जैसा चाहते थे वैसा करते हैं, वे चाहते थे वैसा विचार करते हैं और वे बोलते थे वैसा सत्य और प्रेम से बोलते हैं,--तब बापू की मृत्यु, मृत्यु न रहकर एक पीड़ा रहित मुक्ति होगी और हम उस मूर्ख हत्यारे का उद्देश्य असफल करेंगे।

बापू की मृत्यु से अनाथ बने तरुणो, वीर बनो। ईश्वर तुम्हारा सहायक हो।

तीन गीत

'श्री निर्मम'

(१)

वरदान नहीं—
बलिदान माँगने आया हूँ !
विश्राम नहीं—
संग्राम सखे मैं लाया हूं !!
फूलों से जी भर खेल लिया; शूलों के पथ पर अब उतरो !
तारों से झिलमिल नित चमके;ज्योतिर्मय,रवि से अब निखरो !
चल भ्रान्ति नहीं—
चिर क्रान्ति सखे मैं लाया हूँ !
वरदान नहीं—
बलिदान माँगने आया हूँ !!
यौवन-हाला पी पी झूमे; सपनों में नित्य विहार किया !
जागृति की सुधि खोकर तुमने,विस्मृति से नित अभिसार किया !
श्रृंगार नहीं—
अंगार सखे मैं लाया हूँ !
वरदान नहीं—
बलिदान माँगने आया हूँ !!
ज्वालाएँ धधक रहीं औ तुम छिप बैठे प्रेयसि अंचल में !
हृद-तल का सोया रुद्र नहीं जग सका अरे इस हलचल में !
मधु मलय नहीं—
चिर प्रलय सखे मैं लाया हूँ !
वरदान नहीं—
बलिदान माँगने आया हूँ !!

(२)

देखा सूनेपन का लेखा !
देखी स्मृति की धुँधली रेखा !
किस सपने में जिसको मैंने
इस उर का चिन्तन-ध्यान दिया !
मैंने जगती को गान दिया !!

रे फैले युग दृग-कर सूने—
नभ में, किन चरणों को छूने—
अदृश्य, अपरिचित वे जिनको
उर का मृदु पुष्प प्रदान किया !
मैंने जगती को गान दिया !!

बह चले अश्रु विह्वल झर झर !
मृदु पीड़ा के स्वर में स्वर भर !
जग समझा मैंने गान दिया
औ जग ने मुझको मान दिया !
मैंने जगती को गान दिया !!

(३)

लुट चुका संसार फिर भी
चेतनामय प्राण मेरे !
वेदनामय गान मेरे !

नियति के निष्ठुर करों ने
खेल ही प्रिय नित खिलाया !
दूर से मृग जल दिखाकर
नित्य भोला मन लुभाया !

आह भ्रम से ही बने थे
साँझ और विहान मेरे !!
छल मुझे बल सा हुआ प्रिय
स्वप्न बन आधार आया !
लोचनों में नीर बनकर
क्या किसी का प्यार आया ?
सच न हो; पर खो न जाना
कल्पनामय ध्यान मेरे !!
वेदनामय गान मेरे !!

———

नया धर्म !

श्री रामचरण राय, एडवोकेट

[स्थान:—रमनापुर गाँव का एक टूटा-फूटा सा झोपड़ा अज्ञनाम मकान। शहर वालों को शहरी बनाए रखने के लिए जिन्होंने अध-पेट रह कर और अनेकों कष्ट भोग कर अपने को मानव की श्रेणी से गिरा रखा है और अपनी कोमल भावनाओं को उसी प्रयास के प्रति समर्पित कर दिया है। उन्हीं इंसानियत के नाम पर जिन्दगी का बहुत सा अनुचित बोझ ढोने वाले अभागे व्यक्तियों में एक व्यक्ति रामचन्द्र कुम्हार को शहर में स्थान न मिलने से पांच मील दूर एक गांव में रहना पड़ता है। वहीं से वह और उसकी पत्नी सिर पर मिट्टी के बरतन और भोंडे खिलौने लाद कर बग़ैर खाए-पिए, मुँह अंधेरे चल देते हैं। शहर में, दो मुट्ठी चने चबाकर, दिन भर में जितना सामान बिक जाए उसमें जरूरत की थोड़ी सी चीज-बसत खरीद कर, बाक़ी जरूरतों को दूसरे दिन की बिक्री की आशा पर स्थगित करके, रात तक घर लौट आते हैं। शहर के खरीदार दूसरी चीजों के लिए मुट्ठी भर-भर कर रुपये चोर बाजार में खपते, और लखपतियों को करोड़-पती बनाते रहते हैं। मगर इन ग़रीब कुम्हारों की चीजों में जिनमें मुनाफा सिर्फ चन्द पाइयों का ही होता है, खरीदार एक लाख मेख निकालता, और कम से कम कीमत पर खरीद कर, और कुछ अदद रूंगन में लेकर, इनके जिन्दा रहने के साधनों को कम करता रहता है। यह लोग भी इस हालत को पहुंच गए हैं कि गृह-उद्योग को खत्म करके, कहीं छोटी-मोटी सी नौकरी कर लें। शाम को जब यह दम्पत्ति घर वापिस आता है तब दिन भर में बासी रोटियों को छीन-झपट कर तृप्ति पाने वाले मानवता के छोटे छोटे कलंक, दिन भर की खेल कूद की थकान के मारे गिरते पड़ते मां से झूम जाते, तरह तरह की मांगें पेश करके मां को अपने वायदों की याद दिलाते, न मिलने पर रोते-झींकते, रोटी का सख्त तकाजा करते हैं। थकी हुई मां फौरन चूल्हा जला कर किसी को मारती, कभी झोंकती, किसी को छाती से लगा कर शिकायतें सुनती, और अपने 'धन' की अशोभन् अवस्था देख कर भी एक विचित्र प्रकार की तृप्ति की सांस लेती है। उसकी नजर अपनी ग़रीबी का एक कारण देख पाती है—और वह है अपना हाड़तोड़ मेहनत में भी कमी निकालना (हालांकि वह यह नहीं बतला सकती कि अपनी मेहनत को बढ़ाने की गुंजाइश कहाँ है), और दूसरा कारण जो उसकी समझ में आता है वह है अदृश्य में बैठकर मानव-संवेदना से परे रहने वाले विधाता के कठोर लेख-(जिनको उसकी धुँधली दृष्टि पढ़ नहीं सकती) और अनजाने अपने पूर्व-जन्म के फल। और ग़रीबी का केवल एक ही दुष्परिणाम वह समझ सकी है—वह है दोनों जून भर-पेट रोटी न मिलना। संस्कृति के सब दांव इस मानवी के पास झूठे पड़ जाते हैं, और बच्चों को छाती से लगाकर इस माता ने सब लुटेरों को क्षमा कर दिया है।]

[एक टूटा फूटा सा ओसारा है या दालान। सामने टूटे खांचे, पुरानी पटियां आदि को मिट्टी के चबूतरे पर रख कर देव-मूर्ति के लिए आसन बनाया गया है। उस पर आसीन है मिट्टी की एक प्रतिमा जिसके पैर बनाए तो जरूर गए थे, मगर टूट गए। उसमें एक डोरा चिपक कर, टेढ़ा आड़ा पड़ा रह कर, भारतवर्ष का नक़्शा बना रहा है। मालूम पड़ता है इसी मूर्ति की पूजा-पाठ का इस समय विशेष आयोजन है। सामने १५-२० आदमी उस पोशाक में बैठे हैं जिसके कारण सभ्य-जगत उन पर नाक भौं चढ़ाते रुकता नहीं:—आदि आदि]

[ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब लोग प्रार्थना करने अभी अभी इकट्ठे हुए हैं।]

नाथू०—क्यों भाई! रामचन्द्र कहाँ चले गए?

[बाईं ओर के टूटे फूटे दरवाजे से तीन चार आदमी प्रवेश करते हैं। आगे आगे एक मोटे से पण्डित जी महाराज छूत-छात और आचार-विचार की साक्षात मूर्त्ति बन हुए, अत्यन्त मैले और उससे भी ख़राब, अजब तरीक़े से कपड़े पहने हुए—कुरता, कूल्हे तक पहुँच कर थक जाने वाला

कोट, सिर पर साफ़ा यह पूर्व और पश्चिम के सम्मिलन का भद्दा नमूना है जो दोनों के अज्ञान और अश्रद्धा का द्योतक है। एक अन्य पुरुष खादी का कुरता और टोपी आदि, तीसरा, चौथा—साधारण]

[सब लोग पण्डित जी को आता देखकर खड़े हो जाते हैं।]

—आओ, महाराज ! आपके चरणों की धूल पड़ने से यह स्थान पवित्तर हो गया।

[पण्डित जी विषण्ण मुख से आशीर्वाद देते हैं।]

—विराजो, महाराज !

[एक फटा सा बोरा एक तरफ़, अलग-सलग बिछा कर छूत छात की रक्षा की जाती है। पण्डित जी को कुम्हार के घर में बैठने में स्वाभाविक ग्लानि होती है, मगर किसी गूढ़ कारण-वश उनको यह कष्ट स्वीकार करना ही पड़ता है। पण्डित जी की इस अयाचित कृपा से उपस्थित व्यक्तियों में आश्चर्य का भाव सब धीरे धीरे फुस-फुस करते हुए, बैठते हैं।]

पण्डित०—(इधर उधर देखकर, खीझते हुए) रामचन्द कहाँ गया ? इधर दिखता नहीं।

नाथू०—अभी आते होंगे, महाराज !

प०— बड़ा भगत हो गया है आजकल।

[अन्य व्यक्ति प्रसन्नता और पसन्दगी के भाव से उनका अनुमोदन करते हैं, मगर पंडित जी अपने व्यंग्य का स्वयं ही रसास्वादन करते हुए बारबार गरदन हिलाते हैं।]

नाथू० —(अन्दर की तरफ़ मुँह करके—ज़ोर से) अरे रामचन्द ! पंडित जी पधारे हैं।

"आया भैया"—कहते हुए दाएँ ओर के दरवाज़े से रामचन्द का प्रवेश।—मामूली सा देहाती कुम्हार, बड़ी कृश शरीर, जीर्ण वस्त्र और मुख पर दैन्य की छाप।

[इस महत सौभाग्य के कारण, रामचन्द घबरा जाता है। वह सोच नहीं पाता कि इस गौरव को कैसे बटोरे। मुख पर अतीव विनम्रता का भाव लिए हुए, गद्गद होकर पण्डित जी के चरणों में दूर से सिर झुका कर और हाथ जोड़कर उनकी अभ्यर्थना करने में ही सन्तोष मानता है। यद्यपि उसकी इच्छा तो यह हो रही थी कि वह उन चरणों में ही सिर रख कर उनकी पवित्र रज से अपने को पवित्र करता मगर श्रद्धा के उस प्रदर्शन की शायद उसे इजाज़त नहीं है।]

राम०—बड़े भाग, महाराज ! आपके चरणों की धूल पड़ी।

पंडित०—हाँ, हाँ, बैठो, बैठो। मैंने सुना कि रामचन्द के यहाँ रोज़ बड़ा पूजा-पाठ होता है। सोचा—देई-देवता का मामला ठहरा। वे लोग न बुलाएँ तो भी जाना अपना धर्म है। कहीं पूजा में कोई त्रुटि न रह जाए, नहीं तो सारे गाँव पर कोप पड़ेगा।

[अन्तिम वाक्य से भयभीत होकर, सब लोग पण्डितजी की तरफ़ कृतज्ञता की दृष्टि से देखते हैं।]

पं०—और, रामचन्द्र ! यह कौन सी देवी की पूजा है ?

राम०—(हाथ जोड़कर) महाराज ! यह भारत माता की पूजा है।

पं०—(साश्चर्य) भारत-माता ! यह कौन सी नई माता निकल आई रे ! धरती-माता तो हमने सुनी थी, मगर उनकी भी तो मूरत बनाकर पूजा करने का शास्त्तर में कहीं विधान नहीं मिला।

रामचन्द—पंडित जी के असीम ज्ञान से अभिभूत होकर हिचकिचा कर बोलता है—

यह . यह अपनी धरती माता, यही तो सब देस-वासियों की माँ है।

पं०—देशवासियों की माँ का नाम तो जगदम्बा है, रामचन्द्र !

राम०—और, महाराज ! यह भी तो हमारी माँ हैं। स्वामी जी कहते थे—रामचन्द्र ! यह भारत-माता सब देई-देवतों की माँ हैं। इनकी हो सेवा करने से सब धर्मों का पालन हो जाता है, और सब परकार के सब सुख मिलते हैं।

प० (आश्चर्य से मुँह फैल जाता है) राम, राम ! कैसा अनिष्ट बकते हो, रे ! शास्त्तर में वर्णित सब देई-

देवता तो झूठे होगए, और तुम्हारा यह मिट्टी का ठीकरा हो गया सब से बढ़कर !! इसकी तो कोई सूरत-शकल भी नहीं है।

राम०—(मुंह उसका उतर जाता है।) मैंने झूठ तो नहीं कहा, महाराज ! मगर स्वामी जी ने यही उपदेश दिया कि—"भैया ! और सब देवताओं को भूल जाना, मगर अपनी इस माँ को न भूलना। सेवा करने से यह सब प्रकार के मनोरथ पूरे करेंगी। इनकी सेवा करने में यह ख़ास बात है कि यह सिर्फ़ अपने सेवक का ही भला नहीं करतीं, उसके साथ दूसरे हज़ारों-लाखों आदमियों को भी सुखी बना देती हैं।

पं०—(किंचित् क्रोध से) तो देखता हूँ तुम लोगों का देवताओं में विश्वास नहीं रहा। तुम सब नास्तिक हो गए हो—हाँ ! और क्या क्या कहते थे तुम्हारे स्वामी जो सुनूँ तो—

[स्वामी जी के बारे में प्रश्न किए जाने पर रामचन्द्र का हृदय श्रद्धा और स्नेह से द्रवित हो गया। लगभग तन्मय होकर ही वह बोलने लगा।]

राम०—स्वामीजी ! क्या पूछते हो, महाराज ! ऐसा देवता आदमी तो देखने में न आया।

[दूसरे पक्ष के द्वारा एक अन्य व्यक्ति की इतनी प्रशंसा को पण्डितजी अपना अपमान समझते हैं, मगर इतनी निर्भयता और कृतघ्नता के साथ उपेक्षित कर दिए जाने पर भी वे असाधारण संयम का परिचय देकर अपने चेहरे से कष्ट एवं अपमान का भाव प्रकट नहीं होने देते।]

पं०—(भले भाव से) यह स्वामी जी काशी जी से ही आए होंगे ?

राम०—यह तो मैंने नहीं पूछा, महाराज ! एक दिन मैं रात को घर से बाहर निकला। बाहर स्वामीजी खड़े थे। मैंने सिर नवाकर प्रणाम किया तो आसीस देकर बोले—'भाई ठहरने को जगह मिलेगी ?' मैंने कहा—'महाराज ! हम लोग नीच ज़ात हैं।' आपको आराम नहीं मिलेगा।' तो हँस कर कहने लगे—'तुम हमारे भाई हो। तुम्हारे यहाँ हमको कोई कष्ट न होगा।'

पं—(चौंक कर) फिर क्या हुआ, रे ! क्या तुम्हारे साधु-भाई ने तुम्हारे चौके में प्रेम से प्रसाद पाया ?

राम०—राम ! राम ! कैसी बातें करते हो, महाराज ! भला हम उनका धरम भ्रष्ट होने देते ! उन्होंने तो बहुत कहा—रामचन्द ! अगर नहा धोकर प्रेम से भोजन बनाओ तो वह भगवान का प्रसाद बन जाता है, ' मगर मैंने पैर पकड़ कर कहा—स्वामी जी ! ऐसा अनर्थ न होगा। हम चौका लगा देते हैं, आप आनन्द से भोजन बनाओ।'

पं०—(गम्भीरता-पूर्वक) हूँ, तो वह कोई अवधूत रहा होगा।

राम०—महाराज ! उनकी छवि क्या कहूं ? आंखों में ऐसा तेज था उनके, मगर चेहरे पर घनी छाया थी। जब हँसते तो मालूम पड़ता कि बड़ी मुश्किल से हँस पाते हैं।

पं—और क्या क्या कहते थे ?

नाथू०—कहा क्या ! मैंने भी उनकी बानी सुनी है, पंडित जी ! बोले—'देई-देवता कठिनता से परसन्न होते हैं। हम साधारन आदमी उनके लायक़ तपस्या कैसे कर सकते हैं। यह हमारी मां—कलयुग में जीवन सुफल करने का सीधा सच्चा सहज साधन है ! उसका नाम भजने से सैकड़ों जनम का पुण्य मिलता है, और पाप के रास्ते तो आदमी भूल कर भी नहीं जा सकता। हमारी मां हमारे कर्मों पर दिष्टी डाले बिना ही अन्न-जल और आसरा देकर हमको जीता रखती है। इसी मां की पूजा करो। इनकी पूजा में तुम कभी धोखा न खाओगे।'

पं—(क़ाबू न कर पाने से) दूसरे देवता धोखा देने लगे ?

सेवाराम—महाराज ! धोखा कह कर तो पाप नहीं बटोरूंगा, मगर हाँ, देई-देवता में अब सत तो नहीं रहा।

रामकिसुन—देखो न ! हर साल कितने देई-देवता मनाते हैं। पेट काट कर मानताएँ पूरी करते हैं, मगर हर साल आफ़त बढ़ती ही जाय है। अब तो खाना मिलना दूभर होगया।

दलपत—सच्ची, महराज ! हर साल फ़सलें बिगड़ जाती हैं। तुम 'देवता का कोप', 'पुरबले जनम का फल' कह कह कर डराते धमकाते हो, मगर देवता के परसन्न करने का सच्चा रास्ता आज तक कोई न मिल पाया।

पं०—(गरज कर) तो इस लिए तुम लोग देवतों को छोड़ दोगे ? अपनी तरफ़ भी तो ज़रा देखो। बड़े

धरम-करम करते हो न ! उस दिन मेरा लड़का थोड़े से भुट्टों के लिए तरसता रह गया, मगर गांव भर में किसी एक के मुँह से न निकला कि ला महराज ! यह दो भुट्टे ले लो।

दलपत—(साहस बटोर कर) क्या करें, महराज ! दाने दाने को तो मुहताजी होगई। देखो न ! क्या मिट्टी भी लड़ाई में जाने लगी जो इस तक के दाम बढ़ गए।

पं०—अंग्रेज धर्मावतार हैं। वे तुम लोगों को तुम्हारे पापों का बदला दे रहे हैं।

रामकिसुन—हाँ, महराज, सत्य बचन ! और यह गाओं से ढेर की ढेर गौएँ ख़रीद कर भी हमारे वे धर्मावतार देश का पूरन उद्धार ही किए देते हैं। दूध नहीं मिलता, महराज ! दूध ! किसानों के बेटे अन्न न खाएँ, तो मठे से भी गए।

पं०—(बात टाल कर) हां रे, रामचन्द ! और क्या क्या बताए तुम्हारे स्वामी जी ने इस मूरत के गुन ?

दलपत—इस मूरत के गुण तो बड़े बड़े हैं, महाराज ! हम सब एक इसी माता की सन्तान हैं। आपस में बिना भेद-भाव के हम सब भाई-भाई हैं। दूसरे देवतों की तरह यह माता हमें आपस में नहीं लड़ाती। हम सब को प्रेम करना सिखाती है।

पं०—(सचमुच आश्चर्य का भार न सँभाल सकने के कारण) क्यों रे ! देई-देवता हमें लड़ाते हैं ? देखता हूँ—तुम छोटी जात का मुँह बहुत खुलता जाता है।

राम किसुन—(हाथ जोड़कर) पंडित जी ! भला सोचो तो, झूठ इसमें क्या है ? तरह तरह के देवता, तरह तरह के काम। कोई कुछ, कोई कुछ ! किसी के मिजाज का पता ही नहीं चलता। हम तो आरी आगए महाराज ! पूजा-पाठ की भुगतान भुगतते भुगताते।

पं०—(इस प्रकार बार बार गरदन हिलाता है जैसे उसने किसी एक गूढ़ रहस्य का उद्घाटन कर लिया हो। आत्म प्रशंसा का भाव भी है) मालूम होता है, वह कोई कांग्रेसी रहा होगा। तुम्हारे स्वामी जी के एक भी लच्छन साधुओं से नहीं मिलते। भला साधुओं को इन बातों से क्या मतलब ?

दलपत—महाराज ! अगर वह कांग्रेसी भी रहे तो क्या ऐब है ? सच कहने में क्या कसूर ! आज कल सरकार किसको कांग्रेसी नहीं मानती ? उस तरफ़ वाला रेल का पुल सालों से तो देखते आ रहे हो कि कमज़ोर होता जा रहा है। अब के रेल गिर गई तो ज़ोर जुलुम करके कांग्रेसियों को तो गिरफ़्तार कर लिया, और जुर्माना कर दिया सब गाँव वालों पर ! सो, महाराज ! कांग्रेसी तो फिर भी भले। वे दूसरों के ही लिए जान हथेली पर लिए फिरते हैं। देखो न ! गांधी बाबा हम लोगों के लिए ७३ साल की उमर में जेल गए। स्वराज यह लोग कोई अपने घरों में तो बटोर कर रख न लेंगे।

पं०—बहुत बढ़ बढ़ कर मत बोलो, दलपत ! यह राज दरबार की बातें हैं। कोई सुन लेगा तो—

दलपत—सुन न ले कोई ! करेगा क्या ? जो हालत आज हम लोगों की है सो किसी की क्या होगी, और इससे बुरा भी क्या होगा। भगवान कभी दुश्मन की भी ऐसी दसा न करे। हमको तो आज कल आदमी ही नहीं समझा जाता।

सुखराम—(अभी तक चुपचाप सुनते सुनते यकायक खीझ उठता है) दलपत, राम किसुन ! चलो, माता के गीत गाएँ, इस पंचायत में क्या रखा है !

कई कण्ठों से एक साथ हां, हां, की आवाज़ आती है। पण्डित जी सुखराम, और फिर दूसरे व्यक्तियों की तरफ़ टेढ़ी निगाह से देखते हैं। मगर वे उस तरफ़ ध्यान न देकर, मूर्त्ति की तरफ़ मुँह करके पंक्ति में बैठ जाते हैं। सुखराम एक गीत शुरू करता है : —

"हम सब अपनी मां के गुन गाएँ। वह हमें अन्न-जल, और आश्रय देकर पालती पोसती है। माँ पर विदेशियों ने जुल्म ढा रखे हैं। हम सब माँ के सङ्कट दूर करें....और जो विदेशी हम और हमारी माँ के बीच में लुटेरा बन कर खड़ा है उसको मार भगाएँ....हम सब प्रतिज्ञा करते हैं कि मां का अपमान करने वालों को कभी क्षमा न करेंगे।

"...हम मां की लाज बचाने के लिए अपना सर्वस्व त्याग देंगे...तभी तो भगवान हम पर प्रसन्न हो सकेंगे...।"

[पंडित जी के दोनों साथी गद्गद् भाव से सब से आगे बढ़कर मूर्त्ति के सामने नत-मस्तक होते हैं।]

गोपाल चन्द्र (कंठावरोध जैसी दशा में मुश्किल से बोल पाता है) भाइयो ! आज मैंने मां का स्वरूप पहचाना। मैं भी कई दिन कांग्रेस में रहा, मगर सिवा दूसरों के देखा देखी चीखने-चिल्लाने के समझ न पाया कि यह सब आज़ादी का नारा किस लिए है। आज मैंने सचमुच माता की मूर्ति के दर्शन किए। मुझे आज ही मालूम हुआ कि मां का वास्तविक रूप कहां मिलता है। जिज्ञासा-वश आज यहां पंडित जी के साथ चला आया सो आना सार्थक हुआ।

[सब भाव-मुग्ध होकर सुनते हैं। सब की टकटकी माँ की मूर्त्ति पर लग गई है। वातावरण भावुक बनकर भाव-प्रवण बन गया है।]

गीत आगे चलता है—

"हम सब भाई-भाई हैं। हमारे बीच कोई छोटा-बड़ा नहीं। मां ने जिस रूप में हम सब को बखेर कर जहां में लगाया है वही रूप हमारा आदर्शमय कर्म पहचान है....आओ, भाइयो ! ....हम पाखण्ड और कुकर्मों को छोड़कर प्रीत के गीत गाएँ जिसमें माता हम पर प्रसन्न हों....देवी-देवताओं ने धर्म के चौराहे पर कीचड़ मचा कर हमें भ्रम में डाल दिया है...हम सब वह करें जिससे सब एक हो सकें...भिन्न-भिन्न धर्मों के अनुयाइयों के नाम से हम आपस में लड़ने और एक दूसरे से नफ़रत करते हैं, मगर एक मां की सन्तान होने के नाते हम सब प्रेम से एक साथ बराबरी से रह सकेंगे।

"धर्म की साधना ग़रीब और बेकस आदमी के लिए नहीं है क्योंकि कमज़ोरी खुद एक पाप है।

"सारे ग़रीब, बेकस, मज़लूम और परेशान व्यक्तियों को मां की पूजा—देश-भक्ति के नए धर्म में दीक्षित होना चाहिये....वे धर्म के क्षेत्र में उपेक्षित हैं ...वे धर्म क्षेत्र में ख़ाली हाथ रह जाते हैं।

"मां की पूजा एकांत में—आत्म सुख के वातावरण में शांति से बैठ कर नहीं की जा सकती...मां के उपासक को अपना आराध्य जन-समाज में ढूँढ़ना पड़ता है, और उपास्य को पाने के लिए कर्म करना पड़ता है...पोथी-पत्रे, घण्टा-घड़ियाल, शास्त्रीय चर्चा और वाक चातुरी —ये सब मां के पुजारी के लिए निरर्थक और ग़लत हैं। उसके लिए तो कर्म है। अनवरत कर्म, निष्काम कर्म—ऐसा सिलसिलेवार अनथक काम जिसका मूल्याङ्कन अपने स्वार्थ की दृष्टि से नहीं किया जा सकता, बल्कि जाने-अनजाने लक्ष-लक्ष मानव के सुखों की वृद्धि की दृष्टि से होता है।...धर्म धारणा जैसी अनिश्चित एवं भिन्न-वाची वस्तु पर आधारित है, देश प्रेम कठोर कर्म पर......"

[दग्ध हृदयों के बीच में से निकल कर मां की यह प्रार्थना क्रमशः करुण एवं अतीव भाव-पूर्ण बनती हुई, सारे वातावरण को ही विचित्र प्रकार का बना देती है।]

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहता है।

[गोपाल चन्द्र अत्यन्त प्रभावित होकर उपस्थित व्यक्तियों को सम्बोधित करते हैं।]

गोपाल—पंडित जी ! आओ—इस नए धर्म का स्वागत करें। हम अभागे भारतवासियों के उद्धार के लिए इसी धर्म को घर घर में फैला देना होगा। लोगों से कह देना पड़ेगा कि यदि वे इसी प्रगाढ़ विश्वास तथा तन्मयता के साथ मां की पूजा कर सकें तो संसार की कोई शक्ति उनके सुख-सौभाग्य पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकेगी।

पंडित० - (मुँह बिचका कर) गोपाल चन्द्र जी ! सड़क चलते धर्म बनने लगे तो पाप, कमज़ोरी, असाधना और अज्ञान की नींव पर छोटे छोटे मन के लोग-बाग ऐसे ऐसे धर्म बना डालेंगे जो पुण्य-भावना को केवल स्वार्थ साधन तक ही सीमित कर देंगे।

गोपाल०—होने दो, महाराज ! वही होने दो। भूख-भूख चिल्ला कर मरजाने वाले हमारे देश के निवासियों को एक बार अपने अपने जीवन-स्वार्थ के प्रति ही सजग हो जाने दो। देश सैकड़ों साल प्रवंचना और गुलामी के पंजों में तड़पा है जिसके कारण हमारी इन्सानियत भी सिकुड़ कर छोटी से छोटी होती गई है। तुम्हारा धर्म क्या एक बार भी उनको आज़ाद और पेट भर खाते-पीते देखना गवारा नहीं करेगा !

पं०—भूख और सुख की चाह की सीमा तो है नहीं, गोपाल जी ! आदमी को भटकाने वाली इच्छाओं को धर्म ने कहानी के भूत की तरह लोटे में बन्द कर रखा है। रोते-झींखते हो, या हँसते-गाते हो, मौत एक दिन

हमारे खेलों को ख़तम कर ही देती है। इसलिए पाशव-वृत्तियों को भस्मासुर की तरह वरदान मत दो।

गोपाल० -तुम्हारे धर्म की इसी धारणा के कारण नया धर्म बन रहा है, महाराज! कल्पित सुख एवं एक कल्पित लोक के लिए, दिगंध धर्म-भावना ने इस दुनिया में जीने और रहने का मज़ा ही स्वाद-हीन बना दिया। जिस महान सत्य को तुम नहीं मान पाते वह यही है कि आदमी का अविश्वास करने से संसार में ऐसी ही प्रथाएं चल जाती हैं जिनके डर से आदमी सदा कांपता रहता है। मगर आदमी के तन और मन तो सर्वथा निष्क्रिय होकर रहते नहीं, और न ऐसा होता है कि वे धर्म के द्वारा निर्दिष्ट पथ पर ही चलें। वे स्वतन्त्र और स्वाभाविक रूप से अपना काम करते ही जाते हैं। इसलिए धर्म के व्यवस्थापक! जरा धर्म को स्वीकृत करो। यह धर्म प्रेम, देशभक्ति और आदमियत की पवित्र भावनाओं ने बनाया है। यह धर्म पाप की आशंका से पीड़ित नहीं है, यह मानव पवित्रता की स्वीकृति से अनुप्राणित है। यह देवता की नहीं, इन्सान की तुष्टि और सेवा को महत्व देता है। यह नया धर्म आदमी और आदमी में भेद नहीं रखता, यह सारे आदमियों को एक साथ बैठने और एक साथ सोचने का निमन्त्रण देता है। इस धर्म को मानने वाले पाप की किसी काली छाया की आशंका से व्याकुल होकर मानव मन की सरल निश्छल धारा को टेढ़े आड़े रास्तों में मोड़ देने की तरकीबों पर ज़ोर नहीं देते। यह मज़हब इस विश्वास के साथ उठा है कि पापी कहे जाने वाले समाज के पुरुष प्रेम के पात्र हैं, घृणा और सज़ा के नहीं। परम्परागत धर्मों ने सारे देशों में साम्राज्यवादी तथा पूंजीवादी पद्धतियों से हाथ मिलाकर ग़रीब जनता को धर्म एवं पुण्य के क्षेत्र से निकाल बाहर कर दिया है। अतः पुण्य कृति के क्षेत्र को उलट कर नए धर्म के तत्ववेत्ता यह प्रचार करेंगे कि भूख पाप है, वंचित होना पाप है, ग़ुलामी पाप है, और आदमी के हक़ को भूल जाना पाप है। वे यह मानते हैं कि जिसको तुम्हारा धर्म पाप कहता है उसको उन ही तत्त्वों ने पैदा किया है जिनको तुम्हारे धर्म ने प्रश्रय दिया है। इनके ख़्याल से पाप पाप आदमी की पाशविक और स्वाभाविक वृत्ति नहीं है, बल्कि पाप करने पर आदमी मजबूर किया जाता है। आज स्वार्थों ने मुजरिमों और पापियों की सृष्टि की है।

पं०—गोपाल बाबू! इन भोले आदमियों को मत ठगो। इन लोगों को झूठ के माया-जाल में मत डालो, वर्ना ये किसी दिन भी उससे न उबर सकेंगे।

गोपाल—(किंचित क्रुद्ध होकर) इन भले आदमियों के भोलेपन पर ही धर्म का व्यवसाय पनपता आया है, पंडित जी! मगर नहीं, अब यह धोखा ज़्यादा दिन नहीं चलेगा। सत्य की जो निर्मल धारा तुम्हारे वितंडावाद में जाकर गुम जाती है, उसका ही उद्धार करके नया धर्म, उसके ही किनारे किनारे चलकर, सत्य का विकास करेगा।

पं० (आश्चर्य) सत्य का विकास!! गोपाल बाबू! तुम यह कहने की धृष्टता करते हो कि हमारे धर्म में असत्य है।

गोपाल—है, महाराज! है, बहुत सा असत्य है। उस व्यवस्था में सत्य के साथ झूठ को भी सच ही मान लेना पड़ता है। मगर जीवन का सत्य है प्रेम और आदमियत का दावा। वही तुम्हारे यहां स्वीकृत नहीं होता। इसलिए यह "नया धर्म" सरल सहज सत्य को सारे बन्धनों से मुक्त करके मानव-धर्म की बुनियाद डालेगा। बोलो—भारत-माता की जय!

पं०—तो ठीक है, गोपाल बाबू! नए धर्म का खूब प्रचार करके विलायती भ्रष्टाचार को देश में फैलाओ। और मन तो यह है कि हम उसको रोक ही कैसे सकते हैं!

गोपाल—विलायती भ्रष्टाचार के फैलने के ख़तरे से तो इन्कार नहीं किया जा सकता, पंडित जी! मगर क्या करें। एक बार तो यह भ्रष्टाचार कुछ दिनों के लिए फैल कर ही रहेगा।

पं०—कैसी बात करते हो भैया, जान-बूझ कर अंगारों से खेलने में तुमको डर नहीं लगता?

गोपाल—लगता है, मगर ज़िन्दगी का मज़ा जोखम में है; और आदमी में विश्वास रखने से अन्त में सब ठीक हो जाता है। हम करें क्या? आपकी संकीर्ण धर्म-भावना नई मानवीय आवश्यकताओं, राष्ट्र-धर्म एवं साहसिक जिज्ञासु वैज्ञानिक दृष्टि को प्रश्रय देती नहीं। हम लोगों में तत्त्व का शास्त्रीय ज्ञान थोड़ा बहुत है, मगर

तत्वों का उपयोग हम न जानते हैं, और न करते हैं। नई ज़रूरतें नया रास्ता खोजती ही हैं। अगर आप धर्म-भावना को विस्तार देकर नए तत्वों के नए उपयोग को उसमें ही स्थान देदें तो विश्व का उद्धार हो जाए। वर्ना जैसे यूरोप ने धर्म से उकता कर उसे दूर फेंक दिया, और जीवन की धर्म-हीन व्यवस्था बना डाली, वैसा ही करने को भारत-वासी भी मजबूर होंगे। महाराज ! मैं प्रार्थना करता हूं कि भारत की धर्म-जीवी व्यवस्था को धर्म-हीन मत बनने दो। संसार ने धर्म-हीन व्यवस्था से बड़ा नुक़सान उठाया, मगर व धर्माश्रित व्यवस्था नहीं बना सकते क्योंकि उनका धर्म खोटा और थोड़ी सी पूंजी का है। मगर भारत की संस्कृति राजनीति के साथ चल सकती है, उन दोनों को साथ साथ चलाने में वह ख़तरा नहीं है जिसने यूरोप के सैकड़ों सालों का इतिहास कलंकित बना डाला।

[एक अधेड़ अंग्रेज़ सार्जेन्ट का तेज़ी से सहसा प्रवेश। पीछे एक भारतीय सब-इन्स्पेक्टर। उपस्थित जन इन लोगों के यकायक इस प्रकार आने से सिट पिटाते हैं। कुछ लोग खिसकना चाहते हैं, मगर सार्जेन्ट उनको डांट देता है—'ख़बरदार, अगर एक भी आदमी बाहर गया तो हम गोली चला देगा।'

[सब लोग डर कर देखने लगते हैं, और डर-दुबक कर खड़े रह जाते हैं।]

सार्जेन्ट—(आगे बढ़कर) वेल ! टुम लोग क्या करटा है ?

गोपाल—माता की पूजा।

सार्जेन्ट—पूजा करटा है ? अच्छा इस मकान का मालिक कौन है ?

[डरता हुआ रामचन्द्र आगे आता है।

सार्जेन्ट—देखो ! यहां कोई एक फकीर आया है ?

राम—नहीं तो, सरकार !

सार्जेन्ट—झूट बोलटा है। हमको पटा चला है कि एक फकीर यहां आया ठा।

राम—हां, आए थे। मगर वह तो दस दिन हुए चले भी गए।

सार्जेन्ट—(आशा से) हाँ, हाँ, वही, जरा मोटा-सा, जादा नहीं, ठोड़ा मोटा। काला रंग, बड़ी आंखें...

राम—हां, सरकार !

सार्जेन्ट—यहां किसके यहां ठेरा था ? (रामचन्द्र गरदन हिलाता है।) ओह ! क्यों ठेराया तुमने ? कुछ दे गया है वह ?

राम०—वह साधु थे, साहब ! इसलिए...

सार्जेन्ट—(क्रोध में पैर पटक कर) डेम, वह साधू नहीं ठा, वह बदमाश ठा...हम इस घर की टलाशी लेगा। एस० आई० ! एस० आई०! टलाशी लो।

[सब भयभीत हो जाते हैं। गोपालचन्द्र हिम्मत बांध कर आगे बढ़ते हैं। सब इंस्पेक्टर मकान के अन्दर चले जाते हैं।]

गोपाल—क्या उन पर शुबहा है ?

सार्जेन्ट—(बेचैनी के साथ) हां, वह फरार मुल-ज़िम है। वह बाम्ब-पार्टी का आदमी है।

गोपाल—मगर, साहब ! वह तो बिल्कुल सीधा सादा आदमी था।

सार्जेन्ट—(अन्दर की तरफ़ मुँह करके) एस० आई० ! मिला कुछ ?

सब इंस्पेक्टर—(अन्दर ही से) कुछ नहीं है। इस घर में एक छोटा सा कमरा और है। उसमें क्या रक्खा है।

सार्जेन्ट—(अन्दर के उद्देश्य से) अच्छी टरह डेखो। अभी हम मोहल्ले का टलाशी लेना पड़ेगा।

सब०—(बाहर आकर) इससे अब क्या फ़ायदा ! रिपोर्ट तो कई दिन पहले उसके यहां आने की है। यह लोग भी कहते हैं कि दो दिन ठहर कर वह चला गया।

सार्जेन्ट—इस बीच में मूर्ति को गौर से देखता रहा है। सब इंस्पेक्टर के कथन पर विश्वास नहीं करता।]

यह मूरट टा डेखो।

गोपाल—(एस० आई० से) इंस्पेक्टर साहब ! यह हिन्दी तो समझते नहीं। इनको अंग्रेज़ी में समझा दीजिए कि......

सार्जेन्ट—(बात काटकर) मैं हिन्डी जानटा हूं। टुम संस्कृत बोलेगा टो भी हम समझेगा।

सब०—हाँ, साहब हिन्दी पढ़ लिख लेते हैं। (सार्जेन्ट से) मूर्ति को भला मैं कैसे छू सकता हूं ? यह लोग पूजा कर रहे हैं।

सार्जेन्ट—अच्छा इन्हीं से पूछो। यह लोग क्या

पूजा करता है ! कुम्हार के घर इन पढ़े लिखे आदमियों का इकट्ठा होना शक पैदा करता है ।

सब०—क्योंजी, यह कौन से देवता की मूर्ति है ?

गोपाल—यह माता की मूर्ति है ।

सार्जेन्ट—(शक की निगाहों से देखता हुआ) माटा ? नान्सेन्स ! एस० आई० ! उठाओ उस मूरट को।

सब लोग—न, न, साहब ! पूजा की मूर्ति छू लेने से अपमान होगा ।

पंडित०—(अत्यन्त विनीत मुद्रा से) नहीं, नहीं, धर्मावतार ! आपके छू लेने से भला मूर्ति कैसे अपवित्र होगी ! आपके चरणों की धूल पड़ने से यह स्थान पवित्र होगया ।

सार्जेण्ट—(घूर कर पण्डित को देखता हुआ) वल ! टुम कौन है ?

पंडित०—(विनीत गर्व से, आत्म-हीनता में गौरव का प्रदर्शन करने वाली बेशर्म हँसी हँसता हुआ, हाथ जोड़ कर) मैं पुजारी हूं, सरकार !

सार्जेन्ट—अच्छा, टुम पुजारी है ! टुम इसकी पूजा करटा है ? बोलो, यह मूरटी टुमको कहाँ से मिला ?

पंडित०—(फिटकार से गौरव का होश फिट पटाने लगता है) मैं...मैं...सरकार ! मैं... ।

सार्जेंट—(गुस्से में) मैं, मैं क्या करटा है ?

पंडित०—(चारों तरफ़ देखकर, गौरव को पुनः प्राप्त करने का प्रयास करता हुआ) मैं पुजारी हूँ, सरकार । मगर इन लोगों ने मुझको पूजा के लिए कभी नहीं बुलाया । (बदले की भावना के कारण, इन लोगों के विपत्ति में पड़ने और खुद शिकायत करने का मौक़ा पाने से, एक तरह की आराम की साँस लेता है ।)

सार्जेंट—झूट बोलता है । टुम बम्मन लोग बदमास है । उठाओ उस मूरटी को ।

(पंडित० एकदम से झपट कर मूर्ति की तरफ़ बढ़ता और बड़बड़ाता जाता है)—

इस मूरती में क्या रखा है, सरकार ! यह तो कोरा मिट्टी का ठीकरा है ।

सब०—(पंडित से) ठहरो ! (सार्जेंट से) यह ठीक न होगा । इससे बदअमनी फैलेगी ।

सार्जेंट—(अनसुनी करके) पुजारी ! उठा लाओ ।

गोपाल—(गरज कर) ठहर जाओ ।

(पंडित भयभीत होकर रुक जाता है)

सार्जेंट—(गुस्से से गोपाल की तरफ़ देखकर) टुम कौन है ?

गोपाल—मैं आदमी हूँ । मैं अपने सामने मूर्ति का अपमान न होने दूँगा ।

सार्जेंट—मैं टुमको गिरफ़्तार करटा हूँ । टुम सरकारी काम में दखल देता है । एस० आई० ! अरेस्ट करो !

सब०—(जैसे कुछ न समझ पाकर उसकी सूरत की तरफ़ देखता है)

[एक स्त्री का मकान के अन्दर से दाएँ ओर के दरवाज़े से, तेज़ी से प्रवेश । टूटे फटे कपड़े—कृश शरीर । इस शरीर पर कभी बहार आई भी—इसका पता नहीं चलता । तेज धूप से जलने वाली ऊसर भूमि की तरह अपनी व्यर्थता पर हाहाकार की अमिट छाप उसके पूरे बदन पर है ।]

स्त्री—(घबराई हुई—रामचन्द्र से) अरे ! इस मूर्ति के कारन क्यों साहब लोगों से बिगाड़ करते हो ! आख़िर इसमें धरा क्या है ? क्या तुमने इसकी परतिष्ठा की थी जो इसके छूने-उठाने से पाप लगने लगा ?

पंडित०—(गुञ्जाइश का संकेत पाकर बोल उठता है) वही तो मैं कहता हूँ । (सार्जेंट से) देखिए, साहब ! इसकी माँ भी कहती है कि मूर्ति को इन लोगों ने ज़बरदस्ती ही, धर्म के विरुद्ध, रख दिया है । मेरी प्रार्थना है, धर्मावतार ! (हाथ जोड़ता है) इन नीच ज़ातों का बहुत हौसला बढ़ गया है । अंग्रेज़ सरकार ने हमारे धर्म को अभय दान दिया है । इन लोगों का सिर तो कुचलना ही पड़ेगा सरकार, नहीं तो धर्म की हानि होगी ।

गोपाल०—तुम्हारा दम्भ सीमा को पार कर गया है, पंडित । तुम समझते हो कि तुम्हारे दो उलटे सीधे अक्षरों और अर्थ-हीन क्रिया-कलाप के बग़ैर ख़ुद भगवान भी पूजा पाने के अधिकारी नहीं हो सकते । देश की आत्मा के विरोधी तत्वों का सहारा पाकर जातीय उन्नति को बंधन में जकड़ने वाले धर्म-व्यापारी ! सामने से हट जाओ ।

[गोपाल चन्द्र की आग उगलने वाली आँखों से

पुजारी पहले तो भयभीत होता है मगर फौरन ही अपने पद के गौरव को प्रतिष्ठित करने का निश्चय करता है।]

पं०—यही पाप है। इसीका ही दंड तो भुगत रहे हो।

गोपाल०—(आगे बढ़ कर, हाथ पकड़ कर पंडित को अलग हटाता है) मानता हूं, हमने पाप ज़रूर किया। भगवान ने बुद्धि दी थी उसको तुम्हारे हवाले कर दिया; और जब तुम्हारी ज्ञान ने अपनी बुद्धि और हमारी श्रद्धा का उपयोग धर्म को व्यवसाय बनाने में किया तब भी हमने न कुछ सोचा, न कुछ कहा। सो तुमने और हमने जो पाप किया, उसका फल अब नहीं भोगते रहना बल्कि उसका अब प्रायश्चित्त करना है। (गरज कर) हट जाओ।

सार्जेंट—(क्रोध-पूर्ण स्वर में) इसको गिरफ़्तार करो।

स्त्री—(बीच में माला उठती है अत्यंत भयभीत होकर) मेरे घर में बामन देवता को भला बुरा मत कहो।

सार्जेंट—हैम! चुप रहो। हम बामन-आमन कुछ नहीं समझता।

गोपाल—यह बेचारा ठीक ही तो कह रही है। आप लोगों को साधु के बारे में तफ़तीश करना है। आपने बेसबब उसके मकान की तलाशी लेकर घर का अपमान किया।

सब इं०—(आश्चर्य) अपमान! मेरे हिन्दू-भाई! यदि तुम अपमान की बात कहते तो कुछ ठीक भी होता मगर.......

गोपाल—अंग्रेज़ी राज में हिन्दुस्तानी आदमी का कोई मान नहीं रह गया। मगर जिस घर में गृहस्थ व्यक्ति शांति अशांति की सांसें लेकर, दुनियाँ की लथाड़ों से पनाह लेता है उसे भी राज्य की दृष्टि में मान्यता न मिलने से...

सब इं०—राज्य के क़ानून में...

गोपाल—क़ानून बनाते समय हमारी मंज़ूरी नहीं ली गई, इंस्पेक्टर साहब, मगर मेरी अक़्ल यह है कि राज्य धर्म बड़ी चीज़ है, जब वह राज्य-धर्म किसी के घर की चहार-दिवारी की प्राइवेसी को...

सार्जेंट—ओह! हम बहस करना नहीं माँगटा। एस-आई, ये लोग सीधा आदमी नहीं है। कैसा बाट करटा है।

गोपाल—सत्य से मुँह छिपा लेने से ही सत्य असत्य नहीं हो जाता, सार्जेंट बहादुर।

आदमियत की दो बातें कान में डाल लो। क्योंकि अगर तुम भारत में आदमी न बने रह सके, तो भी तुम्हारे अपने देश में वे ज़रूर काम में आएँगी। हमारी शिकायत है कि हमारे घर भी तुमसे नहीं बच सके। अपने घर में आ बैठने पर गृहस्थ की समस्त आपदाएँ मकान की छतों से टकरा कर बाहर ही गिर रहती हैं, और गृहस्थ भीषण आपद् विपद् में भी घर के देवता और पूर्वजों की गोद में, कुटुम्ब की छोटी सी स्वतंत्र हुकूमत में, अपने व्यक्तित्व को अनुभव करता है। मगर जीवन और सभ्यता को क़ायम रखने वाले घर के उसी वातावरण में शंका करके, और उसकी छिपी हुई मूर्त्तियों का अपमान करके, तुम गृहस्थ को अशांत बना देते हो।

सार्जेंट—(साश्चर्य, शंका से) छिपी मूरट...

गोपाल—घर के उस परदे में जो है, वह देखा नहीं जा सकता, अनुभव ही किया जा सकता है। मगर उसका अपमान कर देने से गृहस्थ का सब कुछ छिन जाता है, बाबू साहब!

सार्जेंट—(उतावला होकर हाथ का कोड़ा अपने ही पैर पर मार लेता है) ओह! एस. आई! जल्दी करो।

सब—(सविनय) ज़रा ठहर रए। एक बात और पूछ लूँ। (जिज्ञासु भाव से) बाबू साहब! आपने स्वयं अभी अभी इस ब्राह्मण का अपमान किया था। मगर जब सार्जेंट ने उसको डांटा तब आपने क्यों बुरा माना?

गोपाल—इसलिए, इंस्पेक्टर साहब, कि देश की सनातन परम्परा से हमारी रगों में यह विश्वास जम गया है कि ब्राह्मण सदा पूज्य और क्षम्य है। उसकी ग़लती को हम ही सुधारेंगे क्योंकि ब्राह्मण व्यक्ति नहीं, संस्था है। उसके प्रति जो भक्ति हमारे दिलों में है उस पर कठोर कुठार चोट मारने का अधिकार विदेशी को हम कभी नहीं दे सकते। तब हमें देखना यह होगा कि हमारी सभ्यता और आचरण सही हो या ग़लत हो, मगर जैसे भी वे हों और हमारी जाति द्वारा जिस रूप में

की माम्य हो उनके उसी रूप को आप कितना आदर, कितनी मान्यता देते हैं।

सब०—इससे...

गोपाल—(जल्दी से) इससे पता चलेगा कि आपकी दृष्टि में हम आदमी हैं या नहीं।

सार्जेंट—असहनशील होकर) एस आई.! उस मूरती को उठाओ।

गोपाल०—(मूर्ति के सामने खड़ा होकर दृढ़ स्वर में घोषणा करता है) मूर्ति को मैं नहीं छूने दूंगा।

सार्जेंट०—(क्रोध से) एस. आई. उसे धक्के मार कर हटा दो।

स्त्री०—(त्रस्त होकर) अरे इस मूरत के पीछे इतना बखेड़ा क्यों करते हो रे! ऐसी मूरत तो हमारे चके पर साल में हजारों ही बन जाती हैं, भैया जी! और यह कोई मूरती में मूरती है!

सार्जेंट— टो टुमहा ने उसका बना कर रखा है!

स्त्री—हां, सरकार! नहीं....वह मैं कहूं, बनाया तो किसी ने नहीं। रामचन्द दीवाली के लिए गूजरी बना बैठा था। महूरत की पहली ही गूजरी बिगड़ गई। उसकी टूट गई थी टाँग। यह खीझ कर उसे फेंकने लगा और बड़ बड़ाने लगा....

सार्जेंट—टुम्हारा किस्सा हम नहीं सुनना मांगटा—

सब०—सुनिये तो अभी उस साधु के बारे में बहुत सी बातों का पता चल जायगा।

[सार्जेंट चुप रह जाता है, मगर उसके चेहरे से पता चलता है कि वह संतुष्ट नहीं है।]

सब इंस्पेक्टर०—(स्त्री से) हाँ, तो आगे क्या हुआ?

स्त्री०—फिर क्या साहब! 'साल की पहली गूजरी ही बिगड़ गई, भगवान खैर कर, साल न मालूम कैसा गुजरे...' ऐसा ही कुछ कहते हुए यह उस मूर्ति को फेंकते ही थे कि साधु ने रोक दिया। वे बोले—'ठहर, ठहर रामचंद! भगवान ने साल की तुम्हारी पहली गूजरी को मंजूर कर लिया। देखो न वह डोरा न मालूम कहां से आकर कैसा इससे लिपट गया है। यह तो भारत-माता बन गई।'

सब०—ओह! तो यह भारत-माता इस तरह बनी! फिर तुमने पूजा शुरू कर दी, क्यों?

राम०—साहब! पूजा तो माता ने खुद ही करा ली। भला कौन अपनी माँ की पूजा न करेगा!

सार्जेंट—अबे बेवकूफ! उस साधू ने डेरे को धोखा दिया। चलो हटाओ उस मूर्ति को।

[भोला और रामचंद्र भी मूर्ति के सामने आड़ करके खड़े हो जाते हैं]

दोनों—माँ का अपमान न होने देंगे हम।

[सार्जेंट का शक बढ़ जाता है। वह दृढ़ स्वर में आदेश देता है।]

सार्जेंट०—एस. आई. उधर देखो, शायद उधर कोई चीज छिपा कर रखी हो।

सब०—(गोपाल से) जिद मत कीजिए, बाबू साहब। अगर उस मूर्ति के पीछे कुछ नहीं है तो देख लेने में आपको क्या आपत्ति हो सकती है।

गोपाल०—कुछ तो नहीं है, इंस्पेक्टर बाबू। मगर हमारा सब कुछ छीन कर भी क्या माँ की मूर्ति का अपमान किए बिना सरकार का काम चलेगा ही नहीं? (भावुक मुद्रा)

सब०—मां! (सोचने लगता है)

गोपाल०—(भाव तल्लीन स्वर में) भू पर पड़ते ही जिसकी छाती से लग जाने को बालक चोख उठता है, उस मा को अपमानित देखने से हम आदमी भी न रहेंगे। यह मा तो प्रतीक है....

प०—मां का बड़ा महत्व है, बाबू साहब! मगर इन्होंने माँ का अपमान तो नहीं किया।

माला—मा का मान भी तो नहीं किया। यह बेचारी भी खड़ी है। इसको आपके सार्जेंट ने डांट दिया; क्या देश की आजादी को और परम्परा को कायम रखने के लिए इसने अपना सर्वस्व इस लड़के रामचन्द पर निछावर नहीं कर दिया? अग्रेज इसे नहीं समझ सकता। उसके विश्वास में पिता को अधिक महत्व मिला है। मगर आप तो हिन्दू हैं। आप जानते हैं...

सब०—(यकायक किसी निश्चय पर पहुंच कर) तुम ठीक कहते हो। (सार्जेंट से) चलिए, चलें। यहां कुछ नहीं है। इन लोगों की पूजा-पाठ में बाधा देना ठीक नहीं।

सार्जेंट—यह ड्यूटी है, तुमको करना होगा।

सब०—मगर ड्यूटी में अकारण किसी के हृदय को चोट पहुँचाना शामिल नहीं है। और एक बात यह भी है कि अगर हिन्दुस्तानियों ने भगवान के नाम पर हम लोगों से घृणा करना सीख लिया तो...

पं०—धर्मावतार !

सब०—(डांट कर) धर्म के बिकता ! तुम चुप रहो, तुम उस बात को नहीं समझ सकते। (सार्जेंट से) आप हुक्म दें तो चलें।

सार्जेंट—(जिद करके, क्रोध में) जांच पूरी करनी होगी।

[चार सिपाहियों का प्रवेश। सार्जेंट उनकी तरफ़ मुड़कर पूछता है।]

कुछ पता चला ?

[रामसिंह नाम का एक सिपाही आगे बढ़ता है।]

रामसिंह—नहीं, साहब ! कुछ भी पता नहीं चला। सिर्फ यहां मालूम हुआ कि साधु यहां आया, इस घर में तीन दिन रहा और न मालूम कहाँ चला गया।

सार्जेंट—(डांट कर) चुप रहो, तुम हिन्दुस्तानी गदा है।

[रामसिंह और दूसरे सिपाही सिटपिटा जाते हैं।]

सब०—(किंचित् क्रोध से) हम हिन्दोस्तानी लोग गधे तो हैं ही, साहब ! इसीलिए तो अपने भाइयों में अविश्वास करते हैं, और पराई हुकूमत क़ायम रखना नमक-हलाली समझते हैं। पेट...

सार्जेंट—(कड़क कर) एस. आई० !

[एस. आई. चेतकर, केवल, मुँह देखता रह जाता है, और फिर अन्यत्र देखने लगता है। उसकी आंखों में गम्भीर विषाद झलकने लगा है।]

सार्जेंट—रामसिंह ! आगे बढ़ कर इस मूरट को उठाओ।

[रामसिंह असमञ्जस में पड़कर देखता है।]

सार्जेंट—(पैर पटक कर) मुँह क्या देखता है ! हुकम पूरा करो।

[रामसिंह आगे बढ़ने लगता है। एस. आई. हाथ के इशारे से उसे रोकता है।]

सब०—(सार्जेंट से) इतने लोगों के सामने हँसी उड़वाने से कोई फ़ायदा नहीं। मैं फिर आपसे कहता हूँ कि अगर इन लोगों ने भगवान के नाम से अंग्रेज़ सरकार से घृणा करना सीख लिया है तो मूर्ति क़ायम रहे या न रहे, वह घृणा का भाव दिन ब दिन ज़ोर पकड़ता ही जायगा।

सार्जेंट—(गुस्से से) इन सब की घृणा भी प्रतापी अंग्रेज़ी सरकार का कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी।

गोपाल—चालीस करोड़ जनता के देश ने, जिस भगवान के भरोसे, तुम्हारी सरकार के सारे अत्याचारों को सह कर चुप रहना सीखा था, अब उसी भगवान के नाम के साथ मिल कर चालीस करोड़ दिलों में विद्रोह पैदा होगा तब प्रतापी अंग्रेज़ सरकार हवा में किधर उड़ जाएगी इसका पता सिर्फ़ एक ही जगह लग सकेगा।

सार्जेंट—(उत्सुकता से, मगर अनजाने में, लगभग अनचाहे, ही मुँह से निकल जाता है) कहां ?

गोपाल—वह पता चलेगा उस चेतावनी में जो इस देश के वृद्ध, अपनी सन्तान को आख़िरी वसीयत के रूप में दे जाएँगे—'बेटा ! यदि संसार में मानव का नाम क़ायम रखना है तो एक बार काले साँप का भरोसा कर लेना, मगर इस गोरी अंग्रेज़ जाति का विश्वास मत करना। यह मानुस-भक्षी क़ौम है जिसने दुनियाँ की बहुत सी जातियों को खा डाला।

सार्जेंट—(सहसा क्रोध से उसका लाल मुँह और ज़्यादा लाल होकर बदरंग बन जाता है) टुम, टुम राजद्रोह की बात करटा है। [दृढ़ता के साथ एक क़दम आगे बढ़ कर, गोपाल उसको और अधिक क्रुद्ध एवं विस्मित बना देता है।]

गोपाल—तब उन सन्तानों के कानों में गूँजती रहेगी केवल एक कहानी—केवल एक दर्द कि सभ्यता की दावेदार एक जाति ने हमारे पूर्वजों को मनुष्यता के पद से गिरा कर सन्तोष नहीं किया, बल्कि उनके दिलों पर बारबार निर्मम चोटें भी कीं।

सब०—(सार्जेन्ट से सविनय) चलो, साहब ! यहाँ कुछ नहीं है।

सार्जेंट—(पहले सब इंस्पेक्टर को सशंकित दृष्टि से देखता, फिर भौंचक सिपाहियों पर निगाह डालकर)

तुमको मैं नौकरी से मुअत्तल करता हूं, और राज-द्रोह में गिरफ़्तार करता हूं।

[सब चौंकते हैं। सब इंस्पेक्टर अविचलित रहता है।]

सार्जेंट—(रामसिंह से) एस० आई० को गिरफ़्तार करो।

[दूसरे सब सिपाही चुप रह जाते हैं सिर्फ कमाल ख़ाँ आगे बढ़ता है। इससे सिपाहियों को जोश आता है। वे आगे बढ़कर कमाल ख़ाँ को रोकना चाहते हैं।]

सब०—न, न, भाइयो! सावधान, व्यर्थ रक्त-पात मत करो।

(सिपाही कुसमुसाते हैं) क्रोध तो आता ही है, मगर इस ज़लील क़ौम को अपने घर से भगाने के लिए हथियारों का प्रयोग हम नहीं करेंगे। इनके बच्चों को भी हम यह एक संसार की सब से अनोखी कहानी पढ़ने का मौक़ा देंगे कि जब हमारे ज़ुल्मों के नीचे कराहने वाले, हमारी सभ्यता और हमारा हविस के भार से भूखे मरने वाले भारत के ख़िलाफ़ बग़ावत की तब भी इस पवित्र देश की महान जाति ने पवित्रता का इस हद तक निर्वाह किया कि हमारे पापी ख़ून में हाथ रंग कर अपने को नापाक नहीं बनाया। यह कहानी अंग्रेज़ अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए विरासत में छोड़ जाएँगे।

[सार्जेन्ट कुछ खिसियाता जाता है।]

एक व्यक्ति—मगर बाबू साहब! बात जब पढ़ेंगी तब पढ़ेंगी मगर आज जो हो रहा है...

सब०—शांत, भाई, शांत! आज हमारा ग़ुस्सा करना ग़लत नहीं है, मगर जिस अनोखी अहिंसक असहयोग की नीति को अपना कर हमारी जाति ने महान गौरव का अर्जन किया है, उसके नष्ट न होने देने का लोभ भी कम नहीं है।

गोपाल—और हम हिंदोस्तानियों को बतला देना चाहता हूँ कि जिस भारत-वासियों को उन्होंने निर्बल और असहाय समझ लिया है उनके भगवान में बहुत बल है। सार्जेन्ट साहब! आपने पूछा था कि भगवान के नाम के साथ देश-प्रेम की आग के मिल जाने से क्या होगा। शायद आपको कोई इसका उत्तर न बन पड़े, इसलिए मुझसे सुनते जाइए। हम हिन्दू मूर्त्ति-पूजक हैं। हमारे यहां अवतार ही सब कुछ हैं क्योंकि उन्हीं के माध्यम से भगवान तक पहुँचने का हमें बल मिलता है। हमारे इन अवतार के साथ हमारी ऐहिक एवं पारलौकिक मुक्ति की आशा जुड़ी हुई है। मगर इन अवतारों में हर एक के साथ राक्षसों का नाश करने का इतिहास भी जुड़ा हुआ है। इसलिए जब कभी भी हिन्दुस्तान के निवासी वास्तविक धर्म को समझ सकेंगे तब उनको यह समझने में भी देर न लगेगी कि जिन राक्षसों को स्वयं भगवान ही समूल नष्ट कर देते हैं, उनके अत्याचारी राज्य को क़ायम रहने देना भी ख़ुद एक बहुत बड़ा पाप है। आप जानते होंगे कि यह हिन्दू जाति पाप और पुण्य से बहुत डरती है—चाहे उस डर के कारण उसको जीवन से ही इन्कार क्यों न कर देना पड़े। वह दिन शीघ्र आएगा जिस दिन धर्म के पाप पुण्य की मान्यता को देश और पेट से सम्बन्धित करके हम लोग सोचने लगेंगे। और जिस दिन उस तत्व को समझ लेंगे उस दिन....

सार्जेंट—समझ भी लेंगे तो करेंगे क्या?

गोपाल—जिस दिन समझ लेंगे वही दिन हमारा मुक्ति का निश्चित दिन होगा। हमारे यहाँ लगभग प्रत्येक घर में उन चित्र मिलेंगे जिनमें राक्षसों को भगवान की कोपाग्नि में भस्म होता दिखलाया होता है। जिस दिन राम और कृष्ण की जन्म-भूमि के निवासी धर्म की पाप पुण्य की मान्यता को देश और पेट और इन्सानियत से सम्बन्धित करके सोचना शुरू कर देंगे उसी दिन घर घर में लटकने वाली उन तस्वीरों में राक्षस के स्थान में उनको दिखने लगेगा अंग्रेज़! उस दिन हमारी उस घृणा को सँभालना तुम्हारी जाति की सरकार के लिए बहुत कठिन हो जायगा। उस धार्मिक जन के मन यह समझना कि तब उन के रूप को भगवान का इशारा और आदेश समझ कर भक्त लोग उन राक्षसों को क्षण भर में भून डालेंगे। मैं कहता हूं साहब! इस मूर्त्ति के लिए ज़िद मत करो।

सार्जेन्ट—तुम लोग ही क्यों ज़िद करता है?

गोपाल—जिस सिपाही को खटमल की तरह हाथ से मसल दिया जा सकता है वही हमारे देखते देखते इतना अत्याचार जो कर पाता है।

सार्जेन्ट—वह हुकूमत का काम चलाता है—बादशाह के नाम पर....

गोपाल—तब जो इन सब बादशाहों का भी बादशाह है उसके नाम से अगर हम मिट्टी के लौंदे जैसी बेक़ीमत चीज़ को ही आदर न दे सके तो उस अमूर्त और अदृश्य को अपने स्वार्थों की भाग दौड़ में कैसे याद रख सकेंगे।

सब०—साहब [illegible]। मैं साथ चल रहा हूं। मैं ख़ुद गिरफ़्तार हूँ।

सार्जेंट—([illegible] से आकर मूर्ति की तरफ़ बढ़ता है) मैं इसको [illegible]।

[सब इंस्पेक्टर, गोपालचन्द्र रामचन्द्र भोला वग़ैरा मूर्ति के सामने खड़े हो जाते हैं। पुलिस और सिपाही देखते रहते हैं। उनके चेहरे पर आशंका के भाव हैं।]

सब० ([illegible]) सार्जेंट!

[सार्जेंट [illegible] देता है। माँ चीख़ [illegible] भी चीख़ उठते हैं। कुछ लोग [illegible] हैं।]

सार्जेंट—([illegible]) [illegible]!

गोपाल—[illegible] हम सब कुछ झेलने को तैयार हैं।

सार्जेंट—तुम लोग ख़ून [illegible] है।

गोपाल—नहीं, सार्जेंट! हम ख़ून [illegible] करेंगे। तुम्हारी यूरोपीय सभ्यता और आकांक्षाएँ ख़ून ख़राबे पर पलती हैं, [illegible] वही प्रथा सारी दुनिया [illegible] पर छा गई है। [illegible] सामयिक रूप से विजयी और अनिवार्य समझ कर [illegible] बापू ने [illegible] हैं।

सार्जेंट—([illegible]) ओह! तुम बहुत बोलता है। हमको अपना काम करने दो।

गोपाल—दो शब्द और, सार्जेंट! तुम्हारी गोली सीने पर झेलने से पहले इन पण्डित जी को नए धर्म का एक ख़ास पहलू और बता दूँ। पण्डित जी! यह जो नया मज़हब हमारे मुल्क में फैल रहा है वह सारी दुनिया के पुराने और यूरोप में प्रचलित हाल के इस रिवाज को मिटा देना चाहता है कि मानव अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए दूसरों का ख़ून बहाए। हम को यह विश्वास हो गया है कि धरती पर जब आदमी दूसरों का ख़ून डालता है तब बर्बर सभ्यता पैदा होती है। इसलिए वातावरण को पवित्र बनाने और सुन्दर प्रथाओं को प्रचार देने के लिए आदमी को ख़ुद अपने ख़ून की भेंट देना चाहिए। मानव जब भी किसी प्रकार की उपलब्धि करना चाहे तब हो दोनों हाथों से उलीच कर अपना ख़ून देने में न हिचके। इससे हमारी आकांक्षाएँ, हमारे साधन, और हमारी उपलब्धि—बर्बरता से रहित होकर, [illegible] एवं कोमल होती जायगी, मानव-सभ्यता का राक्षसत्व तिरोहित हो जावेगा, और मानव-धर्म कर्म-शील बन जाएगा। तब धर्म वास्तव में पर-हित-चिंतन को प्रश्रय देगा। दर असल भौतिक सभ्यता के अप्रीतिकर अंश को मिटाने का इसके सिवाय दूसरा उपाय है ही नहीं!

सार्जेंट—हम तुम्हारा फ़िलासफ़ी नहीं सुनना मांगटा। सरकारी काम होकर रहेगा। (कड़क कर) हट जाओ सामने से, नहीं तो हम गोली चला देगा। एक...दो...

[गोपाल, भोला, रामचन्द्र, सब इंस्पेक्टर—चारों अविचलित खड़े रहते हैं।]

सार्जेंट—एक दो...तीन।

गोली चलती है। सब इंस्पेक्टर सहसा आगे बढ़कर उसे अपने सीने पर झेल लेता है। और गिर पड़ता है, लोगों में भगदड़ मच जाती है, कई व्यक्ति भाग खड़े होते हैं गोपाल, रामचन्द्र, और रामचन्द्र की माँ सब-इंस्पेक्टर के ऊपर झुकते हैं। सहसा सब इंस्पेक्टर सब को आश्चर्य-चकित करता हुआ कुहनी के बल थोड़ा सा उठता है। सब उसके मुँह की तरफ़ देखते हैं।]

सब० (गोपाल चन्द्र से) भाई मेरे! अपने इस अधम देश-वासी के ख़ून की एक बूंद माता के चरणों में चढ़ाकर प्रार्थना कर देना कि— माँ! हमारे महान देश के वासियों के धर्म और पुण्य के भाव... ...और सब कुछ छोड़कर...विलास-रत देवताओं का परित्याग करके...तुम्हारे...ही...चरणों में निवेदित हो जाएँ...ऐसा वरदान दो...माँ! (गिर पड़ता, और दम तोड़ देता है)

[गोपाल चन्द्र सब इंस्पेक्टर के रक्त की एक बूंद से माता का अभिषेक करता है] (पटाक्षेप)

— —

अब विपदा की रात कट गई
दुखिया की ठण्डी कुटिया में,
आज जलेगा चूल्हा।
भूरी क्षितिज झोपड़ी की पर्वतघाटी में
दहक रही है आग,
दूर के जंगल सुलगे लाल लाल
उठ रहा धुएँ का सा कुहरा!
हो ठिठुरे वन के आरपार,
हिमगिरि की कड़ी चढाई से
टकराती बर्फ़ीली आँधी,
है फूँक रही हिम से गीली लकड़ियाँ,
गगन से चितकबरे—
आधे काले, आधे उजले,
खिचड़ी बालों वाली बुढ़िया॥
लो, लगा धधकने अब चूल्हा
चिट् चिट चिटखीं लकड़ियाँ
चहकतीं चिड़ियाँ, जैसे सुबह सुबह
लो, उतरी उनकी गरम गरम
ललछौंर दमक मैदानों में,
इक सोंधी सोंधी महक उठी
पक रहे सुनहले, गेहूँ जौ,
सिंक रहे धूप में खड़े खेत,
हैं बहुत जने भूखे जग में॥
खलिहानों से आते आते,
कुछ सोच एक क्षण ठिठक गया;
हँसिया की पकड़ हुई ढीली,
खेतिहर की छाती फूल उठी।

———

एक मध्यकालीन मुसलिम सन्त की डायरी

मिरज़ा ग़ुलाम ग़ौस

(१)

एक दिन कहने लगे कि मोहम्मद साहब की आदत थी कि जब किसी लड़ाई पर जाते तो अपने अनुयाइयों में से दो दो के बीच दीनी भाई चारा क़ायम कर देते। फिर उनमें से एक को अपने साथ लड़ाई पर ले जाते और दूसरे को घर पर छोड़ जाते ताकि वह पीछे रहकर अपने और अपने दीनी भाई दोनों के बाल बच्चों की परवरिश करे। एक बार वह तबूक की लड़ाई में जा रहे थे। अपने दो अनुयाइयों, सालबा और सईद में भाई चारा कर दिया। सईद लड़ाई में गया। सालबा को घर में छोड़ा। एक दिन सालबा के चित्त में कुछ पाप आया। वह बुरे इरादे से अपने भाई सईद के घर में गया। सईद की पतिव्रता स्त्री ने कहा ऐ सालबा! तुझे क्या हो गया? तू ख़ुदा और रसूल से शर्म नहीं करता कि अपने भाई के घर में जो रसूल के साथ लड़ाई पर गया हुआ है नापाक इरादे से आया? ख़ुदा और रसूल को तू क्या जवाब देगा? इतनी बात सुनते ही सालबा के चित्त पर गहरा असर हुआ। वह एक चीख़ मार कर वहाँ से निकला और तुरन्त रोता हुआ जंगल की ओर चला गया।

मोहम्मद साहब लड़ाई से लौटे। अरब में यह रिवाज था कि जब कोई गिरोह तिजारत करके या लड़ाई जीत कर लौटता था तो उन लोगों के मित्र और सम्बन्धी उनका स्वागत करने के लिए आबादी से बाहर आते थे और नारे लगाते हुए हर्ष के साथ उन्हें आबादी में ले जाते थे। सब लोगों के साथी सम्बन्धी आए। लेकिन सालबा सईद को लेने न आया। सईद को बड़ा चिन्ता हुई। घर पहुंच कर उसने अपनी पत्नी से पूछा। पत्नी ने सारा क़िस्सा कह सुनाया। सईद को सुनकर बड़ा दुख हुआ। अपने धर्म भाई की खोज में वह जंगल की ओर निकला। ढूँढ़ते ढूँढ़ते उसने देखा कि एक निर्जन स्थान में सालबा चिल्ला कर रो रहा है और पागल की तरह फिरता है। सईद ने कहा भाई सालबा! शान्त हो कर रसूल के पास चलो वह तुम्हारा अपराध क्षमा कर देंगे।" सालबा ने कहा कि अच्छा मेरे हाथ बाँध कर और गरदन में रस्सी डाल कर ले चल। सईद उसे इसी तरह से मदीने में लाया। वह सब से पहले हज़रत अबूबक्र के पास गया, फिर हज़रत उमर के पास गया, फिर हज़रत उसमान के पास और फिर हज़रत अली के। एक दूसरे के पश्चात् इन चारों से सालबा ने रोकर पूछा कि क्या मेरा पाप किसी तरह क्षमा हो सकता है? चारों ने यही उत्तर दिया कि तुमने बहुत बड़ा गुनाह किया है तुम हमारे सामने से चले जाओ। ऐसा न हो कि तुम्हारे कारण हम पर भी कोई आपत्ति आ जाय। अन्त में वह मोहम्मद साहब के सामने रोता हुआ पहुंचा। अपना सारा हाल बयान किया। मोहम्मद साहब ने भी यही उत्तर दिया कि तेरे लिये कोई सूरत माफ़ी की नहीं है, ऐ पापी! तू इस नगर से बाहर हो जा नहीं तो तेरे पाप के कारण इस नगर पर आपत्ति आने का डर है। अन्त में चारों ओर से निराश होकर सालबा ने फिर जंगल की राह ली और रो रोकर और चीख़ चीख़ कर ईश्वर से फ़रियाद करनी शुरू की। जब उसका दर्द हद से बढ़ गया और सिवाय ख़ुदा के किसी का सहारा न रहा तो ईश्वर की दया का भंडार उमड़ा। मोहम्मद साहब के ऊपर एक आयत उतरी जिसका अभिप्राय यह है कि जिस किसी से कोई बड़ा पाप हो जाय वह यदि सच्चे जी से उस पर पश्चात्ताप करे, ईश्वर के सामने रोवे और उस पाप को फिर कभी न दोहराने की दृढ़ प्रतिज्ञा करे तो फिर वह ईश्वर की दया पर भरोसा कर सकता है। मोहम्मद साहब ने हज़रत अली और हज़रत सलमान फ़ारसी को भेजा कि सालबा अमुक वृक्ष के नीचे रात के समय फ़रियाद किया करता है, उसे वहाँ से ढूँढ़ लाओ। दोनों उसकी खोज में निकले और सालबा को शुभसमाचार देकर उसे लाकर मोहम्मद साहब की ख़िदमत में पेश किया। जिस समय सालबा सामने आया मोहम्मद साहब और उसके साथी रात को नमाज़ पढ़ रहे थे। क़ुरान की कुछ आयतें पढ़ी जा रही थीं। इन आयतों को सुनते ही सालबा ने फिर एक चीख़ मारी और तुरन्त बेहोश हो गया और देखते देखते मर गया। मोहम्मद साहब ने स्वयं उसके बाल बच्चों को सान्त्वना दी और उसके बाल बच्चों के साथ गए।

(२)

एक दिन कहने लगे कि अबू बक्र शिबली (इसलाम के एक प्रसिद्ध सन्त) की सेवा में दो मनुष्य दीक्षा लेने

के उद्देश से उपस्थित हुए। शिबली ने उनमें से एक से कहा कहो—'ला इलाह इलल्लाह शिबली रसूलल्लाह'। उसने कहा अजी लाहौल वला कूवत इल्ला बिल्लाह*। शिबली ने भी लाहौल वलाकूवत इल्ला बिल्लाह कहा। उसने पूछा कि आपने लाहौल क्यों पढ़ा? आपने पूछा कि तुमने क्यों पढ़ा? वह बोला कि मैंने तो इसलिए पढ़ा कि ऐसे बेधरम आदमी के पास दीक्षा लेने आया। आपने कहा कि हमने इसलिए पढ़ा कि ऐसे जाहिल के सामने भेद की बात कह दी। इसके पश्चात दूसरे मनुष्य को बुलाया और वही कहा कि कहो ला इलाह इलल्लाह शिबली रसूलल्लाह। उसने उत्तर दिया कि हज़रत मैं तो आपको कुछ और ही समझ कर आया था आपतो इधर ही गिर पड़े। रसूल होने पर ही सन्तुष्ट होगए। शिबली ने हँस कर कहा कि अच्छा तुम्हें उपदेश देंगे। अर्थात हर मनुष्य की समझ और उसकी हिम्मत अलग अलग होती है नहीं तो बात एकही थी जो एक के दिल में न समाई और उसने इनकार किया दूसरे की हिम्मत इस बात से भी उच्चतर थी।

(३)

एक दिन यह शेर ख्वाजा नक्शबन्द का सुनाया—

अव्वले मा आख़िरे हर मुन्तहा,
आख़िरे मा जेबे तमन्ना तेही।

अर्थात् हमारा जो प्रारम्भ है वह दूसरे हर पथिक का अन्त है और हमारा जो अन्त है वहां जाकर सब इच्छाओं का लोप हो जाता है। मैंने यह शेर सुनकर कहा कि यह तो ख्वाजा नक्शबन्द ने ऐसा प्रतीत होता है कि आपही के लिए पेशीन गोई की है। क्योंकि यहां जिज्ञासु को प्रारम्भ ही से अद्वैत की शिक्षा दी जाती है। फिर आगे सिवाय जेबे तमन्ना तेही के और रह ही क्या जाता है। जो समस्त पन्थ और योग का केन्द्र और जो उसका अन्त है वह यहाँ का प्रारम्भ है। यह सुनकर कहने लगे कि हमें एक बात याद आई। एक बार हम पीराने कलियर में मख़दूम साहब के मज़ार पर ठहरे हुए थे। शाम की नमाज़ का समय आया कुछ आदमी जमा हो गये। अकस्मात् एक जुलाहा वहाँ बड़ा सा साफ़ा बाँधे खड़ा था। एक ख़ाँ साहब ने उसे इमाम बनाकर नमाज़ पढ़ाने के लिए आगे खड़ा कर दिया। जुलाहा घबरा गया। उसके होश हवास कुछ ऐसे बिगड़े कि बिला फ़ातिहा* पढ़े उसने खड़े होते ही कुलो वल्लाह† शुरू कर दी। पठान को तो क्रोध आया ही। पंक्ति तोड़ कर बोला कि—अबे जुलाहे, कुलोवल्लाह तो तूने पहले ही पढ़ दी अब आगे क्या अपनी ऐसी तैसी ज़ुमा करेगा।

जब प्रारम्भ ही से अद्वैत की शिक्षा दी जाती है तो अब आगे यहाँ क्या धरा है जिसे जिज्ञासु तय करें। न कोई मंज़िल है न मुक़ाम, न मोजज़े न करामात, न सूद न सिद्ध, न ज़िक्र न फ़िक्र। बस अद्वैत है या तल्लीनता। यद्यपि बिलकुल प्रारम्भ के जिज्ञासु के लिए अद्वैत विष है किन्तु इसमें तो और सब बखेड़ा मालूम होता है और जो कुछ हम अपने लिए पसन्द नहीं करते वह दूसरे के लिए कैसे पसन्द कर सकते हैं। लक्ष्य तो प्रत्येक जिज्ञासु का चाहे वह प्रारम्भिक अवस्था में हो या चाहे अन्तिम अवस्था में तखल्लक़ू बि अख़लाक़िल्लाह (क़ुरान) अर्थात् पाक करना अपने दिल को सिवाय परमात्मा के शेष सब पदार्थों से है। फिर इस बात की क्या आवश्यकता है कि पीठ के पीछे से हाथ घुमाकर नाक पकड़ा जाय। सीधा ही नाक पर हाथ क्यों न रक्खा जाय। अद्वैत का स्थान सूफ़ियों की परिभाषा में दहे वीरान अर्थात् उजाड़ गाँव कहलाता है। मौलाना रूम कहते हैं—आशिक़ां रा हर नफ़स सोज़ीदन नीस्त, बर दहे वीरां ख़िराजो उश्र नीस्त।

आर्थात्-भक्त का काम प्रतिक्षण अपने को जलाना है। उजड़े हुए गाँव के ऊपर किसी राजा का टैक्स नहीं लगता।

कोई बिरला ही यात्री होता है जो उजड़े गाँव में जाकर ठहरे नहीं तो यहाँ किसका जी लगता है। अपने अपने समय पर सब सन्तों को अद्वैत की स्थिति में

---

* मुसलमानों में जब कोई नास्तिकता की या धर्म विरुद्ध बात कही जाती है तो इस वाक्य का उच्चारण करते हैं।

* क़ुरान की एक आयत जो नमाज़ के शुरू में पढ़ी जाती है।

† क़ुरान का एक सूरा जो नमाज़ के अन्त में पढ़ा जाता है।

निकलना पड़ता है। किन्तु ऐसे बहुत कम हैं जिन्होंने यहाँ ही झोपड़ी डाल दी हो।

सबसे बेगाना[1] है ऐ यार यगाना[2] तेरा,
दूर पर आंख न डाले कभी शैदा तेरा।

(४)

एक दिन कहने लगे कि फ़क़ीरों में सत्संग का बड़ा प्रभाव है और ईश्वर भक्तों ने इसी को महत्व दिया है।

एक ज़माने सोहबते बा औलिया,
बेहतर अज़ सद् साला ताअत बेरिया।

अर्थात्—थोड़ी देर के लिए भी साधु की संगत सौ वर्ष तक निष्कपट ईश्वर बन्दना से बेहतर है। जो बातें बचपन से दिल में समाई हैं वह कानों की राह से आई हैं और कानों की राह से निकलेंगी—

अब भागत भागत भागे,
रंग लागत लागत लागे।
बहुत दिनों का सोया मनुआ,
जागत जागत जागे।

अर्थात् अन्धविश्वासों को दूर करने और शंसयों को मिटाने के लिए एक समय चाहिए। आयु भर का मैल एक दिन की क्रिया या जप से कैसे दूर हो सकता है? शिष्य का सारी आयु का ज्ञान मिटाना और उसकी जगह अपने ज्ञान को जमाना कोई हथेली की सरसों नहीं है। हां, धीरे धीरे बहुत दिनों के सतसंग से हालत अच्छी तरह सुधर सकती है। उपदेश की विधि दरजे ब दरजे है। जिस प्रकार लोहार लोहे को गरम करता है फिर चोट लगाकर बढ़ाता है या सुनार धीरे धीरे कूट पीट कर तार को बार बार जन्त्री में निकालता है तब वह ठीक होकर तय्यार होता है। यदि बेढङ्गे तौर पर ज़ोर लगावें तो चीज़ तुरन्त टूट फूट कर ख़राब हो जावे। इसलिए हर काम में धीरज की आवश्यकता है।

(५)

एक दिन कहने लगे कि हज़रत यूसुफ का एक लंगोटिया मित्र था। वह कनान से मिश्र में आया। हज़रत यूसुफ़ से भेंट हुई। उन्होंने पूछा यार, हमारे लिए क्या तोहफ़ा लाए हो? उसने जवाब दिया कि हज़रत आपके योग्य तो कोई वस्तु मुझे नहीं मिली कि भेंट करता किन्तु आपकी भेंट के लिए आप ही को लाया हूं। यह कहकर एक आइना उनके सामने पेश किया। इसी तरह परमात्मा मुक्ति के पश्चात हर एक से भेंट मांगेगा। जो मनुष्य तलहीकल क़ल्ब अल्मासिवल्लाह का आइना यानी दुई के ज़ंग से साफ़ हुआ हृदय पेश करेगा वही ईश्वर का प्यारा होगा। नहीं तो लज्जित होना पड़ेगा। क़ुरान मजीद की एक आयत है कि उस दिन न माल काम आएगा और न औलाद केवल एक चीज़ काम आवेगी अर्थात शुद्ध हृदय।

हृदय ऐसा चाहिए जिसमे परमात्मा की ज्योति इस प्रकार उदय हो जिस प्रकार पूर्व से सूर्य उदय होता है। जिसमें से ब्रह्म विद्या के रहस्य आप ही आप इस तरह से निकलें जिस तरह स्रोत से जल। वास्तव में हृदय ही जमशेद का वह प्याला है जिसके अन्दर हर तरह की कमी और ज़्यादती साफ दिखाई दे जाती है। हृदय वह शीशा है जिसके अन्दर परमात्मा का मुखड़ा देखा जा सकता है। शुद्ध हृदय के अन्दर ही परमात्मा आकर दर्शन देते हैं। योगी के लिए हृदय ही ईश्वर का सिंहासन है। समस्त विश्व एक शरीर है और हृदय उसके अन्दर आत्मा है। हृदय सृष्टिकर्ता की समता का स्थान है। जिस हृदय के अन्दर अहंकार और बनावट हो वह हृदय ही नहीं।

(६)

एक दिन कहने लगे संयम और तप बड़ी आवश्यक चीज़ें हैं। देखो जब कहरुबा* की ताक़त कमज़ोर पड़ जाती है तो रगड़ने से फिर तेज़ हो जाती है। इसी तरह जिज्ञासु का हृदय संयम और तपस्या से तरो ताज़ा रहता है।

(७)

एक रोज़ कहने लगे कि हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया ने शाह शरफ़उद्दीन बूअली क़लन्दर पानीपती की सेवा में यह प्रश्न लिख कर भेजा—

मन के हेच बिन हेच बिन हज़ारां हज़ार हेच मन ख़ुदरा हेच मी पिन्दारम व हक़ मी फ़रमाएद कि मन

1 विरक्त 2 प्रेमी

* एक पीले रंग का पत्थर जिसे चमड़े या रेशम पर रगड़ने से वह घास के तिनके को दूर से अपनी तरफ़ खींच लेता है।

दर तोअम व शरीअत मी गोयद कि अदब कुन। पस जवाब ई हर कलमा क़ज़मी फरमाएन्द।

अर्थात्—मैं अपने को अत्यन्त तुच्छ पूर्वजों की सन्तति और स्वयं तुच्छातितुच्छ समझता हूँ, ख़ुदा कहता है कि मैं तेरे अन्दर हूँ और शरीयत कहती है कि अदब कर।

इसलिए इन तीनों बातों का जवाब लिख भेजिए। क़लन्दर साहब ने जवाब में यह रुबाई लिखकर भेजी—

असरारे अज़लरा न तू दानी व नमन, ईं हर्फ़े मुअम्मा न तू ख़्वानी व नमन। हस्त अज़ पसे परदा गुफ्तगूए मनोतू, चूं परदा बार उफ़्तद न तू मानी व नमन।

अर्थात्—सृष्टि के रहस्यों को न तुम जानते हो और न मैं। इस समस्या को न तुम हल कर सकते हो और न मैं। मैं और तू की यह सारी बात चीत एक परदे के पीछे से हो रही है। जब वह परदा उठ जायगा तो न कोई तू रहेगा और न कोई मैं।

(८)

एक दिन बादशाह महमूद ग़ज़नी हज़रत अबुल-हसन ख़रक़ानी * से मिलने के लिए ख़रक़ान पहुँचा। पहले उनके पास संदेश भेजा कि मैं आपके दर्शनों के लिये ग़ज़नी से यहाँ तक आया। आप अपने ख़ानक़ाह से मेरे डेरे तक तशरीफ़ लाइये और सन्देश वाहक को सिखा दिया कि यदि वह इनकार करें तो क़ुरान की एक आयत पढ़ कर सुना देना जिसका अर्थ यह है 'आज्ञा पालन करो अल्लाह की और रसूल की और हाकिम की जो तुममें से हो।' ख़रक़ानी ने आने जाने से माफ़ी चाही। सन्देश वाहक ने वही आयत पढ़ी। ख़रक़ानी ने उत्तर दिया कि अल्लाह ही की आज्ञा पालन में मैं इतना ज़्यादा डूबा हुआ हूँ कि रसूल की आज्ञा पालन की तरफ़ से शर्मसार हूँ, फिर हाकिम की आज्ञा पालन तक तो नौबत ही नहीं पहुँच सकती। सन्देशवाहक ने आकर महमूद को यह जवाब सुना दिया। महमूद ने अपने कपड़े एक ग़ुलाम अयाज़ को पहना कर उसे बादशाह बनाया और दस बाँदियों को मरदाना लिबास पहना कर ग़ुलाम बनाया और स्वयं हथियार बाँधकर उसकी अरदली में चला। सन्त की कुटिया तक पहुँचा। अबुल हसन ने उसका कोई आदर सत्कार न किया। महमूद ने कहा कि आपने बादशाह का कुछ आदर न किया। उत्तर दिया कि तुमने जाल लगाया। महमूद क्षमा माँग कर बोला कि कुछ उपदेश दीजिये। कहा इन लोगों को बाहर करदो। फिर महमूद ने आशिर्वाद की प्रार्थना की और एक थैली अशर्फ़ियों की भेंट की। आपने एक सूखी रोटी जौ की निकाल कर महमूद के सामने रख दी। महमूद ने शरमा शरमी खाई किन्तु ग्रास गले में अटकता था। अबुल हसन ने कहा कि ऐसे ही तुम्हारी अशर्फ़ियाँ हमारे हलक़ से नहीं उतरेंगी। बस उठाओ, हम इन्हे तलाक़ दे चुके हैं। इसके पश्चात् थोड़ी देर तक बातचीत हुई। जब महमूद चलने लगा तो उसके आदर के लिए अबुल हसन खड़े होगए। महमूद ने पूछा कि आते वक़्त कुछ न था तो अब जाते वक़्त आदर कैसा? अबुल हसन ने उत्तर दिया कि ऐ महमूद, तू बादशाही के घमंड में हमारी परीक्षा लेने आया था, किन्तु अब तू फ़क़ीरी और नम्रता की दौलत लेकर चला है। इसलिए मैं तेरी बादशाही के सम्मान के लिए नहीं उठा बल्कि फ़क़ीरी के आदर के वास्ते खड़ा हुआ हूं।

(९)

एक दिन कहने लगे कि अरे मियां, एक दिन शेख़ करीमुद्दीन दहरिया ने तो बड़ा ही ग़ज़ब किया था। यदि दरगाह के मुजाविर लोग देख पाते तो मार ही डालते। बात यह थी कि हम पीराने कलियर में ठहरे हुए थे। करीमुद्दीन हमारे पास आया और कहने लगा कि मरदे आदमी, तू सदा बुतपरस्ती और कबर परस्ती ही में लगा रहा, कभी अल्लाह के तरफ़ ध्यान न दिया। आ मैं तुझे एक तमाशा दिखाऊं। देखूं तेरा ख़ुदा जिस पर तू इतना भरोसा किये बैठा है मेरा क्या करेगा। यह कह कर उस कमबख़्त शोहदे ने हज़रत मख़दूम अलाउद्दीन के मज़ार पर झट पेशाब कर दिया। मैंने उसे बहुतेरा ललकारा उसने एक न मानी। आख़िर मार पीट कर उसे बाहर निकाल दिया और छः सात घड़े पानी से क़ब्र को धो दिया। मुजाविरों ने आकर पूछा तो मैंने केवल इस विचार से कि बेचारा मारा जायगा उनसे कह दिया कि एक बन्दर ने पेशाब कर दिया था। और बात रफ़े दफ़े हो गई। करीमुद्दीन मुझसे फिर मिला

* ख़रक़ान के रहने वाले एक प्रसिद्ध मुसलिम सन्त।

और कहने लगा कि मैं तुझे अल्लाह की तरफ़ मोड़ता हूँ, देखले यह सब मिट्टी के ढेर हैं। इनसे कुछ भला बुरा नहीं हो सकता। किन्तु वह करीमुद्दीन दहरिया बड़ा पक्का और तजरुबेकार आदमी था और किसी का एतक़ाद नहीं रखता था। यदि उसके अपने दिल में कोई डर होता है तो वही प्रकट होकर दण्ड के रूप में उसके सामने आ जाता।

ताके बख़ियारते मक़ाबिर,
उमरे गुज़रानि ऐ फ़सुर्दह।
यक गुरबे ज़िन्दा पेशे आरिफ़,
बेहतर ज़ा हज़ार शेर मुर्दह।

अर्थात्—ऐ किंकर्तव्य विमूढ़ तू कब तक कब्रों की पूजा में अपनी आयु नष्ट करता रहेगा? ज्ञानवान मनुष्य के सामने एक जीवित बिल्ली हज़ार मरे हुए शेरों से अच्छी है।

(१०)

एक दिन कहने लगे कि कबीर साहब एक दिन अपना ताना संवार रहे थे। किसी आदमी ने पूंछा महाराज, क्या करते हो? उत्तर दिया कि इधर से तोड़ता हूं और उधर जोड़ता हूँ। फिर पूछा कि यह आपके सर पर क्या है? कहा कि कूच।

सच यह है कि जब तक मनुष्य के सर पर कूच सवार नहीं होता इधर से तोड़ना और उधर जोड़ना अत्यन्त कठिन है।

किसान

श्री देवनाथ पाण्डेय 'रसाल' बी० ए०, एल-एल० बी०

उड़ रही खेत से स्वर्ण-राशि जो लुटा गया सबः किसान!
झुक ज्वार-बाजरे की बाली गाती किसान मेरा महान्!!
सचमुच महान्!
जिसने बालों के गुच्छों से ताना विशाल मञ्जुल वितान!!
वह पौधों का जीवन-दाता वह पौधों का उद्भव कारण।
वह निखिल सृष्टि का परित्राता जो करता जग का उदर-भरण॥
वह बीज कि जिससे सृष्टि बीज का होता रहता है पोषण।
वह बीज कि जिससे यज्ञ-होम चलते पृथ्वी पर हैं प्रतिक्षण॥
जिनके धूओं के सजल मेघ से भरा हुआ विस्तृत अम्बर।
पानी की जिसकी सुधा-धार से बरस आ रही खुशी नजर॥
उस एक बीज का वह कारण उस एक बीज का वह पोषक।
जिससे असंख्य जग-बीज पल रहे उसी बीज का वह रक्षक॥
जग-दुख का काटे तिमिर पाश आता किसान स्वर्णिम विहान!
जिसके प्रकाश में हँस उठता सारा जहान औ आसमान!!१!!

वह बड़े सवेरे निकल पड़ा ले बैलों को हल कांधे पर।
गमछा में चना - चबेना ले औ' फटा दुपट्टा बाँधे सर ॥
आ गया खेत चल पड़े बैल हल लगे बनाने रेख - चित्र।
क्या चित्रकार की कला श्रेष्ठ पा सकती इसको है विचित्र ॥
जिसमें जीवन का मूलतत्व जिसमें जग - जीवन का प्रवाह।
पौधों में, फूलों - दानों में हँस - हँस हिलोर लेता अथाह ॥
इतने में नभ से झुक आई ले कड़ी धूप रे दोपहरी।
पर आँखें शीतल हुईं देख रधिया की कुछ उड़ती चूनरी ॥
रोटी - गुड़ - लोटे का पानी रख दिया, हो उठा खुश किसान !
नयनों की बाँकी चितवन पर डोला हलवाहे का जहान ॥२॥
क्या बात कि चूनर - चितवन यह पल में हलवाहे ने जानी।
बोला न नयन से कह डाला, रह गई खुली मुख में वाणी ॥
नत नयन - बान हो गए स्वयं चल पड़ी झूम रधिया रानी।
हँसकर किसान ने प्रेम भरी कुछ तान अलापी मस्तानी ॥
फिर देरी तक रह गया देखता यौवन का चढ़ता पानी।
जिसके अंगों पर अल्हड़ता हँस खेल रही थी मनमानी
फिर लगा योग में कर्मव्रती अधरों पर मधुमय लिये हँसी।
ढल गयी तीसरी पहर, उतर आई संध्या ले हँसी - खुशी ॥
चल पड़ा ज्वान घर ओर अलापे बिरहा के अलमस्त गान !
रधिया के बायें दृग फड़के दरवाजे से ही सुनी तान !!
मधु प्रेम गान—
औ' जिसकी आँखों ने कर डाला घर में हँस - हँस दीप - दान ॥३॥
घिर गई चाँदनी मंजुल तक घर के बाहर, घर के भीतर।
विधु बदनी की सोलहो कला थी बनी - ठनी सुन्दर, मनहर ॥
जगमग - जगमग था विहँस रहा चाँदनी साथ विस्तृत अम्बर।
घर के भीतर भी छके हुए थे प्रेम भरे दो-दो अन्तर ॥
बातों - बातों में बीत चली इस तरह मधुर चाँदनी रात।
छत के सुराख से उतर पड़ा घर के भीतर जाग्रत प्रभात ॥
हँस कर ओठों को चूम जुदा हो गया गांव का नवजवान।
दिन के कामों पर चला गया उस कर्म व्रती का स्वयं ध्यान ॥
बैलों को सानी - पानी दे खेतों को तब आया किसान !
संस्कृति का सचमुच यह मानव कितना उदार कितना महान ॥४॥

सुख-दुख

श्री हरनाथ सहाय एम० ए०

सुख-दुख की प्रकृति के विश्लेषण के पूर्व हमें आत्मा की संश्लिष्ट प्रकृति पर विचार करना परमावश्यक है, जो सुख-दुख एवं मानस की सुख-दुखमय अवस्थाओं का ज्ञाता या द्रष्टा है।

आत्मा सुख-दुख से परे है। वह शुद्ध-बुद्ध चेतना है। केवल मानसिक क्रियाओं-प्रक्रियाओं के परिवर्तन के जो क्रीतदास हैं, आत्मा उसका द्रष्टा मात्र है। प्रत्येक सांसारिक विवर्त-परिवर्तन तथा अन्य क्षणिक स्वप्नों का द्रष्टा है। वह द्वन्द्व से परे, विकारों से दूर, अभिलाषाओं की मोहक चेष्टाओं से मुक्त वास्तविक है, परमानन्द का फूटता स्रोत है।

मानस जो विश्व परिचय के हेतु आत्मा का अमोघ अस्त्र है और जो अपनी समस्त शक्तियों को इसी से प्राप्त करता है, तीन आवश्यक स्पष्ट गुणों की विचित्रताओं से संयुक्त है :—

(१) चिन्तन या ज्ञान (Cognition), (२) अनुभूति या उद्वेग (Feeling), (३) आकांक्षा (Volition)। यद्यपि ये सभी एक दूसरे पर अनन्यो आश्रित हैं, फिर भी ये एक दूसरे से भिन्न हैं। एक का उत्थान, शेष दोनों का पतन है। उदाहरणार्थ जब एक व्यक्ति अपने अभिन्न मित्र की मृत्यु का समाचार सुन, शोक के उद्वेग से ग्रस्त है, उस समय वह किसी भी मानसिक या व्यवहारिक कार्य करने में सर्वथा असमर्थ हो जायगा। बड़े बड़े चिन्तनशील दार्शनिक भी कभी-कभी इस अवस्था में अनुभव और व्यावहारिकता शून्य पाये जाते हैं।

जब कभी हमारे शारीरिक कोष में नाड़ियों का प्रतिकूल कंपन होता है, तभी हममें दुख के भाव का संचार होता है और जब कभी नाड़ी-कंपन अनुकूल होता है, तब सुख के भाव का संचार होता है। इसके अनन्तर सभी ज्ञान अपने विकास-क्रम में भावनाओं को उभाड़ते हैं। अन्त में विश्वात्मा की एकता का ज्ञान अपने को विश्व के समस्त आत्मा को सहानुभूति के भाव में तिरोहित कर देता है। अतः स्पष्ट है कि विश्व वेदना भी हमारे अन्तस्तल में एक प्रकार की अशान्ति उत्पन्न कर देती है, और हम सुख-दुख का अनुभव करते हैं।

हम देखते हैं कि सुख और दुख, अनुभूति या उद्वेग का मनःशक्ति से निकटतम सम्बन्ध है। शुद्ध ज्ञानावस्था में आत्मा अपने शाश्वत परमानन्द के मौलिक रूप में रहता है, किन्तु अनुभव या अनुभूति की अवस्था में आत्मा पदार्थ-ज्ञान की अतिशयता में विभोर रहता है और अपने को भूल जाता है। वह निष्क्रिय हो जाता है। उसकी निज की चेतना लुप्त हो जाती है। वह उद्वेग पूर्ण रहता है। अपने ऊपर का प्रभुत्व खो देता है और वह सभी प्रकार के क्षोभ तथा दुखों का पात्र बनता है जिसका आविर्भाव सीमित परिधि और आश्रित अस्तित्व से होता है।

अनुभव या अनुभूति की दृढ़ता का अर्थ ज्ञान की अवस्था की दुर्बलता है जिससे आत्मा के सच्चे स्वरूप का विस्मरण हो जाता है।

सुख और दुख निश्चित रूप से ऐसी अवस्था पर निर्भर करते हैं, जिसमें जीवन अवस्थाओं के परिवर्तन के बिना असम्भव है। सुख का अर्थ सापेक्ष विश्लेषण में चेतना का अव्यवस्था से सुव्यवस्था में परिवर्तित होना है। इस परिवर्तन के ज्ञानार्थ इसके पृष्ठ भाग के ज्ञान का, जो अत्यन्त दुखमय स्थिति का उद्गम है, रहना आवश्यक है। यदि हम इस पृष्ठ भूमि का परित्याग करते हैं तो हमें सुख की भावना का भी परित्याग करना होगा, क्योंकि यदि असुन्दरता का अस्तित्व न रहे तो सुन्दरता से परिवर्तित होने वाली अवस्थाओं को मार्ग ही न मिलेगा। अतः हम देखते हैं कि सुख की अनुभूति असम्भव है। सुख का परिमाण इसके प्रवर्तक दुख की मात्रा के तुल्य प्राप्त होता है।

सत्य तो यह है कि विश्व न तो सुख से पूरित है और न तो दुख ही से बल्कि इसका दृष्टि विषयक भाग सर्वदा अविरत परिवर्तन में रहता है और परिवर्तन की इस अवस्था में यदि हम इसके परिवर्तित अवस्था के साथ अपना समीकरण करें और इस परिवर्तन को स्वात्मक समझें तो हमें सुख-दुख दोनों ही का अनुभव करना पड़ेगा। क्योंकि एक की चेतना के बिना दूसरे का अनुभव नहीं कर सकते।

अतः दुख के निवारणार्थ हमें सुख का भी त्याग करना होगा और दोनों ही से मुक्ति के हेतु हमें परिवर्तन की अनुभूति की सीमा से ऊपर उठना होगा और अविकल रूप से अपनी आत्मा को ध्यानाभिभूत कर प्रत्येक

का द्रष्टा समझना होगा। आत्म-तल्लीनता के लिये यद्यपि दृढ़तम चेष्टा की आवश्यकता है, फिर भी आत्मा के स्वरूप के ध्यान का अविभ्रान्त अभ्यास हमें परिवर्तन के प्रबल-प्रवाह में निष्क्रिय हो बह जाने से रोकता है। परिवर्तन हममें नहीं होता, बल्कि हमारी विचार शक्ति में। मनोविज्ञान के नियम सभी अवस्थाओं में सत्य रहेंगे। जितना ही अधिक हमारा मनन या ज्ञान होगा उतने ही न्यून हमारे अनुभव और उद्वेग होंगे और अनुभूति की न्यूनता का अर्थ सुख-दुख के आवेश की शान्ति है। अतः स्वयं को प्रत्येक परिवर्तन का उसी प्रकार द्रष्टा समझना चाहिये जिस प्रकार हम अपने वैयक्तिक सारूप्य को बचपन, जवानी और बुढ़ापे के शारीरिक परिवर्तन के मध्य भी अचंचल रखते हैं। इसे परिवर्तन का पुतला समझना ठीक नहीं।

आत्मा के द्रष्टा होने का अनुभव अकेला ही हमें परमानन्द या पवित्रता की प्राप्ति का अधिकार दे सकता है। जो सभी प्रकार के द्वन्द्व और विभिन्नताओं से परे हैं, अतीत हैं—जैसे सुख, दुख, सहानुभूति और घृणा आदि। यहीं पर हमें ईश्वर जप या अर्थ के साथ ऊँकार का निरन्तर भजन अथवा परमात्मा के किसी भी नाम का निरन्तर जप करने की आवश्यकता है। क्योंकि इससे हमें सांसारिक दुख पीड़ा से मुक्ति मिल सकती है और हम शान्ति और परमानन्द को प्राप्त कर चिर सुख को भोग सकते हैं। यही सुख-दुख का रहस्य है।

कर्म-जाल

श्री आरसी प्रसाद सिंह

कर्म के जंजाल में
    आनन्द छूटा जा रहा है!
'प्रेम कर, आसक्ति मत कर!'
कह रहा यह कौन? 'जड़ता
छोड़, अन्धी भक्ति मत कर!
    'काल से जीवन हमारा
    कोष लूटा जा रहा है!
'व्यर्थ ममता जोड़ता क्यों?
मुक्ति-पथ से वृत्तियों को
चित्त की, है मोड़ता क्यों?
'एक स्वर की चोट से दिल
    आज टूटा जा रहा है!
'आत्म-अनुसन्धान कर तू!
तू स्वयं अपना विधाता,
स्वयं को निर्माण कर तू!'
पैर से खिसकी धरा,
    घट-विश्व फूटा जा रहा है!

एक काम

श्री सत्यदेव विशारद

सिडनी स्मिथ ने कहा है—"जिसमें तुम्हारी प्रवृत्ति हो उसीमें लगे रहो। अपनी बुद्धि के मार्ग को मत छोड़ो। प्रकृति तुम्हें जो कुछ बनाना चाहती है वही बनो। तुम्हें अवश्य विजय मिलेगी। इसके विपरीत यदि कुछ दूसरा बनना चाहोगे तो कुछ भी न बन सकोगे।"

वस्तुतः, यह युग विशेषता का युग है। जिसमें कुछ विशेष गुण होगा, वही संसार में शान से टिक सकेगा। बहुत सी बातों को थोड़ा-थोड़ा जानने से हमें कहीं भी कदर नहीं मिल सकती। समय और आयु का हिसाब करके हम देखते हैं, तो हमें यही मालूम होता है कि काम करने का बहुत थोड़ा समय मिलता है। सोना, खाना, पीना, हंसी-मजाक और सैकड़ों अमाम्य कार्यों में हमारे समय का कितना अपव्यय होता है, इसे देखते हुए हमें कई कामों के उठाने की धृष्टता करना अपने को बरबादी और नाकामयाबी के जिम्मे सौंपना है। अतः जीवन-निर्माण के प्रथम भाग में ही हमें अपने लिए एक काम चुन लेना होगा।

जब हमें सिर्फ एक ही काम चुनना है, और उसी में आजीवन लगे रहना है, तो इसका चुनाव बहुत ही सावधानी से होना चाहिए। सतर्कता इस बात की होनी चाहिए कि हम अपने मन के अनुकूल कार्य चुनें। अब तक हमें अपने अनुकूल कर्म नहीं मिल जाता, तब तक हम अधिकाधिक उन्नति की आशा नहीं कर सकते। हमारा जीवन अमर होता जायगा। हम लोग विस्मृति के गर्भ में फेंक दिए जाएंगे। स्वेट मार्डन ने अपनी एक पुस्तक Pushing to the Front में लिखा है—"हर एक आदमी संसार में कोई-न-कोई काम लेकर ही पैदा होता है। जिस काम की ओर तुम्हारी रुचि हो, वही तुम्हारा सच्चा काम है। यदि तुम्हें उचित स्थान प्राप्त हो गया तो अपनी सारी मानसिक और शारीरिक शक्ति उसको सफल बनाने में लगा दो। तुम्हें अवश्य सफलता मिलेगी।"

हमें विचार यह करना है कि हम कौन-से विभाग में अपनी शक्तियों को अच्छी तरह और खुशी-खुशी लगा सकते हैं। जीवन की हर घड़ी में हमारा उत्साह ही हमारा सहायक होता है। संभव है हमें अपने मनोनुकूल काम खोजने के लिए अच्छी-अच्छी नौकरियों, और आराम को पैरों से ठुकरा देना पड़े। लोगों के व्यंग सुनने पड़ें। लोग हमें उल्लू समझें परन्तु इससे क्या? हमें तो अपने मार्ग पर बढ़ने के लिए अपनी ही रुचि को प्रधानता देनी पड़ेगी। हम उसी काम में चमक सकते हैं जिसमें हमारा स्वाभाविक झुकाव हो। प्रतिकूल कार्यों को अपना कर भले ही कुछ लोगों की प्रशंसा सुन लें, कुछ अच्छा पैसा प्राप्त कर लें, कुछ अच्छा पद प्राप्त कर लें, परन्तु हमारी अन्तरात्मा रह-रह कर कोसा करेगी। वह हमें अपने मनोनुकूल कार्यों को करने के लिए प्रेरित करेगी। यदि हम उसकी आवाज़ पर जरा भी ध्यान दें, तो हम तुरंत अपना पथ निर्दिष्ट कर सकते हैं। शान्ति के समय हमारा मन जिधर झुकता हो, जिस ओर इशारा करता हो वही हमारा मार्ग है, वही हमारा काम है।

बस एक काम को लीजिए। उसके अन्तिम शिखर पर चढ़ने की कोशिश कीजिए। प्रेमचन्द जी ने उपन्यास-कला को अपनाया, उपन्यास-सम्राट् बन गए। द्विवेदी जी ने सम्पादन में अपना जीवन लगा दिया, सम्पादक-शिरोमणि बन गए। सुधारकों के साथ भी यही बात है। स्वा० दयानन्द, राममोहनराय और महात्मा गान्धी की प्रसिद्धि का यही कारण है। अतः जीवन में कुछ कर दिखाने के लिए हमें एकही काम में अपने तन, मन और धन को अर्पित कर देना होगा।

संसार हमसे यह नहीं चाहता कि हम वकील, बैरिस्टर, जज, कलाकार, लेखक, उपन्यासकार या सुधारक बनें। वह तो यही चाहता है कि हम जो भी बनें उसमें धुरन्धर बनें। हमारे कार्यों से मौलिकता और विशेषता प्रकट हो। हम अपने कार्यों से अपने कुल, समाज और देश का कल्याण कर सकते हैं। अपने कार्यों को अधिक-से-अधिक चमकावें। तभी हम कुछ कर सकेंगे। स्मरण रखिए, संसार उन्हीं को याद रखता है जो उसको कुछ दे जाते हैं। संसार को भूलने को वह कभी याद करने की चेष्टा नहीं करता। बिना किसी विशेषता के हम सेवा नहीं कर सकते। हममें विशेषता तभी आ सकती है, जब हम एक काम को लेकर उसमें नवीनता ले आवें।

एक काम को चुनने से हम उस कर्म को सम्पादन करने के लिए पूरी सामग्री जुटा सकते हैं। हम सुगमता से अपने सहायकों को खोज सकते हैं। कई काम में दखल देने वाला हरफन मौला हो जायगा। वह कुछ लोगों के लिए कुतूहल की वस्तु हो सकता है। लोग कह सकते हैं—अरे बाप रे! यह कितने विषयों की जानकारी रखता है। परन्तु इससे क्या? यदि हम ठंडे दिल से विचार करें, तो हमें मालूम हो जायगा कि वह मनुष्य बहुत उथले पानी में है। उसमें ज्ञान की गम्भीरता नहीं आ पाई है। आज की दुनिया में कार्यों के विस्तार और ज्ञान के विपुल भंडार को देखकर नेति-नेति कह देना पड़ता है। ऐसी दशा में हमें ख्वाह-म-ख्वाह एक काम को अपनाना ही पड़ेगा। उसी में अपनी विशेषता और गम्भीरता दिखलानी पड़ेगी।

एक काम को अपनाने के बाद हमें प्रारम्भ में कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, परन्तु धीरे-धीरे वह काम सुगम बनता जाएगा। इस भांति हमें उसके करने में विशेष दिक्कतों का सामना नहीं करना पड़ेगा। यही कारण है कि एक काम में अपने को लगा देने वाला थोड़े समय अधिक काम कर जाता है। उसके चिन्तन में एकाग्रता होती है। और कार्य सम्पादन में बल। यही कारण है कि वह जब अपने काम को हाथ में लेता है तो सारी शक्ति, सारा सामान और सारी एकाग्रता के साथ टूट पड़ता है। काम उसके डर से भागता रहता है। महात्मा गान्धी ने सत्य और अहिन्सा के विवेचन, चिन्तन और कार्य में अपना जीवन लगा दिया। फलस्वरूप आज इस क्षेत्र में उनकी समानता करने वाला कोई नज़र नहीं आता। अब तो पश्चिमी संसार की भी दृष्टि इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने में लगी हुई है। यदि महात्मा जी भी अवसरवादी होते तो अवश्य ही विश्व को कोई स्थायी सम्पत्ति नहीं दे जाते।

किसी ने ठीक कहा है कि एक काम को हाथ में लो उसमें लगन, चतुरता और धैर्य के साथ लगे रहो। संभव है कि अपने जीवन के अन्तिम भाग में अपने आदर्श को प्राप्त कर लो।

क्या हिन्दू समाज में विवाह-विच्छेद होना चाहिये?

श्रीमती सन्तोष आनन्द एम. ए.

आज समाज हमारी स्मृतियों तथा क़ानूनी बन्धनों से कहीं आगे बढ़ गया है फिर भी कितने आश्चर्य की बात है कि हमारे हिन्दू समाज में प्रचलित पुराने नियमों में किसी प्रकार के भी परिवर्तन नहीं हुये हैं। चाहिये तो यह था कि सामाजिक नियम समयानुकूल बदल दिये जाते। मानव स्वतन्त्रता तथा समानता के विस्तृत प्रश्नों के साथ विवाह-विच्छेद का प्रश्न भी उठ खड़ा होता है। आज हम एक ओर तो संसार में दूसरे राज्यों के साथ समता और समानता के लिये लड़ रहे हैं और दूसरी ओर स्त्री जाति की स्वतन्त्रता का अपहरण कर रहे हैं। हम स्त्री को उसके विवाहित साथी पति के साथ रहने पर मजबूर करते हैं चाहे उसका आचरण तथा बर्ताव अपनी स्त्री एवं मानवता के प्रति कितना ही गर्हित क्यों न हो! समाज में पुरुष के लिये बहु-विवाह का चलन है और उसे पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वह जितने भी विवाह चाहे कर सकता है। पर स्त्री को यह स्वतन्त्रता नहीं है कि एक बार विवाह होने पर वह दूसरा जीवन साथी चुन सके। हम संसार में चार स्वतन्त्रताओं तथा पाँच स्वतन्त्रताओं की बातें सुनते हैं। लेकिन सच तो यह है कि केवल एक ही स्वतन्त्रता होनी चाहिये और वह यह है कि मनुष्य को स्वतन्त्र हो जाना चाहिये और उसे जीवन के प्रत्येक मार्ग में दूसरों को स्वतन्त्रता प्रदान करनी चाहिये।

कहा जाता है कि हिन्दू समाज में स्त्री जाति का महान स्थान है। वे घर की लक्ष्मी हैं और उन पर किसी भाँति का भी शक नहीं किया जा सकता है। मनु भगवान ने कहा है—'स्त्री जाति का आदर करो नहीं तो देवता गण तुम्हारे ऊपर कुपित हो जावेंगे।' आज इस परिवर्तन शील संसार में बराबरी तथा आदर के परिवर्तन शील वातावरण में, स्त्री की क्या दशा है? यहाँ हम स्त्री तथा पुरुष के ऊँच-नीच के झगड़े में नहीं पड़ना चाहते। हमारा कहना है कि अपने अपने मार्ग में दोनों ही बड़े तथा बराबर हैं। हम देखते हैं कि पुरुष के साथ ही साथ स्त्री भी उन्नति की ओर अग्रसर हो रही है। वह भी साधारण जीवन के प्रत्येक कष्टों को पुरुष के साथ कन्धे से कंधा मिलाकर सहन कर रही है। उसने नवीन ज्ञान को प्राप्त कर ली है; उसने अपने पति के साथ ही साथ जनमत भी प्राप्त कर लिया है। वह जीवन संग्राम में, युद्ध में, कष्टों में, विद्या में, बुद्धि में और ग़लती तथा कमी में पुरुष के साथ साथ हाथ बँटा रही है। अपनी विद्वत्ता के कारण आज स्त्री मंत्रियों के पद को सुशोभित कर रही हैं। स्त्रियों ने बड़े बड़े जनमत क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व किया है सांस्कृतिक प्रगति हमें एक विवाह के आदर्श की ओर ले जा रही है। जब तक विवाह-विच्छेद को किसी न किसी रूप में स्थान नहीं दिया जाता तब तक एक विवाह पद्धति सफल हो ही नहीं सकती। कहा जाता है कि हिन्दू-विवाह पवित्र सम्बन्ध है और इस पर ज़ोर दिया जाता है कि जैसे ही विवाह-विच्छेद की प्रथा समाज में चालू की गई वैसेही विवाह की बातें हवा हो जावेंगी। विवाह का मूल्य ही न रह जावेगा। क़ानून का संरक्षण शोषणकर्ता के विरुद्ध शोषित के लिए होता है। सुखी तथा सन्तोषप्रद कभी भी उस संरक्षण के दायरे में नहीं आते। बीमार को औषधि की आवश्यकता होती है, स्वस्थ व्यक्ति को नहीं होती। यह सोचना व्यर्थ है कि विवाह-विच्छेद की व्यवस्था अनावश्यक विवाह-विच्छेद के रूप में परिणत हो जावेगी। विवाह-विच्छेद की व्यवस्था केवल कुछ सीमित दशाओं में लागू होगी और बराबरी के साथ दोनों वर्गों पर लागू होगी। यही बात हम चाहते हैं और इसी बात की हिन्दू कोड ड्राफ्ट कमेटी ने सिफारिश भी की थी।

कमेटी का सुझाव था कि विवाह-विच्छेद की आज्ञा निम्नांकित दशाओं में प्रदान की जानी चाहिये—

(१) यदि कोई साथी सात वर्ष तक इलाज कराने के पश्चात् अच्छा होने योग्य न हो तथा विकृत मस्तिष्क का हो।

(२) यदि कोई साथी कोढ़ रोग से पीड़ित हो और उसे यह रोग अपने विवाहित साथी से न मिला हो।

(३) सात वर्ष तक बिछोह रहने तथा त्याग देने के पश्चात्।

(४) धर्म परिवर्तन कर लेने पर।

(५) सात वर्ष तक लगातार गुप्त रोगों से पीड़ित रहने पर जबकि रोग का सम्बन्ध दूसरे साथी से न हो।

(६) यदि दोनों में से कोई परस्त्री या पुरुष के साथ अनैतिक जीवन व्यतीत कर रहा हो और व्यभिचारी हो।

यह न्यूनतम दशाएँ हैं, जिनमें दम्पति को साधारण तथा स्वस्थ जीवन निर्वाह करने के लिये अलग हो जाना चाहिये । सचमुच ही असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्तियों को नाता तोड़ने के लिये सात वर्ष का समय बहुत अधिक है। इस प्रकार विक्षोह से पीड़ित व्यक्ति को पूर्व इसके कि उसे मुक्ति मिले बेकार सात वर्ष के लम्बे समय की प्रतीक्षा करने में कष्टमय जीवन व्यतीत करना होगा । प्राचीन काल में सात वर्ष की व्यवस्था न्यायपूर्ण हो सकती थी पर आधुनिक काल में जबकि विज्ञान की इतनी उन्नति हो चुकी है तीन वर्ष का समय काफी है।

कहा जाता है कि हमारे हिन्दू धर्म के ऊपर अनेकों विपत्तियां तथा बाधायें आई हैं और हमारे सामाजिक नियमों ने विभिन्न युगों में कठिन से कठिन आपत्तियों का सामना किया है और अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण रखा है। इसलिये उनमें किसी भाँति की भी विदेशी व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा करने से हमारे समाज की समस्त व्यवस्था नष्ट हो जावेगी। यूरोप तथा अमरीका आदि पश्चिमी राष्ट्रों के उदाहरण दिये जाते हैं कि विवाह-विच्छेद वहाँ घास-पात की भाँति सरल हो गया है, और उसका कोई महत्त्व नहीं रह गया है, जिससे जीवन नष्ट हो गया है। हमें उनकी असफलता तथा कमियों से अवश्य ही सचेत रहना चाहिये। हमें उनसे सबक लेना चाहिये। पर त्रुटियों के कारण हमें विवाह-विच्छेद व्यवस्था का पूर्ण रूप से बहिष्कार न करना चाहिये। अन्य मार्ग न मिलने पर हमें विवाह-विच्छेद अन्तिम दशा में ही करना चाहिये। हमें विवाह-विच्छेद को इतना नीचे न गिरा देना चाहिये कि वह उच्छृङ्खलता बन जाय और खिलौने की भांति जब चाहे तब हम उसे उठाकर खेलने लग जांय।

कम्यूनिस्ट शासन के प्रारम्भिक वर्षों में रूस ने शायद विवाह विच्छेद प्रथा का अन्तिम सीमा तक प्रयोग किया। अपने तजुर्बों के कारण उसने सीख लिया है और आज उसने अपने क़ानूनों को ऐसा बदल दिया है कि विवाह-विच्छेद करना बड़ा ही कठिन काय हो गया है।

कहा जाता है कि हिंदू परिवार विवाह-विच्छेद की रसम प्रचलित न होने पर भी, उन परिवारों से कहीं अधिक सुखी तथा शान्त है जिनमें विवाह-विच्छेद की प्रथा प्रचलित है। पर जब तक आनन्द मापक कोई विश्वव्यापी यंत्र न हो तब तक हम कैसे कह सकते हैं कि कौन अधिक आनन्दमय जीवन व्यतीत कर रहा है ? आनन्द तथा सुख सानुपातिक पारिभाषिक शब्द हैं। पर क्या हम नहीं देखते कि हजारों हिंदू स्त्रियाँ अपने पति-देवताओं की भक्ति में वेदना पूर्वक सता सता कर मारी जा रही हैं। और उनके पतिदेवों ने उन्हें किसी न किसी कारण वश छोड़कर अगणित मुसीबतों में फंसा रक्खा है। क्या यह पुरुष जाति के लिये सम्भव है कि वह उन बेचारी स्त्रियों के कष्टों का अनुमान लगा सके ? एक ही घर के भीतर दूसरी स्त्रियाँ सुखमय दाम्पत्य जीवन का सुख भोग रही हैं, जब कि अन्य असहाय अवस्था में तड़प तड़प कर अपने प्राण दे रही हैं अथवा कुत्तों का सा जीवन व्यतीत कर रही हैं। क्या हमारे सामने ऐसे सैकड़ों मामले नहीं हैं जिनमें निरपराध हिंदू रमणियों ने कष्टों का सामना न कर सकने के कारण आत्म हत्याएं कर ली हैं ?

हम क़ानून को समाज की प्रगति के रास्ते में रुकावट के रूप में नहीं रख सकते हैं। अब समय आ गया है जबकि हमें अपने प्राचीन नियमों में अवश्य सुधार कर लेना चाहिये जिनसे हमारे जीवन का गहरा सम्बंध है।

शिक्षा तथा समझ-बूझ के उत्थान के साथ ही साथ क़ानून तथा नियम हमारे बचाव के अस्त्र होने चाहियें न कि शोषण के।

हिन्दू समाज की व्यवस्था ही ऐसी है कि प्रारम्भ काल से ही स्त्री जाति परतन्त्रता में रक्खी जाती रही है। उसे बालपन से लेकर मृत्यु तक, भाई, पिता, पति ससुर आदि के अधिकार में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उसे हजार कष्टों के पड़ने पर भी अवसर नहीं होता है कि वह अपनी दुख बीती भी किसी को सुना तक सके। कष्टों का बयान मात्र घर वालों की शिकायत समझी जाती है और उससे कष्टों के निवारण की व्यवस्था होने के स्थान पर और अधिक कष्टों की व्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। ऐसी दशा में स्त्री जाति की स्वतंत्रता की व्यवस्था कानूनन होनी परम आवश्यक है और प्राचीन नियमों में परिवर्तन होना बहुत ज़रूरी है।

सन्त सरमद

श्री केशवगोपाल निगम

आज से करीब ३०० वर्ष पूर्व भी दिल्ली में ही एक फ़कीर को राजनीति की दलदल में संश्लिष्ट धार्मिक मतान्धता का कोपभाजन बन कर अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी थी। उसका अपराध भी वही था जिसके कारण सुकरात को ज़हर का प्याला पीना पड़ा था, मंसूर को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े थे और हमारे बापू को गोलियों का शिकार बनना पड़ा। उसने भी चिरंतन सत्य का आभास पा लिया था। अपनी अन्तरात्मा की आवाज को सुना था और निर्भीक होकर उसकी घोषणा की थी। वह धर्म की संकुचित मनोवृत्ति का कट्टर विरोधी था और उसकी तीव्र आलोचना करता था। यही उसका अपराध था। राजनीति की दलदल में लथपथ धार्मिक मतान्धता ने प्राण-दण्ड का भय दिखा कर उसको चुप करना चाहा परन्तु वह यह भूल गई थी कि समस्त संसार की सेनायें भी एक सत्य आत्मा को नहीं कुचल सकतीं। पाशविक शक्ति के बल पर फ़कीर को मौत के घाट उतार दिया गया परन्तु उसका अमर सन्देश आज तक सुरक्षित है।

और यह फ़कीर था सन्त सरमद।

यद्यपि सरमद का उल्लेख यूरोपीय यात्रियों ने भी अपनी कृतियों में किया है, भारतीय इतिहासकारों तथा तजकिरा-नवीसों ने भी किया है परन्तु पूरा जीवन वृत्तान्त किसी ने भी नहीं लिखा है। विभिन्न लेखकों की कृतियों से उनके जीवन की रूप रेखा हमारे सामने आ जाती है। किन्तु विभिन्न कोटि के लेखकों द्वारा उनके उल्लेख से यह बात आप ही सिद्ध हो जाती है कि इस फ़कीर का अपना एक विशिष्ट स्थान था। उस काल में कितने ही सूफ़ी सन्त थे परन्तु विद्वानों की कृतियों में इतना महत्व किसी को भी नहीं मिला है।

सरमद का जन्म शाह अब्बास के काल में ईरान के काशान नगर में हुआ था। आपके माता-पिता आर्मीनिया के यहूदी थे जो काशान में आकर बस गए थे। शाह अब्बास के काल में बहुत से आर्मीनियन यहूदी ईरान में बसे हुए थे। सरमद के बचपने के नाम का कुछ पता नहीं। सरमद की प्रारम्भिक शिक्षा यहूदी प्रथा के अनुसार ही हुई होगी परन्तु प्रखर बुद्धि वाला सरमद इतने से सन्तुष्ट होने वाला जीव नहीं था। उन्होंने ईसाई धर्म तथा इस्लाम का भी अध्ययन किया और बाद में मुसलमान होगये परन्तु अन्य सूफ़ी दार्शनिकों के समान धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत ही उदार था। इनके गुरु मुल्ला सदरा भी बड़े उच्च कोटि के दार्शनिक तथा उदार विचारों वाले सूफ़ी थे।

शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त सरमद अपने पैतृक व्यापार में ही लग गए। सरमद कविता के प्रारम्भ से ही प्रेमी थे। युवावस्था में काफ़ी सुन्दर कविता करते थे जैसा कि उनके एक शेर से स्पष्ट होता है परन्तु उस काल की कोई कविता उपलब्ध नहीं है।

ई आलमे पोरी व जबानम खामोश
अय्याम शबाब हर चे गुफ़तम गुफ़तम

अर्थात—अब बुढ़ापा आ गया है औ जबान खामोश है। जो कुछ मुझे कहना था युवावस्था में कह चुका।

उस काल में भारत शिक्षा तथा कला का केन्द्र तो था ही साथ ही साथ व्यापारिक केन्द्र भी था और मध्य पूर्व से व्यापारी यहां आया-जाया करते थे। सरमद भी व्यापार करने के आशय से भारत को रवाना हुआ। धन कमाने का इच्छुक यह व्यापारी नहीं जानता था कि उसके भाग्य में क्या बदा है? कौन जानता था कि भारत आकर इस व्यापारी को मन्डी में नहीं, प्रेम की हाट में ऐसा व्यापार करना पड़ेगा जिसमें यह स्वयं अपने को भी लगा देगा और दिल हार कर ही बाजी जीत सकेगा। वास्तव में हाट में तो वही व्यापारी सफल है जो अपना तन, मन और धन सभी कुछ लगा दे परन्तु मनुष्य संसार के माया-जाल में इस बुरी तरह फँसा हुआ है कि पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण करना प्राय: असम्भव ही हो जाता है। पंचशर के पुष्प सायक ही वह चोट दे सकते हैं कि मनुष्य इस

ओर खिंच आता है। रत्ना की डांट ही तुलसी को तुलसीदास बना सकती थी और चिन्तामणि की फटकार ही बिल्वामंगल को सूरदास बना सकती थी। सरमद के साथ भी एक ऐसी ही घटना हुई। उस काल में सिन्ध के ठट्ठा नगर में ईरानी व्यापारी आया करते थे जो उस समय बड़ी प्रसिद्ध मन्डी था। सरमद भी इसी मन्ड म आए थे और यहीं किसी की तिरछी चितवन के शिकार हुए। इनके अज्ञात प्रेमपात्र के सम्बन्ध में केवल इतना ही ज्ञात है कि वह एक हिन्दू था। इस घटना के उपरान्त सरमद ने फकीरी भेष धारण कर लिया और घर बार छोड़ दिया। दर-बार की खाक छानते फिरने लगे।

इसके बाद हमें सरमद के दर्शन दिल्ली के गली कूचों में नंग-धड़ग घूमते हुए होते हैं। इस समय तक सरमद काफी प्रसिद्ध हो गए थे। दिल्ली क सिंहासन पर शाहजहाँ आरूढ़ था जो फकीरों का बड़ा प्रेमी था। उसका बड़ा पुत्र दाराशिकोह सरमद को बड़े आदर की दृष्टि स देखता था। दारा का धार्मिक दृष्टिकोण काफी उदार था। सरमद उसके खास आदमियों में से थे और उसी ने सरमद को शाहजहाँ के दरबार में भी पहुँचाया था। उन्हीं दिनों शाहजहाँ बीमार पड़ गया और उसके पुत्रों में राज्य के लिए युद्ध छिड़ गया। सरमद दारा के पक्षपाती थे परन्तु इस गृह-कलह में दारा बन्दी बनाकर मार डाला गया और दिल्ली के सिंहासन पर औरंगजेब ने अधिकार कर लिया। दारा के हिमायतियों को चुन-चुन कर माप्त कर दिया गया। सरमद का दिल्ली की जनता पर काफी प्रभाव था इस कारण राज्याधिकारी और भी उनके प्राणों के ग्राहक होगए और उन पर तीन अभियोग लगाए गये।

पहला अभियोग यह था कि सरमद पूरा कलमा 'ला इलाह इल-लल्ल ह मोहम्मद उर रसूलल्लाह' नहीं पढ़ते। सरमद आधा ही कलमा पढ़ते थे जो इस्लाम के अनुसार कुफ्र है।

इसका उत्तर सरमद ने यह दिया कि मैंने अभी तक अल्लाह को पूरी तरह नहीं पाया है। जब पूरी तरह पा लूँगा तभी पूरा कलमा पढ़ूंगा।

दूसरा अभियोग यह लगाया गया कि सरमद मेराज-उन-नबी को नहीं मानते। इस्लाम के मतानुसार रबी-उल-अव्वल मास की १२ वीं तारीख की रात को जब मोहम्मद साहब सो रहे थे तो फरिश्ता जिब्राईल आया और उसने मोहम्मद साहब को जगा कर वजू करने को कहा। वजू करने के उपरान्त मोहम्मद साहब अल्लाह के भेजे हुए दुलदुल पर बैठकर अर्श-बरी पर 'सातवें आकाश' पर गए जहां अल्लाह ने उनकी ईसा, मूसा इत्यादि पैगम्बरों से भेंट कराई और सातों आस्मानों की सैर कराई। इसके उपरान्त मोहम्मद साहब सुबह होने से पहले ही पृथ्वी पर लौट आये।

सरमद का कहना था कि जिसने अल्लाह को पहचान लिया वह तो स्वयं आकाश से महान हो गया। मुल्ला कहता है कि मोहम्मद साहब आकाश पर गए थे परन्तु मैं कहता हूँ कि आकाश भी मोहम्मद साहब में समा गया था।

आँकस कि सर्रे हकीकतश बावर शुद
खुद पहनतर अज सिपहरे पहनावर शुद
मुल्ला गोयद कि बर पलक शुद अहमद
सरमद गोयद पलक ब अहमद दर शुद।

तीसरा अभियोग यह लगाया गया कि सरमद नंगे रहते हैं जो इस्लाम के विरुद्ध है। इसका उत्तर सरमद ने इस प्रकार दिया......

आंकस के तुरा ताजे जहांबानी दाद,
मारा हमा असबाब परेशानी दाद,
पोशाद लिबास हरकरा ऐबे दीद,
बे ऐबा रा लिबासे उरियानी दाद।

अर्थात जिसने तुझे यह राज मुकुट दिया है उसी ने हमें चिन्ता दी है। जिसमें दोष देखता है उसे वस्त्र पहना देता है और जो दोष-रहित हैं उन्हें नङ्गा ही रहने देता है।

भला धार्मिक मताग्धता ऐसे तीखे उत्तर कब सहन कर सकती थी और फिर वह तो राजनीति

की कीचड़ से सनी हुई थी। काजी ने सरमद को कत्ल कर देने का निर्णय दे दिया। सरमद को दिल्ली की जामा मस्जिद के पास लाया गया। उनके पीछे जनता का अपार समूह था। सरमद को किंचित मात्र भी मृत्यु का भय नहीं व्याप रहा था और वह बड़ी शान्ति से वध स्थल पर आ गये। वधिक के हाथ में नंगी तलवार देखकर बोले, "ऐ मित्र तू किसी ढग से आ मैं तुझे पहचान लूँगा। अच्छा हुआ, यार ने सिर धड़ से अलग कर दिया क्योंकि सिर का दर्द बहुत बढ़ गया था।" इसके उपरान्त सरमद ने शान्तिपूर्वक अपने प्राणों की आहुति दे दी।

इस समय सरमद की कुछ रुबाइयां और फुट-कर छन्द ही मिलते हैं। उनकी कोई पुस्तक अथवा दीवान नहीं मिलता। ग़ज़ल में उन्होंने हाफिज का अनुसरण किया है और रुबाइयों में उमर खैयाम का। उमर खैयाम की शैली का ही उन्होंने अनुसरण किया अन्यथा विचारों में आकाश-पाताल का अन्तर है। सरमद कहते हैं कि संसार का मोह त्याग कर भगवान से लौ लगाओ। उमर इसके विपरीत सांसारिक सुखों के उपयोग करने का परामर्श देते हैं। इस विषय में सरमद ने स्वय कहा है .....

बा फिक्र व खयाल कस नबा शुद कारम
दर तूरे गजल तरीक हाफिज दारम
आया बा रुबाई अम मुरीदे खैयाम
न जुरआ कशे बादये अद बिसियारम।

मुझे किसी के विचारों से क्या प्रयोजन? मेरी गजल में शीराज के हाफिज का रंग है और रुबाई में उमर खैयाम का परन्तु उनके समान सांसारिक सुखों में लिप्त नहीं रहता हूँ।

सरमद की रुबाइयों में साकी, यार, शराब, सुराही आदि के प्रयोग का बाहुल्य है परन्तु ये शब्द सूफियों के पारिभाषिक अर्थों में ही प्रयोग किये गये हैं। सरमद की रुबा‌इयों में पुनरावृत्ति का दोष अवश्य कहीं-कहीं खटकता है।

सरमद प्रेम-मार्गी थे। उन्होंने पूरी तरह आत्म समर्पण कर दिया था। अपने प्रेम की अपेक्षा उन्हें भगवान की दया पर अधिक विश्वास था...

इसयाने मन अहसाने तू न आयद बशुमार
बेहद व हिसाब के बा आयद बा शुमार
गर पेश खुद ई हिसाब सद साल कुनम
ने फजले तू ने जुर्मे मन आयद बा शुमार।

मेरे पाप और तेरी दया हद से बढ़े हुये हैं। इनका हिसाब नहीं हो सकता, सौ साल तक भी करूं तो हद न मिले।

इसी कारण सरमद कहते हैं कि संसार में किसी से दिल न लगा। सिवाय दुख और चिंता के कुछ हाथ न आयगा। सब चिंताओं को छोड़ कर उसकी चिन्ता कर। उन्हीं के शब्दों में....

जुज मेहनत व रंज नेस्त हासिल ज़ेहमा
कारग शवद आज़ाद बकुन दिल ज़ेहमा
खुद रा बखुदा गुजार अन्देशा मकुन
ई फिक्र व ख्याल व वहम मुश्किल जेहमा।

सरमद की बेचैनी इतनी बढ़ गई है कि अब वे शान्ति प्राप्ति के लिये मृत्यु की कामना करने लगते हैं। उन्हें विश्वास है कि भगवान की दया से मरने पर उन्हें अनन्त शान्ति प्राप्ति हो जायगी। वह उस दिन की बाट जोह रहे हैं जब उन्हें दफन कर दिया जायगा।

आ रोज के जा जेर जमीं ख्वाहद बूद
अज लुत्फे तो यारब बा अजी ख्वाहद बूद
बर रोये जमी हस्त हलावत मुश्किल
दर जेर जमीं अगर चमी ख्वाहद बूद।

सरमद ने नीति की रुबाइयाँ भी कही हैं। सच्चे मित्र के सम्बन्ध में वे कहते हैं —

बे सरोकदे के रोनुमायद यार अस्त
बे सीमबरे के जर रुबायद यार अस्त
आ यार गुजीं के हर चे ख्वाही बद हद
यारे के बकारे तू बआयद यार अस्त।

अर्थात—सच्चा मित्र वही है जो तेरे साथ रहे, तन मन, धन सब कुछ दे दे और समय पर काम आये।

परन्तु सरमद को संसार की चिंता अधिक देर तक नहीं रहती। वे अपने यार के विरह में बुरी तरह बेचैन हैं और अन्त में वे उसे पाकर ही दम लेते हैं,

'सच है दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना। वे भी मन्सूर के समान अनलहक (सोऽहं) की घोषणा कर देते हैं और अपने में भी भगवान को देखने लगते हैं और कहने लगते हैं कि भगवान की चिंता ही छोड़ दो, यदि वह भगवान ही है तो स्वयं आ जायगा—

सरमद अगरश वफा अस्त खुद मी आयद
गर आमद नश रवा अस्त खुद मी आयद
बेहूदा चरा दरपे ऊ मी गर्दी
बनशीं गर ओ खुदा अस्त खुद मी आयद।

दिल्ली में जामा मस्जिद से लाल किले जाने वाली सड़क पर बाईं ओर वाले छोर पर सरमद का मजार है। यद्यपि उसको मरे हुए करीब ३०० वर्ष होने आये परन्तु अब भी उनके मजार पर जियारत करने वालों की भीड़ लगी रहती है।

——

[शेष २५६ पृष्ठ के आगे]

एकसचेंज के अभाव में उसे अपना उद्योग-धन्धा फैलाने के लिए मशीनें तक प्राप्त नहीं हैं। यह कर्ज़ा किस तरह का है, कब कब और कैसे लिया गया, आदि बातों पर इस पुस्तक में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। प्रत्येक हिन्दी पढ़ने वाले को इस पुस्तक का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। इतनी मूल्यवान सामग्री केवल आठ आने में देने के लिए हम नवजीवन कार्यालय के कृतज्ञ हैं।

गान्धी गाथा—लेखक श्री रामचन्द्रन; प्रकाशक हिन्द किताब, बम्बई; मूल्य एक रुपया, पृष्ठ सख्या ४९।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक श्री रामचन्द्रन को गान्धी जी के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। लेखक ने इन पृष्ठों में गान्धी जी के १५ संस्मरण दिये हैं। संस्मरण सब अत्यन्त सुन्दर हैं। उनसे गान्धी जी के व्यक्तिगत जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। पुस्तक की भूमिका पश्चिमी बङ्गाल के गवर्नर चक्रवर्ति राजगोपालाचार्य ने लिखी है। पुस्तक संग्रह के योग्य है।

बापू की बात—लेखक श्री दामोदरदास खंडेलवाल, प्रकाशक साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, मूल्य १), पृष्ठ संख्या ९९।

कलकत्ते में एकाध बार बापू लेखक के मेहमान रहे हैं। उन्हीं के आधार पर पुस्तक लिखी गई है। लेखक ने दो बातों पर विशेष ज़ोर दिया है। एक यह कि वह मुसलमानों से द्वेष करता है। दूसरी यहकि उसने बापू के कहने से खादी नहीं पहनी, जर्मनी में अपमानित होकर खादी पहनी। पुस्तक में आश्रम आदि का वर्णन काफ़ी रोचक है।

——



शाह आलम की आँखें—लेखक श्री इन्द्र विद्या वाचस्पति; प्रकाशक नालन्द प्रकाशन, पोस्ट बाक्स १३५३, बम्बई, मूल्य ३।), पृष्ठ संख्या १८४ ।

हेनरी जार्ज कील द्वारा सन् १८६६ में लिखित 'मुग़ल एम्पायर' नामक पुस्तक के आधार पर सन् १९१८ में लेखक ने यह उपन्यास लिखा था । भाषा, चरित्र-चित्रण, भाव प्रदर्शन और कथानक विस्तार में यह उपन्यास उन्नीसवीं सदी का है । इन सबसे ऊपर इस पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की छाप है । जाने अनजाने हेनरी जार्ज कील के प्रभाव से लेखक अपने को मुक्त नहीं कर सका । पुस्तक में वर्णित जिन ऐतिहासिक घटनाओं को उपन्यास का आधार बनाया गया है वे भी कल्पित और भ्रमपूर्ण हैं । शाहआलम के शासन काल में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव पड़ी । शाहआलम मराठा और अङ्गरेज़ों की प्रतिद्वन्द्विता के बीच विदेशियों के मुक़ाबले में मराठों से हमदर्दी रखता था । उसने अपने आपको महादजी शिंदे के सुपुर्द कर दिया था । वह महाद जी को अपने बेटे की तरह मानता था और कहता था—

माधो जी सींधिया फ़रज़न्द जिगर बन्दे मन ।
हस्त मसरूफ़ तलाफ़ीए सितम गारिएमा ॥

अंगरेज़ साम्राज्यवाद ने इस मराठा मुग़ल सन्धि के विरुद्ध एक ओर पठानों को उभारा और दूसरी ओर राजपूतों को और इस तरह पानीपत के तीसरे महायुद्ध में अपनी सल्तनत की नींव डाली । बंगाल बिहार, और उड़ीसा की दीवानी उसी नीति की एक कड़ी है । अङ्गरेज़ों ने अपने इस कलंकित कुकृत्य को नैतिक दृष्टि से क्षम्य बनाने के लिये शाह आलम के चरित्र को बदनाम करने का कोशिश की । प्रसिद्ध इतिहासज्ञ सर जान के ने लिखा है—"अपनी राजनैतिक दुरभिसन्धि को क्षम्य बनाने के लिए हमने शाह आलम के चरित्र पर मिथ्या आरोप लगाये ।" हमें दुख है कि लेखक महोदय जो इतिहास के विद्यार्थी हैं एक सामान्य ऐतिहासिक ग़लत फ़हमी के व्यूह को न भेद पाये । उन्हें उपन्यास के पूरे कथानक में किसी अङ्गरेज़ का छुपा हुआ हाथ न दिखाई दिया ।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की बात छोड़कर इस उपन्यास में भी १९ वीं सदी के उपन्यासों की तरह एक रोचकता और माधुर्य है । एक बार उठाकर सारी पुस्तक समाप्त करने को जी चाहता है । इस उपन्यास को प्रकाशित करने से पूर्व यदि लेखक ने एच. एच. विल्सन, बोवरिज, मेजर बी. डी. बसु, फ्रैंकलिन और सर यदुनाथ सरकार के ग्रंथों पर दृष्टि डाली होती तो उपन्यास की पृष्ठ भूमि वास्तविक रूप ग्रहण कर लेती ।

पुस्तक का मूल्य अधिक है ।

—चन्द्रदीप एम. ए., बी. फ़िल.

सिकन्दर (नाटक)—लेखक श्री सुदर्शन; प्रकाशक हिन्द किताब लिमिटेड, २६१-६३ हार्नबी रोड, बम्बई; मूल्य २॥।); पृष्ठ संख्या १६५ ।

श्री सुदर्शन हिन्दी के नामी गरामी लेखक हैं । शुरू में उन्होंने इस ग्रन्थ को फ़िल्म के लिये लिखा था । उनकी यह फ़िल्म काफ़ी आम फ़हम हुई थी । उसके बाद उन्होंने इसे रंग मंच पर खेलने के लिये लिखा । पुस्तक में सिकन्दर और पुरु के संग्राम, पुरु की पराजय, सिकन्दर की सेना का विद्रोह, सिकन्दर की वापसी, उस समय की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति आदि सभी बातों पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रकाश डाला गया है । पात्रों

में प्रधान हैं सिकन्दर, सिकन्दर के गुरु अरस्तु, सिकन्दर की प्रेयसी ईरानी रमणी रुखसाना, जेहलम का वीर राजा पुरुराज, तक्षशिला का कायर राजा आम्भिराज आदि।

सिकन्दर यूनान का महान् विजेता था। समस्त मध्य पूर्व पर आधिपत्य करके उसने खैबर के रास्ते भारत पर आक्रमण किया। तक्षशिला के राजा आम्भि ने जयचन्द का काम किया और पुरु के साथ अपना वैर निकालने का इसे उपयुक्त अवसर समझा। ईरान की तरुणी रुखसाना सिकन्दर के प्रेम में माती जेहलम पहुँचकर पुरु को अपना राखी बन्द भाई बनाती है और उससे सिकन्दर को अभय दान देने का वरदान प्राप्त करती है। युद्ध होता है उसमें सिकन्दर के ऊपर पुरु घातक वार करने से रुक जाता है। रुखसाना को दिया हुआ अपना वचन उसे याद आता है। इसी वचन में बँधकर पुरु एकबार दरबार में आये हुये सिकन्दर को क़ैद नहीं करता। यही क्षात्र धर्म का आदर्श था। पुरु की इस विशाल हृदयता का सिकन्दर पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। विजय के बाद वह उसे आदरणीय मित्र बना लेता है। पुरु का चरित्र उन्नतम भारतीयता से ओत प्रोत है। किन्तु लेखक ने जहाँ एक ओर यूनानी सिकन्दर और भारतीय पुरु के चरित्र की उच्चता दिखाई वहाँ महान् दारा के देशवासियों की प्रतिनिधि रुखसाना को बनाकर ईरानी चरित्र पर जो दोषारोपण किये हैं वे उस समय के ईरानी चरित्र के अङ्ग नहीं थे। यूनानी और आर्य चरित्र की उच्चता सिद्ध करने के लिये ज़रथुस्त्री चरित्र को अवज्ञा से रंग कर लेखक ने इतिहास के प्रति अपराध किया है। दारा और आर्त क्षत्र का ईरान बावजूद इस पराजय के नैतिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक दृष्टि से बहुत ऊँचा था। और किसी सुदर्शन की लेखनी उस पर धब्बा नहीं लगा सकती।

जहाँ तक नाटक की कला का प्रश्न है वह डायलाग की दृष्टि से बहुत ऊँची है, भाषा में प्रवाह है, कथानक दरिया की रवानी की तरह आगे बढ़ता है, भावों में ओज है और मुहावरों में अपना निखार है। पुस्तक की छपाई सफ़ाई बहुत सुन्दर है। हमें नहीं मालूम रङ्गमंच पर यह नाटक खेला गया है या नहीं लेकिन इसके अनेक दृश्यों की सेटिंग सिनेमा में सहल किन्तु रंग मंच पर मुश्किल होगी।

—विद्यानन्द सन्यासी

हमारी समस्याएं—लेखिका श्रीमती राजकुमारी बिन्दल; प्रकाशक हिन्द किताब्स लिमिटेड, बम्बई; मूल्य १।।); पृष्ठ संख्या ९१

प्रस्तुत पुस्तक में स्त्रियों की समस्याएं साधारण गृहस्थिन की दृष्टि से वर्णित की गई हैं। इसके १३ अध्याय हैं—हम और हमारी गृहस्थी, पत्नी क्या चाहती है, पति कैसे सुखी हो, सेवा, अवकाश का उपयोग, गायन कला, रूढ़िवाद, कुछ अशिष्ट प्रथाएं, हमारी सास और ननद, हमारे उत्सव, सौंदर्य, अपहरण और आत्म रक्षा, अन्न संकट और हमारा कर्तव्य।

प्रस्तुत पुस्तक में विवाहित जीवन में महिलाओं की दिनचर्या पर उपयोगी सलाहें दी गई हैं। स्वास्थ्य-रक्षा, सौंदर्य प्रसाधन, शृङ्गार, बच्चों की देख रेख, पति को खुश रखने के तरीके, सामाजिक मर्यादा, पठन-पाठन आदि विषयों पर उपयोगी प्रकाश डाला गया है।

नारी समस्या आजकल काफी विस्तृत रूप में सोची विचारी जाती है। उसके आर्थिक, नैतिक, वैवाहिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर भी जब तक पूरी पूरी रोशनी नहीं पड़ती तब तक नारी समस्या सम्पूर्ण रूप में हमारे सामने नहीं आती। इस दृष्टि से पुस्तक एकांगी भी है। किन्तु फिर भी वह साधारण कोटि की पाठिकाओं के लिए उपयोगी है।

—शान्ता धर बी० ए०, बी० टी०

हिन्दुस्तान और ब्रिटेन का आर्थिक लेनदेन—लेखक श्री जे० सी० कुमारप्पा, अनु० श्री रामनारायण चौधरी; प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृष्ठ संख्या ४८; मूल्य आठ आना।

ब्रिटेन के उपर भारत का जो पौंड-पावना निकलता है वह लगभग ५५ सौ करोड़ रुपयों का है। इस क़र्ज़ को लेकर काफ़ी बहस चल रही है और ब्रिटेन की नीयत इस क़र्ज़ को साफ़ करने की नहीं मालूम होती। इतना बड़ा साहूकार मुल्क होते हुये भी भारत के ३५ करोड़ आदमी बङ्गाल के अकाल में मर गये और आज डालर

[शेष २५४ पृष्ठ पर]

माइग्रेन

डाक्टर आनन्द मोहन चावला

माइग्रेन एक प्रकार का सर-दर्द है जिसके दौरे आते हैं। ये दौरे या तो कुछ दिनों के बाद आते हैं या कुछ सप्ताहों के बाद लेकिन उनमें एक निश्चित क्रम होता है। ये दौरे हर तरह के लोगों को होते हैं, हाँ, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक होते हैं। शारीरिक श्रम करने वालों की अपेक्षा दिमाग़ी काम करने वालों को भी ये दौरे अधिक होते हैं।

इस रोग के लक्षणों में भी काफी विभिन्नता होती है। साधारणतया सर के एक तरफ़ दर्द होता है। पहले आंख से शुरू होता है फिर ऊपर सर में चढ़ता जाता है और बढ़ता जाता है। दर्द कभी कभी लगातार होता है और कभी उसमें चिलक उठती है। उसकी अवधि भी कोई निश्चित नहीं होती। कभी आँखों के आगे इसमें तारे दिखाई देने हैं या कभी आंखों के आगे अंधेरा छा जाता है। कुछ मरीज़ों का चेहरा लाल हो जाता है और कुछ को जारा सा लगने लगता है। लगभग सभी मरीजों को भोजन के प्रति रुचि नहीं रहती। दौरा शुरू होते ही लोगों को उल्टी और कै होने लगती है।

दौरे की पीड़ा, अवधि और क्रम की विभिन्नता प्रत्येक मरीज़ में अलग अलग होती है। प्रत्येक मरीज़ के लक्षणों का निदान करने में सावधानी बरतनी चाहिये क्योंकि दुर्भाग्य से इस मर्ज के निश्चित लक्षण नहीं होते। किन्तु फिर भी अधिकांश मरीजों के कुछ उपरी लक्षण मिलते जुलते हैं और इससे माइग्रेन के दौरों की पृष्ठ भूमि का अन्दाज हो सकता है।

माइग्रेन के रोगियों में एक लक्षण मिलता जुलता होता है, वह यह कि रोज मर्रा के जीवन में या तो दिमाग़ी काम द्वारा या भावुक प्रतिक्रियाओं द्वारा उनका शिरा संघर्ष (nervous tension) बढ़ जाता है। शरीर एक निश्चित मिक़दार तक ही इस संघर्ष की प्रतिक्रिया बर्दाश्त करता है। जब यह सीमा पार कर जाती है तब इस बात की आवश्यकता होती है कि दिमाग़ी श्रम अथवा भावुकता को रोका जाय। कभी कभी इस संघर्ष की प्रतिक्रिया शरीर के विभिन्न अवयवों की ओर मुड़ जाती है और बोझ से ये अवयव बग़ावत करते हैं और इस तरह जो प्रतिक्रिया होती है उससे शरीर को हानि पहुँचती है।

इस तरह माइग्रेन के अनेक रोगी यह तजरुबा करते हैं कि उन्हें कुछ्ल और सर दर्द साथ साथ होते हैं। इसीसे उन्हें मतली आने लगती है, पित्त भड़क जाता है और कै होने पर राहत मिलती है। सौभाग्य से माइग्रेन के दौरे अपने आगमन की सूचना दे देते हैं। उदासी, घबराहट, चिड़चिड़ापन, थकान या पज़मुर्दगी उसके पूर्व-लक्षण हैं। सर दर्द प्रारम्भ होने के पूर्व आँखों के आगे धुन्ध सा छाने लगता है।

ऐसा लगता है जैसे नर्वस सिस्टम बेक़ाबू हो जाता है। गरदन और सर की शिरा ग्रन्थियां काम करना बन्द कर देती हैं। इन धमनियों में आवश्यकता से अधिक रक्त का संचार होने लगता है। इसी के परिणाम स्वरूप माथा दबदब करने लगता है और माइग्रेन का दौरा शुरू हो जाता है।

माइग्रेन की चिकित्सा के लिये रोगी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक अध्ययन करना चाहिये। रोगी को दौरों से मुक्ति दिलाने के लिये नीचे लिखे उपाय काम में लाने चाहिये—

(१) दिमाग़ी श्रम के आधिक्य और भावुकता से बचने का प्रयत्न करना चाहिये। माइग्रेन के रोगी आम-तौर पर नर्वस, तुनुक मिजाज, चिन्तित, ईमानदार, आलोचना से खिन्नमना, और जीवन और उसकी जिम्मेवारियों को गम्भीरता से लेते हैं। उनकी समझदारी भी साधारण स्तर से ऊँची होती है। सबसे पहली आवश्यकता यह है कि इन रोगियों के दिमाग़ी और शारीरिक श्रम में एक सन्तुलन पैदा किया जाय। दिमाग़ी केन्द्रों और ग्रन्थियों पर ज़ोर पड़ने से बचाया जाय अन्यथा कार्याधिक्य, नींद की कमी और भावुकता-पूर्ण समस्याएँ सर दर्द के दौरे का कारण बन सकती हैं।

(२) क्रम पूर्वक घर से बाहर शारीरिक व्यायाम इसमें बहुत लाभ पहुँचाता है। व्यायाम केवल व्यायाम के उद्देश्य से नहीं बल्कि दिमाग़ के शिरा-केन्द्रों को आराम देने के उद्देश्य से करना चाहिये। शारीरिक श्रम में व्यस्त होने से दिमाग़ पर ज़ोर पड़ना उतने समय तक स्थगित रहेगा। भोजन से पूर्व घूमना और १० मिनट का नित्य प्रति का व्यायाम नर्वस और दिमाग़ी सन्तुलन कायम रखने में सहायता देगा।

(३) गरिष्ट भोजन और मिर्च मसाले बचाने चाहिये। ज्यादा गरिष्ट भोजन खाने से पाचन शक्ति पर ज़ोर पड़ता है और इससे गम्भीर वृत्ति वाले रोगियों को बार बार माइग्रेन के दौरे आते हैं। अधिक उत्तम है की सादा, जल्द हज़म होने वाला, और ताजा भोजन किया जाय। फल, सलाद, सब्जियाँ, दूध, दही, घी, मठा, और उबला हुआ साबित अनाज भोजन का प्रमुख अङ्ग होना चाहिये। यदि माइग्रेन के दौरे के साथ साथ अपच और कब्ज़ का कष्ट भी होता है तो इस बात की जाँच करनी चाहिये कि कौनसी वस्तु खाकर माइग्रेन का दौरा प्रारम्भ हुआ और भोजन में से इस तरह की वस्तुएं बचानी चाहियें। कभी कभी कोई ख़ास चीज़ खा लेने से दौरा शुरू हो जाता है और भविष्य में इस तरह की चीज़ खाने से बचना चाहिये।

(४) रोगी को स्वास्थ्यवर्धक आदतें डालनी चाहियें। यह एक निश्चित बात है कि साधारण जीवन चर्या से हटकर ज़रा भी ज़ोर डालने से माइग्रेन का दौरा हो जाता है। अतएव इस मर्ज़ के मरीज़ को बँधे हुये समय पर भोजन, बँधे हुये घण्टों में सोना, बँधे हुये घण्टों में काम करना, और विधिवत व्यायाम करना चाहिये। अपने ऊपर किसी बात में ज़्यादा ज़ोर न डालना चाहिये। इस उपाय से दौरों को बचाया जा सकता है।

(५) रोगी को काम के बीच में अक़सर आराम करना चाहिये। माइग्रेन के रोगी के लिए यह आवश्यक है कि वह यथेष्ट मात्रा में सोये। और दिन में काम के बीच में दो एक बार आराम करे और थकान से बचे। इस तरह उसकी रक्तवाहिनी धमनियों और शिराओं को आराम मिलेगा। काम बदल देने से भी काफ़ी आराम मिल जाता है। शिरा-संघर्ष को कम करने और माइग्रेन के दौरों से बचने के लिए किसी गृहउद्योग या शरीर श्रम में लगने से काफी लाभ होता है।

(६) दौरे के कारणों का ठीक ठीक निदान करने के लिये दौरे की समस्त परिस्थिति को लिख लेना चाहिये। कभी कभी दौरे और क्षणिक कोष्टबद्धता साथ-साथ होती है। स्त्रियों को बहुधा रजोधर्म के साथ साथ ये दौरे होते हैं। कभी कभी गाल ब्लैडर की तकलीफ़ के साथ साथ ये दौरे होते हैं। कभी कभी इन दौरों का कारण शारीरिक न होकर मानसिक द्वन्द्व, उद्वेग या भावुकता होती है। मानसिक परिस्थिति इन दौरों को शुरू कर देती है। इन सब कारणों को विधिवत् अध्ययन करने से उनका सुधार किया जा सकता है।

(७) माइग्रेन के दौरे का प्रथम आभास पाते ही पहले उनका इलाज होना चाहिये। इससे रोगी अधिक कष्ट से बच जाता है। रोग को दबाने के लिये किसी दवा का सेवन हानिकर होता है। हां डाक्टर अपनी देखरेख में कोई दवा दे तो वह दूसरी बात है। दौरे के प्राथमिक लक्षण प्रारम्भ होते ही गरम पानी और नीबू का रस लेना चाहिये और पैरों को किसी ऊँची चीज़ पर रख कर अँधेरे कमरे में लेट रहना चाहिये। पैरों पर गरम पानी की बोतल रखना चाहिये और सर पर ठण्डे पानी की पट्टी रखनी चाहिये।

इन उपायों से माइग्रेन की तकलीफ़ को और उसके क्रम को बहुत कुछ घटाया जा सकता है।

बापू-वाणी

वनस्पति घी का खतरा

"···वनस्पति तो हमेशा अच्छी होती है। वनस्पति यानी फल, फूल, भाजी की पत्तियाँ वगैरह। लेकिन जब वह दूसरी वस्तु की जगह लेती है तब ज़हर बन जाती है। वह घी नहीं है और न हो सकती है। जब होगी तो मैं ही जोरों से कहूँगा कि घी की कोई ज़रूरत नहीं। किसी प्राणी या जानवर के दूध में से जो चिकना पदार्थ पैदा होता है, वह घी या मक्खन है। उस घी के नाम से जो वनस्पति तेल, घी या मक्खन की शकल में या उसके नाम से बेचा जाता है, वह हिन्दुस्तान के साथ किया जाने वाला एक बड़ा धोखा है, दगा है। हिन्दुस्तान के व्यापारियों का धर्म है कि वे किसी भी शकल में घी के नाम से ऐसा दिखावा करके कोई तेल या पदार्थ न बेचें। किसी सरकार को तो ऐसा हरगिज़ न करना चाहिये। हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों को न दूध मिलता है और न छाछ न घी या मक्खन। नतीजा यह होता है कि लोग मरते जाते हैं, निस्तेज बनते हैं। ऐसा लगता है कि मनुष्य के शरीर को मांस या दूध, और दूध से बनी हुई चीज़ें जैसे दही, छाछ, घी, मक्खन, वगैरह की ज़रूरत है। इस बारे में जो धोखा देता है या जो इसे दरगुज़र करता है, वह हिन्दुस्तान का दुश्मन बनता है।"

नई दिल्ली, ६—१०—४६

ग़ल्ले की क़ीमत

"मैं तो ग़ल्ले की क़ीमत और भी कम कर देना चाहता हूँ। मैं ख़ुद किसान हूँ। शायद आप नहीं जानते मगर मैं जानता हूँ कि किसानों को जितनी क़ीमत दी जाती है वह उनके घर नहीं पहुँचती। किसानों को जो धक्का पहुंचा है और ग़ल्ले की क़ीमत बढ़ने से जो सवाल पैदा हो गया है अगर हुकूमत उसको हल नहीं करती तो उसे ख़त्म हो जाना चाहिये। हुकूमत किसानों का गल्ला घोंटकर आम लोगों को सस्ता ग़ल्ला कभी नहीं दे सकती। माना कि ग़ल्ले की क़ीमत ज़्यादा है मगर बीच के खाने वालों यानी व्यापारियों और दलालों वगैरह की वजह से पूरी क़ीमत किसान तक नहीं पहुँचती। अगर ऐसा न हो तो अनाज पैदा करने वाले का पेट भर जाय। मैंने तो खादी में भी कताई की दर आठ आने तक ले जाने की सूचना दी और चार आने तक कताई का दाम पहुँचा भी। कई लोगों ने उज्र किया था कि कताई का दाम बढ़ने से खादी महंगी हो जायगी और उसके गाहक नहीं मिलेंगे। पर मैंने उसकी कोई परवाह नहीं की। इससे ग़ल्ला पैदा करने वालों को मेरे रुख का पता चल सकता है। मैं तो बीच के इस व्यापारी और दलाल वर्ग को बिलकुल निकाल देना चाहता हूँ। यही वर्ग है जो किसान को चूसता है। वरना कोई वजह नहीं कि किसान भूखा मरे। साथ ही यह भी है कि जो किसान नफ़ाख़ोरी या काला बाज़ार करता है, वह किसान नहीं रहता। वह तो ज़मींदार जैसा ही बन जाता है।"

२०-८-४६

कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं से

"आपको जो नई कांग्रेस योजना बनानी है वह आपके बस की बात है। जब तक नई योजना नहीं बनती, तब तक बेक़ायदगी को दूर करने के लिये इतना करें कि कोई चुनाव न होने दें। जिनको चुन लिया गया है, वे रहें, और बाक़ी सब कांग्रेसी ख़िदमतगार बन जाँय। अगर आप ऐसा करेंगे तो कांग्रेस के सब झगड़े बन्द हो जायंगे।

"···मेरी तरह आप भी कांग्रेस से हट जाँय। मैं कांग्रेस से हटकर उसके साथ ज़्यादा घुल मिल गया हूँ। जब मैं कांग्रेस में था तो छोटी-छोटी बातों में दख़ल दिया करता था और लोग मुझे परेशान करते थे। मगर अब ऐसा नहीं होता। अब मैं जितना दिक करने दूँ उतना ही वे कर सकते हैं।···आप कहते हैं यहाँ झगड़ा है, वहां झगड़ा है। मैं तो कहूँगा कि अगर कांग्रेस में अल्पमत वाले नहीं हैं या कम हैं तो मेरी तरह आप उसमें से

निकल जाइये। मेरे दिल में कोई तमन्ना नहीं। मुझे याद है जब फैजपुर कांग्रेस हुई थी तब मैं कांग्रेस से निकल चुका था। वहाँ मुझे बुलाया गया था। वहीं श्रीमती अनुसुइया बाई काले ने मुझसे कहा था—'आप कांग्रेस से निकल गये हैं। आप बड़े या हम बड़े?' इस पर मैंने कहा—'मैं बड़ा हूँ।' उन्होंने कहा—'कैसे?' मैंने कहा—'यहाँ इतने लोग जमा हैं इनमें से सब तो कांग्रेस के मेम्बर नहीं होंगे।' उस वक्त जब मैंने लोगों से पूछा कि आप में से कांग्रेस को चवन्नी देने वाले कितने हैं तो बहुत थोड़े लोगों ने हाथ उठाये, और जब मैंने पूछा कि आप में से चवन्नी मेम्बर कितने नहीं हैं तो एक भीड़ ने हाथ उठाये। ये ही सच्चे कांग्रेस मैन थे, जो उसकी सेवा करना चाहते हैं, पर कोई इनाम नहीं चाहते। इनके बिना कांग्रेस के कोई माने भी नहीं रह जायंगे। कांग्रेस मैन का फर्ज यह है कि वह कांग्रेस पर कब्जा करने के बजाय कांग्रेस का सेवक होकर रहे। अगर यही तरीका रहे तो कांग्रेस में अल्प संख्या और बहु संख्या का सवाल न उठे। उस पर कब्जा करने का खयाल उसे खत्म कर डालने का खयाल है। जो सच्चा कांग्रेस मैन है, वह हत्यारा बनने के बजाय खुद आत्महत्या कर लेगा।"

नई दिल्ली, २०-६-४६

भाई के हाथों भाई का खून

"अब तक की अपनी जिन्दगी में भाई-भाई की इस खूंरेजी से बढ़कर डरावनी कोई चीज मैंने कभी नहीं देखी। २० साल तक दक्खिनी अफरीका में और ३० साल तक यहाँ हिन्दुस्तान में मैंने गहरी लड़ाई लड़ी है। लेकिन आपस की इस मारकाट ने मेरी अक़ल गुम कर दी है। दोनों क़ौमों को फिर से हिलमिल कर शान्ति पूर्वक रहने के लिये मैं किस तरह समझा सकता हूँ, इस एक सवाल का हल ढूंढने के लिये ही मैं बङ्गाल आया हूँ···।

"बंगाल में मुसलमानों ने हिन्दुओं को कसाई की तरह क़त्ल किया और कसाईपन से भी बदतर काम किये। उधर बिहार में हिन्दुओं ने भी मुसलमानों को उसी तरह क़त्ल किया। जब दोनों ने ही दुष्टता के काम किये हैं, तब दोनों की करतूतों का मुक़ाबला करना या कहना फिजूल है कि एक दल दूसरे दल से कम बुरा है। इसी तरह यह पूछने में भी कोई सार नहीं कि पहले दंगा किसने शुरू किया। अगर आप बदला लेना चाहते हैं तो इसकी कला मुझसे सीखिये। मैं भी बदला लेता हूँ मगर वह दूसरे क़िस्म का होता है। अपने बचपन में मैंने एक गुजराती कविता पढ़ी थी जिसमें कहा गया था कि 'जो तुम्हें एक गिलास पानी देता है उसे तो गिलास पानी देने में कोई बड़ाई नहीं। सच्ची बड़ाई तो इसमें है कि तुम अपना बुरा करने वाले के साथ भला करो।' इसे मैं ऊँचे दरजे का बदला मानता हूँ।

"मैंने पुराने खलीफाओं में से किसी खलीफा की एक कहानी पढ़ी थी। किसी आदमी ने खलीफा पर तलवार से वार किया। खलीफा ने हमला करने वाले के हाथ से तलवार छीन ली और वे उसे मारना ही चाहते थे कि उसने खलीफा के चेहरे पर थूक दिया। इस पर खलीफा ने उसे बिना मारे जाने दिया क्योंकि इस बेइज्जती ने उनके दिल में जाती गुस्सा पैदा कर दिया था। इसका उस घातक पर बड़ा असर पड़ा और वह मुसलमान बन गया। जो जबरदस्ती से मुसलमान बनाया जाता है वह आदमी नहीं रह जाता।"

"आजकल मैं दुःख दर्द और आफत मुसीबत के सिवा और कोई बात आपको सुना नहीं सकता। जहाँ कहीं मैं गया हूँ, वहीं मैंने बरबादी के दिल दहलाने वाले नजारे देखे हैं। यह सब देखकर मेरी आँखों के आँसू सूख गये हैं। जो खुद रोता है वह दूसरों के आँसू नहीं पोंछ सकता। लेकिन मेरा दिल तो रो ही रहा है।...जानवर भी अपनी भलाई करने वाले के साथ दोस्ताना बरताव करते हैं। लेकिन आदमी तो भगवान का ही एक रूप है। अपने को इस विरासत के लायक साबित करने के लिये इनसान को बुराई के बदले में भलाई करनी चाहिये।"१७—११—४६

सम्पादकीय विचार

बापू के अवसान के बाद

गीता के सच्चे कर्मयोगी की तरह कर्तव्यरत जीवन बिता कर बापू ने कर्तव्यरत मोक्ष प्राप्त किया। जितना महान उनका जीवन था उससे भी अधिक महान उनकी मृत्यु साबित हुई। भारत की महान आत्मा दुःख, दैन्य, दरिद्रता और अज्ञान के साथ साथ अस्पृश्यता और साम्प्रदायिकता के कठोर ब्रह्मपाश में भयानक पीड़ा से तड़प रही थी। परतंत्रता का बन्धन तो एक गौण बन्धन था। वह इसीलिये था कि हम जामवन्त की तरह अपनी शक्ति को भूल गये थे। बापू ने उस शक्ति की हमें पहचान कराई। अपनी शक्ति का परिचय पाते ही हमारे लिये सुयश और सफलता के द्वार खुल गये। बापू ने ४० करोड़ मिट्टी के पुतलों में प्राण-मंत्र फूंक कर उनमें संजीवन भर दिया। हमने उनके बताये हुये अहिंसात्मक तरीके से अपनी आज़ादी की लड़ाई लड़ कर जीती। किन्तु हमारी वह स्वतन्त्रता केवल एकांगी थी। हमारा देश राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद भी सामाजिक और आर्थिक परतंत्रता में जकड़ा रहा। और सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में राजनैतिक स्वतंत्रता प्राणहीन बन जाती है।

अस्पृश्यता और साम्प्रदायिकता हमारी सामाजिक गुलामी के दो लौह-द्वार हैं। अस्पृश्यता पर सबसे पहली ज़बरदस्त चोट भगवान बुद्ध ने की। उन्होंने अपनी समस्त शक्ति से भारतीय संस्कृति के इस कोढ को दूर करने का प्रयत्न किया। किन्तु जात-पाँत और धर्माचार्यों के स्थायी स्वार्थों ने सामाजिक स्वतन्त्रता के उस महान प्रयोग—बौद्ध धर्म—को विफल कर दिया। सातवीं सदी के अन्त में जब इसलाम भारत आया तो यहाँ की अस्पृश्य जातियों ने उसमें अपना उद्धारक पाया। अब तो सभी इतिहासज्ञ इस बात को स्वीकार करते हैं कि भारत में इसलाम के इतने अधिक प्रचार का श्रेय भारत की सामाजिक दुरावस्था और हमारे जाति भेद को है। एक ओर हम करोड़ों अछूत कहलाने वाले प्राणियों को मानव का दरजा देना तक स्वीकार नहीं करते थे और दूसरी ओर हमने हर आगन्तुक के लिये अपनी वर्ण व्यवस्था के व्यूह का दरवाज़ा बन्द कर दिया था। हमारी जाति-व्यवस्था से लोग बाहर निकल तो सकते थे किन्तु उसमें प्रवेश पाना असम्भव था। जब तक हम कर्मणा-जाति-भेद मानते रहे तब तक बाहर से आने वाली जातियाँ शक, कुशान, हूण, यवन, गूजर, जाट सब हिन्दू धर्म की जाति व्यवस्था का अङ्ग बन गये। किन्तु इसलाम के आते आते तक हमने अपना प्रवेश द्वार दृढ़ता से बन्द कर दिया। जाति भेद के इस संकुचित लौहपाश में भारत की आत्मा तड़प उठी। इसलाम के प्रवेश ने हमारी समस्या को और अधिक जटिल बना दिया। हमारी अस्पृश्य जातियों का आहत अपमान इसलाम का कवच पहन कर पग-पग पर हमें चुनौती देने लगा।

हमारे मध्यकालीन सन्तों ने भारत के भावी दुर्भाग्य का अन्दाज़ा लगा लिया। उन्होंने दृढ़ता और कठोरता से हमारे अस्पृश्यास्पर्श और जाति भेद के क़िले पर कुठाराघात करना शुरू किया। साम्प्रदायिक समस्या इसी जातिभेद की समस्या का स्वाभाविक परिणाम थी। कबीर, नानक, दादू, पल्टू, मलूकदास, तुकाराम, चैतन्य, ग़रीबदास, बुल्लेशाह, प्राणनाथ, शम्स तबरेज़, सरमद आदि सैकड़ों हिन्दू मुसलमान सन्तों ने भारत की आत्मा को जातियों और सम्प्रदायों के बन्धनों से मुक्त कर उसे मानवता के उच्च सिंहासन पर बैठाने का प्रयत्न किया। हुसेन शाह, शेरशाह, अकबर, दारा शिकोह, हैदर अली, नाना फडनवीस, सबने इस प्रश्न में योग दिया किन्तु भारत के दुर्भाग्य से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आगमन ने सन्तों के इस प्रयत्न को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। औरंगज़ेब जैसे अन्धे शासक ने भी इसमें योग दिया। गुरु राम दास के समय अमृतसर के स्वर्ण मन्दिर की बुनियाद जिन सिक्खों ने लाहौर के प्रसिद्ध मुसलिम संत मियां मीर से रखवाई थी वे ही सिख भयानक साम्प्रदायिकता के अङ्ग बनने पर विवश कर दिये गये। भारत के दुर्भाग्य से हमारे वे लौह बन्धन फिर से मज़बूत हो गये।

गान्धी जी ने हमारे देश के दुर्भाग्य के कारणों को भली भाँति देख-समझ लिया। वे निदान करके रोग के मूल में पहुँच गये और तभी उन्होंने राजनैतिक और आर्थिक मुक्ति के रचनात्मक कार्यक्रम के साथ साथ सामाजिक मुक्ति का भी कार्यक्रम देश के सामने रखा। उन्होंने घोषणा की कि—

(१) छुआ छूत को दूर करना और,

(२) साम्प्रदायिक सद्भावना,

स्वराज्य प्राप्ति की कुञ्जी हैं। वे अपने को भंगी कहने में अभिमान करते थे। हमने अपनी जिस जड़ता को हृदय से लगाकर रखा था उसी पर उन्होंने कुठाराघात किया। उन्होंने हमें बताया कोई काम अपने आप में बुरा नहीं है। उनके आश्रम में ब्राह्मणों ने पाखाना साफ़ करने का काम किया। उन्होंने पारस्परिक खान-पान और शादी ब्याह का प्रचार किया। उन्होंने हमारी छुआछूत और जातिगत बन्धनों को ढीला कर दिया। समाज में जिन लोगों के स्थायी स्वार्थ थे वे इस क्रान्ति से तिलमिला उठे। साम्प्रदायिक कटुता गान्धी जी के प्रेम के सन्देश का सहन न कर सकी। आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में जिन लोगों के स्थायी स्वार्थ थे वे उन पर आघात होते देखकर सम्प्रदायवाद के दुर्ग में सम्मिलित मोरचा बनाकर इकट्ठा हो गये। गान्धी जी ने इस दुर्ग पर सत्य, अहिंसा और प्रेम के अस्त्रों से मार्मिक आघात शुरू किये। प्रतिक्रिया वादियों का यह हजूम सहम गया और उन्होंने उसी कायर तरीक़े से गान्धी जी की हत्या कर डाली जिस तरह उनके पूर्वजों ने कृष्ण, सुकरात, जरथुस्त्र, ईसा, मनसूर और सैकड़ों महात्माओं की हत्या की थी।

इस तरह हम देखते हैं कि गांधी जी का बलिदान कोई एकांगी और अलहदा घटना नहीं है बल्कि ऐतिहासिक क्रम विस्तार की एक कड़ी है। जो स्थायी स्वार्थ वाले कट्टर पन्थी लोग 'हिन्दू राज' का नारा लगाते थे वास्तव में वही हिन्दू धर्म के सबसे भयानक शत्रु हैं। जो लोग विश्व के सभी पैग़म्बरों और धर्म गुरुओं की मौलिक एकता और विश्व प्रतिनिधित्व को अस्वीकार करते हैं और विशिष्ट धर्माचार्यों के नाम पर अपने को सम्प्रदाय की सीमा में बाँध लेते हैं, वे राम और कृष्ण के पुजारी नहीं कहे जा सकते। वे उस सार्वभौम मानवीय एकता और विश्व बन्धुत्व के शत्रु हैं जो उपनिषदों और गीता में वर्णित है। यदि कृष्ण समस्त मानवों के हृदय में वास करते हैं तो क्या वह हिन्दू और मुसलमानों के हृदय में समान रूप से विराजमान नहीं हैं। गान्धी जी इसी विश्व व्यापी सार्वभौम धर्म को सनातन हिंदू धर्म मानते थे। उन्होंने एक बार कहा था—"धर्म मुझे प्यारा है और मेरी तो सबसे पहली शिकायत यही है कि भारतवर्ष अधार्मिक होता जाता है। धर्म से मेरा अभिप्राय हिन्दू, मुसलिम या जरथुस्त्री धर्म से नहीं है—पर मेरा इशारा उस धर्म की ओर है जिसमें सब धर्म समाये हुये हैं।" गान्धी जी मानव-मानव के बीच की समस्त भेद की दीवारों को तोड़ना चाहते थे। वे उपनिषदों और गीता धर्म की संस्थापना करना चाहते थे। उनकी नज़रों में एक सच्चा हिन्दू, एक सच्चा मुसलमान, ईसाई, पारसी सभी कुछ है। जिस सर्व धर्म समभाव पर वे विश्वास करते थे, सब धर्मों का सांस्कृतिक समन्वय उसकी प्राण धारा थी।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या गान्धी जी का बलिदान हम व्यर्थ जाने देंगे? अगर ऐसा हम करते हैं तो हम ऐसे व्यक्ति को धोखा देंगे जिसने हमें आत्म सम्मान, राजनैतिक स्वतन्त्रता और आत्म निर्भरता दी। गान्धी जी के बलिदान का प्रायश्चित्त यही हो सकता है कि हम उन सिद्धान्तों का प्रचार करें जिनकी संस्थापना के लिये गान्धी जी ने अपने आपको उत्सर्ग किया। वे सिद्धांत हैं—मानव-मानव के बीच समता, जाति बन्धनों का नाश, सर्व धर्म समभाव और मानव द्वारा मानव के शोषण का अन्त।

इन सिद्धान्तों के प्रचार के लिये हम क्या करें? हमें प्रत्येक नगर और ग्रामीण क्षेत्रों में गान्धी संस्कृति केन्द्रों की स्थापना करनी चाहिये जिनके सदस्यों का यह कर्तव्य होगा कि वे इन सिद्धांतों के अनुसार स्वयं आचरण करें और दूसरों से आचरण करावें। पुस्तकों, पैम्फ़लेटों, विज्ञप्तियों, सभाओं, मेलों, खेल-तमाशों, कवि सम्मेलनों, मुशायरों के द्वारा इन सिद्धान्तों का प्रचार किया जाय। जातिभेद, साम्प्रदायिकता और अस्पृश्यता के गढ़ को हमें जड़ मूल से उखाड़ फेंकना है। हमें बच्चों की पाठ्य पुस्तकों में ऐसे सबक़ रखने हैं जिन्हें पढ़कर बच्चे संसार के समस्त धर्मावलम्बियों को अपना आत्मीय समझें और मानव मानव के बीच के अन्तर को और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को घोर पातक समझें। ऊँचे दरजे के विद्यार्थियों में भी हमें यही भावना भरनी है। गान्धी संस्कृति केन्द्र में अच्छा पुस्तकालय भी होना चाहिये जहां गान्धी जी की शिक्षाओं का संसार के अन्य महापुरुषों की शिक्षाओं के साथ समन्वयात्मक अध्ययन

किया जा सके। इन केन्द्रों के संरक्षण में सर्व धर्म समभाव सम्मेलनों का भी आयोजन होना चाहिये। वर्ष में एक बार या तो २ अक्तूबर को या ३० जनवरी को गान्धी मेले सारे देश में लगने चाहियें जहां समन्वयात्मक संस्कृति सम्मेलन होने चाहियें। ग्रामीण क्षेत्रों के गांधी संस्कृति केन्द्रों में समग्र ग्राम सेवा का आदर्श सामने रख कर किसानों का संगठन करना चाहिये। गान्धी जी के बताये हुये १८ धाराओं वाले रचनात्मक कार्य क्रम पर हमें जी-जान से व्यवहार करना चाहिये। गान्धी स्मारक कोष से सारा कार्य क्रम चलना चाहिये।

हमें विश्वास है यदि एक वर्ष तक ईमानदारी और सचाई के साथ इस कार्य क्रम पर अमल किया गया तो निश्चय ही गान्धी जी का बलिदान महान आशीर्वाद बन कर हमारे सरों के ऊपर अपनी वरद छाया रखेगा।

स्वर्गीया बहिन सुभद्रा

गत १५ फ़रवरी को एक मोटर दुर्घटना से हिन्दी की प्रसिद्ध कवियत्री और महाकौशल की अग्रगण्य जननेत्री और क्रांतिकारिणी समाज सुधारिका बहिन सुभद्रा कुमारी चौहान का लगभग ४३ वर्ष की उम्र में अचानक स्वर्गवास होगया।

१६ वर्ष की अवस्था में विवाह के साथ साथ गान्धी जी के असहयोग की रणभेरी सुनकर वे त्याग-पथ की पथिक हुईं। तबसे निरन्तर अपनी मृत्यु के दिन तक देश की स्वतन्त्रता के निमित्त वे बराबर संघर्ष करती रहीं। जीवन में कितनी ही बार उन्हें जेल यात्रा करनी पड़ी। कभी कभी वे और उनके पति श्री लक्ष्मण सिंह चौहान दोनों जेल में बन्द रहे और उनके छोटे-छोटे बच्चे निरालम्ब और निराश्रित बाहर और कभी कभी वे अपनी छोटी बेटी ममता के साथ जेल में रहीं, किन्तु किसी भी स्थिति में उनके मन पर किसी तरह का बोझ नहीं रहा। त्याग और बलिदान से उन्हें आत्मिक सुख प्राप्त होता था। वे सरस्वती की कृपापात्री थीं इसलिये सारे जीवन निर्धनता उनका पल्ला पकड़े रही। किन्तु अपनी निर्धनता में ही उन्हें असीम सुख था। जब तक कष्ट मय जीवन था वे जीवित रहीं जिस दिन लक्ष्मी उन पर सदय हुईं उन्होंने मृत्यु माधुरी की गोद में शरण लेली। मालूम होता है कि त्याग और तप का जीवन व्यतीत करने ही वे इस धरित्री पर आई थीं। जिस समय राज-नीति में उन्होंने प्रवेश किया भारतीय महिलाओं के रास्ते में अनेक सामाजिक बन्धन थे। उन्होंने उन समस्त बन्धनों का अतिक्रमण किया। लोगों ने उँगली उठाई, लांछन लगाये किन्तु उन्होंने किंचित मात्र परवाह न की। जब सन् १९२३ में उन्हें जेल जाना पड़ा उन नये अनुभव का उन्हों ने अत्यन्त उत्साह से स्वागत किया। सन् १९२१ में दोनों मर्तबा नागपुर और जबल-पुर में वे इन पंक्तियों के लेखक के साथ ही गिरफ़ार की गईं। जब बड़े बड़े सेनानी प्रतिक्रिया के शिकार होगये वे निरन्तर बलिदान के अग्न को छूती रहीं।

सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र के यशस्वी जीवन के साथ साथ वे प्रसिद्ध कवियत्री, कहानीकार और लेखिका थीं। अपनी रचनाओं पर दो बार उन्हें सेकसरिया पुरस्कार मिला किन्तु उनका सबसे बड़ा पुरस्कार उनकी जनप्रियता थी। उनकी 'झाँसी वाली, रानी,' 'वीरों का कैसा हो बसन्त,' 'जालियाँवाले बाग में बसन्त' और 'राखी' आदि यदि उत्कृष्ट राजनैतिक कविताएँ थीं तो मां की ममता से सनी वात्सल्य प्रेम को व्यक्त करने वाली भी उन्होंने उत्कृष्ट कविताएँ लिखी हैं। सम्भवतः बच्चों की कविताएँ लिखने में हिन्दी साहित्य में उनका अग्रगण्य स्थान है।

उनका त्याग और साधना से भरा जीवन सब के लिये एक आदर्श था। अपनी ऐसी महान पुत्री को खोकर भारत माता सचमुच निर्धन हो गई।

बर्मा और सिंहल की मुक्ति

ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारत की तरह हमारे पड़ोसी राष्ट्रों सिंहल और बर्मा को भी अपने साम्राज्यवादी चँगुल से मुक्ति दे दी। बर्मा को किसी समय ब्रिटिश साम्राज्य-वाद ने भारत का अङ्ग बना दिया था और फिर उसे साम्राज्यवादी कारणों से ही अलग भी कर दिया। इन दोनों देशों से हमारा हजारों वर्ष का सांस्कृतिक, धार्मिक, व्यापारिक और नैतिक सम्बन्ध रहा है। दोनों देशों का भारत की आत्मा के साथ घनिष्ट सम्पर्क रहा है। भारत ने अपनी महानता और गौरव के दिनों में भी कभी अपने पड़ोसी राष्ट्रों पर राजनैतिक विजय की दृष्टि नहीं डाली। हम दूसरे देशों में गये किन्तु देने के लिये, लेने के लिये नहीं। हमने उन्हें अपनी सांस्कृतिक दौलत से और अपनी कलाओं से मालामाल किया। हमारी इस

मैत्री भावना ने सारे पूर्वीय संसार को हमारे प्रेमपाश में आबद्ध कर दिया। बदकिस्मती से हम और हमारे पड़ोसी सदियों तक गुलामी के पाश में जकड़े रहे और हमारे साथ साथ उनकी गुलामी की कड़ियां भी टूटीं।

आज शक्तिनीति के ईंधन से दुनिया में युद्ध के जो काले काले बादल छा रहे हैं उसके सामने एशियाई राष्ट्रों की सद्यःप्राप्त स्वतन्त्रता अवाक हो रही है। उसके मन में भय का भी सन्चार हो रहा है। आज एशियाई राष्ट्रों की स्वाधीनता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये इस बात की बेहद आवश्यकता है कि हम एशियाई देशों का एक एशियाई राष्ट्र संघ निर्माण करें। एशिया के समस्त राष्ट्र मिलकर एक शक्तिशाली इकाई बन सकते हैं। प्रशान्त और हिन्द महासागर पर आज अमरीका का कूटनीतिक जाल बिछ रहा है। एशिया को इस जाल को भी छिन्न भिन्न करना है। एशियाई राष्ट्र संघ से किसी को भयभीत होने की भी आवश्यकता नहीं। एशिया का कोई राष्ट्र जापान का पथानुगामी नहीं है। हमारी संस्कृति हमें सौहार्द्रता का प्रचार करने का सन्देश देती है। किन्तु हम यह भी जानते हैं टिन, रबर, पेट्रोलियम, युरेनियम, कोयला, कच्चे माल आदि की दृष्टि से, जिनका युद्ध में बेहद महत्व है, एशिया सारे संसार से धनी है किन्तु हमारी इस युद्ध सामग्री से यूरोप ने हमें गुलाम बनाया और आज वह इस युद्ध सामग्री से स्वयं अपनी आत्म हत्या करना चाहता है। एशिया को जगद्गुरु के नाते अपना, यूरोप का और सारी दुनिया का उद्धार करना है।

काले-काले बादल

दूसरे महायुद्ध के विस्तार में ही तीसरे महायुद्ध की बुनियादें पड़ गईं थीं। किसी फ़ारसी कवि ने लिखा है—"युद्ध क्षेत्र में ही तलवारों की फसल बोई जाती है। वह अवसर पाकर फलती फूलती है और उसीसे इनसानों की खेती कटती है।" युद्ध की समाप्ति पर सुरक्षा समिति बनी। विजित और पराजित सब को यह आशा थी कि वह सुरक्षा समिति भावी महायुद्धों को सम्भव न होने देगी। किन्तु वैसी कोई बात नहीं हुई। समिति के सदस्यों ने अनुशासन बरता और न ईमानदारी। शीघ्र ही समिति के सदस्य शक्ति-नीति के दल दल में धँस गये। एंग्लो-अमरीकन और सोवियत् रूस दोनों ने अपने अलग अलग प्रभाव क्षेत्र बना लिये। धीरे धीरे सुरक्षा समिति एक मज़ाक़ की वस्तु बनकर रह गई।

यूरोप में रूसी प्रभाव क्षेत्र को कमज़ोर करने के लिये ट्रूमेन ने मार्शल योजना प्रचलित की। इसके अनुसार अमरीकी संरक्षण में आने पर यूरोप के देशों को अमरीकी डालर की सहायता का आश्वासन दिया गया। दूसरी ओर स्तालिन ने भूख और नङ्ग से बचाने के लिये यूरोप के देशों को सहायता देने का वचन दिया। यूगोस्लाविया से लेकर फ़िनलैण्ड तक रूस ने समस्त यूरोपीय देशों के साथ सुरक्षा सन्धि कर ली।

परिस्थिति दिन प्रति दिन गम्भीर होती जा रही है। इस छोटी सी टिप्पणी में हम इस स्थिति पर पूरी तरह प्रकाश नहीं डाल सकते। हमारे पाठक इस समय की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को पूरी तरह समझने के लिये व्यग्र होंगे। उनके लाभ के लिये हम "विश्ववाणी" के मई अंक को 'अन्तर्राष्ट्रीय अंक' के रूप में निकाल रहे हैं। इससे समस्त संसार की परिस्थिति आईने की तरह पाठकों के सामने आ जायगी।

अपने सम्बन्ध में

'विश्ववाणी' के कृपालु प्रेमियों को बहुधा यह शिकायत होती है कि सम्पादकीय विभाग से उनके पत्रों का तुरन्त उत्तर नहीं दिया जाता। हम अपने इस अपराध को स्वीकार करते हैं। किन्तु गत एक वर्ष से कार्य इतना बढ़ गया है कि उसे पूरा कर सकना शारीरिक दृष्टि से असम्भव है। 'विश्ववाणी' के अवैतनिक सम्पादन के साथ-साथ स्थानीय कांग्रेस के कार्य का समस्त भार भी 'विश्ववाणी' के सम्पादक के सर पर है। इसके अतिरिक्त स्थानीय रेलवे मेन्स यूनियन, बैंक इम्प्लाईज यूनियन, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड इम्प्लायीज एसोशियेशन, शुगर मरचेण्ट्स एसोसियेशन, ग्रेन मर्चेण्ट्स एसोसियेशन आदि कई संस्थाओं का भी वह सभापति है। फिर महीने में आठ दिन ब्लड प्रेशर के दौरों से चारपाई पर पड़ा रहना पड़ता है। इससे काम इकट्ठा हो जाता है और पूरा नहीं हो पाता। मेरी इन विवशताओं को देखकर मुझे विश्वास है 'विश्ववाणी' के दयालु प्रेमी मुझे क्षमा करके अपने प्रेम का दान मुझे देते रहेंगे।

—विश्वम्भरनाथ



अमरनाथ की गुफा



अमरनाथ के यात्री



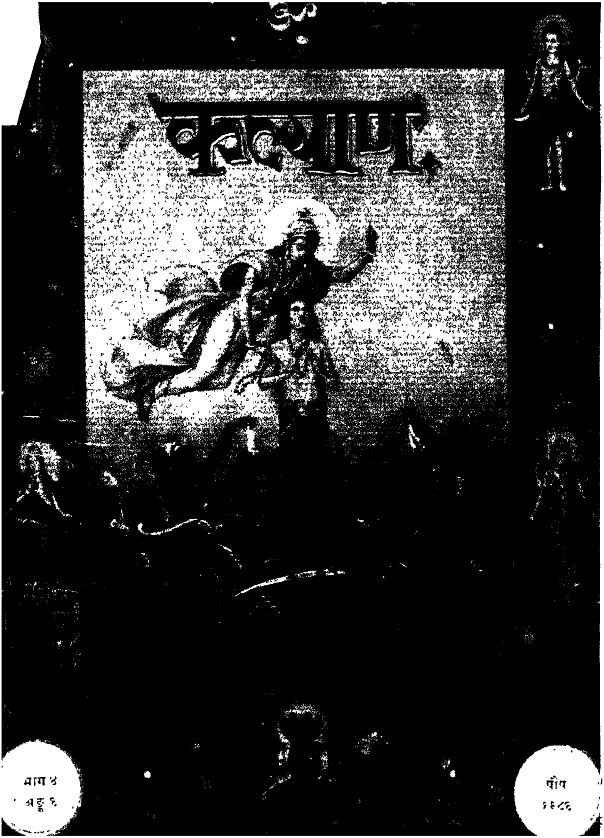
पंच तरणी के मार्ग में



पंच तरणी में सन्ध्या



सोवियत रूस के सर्वेसर्वा मार्शल स्तालिन जिन्हें [illegible] और [illegible] शत्रु समझ कर तीसरा महायुद्ध [illegible] आयोजन कर रहे है।


कल्याण
भाग ४
अङ्क ६
पौष
१९८६

श्रीहरिः

* श्रीहरिः *

श्रीगीता-ज्ञान-यज्ञ

आगामी कुंभके अवसरपर प्रयागमें होनेवाले श्रीगीता-ज्ञान-यज्ञके लिये महामना पूज्यवर मालवीयजीका निवेदन तथा अन्य सूचनाएं 'कल्याण' के गताङ्कोंमें प्रकाशित की जा चुकी हैं। इस पुनीत अवसरपर पधारकर सर्वसाधारणको सन्त-दर्शन, तीर्थ-स्नान, गीता-प्रवचन और संकीर्तन आदिके श्रवणद्वारा लाभ उठानेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। इस सार्वभौम धर्मग्रन्थकी साहित्य-वृद्धिके लिये सन्त-महात्माओं और प्रेमी लेखकोंसे नम्रनिवेदन है कि वे गीतापर अपने मौलिक और भावपूर्ण लेख भेजनेकी अवश्य कृपा करें। निबन्ध-सूची अन्य पत्रोंमें शीघ्र ही प्रकाशनार्थ जायगी। प्रदर्शनीके लिये सब प्रकारका गीता-सम्बन्धी साहित्य शीघ्र ही भिजवाना चाहिये।

तारका पता— नम्र निवेदक—

'गीता'-Gita प्रबन्धक,

गीता-ज्ञान-यज्ञ, त्रिवेणी-तट प्रयाग।

तृतीय वर्षकी फाइल

'भक्तांक' स्टाकमें नहीं रहा, जिनको भक्तांक चाहिये, उनको तीसरे वर्षकी फाइल मँगवा लेनी चाहिये, पूरी फाइल बिना जिल्द ४≈) में मिल सकेगी। डाकमहसूल अलग नहीं लगेगा। इसमें भक्तांकके अतिरिक्त तीसरे वर्षकी ११ संख्याएँ और हैं। पूरी फाइलमें भक्तांकके २५० पृष्ठों सहित सब मिलाकर-११२८ पृष्ठ हैं, जिनमें विविध विषयोंपर भिन्न भिन्न विद्वानोंके लिखे हुए करीब ४०० से ऊपर लेख और ७२ सुन्दर चित्र हैं जिनमें २७ तो तिरंगे हैं! सजिल्द मँगानेवालोंको ४।।=) देने पड़ेंगे।

द्वितीय वर्षकी फाइल

—बहुत थोड़ी प्रतियां बची हैं, मँगानेवालोंको शीघ्रता करनी चाहिये। मूल्य बिना जिल्द ३=) सजिल्द ३।।≈)

प्रथम वर्षकी फाइल

प्रायः २५ ही स्टाकमें है, अतएव लेनेवालोंको तुरन्त लिखना चाहिये। दाम सजिल्द ३।।) तीसरे अङ्कके सिवा बाकी ११ अङ्कोंका २।।=)।

भगवन्नामांक

—अभी कुछ बचे हैं, ११० पृष्ठ ४१ चित्र, भगवन्नामपर अनेक विचारपूर्ण लेख हैं। शीघ्र मँगवाना चाहिये। मूल्य अजिल्द ।।।=) सजिल्द १।)।

गीताङ्क

अनेक विद्वानों और पत्र पत्रिकाओंद्वारा प्रशंसित इस वर्षका विशेषांक ५०० से अधिक पेज १७० चित्रों सहित। मूल्य २।।=) सजिल्द ३=)।

छप गये

१—श्रीमद्भगवद्गीता १।) वाली।

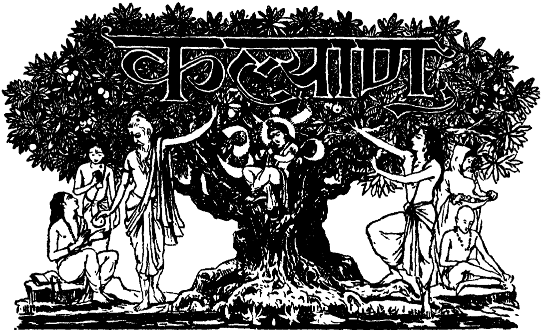
२—प्रेमयोग (लेखक—श्रीवियोगी हरिजी) मूल्य १।) सजिल्द १।।)

मैनेजर, कल्याण



बालरूप भगवान श्रीरामचन्द्र

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



यस्य स्वादुफलानि भोक्तुमभितो लालायिताः साधवः ,
भ्राम्यन्ति ह्यनिशं विविक्तमतयः सन्तो महान्तो मुदा ।
भक्तिज्ञानविरागयोगफलवान् सर्वार्थसिद्धिप्रदः ,
सोऽयं प्राणिसुखावहो विजयते कल्याणकल्पद्रुमः ॥

भाग ४ } पौष कृष्ण ११ संवत् १९८६ { संख्या ६

ईश्वरकी निर्लेपता

नहिं द्वैत अद्वैत हरि नहीं विशिष्टाद्वैत ।
बँधे नहीं मतवादमें ईश्वर-इच्छा द्वैत ॥
ईश्वर-इच्छा द्वैत, करैं सबहीको पोषन ।
आपु रहैं निरलेप, भगतसों मानैं तोषन ॥
'भगवतरसिक' अनन्य संग डोलैं गलबाहीं ।
करैं मनोरथ-सिद्धि उचित अनुचित कछु नाहीं ॥

—श्रीभगवतरसिकजी

शोभाधाम श्रीराम

(लेखक—साधु टी० एल० वास्वानी)

एक फ्रांसीसी लेखककी छोटी-सी सुन्दर उक्ति है कि 'जिन जातियोंका पवित्र उत्साह-स्रोत कभी सूखता नहीं वे सदा सुखसम्पन्न रहती हैं।' मनुष्यका जीवन दुरात्मभाव पर नहीं प्रत्युत आत्मसम्मानपर अवलम्बित है। दुरात्मभावका अर्थ है पूर्णज्ञानका अभाव—आत्मदौर्बल्य। मानव-जातिके सर्वसमर्थ अधीश्वर श्रीरामचन्द्रजीके कारण दीपावलीका दिवस परम पवित्र माना जाता है। 'राम' शब्दके अनेक अर्थ हो सकते हैं। एक अर्थ आनन्दमें रमनेवाला है तो दूसरा शोभाधाम भी इसीका अर्थ है। श्रीरामके विश्वविमोहन होनेका हेतु क्या है—रहस्य क्या है? उनके कमनीय कलेवरके वर्णनसे प्राचीन ग्रन्थ भरे पड़े हैं। उनके दिव्य जीवनसे यह निश्चित हो जाता है कि बलिष्ठ आत्माका निवास सुदृढ़ शरीरमें ही हो सकता है। उनके गुरु थे ऋषि वशिष्ठ, जिनसे वे धनुर्विद्याकी शिक्षा प्राप्त किया करते थे। श्रीराम इस कलामें बड़े निपुण थे। वे मनोहर थे—रूपके घर थे! उनकी तपश्चर्या भी उच्च कोटिकी थी। हम तुच्छ जीव साधारण तपस्या—थोड़ेसे कष्ट-सहनके अभ्यासको गुरुतर भार समझने लगते हैं! मनुष्यकी महत्त्वपूर्ण परीक्षा तभी होती है जब उसे दुःख-दैन्यमय परिस्थितिका सामना करना पड़ता है! जब सुखका सूर्य अस्ताचलगामी हो जाता है—विपत्तिकी घटाएं उमड़ने लगती हैं, उस समय यदि आत्मदृढ़ता स्थिर रहे तो निस्सन्देह हम वीर हैं।

शोकसे कण्ठावरुद्ध दशरथके दर्शनार्थ श्रीराम जा रहे हैं। कल ही उनका राजतिलक होनेवाला है। अकस्मात् रंगमें भंग पड़ जाता है—राजमहलमें कलह-राक्षसीका प्रवेश हो जाता है। कैकेयी राजाको वरदानवाली प्रतिज्ञाकी स्मृति करवाती है और एक वरदानसे रामको चौदह वर्षका वनवास देनेका आग्रह करती है! "प्राण जाय बरु वचन न जाई" का सिद्धान्त राजा दशरथके सामने है किन्तु अपने प्रियतम पुत्रको वनवासकी कठोर आज्ञा कैसे दी जाय? पिताके इस असमञ्जसका अनुभव करके पुत्र तुरन्त बोल उठता है-'मैं इसी क्षण वनप्रस्थानके लिये प्रस्तुत हूं'!' श्रीरामके जीवनमें यह घटना कितनी महत्त्वपूर्ण है! उनका त्याग—उनकी तपस्या कैसी मनोहर है?

हनुमान्‌जीके साथ उनकी मैत्री भी बड़ी अनुपम है! कपिराज भी ऐसे शक्तिशाली महापुरुषके प्रेमके सर्वथा योग्य अधिकारी थे। वे अनपढ़ होते हुए भी हम जैसे प्रगाढ़ पण्डितोंसे बढ़कर थे। हमें अपनी थोड़ीसी योग्यताका अभिमान हो उठता है किन्तु भक्तिके बिना विद्या किस कामकी? वे ब्रह्मचारी और भक्त थे। उनके चरणोंमें मेरा सादर अभिवन्दन है। मेरे विचारसे भारतवर्षमें श्रीरामके समान ही भक्तवर श्रीपवनसुतकी पुण्य-स्मृति मनाई जानी चाहिये—सीतारामके साथ ही हनुमान्-राम कहा जाना चाहिये। इनके साथ मैत्री किये बिना लङ्कापर विजय प्राप्त न हो सकती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रीरामचन्द्रजी बड़े थे परन्तु भक्तिके कारण हनुमान्‌जी भी कम न थे।

इनके बिना न तो पुल ही बन सकता और न रावण ही परास्त किया जा सकता! अतः आइये! इन दोनोंके नाममें किसी प्रकारका भेद न रख इनकी निष्कपट प्रीतिको सच्ची मित्रताका आदर्शस्वरूप समझें!

काशीमें एक मन्दिर है, जहाँ एक सुन्दर प्रतिमामें हनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीको अपने कन्धोंपर उठाये हुए हैं। मूर्ति बड़ी रम्य है–भावपूर्ण है। श्रीरामको भी ऊपर उठनेके लिये हनुमान्‌की आवश्यकता पड़ती है। इसी भावके साथ यहां ठहरना ठीक होगा कि श्रीराम बड़े होनेपर भी अपेक्षा रखते हैं हनुमान्‌की—आवश्यकता समझते हैं भक्तोंकी! हमें अपने कन्धोंपर श्रीरामको उठाना है किन्तु बिना भक्तिके यह सम्भव नहीं। अपने प्रभु श्रीरामका मंगलमय सन्देश संसारको सुनानेके लिये व्यवहार-चतुर कहलानेवाले पण्डितोंकी आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है हनुमान् सरीखे व्यक्तियोंकी—भक्ति और विशुद्ध भावनाओंसे युक्त भक्तोंकी। जीर्ण-शीर्ण जातिकी इस समय यही माँग है—यही आवश्यकता है!!

दास्य और तुलसीदास*

अहो! तुलसीका दास्य-भाव! भक्तिका पूर्ण परिपाक भक्ति-भास्कर गोसाईंजीकी दास्य-रतिमें ही देखा जाता है। इसमें सन्देह नहीं, कि सेवक-सेव्य-सम्बन्धका जैसा चारु चित्रण तुलसीके भव्य भावना-भवनमें दृष्टिगोचर होता है, वैसा अन्यत्र नहीं। इस महामहिम महात्माका कितना ऊँचा दास्य-प्रेम है, कितना गहरा सेव्य-भाव है! त्रिताप-सन्तप्त चिरपिपासाकुल परिश्रान्त पथिकोंके लिये तुलसीने, अहा! पुण्यसलिला भक्ति-भागीरथीकी कैसी करुणामयी धारा बहायी है! 'विनयपत्रिका' में वर्णित दास्यरति तो, वास्तवमें, विश्व-साहित्यमें एक है, अद्वितीय है। क्या दीनता, क्या भर्त्सना, क्या मान-मर्षता, क्या भय-दर्शना आदि सब भूमिकाओंमें विनयके पद अनुपमेय हैं, अतुलनीय हैं। 'सेवक-सेव्य-भाव बिनु भव न तरिय उरगारि' गोसाईंजीकी इस दृढ़ धारणाने उनकी रुचिर रचनाकी प्रत्येक पंक्तिमें दास्य-रतिका सजीव चित्र अङ्कित कर दिया है। उनकी सेव्य-सेवक भावनाको देखकर एक बार तो नीरससे भी नीरस हृदय कह उठेगा, कि धन्य है तुलसीकी भक्ति-भारती! अस्तु।

एक ही अभिलाषा है, एक ही लालसा है। वह यह है, कि—

ज्यों-त्यों तुलसी कृपालु! चरन-सरन पावै।

पर वह चरण-शरण मिले कैसे? यह मन महान् मूढ़ है। इस मनकी कुछ ऐसी मूढ़ता है, कि—

परिहरि राम-भक्ति-सुर-सरिता आस करत ओस-कनकी!

राम-भक्ति-भागीरथीको छोड़ यह मूढ़ आज ओसकणोंकी आशा कर रहा है! इसकी मूढ़ताका कुछ पार! भला, देखो तो—

महा मोह-सरिता अपार महँ संतत फिरत बह्यौ।
श्रीहरि-चरन-कमल-नौका तजि फिरि-फिरि फेन गह्यौ॥

* गीताप्रेससे शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले "प्रेमयोग" नामक ग्रन्थसे। —सम्पादक

कैसा निरंकुश है मेरा यह मन-मातंग ! यह दुर्जेय कैसे जीता जाय—

हौं हारयौ करि जतन विविध विधि अतिसै प्रबल अजै।

हाँ, अब यही एक उपाय है, कि—

तुलसिदास, बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै।

वह लीलामय प्रेरक प्रभु ही कभी कृपाकर इसे अपने वशमें करा दें तो हो सकता है; नहीं, तो नहीं। पर इस ओर भला वह क्यों देखने चले ! वह तो मुझे, न जाने कबसे, भुला बैठे हैं। समझमें नहीं आता, कि क्यों ऐसा व्यवहार मेरे साथ किया गया—

काहे तें हरि मोहिं बिसारो ?
जानत निज महिमा, मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो !

लो, कह तो दो आज साफ़-साफ़ अपने मनकी सारी बातें। आख़िर मुझे भुला क्यों दिया, मेरे मालिक ? तुमने अपने सेवकोंके दोषोंपर न्याय्य विचार किया, तो हो चुका ! पर ऐसा तुम करोगे नहीं, विचाराधीश ! अपने दासोंके दोषोंको यदि तुम मनमें लाते होते, तो बड़े-बड़े धर्म-धुरन्धरोंको छोड़कर व्रजके गँवार ग्वालोंके बीच क्यों बसने जाते ? अछूत भीलनीके जूठे बेर क्यों खाते ? दासी-पुत्र विदुरके घरका साग-पात क्यों आरोगते ? तुम्हारे सम्बन्धमें तो यही प्रसिद्ध है, कि—

निज प्रभुता बिसारि जनके बस होत, सदा यह रीति।

देखो न—

जाकी माया-बस बिरञ्चि सिव नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो॥

इससे तो अब यही जान पड़ता है, कि तुम्हें न तो कुलीन धनी ही प्यारे हैं, और न पण्डित या ज्ञानी-ध्यानी ही। तुम्हें तो, नाथ, अपने दीन-दुर्बल दास ही प्यारे हैं। तुम्हारा नाम ही गरीबनिवाज है। पर मुझे ही क्यों अबतक नहीं अपनाया ? मैं क्या कहींका घसासेठ हूँ ? बात कुछ समझमें नहीं आती, कि तुम्हारी कैसी रीझ है। हाँ, इतना तो समझता हूँ, कि मैं तुम्हारा हूँ, और तुम्हारा ही मुझपर अखण्ड अधिकार होना चाहिये। मैं अपनी इस समझको भ्रान्ति कैसे मान लूँ ? अच्छा, तुम्हारा नहीं, तो बताओ, फिर किसका हूँ ? मुझे आज तुम छोड़ रहे हो ! यह क्या कर रहे हो, प्रभो, ज़रा याद तो करो वे दिन—

छारतें सँवारिकै पहारहूतें भारी कियो,
गारो भयो पंचमें पुनीत पच्छ पाइ कै;
हौं तो जैसो जब तैसो अब, अधमाई कै-कै
पेट भरौं, राम, रावरोई गुन गाइ कै।
आपने निवाजेकी पै कीजै लाज, महाराज !
मेरी ओर हेरि कै न बैठिये रिसाइ कै;
पालिकै कृपालु, ब्याल-बालहू न मारिये, औ
काटिये न, नाथ ! बिषहू को रुख लाइ कै॥

तुम्हारे पालितकी आज यह दशा ! 'रामदास' होकर क्या मुझे अब 'कलिदास' होना पड़ेगा ? अपनी मुझे कोई चिन्ता नहीं। दुःख इतना ही है कि, नाथ, जिस हृदय-भवनमें तुम्हें रहना चाहिए, उसमें आज चोर और लुटेरे अपना अड्डा जमानेकी घात लगा रहे हैं ! क्या उनकी यह ज़्यादती तुम्हें सहन होगी ?

मम हृदय भवन, प्रभु, तोरा। तहँ बसे आइ, प्रभु, चोरा॥
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा। मद, क्रोध, बोध-रिपु मारा॥
कह तुलसिदास, सुनु रामा। लूटहिं तसकर तव धामा॥
चिन्ता यह मोहि अपारा। अपजस नहिं होइ तुम्हारा॥

तनिक सोचो तो, चोर-लुटेरोंके हाथसे तुम्हारे घरका लुट जाना क्या कम बदनामीकी बात होगी ? मुझे, बस, इतनी ही चिन्ता है, कि कहीं संसारमें तुम्हारा अपयश न फैल जाय, तुम्हारी सारी बनी-बनायी बात न बिगड़ जाय। मैं तुम्हारे मकानकी यों कबतक रखवाली करता रहूँगा। अभी कुछ गया नहीं, आकर सँभालते बने तो सँभाल लो। पीछे

फिर मैं तुम्हारे घरका जिम्मेवार नहीं। लो, फिर मुझे कोई दोष न देना।

× × ×

इतने निठुर तुम पहले कब थे? तुम्हारे स्वभावमें कहाँसे इतनी निठुराई आ गयी, करुणासागर? आश्चर्य है!

जद्यपि, नाथ, उचित न होत अस,प्रभुसों करौं ढिठाई।
तुलसिदास, सीदत निसिदिन देखत तुम्हारि निठुराई॥

यह जानता हूँ, कि स्वामीके साथ ढिठाई करना ठीक नहीं है; पर करूँ क्या? आर्त्त हूँ, जो न करूँ सो थोड़ा। आज ढिठाई भी करनी पड़ी है। कहाँ तक चुप रहूँ! कहोगे, कि आखिर तू कहना क्या चाहता है, कैसी ढिठाई करेगा? तो, सुनो; क्षमा करना, क्योंकि मैं जड़ हूँ। मुझे कहना ही क्या है, केवल यही कहना है कि 'तुम निठुर हो।' निठुर तो हो तुम, पर दुःख होता है मुझे! बात यह है, कि मैं अपने स्वामीको नितान्त निर्दोष देखना चाहता हूँ। लोगोंका यह कहना, कि 'तुलसीका मालिक बड़ा निर्दय है,' मुझे कैसे सह्य हो सकता है? तुम्हारी निठुराईका यह दोष सुनकर कहीं क्रोध आ गया और किसीसे लड़-झगड़ बैठा तो तुम्हें और भी बुरा लगेगा। इसलिये और नहीं तो कमसे कम मेरा दुःख दूर करने या व्यर्थका लड़ाई-झगड़ा बचानेके लिये ही निठुराईकी यह नयी आदत तो, सरकार, छोड़ ही दो। इसमें तुम्हारा बिगड़ता ही क्या है?

गोसाईंजीके कहनेका कैसा निराला ढंग है! इस ज़रासे इशारेमें ग़ज़बका ज़ोर भर दिया है। यों भी तो कहा जा सकता था, कि 'तुम बड़े निठुर हो, जो मुझे निहाल नहीं करते।' पर इसमें वह बात कहाँ, जो,

'तुलसिदास सीदत निसिदिन, देखत तुम्हारि निठुराई' में है। इतनेपर भी क्या तुलसीके निठुर नाथ निठुर ही बने रहेंगे?

यह तो कह ही चुका हूँ, कि मैं आर्त्त हूँ, अतएव विवेकहीन हूँ। आर्त्तके कहनेका कोई बुरा नहीं मानता। अपनी जड़ताके वश होकर कभी-कभी तो मैं तुम्हारे किये सारे उपकारोंको भुला बैठता हूँ। पर क्या मैं सचमुच ही कृतघ्न हूँ? न, मैं कृतघ्न नहीं हूँ; स्वामिन्! तुम्हारे अगणित उपकारोंको, भला, मैं भूल सकता हूँ। नाथ, तुमने मुझे क्या नहीं दिया। पर अभी मेरी तृष्णा-पिपासा शान्त हुई नहीं। एक लालसा पूरी होनेको अभी और है। वह यह, कि—

बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं, होत कबहुँ पल एक।
तातें सहौं बिपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक॥
कृपा-डोरि बनसी पद-अंकुस, परमप्रेम मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो॥

मेरा मनरूपी मीन विषयरूपी जलसे एक क्षण भी अलग नहीं होता। यह विषयी मन विषाक्त वासनाओंसे तनिक भी नहीं हटता। इसीसे मुझे जन्म-मरणका दारुण दुःख सहना पड़ रहा है। कबसे विविध योनियोंमें जन्म लेता और मरता हूँ। इस विपत्तिसे त्राण पानेका, बस, एक उपाय शेष रह गया है। वह यह है, कि अब अपनी कृपाकी तो बनाओ रस्सी और तुम्हारे चरणमें जो अंकुश (चिह्न) है, उसका बनाओ काँटा। उसमें परम प्रेमका कोमल चारा चपका दो। बस, फिर मन मीनको छेदकर विषय-वारिसे बाहर निकाल लो, जिससे वह एकवृत्त होकर सदा तुम्हारा ही भजन करता रहे। मेरा दारुण दुःख एक इसी उपायसे दूर हो सकता है। यह 'मनोमत्स्य-वेध' नाथ, तुम्हारे लिये बड़ा कुतूहलजनक होगा।

इसके बाद मैं क्या करूँगा, सो सुनो—

जानकी-जीवनकी बलि जैहौं।
नातो नेह नाथ सों करि, सब नातो नेह बहैहौं॥

क्योंकि तुम्हारे साथका नेह-नाता ही इस जीवनका एकमात्र सारभाग है। तुम्हारे बिना जीना, जीना नहीं। वह जीवन ही किस कामका, जिसमें तुम न हो, तुम्हारा प्रेम न हो—

तिनतें खर सूकर स्वान भले, जड़ता बस ते न कहैं कछु वै।
'तुलसी'जेहि रामसों नेह नहीं,सो सही पसु पूँछ बिषान न द्वै॥
जननी कत भार-मुई दसमास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै?
जरि जाउ सो जीवन जानकी-नाथ! जियै जगमें तुम्हरो बिन ह्वै॥

मैं तो मान चुका हूँ कि तुम मेरे स्वामी हो, पर तुमने भी, नाथ, स्वीकार कर लिया है या नहीं कि, 'तुलसी हमारा है?' न किया हो तो अब कर लो। शायद तुम मेरी छोटाईसे डरकर मुझे अंगीकृत नहीं कर रहे हो। यह बड़ी आफत है। एक ओर 'दीनबन्धु' कहलानेका शौक और दूसरी ओर दीनोंके साथसे घिन! दोनों बातें एक साथ कैसे निभ सकती हैं। यदि तुम मेरी लघुतासे न डरो तो एक पन्थ दो काज सध जायँ। मैं 'सनाथ' हो जाऊँ, और तुम्हें 'अनाथ-पति' की उपाधि मिल जाय। कहो, हो राजी?

हौं सनाथ ह्वैहौं सही तुमहुँ अनाथ-पति,
जो लघुतहि न भितैहौ।

लघुतासे डरना कैसा? बड़ा-ख्याल करनेकी बात है-छोटेसे क्यों डरने चला? यह तो कुछ अजीब-सी बात है। नहीं, बात ठीक सीधी-सी है। बड़े लोग बहुधा छोटोंसे डरा करते हैं। बात करना तो बहुत दूर है, वे उनके सामने भी नहीं जा सकते। उन्हें यही भय लगा रहता है, कि कहीं हम छोटे लोगोंके पास खड़े हो गये तो दुनियाँ क्या कहेगी, ज़रूर हमारे बड़प्पनमें कुछ धब्बा लग जायगा। इससे, वे बड़े लोग छोटोंसे दूर ही रहते हैं। पर तुम ऐसा मत करो। मेरी लघुतासे भयभीत न होओ। अब तो, चाहे कुछ भी हो, इस दीनको अभी, अंगीकार कर ही लो। नाथ, मुझे अपनाते हुए कभी अपना वह कर-सरोज मुझ अनाथके सिरपर रखोगे? हाँ, वही अनन्त कृपामय कर-कमल—

सीतल सुखद छाहँ जेहि करकी मेटति पाप ताप माया।
निसि-बासर तेहि कर-सरोजकी चाहत तुलसिदास छाया॥

चाहनेसे क्या होगा! उस कर-सरोजकी छाया प्रेमलक्षणा पराभक्तिसे ही प्राप्त हो सकेगी। सो, यह बड़ी कठिन है; केवल कृपा-साध्य है—

कहत सुगम, करनी अपार, जानै सोइ जेहि बनि आई।

× × × ×

कितनी बार कहलाना चाहते हो, कि 'मैं केवल तुम्हारा ही हूं?' क्या तुम्हें मेरे इस कथनमें कुछ सन्देह है? जो मैं यह कहूँ, कि मैं तुम्हारा नहीं, किसी औरका हूँ, तो मेरी यह जीभ गल-गलकर गिर जाय। मैं किसीका बनना भी चाहूँ, तो मुझे अंगीकार करेगा ही कौन? मुझे तुम-सा अकारण हितू अन्यत्र कहाँ मिलेगा? और, मुझ निठल्लेसे किस भले आदमीका कोई काम पूरा हो सकेगा? न तो मुझे कोई अपनी सेवामें रखेगा, और न मैं किसीके द्वारपर जाऊँगा। मैं तो तुम्हारा हूँ और तुम्हारा ही होकर रहूँगा—

खेलबेको खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो, राम, हौं रहिहौं।
एहि नाते नरकहुँ सचु पैहौं, या बिनु परमपदहुँ दुख दहिहौं॥

जो कहो, कि जा, तुझे हमने अपना लिया, तो यों मैं माननेवाला नहीं। अंगीकृतके लक्षण ही कुछ और होते हैं, स्वामिन्!

तुम अपनायो तब जानिहौं, जब मन फिरि परिहै।
जेहि सुभाउ बिषयनि लग्यो,
तेहि सहज नाथ सों नेह छाँड़ि छल करिहै॥
सुतकी प्रीति, प्रतीति मीतकी, नृप ज्यों डर डरिहै।
अपनो सो स्वारथ स्वामी सों चहुँबिधि
चातक ज्यों एक टेक तें नहिं टरिहै॥
हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि-मरिहै।
हानि-लाभ दुख-सुख सबै समचित,
हित-अनहित, कलि-कुचाल परिहरिहै॥
प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नैननि ढरिहै।
तुलसिदास भयो रामको,
बिस्वास प्रेम लखि आनँद उमँगि उर भरिहै॥

सो, इस दशाका तो अभी यहाँ शतांश भी प्राप्त नहीं हुआ। अभी मेरा मन विषयोंकी ओरसे कहाँ फिरा है। अभी तो मैं कामदास ही हूँ,

रामदास नहीं। यह मन जिस सहजभावसे विषयोंमें आसक्त हो रहा है, उसी भावसे, छल-कपट छोड़कर, अब यह तुमसे प्रेम करने लगेगा, तब जानूँगा, कि मैं अब अंगीकृत हो गया। जिसे तुमने अपना लिया, वह तुम्हें चातककी चाहसे चाहेगा। न वह सम्मान-लाभसे प्रसन्न ही होगा और न तिरस्कृत होनेपर डाहसे जल ही मरेगा। हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि समस्त द्वन्द्वोंको वह एक-सा समझेगा। अभी मेरा विषयी मन न तो तुम्हारा गुण-गान सुनकर प्रफुल्लित ही होता है और न इन अभागिनी आँखोंसे प्रेमाश्रु-धारा ही बहती है। फिर मैं कैसे मान लूँ, कि तुमने अपने अंगीकृत जनोंकी सूचीमें तुलसीका भी नाम लिख लिया है। मुझे भूल-भुलैया में न छोड़ो, मेरे हृदय-सर्वस्व! अशरण-शरण, मुझे अंगीकृत करके ही तुम अपने विरदकी लाज रख सकोगे। तुम्हें रिझाने लायक और कोई गुण तो मेरे पास है नहीं; हाँ, एक निर्लज्जता निस्सन्देह है, आज उसीपर रीझ जाओ। तुम्हारी रीझ अनोखी तो है ही—

खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु,
रीझिबे लायक तुलसीकी निलजई।

सच मानो, नाथ, तुम्हारे त्याग देनेपर मैं कहीं-का न रहूँगा। मेरा भला तुम्हारे ही हाथ होगा। सो जैसे बने तैसे अंगीकार कर लो। अधिक क्या कहूँ, तुम तो सब जानते हो। तुमसे छिपा ही क्या है! जीवनकी अवधि अब बहुत दूर नहीं है—

'तुलसिदास' अपनाइये, कीजै न ढील,
अब जीवन-अवधि अति नेरे।

अपनी यह 'विनयपत्रिका' तुम्हारे दरबारमें भेजता हूँ। इतनी अर्ज़ और है, कि—

विनय-पत्रिका दीनकी, बाप! आपही बाँचो।

राज-दरबारमें अकसर धाँधली हो जाया करती है। तुम्हारे दरबारमें भी, सम्भव है, यह पत्रिका किसी ऐसे मन्त्री या पेशकारके हाथमें पड़ जाय, जो तुम्हारी पेशीमें इसे कुछ घटा-बढ़ाकर पढ़ दे। इसलिये इसे 'आप ही बाँचो।' पिताजी, कृपाकर स्वयं ही इस दीनकी पत्री पढ़ लेना।

हिये हेरि तुलसी, लिखी, सो सुभाय सही करि,
बहुरि पूछियहि पाँचो।

अपने सरल स्वभावसे इसपर 'सही' करके तब फिर पञ्चोंसे पूछना। पञ्चोंसे या दरबारी मुसाहबों-से बेखटके पूछ सकते हो, उनकी राय भी इसपर ले सकते हो। मुझे कोई आपत्ति नहीं। पर, 'सही' उनसे बिना पूछे ही कर देना, भले ही यह बात क़ानूनके ख़िलाफ़ हो।

इस पदमें प्रयुक्त 'बाप' शब्द द्रष्टव्य है। गोसाईंजी पञ्चोंसे बिना पूछे ही 'सही' लिखवा लेना चाहते हैं और स्वयं पढ़नेको भी कहते हैं। इसीलिये यहाँ, 'प्रभु महाराज देव' आदि ऐश्वर्य-सूचक सम्बोधनोंका प्रयोग नहीं किया गया है। 'बाप' के सम्बोधनसे आप घरू तौरपर बात कर रहे हैं। बापसे किसी तरहका कोई संकोच तो होता नहीं। 'सही' करा लेनेतक तो 'पिता-पुत्र'का सम्बन्ध है, और इसके आगे 'राजा-प्रजा' अथवा 'स्वामी-सेवक' का भाव आ जाता है। अर्ज़ी पेश करनेका कैसा बढ़िया ढंग है! क्या अब भी राजाधिराज श्रीरामचन्द्र विनयी तुलसीकी विनय-पत्रिकापर 'सही' न करेंगे?

सेव्य-सेवक-भाव ही गोसाईंजीके मतसे, प्रेमका सर्वोत्कृष्ट रूप है। बिना इस भाव-साधनाके भव-सागरसे तर जाना कठिन ही नहीं, असम्भव है—

सेवक-सेव्य-भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम-पद-पंकज, अस सिद्धान्त बिचारि॥

उस जगन्नियन्ता स्वामीका सेवक हो जाना ही जीवका परम पुरुषार्थ है। पर लाखमें किसी एकको मिलती है उस मालिककी गुलामी। हम दुनियाँके कमीने गुलामोंको कहाँ नसीब है वह ऊँची गुलामी!

ज़रा, देखो तो, अपना कैसा सुन्दर परिचय दिया है इस राम-ग़ुलामने। कहता है—

मेरे जाति-पाँति, न चहौं काहूकी जाति-पाँति,
मेरे कोऊ कामको, न हौं काहूके कामको।
लोक-परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसीके एक नामको॥
अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग,
'साह ही को गोत, गोत होत है ग़ुलामको।'
साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहूके द्वार परौं, जो हौं सो हौं रामको॥

कैसी आज़ादीकी ग़ुलामी है यह राम-गुलामी! स्वामी और सेवकमें यहाँ अन्तर ही क्या है? दोनोंका एक ही कुल है, एक ही गोत्र है। क्या अच्छा कहा है—

साह ही को गोत गोत होत है ग़ुलामको।

ऐसा कौन स्वातन्त्र्य-प्रिय होगा, जो यह दासत्व स्वीकार न करेगा। किस अभागेके हृदयतलमें यह अभिलाषा न उठती होगी, कि—

जेहि-जेहि जोनि करम-बस भ्रमहीं। तहँ-तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥
सेवक हम, स्वामी सिय-नाहू। होउ नात यह ओर निबाहू॥

सेव्य-सेवकभाव हँसी-खेल नहीं है। यह महाभाव योग-साधनसे भी अधिक अगम्य है। इस नातेका एकरस निभा ले जाना कितना कठिन है, कितना कष्टकर है। अतः यह दास्य-रति केवल हरि-कृपा-साध्य है।

× × ×

गोसाईंजीकी दृष्टिमें अंगीकृत अनन्य दासकी कितनी ऊँची महिमा है, इसे नीचेके पद्यमें देखिये—

सो सुकृती, सुचिमन्त, सुसन्त, सुजान, सुसील, सिरोमनि स्वै।
सुर तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत हैं ता तन छ्वै॥
गुन-गेह सनेहको भाजन सो, सब ही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सतिभाय सदा छल छाँड़ि सबै, तुलसी जो रहै रघुबीरको ह्वै॥

भक्तकी यह महती महिमा सुनकर कौन ऐसा अभागा होगा, जो श्रीरघुनाथजीका अंगीकृत दास होनेके लिये लालायित न होता होगा? दास्य-रतिका अनिर्वचनीय आनन्द लूटनेके अर्थ कौन मूढ़, गोसाईं तुलसीदासके स्वरमें अपना स्वर मिलाकर, भक्तिपूर्वक यह पुनीत प्रार्थना न करना चाहेगा?

मो सम दीन, न दीन-हित, तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि, रघुबंस-मनि, हरहु विषम भव-भीर॥
कामिहि नारि पियारि-जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि, रघुनाथ, निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि, राम॥

कामना

कहत सकल मुनिगन याही भांति ईश!
तेरोऊ कथन ऐसो गीता-ग्रंथमें सुहाय;
धरम करम सब होत है वृथासे जोपै
अन्तके समय मति तोपै ना छनौ थिराय।
कविराजहंस हियरेके अधिनाथ! तासों
एक यही कामना रही है हियरेमें छाय;
जीवनकी सांझ पाय नैन जोति मेरी श्याम!
तेरी छवि देखि अन्धकारमें बिलाय जाय।

(बलदेवप्रसाद मिश्र एम०ए०, एल० एल०बी०, एम०आर०ए० एस०)

भगवान् सहायक हैं

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवद्भक्तिके पथपर चलनेवाले पुरुषोंको अपने मनमें खूब उत्साह रखना चाहिये। इस बातका सदा स्मरण रखना चाहिये कि समस्त विघ्नोंके नाश करनेवाले और साधनमें सतत सहायता पहुंचानेवाले भगवान् हमारे पीछे स्थित रहकर सदा हमारी रक्षा करते हैं। रणाङ्गणमें रण-प्रवृत्त योद्धाके मनमें इस स्मृतिसे महान् उत्साह बना रहता है कि मेरे पीछे विशाल सैन्य साथ लिये सेनापति स्थित है। भक्तको तो इससे भी अनन्तगुण अधिक उत्साह होना चाहिये। क्योंकि उसके पीछे अनन्त शक्ति-सम्पन्न भगवान्का बल है। शक्तिशाली सैन्यका सहारा पाकर जब निर्बल भी बलवान् बन जाता है, जब कायर भी शूरवीरका-सा काम कर दिखाता है। निर्बल निरुत्साही मनुष्य इस बातको भलीभांति समझता हुआ कि, मुझमें बड़ी भारी शत्रु-सेनाका सामना करनेकी शक्ति नहीं है, शत्रु-सेनाकी अपेक्षा अपनी सेनाको अधिक बलवती देखकर उसके भरोसे लड़नेको तैयार हो जाता है। फिर जिसपर भगवान् सहायक हों, उसको तो भीषण विषय-सैन्यको तुच्छ समझकर उसके नाशके लिये बद्ध-परिकर ही हो जाना चाहिये। परमात्मा श्रीकृष्ण अपने प्रेमी भक्तोंको आश्वासन देते हुए घोषणा करते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(गीता ९।२२)

'जो अनन्य भावसे मुझमें स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम-भावसे भजते हैं, उन नित्य एकीभावसे मुझमें स्थितिवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।'

भगवान्की इस घोषणापर विश्वास कर कठिन-से कठिन मार्गपर अग्रसर होनेमें भी संकोच नहीं करना चाहिये। शंख, चक्र, गदा आदि धारण करनेवाले भगवान्, जब हमारे प्राप्त साधनकी रक्षा और अप्राप्तकी प्राप्ति करानेका स्वयं जिम्मा ले रहे हैं, जब पद पदपर हमें बचानेके लिये तैयार हैं, तब इस घोर अन्धकारमय संसार-अरण्यसे बाहर निकलनेके लिये हमने जिस साधनामय पथका अवलम्बन किया है, उसमें विघ्न करनेवाले काम-क्रोधरूप सिंह-व्याघ्रादिसे भय करनेकी क्या आवश्यकता है? जब भगवान् सदा-सर्वदा हमारे साथ हैं तब भय किस बातका? जैसे छोटा बालक माताकी गोदमें आते ही अपनेको निर्भय और निश्चिन्त मानता है, इसी प्रकार हमें भी अपनेको परमपिता परमात्माकी गोदमें स्थित समझकर निर्भय और निश्चिन्त रहना चाहिये। भगवान् तो बल, प्रेम, सुहृदता आदिमें सभी प्रकार सबसे अधिक हैं। कारण ये सारे सद्गुण उन्हीं गुणसागरके तो गुण-कण हैं। अतएव सब तरहके शोक, भय आदिको त्यागकर, बड़े उत्साह और उमंगके साथ एक वीरकी भांति अपने अभीष्ट मार्गपर द्रुतगतिसे अग्रसर होना चाहिये। यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि जिस प्रकार भक्तप्रवर अर्जुनने भगवान्-की सहायतासे भीष्म, द्रोण, कर्णादिद्वारा सुरक्षित ग्यारह अक्षौहिणी कौरव-सेनाको विध्वंसकर विजय प्राप्त की थी, उसी प्रकार उनकी सहायतासे हम भी काम, क्रोधादिरूप कौरव-सेनाका सहजही-में विनाशकर परमात्माकी प्राप्तिरूप सच्चे स्वराज्य-को प्राप्त कर सकते हैं। बस, भगवान्को अपना सच्चा अवलम्बन बनाकर भीमार्जुनकी भांति प्राण-विसर्जनतकका प्रणकर भगवदाज्ञानुसार कार्य-क्षेत्रमें अवतीर्ण होनेभरकी देर है।

मलिन्द !

(१)

फूले फले कितने ही यहाँ, अब
कुञ्ज न कोकिल के वह गीत हैं।
हैं वे रसाल न बौरे बसन्तके,
सारी बहार चुकी अब बीत है।
है सुख साज यहाँ क्षणके सब,
चातुरी झूँठी प्रतीन औ प्रीत है।
मूढ़ मलिन्द ! क्यों मारी गई मति,
मालती ये, दिन चारकी मीत हैं॥

(२)

बावलेसे यहाँ फूले फिरो अलि !
प्रेम कहीं न प्रसूनसे जोड़ना।
अन्त कभी परितापकी तापमें,
होगा तुम्हें इनसे मुख मोड़ना।
क्यों नहीं ढूँढ़ते हो वह पङ्कज,
पा जिनको, पड़ता नहीं छोड़ना।
अन्त बसन्तका हो चुका है अब,
माली इरो बस चाहता तोड़ना॥

(३)

प्रेमके बन्धनमें जितना आलि !
हो बँधते लख रूप लुनाई।
होगा तुम्हें उतना ही वियोगमें,
मोहका बन्धन भी दुखदायी।
मोड़ चलो मुख, छोड़ इन्हें यहीं,
जोड़ चुके अब रैन है आई।
कञ्जके कोषमें मीत ! न तो फिर.
होगी उठानी महा कठिनाई॥

(४)

लालिमा ही अवशेष रही अब,
सौरभ है न यहाँ सुखदायी।
कुञ्जकी मञ्जु मनोहरता महँ,
छा चुकी है अब तो पियराई।
जा चुके हैं सब साथी सतर्क हो,
आरहा ग्रीष्म महा दुखदायी।
भृंग ! चलो तुम भी बिसराकर,
मालती माधवी की सुघराई॥

(५)

होगा प्रभात अवश्य दिवाकर,
भूतलका तम नाश करेगा।
शीतल मन्द समीर कभी फिर,
सौख्य-सुधा ढरकाता फिरेगा।
गा उठेंगे प्रिय गीत विहंगम,
कोकके भी मन मोद भरेगा।
होगे स्वतन्त्र, सुनो तुम भी अलि !
कञ्जका कोष कभी उघरेगा॥

—'श्रीपति'

प्रेमका भगवान्

एक बादशाह जंगलमें शिकार खेलने गया, वहां उसे एक साधु मिले। कुछ समय तक साधुका संग करनेपर बादशाहको बड़ी प्रसन्नता हुई, और उसने साधुको कुछ देना चाहा। साधुने कहा, 'नहीं, मैं अपनी स्थितिमें पूर्णरूपसे सन्तुष्ट हूं। खानेके लिये ये वृक्ष मुझे यथेष्ट फल दे देते हैं, ये रमणीय पवित्रसलिला नदियां मुझे आवश्यकतानुसार जल प्रदान करती हैं, और सोनेके लिये तो पहाड़ोंकी गुफाएं बनी ही हैं। तुम राजा हो या सम्राट्, मुझे तुमसे कुछ भी लेना नहीं है।' सम्राट्ने कहा, 'स्वामीजी! मुझे पवित्र करने और मेरा जीवन सफल करनेके लिये ही कुछ लीजिये और कृपापूर्वक एक बार मेरी राजधानीमें पदार्पण कीजिये।' बहुत दबानेपर साधुने सम्राट्के साथ उसके नगरमें जाना स्वीकार कर लिया। साधु बादशाहके महलमें पहुंचे, वहां चारों ओर हीरे-पन्ने मोती-माणिक आदि जवाहिरात और सोने, चाँदीके पदार्थ पड़े थे, और भी बहुतसी बहुमूल्य अद्भुत वस्तुएं थीं, सभी ओर ऐश्वर्य और वैभवके चिह्न दिखायी देते थे। वहां पहुंचनेपर सम्राट्ने साधुसे कहा, 'महाराज! आप तनिक विश्राम कीजिये, इतनेमें मैं प्रार्थना कर लेता हूं' यह कह बादशाह एक कोनेमें जाकर दीनवाणीसे इस प्रकार प्रार्थना करने लगा,-'प्रभो! मुझे और भी अधिक ऐश्वर्य, और भी अधिक सन्तान तथा और भी राज्य प्रदान कीजिये।' इतना सुनते ही साधु उठकर जाने लगे। बादशाहने पीछेसे दौड़कर पूछा, 'महाराज! कहां जा रहे हैं, मेरी सेवा स्वीकार किये बिना ही कैसे लौट रहे हैं?' साधुने बादशाहकी ओर मुख फिराकर कहा, 'भिखारी! मैं तुझ भिखारीसे भीख नहीं माँगता, तू मुझे क्या दे सकता है, तू तो स्वयं ही भीख माँगता है?'

वास्तवमें सम्राट्की प्रार्थना प्रेमकी भाषामें नहीं थी। यदि भगवान्से ऐसी प्रार्थना की जा सकती हो तो फिर प्रेम और दुकानदारीमें भेद ही क्या रह गया? अतएव प्रेमका सर्वप्रथम यही लक्षण है कि, उसमें क्रय-विक्रय नहीं है-प्रेम तो सदा दिया ही करता है, वह कभी लेता नहीं;—प्रेम दाता है, गृहीता नहीं है। भगवान्का भक्त कहता है कि 'भगवान् चाहें तो मैं अपना सर्वस्व उसके अर्पण कर सकता हूं, परन्तु उससे मैं कुछ भी लेना नहीं चाहता। इस जगत्की कोई भी वस्तु मुझे नहीं चाहिये। उससे प्रेम किये बिना रहा नहीं जाता, इसीलिये प्रेम करता हूं; इस प्रेमके परिवर्तनमें उससे किसी प्रकारकी कृपा-भिक्षा नहीं चाहता। ईश्वर सर्वशक्तिमान् है या नहीं, यह जाननेकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं; कारण, मैं न तो उससे कोई शक्ति चाहता हूं और न उसकी किसी शक्तिका विकाश ही देखना चाहता हूं, वह मेरे प्रेमका भगवान् है। बस, इतना ही जान लेना मेरे लिये बहुत है। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ भी जानना नहीं चाहता।

—स्वामी विवेकानन्द

प्रार्थना

(लेखक—श्रीवियोगी हरिजी)

हाँ, वही आग, मेरे प्राणोंके स्वामी, वही आग। मेरे अव्यक्त अन्तस्तलमें अपने अमंद अनुरागकी एक धधकती हुई अँगीठी रख दो न। जला दो, नाथ, उसमें मेरी सारी गीली वासनाएँ। भस्म कर दो, प्रभो, उसमें मेरी असीम अहन्ता। भून डालो उसमें मेरे समस्त कर्म-अकर्म।

मेरा हृदय अब अंगारकी तरह दहकने दो। आजसे वहाँ लगनकी लपटें उठने दो। खाक हो जाने दो, नाथ, मेरी मदिरामयी मोह-ममता उस अनोखी अनुराग-आगमें।

अपने परम-प्रेमका दीपक जला दो, ज्योतिर्मय! वही दीप-प्रकाश भर दो, लीलामय, मेरी अँधेरी मानस-कुटीमें। और, उस लौसे लिपट लेने दो एक बार मेरे प्राण-पतंगेको, प्राणेश!

आज ही साँझको मेरी यह अधीरता-भरी साध पूरी कर दो, मेरे जीवितेश्वर!

× × × ×

मेरे लिये तो जहाँ तुम हो, वहीं काशी है, वहीं तारका है। वहीं मक्का है और वहीं जेरूसलेम है। मुझे ऐसे ही तरण-तारण तीर्थोंमें ले चलो, मेरे नाथ!

जहाँ भी तुम्हारे प्रेम-रसकी विमल धारा बहती हो, वहीं गङ्गा है, वहीं जमुना है और वहीं आबे ज़मज़म है। मुझे ऐसी ही सरस सरिताओंकी लहरोंपर धीरे-धीरे झुलाते रहो, मेरे हृदय-रमण!

जहाँ कहीं भी तुम्हारी प्यारी झलक देखनेको मिलती हो, मेरी नज़रमें, वहीं मंदिर है, वहीं मसजिद है और वहीं गिरजा है। मेरा आसन किसी ऐसे ही उपासना-स्थलमें जमा दो, मेरे स्वामी!

× × × ×

तुम राम हो तो क्या अल्लाह नहीं हो? तुम अहुर मज्द हो तो क्या यहोवा नहीं हो? तुम अर्हन् हो तो क्या बुद्ध नहीं हो? प्रभो, तुम क्या नहीं हो। ये सब तुम्हारे ही नाम तो हैं, तुम्हारी ही प्यारी-प्यारी सूरतें तो हैं।

काशी तुम्हारी है तो क्या मक्का किसी औरका है? बौद्ध-गया तुम्हारी है तो क्या जेरूसलेम किसी दूसरेका है? प्यारे, तुम कहाँ नहीं हो। ये सब तुम्हारे ही मकान तो हैं, तुम्हारे ही खेलनेके अनोखे आँगन तो हैं।

संस्कृत तुम्हारी है तो क्या ज़िन्द किसी और की है? अरबी तुम्हारी है तो क्या लैटिन किसी दूसरेकी है? नाथ, ये सब तुम्हारी ही भोली भाषाएँ तो हैं, तुम्हारी ही प्यारी रस-भरी तोतली बोलियाँ तो हैं।

× × × ×

न्याय कराने आया हूँ, नाथ, न्याय। लोग मुझे तुम्हारा अपराधी कहते हैं। मुझे क्या मालूम, कि मैं तुम्हारा अपराधी हूँ या नहीं! मुझपर एक भारी अभियोग लगाया जा रहा है। वह यह, कि मैंने तुम्हारी प्यारी सूरतकी एक तसवीर खींचकर कहीं छुपा रखी है—यह जानते हुए भी, कि तुम निराकार हो, अमूर्त्त हो; अतः तुम्हारा चित्र खींचना उनकी रायमें ग़ैरक़ानूनी है।

यदि तुम्हारे 'इजलास ख़ास' में मेरी यह ढिठाई अपराधोंमें गिनी जाती है, तो मैंने यह अपराध अवश्य किया है। मैं इसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ, और इसके लिये मैं कठोर-से-कठोर दण्ड भोगनेको तैयार हूँ। पर एक विनय है, न्यायाधीश! जिस कारागारमें मैं बंद किया जाऊँ, वहाँकी दीवारपर मुझे अपनी खींची हुई उस प्यारी तसबीरके टाँगनेका अधिकार अवश्य दिया जाय। मेरी यह विनम्र प्रार्थना स्वीकार की जाय, प्रभो!

× × × ×

श्रीभगवन्नाम-जप

विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

जो मेरे नामका गान करता हुआ मेरे ही समीप विचरता है, मैं उसके द्वारा खरीदा जाता हूँ यह सत्य है।—भगवान् श्रीकृष्ण

जो लोग जन्म मरणके झगड़ोंसे छूटना चाहें वे जगत्‌के कारणभूत परमात्माकी स्तुति करें, जो इसमें भी असमर्थ हैं वे भगवन्नामका उच्चारणमात्र ही करें, उनको भी वही फल मिलेगा। —वेद

नारायणका नाम और स्वाधीन वाणीके रहते हुए भी लोग (नाम न जपकर) नरकमें पड़ते हैं, यही बड़े आश्चर्यकी बात है। —भगवान् व्यास

किसी संकेतसे, परिहाससे, जानकर या अवज्ञासे भी जो भगवान्‌के नामका कीर्तन करता है वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। —यमराज

इन दोषोंसे भरे हुए कलियुगमें एक महान् गुण यह है कि केवल श्रीकृष्णके नामकीर्तनसे ही मनुष्य कर्मबन्धनसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त कर लेता है। —श्रीशुकदेव

हे भगवन्! आपने अपने अनेक नाम (जीवोंके कल्याणार्थ) प्रकाशित किये और उनमें अपनी पूर्ण शक्ति अर्पित कर दी। नाम-स्मरणमें काल, अवस्था, अधिकार आदिका कोई नियम नहीं रक्खा, आपकी तो ऐसी कृपा और मेरा ऐसा दुर्भाग्य कि नाममें मेरा प्रेम नहीं हुआ। —श्रीचैतन्यदेव

अरे मूढ़ो! गोविन्दका भजन करो। —स्वामी शंकराचार्य

जो श्रीराम-नामका अवलम्ब छोड़कर परमार्थकी आशा करता है वह मानों बरसते हुए पानीकी बूँद पकड़कर आकाशपर चढ़ना चाहता है। मेरे तो राम-नामके दो अक्षर ही माँ-बाप हैं। झूठ कहता हूँ तो शिवजी साक्षी हैं, मेरी जीभ गलकर गिर पड़े। —तुलसीदास

अनन्त जन्मोंके पुण्य-बलसे जीभपर श्रीरामनाम आता है, जिस कुलमें श्रीराम-नामका उच्चारण होता है वह कुल धन्य है। राम-नाम कहते ही अनेक जन्मोंके दोष नष्ट हो जाते हैं। आधी घड़ीके लिये भी श्रीराम-नामको नहीं बिसारना चाहिये। —ज्ञानेश्वरजी

जो सब श्रमोंको छोड़कर केवल श्रीराम-नामका जप करता है, रक्षक प्रभु उनकी सभी स्थानोंमें सदा रक्षा करते हैं। —समर्थ रामदासजी

श्रीहरिका नाम लेनेसे दुःख समीप भी नहीं आता, जो श्रीकृष्णका भजन करता है वह सभी सुखोंको प्राप्त करता है। —सूरदास

भगवन्नामका जप करनेवाला कोढ़ी अच्छा है, कञ्चन काया किस कामकी जिसके मुखमें हरिका नाम नहीं। —कबीरजी

श्रीहरिके नामसे भयका नाश होता है, वह दुष्ट बुद्धिको हर लेता है, जो रात-दिन नामका भजन करते हैं, उनके सभी काम सफल होते हैं। —नानक

नामको कभी हृदयसे नहीं भूलना चाहिये, यही सहज मार्ग है। —दादूजी

सबमें शिरोमणि भगवान्‌का नाम है, उस सुख सागरका रातदिन स्मरण करना चाहिये। —सुन्दरदासजी

जो राम-नामका उच्चारण करता हुआ चलता है, उसको पग-पगपर यज्ञका फल प्राप्त होता है। —तुकारामजी

'कल्याण' को विशेषकर 'भगवन्नामांक' * को ध्यानसे पढ़नेवाले पाठक और पाठिकाओंको श्रीभगवन्नामका महत्त्व समझाना नहीं होगा। जिन लोगोंने भगवन्नामका आश्रय लेकर अलौकिक लाभ उठाये हैं, उनका तो हृदय ही जानता है। कलिसन्तरण उपनिषद् और सन्त तथा साधकोंके अनुभवके अनुसार उपर्युक्त १६ नामोंका मन्त्र बहुत ही उपादेय है। गत वर्ष कल्याणके पाठक-पाठिकाओंसे पौष सुदी १ से फाल्गुन सुदी १५ तक सोलह नामोंके उपर्युक्त मन्त्रके दस करोड़ जप करने करानेके लिये प्रार्थना की गयी थी, परन्तु आनन्दका विषय है कि पाठकों, सन्त-महात्माओं और भगवत्-प्रेमियोंके प्रयत्नसे पचास करोड़ मन्त्रोंका जप हो गया, जिन भाग्यवान् नर-नारियोंने जपमें भाग लिया उनमें अमीर-गरीब, ब्राह्मण-शूद्र, वकील-डाक्टर, मालिक-नौकर सभी श्रेणीके स्त्री-पुरुष थे।

गत तीन वर्षोंसे श्रीहरिके प्रेमी सज्जन और देवियां नाम-जप-यज्ञमें सम्मिलित होनेका पुण्य लूट रहे हैं। गत वर्षकी भांति अबकी बार भी अभी दस करोड़ मन्त्रजपके लिये ही विनीत प्रार्थना की जाती है। आशा है, कल्याण-प्रेमी भाग्यवान् नर-नारी इस सत्कार्यमें योग देकर हमपर उपकार करेंगे। नियम पूर्ववत् ही हैं।

यह कोई नियम नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल बिछौनेसे उठनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक चलते, फिरते, उठते, बैठते और काम करते हुए सब समय इस मन्त्रका जप किया जा सकता है। संख्याकी गिनतीके लिये माला हाथमें या जेबमें रक्खी जा सकती है। अथवा प्रत्येक मन्त्रके साथ संख्या याद रखकर भी गणना की जा सकती है। बीमारी या अन्य किसी अनिवार्य कारणवश यदि जपका क्रम टूट जाय तो किसी दूसरे सज्जनसे कहकर जप करवा लेना चाहिये। यदि ऐसा प्रबन्ध न हो सके तो निम्नलिखित पतेपर उसकी सूचना भेज देनेसे उसके बदलेमें उतने जपका प्रबन्ध करवाया जा सकता है। एक बात याद रखनी चाहिये कि पैसा या वृत्ति देकर किसी दूसरेसे जप नहीं करवाना चाहिये। जो करे सो स्वयं आप ही करे। किसी अनिवार्य कारणवश जप बीचमें छूट जाय, दूसरा प्रबन्ध न हो और यहां सूचना भी न भेजी जा सके तो कोई आपत्ति नहीं। निष्कामभावसे भगवान्के नामका जप जितना भी किया जाय उतना ही उत्तम है।

हमारा तो यह विश्वास है कि यदि कल्याणके प्रेमी पाठक और पाठिकाएं अपने अपने यहां इस बातकी पूरी पूरी चेष्टा करें तो आगामी अंक प्रकाशित होनेतक हमारे पास बहुत अधिक संख्याकी सूचना आ सकती है। अतएव सबको कृपापूर्वक इस पुण्यकार्यमें मन लगाकर भाग लेना चाहिये।

१–किसी भी तिथिसे आरम्भ करें परन्तु पूर्ति फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमाको हो जानी चाहिये।

२–सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी-बालक, वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

३–प्रतिदिन कमसे कम एक मनुष्यको १०८ (एक सौ आठ) मन्त्र (एक माला) का जप अवश्य करना चाहिये।

४–सूचना भेजनेवाले सज्जन केवल संख्याकी ही सूचना भेजें। जप करनेवालोंके नाम भेजनेकी कोई आवश्यकता नहीं। केवल सूचना भेजनेवाले सज्जन अपना नाम और पता लिख भेजें।

५–संख्या मन्त्रकी भेजनी चाहिये। नामकी

* सचित्र भगवन्नामांक कल्याण-कार्यालयमें ॥।=) में मिल सकता है।

नहीं। एक मन्त्रमें सोलह नाम हैं। उदाहरणार्थ यदि सोलह नामोंके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपे तो उसके प्रतिदिनके मन्त्रजपकी संख्या १०८ होती है; जिसमेंसे भूल चूकके लिये आठ मन्त्र बाद देनेपर १०० (एक सौ) मन्त्र रह जाते हैं। जिस दिनसे जो भाई आरम्भ करें उस दिनसे फाल्गुन सुदी १५ तकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर सूचना भेजनी चाहिये।

६—संस्कृत, हिन्दी, मारवाड़ी, मराठी, गुजराती, बङ्गला, अंग्रेजी और उर्दू में सूचना भेजी जा सकती है।*

७—सूचना भेजनेका पता—

'नामजप-विभाग'
कल्याणकार्यालय, गोरखपुर

एक लालसा

जीवनका परम ध्येय स्थिर हो जानेपर जब उसके अतिरिक्त अन्य सभी लौकिक पारलौकिक पदार्थोंके प्रति वैराग्य हो जाता है, तब साधकके हृदयमें कुछ दैवी भावोंका विकाश होता है। उसका अन्तःकरण शुद्ध सात्त्विक बनता जाता है। इन्द्रियाँ वशमें हो जाती हैं, मन विषयोंसे हटकर परमात्मामें एकाग्र होता है, सुख-दुःख, शीतोष्णका सहन सहजहीमें हो जाता है, संसारके कार्योंसे उपरामता होने लगती है, परमात्मा और उसकी प्राप्तिके साधनोंमें तथा सन्त-शास्त्रोंकी वाणीमें परम श्रद्धा हो जाती है, परमात्माको छोड़कर दूसरे किसी पदार्थसे मेरी तृप्ति होगी या मुझे परमसुख मिलेगा, यह शंका सर्वथा मिटकर चित्तका समाधान हो जाता है। फिर उसे एक परमात्माके सिवा अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता, उसकी सारी क्रियाएं केवल परमात्माकी प्राप्तिके लिये होती हैं। वह सब कुछ छोड़कर एक परमात्माको ही चाहता है। इसीका नाम मुमुक्षा या शुभेच्छा है। मुमुक्षा तो इससे पहले भी जाग्रत् हो सकती है परन्तु वह प्रायः अत्यन्त तीव्र नहीं होती। ध्येयका निश्चय, वैराग्य, सात्त्विक सम्पत्ति आदिकी प्राप्तिके बाद जो मुमुक्षुत्व होता है वही अत्यन्त तीव्र हुआ करता है। भगवान् श्रीशङ्कराचार्यने मुमुक्षुत्वके तीव्र, मध्यम, मन्द और अतिमन्द ये चार भेद बतलाये हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक भेदसे त्रिविध[1] होनेपर भी प्रकार-भेदसे अनेकरूप दुःखोंके द्वारा सर्वदा पीड़ित और व्याकुल होकर जिस अवस्थामें साधक विवेकपूर्वक परिग्रहमात्रको ही अनर्थकारी समझकर त्याग देता है, उसको तीव्र मुमुक्षा कहते हैं। त्रिविध तापका अनुभव करने और सत्-परमार्थ वस्तुको विवेकसे जाननेके बाद, मोक्षके लिये भोगोंका त्याग करनेकी इच्छा होनेपर भी संसारमें रहना उचित है या त्याग देना, इस प्रकारके संशयमें झूलनेको मध्यम मुमुक्षा कहते हैं। मोक्षके लिये इच्छा होनेपर भी यह समझना कि अभी बहुत समय है, इतनी जल्दी क्या पड़ी है, संसारके

* यदि आगामी अंकोंके प्रकाशित होनेतक पूरी सूचना न मिली और आवश्यक समझा गया तो पूर्तिके समयकी अवधि आगेके लिये भी बढ़ाई जा सकती है।

१ अनेकप्रकारके मानसिक और शारीरिक रोग आदिसे होनेवाले दुःखोंको आध्यात्मिक; अनावृष्टि, अतिवृष्टि, वज्रपात, भूकम्प, दैव-दुर्घटना आदिसे होनेवाले दुःखोंको आधिदैविक और दूसरे मनुष्यों या भूतप्राणियोंसे प्राप्त होनेवाले दुःखोंको आधिभौतिक कहते हैं।

कामोंको कर लें, भोग भोग लें, आगे चलकर मुक्तिके लिये भी उपाय कर लेंगे। इस प्रकारकी बुद्धिको मन्द मुमुक्षा कहते हैं और जैसे किसी राह चलते मनुष्यको अकस्मात् रास्तेमें बहुमूल्य मणि पड़ी दिखायी दी और उसने उसको उठा लिया, वैसे ही संसारके सुख-भोग भोगते भोगते ही भाग्यवश कभी मोक्ष मिल जायगा तो मणि पानेवाले मुसाफिरकी भांति मैं भी धन्य हो जाऊंगा। इस प्रकारकी मूढ़-मतिवालोंकी बुद्धिको अतिमन्द मुमुक्षा कहते हैं। बहुजन्मव्यापी तपस्या और श्रीभगवान्‌की उपासनाके प्रभावसे हृदयके सारे पाप नष्ट होनेसे भगवान्‌की प्राप्तिके लिये तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है। तीव्र इच्छा उत्पन्न होनेपर मनुष्यको इसी जीवनमें भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है-'यस्तु तीव्रमुमुक्षुः स्यात् स जीवन्नेव मुच्यते।' इस तीव्र शुभेच्छाके उदय होनेपर उसे दूसरी कोई भी बात नहीं सुहाती, जिस उपायसे उसे अपने प्यारे-का मिलन सम्भव दीखता है, वह लोक-परलोक किसीकी कुछ भी परवाह न कर उसी उपायमें लग जाता है। प्रिय-मिलनकी उत्कण्ठा उसे उन्मत्त बना देती है। प्रियकी प्राप्तिके लिये वह तन-मन-धन-धर्म-कर्म सभीका उत्सर्ग करनेको प्रस्तुत रहता है। प्रियतमकी तुलनामें, उसकी दृष्टिसे सभी कुछ तुच्छ हो जाता है, वह अपने आपको प्रिय-मिलनेच्छापर न्योछावर कर डालता है। ऐसे भक्तोंका वर्णन करते हुए सत्पुरुष कहते हैं-

प्रियतमसे मिलनेको जिसके प्राण कर रहे हाहाकार।
गिनता नहीं मार्गकी, कुछ भी, दूरीको, वह किसी प्रकार॥
नहीं ताकता, किञ्चित् भी, शत-शत बाधा-विघ्नोंकी ओर।
दौड़ छूटता जहाँ बजाते मधुर-वंशरी नन्दकिशोर॥

—भूपेन्द्रनाथ संन्याल

प्रियतमके लिये प्राणोंको तो हथेलीपर लिये घूमते हैं ऐसे प्रेमी साधक! उनके प्राणोंकी सम्पूर्ण व्याकुलता, अनादिकालसे लेकर अबतककी समस्त इच्छाएं उस एक ही प्रियतमको अपना लक्ष्य बना लेती हैं। प्रियतमको शीघ्र पानेके लिये उसके प्राण उड़ने लगते हैं। एक सज्जनने कहा है कि 'जैसे बाँधके टूट जानेपर जलप्लावनका प्रवाह बड़े वेगसे बहकर सारे प्रान्तके गाँवोंको बहा ले जाता है, वैसे ही विषय-तृष्णाका बाँध टूट जानेपर प्राणोंमें भगवत्प्रेमके जिस प्रबल उन्मत्त वेगका सञ्चार होता है, वह सारे बन्धनोंको जोरसे तत्काल ही तोड़ डालता है। प्रणयीके अभिसारमें दौड़नेवाली प्रणयिनीकी तरह उसे रोकनेमें किसी भी सांसारिक प्रलोभनकी प्रबल शक्ति समर्थ नहीं होती, उस समय वह होता है अनन्तका यात्री—अनन्त परमानन्द-सिन्धु-संगमका पूर्ण प्रयासी!' घर-परिवार सबका मोह छोड़कर, सब ओरसे मन मोड़कर वह कहता है—

बन बन फिरना बेहतर हमको रतन-भवन नहिं भावै है।
लता तले पड़ रहनेमें सुख नाहिंन सेज सुहावै है॥
सोना कर धर शीस भला अति तकिया ख्याल न आवै है।
'ललितकिशोरी' नाम हरीका जपि-जपि मन सचु पावै है॥
अब बिलम्ब जनि करो लाड़िली कृपा-दृष्टि टुक हेरो।
जमुना-पुलिन गलिन गहवरकी बिचरूँ साँझ सबेरो॥
निसिदिन निरखौं जुगुल-माधुरी रसिकनते भट-भेरो।
'ललितकिशोरी' तन मन आकुल श्रीवन चहत बसेरो॥

—ललितकिशोरी

एक नन्दनन्दन प्यारे व्रजचन्द्रकी झाँकी निरखनेके सिवा उसके मनमें फिर कोई लालसा ही नहीं रह जाती, वह अधीर होकर अपनी लालसा प्रकट करता है—

एक लालसा मनमहँ धारूँ।
बंसीबट, कालिन्दी-तट नट-नागर नित्य निहारूँ॥
मुरली-तान मनोहर सुनि सुनि तनु-सुधि सकल बिसारूँ।
छिन-छिन निरखि झलक अँग-अंगनि पुलकित तन-मन वारूँ॥
रिझऊँ स्याम मनाइ, गाइ गुन, गुञ्ज-माल गल डारूँ।
परमानन्द भूलि सगरौ, जग स्याम हि स्याम पुकारूँ॥

—अकिञ्चन

बस, यही तीव्रतम शुभेच्छा है!

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामी श्रीभोलेबाबाजी)

(पूर्वप्रकाशितसे आगे)

[मणि ८]

विषयजन्यसुखमें दुःखरूपता

विषयसे उत्पन्न हुआ फल सुखरूप है अथवा फलका साधनरूप विषय ही सुखरूप है ? इनमेंसे प्रथम पक्ष नहीं बनता, क्योंकि विषयसे उत्पन्न हुआ फल तीन कालमें भी सुखरूप नहीं है, वह तो दुःखरूप ही है।

प्रज्ञाः—हे भगवन् ! यदि विषयजन्य फल सुखरूप न हो तो, विषयसे मुझे सुख उत्पन्न हुआ है, यह कथन असङ्गत होगा। परन्तु सब लोग ऐसा कहते हैं कि विषयजन्य फल सुखरूप है।

सनकादिः—हे प्रज्ञा ! विषयसे सुखरूप फल उत्पन्न नहीं होता, उससे दुःखरूप फल उत्पन्न होता है। पूर्वके भ्रमजन्य संस्कारोंसे पुरुषको दुःखमें ही सुख-बुद्धि होती है। यह दुःखमें सुख-बुद्धि भ्रमरूप है क्योंकि अन्य वस्तुमें अन्य बुद्धिका नाम भ्रान्ति है इसलिये विषयजन्य फल सुखरूप नहीं है। अब 'विषय ही सुखरूप है,' इस दूसरे पक्षके खण्डन करनेके लिये प्रथम स्त्रीरूप विषयमें सुखरूपताका खण्डन किया जाता है, इसका खण्डन होनेसे सब विषयोंमें सुखरूपताका खण्डन हो जाता है। जैसे सब मल्लोंमें जो प्रधान मल्ल होता है, उसको जीतनेसे सबपर विजय हो जाती है, इसी प्रकार सर्व लोगोंके सर्व विषयोंसे अधिक माने हुए स्त्री-रूप विषयमें जब सुखरूपताका खण्डन हो गया, तब सर्व विषयोंमें सुखरूपताका खण्डन सिद्ध हो जाता है। इसलिये प्रथम स्त्रीरूप विषयमें ही सुखरूपताका अभाव कहना चाहिये। जब मरे हुए मेंढकका उदर फूलकर फट जाता है तब वह अधिक दुर्गन्धवाला, अधिक मांसवाला, रुधिर, विष्ठा तथा मूत्रसे युक्त, कोमल स्पर्शवाला तथा स्निग्ध हो जाता है। विचारकर देखनेसे स्त्रीकी योनि भी उसीके समान है। यद्यपि दोनों समान हैं तो भी कामीपुरुषको दुर्गन्धवाले मेंढकके चमड़ेसे स्त्रीकी योनिमें सुन्दरता प्रतीत होती है। यह केवल भ्रान्तिके कारण ही प्रतीत होती है। रोमसे रहित पुरुषके मुखमें तथा स्त्रीके मुखमें विचारकर देखनेसे कुछ भी भेद नहीं है तो भी अविवेकी कामीपुरुषको जो भेद प्रतीत होता है वह केवल भ्रान्तिसे होता है। नपुंसकमें तथा स्त्रीमें कुछ भी भेद नहीं है तो भी भ्रान्तिसे अविवेकी पुरुषको भेद प्रतीत होता है। इसी प्रकार पुरुषके शरीरमें तथा स्त्रीके शरीरमें विचारकर देखनेसे कुछ भी भेद नहीं है।

प्रज्ञाः—हे भगवन्! पुरुषके तथा स्त्रीके शरीरमें लोगोंको भेद अवश्य प्रतीत होता है, इसलिये दोनोंके शरीरोंमें अभेद कहना अत्यन्त विरुद्ध है।

सनकादिः—हे प्रज्ञा ! पुरुष तथा स्त्रीके शरीरमें तत्त्वोंके भेदसे भेद है अथवा आत्माके भेदसे भेद है? तत्त्वोंके भेदसे भेद है, यह प्रथम पक्ष नहीं बनता,

क्योंकि पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच भूत, पांच प्राण तथा चार अन्तःकरण इन चौबीस तत्त्वोंका समुदाय ही स्त्री-पुरुषादि प्राणीमात्रका शरीर है । इस सम्बन्धमें पहले कह आये हैं। इसलिये तत्त्वोंके भेदसे स्त्री-पुरुषादि शरीरोंमें भेद सिद्ध नहीं होता। इसी प्रकार आत्माके भेदसे भेद है, यह दूसरा पक्ष भी नहीं बनता क्योंकि स्त्री-पुरुषादि सर्व प्राणीमात्रके हृदयमें सत्, चित् तथा आनन्दस्वरूप आत्मा स्थित है। अहं ज्ञानका विषय तथा अहं शब्दका लक्ष्य यह आत्मा सर्वत्र व्यापक तथा आधारसे रहित है। इस प्रकार स्त्री-शरीरमें तथा पुरुष-शरीरमें चौबीस तत्त्वोंकी तथा आत्माकी समानता है तो भी कामरूप पिशाचके वश हुए पुरुष और स्त्री, "यह स्त्री है, और यह पुरुष है" इस प्रकारके भेदकी कल्पना करते हैं। इस कल्पनासे ही स्त्री पुरुष पशु-धर्ममें प्रवृत्त होते हैं। ऐसे स्त्री-पुरुषोंका कामशास्त्रमें अत्यन्त हास्य किया गया है। सभ्यतासे विरुद्ध होनेके कारण उसका यहाँ वर्णन नहीं किया जाता। उपहास करनेसे कामशास्त्रका तात्पर्य भी विपरीत आचरणसे निवृत्त करनेमें ही है, प्रवृत्तमें नहीं है।

प्रजाः-हे भगवन्! पशुधर्मसे यद्यपि सुखकी प्राप्तिरूप पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं होती, तो भी कामकी शान्तिरूप दुःखकी निवृत्तिरूप पुरुषार्थता तो सिद्ध होती ही है।

सनकादिः-हे प्रजा! मैथुन-कर्मसे दुःखकी निवृत्ति भी नहीं होती, उससे तो उल्टे क्लेशकी प्राप्ति होती है। जैसे पिशाचादि ग्रहसे युक्त पुरुष ग्रहके दबावसे विपरीत चित्तवाला होकर सम्मुख अथवा विमुख होकर अपने शरीरको ताड़न करता है और उससे अति क्लेशको प्राप्त होकर, पिशाचादि ग्रहसे नहीं छूटकर भी वह सुखी पुरुषके समान पूर्व व्यापारसे रहित होकर स्थित होता है, इसी प्रकार कामरूप ग्रहसे नहीं छूटे हुए कामी स्त्री-पुरुष पूर्व व्यापारसे निवृत्त होकर सुखी हुएसे प्रतीत होते हैं, इसलिये मैथुन-कर्मसे कामकी निवृत्तिरूप दुःखकी भी निवृत्ति नहीं होती। जैसे घृत-काष्ठादिसे अग्निकी शान्ति नहीं प्रत्युत वृद्धि होती है इसी प्रकार मैथुन-कर्मसे भी कामकी निवृत्ति नहीं, किन्तु उल्टी वृद्धि होती है। प्रथम जिस वस्तुमें पुरुषकी इच्छा होती है, उसकी पीछे उस वस्तुमें प्रवृत्ति होती है। इसलिये इच्छा कारणरूप है और प्रवृत्ति कार्यरूप है। कारण बिना कार्य होता नहीं, यह नियम है, इसलिये कार्यसे कारणका अनुमान होता है। जैसे नदीके जलकी वृद्धिसे वर्षाका अनुमान होता है। यदि स्त्री तथा पुरुषके कामकी निवृत्ति हो जाय तो फिर उनकी मैथुन-कर्ममें प्रवृत्ति ही नहीं होनी चाहिये परन्तु ऐसा नहीं होता। प्रतिदिन उनकी प्रवृत्ति होती है, ऐसा देखनेमें आता है, इससे यहाँ सिद्ध होता है कि मैथुन-कर्मसे कामकी निवृत्ति नहीं होती।

प्रजाः-हे भगवन! जैसे मैथुन-कर्ममें प्रवृत्तिरूप हेतुसे स्त्री तथा पुरुषके कामका अनुमान होता है ऐसे ही मैथुन-कर्मसे निवृत्तिरूप हेतुसे कामके अभावका भी अनुमान हो सकता है।

सनकादिः-निवृत्तिरूप हेतुसे कामका अभाव सिद्ध नहीं होता, क्योंकि यदि कामके अभाव बिना निवृत्ति न होती हो तो निवृत्तिरूप हेतुसे कामके अभावका अनुमान हो, परन्तु निवृत्ति कामके अभाव बिना नहीं होती। इसलिये निवृत्तिरूप व्यभिचार-हेतुसे कामके अभावकी सिद्धि नहीं होती, यानी मैथुन-कर्मसे स्त्री-पुरुषकी जो निवृत्ति होती है, वह सुखरूप फलकी प्राप्तिसे नहीं होती, क्योंकि फलकी प्राप्ति होनेपर फिर साधनकी इच्छा नहीं होती। यहां पुनः साधनकी इच्छा देखनेमें आती है इसलिये सुखरूप फलकी प्राप्तिसे निवृत्ति नहीं होती। इसी प्रकार कामके अभावसे भी निवृत्ति नहीं होती, जबतक स्त्री-पुरुषके शरीरमें श्रम उत्पन्न नहीं होता तबतक मैथुन-कर्ममें परस्पर प्रवृत्ति होती है।

जब वे श्रमयुक्त हो जाते हैं तब उससे निवृत्त होते हैं। इसलिये केवल श्रमसे निवृत्ति होती है, सुखकी प्राप्ति अथवा कामके अभावसे वह निवृत्ति नहीं होती, इसलिये निवृत्तिरूप हेतुसे कामका अभाव सिद्ध नहीं होता। वीर्यका निकलना किञ्चित् भी सुखरूप नहीं है वह तो उलटा दुःखरूप है, तो भी मोह-ग्रस्त मनुष्य भ्रान्तिसे दुःखको सुखरूप मानते हैं। भ्रान्तिसे सिद्ध इस सुखसे अधिक सुख विष्ठा-मूत्रके परित्यागमें होता है, क्योंकि वीर्यके परित्यागसे पुरुषको पश्चात्ताप होता है और उसके बलकी हानि होती है, परन्तु विष्ठा-मूत्रके परित्यागके बाद कोई पश्चात्ताप नहीं होता उलटी प्रसन्नता होती है। जैसे समीप ही यदि किसी वृक्षमें मधु मिलता हो तो मधुके लिये पर्वतपर जाना व्यर्थ है इसी प्रकार जब वीर्यके परित्यागरूप सुखसे विष्ठा-मूत्रके परित्याग-जन्य अधिक सुख नित्य प्राप्त है तो वीर्य परित्यागजन्य सुखकी प्राप्तिके लिये यत्न करना व्यर्थ है।

प्रजाः—भगवन्! जैसा सुख समागममें होता है वैसा सुख विष्ठा-मूत्रके परित्यागमें नहीं होता।

सनकादिः— वीर्यके परित्यागमें जैसे तुम 'रत' शब्दकी अर्थता मानते हो, वैसे ही विष्ठा-मूत्रके परित्यागमें 'रत' शब्दकी अर्थता क्यों नहीं मानते? किस दूषणके भयसे नहीं मानते? उसमें भी माननी चाहिये, क्योंकि सुखका अनुकूल व्यापारत्व, 'रत' शब्दकी प्रवृत्तिनिमित्त वीर्य-परित्यागमें तथा विष्ठा-मूत्रके परित्यागमें समान ही है। शब्द-सहित अपान-वायुके परित्यागमें जो सुख होता है, वह सुख देवाङ्गनाके संयोगमें भी नहीं होता, तो जैसे भ्रान्त पुरुष देवाङ्गनाजन्य सुखकी प्राप्तिके लिये यज्ञादि कर्म करता है वैसे ही अपान-वायु-जन्य सुखकी प्राप्तिके लिये भी यज्ञादि कर्म करने चाहियें। तृणादि तुच्छ वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये जो पुरुष चिन्तामणिका परित्याग कर देता है, उस बुद्धिहीन मनुष्यको चिन्तामणि शाप देती है। इसी प्रकार अपान-वायुके निर्गमन-जन्य सुखसे भी अतिनिकृष्ट जो देवाङ्गना-जन्य सुख है, उस तुच्छ सुखकी प्राप्तिके लिये चित्त-शुद्धिद्वारा मोक्षके साधनरूप यज्ञादि कर्म जो पुरुष करता है, उस अल्पबुद्धि पुरुषको यज्ञादि कर्म भी शाप देते हैं। जो मनुष्य विषयजन्य सुखको सुख मानता है, उससे पूछना चाहिये कि स्त्रीका शरीर, पुरुषका शरीर, दोनोंके शरीरका सम्बन्ध, प्रजाकी उत्पत्ति अथवा समान जातिवाली प्रजाकी उत्पत्ति, इनमेंसे कौनसी वस्तु सुखका कारण है? इनमेंसे स्त्रीका शरीर तथा पुरुषका शरीर सुखका कारण है, यह प्रथम पक्ष नहीं बनता, क्योंकि यदि शरीरमें सुख उत्पन्न होता हो तो सुखकी प्राप्तिके लिये स्त्री पुरुष एक दूसरेके पास गमन न करें, क्योंकि सुखके साधनरूप दोनोंके शरीर विद्यमान हैं इसलिये स्त्री तथा पुरुषके शरीरमें सुख नहीं है। स्त्री-पुरुषका संयोग सुखका कारणरूप है, यह दूसरा पक्ष भी नहीं बनता, क्योंकि यदि स्त्री-पुरुषका संयोग ही सुखका कारण हो तो मैथुन-कर्मके बाद भी संयोगसे सुख होना चाहिये परन्तु ऐसा नहीं होता। उस समय उल्टा पश्चात्ताप होता है। इसीलिये महात्मा पुरुषोंने कहा है:—

भोजनान्ते स्मशानान्ते मैथुनान्ते च या मतिः।
सा मतिः सर्वदा चेत्स्यात्तरो नारायणो भवेत्॥

भोजनके अन्तमें, स्मशानमें तथा मैथुनके अन्तमें पुरुषकी जैसी बुद्धि होती है, वैसी ही बुद्धि यदि सर्वदा बनी रहे तो पुरुष साक्षात् परमेश्वर रूप हो जाय। परन्तु ऐसी बुद्धि सर्वदा नहीं रहती, इसलिये स्त्री-पुरुषका संयोग भी सुखका कारण नहीं है। और प्रजाकी उत्पत्ति सुखका कारणरूप है, यह तीसरा पक्ष भी नहीं बनता क्योंकि यदि प्रजाकी उत्पत्ति सुखका कारण

हो तो जूं आदि प्रजाकी उत्पत्तिसे भी सुख होना चाहिये परन्तु ऐसा नहीं होता, उनसे उल्टा दुःख होता है इस लिये प्रजाकी उत्पत्ति भी सुखका कारण नहीं है और सजातीय प्रजाकी उत्पत्ति सुखका कारण है, यह चौथा पक्ष भी नहीं बनता, क्योंकि लोकमें पुत्रादिरूप प्रजावाले पुरुष भी पुत्रादिसे दुखी देखनेमें आते हैं। यह सभी जानते हैं कि प्रतिकूल पुत्रादि माता-पिताके दुःखका कारण होते हैं।

रसादि विषयमें सुखका अभावः—जैसे स्त्रीरूप विषय सुखका कारण नहीं है इसी प्रकार अन्न तथा जल भी सुखके कारण नहीं हैं क्योंकि भोजन किया हुआ अन्न तथा पान किया हुआ जल उत्तरकालमें पुरुषको दुःखका कारणरूप प्रतीत होता है यानी भोजनसे तृप्त हुए पुरुषको यदि कोई अन्न देता है तब वह मुख बनाकर 'नहीं' कहता है, इससे सिद्ध होता है कि पुरुषको अन्नमें द्वेष है और जो द्वेषका विषय होता है, वह दुःखका साधनरूप होता है, जैसे कि सिंह सर्पादि हैं। इसलिये अन्न आदि सुखके कारण नहीं हैं।

प्रजाः—हे भगवन्! यदि अन्न तथा जल सुखके कारण न हों तो सुखकी प्राप्तिके लिये अन्न-जलमें लोगोंकी प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये पर सब लोगोंकी प्रवृत्ति अन्न-जलमें देखनेमें आती है इसलिये अन्न तथा जल सुखके कारणरूप हैं।

सनकादिः—हे प्रजा! अन्न तथा जल सुखके कारणरूप नहीं हैं। अन्न-जलसे कुछ कालके लिये क्षुधा-तृषाकी शान्ति हो जाती है। जैसे प्रज्वलित अग्निमें डाली हुई लकड़ी क्षणमात्र अग्निकी ज्वालाको निवारण कर देती है तथा जलसे भीगी हुई भूमिको जब वायु सुखा देता है, तब जलका सिंचन क्षणमात्र पृथ्वीकी रूक्षताको निवारण कर देता है, इसी प्रकार शरीरके अन्दर स्थित अग्नि तथा प्राण भी अप्रतिबद्ध होकर प्राणीकी क्षुधा-तृषाको उत्पन्न करते हैं। उनमेंसे प्राण क्षुधाको और अग्नि तृषाको उत्पन्न करता है। पुरुषके शरीरके भीतर डाला हुआ अन्न तथा जल कुछ समयके लिये क्षुधा तथा तृषाको शान्त कर देता है यानी अन्न-जलके डालनेसे प्राणाग्निका निरोध हो जाता है। इस निरोधसे क्षणमात्र क्षुधा-तृषाकी शान्ति हो जाती है। क्षुधा-तृषाकी सहनरूप शान्तिमें ही अल्प-बुद्धि भ्रान्त पुरुष सुख मानते हैं। इसलिये रसनेन्द्रियके विषयरूप अन्नादि सुखके कारण नहीं हैं। इस प्रकार शब्दादि विषयकी प्राप्तिसे पुरुषको सुख उत्पन्न नहीं होता, क्षणमात्र इच्छाकी निवृत्ति हो जाती है। शब्दादि विषयकी इच्छासे प्रथम चित्त चञ्चल रहता है। जब शब्दादि विषय प्राप्त होते हैं तब क्षणमात्र चित्तकी चञ्चलताकी निवृत्ति हो जाती है। इस चञ्चलताकी निवृत्तिरूप चित्तकी अवस्थाको ही मूढ़ पुरुष सुखरूप मानते हैं। ज्ञानी पुरुष ऐसा जानते हैं कि चित्त पञ्चभूतोंके सत्त्वगुणका कार्य होनेसे निर्मल है, तो भी शब्दादि विषयकी इच्छासे चलायमान हुआ चित्त आत्मारूप आत्माके प्रतिबिम्बको ग्रहण नहीं करता और जब शब्दादि विषयकी प्राप्ति होती है तब कुछ समयतक इच्छाकी निवृत्ति हो जानेसे चित्त स्थिर हो जाता है। स्थिर-चित्तमें आनन्दस्वरूप परमात्माका प्रतिबिम्ब पड़ता है। जिस आनन्दस्वरूप आत्माके प्रतिबिम्बसे दुःखरूप चित्त भी सुखके समान प्रतीत होता है, वह बिम्बरूप आत्मा ही मुख्य सुखस्वरूप है। इस अभिप्रायसे ही शास्त्रमें विषय-प्राप्ति-कालमें भी ज्ञानीको नित्य सुखका अनुभव कहा है और अज्ञानीको क्षणिक सुखका अनुभव होता है, इसलिये शब्दादि विषयमें किञ्चित् भी सुख नहीं होता, दुःखरूप अन्तःकरणके परिणाममें ही भ्रान्त पुरुष सुख-बुद्धि कर लेते हैं। विषयजन्य अन्तःकरणके परिणामरूप फलमें उत्पत्ति, नाश तथा परिच्छिन्नतारूप दोष रहते हैं इसलिये बुद्धिमान्‌को उनमें सुख-बुद्धि नहीं होती, क्योंकि श्रुतिमें व्यापक आत्माको ही सुखरूप कहा है। व्याकरणकी रीतिसे

सुख-शब्दका अर्थ करें तो भी अन्तःकरणके परिणामकी सुखरूपता सिद्ध नहीं होती. क्योंकि जिससे इन्द्रियोंके गोलक प्रसन्न हों, वह सुख कहलाता है। विषयजन्य सुखका दोष विचार करनेसे हृदय-गोलक चिन्तासे तपायमान होता है इसलिये जितने विषयजन्य सुख हैं, वे सब दुःखरूप हैं। पूर्वोक्त युक्तिसे सुख किसी कारणसे उत्पन्न नहीं होता, सुख तो नित्य है। जो उत्पन्न होता है, वह सुखरूप नहीं होता। नित्य सुखस्वरूप सबका आत्मा है, आत्मा सत्, चित् तथा अद्वितीयस्वरूप है।

प्रजाः-हे भगवन्! सत्, चित् तथा आनन्द शब्दके भेदसे आत्माके स्वरूपमें भेद क्यों नहीं है?

सनकादिः-हे प्रजा! बुद्धिमान् पुरुषको सतादि शब्दोंके भेदसे सत्, चित् तथा आनन्दरूप अर्थमें भेद-बुद्धि उत्पन्न नहीं होती, क्योंकि शब्दोंका भेद होनेपर भी लोकमें अर्थकी एकता देखनेमें आती है, जैसे एक ही पुरुष-व्यक्तिमें पिता, पुत्र, पति, भ्राता इस प्रकारके भिन्न भिन्न शब्द पुत्र, पिता, स्त्री तथा भ्राताके क्रमसे कहे जाते हैं तो भी उन शब्दोंके भेदसे पुरुष-व्यक्तिका भेद नहीं होता, इसी प्रकार आत्माके लिये सत्, चित् तथा आनन्द ये भिन्न भिन्न शब्द शास्त्रमें कहे हैं। इन सतादि शब्दोंके भेदसे आत्मामें भेद नहीं होता। बन्ध्यापुत्र असत्य है, वैसे आत्मा असत्य नहीं है, किन्तु आत्मा असत्यसे विलक्षण है। इस विलक्षणतारूप निमित्तको ग्रहण करके सत्यादि शब्द आत्मामें प्रवृत्त होते हैं। जैसे घटादि जड़पदार्थ अन्यसे प्रकाश्य हैं इस प्रकार आत्मा अन्यसे प्रकाश्य नहीं है इसलिये आत्मा जड़ नहीं है। घटादि जड़-पदार्थोंसे विलक्षणतारूप निमित्त ग्रहण करके आत्मामें चेतन-शब्द प्रवृत्त होता है। जो वस्तु प्रतिकूल होती है, वह सुख-शब्दका अर्थरूप नहीं होती, पर दुःख-शब्दका अर्थरूप होती है, जैसे कि सिंह-सर्पादि हैं। जो वस्तु अन्यका शेष होती है, वह भी सुख-शब्दका अर्थरूप नहीं, किन्तु दुःख-शब्दका अर्थरूप होती है, जैसे कि स्त्री धनादि हैं। ऐसा दुःखरूप आत्मा मैं नहीं हूं, मैं दुःखसे विलक्षण हूं। इस विलक्षणतारूप निमित्तको ग्रहण करके आनन्द शब्द आत्मामें प्रवृत्त होता है। इस प्रकार आत्मा, एक, अद्वितीय, अस्थूल तथा अनणु आदि शब्द भेदरहित सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मामें प्रवृत्त होते हैं। आत्माके प्रतिपादक दो प्रकारके शब्द हैं, एक विधिमुख, दूसरे निषेधमुख। विधिमुख सत्यादि शब्द प्रथम आत्माका बोध कराके पीछे असत्यादिसे व्यावृत्तिका बोधन करते हैं। निषेधमुख अद्वितीय आदि शब्द प्रथम साक्षात् व्यावृत्तिका बोध कराके पीछे अर्थसे आत्माका बोधन करते हैं। व्यावृत्तिका अर्थ भेद है। इस प्रकार सत्यादि शब्दोंका भेद होनेपर भी उनके अर्थमें भेद नहीं है, सत्यादि सर्व शब्द एक ही आत्माका बोधन करते हैं।

सत्यादि शब्दोंके अर्थका अभेदः—सुखसे प्रकाश भिन्न नहीं है, क्योंकि यदि सुखसे प्रकाश भिन्न हो तो दुःख तथा दुःखके साधन सर्पादिके समान प्रकाश भी प्रतिकूल होवे अथवा सुखके साधनरूप स्त्री तथा धनादिके समान अन्य भोक्ताका शेषभूत होवे। परन्तु प्रकाश अनुकूलतम होनेसे प्रतिकूल तथा अन्यका शेषभूत नहीं है, इसलिये प्रकाश सुखसे भिन्न नहीं है। सुखके साधनरूप स्रक्चन्दनादि विषय अनुकूल कहलाते हैं, तथा उन विषयोंके सम्बन्धसे उत्पन्न हुई अन्तःकरणकी वृत्ति अनुकूलतर कहलाती है और विषय, वृत्ति तथा अन्तःकरण इन तीनोंका प्रकाशक आत्मा अनुकूलतम कहलाता है, इसलिये प्रतिकूलता तथा अन्यशेषता दोनों प्रकाशमें नहीं बनते?

प्रजाः-हे भगवन्! प्रकाश तथा सुखका भेद न सही परन्तु इन दोनों धर्मोंसे आत्मरूप धर्मी भिन्न क्यों नहीं है?

सनकादिः-हे प्रजा! यह आत्मा प्रकाशरूपसे भिन्न नहीं है, क्योंकि आत्मा अन्तःकरणकी सब वृत्तियोंका प्रकाशक है। जो प्रकाशसे भिन्न होता

है, वह सर्व वृत्तियोंका प्रकाश नहीं करता। जैसे कि बुद्धि आदि। यदि आत्मा प्रकाशसे भिन्न हो तो अप्रकाशरूप होवे और अप्रकाशरूप होनेसे वह घटादिके समान अनात्मरूप होगा। पर आत्माकी अनात्मता कोई भी नहीं मानता इसलिये आत्मा प्रकाशसे भिन्न नहीं है, प्रकाशरूप ही है। जैसे सुखसे प्रकाश भिन्न नहीं है, ऐसे ही प्रकाशसे सुख भी भिन्न नहीं है, क्योंकि यदि सुख प्रकाशसे भिन्न हो तो अप्रकाशरूप हो और अप्रकाशरूपको कभी सुख-रूपता नहीं बनती।

प्रजाः—हे भगवन्! जैसे दीपकसे घटादिका प्रकाश होता है। घटादि भिन्न हैं, दीपक भिन्न है, इसी प्रकार सुखसे भिन्न प्रकाशसे सुखका प्रकाश बनता है इसलिये सुख और प्रकाशका अभेद मानना निष्फल है।

सनकादिः—हे प्रजा! जैसे रज्जु आदि व्यावहारिक पदार्थ तथा सर्पादि कल्पित पदार्थ अपनेसे भिन्न अन्य प्रकाशसे प्रकाशमान होते हैं, वैसे अपनेसे भिन्न अन्य प्रकाशसे सुख प्रकाशमान नहीं होता। सुख तो अपनेसे अभिन्न प्रकाशसे ही प्रकाशमान होता है। इसलिये सुखसे प्रकाशका अभेद है, तात्पर्य यह है कि रज्जु आदि अचेतन पदार्थ चेतनमें कल्पित हैं, इसलिये भिन्न प्रकाशसे उनकी प्रकाशमानता सम्भव है परन्तु आत्मा कल्पित नहीं है, वह सर्वका अधिष्ठान है, इसलिये उसकी प्रकाशमानता भिन्न प्रकाशसे नहीं बनती। जैसे प्रकाशसे आत्मा भिन्न नहीं है, इसी प्रकार सुखसे भी आत्मा भिन्न नहीं है, वह अभिन्नरूप है। प्रकाशस्वरूप आत्मा यदि सुखसे भिन्न हो तो वह घटादिके समान अनात्मा ठहरे, किन्तु आत्मा-की अनात्मता कोई नहीं मानता। इसलिये प्रकाश, सुख तथा आत्मा, इन तीनोंका अभेद है। यहां प्रकाश-शब्दसे चैतन्यका और सुख-शब्दसे आनन्दका ग्रहण करना चाहिये। आत्मा, आनन्द तथा प्रकाश ये तीनों सत्तासे भिन्न नहीं हैं, क्योंकि जैसे सत्तासे भिन्न होनेसे वन्ध्या-पुत्र असत्य है, इसीप्रकार यदि ये सत्तासे भिन्न हों तो इन आत्मा, आनन्द तथा प्रकाशको भी वन्ध्या-पुत्रके समान असत्यता प्राप्त होती है परन्तु आत्माकी असत्यता कोई वादी नहीं मानता। जैसे आत्मा, आनन्द तथा प्रकाश ये तीनों सत्तासे भिन्न नहीं हैं इसी प्रकार सत्ता भी इन तीनोंसे भिन्न नहीं है, क्योंकि यदि आत्मा, आनन्द तथा प्रकाशसे सत्ता भिन्न हो तो घटादिके समान अनात्मरूप, दुःखरूप तथा जड़रूप हो और अनात्म-रूप होनेसे सत्ता वन्ध्यापुत्रके समान असत्य हो। यानी अपने स्वरूपका नाम आत्मा है। यदि अपने स्वरूपसे सत्ता भिन्न हो तो वन्ध्या-पुत्रके समान असत्य हो इसलिये सत्ता आत्मासे भिन्न नहीं है। यह सत्, चित्, आनन्दस्वरूप आत्मा हमारा-तुम्हारा सबका स्वरूप है। आत्मा देश, काल तथा वस्तु परिच्छेदसे रहित है इसलिये अनन्त है। जैसे रज्जुमें सर्प कल्पित है ऐसे ही अनन्त आत्मामें प्रपञ्च कल्पित है। कार्य, कारण, देश तथा कालादिके वाचकरूप, सर्व शब्दोंका तथा सर्व ज्ञानोंका विषयरूप परमात्मा ही है। इसीलिये वेदान्त-वाक्योंसे तथा वेदान्तवाक्य-जन्य ज्ञानसे परिपूर्ण आत्माको मैं देखता हूं, अतएव मैं कृत-कृत्य हूं यानी जिस आत्मस्वरूपका निश्चय करनेके लिये दुःखरूप शरीरमें मैंने प्रवेश किया था, वह आत्म-साक्षात्कार अब प्राप्त कर लिया है, इसलिये अब मुझको कुछ भी कर्तव्य नहीं है। इस प्रकार गुरु तथा वेदान्त वाक्य-ज्ञानसे परमात्मा अपने स्वरूपको अपरोक्ष देखने लगा, इस कारणसे ही 'इदन्द्र' इस नामको प्राप्त होकर आनन्दरूप आत्मा ब्रह्मरूप हो गया क्योंकि ब्रह्मके जाननेवालेकी ब्रह्म-रूपता श्रुतिमें प्रसिद्ध है। इस इदन्द्र नामके परमात्माको अग्नि आदि देवता तथा देव भाववाले मनुष्य 'इन्द्र' ऐसे परोक्षनामसे पुकारते हैं, क्योंकि ये देवता प्रत्यक्ष नाम लेनेसे द्वेष मानते हैं, इसी कारणसे आजकल भी महान् पुरुषोंको आचार्य

आदि परोक्ष नामोंसे जो बुलाते हैं, उनसे महान् पुरुष प्रसन्न होते हैं और यदि देवदत्तादि साक्षात् नामोंसे महान् पुरुषोंको कोई बुलाता है तो उससे वे अप्रसन्न होते हैं। जब देवता तथा शिष्टपुरुष ही प्रत्यक्ष नाम लेनेसे द्वेष करते हैं तो परमेश्वर प्रत्यक्ष नाम लेनेसे द्वेष करे तो इसमें कहना ही क्या है। इदन्द्र नामके परमेश्वरको इन्द्र नामसे देवता बुलाते हैं और आप भी प्रत्यक्ष नामसे द्वेष करते हैं इसलिये विवेकी पुरुष देवताओंको परोक्षप्रिय कहते हैं (इति तृतीय खण्ड)

गुरुः हे शिष्य! इस प्रकार सनकादि ऋषि सात्त्विकी प्रजाको आत्माका उपदेश करके फिर कहने लगे।

सनकादिः-हे आत्मज्ञानकी अधिकारिणी प्रजा! यहांतक अध्यारोपापवादसे आत्माका स्वरूप हमने तुमको समझाया। आत्मा महावाक्यका तथा महावाक्यजन्य वृत्तिज्ञानका विषयरूप है तो भी तुम घटादिके समान आत्माको स्वरूपसे विषयरूप मत समझना। वेदान्तके तात्पर्य-ज्ञानद्वारा आत्माको अविषयरूपसे जानना चाहिये यानी जैसे गायको सींग पकड़के दिखा देते हैं, इस प्रकार आत्माके दिखानेमें कोई समर्थ नहीं है।

प्रजाः-हे भगवन्! आप सर्वशक्ति सम्पन्न हैं इसलिये गायके समान साक्षात् आत्माका हमको उपदेश कीजिये।

सनकादिः हे अधिकारी प्रजा! अध्यारोपापवादरूप मायाके सिवा कौन पुरुष ऐसा समर्थ है जो अद्वितीय आत्माका कथन कर सके तथा श्रवण कर सके? अध्यारोपापवादसे ही गुरु तथा शास्त्र आत्माका उपदेश करते हैं। इसीलिये तैत्तिरीय श्रुतिमें आत्माको मन तथा वाणीका अविषय कहा है और केनोपनिषद्में ऐसा कहा है कि तत्त्ववेत्ता पुरुषके मतानुसार आत्मा अविषयरूप है और अविवेकी पुरुषके मतानुसार आत्मा विषयरूप है क्योंकि अविवेकी पुरुष घटादिके समान बुद्धि आदिको आत्मा मानता है। कठोपनिषद्में ऐसा कहा है कि जो वाणीके अविषयरूप आत्माका वर्णन करता है वह आत्माका वक्ता आश्चर्यरूप है और इन्द्रियके अविषयरूप आत्माका जो श्रवण करता है, वह श्रोता भी आश्चर्यरूप है, जो आचार्यके उपदेशसे मनके अविषयरूप आत्माका साक्षात्कार करता है वह आत्माका लब्धा भी आश्चर्यरूप है। हे सात्त्विकी प्रजा! इससे अधिक आत्माका स्वरूप कहनेमें हम समर्थ नहीं हैं। दिशामात्रसे हमने तुमको आत्माका उपदेश किया है। तुम सर्व युक्तियोंके तथा वेदान्त शास्त्रके भी जाननेवाले हो, इसलिये बुद्धिसे विचार करके आत्माको प्राप्त हो! जैसे श्रीरामेश्वरकी प्राप्तिकी इच्छावाला पुरुष किसी पुरुषसे पूछता है कि मुझे कौनसे मार्गसे रामेश्वर जाना चाहिये, तब वह पुरुष उसे दक्षिण दिशा बता देता है, पीछे उस दिशाको जानेवाला पुरुष अपनी बुद्धिसे रामेश्वर पहुंच जाता है, इसी प्रकार हे प्रजा! दिशामात्रसे हमने तुमको आत्मा बताया है, अब तुम अपनी बुद्धिसे आत्माको जानो! वशिष्ठ भगवान्ने भी इसीप्रकार श्रीरामचन्द्रसे कहा हैः—

उपदेशक्रमो राम व्यवस्थामात्रपालनम्।
ज्ञप्तेस्तु कारणं शुद्धा शिष्यप्रज्ञैव केवलाम्॥

अर्थः—साधनचतुष्टय-सम्पन्न मुमुक्षुको श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जाकर वेदान्तका श्रवण करना चाहिये, ऐसी श्रुतिकी आज्ञा है, इस आज्ञाके पालन करनेके लिये ही गुरुका शिष्यके प्रति उपदेश है। आत्म-साक्षात्कारका कारण शिष्यकी केवल शुद्ध बुद्धि ही है। अशुद्ध बुद्धिवाले पुरुषको ब्रह्माके उपदेशसे भी आत्म-साक्षात्कार नहीं होता। इसी कारणसे ब्रह्माके उपदेशसे विरोचनको आत्मज्ञान नहीं हुआ था। हे सात्त्विकी प्रजा! वैराग्यरहित पुरुष इस आत्माको नहीं जान सकता, वैराग्यवान् पुरुष ही

आत्माके जाननेमें समर्थ होता है इसलिये हे प्रजा ! आत्माका साक्षात्कार करनेके लिये तुम वैराग्यका सम्पादन करो !

प्रजाः—हे भगवन् ! वैराग्यके सम्पादन करनेका क्या उपाय है ?

सनकादिः—हे प्रजा ! वैराग्यकी प्राप्तिका उपाय हम पूर्वमें तुमसे कह चुके हैं। सुखके साधनरूप स्त्री-पुत्रादिमें सर्वदा दोष देखो, यही वैराग्यकी उत्पत्तिका कारण है।

इस प्रकार अधिकारी प्रजाको उपदेश करके उनके शोकके हरनेवाले सनकादि महात्मा पुनः प्रश्न करनेकी इच्छावाले अधिकारियोंका अनादर करके, वहांसे अन्तर्धान हो गये। सनकादिके चले जानेके बाद दुर्लभ गुरुके लाभसे प्रसन्न मनवाली सब अधिकारी प्रजा परस्पर निम्नलिखित विचार करने लगीः—

प्रजाः—हम अधिकारियोंका अहोभाग्य है, कि सनकादि ऋषि हमारे गुरु हुए हैं। इन सनकादि ऋषियोंकी सर्व प्राणीमात्रमें समान दृष्टि है, ये काम-क्रोधादिसे रहित हैं। जैसे वायु बाहर तथा भीतर सञ्चार करता है वैसे ही सब प्राणियोंके भीतर तथा बाहर ये विचरनेवाले हैं। इनकी परोपकारमें सदा प्रीति है, और ये शीतोष्णके सहन करनेवाले हैं। दूसरोंके दोष कहनेमें इन्होंने मौन धारण कर रक्खा है। ये सर्व दोषोंसे रहित तथा आत्मज्ञानसे युक्त हैं। जैसे शरदृऋतुका समुद्र क्षोभसे रहित होता है वैसे ही ये भी क्षोभसे रहित निश्चल हैं ! ये निर्मल मनवाले तथा पूर्णिमाके चन्द्रमाकी कान्तिके समान कान्तिवाले हैं ! इन सनकादि ऋषियोंने हमारे हितके लिये हमको आत्माका उपदेश किया है, परन्तु वैराग्यके अभावसे हमारे लिये उनका सब उपदेश व्यर्थसा ही है, उनके इतना उपदेश करनेपर भी अबतक हमें आत्माका अपरोक्षज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ। केवल परोक्षज्ञान मात्र ही उत्पन्न हुआ है। जैसे विद्या-अध्ययनके समय सामान्य रीतिसे अर्थ-ज्ञान होता है वैसे ही हमको भी आत्माका परोक्ष-ज्ञान हुआ है। सनकादिके वचनसे यज्ञादि कर्मके कर्ता-भोक्ता ऐसे हम अद्वितीय आत्म-स्वरूप नहीं हैं, इस प्रकारका महान् संशय हमको उत्पन्न हुआ है अर्थात् गुड़ यद्यपि मधुर-रसका कारणरूप है तो भी पित्त-रोगवाले पुरुषको गुड़ कटुताके अनुभवका कारणरूप होता है इसी प्रकार यद्यपि सनकादि ऋषियोंके वाक्य आत्मज्ञानके कारणरूप हैं तो भी हमारे दोषके कारण उन वाक्योंसे हमको संशय उत्पन्न हुआ है इसलिये सनकादिके वाक्योंमें हमारा मन स्थिर नहीं होता। क्योंकि सनकादिने हमको अद्वितीय आत्मस्वरूप कहा है किन्तु यह बन नहीं सकता क्योंकि हम कर्मके कर्ता-भोक्तारूप हैं तब अद्वितीय आत्म-स्वरूप कैसे हो सकते हैं ? हम अद्वितीय आत्मस्वरूप नहीं हैं। सनकादिने पूर्व अहं ऐसे शब्दका लक्ष्य तथा अहं ऐसे ज्ञानका विषय आत्मा बताया है, यह भी बन नहीं सकता, क्योंकि अहं ऐसे ज्ञानकी विषयता हममें नहीं है और अहं इस शब्दकी लक्ष्यता भी हममें नहीं है इसलिये हे अधिकारियो ! हमको आत्मामें दृढ़ असम्भावना उत्पन्न हुई है। इसी कारण हमारी असम्भावनाको देखकर हमारे बिना पूछे ही सनकादिने आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये हमको वैराग्य और वैराग्यका दोष-दृष्टिरूप उपाय भी बताया है। इसलिये हे अधिकारियो ! हम सब मिलकर पदार्थोंके दोषोंका विचार करें। प्रथम, शरीरमें क्या क्या दोष हैं, इसका विचार करना चाहिये। ऐसा विचारकर अग्निहोत्रके करने-वाले अधिकारी परस्पर मिलकर इस प्रकार विचार करने लगे। (क्रमशः)

भक्त-भारती

(लेखक—पं० श्रीतुलसीरामजी शर्मा 'दिनेश')

(पूर्व प्रकाशितसे आगे)

अम्बरीष-अवहेलना

अर्थात्

दुर्वासा-दर्प-दलन

दोहा

जन्मा श्रीनाभागके, पुत्र एक विख्यात।
अम्बरीष अलिवर-रसिक, श्रीहरि-पद-जलजात ॥

कार्तिक एकादशी भूपने रक्खी ईश रिझानेको,
अति श्रद्धासे अपने पिछले पाप ताप कट जानेको।
अम्बरीषका अन्तः हरिके भजनेसे था शुद्ध घना,
गो,ब्राह्मण,जन,अतिथि,दीनका परमभक्त वह विमल-मना ॥

सब धन्धोंसे निपट, तीन दिन व्रत-युत भजन किया उसने,
सहज सुलभ होनेपर दुर्लभ अघ-हर अमृत पिया उसने।
भक्त-मण्डली-मध्य बैठकर लाज छोड़ गुण-गान किया,
जगा रात भर छका प्रेममें, प्रीति-सरितमें स्नान किया ॥

हुआ सवेरा 'हरि हरि' करना लगा घूमने प्रेम-छका,
सरपट गतिसे दौड़ रहा मन, हरिके जपसे नहीं थका।
दुर्वासा आ गये अचानक, देख भूपने शिर नाया,
जान परम सौभाग्य, आज निज, भूप-दृगोंमें जल छाया ॥

दोहा

अहा ! आज पारण-दिवस, घरपर ऋषि मेहमान।
अनायास ही आ गये, रीझे श्रीभगवान ॥
आसन ऋषिवरको दिया, बहुत प्रेमके साथ।
'हे मुनीश ! आये भले, मुझको किया सनाथ ॥'

हाथ जोड़कर करी प्रार्थना भोजन करने हेतु वहीं,
सत्य प्रेमके आगे कोई 'ना' कर सकता भला कहीं ?
मुनिने की स्वीकार प्रार्थना, यमुना-तट स्नानार्थ गये,
नृपके मन-मानसमें फिरते-तिरते भाव मराल नये ॥

हरिने कैसी की अनुकम्पा ऋषिको यहां उठा लाये,
पारणके दिन पाप निवारण कारण ऋषिवर घर आये।
स्वयं खड़े हो होकर राजा भोजन बनता देख रहे,
'देखो, त्रुटि रह जाय न कुछ भी' पाचक-गणसे यही कहे ॥

इधर द्वादशी एक घड़ी है, शेष त्रयोदशि आती है,
जो न द्वादशीमें पारण हो, व्यर्थ इकादशि जाती है।
उधर महा-मुनि तर्पण, सन्ध्या, जपमें जा लवलीन हुए,
धर्म-विपदमें पड़े भूपवर बिना नीरके मीन हुए ॥

'पारण जो न करूं तो जाती एकादशी निरर्थक है,
जो न जिमाऊं अतिथि प्रथम तो धर्म न रहता सार्थक है।'
पूज्य ब्राह्मणोंसे नृपवरने पूछा 'क्या मैं करूं अहो!
बात रहे औ धर्म न जावे, ऐसी कोई युक्ति कहो ॥'

दोहा

विप्र-वृन्दने सोच कर, कहा 'करो जल-पान।'
पारण नृपवरने किया, सोच समझ कल्यान ॥

सन्ध्यादिकसे निपट महामुनि चले झूमते नृप-घरको,
नृपने सविनय शीश नवाया, आते देख मुनीश्वरको।
मुनिने धरकर ध्यान विलोका, नृपने पारण किया अहो!
गर्व-धनुषपर क्रोध बाण धर, भूप लक्ष्य कर लिया अहो!

प्रथम सहज ही क्रोधी, दूजे, क्षुधा-प्रपीड़ित,तीजे तेज,
ओंठ फरकने लगे क्रोधसे, बिखरा विकट जटा-बन्धेज।
दाँत पीस कर बोले, 'देखो' यह हरि-भक्त कहाता है,
धन-मदान्ध, अति ढीठ, धर्मको निर्भय यों ठुकराता है?

अतिथि बना मैं इसका सो तो यमुना-तट बैठा भूखा ,
यह महलोंमें बैठ जीमता, कैसा कठिन हृदय, रूखा ?
नहीं अतिथि अपमान हुआ यह, इसके मदका गान हुआ ॥
नहीं धर्म-अपमान हुआ यह, है अधर्मका मान हुआ ॥

नहीं, नहीं, मैं अब ही इसको इसका मजा चखाता हूँ ,
'देख देख रे ! देख, तुझे मैं अपने हाथ दिखाता हूँ ।'
देकर झटका एक क्रोधसे अपनी जटा उखाड़ी एक ,
दुर्वासाने अपने हाथों भर ली दुखकी गाढ़ी एक ॥

दोहा

अम्बरीष पर छोड़ दी, कृत्या वह तत्काल ।
प्रबल अनलकी झल सदृश, झपटी ले करवाल ॥
सम्मुख जोड़े हाथ युग, राजा खड़ा प्रशान्त ।
हरि यह लीला देखकर, कब रह सकते शान्त ॥

चला सुदर्शन चक्र घूमता कृत्याका "इतिकृत्य" किया ,
प्रखर अनलसे कमल सदृश वह रक्षित अपना भृत्य किया।
हुआ शान्त अब भी न सुदर्शन दुर्वासापर टूट चला ,
मुनि-पासे विपरीत पड़ गये, भगा, कि जाना अभी जला ॥

आगे हैं दुर्वासा पीछे चक्र सुदर्शन तेज भरा ,
छिपनेको भी ठौर न पाई, मुनिने जाना, अभी मरा ।
मेरु-गुफामें, भूमण्डलमें, नभमें सात पतालोंमें ,
सप्त सागरों, त्रैलोकोंमें, ढूँढ़ा सौ सौ तालोंमें ॥

गये हाँफते विधिके सम्मुख, 'भगवन् ! रक्षा करो, करो ,
शरणागत हूँ अभय-प्रदायक निजकर मम शिर धरो धरो' ।
ब्रह्मा बोले हँसकर, 'मुनिवर, अच्छी आपद पीछे की !
मुझसे लेकर सर्व शक्तियां हैं सब उसमे नीचेकी ॥

उसका दोषी हम न रख सकें, हम तो आज्ञाकारी हैं ,
फिर तुम उसके भक्त-द्रोही इसमे डरते भारी हैं ।
हरि निज-दोषी नहीं देखते जैसे भक्त-द्रोहीको ,
जहाँ पसीना पड़े भक्तका देते वहां स्व-लोहीको ॥

भलीभाँति हम हरिको जानें, फिर क्यों आपद शिर ठावें ,
मुनिवर, ठौर न यहां शरणको, इच्छा रहो, जहाँ जावें' ।

दोहा

कोरा उत्तर श्रवणकर, विधि-मुखसे तत्काल ।
दुर्वासा-आशा ढली, हुआ विकल, बेहाल ॥

भगा तुरत ही जटा बखेरे भयसे तनकी सुध त्यागे ,
देख देख रे जगत् ! देख तू गर्व जा रहा है भागे ।
अहंकार जो हरिजन अपना हरिको सौंप दिया करते ,
अम्बरीषकी भाँति उन्होंका श्रीहरि पक्ष लिया करते ॥

गया जहां कैलाश शिखर-पर ध्यानावस्थित शंकर थे ,
तेज त्रिशूल गड़ा था सम्मुख, सारे साज भयंकर थे ।
जटा—जूटपर फण फैलाये, गर्ज रहा था प्रबल फणी ,
भुजदण्डोंसे लिपट रहे थे सर्प, चम रही चक्षु-मणी ॥

'जला जला हे भगवन् !' जब यह शब्द दूरसे कान पड़ा ,
मदन-दहनकी याद दिलाई --हुँसरा शिवका बैल बड़ा।
ध्यानावस्थित शंकरके जा पद-कमलोंमें शिर नाया ,
भयसे भारी विकल हुआ है, धूज रही थर्थर काया ॥

'हे गिरीश ! हे शम्भो ! शूलिन् ! हे शरणागतके सङ्गी ।
त्राहि, त्राहि हे शर्व ! डाल दो इधर कृपाकी भ्रूभङ्गी ।'
हरने खोले नेत्र, कहा 'हे मुनिवर ! कैसे काँप रहे ?'
हे हर ! मेरी रक्षा कर लो—चक्र सुदर्शन अभी दहे ॥'

दोहा

'यहां चक्रके चोरको, नहीं छिपनको ठौर ।
सेवक कैसे रख सके, निज स्वामीका चौर ॥
जो मेरा चित चोर है, तू है उसका चोर ।
चरण उसीके जा पकड़, भाग उसीकी ओर ॥

पापीसे भी पापी अपने पापोंकी कर याद कभी ,
रोकर हरिके चरण पकड़ ले, हरि अपनावें उसे तभी ।
मान, लाज, छल-छद्म छोड़कर रोकर हरिकी ओर भगो ,
हरिके ठगनेकी यह विधि है, तुम्हें बता दी, शीघ्र ठगो ॥

हरिकी ओर चलोगे जितने पाप कटेंगे उतने ही ,
हे मुनिवर यह निश्चय जानो, दीनबन्धु हैं वे स्नेही ।'
मुनिवर हरिकी शरण भगे झट, शिवको शीश नवा करके ,
अब तो चले सुधा-सरवरको, गर्व-धतूरा खा करके ॥

परमधाम, वैकुण्ठ विराजें जहां चराचरके स्वामी ,
सज्जन-आपद सहज विनाशक, त्रासक असुर, गरुडगामी।
हरिके चरणोंमें जा मुनिने अश्रु बहाते सिर टेका ,
उष्ण अश्रु थे दुखित हृदयके, उरको भयने था सेंका ।

मुनि बोले 'हे नाथ ! तुम्हारा मैंने जाना नहीं प्रताप ।
भक्त आपका बहुत सताया, शिरपर है यह मेरे पाप ।
पीछे पड़ा सुदर्शन मेरे, उसको पाप जलाता है,
त्राहि, त्राहि हे नाथ ! जला मम तन मन सब कुछ जाता है ॥

दोहा

'नाथ ! आपके नामसे, नरक-भीति हो दूर ।
मैं शरणागत आपकी, करो कष्ट यह चूर ॥'
'हे ब्राह्मण ! मम भक्त हैं, प्यारे मुझे विशेष ।
वह मेरा ही शत्रु है, जो दे उनको क्लेश ॥
जन मेरे आधीन हैं, मैं उनके आधीन ।
कैसे तज दूं मैं उन्हें, जो मुझ जलके मीन ॥

भक्त मुझे निज सर्वस देकर मुझको वश कर लेते हैं,
नारी पतिव्रता निज पति ज्यों, मेरा मन हर लेते हैं ।
मेरे भक्त न मुक्ति चाहते, मेरी सेवा तज करके,
अपनेको कृतकार्य मानते प्रतिपल मुझको भज करके ॥

मुनिवर, जाओ ! निज अपराध क्षमा करवाओ भूपतिसे,
है कल्याण इसीमें निश्चय जानो मेरी सम्मतिसे ।
सन्त महात्मा भक्तोंके उर कोमल होते हैं भारी,
क्षमा करेंगे तुरत तुम्हारा नृप अपराध दयाधारी ॥

भक्तोंका कुछ नहीं बिगड़ता उन्हें कष्ट पहुंचानेसे,
दुख पाते हैं दुखदाता ही भक्त अहेतु सतानेसे ।
मुनिवर ! शान्ति मिलेगी तब ही क्षमायाचना करो वहां,
अब न विलम्ब करो बस ज्यादह, मत भटको मुनि, जहां तहां ॥'

मुनिने जा तत्काल भूपके पद-पद्मोंमें शिर नाया,
ब्राह्मण निज चरणोंमें देखा नृपको बहुत तरस आया ।
मुनिका सब अपराध भूलकर आप हाथ मल पछताया,
मेरे कारण हाय ! मुनीश्वर देखो कितना दुख पाया ॥

दोहा

चक्र शान्ति-हित नृपतिने, की विनती तत्काल ।
चक्र-स्तुति करने लगे, भूपति परम दयाल ॥

सवैया

हे खल-पुञ्ज-विनाशक चक्र ! करो करुणा मुनि भाजन हारयो,
आपहि कीजै कृपा अब या पर तीनोंहि देवन याहि बिसारयो ।
मींजत हाथ रह्यो पछितात सु आपुने गर्व सों आपो बिगारयो,
आय गयो शरणौ तुलसी तब ऐसे अधीनको मारयो न मारयो ॥

हे जनपालक चक्र ! तुम्हें यह दास प्रणाम करे बहुबारी,
हे भगवानके अस्त्र महाप्रिय, दुष्टविनाशक, हे जयकारी ।
हे शुभ दर्शन ! चक्र सुदर्शन ! भवभयभञ्जन विश्वविहारी,
राखिये, राखिये तेजहिं रोक्यो न डारिये क्रोध किधौं चिनगारी ॥

दोहा

अबतक जो मैंने किये, दान, पुण्य, तप, कर्म ।
वे मुनिकी रक्षा करें, जो सच्चा हो धर्म ॥
इतना कहते ही अहो, चक्र हो गया शीत ।
शान्ति मुनीश्वरको मिली, गद्गद हुए, अभीत ॥

मुनि बोले हरि-भक्तोंकी मैं महिमा जानी आज अहो !
हरिको वश कर लिया जिन्होंने उनको क्या कुछ कठिन कहो ?
कौन कठिन है काम विश्वमें जिसे न हरिजन साध सकें,
रहते हैं बेखबर विश्वसे हरि-रति मदिरा रहें छकें ॥

'धन्य धन्य हे राजन् ! तुम हरि-भक्ति-सरितमें न्हाते हो,
हरि-कल्पद्रुमकी छायामें बैठ त्रिताप नसाते हो ।
मुझपर की अनुकम्पा कितनी भूल गये अपराध महा !
चक्रानलसे मुझे बचाया धन्य दयालो ! भूप ! अहा !'

सुनकर अपनी श्लाघा नृपको लज्जा-आँधीने घेरा,
अपनी श्लाघा सुनकर होता मुदित नहीं हरिका चेरा ।
हरि-जन सब ही कामोंमें हैं हरिका हाथ लखा करते,
अपने किये परम कार्योंकी श्लाघा सुनते हैं डरते ॥

भोजन करने हेतु नृपतिने मुनि-चरणोंमें शिर नाया,
ऋषिने भोजन किया तुष्ट हो, रोम रोममें सुख छाया ।
आशिर्वाद दिया नृपवरको 'राजन् ! यह शुभ यश तेरा,
गावेंगी सब काल देवियां जानो सत्य वचन मेरा ॥'

दोहा

भोजन करवा भूपको, ले आज्ञा तत्काल ।
ब्रह्मलोक ऋषिवर गये, रच इतिहास रसाल ॥
राजन् ! यह नृप-भक्तकी, पुण्य-कथा सप्रेम ।
सुनें सुनावें जो सुजन, सदा लहन हो क्षेम ॥

बहिनके नाम एक भाईका पत्र*

॥ ओं श्रीहरिः शरणम् ॥

श्रीमती बहनाजी,

जय श्रीकृष्ण !

मैं आपके पाससे आकर ऋषिकेश होते हुए गढ़मुक्तेश्वरमें यात्रियोंकी सेवा करनेके लिये चला गया था। रातको वहांसे आया। आशा है आप भी सानन्द गङ्गा-स्नानसे निवृत्त हो गयी होंगी। महात्मा श्रीतुलसीदासजीने एक जगह लिखा है—

सुत, दारा अरु लछमी, पापीके भी होय।
सत्सङ्गति अरु हरि-भजन, तुलसी दुर्लभ दोय॥

सारी दुनियाँको—स्त्री-पतिको—सब सुख होनेपर भी "हमारे सन्तान हो" "सन्तान हो" इस लालसासे इधर उधर भटकते देखा जाता है—ऐसी भटकन भी चाहे पूरी हो गयी हो। जिसके स्त्री नहीं है वह पुरुष स्त्रीकी खोजमें मतवाला देखा जाता है, ऐसे पुरुषको चाहे रंभा और उर्वशीसी स्त्री मिल जाय, और पुरुषकी खोजमें फिरनेवाली स्त्रीको चाहे इन्द्रसे अधिक ऐश्वर्यशाली और कामदेवसे सुन्दर पुरुष मिल गये हों। सब दुनियां इधर उधर दौड़ती नाना प्रकारके जाल रचती और पाखण्डोंमें फंसी हुई किसलिये देखी जाती है? 'लक्ष्मी' के लिये। ऐसी लक्ष्मी भी चाहे मिल जाय, लाखों करोड़ों रुपये भी पास हो जायँ, इससे हुआ क्या? श्रीतुलसीदासजी महाराज वर्णन करते हैं कि अनेक तरहकी चालें और चालाकी खेलकर ये ऊपर लिखी बातें चाहे कोई भी प्राप्त कर ले। हाय, इतने उद्योग और धन्धेके बाद भी जिसको प्राप्त करके, मनुष्य समझता है-'मैंने गढ़ जीत लिया।' उससे हुआ क्या? हुआ वह 'पापी' संसारमें मनुष्यको किस तरह चलना चाहिये, इस बातको सिखानेवाले शास्त्रोंकी सम्मतिमें वह क्या हुआ? 'पापी'। बस, वह "पापी" कहलाने लायक बन गया। इसलिये गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—फिर वह 'मनुष्य' कब बनेगा? जब वह सत्सङ्गतिमें पड़ेगा—सत्सङ्ग मिलना ही कठिन है। अच्छे प्रारब्धसे या भगवान्की ही कृपासे सत्सङ्गति मिल जाती है। विभीषणने हनुमान्जीसे कहा था—

"अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता,
बिनु हरि कृपा मिलें नहिं सन्ता"

आजकल सत्सङ्गतिका अभाव हो गया है बहनाजी! वशिष्ठ, महर्षि व्यास, श्रीशुकदेव, कपिल कणाद, गौतम आदि ऋषि-मुनि कहीं मर थोड़े ही गये हैं— हैं यहाँ ही। फिर वे हम लोगोंको क्यों नहीं मिलते? इसीलिये नहीं मिलते कि हम लोगोंके

* एक भाईने अपनी बहिनको पत्र लिखा था, पत्रकी नकल एक प्रेमी सज्जनने उनकी आज्ञासे 'कल्याण'में प्रकाशनार्थ भेज दी है। उपयोगी समझकर पत्र यहां प्रकाशित किया जाता है। —सम्पादक

हृदय बहुत ही तुच्छ और परस्परके व्यवहारमें चालें खेलनेवाले नीच हो गये हैं। जहां कोई मलीन समाज बैठा हो—सुलफा, शराब पी रहा हो, अपनी असभ्यताभरी निरुद्देश्य गपशप लड़ा रहा हो, तुम वहां जाकर क्यों नहीं बैठ सकती ? इसीलिये कि उनका व्यवहार तुम्हारी दृष्टिमें नीचा है। उस नीचतामय, असभ्यतामय, मनुष्यता-रहित परस्परके व्यवहारको तुम पसन्द नहीं करती, ठीक यही बात यहां भी घटा लो—हमारा पारस्परिक चालचलन उनको (ऋषि-मुनियोंको) नहीं भाता। इसीलिये वे हम लोगोंके पास आकर नहीं बैठते। अतएव बहनाजी, जो सत्सङ्गति करनेकी इच्छा रखनेवाला हो, उसे भी चाहिये कि अपने व्यवहारको ऊंचा बनावे। सत्सङ्गति करनेकी इच्छा रखनेवाला यदि यह कहे कि 'मेरा व्यवहार क्या नीचा है ?' तो इस समय तक उसकी आंखोंपर अविद्याका पर्दा पड़ा हुआ है। वह इस बातको उसी तरह नहीं जान सकता जैसे उपर्युक्त मलिन समाज अपने व्यवहारकी त्रुटियोंको नहीं समझता, अतएव आपसे भी मेरी नम्र प्रार्थना है, कि आप अपने सांसारिक व्यवहारको ऊंचा बनाइये। मेरा हृदय यह भी जानता है, आपमें गुण भी बहुत हैं। अहा आनन्द ! इससे अधिक आपमें और क्या गुण होगा कि आप श्रीकृष्ण परमात्माकी भक्त बनना चाहती हैं। अब मैं आपके गुण और अवगुण दोनोंको ही इस विचारसे आपके सामने रखता हूं कि, आप अपने गुणोंमें तो वृद्धि करें और अवगुणोंको छोड़ दें।

गुण

(क) श्रीकृष्ण-परमात्माकी भक्तिकी चाहना।
(ख) गंभीरता।
(ग) नीतिज्ञता।
(घ) स्वभाव-सिद्ध स्त्रियोंकीसी चंचलताका अभाव।
(ङ) मितव्ययिता (अपने द्रव्यका जोड़ना)
(च) प्रेमीस्वभाव।

अवगुण

(क) चाह होनेपर भी ऐसे बानकोंका न बनाना जिनसे भक्ति बढ़ सके।
(ख) अदृढ़ता (सांसारिक लोगोंसे डर जाना)
(ग) नीतिको चालबाज़ीकी रीतिमें बदल देना।
(घ) अधिक विचार-विचारोंसे अच्छे कार्यको स्वयं बिगाड़ बैठना।
(ङ) सत्सङ्गतिका बानक बनानेवाले और भगवान्‌का भजन करनेवाले, अपने कर्त्तव्यको पूरा करनेवाले कामोंमें भी कंजूसी करना।
(च) सन्देह भरी तबियत (शक्की मिज़ाज)

इन अपने छः गुणोंके साथ इन छः अवगुणोंको, बहनाजी ! जोड़कर देखो, फिर देखो—कैसी उथल-पुथल मच जाती है। ऐसी ही मच भी रही है। विचारकर—मननकर समझो न ! इन अवगुणोंके रहते 'सत्सङ्गति' का सच्चा रस चाखना कठिन हो जाता है। जब सत्सङ्गति नहीं तो भगवान्‌का भजन कहाँ ?

गुसाँईजी कहते हैं—

तब यह जीव विविध विधि, पावे संसृति क्लेश।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाय विहँगेश॥

इसीलिये अन्यत्र सत्सङ्गतिकी यह प्रशंसा है—

तात, स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अङ्ग।
मिले न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्सङ्ग॥

सत्सङ्गति मिलनेके लिये धन-दौलतकी तो कौन कहे, अपने शरीरके खूनसे सींच-सींचकर सत्सङ्गतिकी खेती की जाय तो भी बुरी नहीं। अरे, सोचो, समझो, चेतो, ज़रा गौर करो। अपने पासका धन (बीज-जीवन) ज़मीनमें

फेंककर ही किसान इस क्षणिक खेतीको अपना पाता है। तब फिर—

नर, संसारी लगन में, दुख, सुख सहें करोर ।
'नारायण' हरि लगनमें, जो कछु होय सो थोर ॥

जिसके प्राप्त करनेमें अपनी आत्माको बेचना पड़ता है, जिसके पास रखनेमें अपनी जानका भी खतरा रहता है, भयसे सुखकी नींद सो भी नहीं सकते। हा! ऐसे उस धनकी तीन गति होती है—

दानं[1], भोगो[2], नाशस्तिस्रो[3] गतयो भवन्ति वित्तस्य ।

(१) जिसके पास धन हो, और यदि वह बुद्धिमान् हो, तो उसे चाहिये–इस प्रकार उसका व्यय करे जिससे उसे सत्सङ्गति प्राप्त हो। (यह धनकी सबसे उत्तम गति है)

(२) अपने शरीर, मन, और बुद्धिके बढ़ानेमें और इन्द्रियोंकी ताकतको ठीक रखनेमें खर्च करे। (यह धनकी बिचली गति है)

(३) जिसके पास धन है और वह इन ऊपर लिखी दोनों बातोंमें अपने धनको नहीं लगायेगा वह कंजूस हाथ मल-मलकर पछतायेगा, उसके धनसे दूसरे मौज उड़ायंगे, और मूछोंपर ताव देंगे। (यह अधम गति है)

अर्थात्:—सत्सङ्गतिकी इच्छा रखनेवाले धनिकका कर्तव्य है कि वह अपने धनका उपर्युक्त पहले कार्यमें सदुपयोग करे। दूसरे कार्यमें सदुपयोग करनेवाले व्यक्तिका नम्बर दो स्वयं ही बन जाता है, और तीसरा तो नम्बर तीनमें आनेवाली पश्चात्ताप-पंक्तिके बाहर सहज ही आ बैठता है।

अरे हुआ क्या? तुमने किया क्या? सारा संसार ही इस धन-दौलतके पीछे मर मिट रहा है, तुम भी मरमिटे तो फिर····· इस मार्गमें चलनेवालेकी तारीफ़ हुई क्या खाक्? क्यों सन्देहमें पड़े हो? यहां सन्देहका काम ही क्या है? यह तो ध्रुव सत्य है। संसारी मनुष्य अपने बलपर कूदते हैं। फूँकसे पहाड़ तक उड़ानेका मनसूबा गांठ लेते हैं। यह उचङ्ग—यह तरङ्ग और यह ऐंठ–यह टेढ़ी पाग किसलिये है? समझीं? अपने भरोसेपर? हाय! हाय!! ये अपने भरोसे पर इतना भरोसा कसे बैठे हैं, पर, तुम उसके भरोसे पर कृपण बने बैठे हो—धिक्कार! धिक्कार! अफसोस!!

बहिनका दीन भैया

——:*:——

दिलकी विदाई !

पिघला जो वासनाकी वह्निसे हमारा दिल ,
आँसू बन-बनके, न जाने कहाँ बह गया !
चाहता था कहना कलेजेकी कसक वह ,
किन्तु व्यथा भारसे, न हाय! कुछ कह गया !
अपनी तरंगमें तिरोहित हुआ वो, जब—
दिल ही नहीं, तो अरमान कौन रह गया ?
दूर होके उसने हमारा बड़ा साथ दिया ,
"मुक्ति-पथ पाया, कामनाका दुर्ग ढह गया !

रामसेवक त्रिपाठी

आध्यात्मिक चिन्तन

(लेखक—एक चिन्ताशील सज्जन)

उत्तम कर्मके फलका नाम सुख है। जो उत्तम कर्म करते हैं उनको सुख अवश्य मिलता है। बिना उत्तम कर्म किये केवल चाहनेमात्रसे सुख कैसे मिलेगा? नीच कर्मके फलका नाम दुःख है इसलिये जो नीच कर्म करते हैं उनको दुःख अवश्य मिलता है। केवल न चाहनेसे वह मिट नहीं जायगा, मिलेगा ही। यह कार्य-कारणके नियमका चक्र अनादिकालसे घूमता चला आता है, बड़ा-छोटा जो कोई भी इस चक्रके चक्करमें आ जाता है, वह अवश्य कुचला जाता है। मा-बाप मर जानेसे छोटा बच्चा निस्सहाय चिल्लावे तो चिल्लाया करे। उसकी पुकारसे अथवा किसी निस्सहाया दुखिया विधवाके आँसुओंसे उस चक्रकी गतिमें कभी अन्तर नहीं पड़ता। जबतक जीव मायाके बन्धनमें रहेगा, बराबर दुःख-सुख भोगता ही रहेगा। मायासे छूटकर भगवत्-सन्निधिमें पहुँच जानेपर तो उसको कोई भय नहीं।

× × ×

जन्म-मरणका चक्कर अथवा आवागमनका झगड़ा तो मायामण्डलके भीतर है। उत्तम कर्मके फलसे प्राप्त स्वर्ग-सुखकी भी अवधि आ जाती है। क्योंकि उत्तम कर्म अवधिवाला है तो उसका फल स्वर्ग-सुख भी अवधिवाला ही है। पुण्यका फल भोग लेनेके अनन्तर स्वर्गसे फिर मर्त्यलोकमें आना ही पड़ता है और फिर वही जन्म और उसके बाद मृत्यु। वही क्रम, वही सिलसिला।

× × ×

ईश्वर, जीव और मायाका नित्यत्व शास्त्रसिद्ध है। ये तीनों ही अनादि हैं। कपिल मुनिके मतानुसार 'कुछ नहीं' मेंसे कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती। कार्य अपने कारणमें रहता है। स्थूल-सूक्ष्मका भेद भले ही पड़ा रहे। इसमें कोई हानि नहीं। ईश्वर, जीव, माया ये तीनों अब भी हैं, पहले भी थे और आगे भी रहेंगे। इनका न आदि है और न अन्त है। तैत्तिरीय उपनिषद्के एक वचनमें मायाको स्पष्टतया अजा कहा गया है। अजाका अर्थ है— जिसका जन्म नहीं, अनादि। इसी प्रकार जीवको 'अज' कहा है। इसका भी वही मतलब। "अजामेकाम् लोहितशुक्लकृष्णाम् बह्वीं प्रजाम् जनयन्तीं सरूपाम् अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनाम् भुक्तभोगामजोऽन्यः।" अर्थात् एक अजा है, वह लाल श्वेत और काली है, अपने रूपके समान ही बहुत प्रजा उत्पन्न करती है, एक 'अज' उसमें अनुरक्त हुआ रहता है, दूसरा अज है वह इस भुक्तभोगाके बन्धनमें नहीं रहता है। इसका अभिप्राय यह है कि रज, सत्त्व, तम ये तीन गुण मायाके हैं। लाल सफेद और काला यह तीन रंग इन तीन गुणोंके हैं। इसीलिये अजा— नहीं जन्म लेनेवाली— मायाको इन तीन रंगोंवाली कहा गया है।

अश्वसे अश्व, हाथीसे हाथी और मनुष्यसे मनुष्य इसी तरह समानरूप उत्पत्ति इस मायामण्डलमें होती आती है। कार्यमें कारणका रूप किसी न किसी प्रकारसे आजाता है अतएव अजा मायाको अपने रूपके समान बहुत प्रजा उत्पन्न करनेवाली कहा है। एक 'अज'

अर्थात् नहीं जन्म लेनेवाला इस मायाके भोगोंमें लगा रहता है और दूसरा 'अज' अर्थात् नहीं जन्म लेनेवाला इस मायाको छोड़ देता है।

× × ×

वास्तवमें 'नाश' किसी द्रव्यका सर्वथा अभाव होजानेका सूचक नहीं है बल्कि कार्य अपनी कारणावस्थाकी सदृशतापर चला जाय अथवा परिणामी द्रव्यका परिणाम हो जाय—उसको 'नाश' शब्द कहकर व्यवहार करते हैं। नित्य वस्तुका सर्वथा अभाव कैसे हो सकता है ? गीताका वचन है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

अर्थात् असत्का भाव नहीं होता है और सत् जो अविनाशी है उसका अभाव नहीं होता।

× × ×

माया और जीव दोनोंका नाम परिणामी है। परिणामके दो भेद हैं— (१) स्वरूप-परिणाम (२) स्वभाव-परिणाम।

मायामें यह दोनों होते हैं किन्तु जीवमें स्वरूप-परिणाम नहीं होता, केवल स्वभाव-परिणाम ही होता है। ईश्वरमें दोनों ही परिणाम नहीं होते। ईश्वरका सब व्यवहार स्वतन्त्रतापूर्वक है,कर्मबन्धनसे नहीं। यों ईश्वर, माया और जीवका भेद स्पष्ट है। दूसरे शब्दोंमें यों समझना चाहिये कि ईश्वरकी स्थिति स्वतन्त्र है। जीव और माया—चित् एवं अचित्—की स्थिति स्वतन्त्र नहीं है।

वस्तुतः सत् वस्तुका अभाव नहीं होता। साधारण जन किसी जीवको जलता देखकर उसके जल जानेपर सर्वथा अभाव होना समझ लेते हैं, यह ठीक नहीं,-उसको अभाव नहीं कहा जा सकता। जीव एवं शरीरका जो शरीर-शरीरीरूपसे अतिनिकटतम सम्बन्ध है इसीसे उसका जलना दिखायी देता है, परन्तु वास्तवमें जीव जल ही नहीं सकता। गीताका वचन है—"नैनं दहति पावकः"। इसके अतिरिक्त शरीर जलनेके सम्बन्धमें भी यह समझना चाहिये कि शरीर जिन तत्त्वोंसे बना है, वह सब तत्त्व उस शरीरके जलनेपर अपने अपने मूल तत्त्वोंमें मिल जाते हैं और जीव स्वकर्मवशात् दूसरे शरीरमें जा विराजमान होता है।

इस शरीरमें जीव शरीरी है, इसीप्रकार जीव शरीर है और उसमें परमात्मा शरीरी है। चित् और अचित्का प्रपञ्च परमात्माका शरीर है। सुबालोपनिषद्में यह सब स्पष्ट लिखा है। यथा—

"यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरोयमयति एषत आत्मान्तर्याम्यमृतः। यः आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोन्तरोयमात्मा न वेद यस्याऽत्मा शरीरं य आत्मनमन्तरोयमयति सत आत्मान्तर्याम्यमृतः।"

अर्थात् जो परमात्मा पृथ्वीमें ठहरा हुआ पृथ्वीसे पृथक् है, पृथ्वी जिसको नहीं जानती है, पृथ्वी जिसका शरीर है, जो पृथ्वीको भीतरसे यमन करता है वह तेरे आत्माका अन्तर्यामी है और मरण-धर्मरहित है, जो आत्मामें टिका हुआ आत्मासे पृथक् है, आत्मा जिसको नहीं जानता है आत्मा जिसका शरीर है, जो आत्माको भीतरसे यमन करता है वह तेरे आत्माका अन्तर्यामी है और अमृत है। अन्तर्यामीका अर्थ है जो भीतरसे यमन करे। परमात्माका अर्थ है आत्माका भी आत्मा। क्योंकि शरीरमें जैसे आत्मा जीव है वैसे ही जीवका भी आत्मा परमात्मा है। परमका मतलब यह है कि इसके परे कोई नहीं। यह नाम ही शरीर शरीरी भावको धारण किये हुए है। इस प्रकार मुख्य शरीरी परमात्मा ही ठहरता है। छान्दोग्य उपनिषद्का वचन है— "अन्तःप्रविष्टश्शास्ता जनानां सर्वात्मा—अर्थात् जो भीतर प्रवेश किये हुए जनोंका शासन करता है वह सर्वात्मा है। इससे यह समझनेमें कठिनता न होगी कि जीव, ईश्वर, माया ये तीनों ही नित्य हैं सही किन्तु इनमें मुख्य ईश्वर अथवा परमात्मा ही है। यमन करना—शासन

करना उसीका काम ठहरा। यमन करनेसे तात्पर्य-अपने अधिकारमें रखना-यथेच्छ चलाना है। इसीको शासन करना कहा जा सकता है।

उद्धृत उपनिषद्-वाक्यमें यह आया है कि वह आत्माका अन्तर्यामी है, आत्मा जिसको नहीं जानता है। इससे जीव-ईश्वरमें वास्तविक भेद सिद्ध है क्योंकि यदि भेद न हो—दोनों एक ही हों तो एकके भीतर एक है और परमात्माको जीवात्मा नहीं जानता, यह अर्थ कैसे बन सकता है? इसके अतिरिक्त देखना चाहिये। शरीरके लक्षण हैं—नियम्यत्व (चलाया जाय जैसे चलनेकी व्यवस्था) धार्यत्व (धारण रक्खे जानेकी व्यवस्था) और शेषत्व (अधीनता)। इसी तरह शरीरीके लक्षण हैं-नियामकत्व (अधिकारपूर्वक चलानेवाली व्यवस्था) धारकत्व (धारण करनेवाली व्यवस्था—जिसके आश्रयसे धार्य पदार्थ स्थिर रहें) और शेषित्व (स्वामीपन), यह व्यवस्थाएं अचेतन शरीर और जीव शरीरीके आपसमें रहती हैं। इसी प्रकार प्रपञ्च शरीर और परमात्मा शरीरीके परस्परमें है। क्योंकि परमात्माका शरीर होनेसे जीवात्मामें ये शरीरके तीनों लक्षण परमात्माकी अपेक्षा अवश्य रहेंगे किन्तु इतनी और विशिष्टता रहेगी कि अपना शरीर जैसे जड़ है वैसे परमात्माका शरीर जो जीव है वह जड़ नहीं है। यह ऐसा सम्बन्ध है कि इससे जीव-ईश्वरमें अभेद दिखानेवाले वाक्यों-की सङ्गति बैठती है। अन्यथा वास्तविक अभेद तो है ही नहीं. शरीरी प्रधान होनेसे विशेष्य कहाता है, जीव और मायाको अप्रधान होनेसे उसका विशेषण कहा जाता है। वास्तवमें प्रपञ्च और अन्तर्यामीके परस्पर भिन्न रहनेपर भी वैसा भेद तो हुआ नहीं जैसा लोकमें स्वामी-सेवकका होता है। इसीलिये यह नहीं कहा जाता है कि तीनोंकी स्थिति पृथक्-पृथक् है। बल्कि कहा यह जायगा कि तीनोंका एक पुञ्ज है और वही पुञ्ज सृष्टिका कारण है। जिस प्रकार कारण अवस्थामें तीनोंकी विद्यमानता है उसी प्रकार कार्य अवस्थामें तीनों रहते हैं।

× × ×

कारणरूप जो ईश्वर, माया, जीव, तीनोंका एक पुञ्ज है, उसीका नाम ब्रह्म है। श्वेताश्वतरोपनिषद्-का वचन है, — "भोक्ता, भोग्यं, प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्मैतत्।" अर्थात् भोक्ता (जीव), भोग्य (माया), प्रेरिता (प्रेरणा करने वाला ईश्वर) इनको मानकर इस समस्त त्रिविध-को ब्रह्म कहा है। कोई शंका कर सकता है कि माया तो जड़ है, किन्तु जीव एवं ईश्वर चेतन और मिले हुए हैं, फिर दोनोंको एक ही क्यों न मान लिया जाय? पर एक नहीं माना जा सकता। कारण, दोनोंमें परिणामी और अपरिणामीका भेद बना हुआ है। इसके अतिरिक्त श्वेताश्वतरो-पनिषद्में लिखा है—"पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति।" अर्थात् जीवात्मा और प्रेरणा करनेवाले ईश्वरको पृथक् मानकर इसका अनुसन्धान करनेसे अमृतत्वको पाता है अर्थात् आवागमनसे छूटता है। यह छूटनेका व्यवहार जीवके लिये ही है क्योंकि माया तो स्वयं जड़ और बन्धनरूप है। परमात्मा बन्धनसे मुक्त है। हां. तीनोंका पुञ्ज एक ब्रह्म है। उस पुञ्जमें एक भीतरसे यमन करनेवाला परमात्मा प्रधान होनेके कारण और शरीर-शरीरीभावमें अभेद-व्यवहार होनेके कारण तैत्तिरीय उपनिषत्में कहा गया है कि "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् तदनु-प्रविश्य सच्चत्यच्चाऽभवत्।" अर्थात प्रपञ्चको बनाकर उसमें अनुप्रवेश किया—अनुप्रवेश करके सत् और त्यक् हो गये। इसका अभिप्राय यह है कि सृष्टिके अनन्तर भगवान् भीतर अनुप्रवेश करके आप ही सत् भी हो गये, त्यक् भी हो गये। अर्थात् चेतनाचेतन हो गये क्योंकि चेतन अचेतन इन दोनोंका फैलाव सृष्टिरचनासे हुआ

तथा सृष्टिकी स्थिति तक रहेगा। इसमें भगवदिच्छा ही मुख्य है। इसीलिये यों कहा जाता है।

× × ×

प्रलयकालमें जो स्वरूप रहता है वह कारण-रूप होनेसे उसको सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट कहा जाता है। इसी प्रकार सृष्टिकालमें जो स्वरूप रहता है वह कार्यरूप होनेसे उसको स्थूल चिदचिद्विशिष्ट कहा जाता है। यह दोनों विशिष्ट स्वरूप हुए। इसमें अद्वैत अर्थात् वास्तविक अभेद होनेसे इस सिद्धान्तको विशिष्टाद्वैत कहते हैं और इस अभेदका सूचक ही 'तत्त्वमसि' महावाक्य है।

श्रीरामकृष्ण परमहंस

(लेखक—स्वामी श्रीचिदात्मानन्दजी)

(पूर्वप्रकाशितसे आगे)

एक समय कामारपुकुरमें एक यात्रा-मण्डली आयी। गदाधर इस समय बारह वर्षका हो गया था। भगवान् शिवका अभिनय कराना लोगोंने निश्चय किया। अभिनयका सब प्रबन्ध हो गया था कि अकस्मात् वह व्यक्ति, जिसे शिव बनना था, बीमार हो गया। इस कारण शिवका भाग लेनेके लिये सर्वसम्मतिसे गदाधर ही योग्य समझा गया। उसको शिवरूपमें सजाया गया। सिरपर जटाजूट, अङ्गमें विभूति, हाथमें त्रिशूल, कमरमें कौपीन आदि धारण कर शिवके वेषमें जब वह मञ्चपर आया तो लोग उसे देखकर स्तम्भित हो गये। सबको वह साक्षात् महादेव ही जँचने लगा। गदाधर जब शिवरूप बनकर मञ्चपर खड़ा हुआ तब उसके हृदयमें शिवका अभिनिवेश हो आया, उसकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी और समाधि-अवस्थामें अचेत होकर वह मञ्चपर गिर पड़ा। लोगोंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने उसे घर पहुंचा दिया। गदाधरकी इस प्रकारकी भावावस्था बचपनसे ही हो जाया करती थी जो आगे चलकर युवावस्था और वृद्धावस्थामें क्रमशः प्रबल होती गयी। पहले तो उसकी मा और स्वजनोंको इस भावावेशसे चिन्ता होती थी परन्तु जब इससे गदाधरके शरीरमें कोई हानि प्रतीत नहीं हुई तब क्रमशः उनकी चिन्ता जाती रही। किसी भी देवताका आराधन करते या भजन सुनते ही उसकी बाह्य-चैतन्यता जाती रहती, और वह तुरन्त ही अन्तर्मुख हो जाया करता। लोगोंके पूछनेपर कहता कि समस्त देवताओंके आकारके पीछे एक अखण्ड परमेश्वर विद्यमान है और उसी सत्यरूपका मुझे दर्शन होता है। गदाधरको जब कभी मौका मिलता, अपने मित्रोंको साथ लेकर किसी ग्रामके बगीचेमें जाकर रामायण या महाभारतके किसी भागका खेल खेलता और भजन-संकीर्तन किया करता। भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीमती राधाकी लीलाका अभिनय उसको सबसे अधिक प्रिय था। जब वह स्वयं श्रीकृष्ण बनकर गान करता या राधाका भाग लेता तो तुरन्त ही भावमें अन्तर्मुख हो बाह्यज्ञान-शून्य हो जाया करता।

इस प्रकार उसका चित्त ज्यों ज्यों भगवान्के अनन्त लीला-चिन्तनमें आसक्त होता गया,

त्यों-ही-त्यों पढ़ने लिखनेमें उसकी रुचि कम होती गयी। उसके भाई रामेश्वरका विवाह हो चुका था और वह बड़ी कठिनाईसे अपना निर्वाह करता था। सर्वमंगला भी ब्याही जा चुकी थी। बड़े भाई रामकुमारकी स्त्रीके पुत्र हुआ और प्रसूतिकालमें राजकुमारकी भार्याका देहान्त हो गया। इधर रामकुमारकी आजीविका भी कम हो गयी थी। चन्द्रमणिको फिर कष्टका सामना करना पड़ा। पुत्रवधूके घर रहनेपर वह गृहकार्यकी चिन्तासे मुक्त हो गयी थी परन्तु उसकी मृत्युसे अब घरका सारा भार फिर उसीपर आ पड़ा। इन दुर्घटनाओंसे गदाधरके चित्तमें संसारकी असारताका भान होने लगा, पठन-पाठन तो अब केवल नाममात्र ही रह गया था। बहुधा वह अपना अधिक समय भगवत्-चिन्तनमें ही व्यतीत करने लगा। इसके बाद रामकुमार आजीविकाके निमित्त कलकत्ते चला गया और वहां संस्कृत-पाठशाला स्थापित कर कुछ धनोपार्जन करने लगा। इधर कामारपूकुरमें रहकर गदाधर माके गृहकार्यमें सहायता देता और माता तथा ग्रामकी स्त्रियोंको, जो गदाधरको बहुत प्यार करती, और प्रतिदिन संध्या-समय चन्द्रमणिके घर आया करती थीं, भजन सुना सुनाकर आह्लादित किया करता था।

पहले कह आये हैं, कि गदाधरको श्रीराधा-कृष्णके अद्भुत प्रेम और माधुर्यका भाव बड़ा रुचिकर था। अब वह इसी भावमें निमग्न रहने लगा। समय समयपर गोपी-भावमें प्रेमविभोर हो जाया करता था। कभी कभी गोपी-वेष धारणकर गागर सिरपर रख तालाबमें जल भरने जाता और कभी राधाका भाव लेकर श्रीकृष्ण-विरहमें हृदय हिलानेवाला गान गाता, जिससे सुननेवालोंका हृदय करुणासे भर जाता। अब उसकी रुचि पढ़नेसे बिल्कुल उठ गयी और उसने पाठशाला जाना छोड़ दिया।

रामकुमार कलकत्तेमें विद्यार्थियोंको पढ़ाकर और एक देवालयमें पूजा-कार्यकर जो कुछ कमाता, उसीसे कुटुम्बका निर्वाह हो जाता था। एक बार जब रामकुमार, मातासे मिलने कामारपूकुर गया तो उसने गदाधरको पढ़ना छोड़कर बेकार फिरते देखा। इसलिये वह उसे कलकत्ते ले गया। उसने विचार किया कि वहाँ यह अच्छी तरह संस्कृत भी पढ़ लेगा और साथ ही पाठशाला-कार्यमें भी सहायता मिलेगी। गदाधर भाईके साथ कलकत्ते आ गया और उसीके पास रहने लगा। एक दिन वह पाठशालाके बरामदेमें बैठा था, इतनेमें एक विद्यार्थी हाथमें कुछ पैसे और फल लेकर आया। गदाधरके पूछनेपर उसने कहा कि, 'पड़ोसके एक परिवारमें पूजन करानेसे उसे यह दक्षिणा मिली है।' गदाधरने कहा, 'बस, इतने वर्ष विद्याध्ययनका यही फल है?' इतना कहकर गदाधरने पुस्तक रख दी। इसी समयसे विद्योपार्जनसे उसका मन बिल्कुल हट गया। विद्यार्थियोंको पढ़ाकर और लोगोंके घरोंमें पूजाकार्य करके भी कलकत्तेमें रामकुमारकी आमदनी पर्याप्त नहीं थी, वह गदाधरको इसीलिये लाया था कि वह अच्छी विद्या पढ़-लिखकर कुछ कमाने लगे, जिससे कुटुम्ब-पालनमें सहारा मिले। परन्तु गदाधरकी रुचि विद्याध्ययनकी ओर न देखकर एक दिन रामकुमारने उससे कहा कि 'तुम्हें इस प्रकार समय नष्ट करना उचित नहीं, अब तुम बड़े हो गये हो, अच्छी तरह पढ़-लिखकर कुटुम्बका पालन-पोषण करना चाहिये। विद्या-लाभ करनेसे भविष्य-जीवन भी सुधरेगा और आनन्दसे आजीविका भी चलेगी। गदाधरके मनपर इस बातका कुछ भी असर नहीं हुआ। उसने भाईसे कहा कि 'दादा! मुझे ऐसी विद्या पढ़नेकी इच्छा नहीं, जो केवल पेट भरनेके लिये ही काममें आवे, मैं तो वह विद्या लाभ करना चाहता हूं जिससे नित्य तृप्तिकी प्राप्ति हो।' रामकुमारने निराश होकर गदाधरको इस विषयमें अधिक कहना बन्द कर दिया। उसकी आजीविका दिनों दिन घटती गयी, परन्तु श्रीरघुवीरपर भरोसा करके वह अपना काम

करता रहा। जब आर्थिक दशा बहुत शोचनीय हो गयी, तब भगवान्‌की कृपासे आप ही एक ऐसा बानक बना जिससे उसकी चिन्ता बहुत कुछ कम हो चली और गदाधरके जीवनका भविष्य अपूर्व सार-गर्भित हो गया।

कलकत्तेमें रानी राशमणि नामक एक धनी विधवा रहती थी,उसके पास बहुत बड़ी सम्पत्ति थी। पतिके देहान्त होनेपर उसने बड़ी योग्यतासे अपनी जायदादका प्रबन्ध किया। वह स्वभावसे ही परम उदार और दयाशीला थी। उसकी स्वधर्ममें बड़ी निष्ठा थी। भगवती कालीमें तो उसकी अटल श्रद्धा और प्रेम था। राशमणिने बड़े उत्साहसे कालीजीका एक विशाल मन्दिर बनवाया, लाखों रुपये खर्च हुए। यह मन्दिर कलकत्तेके उत्तरकी ओर भागीरथीके तटपर है। यही स्थान श्रीरामकृष्णकी जीवन-लीलाका मुख्य केन्द्र है। मन्दिर बन गया, रानीको विशाल मन्दिरकी अपूर्व शोभा देखकर बड़ा आनन्द हुआ, परन्तु देव-मन्दिरमें प्राण-प्रतिष्ठा हुए बिना वह बिना जीवका देह-सा है। इसीलिये प्रतिष्ठाकी परमावश्यकता होती है। वेदमन्त्रोंद्वारा शास्त्र-विधिसे बहुतसे विद्वान् ब्राह्मण कई दिनोंमें इस कार्यको सम्पन्न करते हैं। रानीको अब बड़ी चिन्ता हुई, रानी जातिसे शूद्र होनेके कारण कोई भी ब्राह्मण इस कार्यके लिये तैयार नहीं हुआ। इस विपत्तिके समय रामकुमारने रानीकी सहायता की, उसने शास्त्रोंके अनेक प्रमाण देकर ब्राह्मणोंको समझा-बुझाकर प्रतिष्ठा करानेके लिये सहमत कर लिया। प्रतिष्ठा पूरी हो गयी। रानीने बड़े आनन्द और श्रद्धासे इस कार्यको सम्पन्न किया। लाखों रुपये खर्च किये गये, प्रचुर दान दिया गया। रानीकी परम अभिलाषा पूर्ण हुई। अब एक अड़चन और आयी। प्रतिष्ठा तो हो गयी, परन्तु पुजारीका काम कौन करे? कोई भी ब्राह्मण इस कार्यको स्वीकार नहीं करता था। आखिर रामकुमारसे ही प्रार्थना की गयी कि वही इस कार्यको भी स्वीकार करें। रामकुमारने स्वीकार कर लिया और देव-पूजनका भार अपने ऊपर लेकर काम करने लगे। गदाधर भी भाईके साथ प्रायः दक्षिणेश्वर जाया करता था। रानी राशमणिके जामाता मथुराबाबू बड़े श्रद्धालु और उदार सज्जन थे, वह गदाधरको प्रायः वहां देखा करते थे। उनका मन उसकी ओर बहुत आकर्षित हुआ और उन्होंने चाहा कि गदाधर भी रामकुमार-के साथ पूजा-कार्यमें सहयोग दे। पहले तो गदाधर इनकार करता रहा परन्तु शेषमें रामकुमारके समझानेसे वह सहमत हो गया। अब वह बड़े प्रेमसे 'मा काली'की सेवा करने लगा। वह ऐसी निष्ठा और तन्मयतासे भगवतीकी पूजा करता कि देखनेवाले लोग चकित हो जाते। गदाधर 'मा काली' की मृण्मयी मूर्तिको साक्षात् चिन्मय आद्या शक्ति ही मानता था, उसके चित्तमें वह निर्जीव विग्रह नहीं थी। वास्तवमें अटल विश्वास ही सफलताका बीज होता है, बिना पूर्ण श्रद्धा और विश्वासके कोई भी कार्य पूरा नहीं हुआ करता। यह ठीक है कि विश्वास बड़े भारी पर्वतको भी अपनी जगहसे हिला सकता है। महान् पुरुषोंने जो कुछ प्राप्त किया है और जो कुछ कर दिखाया है वह उनके अपूर्व विश्वासका ही चमत्कार है।

गदाधरकी साधना यहींसे आरम्भ होती है और यहींसे अब हम उन्हें श्रीरामकृष्णके नामसे सम्बोधन करेंगे। अब वह तन-मनसे भगवती काली-की सेवामें तत्पर हो गये। प्रातःकाल उठकर माके लिये बगीचेसे उत्तम उत्तम पुष्प चुनकर इकट्ठे करते और गंगाजल भरकर लाते। चन्दन घिसकर तैयार करते, कर्पूर आदि पूजाकी सारी सामग्री सजाकर मन्दिरमें रख देते। यह पहले कहा जा चुका है कि वह काली-विग्रहको साक्षात् चिन्मय आद्या शक्ति ही समझते थे। इसलिये बड़े चाव और प्रेमसे मा की सेवा किया करते थे। तत्त्वको न जानने वाले श्रद्धाविहीन मनुष्य इस प्रकारके विश्वासको अन्ध-विश्वास कहते हैं पर साथ ही, आश्चर्य है,

कि वह भगवान्‌को सर्वव्यापक भी बतलाते हैं। जान पड़ता है कि उनका यह व्यापकताका भाव केवल कथनमात्र है, यदि इसमें विश्वास होता तो एक विग्रह ही क्यों, वे समस्त विश्वको ही भगवत्-सत्तासे पूर्ण समझते। आँखें चाहियें! आवश्यकता है अन्तर्दृष्टिकी। फिर तो सारा जगत् चिन्मय प्रतीत होगा, यह सकल दृश्य भगवान्‌की अचिन्त्य लीला जान पड़ेगा, वही विश्वत्राता सब समय सभी ठौर खेलते दिखायी देंगे। सबसे पहले विश्वासकी ज़रूरत है। गुरु और शास्त्रमें श्रद्धा चाहिये। फिर कार्यमें तल्लीन हो जाना ही सफलता-प्राप्तिका एकमात्र उपाय है। कोई भी कार्य किया जाय, वह इसी क्रमसे पूरा होता है। ऐसे श्रद्धालु मनुष्योंने ही कुछ सिद्धि प्राप्त की है, ऐसे ही महापुरुष जगत्‌के पथ-प्रदर्शक हो गये हैं। इसी विश्वासको लेकर श्रीरामकृष्णने भी साधन आरम्भ किया और मा कालीकी सेवा-पूजामें वह ऐसे निमग्न हो गये कि कभी कभी तो बाह्यज्ञानके अभावसे वह पूजाका क्रम ही भूल जाते, कभी आरती करनेमें समयका विस्मरण हो जाता और घण्टों आरती ही करते रहते। कभी माको पुष्प समर्पण करते समय काली-का विग्रह सामनेसे अन्तर्हित हो जाता और अपने ही भीतर उसका अनुभवकर वह अपने ही सिर पर पुष्पाञ्जलि चढ़ा देते। कभी ध्यानमें ऐसे लीन होते कि पूजा करना भूल जाते। इसप्रकारके आचरणोंसे अन्य ब्राह्मण सेवक बहुत अप्रसन्न होते, वे सब राम-कृष्णको धमकाते। रामकुमारको भी उनका यह आचरण अच्छा नहीं लगता, वह भी उन्हें समझाने-का प्रयत्न करते। केवल रानी राशिमणि और मथुराबाबू ही उनके इस भावको समझ सके थे। जब सब लोग उन्हें पागल समझकर घर भेज देनेको कहते तब रानी कहती कि 'रामकृष्ण भगवती-के प्रेममें पागल है, उसे यहां ही रहना होगा।' रानीकी ओरसे उन्हें पूरी स्वतन्त्रता दे दी गयी और वह अपने भावके अनुसार पूर्ववत् कार्य करते रहे।

इस समय श्रीरामकृष्णकी फुफेरी बहिन-का लड़का हृदयराम, जो उनके समवयस्क ही था, मन्दिरमें देवपूजाके लिये नियुक्त हो गया था। दोनोंमें आपसमें बड़ी प्रीति थी, बचपनसे ही साथ रहनेके कारण परस्पर स्वाभाविक ही प्रेमभाव था। हृदयराम अबसे बराबर श्रीरामकृष्णके साथ रहा और उनके भविष्य-जीवनमें बहुत सहायताकी।

एक समय श्रीराधाकृष्णके मन्दिरके पुजारीके हाथसे भगवान्‌की मूर्तिका चरण खण्डित हो गया। इसपर रानीको बड़ी चिन्ता हुई, क्योंकि भगवान्‌की मूर्तिका खण्डित हो जाना कुलके लिये अशुभ माना जाता है। विद्वान् पण्डितोंको बुलाकर उन लोगों-से राय ली गयी। सबने एकमत होकर यही कहा कि इस मूर्तिको गंगामें बहाकर नयी मूर्तिकी स्थापना करनी चाहिये। रानी राशमणि-को भगवान्‌की इस मूर्तिके प्रति बड़ा आदर और प्रेम था। इसलिये उसने इस सम्मतिसे सन्तुष्ट न हो श्रीरामकृष्णसे पूछा। उन्होंने कहा कि 'यदि रानीके जामाताका पैर टूट जाय तो क्या रानी उनके पैरकी चिकित्सा न कर, कोई दूसरा जामाता बना लेगी।' इस उत्तरसे सब विस्मित हो गये और यही निश्चय हुआ कि ठाकुरका चरण जोड़ दिया जाय और मन्दिरमें यही विग्रह स्थापित रहे। चरण जोड़नेका काम श्रीरामकृष्णके सुपुर्द किया गया, वह इस काममें बड़े निपुण थे। विग्रह जब ठीक करके दिखाया गया तो यह पता नहीं लग सका कि जोड़ कहां है। अबसे श्रीराधा-कृष्णकी पूजाका कार्य श्रीरामकृष्णको ही सौंपा गया और हृदयराम-को रामकुमारकी सहायताका भार दिया गया!

(क्रमशः)

हठ-योग

(लेखक—स्वामीजी श्रीविज्ञानहंसजी)

चित्त-वृत्तियोंके निरोधद्वारा आत्म-साक्षात्कार करनेके लिये अनुष्ठित द्वितीय श्रेणीकी क्रियाओंका नाम हठयोग है। यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिये कि मन्त्र, हठ, लय और राज, इन चारों प्रकारके योगोंके साधनमें जितनी भी प्रकारकी क्रियाओंका उपदेश किया गया है, उनमेंसे अधिकांश क्रियाएं गुप्त और केवल गुरु-मुखसे जानने योग्य होनेके कारण शास्त्रीय ग्रन्थोंमें उनकी सम्पूर्ण विधियां नहीं मिलतीं और जो कहीं उनका कुछ वर्णन देखनेमें आता भी है तो उससे, क्रियाको गुप्त न रखनेके कारण पूर्ण फलकी प्राप्ति नहीं होती। अनधिकारीके लिये तो बुद्धि-भेद भी होजाता है। ये सब क्रियाएं जब योग्य गुरुदेवके द्वारा प्राप्त होती हैं, तभी पूर्णरूपसे परिज्ञात होनेपर वह पूर्ण फल प्रदान करनेमें समर्थ होती हैं। यह बात भी स्मरण रखनी चाहिये कि पातञ्जल-योगदर्शनमें जो यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहारादि बताये गये हैं, वही आठों अङ्ग चारों प्रकारकी योग-विधियोंके मूलरूप हैं, केवल क्रिया-राज्यमें सुविधाके लिये कहीं कहीं अङ्गोंकी वृद्धि या न्यूनता देखनेमें आती हैं। योगके अष्टाङ्गका वर्णन केवल योगदर्शनमें ही नहीं, श्रुतियोंमें भी स्थान स्थानपर कहीं साक्षात् और कहीं परोक्षरूपसे मिलता है। श्वेताश्वतरोपनिषद्में कहा है—

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं
हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्
स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि॥
प्राणान्प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं
विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः॥
समे शुचौ शर्करावह्निवालुका-
विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने
गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्॥
नीहारधूमार्कानलानिलानां।
खद्योतविद्युत्स्फटिकशशिनाम्॥
एतानि रूपाणि पुरस्सराणि
ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे॥
पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखे समुत्थिते
पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते॥
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्नि समं शरीरम्॥
लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं
वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च॥
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं
योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति॥

उन्नत वक्षस्थल, ग्रीवा और मस्तक-विशिष्ट शरीरको समभावमें स्थापित करके, मनसहित अन्यान्य इन्द्रियोंको भी हृदयासीन ब्रह्ममें निविष्ट

कर प्रणवरूप जहाजकी सहायतासे उपासक संसार-समुद्रको पार करेंगे।

साधक सचेष्ट होकर प्राणायाम-क्रियासे प्राणवायुको प्रपीड़ित करके श्वास-प्रश्वासकी क्रिया करेंगे और आलस्य-रहित होकर दुष्ट घोड़ोंसे युक्त रथकी तरह मनको स्थिर कर लेंगे। समतल, पवित्र, कंकर, बालू या अग्नि-शून्य, शब्द, जल या आश्रयद्वारा चित्तके अनुकूल, नेत्रोंको सन्तोषजनक गुफा आदिकी तरह, वायु-प्रवाहशून्य, आश्रययुक्त स्थानमें मनको योगनिविष्ट करना चाहिये।

ब्रह्म-दर्शनके पहले योगीको कुछ वस्तुएँ देखनेमें आती हैं। कभी कुहेरा, कभी धुआं, और कभी कभी सूर्य, अग्नि,वायु, बिजली, खद्योत, स्फटिक, चन्द्रकी तरह दृश्य देखनेमें आते हैं। पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश—इन पञ्चतत्त्वोंके गुण योगीको प्रत्यक्ष होने लगते हैं, जिससे उसका शरीर योगाग्निसे निर्मल होकर रोग, जरा और दुःखसे मुक्त हो जाता है। उस समय योगीका शरीर लघु, रोगरहित, सुन्दर वर्ण, और सुगन्धयुक्त हो जाता है, ऐसा योगी निर्लोभ, सुन्दर-स्वर, स्वल्प मूत्र-पुरीष-वाला होता है। यही योगीका प्रथम योग-लक्षण है। इस तरह श्रुतियोंमें भी योगका वर्णन देखनेमें आता है। नादबिन्दु, ध्यानबिन्दुयोग-उपनिषद्, कैवल्य-उपनिषद्, शाण्डिल्य-उपनिषद् आदि अनेक उपनिषदोंमें भी योगका वर्णन मिलता है। याज्ञवल्क्य संहिता, सूतसंहिता आदि आर्ष-ग्रन्थोंमें भी योगका वर्णन मिलता है। पद्मपुराण मार्कण्डेय पुराणमें भी योगका प्रचुर वर्णन मिलता है। शिवसंहिता, ब्रह्मजामल, रुद्रजामल आदि तन्त्र-ग्रन्थोंमें तथा गोरक्ष-संहिता, हठयोगप्रदीपिका आदि आधुनिक योगशास्त्रीय ग्रन्थोंमें भी योग-क्रियाओंका वर्णन देखनेमें आता है।

परन्तु इन सब ग्रन्थोंके देखनेपर भी इस योग-विद्याको गुरु-मुखसे जाननेकी अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि साधन-सम्बन्धिनी विद्या सिद्ध गुरुसे ही प्राप्त हो सकती है। ग्रन्थोंसे उसका पूर्ण ज्ञान नहीं मिल सकता। इसलिये हठ-योग, लय-योग और राज-योगके क्रिया-सिद्धांशका रहस्य श्रीमद् सद्गुरुसे ही जानना चाहिये।

योगशास्त्रमें हठ-योगके लक्षणोंका निरूपण इस प्रकार है—प्राण, अपान, नाद, बिन्दु,जीवात्मा और परमात्माके मेलसे उत्पन्न होनेके कारण इस स्थूल शरीरका नाम घट है, जलमें जैसे मिट्टीका कच्चा घड़ा सदा जीर्ण रहता है, इसी तरह यह शरीररूप घट सदा ही जीर्ण रहा करता है। इसलिये योगरूपी अग्निमें पकाकर इस घटकी शुद्धि करनी चाहिये।

जीर्ण-भावयुक्त स्थूल शरीरको हठ-योगके साधनद्वारा दृढ़ करके सूक्ष्म शरीरको भी योगानुकूल बनाया जाता है। स्थूल-शरीर सूक्ष्म-शरीरका ही परिणाममात्र है इसलिये सुकौशल-पूर्ण क्रियाओंके द्वारा स्थूल शरीरको वशमें कर क्रमशः सूक्ष्म शरीरपर आधिपत्य-लाभ करके चित्त-वृत्तिका निरोध किया जा सकता है। जिन क्रियाओंसे ऐसा किया जाता है उनका नाम हठ-योग है। मन्त्र-योगमें जिस प्रकार भावपूर्ण, स्थूल ध्यानकी विधि है, वैसे ही हठ-योगमें ज्योति-कल्पनारूप, ज्योतिर्ध्यानकी विधि है। मन्त्र-योग-समाधिमें नाम-रूपोंकी सहायतासे समाधि लाभ करनेकी साधन-प्रणाली प्रचलित है, हठ-योगमें वायुनिरोधद्वारा मनका निरोध करके समाधिलाभ करनेकी विधि है। मन्त्रयोगकी समाधिको महाभाव समाधि कहते हैं और हठ-योगकी समाधिको महाबोध समाधि कहा जाता है। अस्तु! अब हठ-योगके अङ्गोंका वर्णन किया जाता है।

षट्कर्मासनमुद्राः प्रत्याहारश्च प्राणसंयामः
ध्यानसमाधिसप्तैवाङ्गानिस्युर्हठस्य योगस्य।

१ षट्कर्म, २ आसन, ३ मुद्रा, ४ प्रत्याहार, ५ प्राणायाम, ६ ध्यान, और ७ समाधि ...

यही सात अङ्ग हैं। षट्कर्मोंसे शरीर-शोधन, आसनोंसे दृढ़ता, मुद्राओंसे स्थिरता, प्रत्याहारसे धीरता, प्राणायामसे लाघव, ध्यानसे आत्माका प्रत्यक्ष और समाधिसे निर्लिप्तता या मुक्ति होती है। इन सब मानसिक, आध्यात्मिक लाभोंके अतिरिक्त हठ-योगके प्रत्येक अङ्ग और उपाङ्गोंके साधनसे शारीरिक स्वास्थ्य-विषयक भी बहुत लाभ होता है जो योगिराज गुरुदेवसे जानने योग्य है।

अब इसके अङ्गोंका संक्षेपसे वर्णन किया जाता है।

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिर्लौलिकीत्राटकं तथा ।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ॥

धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति षट्कर्मके यह छः साधन हैं। इनमें धौतिके चार भेद हैं। जैसे अन्तर्धौति, दन्तधौति, हृद्धौति और मूलशोधन इन चार प्रकारकी धौतिके द्वारा शरीरको निर्मल करना चाहिये। अन्तर्धौतिमें भी चार भेद हैं।

वातसारं वारिसारं वह्निसारं बहिष्कृतम् ।
घटनिर्मलतार्थाय अन्तर्धौतिश्चतुर्विधा ॥

वातसार, वारिसार, वह्निसार और बहिष्कृत-सार ये चार प्रकारकी अन्तर्धौति हैं, जिनसे शरीर निर्मल होता है।

वातसारका लक्षण यह है कि, ओठोंको काक-चञ्चुकी तरह बनाकर धीरे धीरे वायु पान करके उस वायुको उदरके भीतर चालित करे और पीछे मुखसे धीरे धीरे उसका रेचन करे, यह क्रिया अग्नि-वर्धक और सर्व रोगक्षयकारक है।

वारिसारका लक्षण यह है कि, वस्त्रसे जलको छानकर वह जल धीरे धीरे कंठपर्यन्त पी लेवे, फिर उस जलको गुदा-मार्गसे निकाल देवे। इस क्रियासे देह निर्मल होती है और देववत् देहकी प्राप्ति होती है।

अग्निसारका लक्षण है, नाभिग्रन्थिको खींचकर सौ बार मेरुदण्डके साथ मिलाया जाय, इससे योगियोंको योगसिद्धिप्रद अग्निसार क्रिया होती है।

बहिष्कृत धौतिका लक्षण यह है कि, काकीमुद्राके द्वारा उदरमें वायु भरकर आधे पहरतक उस वायु-को उदरमें धारण करे, पश्चात् गुदा-मार्गसे उसे रेचन कर देवे। अन्तर्धौतिके चार भेदोंकी तरह दन्तधौतिके भी पांच भेद हैं।

दन्तस्य चैव जिह्वाया मूलं रन्ध्रश्च कर्णयोः ।
कपालरन्ध्रं पञ्चैते दन्तधौतिर्विधीयते ॥

दन्तमूल, जिह्वामूल, दोनों कर्ण-रन्ध्रमूल, और कपालरन्ध्र, इन पांच स्थानोंके शोधनसे दन्तधौति क्रिया होती है।

हृद्धौति तीन प्रकारकी है, जैसे दण्डधौति, वमनधौति और वासधौति। रम्भादण्ड हरिद्रा-दण्ड, वेत्रदण्डको हृदयमें चालित करके धीरे धीरे निकाल लेनेसे दण्डधौति होती है। वमन-धौतिका लक्षण यह है कि बुद्धिमान् साधक भोजनके अन्तमें आकण्ठ जल पीकर क्षणभर ऊर्ध्वदृष्टि रखकर उस जलको मुखसे निकाल देवे। इससे कफ और पित्तका नाश होता है। वासधौतिका लक्षण यह है, कि चार अंगुल चौड़ा सूक्ष्म वस्त्र धीरे धीरे ग्रास करके पुनः उसे बाहर निकाल देवे। इससे गुल्म, ज्वर, कफ, पित्त, प्लीहा, कुष्ठ आदिका नाश होता है।

मूलशोधनका लक्षण यह है, हरिद्रामूलदण्ड और बीचकी अंगुलीसे गुह्यस्थानको बारबार प्रक्षालित करना। इससे कोष्ठबद्धता व आमका अजीर्ण नष्ट होता है। कान्ति, पुष्टि और जठराग्निकी वृद्धि होती है।

षट्कर्मके अन्तर्गत द्वितीय क्रियाका नाम वस्ति है जो कि दो प्रकारकी है। जलवस्ति और शुष्कवस्ति। इनमें जलवस्तिका साधन जलमें और शुष्कवस्तिका साधन स्थलमें हुआ करता है। नाभि-पर्यन्त जलमें अवस्थित होकर उत्कटासनद्वारा गुह्य-देशके आकुंचन और प्रसारणद्वारा नलोंकी सहायतासे जलवस्तिका साधन होता है। इसी

भांति थलपर शुष्कबस्ति हुआ करती है। इससे प्रमेह, उदावर्त, क्रूर वायुका नाश होकर कामदेवके समान सुन्दर शरीर होता है।

षट्कर्मान्तर्गत तीसरे कर्मका नाम नेति है। आधा हाथ परिमाण सूक्ष्म सूतको, जो अनुभवी पुरुषोंद्वारा बनाया जाता है, नासिकामें प्रवेश कराकर पीछे मुखमें निकाल लेनेसे नेतिका साधन होता है। इससे कफ-दोषका नाश और दिव्य नेत्र-शक्ति प्राप्त होती है।

षट्कर्मान्तर्गत चौथे कर्मका नाम नौलि है। प्रथम उत्कटासनमें स्थित होकर वायुके रेचनद्वारा पेटको पीठसे मिलाकर प्रबल वेगसे पेटको दोनों पार्श्वोंमें घुमानेसे नल उखड़कर घूमने लगते हैं जिससे लौलिकी क्रिया सिद्ध होती है। इस क्रियाके होनेसे ही बस्ति हो सकती है।

षट्कर्मान्तर्गत पञ्चम कर्मका नाम त्राटक है। किसी सूक्ष्म वस्तुपर दृष्टि रखकर जब तक दोनों नेत्रोंसे अश्रुपात न होने लगे, तबतक निमेष-उन्मेष त्यागकर दृष्टि स्थिर रखना। इसीका नाम त्राटक है। इस मुद्राके अभ्यासीको शाम्भवी मुद्रामें सहायता मिलती है और नेत्ररोग नाश होता है।

षट्कर्मान्तर्गत षष्ठ क्रियाका नाम कपालभाति है। वातक्रम, व्युत्क्रम और शीतक्रम—इस तरह कपालभाति तीन प्रकारकी होती है। 'वातक्रम' कपालभातिका लक्षण यह है कि वाम नासिकाद्वारा वायु पूरक करके दक्षिण नासिकाद्वारा उसका रेचन किया जाय और इसी तरह दक्षिण नासिकाद्वारा पूरक करके वाम नासिकासे वायु-रेचन किया जाय। यह वातक्रम कपालभातिका साधन है। इसमें पूरक-रेचक बलपूर्वक नहीं करना चाहिये। धीरे धीरे करना चाहिये। इससे कफ-दोष नाश होता है। 'व्युत्क्रम' कपालभातिका लक्षण यह है कि दोनों नासिका-छिद्रोंसे जल खींचकर मुखसे निकाल दिया जाय, फिर मुखसे ग्रहणकर नासिकासे निकाल दिया जाय। ऐसा करनेसे व्युत्क्रम कपालभातिका साधन होता है। इससे श्लेष्मा-दोष दूर होता है। 'शीतक्रम' कपालभातिका लक्षण यह है कि मुखद्वारा शीत्कार-पूर्वक वायु ग्रहण करके नासिकाद्वारा निकाल देनेसे शीतक्रम कपालभातिका साधन होता है इससे सौन्दर्य-वृद्धि, देह-स्वच्छन्द, कफ-नाश और जरा-नाश होता है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि स्थूल शरीर-पर आधिपत्य जमाकर सूक्ष्म शरीरकी सहायतासे चित्तवृत्ति-निरोध करनेकी सुकौशल-पूर्ण क्रियाओं-का नाम ही हठ-योग है। अतएव स्थूल शरीरको शुद्ध करनेकी जो क्रियाएं हैं वे ही हठ-योगमें प्रथम-स्थानीय होती हैं। इसीलिये हठ-योगमें षट्कर्मको सबसे पहले स्थान दिया गया है।

हठ-योगके द्वितीय अङ्गका नाम आसन है। आसनोंके अभ्याससे शरीर योगोपयुक्त और मन स्थिर हो जाता है। जगत्‌में जितनी जीव-योनियां हैं, उतने ही आसन हैं। श्रीमहादेवजीने पुराकालमें चौरासी लक्ष आसनोंका वर्णन किया था। उनमेंसे चौरासी आसन विशेष हैं। इनमेंसे भी इस मर्त्य-लोकमें तैंतीस आसन मंगलजनक हैं। उनके नाम हैं—

सिद्धासन, स्वस्तिकासन, पद्मासन, बद्धपद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन, मृतासन, गुप्तासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन, पश्चिमोत्तानासन, उत्कटासन, सङ्कटासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्मासन, उत्तानकूर्मासन, उत्तानमण्डूकासन, वृक्षासन, मण्डूकासन, गरुड़ासन, वृषासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजङ्गासन, और योगासन, ये तैंतीस सिद्धिदायक आसन हैं।

आसन कैसे देशमें करने चाहिये, इस विषयमें योगशास्त्रका उपदेश है कि सुराज्य, सुधार्मिक,

सुभिक्ष और उपद्रवरहित देशमें शिला, अग्नि और जलसे अलग रहकर एकान्तस्थानमें छोटीसी कुटिया बना उसके बीचमें बैठकर योगसाधन करना चाहिये।

साधन-गृहका द्वार छोटा होना चाहिये, उसमें कोई गड़हा नहीं होना चाहिये। बहुत ऊंचा या बहुत नीचा नहीं होना चाहिये। वहां मकड़ीका जाला वगैरह नहीं होना चाहिये। स्थान गोबरसे लिपा हुआ कीड़ोंसे रहित होना चाहिये। इस प्रकारके स्थानमें चित्तको अन्य चिन्ताओंसे रहित करके सद्गुरुदेवके उपदेशानुसार आसन बांधकर साधन करना चाहिये।

अभ्यासार्थ विशेष विशेष उपयोगी कुछ आसनोंकी विधि यहां लिखी जाती है, जिनकी हठयोगाभ्यासीको विशेष आवश्यकता है।

सिद्धासन—जितेन्द्रिय साधक बायीं एड़ीसे गुदाको और दहिनी एड़ीद्वारा लिङ्गमूलको दबाकर मेरुदण्डको सीधा करके सुखसे बैठे, तब वह सिद्धासन होता है। यह आसन सर्वोत्तम है।

पद्मासन—क्लेशरहित होकर बैठते हुए दहिना पैर बायें उरूके ऊपर और बायाँ पैर दाहिने उरूके ऊपर रखकर जो सुगम आसन होता है। वह पद्मासन कहा जाता है।

स्वस्तिकासन—दोनों जानु और उरूके बीचमें दोनों चरणतल रख ऋजुकाय होकर, बैठनेका नाम स्वस्तिकासन है।

बद्धपद्मासन—दहिना पैर बायें उरूके ऊपर और बायां पैर दहिने उरूके ऊपर स्थापन करके, दोनों हाथोंको पीठसे घुमाकर चरणों के अंगूठे पकड़कर और चिबुक (ठोढ़ी) को वक्षःस्थलपर स्थापन करके नासिकाके अग्रभागको देखते रहनेसे बद्धपद्मासन हुआ करता है।

भद्रासन—दोनों गुल्फ (एड़ियां) वृषणके नीचे विपरीत भावसे स्थापन करके पीछेसे दोनों हाथ घुमाकर चरणोंका अंगूठा धारण करके जालन्धरबन्ध करते हुए नासिकाके अग्रभागको देखनेसे भद्रासन हुआ करता है।

मुक्तासन—वाम गुल्फ (एड़ी) गुदामूलमें रखकर उसके ऊपर दक्षिण गुल्फ स्थापित करके शरीर, मस्तक और ग्रीवा समभावमें रखनेसे मुक्तासन होता है।

पश्चिमोत्तान आसन—दोनों पैरोंको पृथ्वी पर दंडेकी तरह सीधे फैलाकर दोनों हाथोंसे यत्नपूर्वक दोनों चरणोंको पकड़कर जङ्घाओंके बीचमें शिर रखनेसे पश्चिमोत्तान आसन होता है।

मयूरासन—हथेलीसे पृथ्वीका आश्रय करके दोनों केहुनीके ऊपर नाभिके दोनों पार्श्व स्थापन करके दोनों पैरोंको पीछेकी ओर उठाकर दंडवत् हो शून्यमें अवस्थित रहनेसे मयूरासन हुआ करता है। इस आसनके अभ्याससे अधिक भोजन भी पच जाता है। जठराग्नि बढ़ती है। गुल्म-ज्वर आदि अनेक व्याधियाँ नाश होती हैं। इससे विष-दोष तक भी नाश हो जाता है।

सात आवश्यक आसनोंकी विधि लिखी गयी है। विशेष जाननेवालोंको दूसरे प्रकारसे जानना चाहिये।

हठ-योगके तृतीय अङ्गका नाम मुद्रा है। जिन जिन क्रियाओंके द्वारा प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिरूपी साधनाङ्गोंकी सिद्धिमें सहायता प्राप्त होती है, ऐसी सुकौशल-पूर्ण क्रियाओंको मुद्रा कहते हैं। मुद्राएँ पच्चीस हैं, जिनके नाम ये हैं—

महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयानमुद्रा, जालन्धरबंधमुद्रा, मूलबन्धमुद्रा, महाबन्धमुद्रा, महावेधमुद्रा, खेचरीमुद्रा, विपरीतकरणीमुद्रा, योनिमुद्रा, बज्रोलीमुद्रा, शक्तिचालिनीमुद्रा, तड़ागीमुद्रा, माण्डूकीमुद्रा, शाम्भवीमुद्रा, पञ्चधारणामुद्रा, आश्विनीमुद्रा, पाशिनीमुद्रा, काकीमुद्रा, मातङ्गीमुद्रा,

और भुजङ्गिनीमुद्रा। इनके साधनसे योगियोंको योगसिद्धि प्राप्त होती है।

इनमेंसे साधकोंके लिये विशेष विशेष आवश्यक कुछ मुद्राओंका यहाँ संक्षिप्त वर्णन किया जाता है।

महामुद्रा—वाम गुल्फ (एड़ी) को गुदामूलमें लगाकर और दक्षिण पैरको दंडकी तरह फैलाकर दोनों हाथोंसे पैरकी अंगुलियोंको पकड़कर कुम्भक करके कण्ठ संकोच करते हुए भ्रूके मध्य भागका दर्शन करे और तदनन्तर धीरे धीरे वायुका रेचन करे। गुरु-वाक्यानुसार जानुमें मस्तक रखकर दक्षिण गुल्फ और वाम पादके द्वारा पहिलेकी तरह करे और तदनन्तर दोनों पैरोंको दंडवत् फैलाकर ऐसा ही करे। इस प्रकार करनेसे महामुद्राका साधन होगा। यह सर्वरोगनाशक और योगमें सिद्धिप्रद है।

उड्डीयान-बन्ध-मुद्रा—उदरको पश्चिमतान युक्त करके नाभिको आकुंचित करनेसे उड्डीयान-बन्ध होता है। यह बन्ध मृत्युरूप मातङ्गके लिये सिंह-रूप है।

जालन्धर-बन्ध मुद्रा—कण्ठ-देशको संकुचित करके हृदयपर चिबुक (ठोढ़ी) स्थापन करनेसे जालन्धर-बन्ध होता है। इसके द्वारा सोलह प्रकारके बन्धोंमें सहायता मिलती है।

मूल-बन्ध-मुद्रा—वाम गुल्फको गुह्य देशमें और दक्षिण गुल्फको लिङ्ग मूलपर दृढ़बन्धके साथ रखकर नाभिग्रन्थिको संकुचित करते हुए मेरुदंडमें दबाकर गुह्य व लिङ्गमूलको आकुंचन करनेसे मूलबन्ध मुद्राका साधन होता है। यह मुद्रा जरा-नाशिनी; वायु सिद्धिदायिनी, तथा मुक्तिदात्री है।

महाबन्ध-मुद्रा—वाम गुल्फके द्वारा गुदामूलको निरुद्ध करके दक्षिण गुल्फके द्वारा यत्नपूर्वक वाम गुल्फको दबाकर जालन्धरबन्धके द्वारा प्राण-वायुको धारण करके धीरे धीरे गुह्य देशको सञ्चालन और लिङ्गमूलको आकुंचित करनेसे महाबन्ध मुद्राका साधन होता है। यह मुद्रा जरा-मरण नाशिनी और सर्वकामप्रदा है।

खेचरीमुद्रा—जिह्वाके नीचेकी नाड़ी छेदन करके जिह्वाकी चालना करनी चाहिये और नवनीतके द्वारा दोहन और लौह-यन्त्रके द्वारा आकर्षण करना चाहिये। इस प्रकार नित्य अभ्यास करनेसे जिह्वा लम्बी होजायगी और फिर वह दोनों भ्रूओंके बीच तक चली जायगी। उस समय जिह्वाको धीरे धीरे तालुके बीचमें प्रवेश कराकर वहां पर कपाल-कुहरमें विपरीतभावसे स्थापन करके भ्रूमध्यमें दृष्टि स्थापन करनेसे खेचरी मुद्राका साधन होता है।

खेचरी मुद्राके साधनके लिये जिह्वाको नियमित करना प्रथम और प्रधान कार्य है। आवश्यक होने-पर बिना छेदनके भी हो सकता है। यह कार्य जिह्वा-चालनरूप तालव्य क्रियासे भी हो सकता है। तालव्यक्रिया अति गुप्त और केवल योगिराज गुरुदेवके मुखसे ही सीखने योग्य है। योग-शास्त्रमें खेचरी-मुद्राके अपूर्व फलोंका वर्णन है। खेचरी-साधनसे मूर्छा, आलस्य, क्षुधा, तृषा, मृत्यु, भय आदि दूर होकर योगीको दिव्य देहकी प्राप्ति होती है। इस मुद्राके साधन करनेवालेको अग्नि नहीं जला सकती, वायु शुष्क नहीं कर सकता, जल गला नहीं सकता, सर्प दंशन नहीं कर सकता। इस मुद्रासे देह अपूर्व लावण्ययुक्त हो जाता है। इसकी सिद्धिसे समाधि-सिद्धि हुआ करती है। कपाल और मुखके सम्मेलनसे जिह्वामें अद्भुत रसोंकी उत्पत्ति होती है, जिसको खेचरी-साधक ही अनुभव कर सकते हैं। उनकी जिह्वामें यथा-क्रमसे लवण, क्षार, तिक्त, कषाय, नवनीत, घृत, क्षीर, दधि, तक्र, मधु, द्राक्षा और अमृतरसका आस्वादन होता है, जिससे उनकी क्षुधाका नाश और अपूर्व आनन्दकी प्राप्ति होती है।

विपरीतकरणी-मुद्रा—नाभिमूलमें सूर्यनाड़ी और तालुमूलमें चन्द्रनाड़ी विद्यमान है।

सहस्रदल-कमलसे जो अमृत-धारा निकलती है, उसे नाभिस्थित सूर्यनाड़ी ग्रास कर लेती है। इसीलिये जीव मृत्यु-मुखमें पतित होता है। यदि सुकौशलपूर्ण क्रियाद्वारा चन्द्रनाड़ीसे वह अमृतपान किया जाय तो योगीको कदापि मृत्युका भय नहीं हो सकता। इसलिये विपरीतकरणी-मुद्राके अभ्याससे योगीको उचित है कि सूर्यनाड़ीको ऊर्ध्वमें और चन्द्रनाड़ीको अधोभागमें लावे। यह मुद्रा बहुत गुप्त है। मस्तकको पृथ्वीपर स्थापन करके, करद्वयका आधार करते हुए दोनों पैरोंको ऊपरकी ओर उठाकर कुम्भकद्वारा वायु-निरोध करनेसे विपरीत-मुद्रा होती है।

शक्तिचालिनी-मुद्रा— परम देवता कुल-कुण्डलिनी-शक्ति साढ़े तीन फेरा लगाकर सर्पाकार हो, मूलाधार पद्ममें स्थित है। वह शक्ति जबतक निद्रिता रहती है, तबतक कोटि कोटि योग-क्रिया करनेसे भी जीवको ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती। वह पशुवत् अज्ञानी ही रहता है। जिस तरह चाभीसे ताला खोलकर, दरवाजा खोला जाता है उसी तरह कुल-कुण्डलिनी-शक्तिके जगानेसे ब्रह्म-द्वार अपने आप ही खुल जाता है। इस प्रकार जीवको ज्ञानकी प्राप्ति होती है। वस्त्रसे नाभि-देशको वेष्टन करके गोपनीय गृहमें आसनपर स्थित होकर शक्तिचालिनी मुद्राका अभ्यास करना उचित है, वितस्ति परिमित, चार अंगुल विस्तृत, सुकोमल, धवल, सूक्ष्म वस्त्र-द्वारा नाभिको वेष्टन करके उस वस्त्रको कटिसूत्र-द्वारा सम्बद्ध किया जाय। तत्पश्चात् भस्मद्वारा समस्त शरीर लेपनपूर्वक सिद्धासनमें बैठकर प्राण-वायुको नासिकाद्वारा आकर्षण करके बलपूर्वक अपान-वायुके साथ संयोग किया जाय। जबतक वायु सुषुम्नानाडीके भीतर जाकर प्रकाशित न हो, तबतक आश्विनी-मुद्राद्वारा गुह्य-देशको धीरे धीरे आकुञ्चित करना उचित है। इस तरह श्वास रोध करके कुम्भकद्वारा वायु निरोध करनेसे सर्पाकार कुल-कुण्डलिनी-शक्ति जाग्रत होकर ऊपरकी ओर चलने लगती है और सहस्रदल-कमलमें पहुंचकर शिव-संयोगिनी हो जाती है। इस शक्ति-चालिनी मुद्राके बिना योनि-मुद्रामें पूर्ण सिद्धि नहीं होती। इस कारण पहले इस मुद्राका अभ्यास करके तदनन्तर योनि-मुद्राका साधन करना योग्य है। जो योगीजन इस मुद्राका प्रतिदिन अभ्यास करते हैं। अष्टसिद्धियां उनके करतलगत हो जाती हैं।

आश्विनी-मुद्रा— गुह्यद्वारको पुनः पुनः आकुञ्चन और प्रसारण करनेसे आश्विनी-मुद्राका साधन होता है। यह शक्ति-बोधनकारिणी मुद्रा है। इससे सर्वरोग-नाश और बल-पुष्टि होती है।

विशेष आवश्यक मुद्राओंका उल्लेख किया गया। बज्रोली, अमरोली, सहजोली आदि अन्यान्य मुद्राओंका लक्षण केवल योगिराज सद्गुरुके मुखसे ही जानना चाहिये। मुद्राओंके साधनसे योगमार्गमें अग्रसर होनेवाले साधकोंको अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। मुद्राओंके अभ्याससे प्राणायामकी सिद्धिमें, प्रत्याहारमें, धारणामें, विन्दुध्यानमें और अनेक प्रकारकी क्रियाओंमें विलक्षण सहायता प्राप्त होती है।

हठ-योगके चतुर्थ अङ्गका नाम प्रत्याहार है। षट्कर्म, आसन और मुद्राके साधनोंमें सिद्धि प्राप्त करके गुरु-आज्ञानुसार साधकको प्रत्याहारका साधन करना चाहिये, जिसके फलस्वरूप शीघ्र ही प्रकृति-जय और कामादि शत्रुओंका नाश हो जायगा। जहां जहांपर दृष्टि जाती है, वहां-वहां मन भी जाता है। इसलिये प्रत्याहारद्वारा वहांसे मन हटाकर आत्मामें वशीभूत करे। शीत हो या उष्ण, मन स्पर्श-योगसे विषयमें सम्बद्ध होता है। इस लिये मनको विषयसे हटाकर आत्मामें संयत करे। सुगन्ध हो अथवा दुर्गन्ध, मन घ्राणेन्द्रियके योगसे उस विषयमें बद्ध होता है इसलिये मनको विषयसे हटाकर आत्मामें एकाग्र करे। मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त आदि रसोंमें रसनेन्द्रियकी सहायतासे

मन जाता रहता है, इसलिये वहांसे मनको हटाकर आत्मामें स्थिर करे।

इस तरह जब योगी बहिर्जगत्‌की आसक्ति तोड़कर अन्तर्जगत्‌में प्रवेश करनेमें समर्थ होने लगता है, तभी प्रत्याहारकी सिद्धि उत्पन्न होती है। इसीलिये प्रत्याहारके साधनसे आध्यात्मिक धैर्य उत्पन्न होता है और इसी समयमें योगीको दैवी-सिद्धियोंके प्राप्त करनेकी सम्भावना रहती है।

योगियोंको प्राप्त होनेवाली सिद्धियां चार प्रकारकी होती हैं—आध्यात्मिक-सिद्धि, आधिदैव-सिद्धि, अधिभूत-सिद्धि, और सहज-सिद्धि। स्थूल पदार्थोंकी प्राप्तिको आधिभौतिक-सिद्धि कहते हैं। दैवीशक्तियोंकी प्राप्ति अधिदैव-सिद्धि है, प्रज्ञासे युक्त सिद्धियाँ आध्यात्मिक हैं, यह अधिकार बहुत ऊँचा है और जीवन्मुक्त महात्माओंको जगत्कल्याण-साधनके लिये जो सिद्धियां स्वतः प्राप्त हो जाती हैं, उनका नाम सहज-सिद्धि हैं। प्रतिभा, श्रवण, वेदना, दर्शना, आस्वादा और वार्ता ये सिद्धियोंके भेद हैं। जिसे विचारद्वारा वेद्य वस्तुका ज्ञान हो उसे बुद्धि कहते हैं, परन्तु प्रतिभा उस बुद्धिको कहते हैं कि जिसके द्वारा बिना विचार किये दर्शनमात्रसे ही वेद्य वस्तुका परिज्ञान हो जाय। सूक्ष्म, व्यवहित, अतीत, विप्रकृष्ट, और भविष्यद् वस्तुका ज्ञान प्रतिभासे होता है।

समस्त वस्तुओंके अनायास स्पर्श-ज्ञानका नाम वेदना है। अनायास दिव्यरूपोंके दर्शनोंका नाम दर्शना है। बिना प्रयत्नके जब दिव्यरसोंका आस्वादन होने लगे तब उसे अस्वादा कहते हैं और जब दिव्य गन्धोंका अनुभव योगीको होने लग जाय तब उसे वार्ता कहते हैं। इस अवस्थामें योगीको सारे ब्रह्माण्डका ज्ञान हो जाता है।

संयमके द्वारा समाधिविषयिणी बुद्धिका उदय होता है। संयम-शक्तिकी वृद्धिद्वारा योगी, जो चाहे सो कर सकता है। कहां कहां संयम करनेसे कौन कौनसी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, यह बात योगिराज गुरुदेवसे जाननेयोग्य है।

संयम-शक्ति समाधि-भूमिमें प्राप्त होती है परन्तु अन्यान्य शक्तियां पहलेकी भूमिमें भी प्राप्त हो सकती हैं। हठयोगियोंमें तपःप्रधान शक्तिकी प्रधानता है, वह प्रत्याहार-भूमिमें भी प्राप्त हो सकती है।

सिद्धियां सुखकर होनेपर भी सर्वथा निन्दनीय और हेय हैं। आत्मोन्नतिके इच्छुक योगीपुरुष वैराग्यकी सहायतासे उनमें कभी विमोहित न हों। ऐसा ही योगानुशासन है। क्योंकि भौतिक जगत्‌की सोना-चांदी आदि स्थूल सम्पत्तियोंकी तरह सिद्धियां भी सूक्ष्म जगत्‌की सम्पत्ति-विशेष हैं। इनमें फँस जानेपर विषय-बद्ध जीवोंकी भाँति सिद्धिरूप सूक्ष्म-विषय-बद्ध योगी भी परमात्माके राज्यमें अग्रसर नहीं हो सकते। उनकी समस्त उन्नतियोंका पथ रुक जाता है और उनके पतनकी सम्भावना हो जाती है। इसीलिये पतञ्जलिजीने कहा है—

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः।

हठ-योगके पञ्चम अङ्गका नाम प्राणायाम है। प्राण ही महाशक्ति हैं, प्राण ही जगत्‌के रक्षक हैं, प्राणके वशीभूत करनेसे सब कुछ जय होजाता है। स्थूल-सूक्ष्म-भेदसे प्राणके दो भेद हैं। प्राण-जय करनेवाली क्रियाको प्राणायाम कहते हैं। मन्त्र-योगमें प्राण-जय क्रिया धारणाप्रधान है। हठ-योगमें वायुप्रधान है, लययोगमें सूक्ष्म प्राणजय क्रिया मनःप्रधान है। वायुप्रधान प्राणजय क्रिया ही सर्वहितकर है।

अब प्राणायामका वर्णन किया जाता है—

प्राणायाम-साधनके लिये चार बातोंकी आवश्यकता है। प्रथम उपयुक्त स्थान, द्वितीय नियमित समय, तृतीय मिताहार और चतुर्थ नाड़ीशुद्धि।

हठ-योगमें प्राणायाम आठ प्रकारके बतलाये

गये हैं । उनमेंसे विशेष आवश्यक विधियोंका यहां वर्णन किया जाता है ।

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्ट कुम्भकाः ॥

सहित, सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली, ये आठ प्राणायाम हैं।

सहित प्राणायाम दो प्रकारका होता है, एक सगर्भ,दूसरा निगर्भ। जो प्राणायाम बीजमन्त्रसहित किया जाय वह सगर्भ और जो बिना बीजमन्त्रके किया जाय वह निगर्भ कहलाता है। सगर्भ प्राणायामकी विधि यह है कि पूर्व या उत्तर दिशामें मुख करके सुखकर आसनपर बैठकर ब्रह्माका ध्यान करे, वह रक्तवर्ण अकाररूपी रजोरूप हैं । तत्पश्चात् 'अं' इस बीजमन्त्रको षोडश बार जप करते हुए वाम-नासिकासे वायु-पूरक करे, कुम्भक करनेके पहले और पूरक करनेके पीछे उड्डीयान-बन्ध-मुद्राका आचरण करना उचित है। तदनन्तर सत्त्वगुण उकाररूपी कृष्णवर्ण विष्णुके ध्यानपूर्वक 'उं' बीजको चौसठवार जप करते हुए कुम्भकद्वारा वायुको धारण करना उचित है। तत्पश्चात् तमोगुण मकाररूपी श्वेत वर्ण शिवके ध्यानपूर्वक 'मं' बीजको बत्तीस बार जप करते हुए दक्षिण-नासिकाद्वारा वायुरेचन किया जाय। फिर ऊपर लिखी हुई रीतिसे बीज-मन्त्रके जपद्वारा पुनः दक्षिण-नासिकासे पूरक करके कुम्भक करके फिर वाम-नासिकासे रेचन किया जाय। इसप्रकार तीन आवृत्तिमें एक प्राणायाम होता है। इसी रीतिपर अनुलोम-विलोमद्वारा पुनः पुनः प्राणायाम करना चाहिये।

जो प्राणायाम बीजमन्त्रका जप किये बिना किया जाता है वह निगर्भ है। पूरक, कुम्भक, रेचक इन तीनों अङ्गोंसे समन्वित सहित प्राणायामका क्रम एक संख्यासे लेकर शत (सौ) संख्या पर्यन्त किया जा सकता है। ज्यों ज्यों अभ्यास बढ़े, त्यों-ही-त्यों संख्या बढ़ानी चाहिये।

मात्राके अनुसार प्राणायाम-साधनके तीन भेद हैं। बीस मात्रा साधन, सोलह मात्रा साधन और बारह मात्रा साधन। क्रमसे ये उत्तम, मध्यम और अधम हैं। अधम-मात्राकी सिद्धिमें शरीरमें पसीना होता, मध्यम-मात्राकी सिद्धिमें मेरुदण्ड-कम्पन और उत्तम-मात्रामें भूमि त्यागकर शून्य मार्गमें उत्थान होता है।

प्राणायाम-साधनसे खेचरत्व-प्राप्ति, आकाशमें उत्थान, सब रोगोंका नाश, शक्ति-बोधन,मनोन्मनी और चित्तमें परमानन्दकी प्राप्ति होती है।

शीतली प्राणायाम—जिह्वाद्वारा वायु आकर्षण-पूर्वक धीरे धीरे उदरमें पूर्ण करके थोड़ी देर कुम्भक-करके नासिकाद्वारा रेचन कर देवे, यही शीतली प्राणायाम है।

भ्रामरी प्राणायाम—अर्ध रात्रि बीत जानेके बाद जीव-जन्तुओंके शब्दसे वर्जित स्थानपर योगी हाथोंसे कानोंको बन्दकर पूरक और कुम्भकका अनुष्ठान करें। इस तरह कुम्भकके द्वारा साधकके दक्षिण कर्णमें शरीरके भीतरसे उत्पन्न हुए नाना प्रकारके शब्द सुनायी देते हैं। प्रथम झिल्ली-रव तदनन्तर वंशी-रव, तदनन्तर क्रमशः मेघध्वनि झर्झरि-वाद्य-ध्वनि और भ्रमर-गुनगुन-ध्वनि, सुनायी देती है। पश्चात् घण्टा, कांस्य, तुरी, भेरी, मृदङ्ग, आनक और दुन्दुभि आदि शब्द श्रुतिगोचर होते हैं। इस प्रकार अभ्यास करनेसे निश्चय ही नानाविध शब्द सुनायी देते हैं और पीछेसे अनाहत शब्दकी प्रतिध्वनि सुननेमें आती है। तत्पश्चात् साधक ध्वनिके अन्तर्गत ज्योति और ज्योतिके अन्तर्गत परब्रह्ममें मनको लय करता हुआ परमपदमें लीन कर देता है। इस तरह भ्रामरी सिद्धिद्वारा समाधिलाभ होता है।

केवली प्राणायाम—भुजङ्गिनीके श्वाससे अर्थात् कुंडलिनी-शक्तिके प्रभावसे जीव सदा अजपा जप करता है। जिसमें श्वास निकलते समय 'हं' और प्रवेश करते समय 'सः' मन्त्र उच्चारण होकर अजपा जप होता है। 'हंसः' अर्थात् सोऽहं नामक अजपा गायत्रीका जप जीव दिनरातमें २१६०० बार करता

रहता है। मूलाधारपद्म, हृदयपद्म और नासापुट-द्वय द्वारा यह जप हुआ करता है। यह कर्मायतन शरीर ६६ अंगुल परिमित है। देहसे वहिर्गत वायुकी स्वाभाविक गति १२ अंगुल है। गायनमें १६ अंगुल, भोजनमें २० अंगुल, रास्ता चलनेमें २४ अंगुल, निद्रामें ३० अंगुल और मैथुनमें ३६ अंगुल श्वासकी गति होती है, व्यायाममें इससे भी अधिक होती है।

इस स्वाभाविक गतिके ह्रास होनेसे आयुकी वृद्धि और स्वाभाविक गति बढ़ जानेसे आयुका ह्रास होता है। जबतक शरीरके अन्दर प्राण स्थिर रहता है तबतक मृत्यु नहीं होती। जीव देह धारण करके जबतक जीवित रहता है तबतक परिमित संख्याके अनुसार अजपा जप करता रहता है। देहमें प्राणवायुका धारण करना ही केवली-कुम्भक है। केवली-कुम्भक-साधन जितना अधिक होता है उतना ही मनकी लयावस्था हुआ करती है। नासा-पुटद्वारा वायु आकर्षणपूर्वक केवली-कुम्भक किया जाता है। केवलीकी क्रिया सहज कहाती है क्योंकि उसमें पूरक रेचकका कोई क्रम नहीं है। और न कुम्भककी कठिनता है। प्राणपर कुछ आधिपत्य हो जानेसे श्रीगुरु-उपदेशद्वारा इसकी क्रिया प्राप्त होती है। प्रथम अवस्थामें प्राणवायुको नियमित करके प्राणकी क्रिया संयमित करनी पड़ती है और इसकी उन्नत अवस्थामें स्वतः ही इसका साधन होता है। इन्द्रिय-विषयोंसे मनको हटाकर भ्रू-युगलके बीचमें मनको स्थापन करके अपान और प्राण दोनोंकी गति रुद्ध करनेसे केवली-प्राणायामकी क्रिया होती है, केवली-प्राणायाम समाधिप्रद और त्रितापनाशक है, इसकी सिद्धिमें योगीको कुछ भी अभाव नहीं रहता।

हठ-योगमें प्राणायामको सर्वोत्कृष्ट साधन माना गया है, प्राणायाम-सिद्धिद्वारा प्राणजय होकर मनोवृत्तिका निग्रह शीघ्र हो जाता है।

हठ-योगके षष्ठ अङ्गका नाम ध्यान है। मन्त्र-योगोक्त स्थूल ध्यानके भेद पञ्चोपासनाके अनुसार अनेक हैं। किन्तु हठ-योगके ज्योतिर्ध्यानकी शैली एक ही है, केवल ध्यान-स्थान, साधकके अधिकार भेदसे तीन हैं। दीपकलिकावत् तेजोमय ब्रह्म-ध्यानको ज्योतिर्ध्यान कहते हैं। वह प्रकृति ध्यान भी है और ब्रह्म-ध्यान भी है क्योंकि मैं मेराके सदृश ब्रह्म और प्रकृतिमें अभेद है। ब्रह्मके तेजोमयरूप-कल्पनाद्वारा ज्योतिर्ध्यानकी विधि गुरुदेवसे प्राप्त करने योग्य है। नाभि, हृदय और भ्रू-युगल ये तीनों स्थान ज्योतिर्ध्यानके लिये निर्दिष्ट हैं। ज्योतिर्ध्यानकी सिद्धावस्थामें आत्माका प्रत्यक्ष होता है।

हठ-योगके अन्तिम सप्तम अङ्गका नाम समाधि है। हठ-योगकी समाधिको महाबोध कहते हैं। प्राणायाम-सिद्धिके द्वारा वायु जय हो जानेपर कुम्भक करनेकी पूर्ण शक्ति प्राप्त होनेसे हठ-योग-समाधिकी प्राप्ति होती है। प्राणायाम-ध्यानकी सिद्धिके साथ ही समाधि-दशाका उदय होता है। समाधि ही योग-साधनका परम फल है। शरीरसे मनको पृथक करके उसका लय करते हुए स्वरूपोपलब्धिका नाम समाधि है। समाधि-दशामें मनका लय हो जाता है और मैं ही अद्वितीय ब्रह्म सच्चिदानन्द नित्यमुक्त हूँ, ऐसा अनुभव होता है। यही हठ-योगकी समाधि और अन्तिम साधन है। श्रीगुरुदेवकी आज्ञानुसार इसे जानकर साधन करनेसे साधक समाधि-सिद्धि लाभ करके दुस्तर भव-सिन्धुको पार कर जाते हैं।*

---

* इस लेखको पढकर ही किसीको हठ-योगके अभ्यासमें नहीं लग जाना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हठ-योगसे अनेक प्रकारके शारीरिक लाभ, विविध सिद्धियोंकी प्राप्ति और सिद्धियोंमें न फँसकर साधनमें प्रवृत्त रहनेसे शेषमें ज्ञानोदयपूर्वक परम ब्रह्मकी उपलब्धि हो सकती है। परन्तु यह साधन सद्गुरुसे जानकर गुरुदेवकी सन्निधिमें ही करना उचित है। उपयुक्त सद्गुरु-की खोजकर उनकी आज्ञानुसार ही इसमें लगना चाहिये। —सम्पादक

छिप जाओ इस तिमिराच्छन्न हृदयमें

(लेखक—श्रीचेलालालजी शास्त्री 'हिन्दी-प्रभाकर')

अतीत यामिनीके अन्तिम प्रहरमें मैंने एक अलौकिक स्वप्न देखा, मानो घनघोर घटासे घिरी हुई काली रात है। चारों ओर भयावना जङ्गल है। सिंह दहाड़ रहे हैं। गजराज चिग्घाड़ रहे हैं। ऊपरसे मेघोंके झुण्डके झुण्ड कर्ण-कन्दराओंको विदीर्ण करते हुए गम्भीर गर्जना कर रहे हैं। अनन्त अन्धकारके अन्दर बिजलीकी चकाचौंध और भी अँधियारा फैला रही है। मूसलधार वृष्टि हो रही है। यद्यपि सौरभ सरसानेवाला सदा सुखद सुन्दर समीर संचरण नहीं कर रहा है, तथापि चिरकालीन भीष्म ग्रीष्मके अनन्तर आज शीतल जलका अनवरत वर्षण ही विशेष आनन्द प्रदान कर रहा है। आबाल-वृद्ध-वनिता, जलचर, थलचर, खेचर सभी जगज्जीव आनन्दोल्लासमें उल्लसित हो रहे हैं। इतनेमें मेघमाला अन्तर्हित हो गयी। भगवान् शर्वरीश्वर तिमिरस्तोमको निरस्त कर समस्त वसुधातलको सुधा-धारा-प्रवाहिनी लोक-लोचनानन्द-दायिनी अपनी चारु-चन्द्रिकासे सींचने लगे। अकस्मात् कुतूहल-वर्धक विस्मयोत्पादक मनो-मुग्धकर अतर्कित रमणी-कण्ठ-निःसृत मधुर शब्द सुनायी दिया 'पकड़ो'! 'पकड़ो'!! साथ ही किसी भयपीड़ितका-सा करुण क्रन्दन भी कानोंमें प्रवेश कर गया। आश्चर्यान्वित होकर मैंने मनमें विचार किया, इस नीरव निशामें, शून्य निर्जन वनमें अनवसर यह क्या रहस्य है? मैं हतबुद्धि-सा होकर, मानव-स्वभाव-सुलभ भीरुता-पूरित सचकित निमिष-हीन नेत्रोंसे रजनी-रमण-की रमणीय प्रभामें इधर उधर निहारने लगा। आश्चर्य! यह तो मोरमुकुटधारी वृन्दावन-विहारी गोकुलानन्दकारी भक्त-भय-हारी गोपाङ्गना-मध्य-चारी श्रीकृष्णमुरारी ही विद्युद्वेगसे व्याकुल हुए-से दौड़ते चले आ रहे हैं। आप मेरे सम्मुख आकर कहने लगे "प्रशस्य! वयस्य! शीघ्र बताओ? यहाँ कोई मेरे लिये छिपने योग्य स्थान है? देखो! देखो! शीतातपादि क्लेशोंको भूलकर लोक-परलोकको तिलांजलि दे प्रेमोन्मत्ता गोपाङ्गनाएँ मुझे पकड़नेको दौड़ी चली आ रही हैं।" इस श्रुति-सुखद भव्य-भाव-विभूषित लोकोत्तरानन्द-पूरित मनोहर वाक्य-विन्यासको सुनकर मैं पुलकित हो उठा, मेरे मुखसे सहसा निकल पड़ा 'नटनागर! नवनेह-सागर! भय क्या है? मेरे इस अखिल कलि-कल्मषौघ-परिपूर्ण, अज्ञान-घन-तिमिराच्छन्न मानसागारमें शीघ्र प्रवेश कर जाओ, गोपियोंके भयसे तुरन्त ही छूट जाओगे, फिर तीन लोक और चौदह भुवनोंमें अनवरत अन्वेषण करनेपर भी तुम्हारा सहसा कहीं पता नहीं चलेगा!!

जीवनधन!

आओ हे मेरे जीवनधन! अब क्यों व्यर्थ सताते हो?
कर शरीरका ह्रास भास दे, दीनानाथ! रुलाते हो॥
हम जैसे कवियोंको ही क्या निज महिमा दिखलाते हो।
हमसे सहृदय लोगोंसे यों क्या गुणगान कराते हो?
इसी त्रासके बूतेपर क्या मुझे बनाया अपना दास?
तुम विश्वास छुड़ाते हो यों, कैसे कर लूँ मैं विश्वास॥

अवन्तविहारी माथुर "अवन्त"

हमारे नवरात्र और श्रीदेवीमाहात्म्य

(लेखक—साहित्योपाध्याय पं० ब्रह्मदत्तजी शास्त्री काव्यतीर्थ एम० ए०, एम० ओ० एल, एम० आर० ए० एस)

(पूर्वप्रकाशितसे आगे)

सप्तम अध्यायके आदिमें ही अम्बिकाका दर्शन होता है। चण्ड और मुण्डके अनुयायी असंख्य राक्षस युद्ध करनेको आते हैं। अम्बिकाका मुख क्रोधके कारण कृष्ण-वर्ण हो जाता है और तत्काल ही उनके ललाटसे श्रीकालीजीका उत्थान होता है। यहां कालीका विकट रूप दिखाया है। काली करालवदना, हाथमें तलवार और पाश लिये, विचित्र माल्य और ऐसे विचित्र वस्त्र धारण किये हैं, जैसे आजतक कहीं देखने-सुननेमें नहीं आये। नर-कपालोंकी मालाएं गलेमें पड़ी हैं, जिह्वा बाहर लटक रही है जो प्रलयकालीन अग्निके तुल्य दानव-दलनके लिये लपलपा रही है। कालीजी युद्ध करती हैं। अश्वों, गजेन्द्रों सहित ही रथी और महारथी दानवोंके दुर्दान्त दलोंको समग्र ही दाँतोंसे कुचल कुचलकर चूर्णितकर उनका नामशेष कर रही हैं। दानवोंकी कोई कला, उनका कोई पराक्रम, कोई अस्त्रशस्त्र यहां काम नहीं आता। वह देखिये, क्षण भरमें ही श्रीकालिकाजीने चण्ड-मुण्ड दोनोंके शिर तीक्ष्ण खड्गसे काट डाले और उनको हाथोंमें उठाकर श्रीअम्बिकाजीके पास जाकर कहा:—

मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू ।
युद्धक्षेत्रे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥

मैंने इस युद्ध-महायज्ञमें चण्ड-मुण्डरूप महापशु तुम्हें भेट किये हैं। अब इस युद्धक्षेत्रमें तुम स्वयं ही शुम्भ और निशुम्भका संहार करोगी। श्रीअम्बिकाजीने भी उनके पराक्रमकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर उन्हें अनेक साधुवाद देते हुए कहा:—

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता ।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवी भविष्यसि ॥

तुम चण्ड-मुण्डको लेकर मेरे पास पधारी हो। इसीलिये संसारमें चामुण्डा देवीके नामसे ख्यात होओगी। इस प्रकार यह अध्याय समाप्त होता है।

अष्टमाध्याय

दक्षिण वाम भुजाओंके तुल्य सहायक प्रबल प्रतापशाली चण्ड-मुण्ड सेनापतियोंके नाशका समाचार सुनकर, शुम्भ-निशुम्भने अति क्रोधोन्मत्त होकर आदेश किया कि सम्पूर्ण राक्षससैन्य सम्मिलित होकर अम्बिकापर चढ़ाई करे। आदेश होते ही युद्धसूचक भेरियां बजने लगीं। दैत्योंके लाखों योद्धाओंके उत्ताल सागरसदृश सैन्यको सम्मुख आते देख श्रीचण्डिकाजीने धनुषकी प्रत्यञ्चा खींची। प्रत्यञ्चाका आकर्षण करते ही ऐसा घोर शब्द हुआ कि समस्त लोकोंके हृदय हिल गये! इधर उनका वाहन सिंह भी लगा लोमहर्षण गर्जनाएं करने। घण्टाका घनघोर नाद तो हो ही रहा था, आकाशसे पातालतक समस्त लोक गूँज उठे। राक्षसोंने देवी और उनके वाहनको चारों ओरसे वैसे ही घेर लिया जैसे सूर्य अथवा चन्द्रको परिवेष घेर लेता है।

श्रीचण्डिकाजीको इस प्रकार दानवदलसे चतुर्दिक् परिवेष्टित पाकर उनकी सहायताके लिये देवताओंकी शक्तियां प्रादुर्भूत हुईं। जिस देवताका जैसा स्वरूप है, तदनुरूप ही उसकी शक्ति प्रकट होकर चण्डिकाकी सहायतार्थ आ पहुंची।

यस्य देवस्य या शक्तिर्यथा भूषणवाहनम् ।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्‌धुमाययौ ॥
हंसयुक्तविमानस्था साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणीत्यभिधीयते ॥

जिस देवताकी जो शक्ति थी और जैसे भूषण-वाहन थे, उन्हींसे भूषित होकर शक्तियां असुरोंसे लोहा लेनेके लिये आयीं। सबसे पहले ब्रह्माणी पधारीं। उनका विमान हंसोंसे युक्त था। हाथमें जपमाला और कमण्डलु थे।

तब श्रीशङ्करने कहा कि मुझे प्रसन्न करनेके लिये असुरोंको शीघ्र मारिये। इसपर श्रीअम्बिकाजीके कलेवरसे एक अति भीषण शक्ति प्रकट हुई। उस महादेवीका शब्द ऐसा भीषण था जैसे सैकड़ों शृगालियोंका एक साथ अमङ्गल महानिनाद हो रहा हो। इस शब्दको सुनकर दानवोंके अन्तरात्मा प्रव्यथित हो उठे। भयेन च प्रव्यथितान्तरात्मा।

श्रीचण्डिका जगज्जननीने श्रीशङ्करसे कहा:–
'दूतत्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः'

'आप मेरे दूत बनकर शुम्भ निशुम्भके समीप पधारिये, उनसे कहिये कि इन्द्रको त्रैलोक्य दे दें। देवताओंको पुनः उनका हविः प्राप्त होने दें और यदि उन्हें अपने प्राण प्रिय लगते हों तो शीघ्र पाताल-लोकमें जाकर वहां छिपकर प्राणरक्षा करें।

साक्षात् श्रीशिवशङ्करको दूत बनानेके कारण श्रीअम्बिकाजीका नाम 'शिवदूती' पड़ा।

राक्षस क्यों सुनने लगे थे, उन्होंने एकबारगी ही समस्त अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करना आरम्भ कर दिया। श्रीदेवीजीने भी लीलासे ही खेल ही खेलमें दानवप्रयुक्त शस्त्रास्त्र-समूहका संहार कर डाला। सारी शक्तियोंने भी विलक्षण संहार करना आरम्भ किया। दानवोंके पैर उखड़ पड़े। इसी समय रक्त-बीज नामका महाप्रतापी असुर क्रोधमें भरकर श्रीदुर्गाजीसे युद्ध करने आया। उसके शरीरसे जितने रक्तके बिन्दु गिरते थे, उतने ही उसीके समान प्रतापी राक्षस उत्पन्न हो जाते थे। वे भी युद्ध करते थे, श्रीदेवीजीने जब वज्रसे उस राक्षसका शिर काट डाला तो उसके रक्तके स्थूल-प्रवाहसे एक साथ ही लक्षावधि दानवोंकी सृष्टि हो गयी। दानवोंकी इस प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धि देखकर देवगण भयभीत होने लगे। उन सबके मन अत्यन्त खिन्न हो गये। उन्हें खिन्न-मनस्क होते देखकर श्रीचण्डिकाने कालिका देवीसे कहा–

'हे देवि! तुम शीघ्र अपना गिरि-गह्वरोपम मुख खोलो, मेरे शस्त्रोंसे निकले हुए रक्तबीजके रक्तजन्य असंख्य असुरोंके संहारकी मुझे एक युक्ति सूझी है। तुम उसीमें मेरी सहायता करो। रक्तबीज-के रक्तकी एक भी बूँद भूतलपर न गिरने पावे। सावधान! ऐसा करनेसे नवीन राक्षसोंकी उत्पत्ति न होने पावेगी। जो विद्यमान हैं, उन्हें तुम अपना अन्न बनाती हुई चाट जाओ।'

इस युक्तिसे रक्तबीजका थोड़ी ही देरमें नाश हो गया। शरीरमें रक्त न रहनेसे वह निश्चेष्ट होकर कटे हुए वृक्षकी भांति धरातलपर धम्मसे गिर पड़ा।

तब सब देवगण अत्यन्त हर्षित हुए। देवीके जयनादसे दशों दिशाएँ गूंज उठीं।

नवमाध्याय

शुम्भ तथा निशुम्भ रक्तबीजका संहार सुनकर क्रोधसे आगबबूला हो गये। वे अपनी अगणित सेना लेकर चण्डिकाके ऊपर चतुर्दिक्से शर-वर्षा करने लगे। मानों दो प्रधान पर्जन्य किसी पर्वत-मालापर उमड़-घुमड़कर घनघोर वृष्टि कर रहे हों। चण्डिकाने शुम्भके कृपाणके दो टूक कर दिये और उसकी ढालको भी काट डाला! दोनों ओरसे भीषण युद्ध होने लगा। अन्तमें श्रीअम्बिकाने सामने आते हुए निशुम्भकी छातीमें शूल मारा। उसकी छातीसे एक भयङ्कर-मूर्ति दानव 'ठहर तो'! ऐसा कहता हुआ निकला। देवीने उसका शिर

तलवारसे काटकर उसे धराशायी कर दिया। अब अन्य मातृशक्तियोंने भी भीषण युद्ध करना आरम्भ किया। क्षणभरमें असुरोंके शवोंसे रण-क्षेत्र पट गया। इस प्रकार निशुम्भका भी काम-तमाम हुआ।

दशमाध्याय

अब शुम्भ क्रुद्ध होकर चण्डिकाके सम्मुख आया और माताको सम्बोधन करके इस प्रकार कहने लगा—

'बलावलेपाद्दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह।
अन्यासां बलमाश्रित्य युध्यसे यातिमानिनी॥'

'हे दुर्गे! तू अपने बलका अभिमान न कर। तू तो दूसरोंके बलका आश्रय लेकर लड़ती है।'

देवीने उत्तर दिया। 'मूढ़, मेरे अतिरिक्त अन्य शक्ति जगत्में है ही कौनसी? देख, ये सब मातृ-शक्तियां अभी मेरे शरीरमें लीन होती है।' यों कहते ही सारी मातृशक्तियां अपने केन्द्रीभूत दुर्गाके देहमें तत्काल लीन हो गयीं और एकाकिनी दुर्गाने ही शुम्भको समरके लिये ललकारा। दोनोंका अत्यन्त विस्मयकारक युद्ध होने लगा। अन्तमें देवीने उसके हृदयमें हथेलीसे एक ऐसा धक्का दिया कि दैत्य तुरन्त चकराकर गिर पड़ा। फिर सँभलकर उठा और चण्डिकाको उठाकर अन्तरिक्षमें ले उड़ा और लगा वहां घोर युद्ध करने। वहां भी श्रीभगवती उसके दांत खट्टे करती रहीं। तदनन्तर श्रीदेवीने उसे नीचे पटक दिया। फिर उठकर वह माताकी ओर घूसा तानकर बढ़ा, तब माताने शूलसे उसकी छातीको छेदकर उसे गिरा दिया। शुम्भके मरते ही संसारमें शान्तिका साम्राज्य स्थापित हो गया। देवगण प्रसन्न हुए। मनुष्योंको सुख हुआ।

एकादशाध्याय

इस अध्यायमें इन्द्रसहित देवगण माताकी स्तुति करते हैं। यह स्तोत्र भक्तजनोंके लिये प्रतिदिन पठन करने योग्य है।

प्रथम श्लोक यह है:—

'देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥'

'प्रसन्न हो! हे अखिल जगज्जननी! प्रसन्न हो! हे विश्वस्वामिनि! प्रसन्न हो और विश्वका पालन कर। तू ही चराचरकी स्वामिनी है।'

इसी प्रकार अन्य श्लोक भी अत्यन्त भाव-निर्भर हैं। देवीकी भूमि, जल, वैष्णवीशक्ति, विद्या, स्त्री आदि समस्त प्रशस्त रूपोंसे स्तुति की गयी है। बुद्धि, परिणामप्रदायिनी कालकी मूर्ति, माया (वेदान्त-प्रतिपादित) सभी रूपोंका मञ्जुल निरूपण है। ब्रह्माणी, नारायणी, कौमारी, ऐन्द्री, वैष्णवी आदि समग्र देवशक्तियोंके रूपमें स्तुति करके पुनः मानवहृदयमें स्थित, लज्जा, तुष्टि, धृति, मति, श्री, कीर्त्ति आदि गुणोंकी मूर्त्तियोंका आधाररूप बतलाते हुए भी अत्यन्त अद्भुत अलङ्कारपूर्ण वर्णन है। वेदान्तकथित मायाके स्वरूपको समझनेमें यह अध्याय एक अभ्रान्त पथप्रदर्शकका काम देता है। इसे एक स्पष्ट भाष्य ही कहना चाहिये, जिसमें अनिर्वचनीय मायाका निर्वचन-सा करके इस गभीर विषयको हस्तामलकवत् स्फुट करके दिखा दिया है।

दिव्य स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर भगवतीने देवताओंसे 'वरं ब्रूत' 'वर मांगो' ऐसा कहा, देवगणने यह वर मांगा—

'सर्वबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥'

'हे देवि! तुम इसी प्रकार हमारे वैरियोंका विनाशकर संसारकी बाधाओंको हरण करती रहो।'

श्रीभगवतीने 'तथास्तु' कहा और स्पष्टरूपमें देवगणसे प्रतिज्ञा करते हुए बतलाया कि भविष्यत्में

किन किन नामोंको ग्रहण करके वे किन किन दानवों-का संहार करके भूभार उतारेंगी।

द्वादशाध्याय

इसमें देवीने अपने चरित्रोंके श्रवण-कीर्तनका महाफल वर्णन किया है। ब्रह्मदेव, इन्द्रादि देवगण और ब्रह्मर्षियोंद्वारा जो स्तुतियां समय समयपर इस ग्रन्थ-रत्नमें की गयी हैं, उन सबका माहात्म्य 'न भूतो न भविष्यति' है। कोई बाधा, कोई विषम सङ्कट ऐसा नहीं जो इन स्तोत्रपाठों तथा पूजनादिसे निवृत्त न हो जाय। जायते निर्भयः पुमान्। रिपवः संक्षयं यान्ति। नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम्। ऐसे वचन भरे पड़े हैं।

त्रयोदशाध्याय

आश्रमवासी ऋषिने सुरथ राजा तथा समाधि नामक वैश्यको श्रीदेवीजीके इस अद्भुत माहात्म्यको सुनाकर कहा कि हे राजन्! तथा हे वैश्यवर्य! तुम लोग भी स्वाभीष्टकी सिद्धिके लिये इन्हीं भगवतीकी आराधना करो! यह निस्सन्देह तुम्हारी इच्छाओंको पूर्ण करेंगी। यह वचन सुनकर वे दोनों तपस्याद्वारा दुर्गाजीकी आराधना करनेके लिये चल दिये। एक नदीके तटपर मृत्तिकाकी मूर्ति बनाकर, नियमित भोजन करते हुए बड़े भक्तिभावसे तीन वर्षोंतक दोनोंने भगवतीकी आराधना की और उनसे अभीष्ट वर प्राप्त किया। राजाने अन्य जन्ममें भ्रष्ट न होनेवाला राज्य और वैश्यवर्यने तत्त्वज्ञानकी याचना की। दोनोंकी प्रार्थना देवीने स्वीकार की और यही राजा सुरथ अगले जन्ममें सूर्यनारायणसे जन्म पाकर सावर्णि नामक मनु प्रसिद्ध हुए।

उपसंहार

इस प्रकार दुर्गासप्तशतीके तेरह अध्यायोंकी समाप्ति होती है। तर्ककी दृष्टिसे भगवान्की आदि-शक्ति कोई अवश्य होनी चाहिये, क्योंकि शक्तिके बिना कोई शक्तिमान हो नहीं सकता, यदि हो भी तो वह कुछ कर नहीं सकता क्योंकि शक्तिसे ही सब कार्य सिद्ध होते हैं। पूज्यपाद भगवच्छङ्करा-चार्यजीने भी कहा है कि 'ब्रह्म मायाके बिना जगत्-रचनामें समर्थ नहीं है। वह शक्ति एक विचित्र शक्ति है। उस एकहीमें असंख्य शक्तियोंका समावेश है। उसीका रूप शास्त्रकारोंने मन्द अधिकारियोंकी समझमें लानेके लिये उत्तमतासे बांधा है। राक्षस उस शक्तिके पुञ्जोंका नाम है जो जगत्की ईश्वरीय मर्यादाओंके विरुद्ध है। इसके रहे बिना भी जगत्की सत्ता असम्भव है। इस आसुरी सत्ताको दबानेके लिये दैवी सत्ता सदा प्रयत्न करती रहती है। क्योंकि जगत्में आसुरी सत्ता हो भले ही परन्तु अधिक प्रभाव दैवी सत्ताकी ही व्याप्त दीखता है। इन दोनों सत्ताओंके संघर्षणका ही सारा गूढ़ रहस्य सप्त-शतीकी (Philosophy) है। आइये! जगन्नियन्ता जगदादिकारण जगदीश्वरकी उस अनन्त, अपरिमेय, अतर्क्य, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय महाशक्तिके सामने शिर झुकायें। जिसका एक छोटासा रूप यह विश्व-का विशाल नन्दन-वन है, जिसमें हम और आप अभिमानवश अपने तुल्य किसी अन्यको समझते ही नहीं!

अपनानेको

तेरे अतिरिक्त उर आसन न और हेतु ,
पर तू न होता है आसीन हुलसानेको ।
शीस रहता नित्य नीचेको प्रणाम करे ,
पर तू न देता वह अवसर आनेको ॥
दृगोंको सुहाता दूसरा न दृश्य तेरे छोड़ ,
पर तू न आता तरसाता देख पानेको ।
तन मन मेरा है तमाम अब तेरा हुआ ,
पर तू न लेता मुझको है अपनानेको ॥

भगवतीप्रसाद त्रिपाठी विशारद एम० ए०, एल-एल० बी०

हृदयाकाशके उज्ज्वल-नक्षत्र

(आचार-धर्म)

(१) आचार-धर्म वह प्रज्वलित अग्नि है जो आत्मामें आरोपित प्रकृत-विकारोंको स्वर्णके विकारोंकी तरह तपा कर विनष्ट कर देता है।

(२) मानव-देह धारण करनेका फल क्या है ? 'सत्य-शिव-सुन्दर' इष्टदेवका दर्शन ! परन्तु यह तभी हो सकता है जब कि हमारा मनो-दर्पण निर्मल-अविकृत हो और ऐसा तभी हो सकता है जब हमारा तन और हृदय आचार-धर्मके रंगमें रँगा जा चुका हो।

(३) निरुक्तकार कहते हैं 'शब्द कामधुक् हैं, अच्छी प्रकार जाना हुआ एक शब्द ही परम-पदको प्राप्त करा देता है। उनमें 'आचार' शब्द भी एक है। आचार शब्दकी भाषामें उसकी एक व्युत्पत्ति इस प्रकार है। अर्थात् यह शब्द 'आङ्' उपसर्ग और 'चर' धातुसे मिलकर बना है। आङ्का अर्थ है मर्यादा और विधि। 'चर' का अर्थ है गति और भक्षण। संस्कृत-भाषामें गतिके अर्थ तीन हैं-ज्ञान, गमन और प्राप्ति। अब आचारका अर्थ हुआ-'मर्यादाके साथ ज्ञान, गमन और प्राप्ति करना। तब वह पुरुष जो मर्यादामें रहकर ज्ञान प्राप्त करता है, मर्यादाके साथ चलता (व्यवहार करता) है तथा मर्यादासे अपनी लौकिक जीवन-वृत्ति प्राप्त करता है,—आचार-धर्मका पालन करता है। इसी प्रकार मर्यादाके साथ भोजन-पान करनेवाला भी एकांशमें आचार-धर्मका पालन करता है।'

(४) दिव्य-आत्माएँ अपने जीवनको जिस प्रकार व्यतीत करती हैं वही सर्व-साधारणके लिये मर्यादा बनती है तथा जिन कारणोंसे हमारे हृदयाकाशकी पवित्रवाणी हमारे कानोंमें आनेसे रुकती हो अथवा दबती हो, प्राण देकर भी उन कारणोंसे दूर रहना मर्यादा कहलाता है। अतएव जो पुरुष मर्यादित-जीवन व्यतीत नहीं करता, वह स्वतन्त्र पशु है।

(५) यह समस्त भौतिक जगत् त्रिगुणात्मक है। यह अवश्य है कि कोई वस्तु अधिक सात्त्विक है और कोई अधिक तामसिक। हमारा आहार भी इन गुणोंसे अलग नहीं होता। अतएव हमारा खाद्य ऐसा होना चाहिये जो प्रकाशमें बाधक न हो। सतोगुण प्रकाशकी क्रीड़ा-भूमि है और तमोगुण अन्धकारकी। प्रकाश जीवन है और अन्धकार मृत्यु। अतएव यदि हम जीवन (सत्य) को प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें अपना मन सतोगुणी बनाना होगा और मन सतोगुणी तभी हो सकता है जब कि हमारा आहार भी सतोगुणी हो। क्योंकि मनका निर्माण अधिकतर हमारे आहारपर ही अवलम्बित है।

(६) यह बात आवश्यक नहीं कि जो वस्तु स्थूल शरीरके लिये प्रत्यक्षमें लाभदायक हो, वही हमारे सूक्ष्म-शरीरके लिये भी वैसी ही हो। मांस-भक्षण शरीरको पुष्ट करता है और मांसकी वृद्धि करता है, यह शरीरके लिये एक प्रत्यक्ष लाभ है। परन्तु मांस-भक्षण सूक्ष्म-शरीरपर इतना मजबूत काला पर्दा डाल देता है कि 'वह' दिव्या-लोक दिव्यानन्द, जिसकी प्राप्तिके लिये मनुष्य

उत्पन्न हुआ है, दूर हट जाता है। इसी प्रकार सामाजिक नियम भी हैं। एक बात जो समाजके लिये प्रत्यक्षमें लाभदायक प्रतीत होती हो, वही धार्मिक-जगत्‌में अत्यन्त हानिकारक हो सकती है क्योंकि सामाजिक-दृष्टि और धार्मिक-दृष्टिमें गहरा भेद है।

(७) वैषयिक-सुख-प्रवाह अन्य है और मनुष्यका आदर्श अन्य। स्थूल-दृष्टिसे दिखायी देनेवाली वस्तु 'वह' नहीं है जिसके लिये संसारके नर-नारी लालायित हैं। 'वह' गुप्त है, 'पर' है। हमें दिव्यासनपर अधिष्ठित होना है। संयोगसे उसकी प्राप्तिसे पहिले आपत्ति आजाय, तब क्या भय मान कर उस स्वर्गीय परम-राज्यका पथ छोड़कर अन्ध-कूपमें गिर जायं ? कदापि नहीं। सिंह तृण न चरेगा! चातक सरोवरका जल न पियेगा! आचारवान् पुरुषोंकी भी यही गति है।

(८) सृष्टि-सञ्चालक अव्यक्त तत्त्व संसारमें मनुष्यके द्वारा उस महान् आनन्दपूर्ण स्वर्गीय-राज्यको स्थापित करता है, जिसमें भौतिक-दृष्टिकी कृष्ण यवनिका पड़ी हुई है। आचार-धर्म इस यवनिका में रासायनिक परिवर्तन करता है। धीरे धीरे उसका कृष्ण-वर्ण फीका पड़ने लगता है और तदनन्तर वह ठीक मलमलकी चादरके सदृश विशुद्ध-धवल निकल आती है, अन्तमें इस संसार और दिव्य-राज्यके मध्यसे वह भी उठ जाती है। तब आचारवान् मनुष्य उस दिव्य-राज्यका केवल अवलोकन ही नहीं करता वरन् उसमें स्वच्छन्द विहार करता है।

(६) आचार-धर्मका पहला पद-चालन जिस रम्य-स्थलपर होता है, वह है ज्ञान-भूमि। यदि मनुष्य अपना साधारणसे साधारण व्यवहार भी नित्य ज्ञानालोकमें रखकर नहीं देखता तो उसकी वाह्य आचार-क्रियाएं ढोंगमात्र हैं, तथ्य उससे दूर है। प्राणहीन शरीरवत् रूपक है।

(१०) हमारे नित्यकी स्थूल-क्रियाओंसे ही हमारा मन पाठ सीखता है। शरीर-शुद्धि, शुद्ध-वस्त्र-धारण, पवित्र सात्त्विक भोजन-पान बाहरकी बातें हैं। परन्तु इनका प्रभाव मनपर वैसा ही पड़ता है जैसा फोटो लेनेके प्लेटपर सामने खड़े हुए मनुष्यका। अतएव हमारा वाह्याचार भी हमारे अन्तरीय आलोककी प्राप्तिमें परम सहायक है। इसको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखना मनुष्यमें प्रमाद-रोग उत्पन्न होनेका लक्षण है। इस रोगकी चिकित्सा यही है कि इन्द्रियजन्य-प्रलोभनोंसे बचकर पथ्यपूर्वक वाह्याचारके नियमोंको आचरणमें लाया जाय।

(११) हमारे एक मित्रने पूर्णानन्द नामक स्वामीजीका दर्शन किया। वे परमहंस अवस्थाको प्राप्त थे और अत्यधिक कालसे आध्यात्मिक-जगत्‌में रहते थे। अब उनको शौच शुद्धि, खानपान-शुद्धिका कुछ भी ध्यान नहीं था। मित्र बोला—'देखो भाई! तुम शुद्धि शुद्धि पुकारा करते हो, क्या ये महात्मा अशुद्ध हैं ?' हमने कहा—'नहीं, परन्तु इनकी इस वाह्य दशाका अनुकरण हमें नहीं करना चाहिये।' पुनः मित्रने कहा-'क्यों' ? हमने कहा—इसलिये कि स्वामीजीकी यह वाह्यावस्था उनके उद्देश्य-प्राप्तिके लक्ष्यमें नहीं है। वे जहां पहुंच गये हैं वहां पहुंचनेपर स्वयं ही यह अवस्था हो जाती है, करनी नहीं पड़ती। हमारे लिये, वहां पहुंचे बिना वाह्य-दशाका अनुकरण करना संसारको धोका देना है। मित्र सहमत हुआ।

(१२) पूर्ण अज्ञानी और पूर्ण ज्ञानीकी वाह्यावस्था एक समान ही देखनेमें आया करती है। परन्तु साधककी अवस्था ज्ञानी और अज्ञानी दोनोंसे भिन्न होती है। वह उस विवेक-शृङ्गपर खड़े होकर साधना करता है जहांसे ज्ञानमय जगत् बराबर मिला है और अज्ञानमय जगत् नीचे है। आचारवान् मनुष्य नीचे नहीं गिरता।

(१३) अखिलविश्व एक स्वर होकर कह रहा है—'हमें परम-पवित्र अनन्त-प्रभ-पूर्ण ज्ञान-भूमिमें जाना है।' तबउसको परम-पवित्र प्रभ-पूर्ण बनकर जाना

होगा। और यह पवित्रता, प्रभा, और यह ज्ञान आचार-धर्मका पालन करनेसे ही प्राप्त होता है।

(१४) हमें आचार-धर्म सीखनेके लिये भारतसे बाहर नहीं जाना होगा। क्योंकि आचार-धर्म प्रकृतिका पटल उठाकर जिस पूर्णतासे यहाँ प्रकट हुआ है, वैसा न कहीं हुआ है, न है, और न होगा ही। कारण, भारतभूमिपर सृष्टि-रचयिताकी पहली दृष्टि है। भारत सत्यकी पहली क्रीड़ाभूमि है, उद्गत होते हुए ज्ञान-सूर्यकी प्राथमिक मञ्जुल जीवनमय पवित्र रश्मियां इसको ही आलोकित करती हैं। अनुपम लावण्यमयी प्रकृति-सुन्दरी भारतकी रंगस्थलीपर ही अपनी पूर्ण कलाओंसे विश्व-विमोहन नाट्य करती है। आचार-धर्मका हृदय, भारतमें है, मस्तिष्क अन्यत्र हुआ तो क्या ?

श्रीपद-रज-शिशु

आओ एकबार !

(लेखक-श्री भूपेन्द्रनाथ सन्याल)

तुम कौन हो, जो मुझसे छिपकर रहते हो ? यह ठीक है, कि मैं तुम्हें देख नहीं पाता, परन्तु प्राणोंमें तो तुम्हारा खूब अनुभव कर रहा हूं। काया नहीं दीखती, किन्तु अपनी छाया तो तुम नहीं छिपा सकते। ओ चतुर, बताओ तुम कौन हो ? मेरे साथ क्यों इस तरह खेल कर रहे हो ? नील-आकाशमें अगणित तारे झलमला रहे हैं, मेघका तनिकसा आभास समय समयपर निशानाथकी निर्मल ज्योत्स्नाको म्लान कर रहा है। चन्द्रोज्ज्वला यामिनी, जो अभी अभी युवतीके हास्य-सरस मुखचन्द्रकी भांति शोभा पा रही थी, अकस्मात् अतर्कित मेघमालाके उदय होते ही, उसकी वह हास्य-ज्योति अपूर्व गम्भीरताके रूपमें परिवर्त्तित हो गयी। इसी प्रकार तुम्हारा भी हास्य-पूर्ण मुखपद्म क्षण-क्षणमें अभूतपूर्व गाम्भीर्यसे गुरुतर होता चला जा रहा है। कभी देखता हूं, एक बार चन्द्रमा अपने शरीरको बादलोंमें छिपाता है, फिर तनिकसी देरमें ही न जाने क्यों हंसते हंसते बाहर निकल आता है, मानो मेघोंके साथ वह आँखमिचौनी खेल रहा है, ठीक वैसे ही, जैसे तुम जीवके हृदयाकाशमें कभी चन्द्र-लेखाकी नाईं अपूर्व ज्योतिरूपमें प्रकट होते हो, फिर कभी कभी अमावस्याकी रात्रिके सदृश घोर अन्धकारसे हृदयदेशको ढककर अपनेको छिपा लेते हो, और पुनः धीरे धीरे प्रकाशित होने लगते हो।

अरुणोदयके साथ साथ जब पूर्व-गगन सिन्दूर-रागसे रञ्जित हो उठता है, तब असीम सागरकी सुनील जलराशिके विक्षुभित तरङ्गोंसे एक कैसी अनोखी छवि फूट निकलती है– मानो हिल्लोलित सागरके तरङ्गाभिघातमें उसके वक्षःस्थलपर एक अभिनव शिशु नृत्य कर रहा है। प्रतीत होता है, उस छविके साथ मानो कोई खेल रहा है। इसके कुछ ही पहले देखा था, नवप्रभातके आगमन-समाचारकी सूचना देनेके लिये चञ्चला बालिका उषारानी नाचते नाचते हँसते हँसते किसी अन्धकारके अदृश्य गृहसे बाहर निकलकर आयी थी। उसकी उस हँसीसे कितनी जाति-यूथी, मल्लिका-मालती और शेफालिका

खिल उठीं, बकुल (मौलसिरी) तो आह्लादसे डगमगाकर किसीको देखते ही बाहर निकलनेके लिये झर पड़े। मृदु गन्धवह उनके शरीरसे सुगन्ध हरणकर उषारानीके शरीरपर मलकर चला गया, दिगङ्गनाएं कुसुम-सुवासको पाकर हँसने लगीं,–कोयल मानो किसीकी आहट सुनते ही कुञ्जोंमें पञ्चम-स्वरसे गा उठी, समस्त प्रकृतिमें सब ओर एक आनन्दका स्रोत बह चला। यह आनन्द किसका है? यह किसका प्रकाश है, किसको देखकर सबको इतना आनन्द हो रहा है? अपने मनका-सा खिलाड़ी लड़का मिलनेपर जैसे बालक आनन्दमें मतवाले हो उठते हैं, उसी तरह आज किस सुकुमार नयना-नन्द अखिल-जन-मनोहर बालकका अवतार हुआ है, जिसको पाकर फल-फूल, वृक्ष-लता, आकाश-दिशाएँ सभी हँस उठे हैं– सम्पूर्ण विश्व-मानवकी चेतना जाग उठी है? इस बार पकड़े जाओगे, अब छिपकर यह खेल नहीं कर सकोगे।

अच्छा! बताओ तो, तुम्हारा यह कैसा आनन्द है? पर्देकी आड़से तुम्हारा यह कैसा कौतुक है? मुझको एकबार राजाकी पोशाक पहनाकर, फिर भिखारीका साज सजा देते हो–यह तुम्हारा कैसा आमोद है? मैं इतना क्षुद्र हूं तब भी तुम्हारे साथ खेलता हूं, इससे क्या तुम्हारे मानकी कुछ भी हानि नहीं होती? तब क्या तुम प्रौढ़ नहीं हो? विज्ञ नहीं हो? तुम्हें एक नन्हेसे बच्चेकी तरह कितने दिनोंसे देख रहा हूं, कितना काल बीत गया, परन्तु तुम्हारा लड़कपन नहीं मिटा? देखते देखते मैं बड़ा हो गया, बूढ़ा हो गया, अब और भी जीर्ण हो रहा हूं—पर तुम कौन हो, नित्य-नूतन, अनूप-रूप-किशोर, अपूर्व सौन्दर्य-शिरोमणि, गीत-गन्ध-पूर्ण—जो मेरे हृदय-कुञ्जमें विराजित होकर चिरकालसे इतने सुर अलाप रहे हो? बँसरीके सुरोंसे किस-किस तरह सबको अपने पद-प्रान्तमें खींच रहे हो? संसारके साथ हृदयका जो संयोग-सूत्र बँध गया था, तुम्हारे आकुल आह्वान-सुरसे संसारके साथ बँधा हुआ हृदयका वह तार तुरन्त ही टूट गया। तुम सभीको खेलके लिये पुकार रहे हो? तब फिर घरमें रहेगा कौन? अच्छी बात है, खिलाते रहो, जितना तुम्हें अच्छा लगे। पता नहीं, कबसे कितने खेल खेल रहे हो–क्या तुम अपने इस खेलको कभी बन्द नहीं करोगे?

अच्छा, यदि तुम्हें खेल इतना प्यारा है, तो फिर इस तरह छिप-छिपकर क्यों खेलते हो? तुम्हारा आपादमस्तक सम्पूर्ण रूप तो मुझे आजतक कभी देखनेको नहीं मिला। कभी पीठ, कभी पीठपर लटकती हुई वेणी, कभी कमलकी रक्त-आभाके सदृश कोमल किन्तु दृढ़ हथेलियां, कभी स्थल-कमलकान्ति-सदृश बालारुणकी ललित लालिमा जैसे लाल लाल उभय चरण-कमल, कभी कोटि कोटि शशधर-सुधा-सुन्दर श्रीमुख, कभी स्थिर विद्युत्की शोभाको हरनेवाली अपने नेत्र-कोणकी हास्य-रेखा दिखाकर, और कभी मुग्ध-कारी मुरली-स्वर तथा कभी अपने कण्ठका सुन्दर सुधा-पूर्ण हृदयोन्मादकारी नीरव सङ्गीत सुनाकर, तुम हो, बस, इतना ही जनाकर पुनः किस अदृश्य गृहमें छिप जाते हो? ये दर्शनकी प्यासी आँखें बाट देखते देखते अन्धी हो गयीं, कान तुम्हारी मधुर-वाणी सुननेकी आशासे स्तब्ध होकर राह देखते देखते बहरे हो गये, शरीर तुम्हारा मधुर स्पर्श पानेके लिये जीवनभर रो रोकर विवश हो गया, मन तुम्हें खोजते और तुम्हारा चिन्तन करते करते पागल हो गया! तो भी हे चञ्चल! हे दुरन्त! तुम अभी उसकी पकड़में नहीं आये? क्या तुम कभी अपनेको नहीं पकड़ाते? क्या यही तुम्हारा नियम है? मैं सदा-सर्वदा आँखोंके अश्रु-स्रोतसे वक्षःस्थलको बहाता रहूंगा और तुम छिपे-छिपे ही बँसरी बजाओगे? यह व्यवहार क्या युक्तियुक्त है प्यारे? सुना है तुम बहुत बड़े आदमी हो। क्या इसीसे तुमको असीम अनन्त

कहते हैं ? क्या यह ठीक है ? फिर तुम्हारी थाह पानेका उपाय क्या है ? तुम यदि सचमुच इतने बड़े हो, मेरे मन बुद्धिके अगोचर ही रहते हो, तो फिर अपना रूप दिखलाया ही क्यों ? क्यों अपनेको प्रकट किया ? और मेरे मनमें अपने लिये इतनी व्याकुलता ही क्यों भरी ?

मैंने सोचा था, तुम सूर्यसे भी बहुत बड़े हो, तुम इतने महान् हो, कि तुम्हारे अन्दर, आकाशके शरीरपर तारागणोंकी भाँति न मालूम कितने सूर्य टिमटिमाते हैं। और मैं ? पृथ्वी, जो सूर्यके सामने एक तुच्छ पदार्थमात्र है,--मैं, उस क्षुद्र पृथ्वीके एक क्षुद्रतर प्रान्तके क्षुद्रतम अंशके एक कोणका क्षुद्रादपि क्षुद्र केवल एक जीव हूं। तुम इतने बड़े, ऐसे क्षुद्रकी क्यों परवा करते होगे ? देशके बादशाह, अपनी असंख्य प्रजामेंसे किस किसको पृथक् पृथक् पहचानते हैं, उनके व्यक्तिगत सुख-दुःखसे बादशाहको क्या आता जाता है ? सोचा था मैंने, कि, तुम भी ठीक ऐसे ही हो। इससे मनमें यह आनन्द-सा रहता था, कि तुम्हारी नज़रसे अलग किसी तरहसे जीवन-यात्रा चली जा रही है। तुम अपनी महान् महिमामें विराजमान हो, तो मैं अपनी क्षुद्रताके एक कोनेमें पड़ा हूं।

परन्तु तुम्हारी यह कैसी अद्भुत लीला है ? मैं, जो इतना क्षुद्र हूं, और ये सब धूलिके कण, जो कितने क्षुद्रतम हैं, तुम इनमेंसे किसीको भी नहीं भूलते ! सभीके साथ तुम्हारी खासी जान-पहचान है। इतने क्षुद्रोंमें भी तुम अपनी पूर्णताको साथ रखते हुए सदा-सर्वदा विराजमान हो। दीन समझकर किसीसे घृणा नहीं करते, क्षुद्र देखकर किसीकी अवहेलना नहीं करते, इतने क्षुद्रके साथ भी ठीक समानकी तरह व्यवहार करते हो—सखा कहकर पुकारते हो। मैं सोचता था, विश्वमें तुम न मालूम कैसी एक विराट् वस्तु हो, मुझ सरीखे एक अत्यन्त क्षुद्र, तुच्छातितुच्छ जीवकी पुकारका उत्तर उसे क्यों देते होगे ? हरि ! हरि ! तुम तो बिना ही पुकारे आकर खड़े हो गये ! मैं तुम्हारी आँखोंसे ओझल होना चाहता हूं,-मैं छोड़ना चाहता हूं, पर तुम नहीं छोड़ते ! यह तुम्हारा कैसा तमाशा है नाथ ? यह तुम्हारी कैसी व्यवस्था है ? मेरे भूले रहनेसे क्या होगा, तुम जो भूलने नहीं देते ! मैं तुम्हारी ओर नहीं देखना चाहता, इससे क्या होगा, तुम जो आँखोंकी दृष्टिको खींच ही लेते हो ! अच्छा ! मेरे, इतने क्षुद्रके साथ तुम्हारी यह कैसी रंगरलियाँ प्रभो ? मैंने सोचा था, तुम असीम हो, अनन्त हो, महान् विराट् हो, तुम्हारे एक एक रोममें न मालूम कितने ब्रह्माण्ड बुद्बुदकी भांति पल पलमें बनते बिगड़ते हैं, मेरी खोज-खबर रखनेकी तुम्हें क्यों फुरसत मिलती होगी ? मैं खूब निश्चिन्त था। पर अब यह क्या देख रहा हूं ? मेरी समझ तो सभी उलटी हो गयी ! तुम तो मेरी ज़रा-ज़रासी खबर रखते हो; मेरे मनकी कोई भी बात, मेरे घरका कोई भी समाचार तुमसे छिपा नहीं है। मेरे नाथ ! तुम इतनी खबर कैसे रखते हो ? कितने ब्रह्माण्ड हैं-कितने जीव हैं, तुम प्रत्येककी पृथक् पृथक् खबर रखते हो ! किसी दिन भी तो तुम्हारी भूल नहीं होती। यह सब कैसे होता है ? तुम्हारी इस महिमापर विचार आरम्भ करते ही बुद्धि स्तम्भित हो जाती है। अच्छा बताओ, तुम जो इतने बड़े थे, इतने छोटे कैसे बन गये ? छोटे हो अवश्य,-नहीं तो मेरे साथ-साथ कैसे फिर सकते ? तुम जो सर्वव्यापी एक अखण्ड हो, एक ज़रासेमें और सभीमें वही तुम एक जो सर्वव्यापी अखण्ड सच्चिदानन्दघन अनन्त ज्ञान-निलय ज्ञानरूप हो–इसीतरह प्रत्येक क्षुद्र अवयवके सामान्य अंशमें भी तुम वही ज्ञानमय-प्रेममय हो। यह तुम्हारी कैसी लीला है ? ओ मायावी, क्या यही तुम्हारी माया है ?

प्राणोंको यह बात कैसे समझाऊं, कैसे विश्वास करूं कि तुम मुझे चाहते हो। परन्तु यह तो प्रत्यक्ष देखता हूं कि तुम मुझे घड़ी भरके लिये

भी नहीं छोड़ते; अपने सभी चिन्तनमें, अपने सभी कार्योंमें मैं सदा तुम्हारा अस्तित्व देखता हूं-मेरा जो कुछ भी गुप्त रहस्य, मनके एकान्त गुह्य स्थानमें छिपा है, वह सभी तुम जानते हो, तुमको किसी तरह भी धोखा नहीं दिया जा सकता !

ओ मायावी ! एकबार उठा दो यह पर्दा, फाड़ डालो इस मुखके घूँघटको, जिससे तुम्हारा निरावरण चन्द्रवदन मैं एक बार देख लूं,-जी भरकर देख लूं मेरे प्राणप्यारे !

हे पागल ! हे अनादि अनन्तकालके शिशु ! हे नित्य अविनाशी, नित्य आनन्दमय किशोर, हे मेरे पुरातन, सर्वप्राचीन सनातन पुरुषोत्तम ! क्या मेरी विनीत प्रार्थनापर ध्यान दोगे ? एक दिन तुम्हारे जिन कमल-रक्त-राग-रञ्जित पादपद्मोंकी छाया देखी थी, क्या एकबार वे चारु चरणकमल मुझे दिखाओगे ? कहां हो मेरे नयन-चोर, कहां हो मेरे नेत्रोंकी नित्य ज्योति, कहां हो मेरे प्राणोंके परम पुलक ? तुम्हारी वह भुवनमोहिनी, हृदय-शीतल-कारिणी माधुरी मूर्ति कहां है ? अब कबतक मुझसे अपना वह दिव्य मनोहर स्वरूप छिपाये रक्खोगे ? आओ एकबार ! चकितकी भांति आओ सत्वर, अपनी उस अनूप-रूप मुनि-मन-मुग्धकारिणी माधुरीको लेकर,-सुरासुरवन्दिता अपूर्व शोभन-श्रीको लेकर; एक बार मोहन सजकर मधुररूपमें मेरे हृदय-देशमें आकर खड़े तो होओ नाथ ! जिससे तुम्हारे उस आवरणहीन परिपूर्ण अरूप रूपको निरखकर इस मनुष्य-जीवनको सार्थक कर लूं !

गुरु गौरव

(ले०-श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज शास्त्री, आचार्य बी० ए०)

वसंततिलका

श्रीकृष्णचन्द्र-चरणाम्बुज-चञ्चरीक[1]-
शुद्ध स्वरूप-गुरुमें नति अभ्यलीक[2] ॥
होता गुरु-द्यु[3]मणिका जब है प्रकाश
अज्ञान-रात्रि-तमका तब हो विनाश ॥ १ ॥

विज्ञान-कञ्ज विकसै नयनाभिराम
अल्पज्ञता-भगण[4]-आवलिका विराम ॥
उद्योग-कोक[5] गण है करता विहार
आलस्य-घूक[6] रहता शिथिल-प्रचार ॥ २ ॥

सद्धर्म-पक्षिकुल है नित चह्चहाता
खद्योत[7] दम्भ चलता नहिं दृष्टि आता ॥
धीमन् ! गुरु-द्युमणिमें निज भक्ति लाना
सत्कार्यमें उचित है न विलम्ब लाना ॥ ३ ॥

संसार-सागर सखे, यह है दुरन्त[8]
मोहान्धकार जिसमें, न विवेक हन्त !
सन्तापि काम-बडवानल[9] है प्रचण्ड
लोभादि-घोर मकरादि जहाँ उदण्ड ॥ ४ ॥

क्रोध-प्रवात[10] बहता मद-मेघ-साथी
आवर्त्त[11] है विषयका जिसमें प्रमाथी[12] ॥
विद्वन् ! बचो विपतिसे तनु-पोत[13] पैठे ॥
सत्कर्म-सीढ़ि चढ़िके मन आय बैठे ॥ ५ ॥

ज्ञान-प्रदीप जलता उसमें अखण्ड
होते सुदीप्त जिससे सब ब्रह्म-अण्ड ॥
श्रीकर्णधार[14]-गुरुके पद लौ लगाना
सत्कार्यमें उचित है न विलम्ब लाना ॥ ६ ॥

---

१ भ्रमर, २ शुभ, ३ सूर्य, ४ नक्षत्र, ५ चकवा, ६ उल्लू, ७ पटबीजना, ८ अनन्त, ९ समुद्रकी अग्नि, १० आँधी, ११ भँवर, १२ दुःखदायी, १३ जहाज, १४ नाव चलानेवाला

नयी दुलहिन

(लेखिका—बहिन जयदेवीजी)

नवीन आयी हुई वधूको सिर झुकाये बैठे देखकर कुलीन शिष्टाचारिणी शिक्षिता सास उसे आश्वासन देती हुई इस प्रकार कहने लगीः—

हे प्राणप्यारी दुलहिन! इतना बड़ा घूँघट क्यों निकाल रक्खा है? अवश्य ही कुलीन बहू-बेटियोंके लिये लज्जा और शील शोभा ही नहीं, धर्म भी है, तथापि इतनी लज्जा किस कामकी? हे सर्वाङ्गसुन्दरी! इतनी संकुचित मन हो, घूँघट खोल कर अपना चाँदसा मुखड़ा दिखाकर मुझे सुखी कर। आज तेरे आनेसे हमारा घर जगमगा उठा है, हमारा क्या, घर तो तेरा ही है, तू ही इस घरकी मालकिन है! कोई गैर तो यहां है नहीं, जैसी तेरी बहिनें संग-सहेलियां वहां थीं, वैसी ही यहां भी हैं। फिर तू इतनी क्यों शरमाती है? पुत्रको लोग घरका दीपक मानते हैं, वास्तवमें पुत्र तो एक ही घरका दीपक है, परन्तु पुत्री तो माता-पिता, सास-ससुर दोनोंके कुलोंका उजियाला है! सुशीला कन्याएं माता-पिताका यश बढ़ाती हैं और सास-ससुरकी कीर्ति भी उन्हींसे फैलती है! विदेहराज जनकने सीतासे कहा था—पुत्रि! पवित्र कीन्ह कुल दोऊ! बेटी! तेरे माता-पिता जैसे लाड़-चाव करते थे, वैसे ही हम भी तुझे गोदीमें बैठायेंगी, आंखों-की पुतली बनाकर रक्खेंगी, लाड़ लड़ावेंगी, लक्ष्मीकी सदृश तेरा पूजन करेंगी। हे कमल-नयनी! तैंने आंखें क्यों नीची कर रक्खी है? मेरी ओर आंख उठाकर तो देख! मैं भी तुझे देखकर अपनी आंखें ठंडी करूं! भगवान्ने बहुत दिनोंमें हमारी आशा पूर्ण की है! घरके मनुष्य ही नहीं, कुत्ते-बिल्ली भी तेरा घरमें आना देखकर वदन-में फूले नहीं समा रहे हैं! हे चन्द्रवदनी! बाहरसे भी बहुत-सी बहिनें तेरा मुख-चन्द्र देखने आयी हैं! घर-बाहरकी सभी तेरा आना सुनकर खिल रही हैं! मंगल-गान कर रही हैं! तेरे बहानेसे ही सीतारामके मनोहर गीत गा रही हैं, रुक्मिणी-मंगल कर रही हैं! तेरे आनेसे ही हमारे घरमें मंगल हो रहा है! हे पिकवयनी पुत्री! चुपकी क्यों बैठी है? कुछ तो मुखसे बोल! श्रीरुक्मिणी-कृष्णका कोई भजन हमें भी सुना दे। हमने सुना है, तुझे बड़े सुन्दर सुन्दर भजन आते हैं, तू गाने-बजानेमें कुशल है, ताल-स्वर पहचानती है, राग रागिनीका भी तुझे कुछ बोध है। यह सितार रक्खा हुआ है, इसे बजा तो सही। हे गजगामिनि! इधर उधर आंगनमें घूम, कमरे-कोठरी देख ले, तेरा ही घर है, इसे सँभाल ले! रसोई-चूल्हा-चौका देख ले! हमारा भाग्य आज उदय हुआ है, भगवान्ने हमारे सिरका बोझ उतारनेके लिये ही तुझको भेजा है! तेरे काम सँभालते ही हमारा बोझ उतर जायगा! तू ही घर-की मालकिन है, हम तो दो रोटियोंके ग्राहक हैं! दो रोटियां हमको भी दे दिया करना! समय समयका कार्य अच्छा होता है, तेरा समय काम करनेका है, हमारा समय भजन करनेका है! इसी आशासे अनेक कष्ट सहकर भी माता-पिता बेटे-बेटियोंको पालते हैं! भगवान् घट-घट-वासीने आज हमारी आशा पूर्ण कर दी है!

सासकी ऐसी मधुर-रस-सानी मन-लुभानी वाणी सुनकर शीलवती वधू कुछ न बोली और मन

ही मन, जिन भगवान्‌की कृपासे ऐसी निस्पृह प्रेमकी साक्षात् मूर्ति सास प्राप्त हुई, उन भगवान्‌का स्मरण करने लगी और नेत्रोंसे सासका मुख दर्शनकर धीरेसे विनययुक्त वचन बोली कि 'आप सरीखी सासको पाकर मैं अपना अहोभाग्य समझती हूं। भगवान् आपके सभी मनोरथ पूर्ण करेंगे। मैं तन, मन और वाणीसे आपकी सेवा करूंगी। आपकी सेवा करना ही मेरा परम धर्म है।'

जो सास अपनी पुत्र-वधुओंको कन्यासे अधिक मानकर उनके साथ सुन्दर बर्ताव करती हैं, उनको बहुओंकी रग-रगसे इसीप्रकार हार्दिक आशीर्वाद मिला करता है। *सासुएं आशीर्वाद देती तो बहुत हैं* परन्तु इस प्रकार अपनी अच्छी वृत्तिसे प्राप्त करना भी सीख जायं तो बड़ी उत्तम बात हो। अस्तु। इस संवादके दस-बारह दिन बाद एक दिन सास बड़े प्यारसे बहूका हाथ पकड़कर घरकी सब वस्तुओंको एक एक कर दिखलाने लगी:—

हे मेरी आंखोंकी पुतली पुत्री! देख! ये वस्त्रोंकी पेटियां हैं, इस सन्दूकमें रेशमी ऊनी वस्त्र रक्खे हैं, विवाह-उत्सवादिपर ये उपयोगमें आते हैं। इनकी प्रत्येक तहमें नीमके पत्ते रक्खे हैं, जिससे इनमें कीड़े या दीमक नहीं लगते! बीच बीचमें एक एक सूती कपड़ा रक्खा है, इससे भी दीमक नहीं लगते! वर्षाके दिनोंमें जब कभी बादल न हो, तो इनको धूप दिखा देते हैं। इस पेटीमें रोजके पहननेके सूती कपड़े हैं, मोटे भी हैं, महीन भी हैं! जैसे पसन्द हों, पहन सकती हो, विशेषकर आजकल मोटे कपड़ पहननेकी प्रथा है, रिवाजके अनुसार चलनेसे नामधराई नहीं होती, उल्टी प्रशंसा होती है, 'जैसा देश वैसा वेष' यह बड़े लोगोंका कथन है। यह डिब्बा गहनोंका है, इसमें सोने-चांदी सभी प्रकारके आभूषण हैं। आजकल बहुतसी बहिनें गहने पहनना बोझ समझने लगी हैं, है भी वास्तवमें ऐसा ही। फिर भी धनी गृहस्थोंका धर्म है। ये गहने समयपर काम आ ही जाते हैं। यह रुपया-पैसा रखनेका भण्डार है, खर्चसे बचा हुआ धन यहींपर रक्खा जाता है! यह गेहूँ, चावल आदि रखनेका कोठा है, एक एक वस्तु क्रमसे रक्खी हुई है। गृहस्थके घरमें यदि ईश्वर दे तो सालभरका अन्न मौजूद रहना चाहिये, बड़े लोगोंसे ऐसा सुनते आये हैं। इस अलमारीमें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, धर्म और नीतिके ग्रन्थ हैं, ये उपनिषद् हैं, ये भगवद्गीताकी पुस्तकें हैं, इनपर कई आचार्यों-की टीकाएं हैं। यह चाणक्यनीति है, यह विदुर-नीति है, यह मनुस्मृति है, यह तुलसीकृत रामायण है, इसपर कई टीकाकारोंके तिलक हैं। इस ग्रन्थमें गर्भाधानकी विधि है, इसमें पट्रसोंका विधान है और उनके बनानेकी रीति बतायी है। इसमें छोटे बच्चोंकी उपयोगी दवाएं लिखी हुई हैं। इस ग्रन्थमें स्त्रियोंकी विचित्र विचित्र कथाएँ हैं, जिनके पढ़नेसे स्त्री-धर्म स्पष्ट हो जाता है। और भी सभी वर्णाश्रमोंके धर्मके प्रतिपादक ग्रन्थ हैं, सबके नीचेके भागमें उनके नाम लिखे हैं। अलमारी खोलते ही सबके नाम मालूम हो जाते हैं। देख, यह गर्मीके दिनोंका प्रसूतिगृह (जच्चाखाना) है, इसमें प्रकाश और वायुका उचित प्रबन्ध है। यह जच्चाखाना जाड़के दिनोंके लिये है, इसमें सर्दी न आनेका पूरा प्रबन्ध किया गया है। यह ईंधन रखनेकी कोठरी है, इसमें सालभरके लिये ईंधन मौजूद रहता है। यह कमरा स्त्रियोंके सोनेका है, एक नौकरानी और मैं इसमें सोया करती थी, अब मैं और तू इसमें सोया करेंगी। जब तेरी देवरानी आ जायगी, तब तुम दोनों बहिनें सोया करना। यह मेरे भजन करनेकी कोठरी है, इसमें पाठादि किया करती हूं। यह बालगोपाल श्रीकृष्णकी मूर्ति है, छींकेसे मक्खनकी मटकिया उतारनेका उपाय कर रहे हैं, यशोदा मैया कहीं आकर देख न लें, इस भयसे बारम्बार बाहरकी ओर ताक रहे हैं। यही मेरे इष्टदेव हैं। तेरे ससुर भी इन्हींका ध्यान करते हैं। उन्होंने मुझे इनका पूजन-ध्यान करनेकी

आज्ञा दी है। और भी बहुतसे देवताओं तथा अन्य अवतारोंके चित्र भी देख, ऊपर टँग रहे हैं। जब तेरी देवरानी आ जायगी, तब मैं रातको भी इसीमें सोया करूंगी। ऐसा विचार है। गोपालजी करें, वह दिन आवे। अभी तुझे अकेले नहीं छोड़ सकती! तू माता-पिताको छोड़कर पराये घर आयी है। यद्यपि घर तेरा ही है, परन्तु मुझे अनुभव है, मैं भी मा-बापकी याद किया करती थी, ऐसा ही तेरा भी हाल होगा। सबका जी अपनासा ही जानना चाहिये। बेटी! तेरी तो अभी उम्र ही क्या है। पहले पहल ऐसा ही होता है। यह तेरे ससुरके भजन करनेका कमरा है। देख, इसमें भगवान्की अनेक लीलाओंके कैसे कैसे मनोहर चित्र चारों ओर दीवारोंमें टँगे हैं। यह पास ही उनके बैठनेकी बैठक है। यह कमरा बड़े लल्लाका है और यह छोटे लल्लाका है। इस दालानमें पण्डित यज्ञदत्तजी प्रतिदिन आकर दुर्गाका पाठ किया करते हैं। देख, दक्षिण कोणमें उत्तराभिमुख शौचादिके स्थान हैं, ये तूने देखे ही हैं। ये रहनेके मकानोंसे बहुत दूर फासलेपर हैं, यहां आने जानेमें भंगनको आँगनमें होकर नहीं निकलना पड़ता। चल, घरके पीछे महिलाओंके सैर करनेका बगीचा है। बगीचेकी लम्बाई चौड़ाई एक फलांग है। यह गुलाबकी रौश है, ये बेलेके झाड़ हैं, यह मोतिया है, यह मोगरा है और भी जुई, सदा सुहागिन आदि अनेक पौधे हैं! चमेलीका झाड़, देख, कैसा अच्छा खिल रहा है, इसकी सुगन्धसे मस्तिष्कमें ठण्डक आती है, मन प्रफुल्लित होजाता है, चमेलीसे बढ़कर तो कोई फूल ही नहीं है, इसके सामने सब पानी भरते हैं। यह केवड़ा है, यह चम्पक-चम्पेका गमला है। अभी फूल नहीं आये। देख, घास कैसी हरी-हरी एकसार बिछी हुई है, मानो, हरी मखमलका सुहावना फर्श ही बिछ रहा हो। देखते ही आंखोंमें तरी आ जाती है!

देख, ये दस कमरे बराबर बन रहे हैं, इनमेंसे पहलेमें पण्डितानीजी रहती हैं। इनका नाम शारदा देवी है, 'यथा नाम तथा गुण' सचमुच सरस्वती देवीका ही अवतार हैं। वेद, वेदाङ्ग, पुराण, इतिहास, "भागवत, गीता, रामायण, आदिकी पूर्ण ज्ञाता हैं, सिवा भजनके और कुछ भी काम नहीं करतीं! इन नौ कमरोंमें आसपास तीनों वर्णोंकी विधवा बहिनें रहती हैं। पण्डितानीजीको सब माताजी कहती हैं। माताजी सन्ध्याके समय दो घण्टे गीता आदि ग्रन्थोंका प्रवचन करती हैं, शहरकी भी दस बारह स्त्रियां आती हैं, और सब मिलकर इनका प्रवचन सुनती हैं। अपनी अपनी योग्यतानुसार भजन-ध्यान करती हैं। सब शहरोंमें ऐसा ही होने लगे, तो भारतके भाग खुल जायं!

इतना कहकर सास अपनी नयी वधूको माताजीके पास ले गयी। स्वयं माताजीके चरण छुए और वधूसे ढोक दिलवायी। पश्चात् एक एक करके सब कमरोंमें ले जाकर भजन-मण्डलीके दर्शन कराये। सबके दर्शन कराकर फिर इसप्रकार कहने लगीः—

हे सौभाग्यवती! चल मेरे साथ, देख, यह भजन-मण्डलीका रसोईघर है, कुवां पास है, सब मिलकर रसोई-पानीका काम कर लेती हैं। इस कोठरीमें इनके खाने-पीनेका सामान रहता है। इसका प्रबन्ध तेरे ससुर करते हैं, रुपया कमेटीका लगता है। देखभाल उनके जिम्मे है। विशेष नहीं, कोई पचास रुपये महीनेका खर्च है। ब्राह्मणी और अन्य जो कोई खाना चाहे, उनको बिना दाम क्षेत्रसे भोजन-वस्त्र दिया जाता है और क्षत्रिय, वैश्य जातिकी महिलाएं जो क्षेत्रका नहीं खाना चाहतीं, वे अपने पाससे दाम देती हैं अथवा उनके घरसे आ जाता है। भजनके सिवा उनको और कुछ नहीं सिखाया जाता और न उनसे कुछ काम ही कराया जाता है। बाहर जानेकी किसीको आज्ञा नहीं है। न कोई पुरुष यहां आने पाता है। माताजी सबकी देखभाल रखती हैं, यों तो सब कुलीन और भगवद्भजनसे

प्रेम रखनेवाली हैं ही, फिर भी बन्धनमें पड़े बिना कोई स्वतन्त्रताका पाठ नहीं सीख सकता और न स्वतन्त्र हो सकता है, इसलिये माताजी सबपर निगाह रखती हैं। यह माताजीके उपदेश करनेका चबूतरा है, इस चौकीपर बैठकर वे सबको कथा सुनाया करती हैं और गूढ़से गूढ़ प्रश्नोंका समाधान किया करती हैं। इससे बड़ा एक बाग और है, वह शहरके बाहर है, वहां भी बीस पचीस साधु रहते हैं, उनके दर्शन फिर किसी दिन कराऊंगी।

दो वर्ष बाद छोटे लड़केकी बहू आयी। सासने उपयु'क्त प्रकारसे प्रिय सम्भाषण करते हुए उसे भी घर तथा बगीचेकी सैर करायी और एक दिन एकान्तमें दोनों पुत्र-बधुओंको इस प्रकार समझाने लगीः—

सासः—हे मेरी प्यारी पुत्रियो! यह शरीर अन्नसे उत्पन्न हुए रज-वीर्यरूप अपवित्र पदार्थोंका बना हुआ और अस्थि-रक्तादि अपवित्र वस्तुओंसे युक्त है। क्षण-क्षणमें नाश होनेवाला है। इसका एक क्षणका भी भरोसा नहीं है, ऐसे क्षणभंगुर शरीरमें कोई मूर्ख ही भले आस्था करे, विद्वान् तो इसमें आस्था नहीं करते! धन-ऐश्वर्य भी चलती-फिरती छाया है, आज है, कल रहेगा या नहीं, उसका ठिकाना नहीं है। संसारका कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है, अस्थिर पदार्थोंमें प्रेम करनेसे सुख मिलनेकी कभी आशा नहीं, सुख तो स्थिर पदार्थमें होता है। कहा भी है 'क्या परदेशीकी प्रीति और क्या फूंसका तापना' संसार परदेश है और संसारके पदार्थ परदेशी हैं। इनसे प्रेम करना फूंसके तापनेके समान है। एक आनन्दस्वरूप आत्मा ही अपना असली देश है, वही सुखरूप है। यद्यपि आत्मा अपना आप है, कहीं दूर नहीं है, फिर भी शुद्ध अन्तःकरण हुए बिना आत्माको कोई जान नहीं सकता। अन्तःकरण मलिन होनेसे अपने हृदयमें स्थिर आनन्दस्वरूप आत्माको कोई नहीं देखता क्योंकि सबकी दृष्टि बाहरकी ओर हो रही है। बाहरका मिथ्या संसार तो सच्चा भासता है और भीतर बाहर एकरस अखण्ड आनन्दस्वरूप आत्मा मिथ्या-सा हो रहा है। सत्यको मिथ्या और मिथ्याको सत्य जानना, इसीका नाम तो अज्ञान है। शुद्ध अन्तःकरण बिना सत्यासत्यका निर्णय होना कठिन ही नहीं, असम्भव है। देखो, नर-नारी-मात्रके शरीरमें रज-वीर्य ही सार है। जबतक रज-वीर्यकी शरीरमें स्थिति है, तभीतक जीवन है। सारी उछल-कूद इन्हीं दोनोंकी है। कुमारावस्थामें जितना उत्साह और पराक्रम होता है, उतना विवाह होनेके बाद नहीं रहता। जो चतुर स्त्री-पुरुष वीर्यकी रक्षा करते हैं और उसका यथार्थ उपयोग करते हैं, वे जीवनभर सुखी और आरोग्य रहते हैं और उनकी सन्तान भी दृढ़ और बलवान् होती है। आजकल जो अनेक रोग और अकाल-मृत्यु देखनेमें आती हैं, उसका प्रधान कारण वीर्यका दुरुपयोग ही है। स्त्री-पुरुषोंको ऋतुकालके सिवा अन्य कालमें समागम करना कभी उचित नहीं। ऋतुकालमें दूध, चावल आदि सूक्ष्म आहार करना चाहिये और समागमसे प्रथम सूर्यादि दसों दिग्पालोंका ध्यान करके अथवा अपने पतिमें उनकी भावना करके उत्तम सन्तान प्रदान करनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। गर्भाधान-विधिमें इसका उत्तम प्रकारसे विधान है। ऐसा करनेसे अपना और दूसरोंका, सभीका उपकार स्वाभाविक ही होता है क्योंकि शिष्ट स्त्री-पुरुषोंके आचरणका ही साधारण स्त्री-पुरुष अनुकरण करते हैं। शिष्ट पुरुषोंका आचरण प्रमाणरूप माना जाता है। सारांश यह कि, वीर्य-रक्षा स्त्री-पुरुषोंका प्रथम और मुख्य कर्तव्य है। ऐसा करनेसे लोक-परलोक दोनों सुधरते हैं। लोकमें कीर्ति होती है और परलोकमें सुखकी प्राप्ति होती है, इसलिये वीर्य-रक्षा स्त्री-पुरुषोंका मुख्य धर्म है।

इसके सिवा सभीसे मीठी और हितकारिणी वाणी बोलनी चाहिये। मधुर और हितकर वचन,

बिना कौड़ी पैसा खर्च किये ही सबका उपकार करता है। जिससे किसीका दिल दुखे, ऐसी सच्ची बात भी यथासाध्य कहना योग्य नहीं है। मिथ्याभाषण तो सर्वथा ही त्याज्य है। वृथा बातें बनाना, किसीकी निन्दा-चुगली करना, महापातकरूप है। कहा भी है 'परनिन्दा सम कोई पाप नहीं है और परोपकार सम कोई पुण्य नहीं है' और भी कहा है:— 'खोय चटोरी एक घर दो घर खोय बतोर !' इसलिये व्यर्थ-भाषण और परनिन्दा कदापि नहीं करनी चाहिये। स्त्रीका मुख्य धर्म पतिव्रत है। पतिव्रता भी उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ तीन प्रकारकी होती हैं। अपने पतिके सिवा दूसरा कोई पुरुष ब्रह्माण्डमें नहीं है, ऐसे निश्चयवाली उत्तम पतिव्रता है। अपना पति ही पति है, अन्य पुरुष वयानुसार पुत्र, भाई, चाचा, ताऊ आदि हैं, ऐसे निश्चयवाली मध्यम पतिव्रता कहलाती है और पति, कुल तथा जाति आदिके भयसे अपने पतिव्रतकी रक्षा करनेवाली कनिष्ठ पतिव्रता है। हे बेटियो ! यदि गृहस्थाश्रमका यथायोग्य पालन किया जाय तो जो गति संन्यासी आदिको बड़े कठिन तपसे प्राप्त होती है, वही गति गृहस्थको सहजमें ही प्राप्त हो सकती है। आश्रम बड़ा छोटा नहीं है, आश्रम धर्मका पालन करनेवाला ही श्रेष्ठ है। गृहस्थ-धर्मकी शिक्षा देनेवाली एक कपोत-कपोतिनीकी कथा महाभारतमें इस प्रकार है:—

कपोत-कपोतिनीकी कथा

जाड़ेके दिनोंमें एक पारधीने जंगलमें जाल बिछाया परन्तु दैवयोगसे कोई पक्षी उसके जालमें नहीं आया। केवल एक कपोतिनी उसके जालमें आयी, उसको लेकर दिनभरका थका-माँदा भूखा-प्यासा पारधी उसी वृक्षके नीचे आकर ठहरा, जिसपर कपोत-कपोतिनीका घोंसला था। कपोत आगया था और कपोतिनीके न आनेका इसप्रकार सोच कर रहा था—

कपोत—आज बड़ी आँधी और वर्षा आयी है, मेरी कपोतिनी अभीतक नहीं लौटी, क्या कारण है ? मेरी प्रिया वनमें चारा लेने गयी थी, न मालूम क्या हुआ, उसके बिना मुझे अपना घर सूना लगता है ! घर घर नहीं है, गृहिणी ही घर है। स्त्री बिना घर अरण्य-वनके समान है, रक्त नेत्र-वाली, विचित्र वर्णके शरीरवाली और मधुर स्वरवाली मेरी स्त्री यदि आज लौटकर न आयी, तो मेरा जीवन ही नहीं रहेगा। मेरी स्त्री ऐसे उत्तम ज्ञानवाली है कि जबतक मैं भोजन नहीं कर लेता, तबतक वह भोजन नहीं करती। मुझसे पहले उठती है, मेरे सो जानेके बाद सोती है। ऐसी मेरी पत्नी आज न आयी तो मेरा जीना वृथा है ! मेरी स्त्री मुझे प्रसन्न हुआ देखकर प्रसन्न होती है, दुखी देखकर दुखी होती है, मैं बाहर चला जाता हूं, तो उसका मुख दीन-सा हो जाता है, मुझे बाहरसे आया हुआ देखकर कमलके समान खिल जाती है, मैं क्रोध करता हूं तो मधुर वाणी बोलती है ! पतिका ही व्रत करनेवाली, पतिको ही परम गति माननेवाली, पतिके हितमें प्रीतिवाली मेरी स्त्रीके समान जिस किसीके स्त्री हो, उस पुरुषको पृथ्वीपर भाग्यशाली समझना चाहिये। तपका आचार करनेवाली मेरी स्त्री जब मैं थका-माँदा अथवा क्षुधातुर होता हूं तो तुरन्त जान जाती है ! मुझमें ही उसका प्रेम है, मुझमें ही उसकी स्थिर भक्ति है और उस यशस्विनीका मुझमें ही परम स्नेह है। यदि पुरुष वृक्षके नीचे वास करता हो और वहां उसकी व्रतधारिणी प्रिया स्त्री हो, तो वह वृक्ष ही उसके लिये महल है। धर्म, अर्थ और काम इन तीनों कार्योंमें स्त्री अपने पतिकी सहायता करनेवाली है और परदेश आते समय पुरुषके लिये स्त्री विश्वासपात्र है। इस लोकमें स्त्री ही पुरुषका परम अर्थ है और सहायतारहित पुरुषके लिये लोक-व्यवहारमें सहायता करनेवाली स्त्री ही है, ऐसा शास्त्रमें कहा है। जो पुरुष रोगसे ग्रस्त हो

और भारी संकटमें पड़ा हो, उसके लिये स्त्रीके समान दूसरी औषध नहीं है, स्त्री-समान कोई बन्धु नहीं है, स्त्री-समान कोई गति नहीं है और स्त्री-समान धर्मका संग्रह करनेवाला इस लोकमें कोई सहाय नहीं है, जिस पुरुषके घरमें साध्वी मधुरभाषिणी, हितकारिणी स्त्री न हो, उस पुरुषको वनमें चला जाना चाहिये क्योंकि उसके लिये घर और वन समान ही है। यही भाव इस श्लोकमें दिखाया है।

यस्य भार्या गृहे नास्ति साध्वी च प्रियवादिनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्॥

पारधीके जालमें फँसी हुई कपोतिनी अपने स्वामीका ऐसा करुणाजनक विलाप और अपनी प्रशंसा सुनकर कहने लगी—

कपोतिनीः—ओहो! मैं बड़े भाग्यवाली हूं! मुझमें कोई गुण नहीं है तो भी मेरे प्रिय स्वामी इस प्रकार मेरी प्रशंसा कर रहे हैं। जिस स्त्रीसे पति सन्तुष्ट न हो, उस स्त्रीको स्त्री नहीं समझना चाहिये, क्योंकि जब स्त्रीपर स्वामी प्रसन्न होता है, तभी उसपर सब देवता प्रसन्न होते हैं। अग्निदेवको साक्षी करके जिसको स्वामी स्वीकार किया है, वह स्वामी ही स्त्रीका परम दैवत है। जिस स्त्रीसे उसका स्वामी प्रसन्न नहीं होता, वह स्त्री उसी प्रकार भस्म हो जाती है, जिस प्रकार दावाग्निसे पुष्प और गुच्छ-सहित बेल जल जाती है।

इतना विचारकर दुःखसे पीड़ित पारधीके जालमें फँसी हुई कपोतिनी अपने स्वामीको दुखित देखकर इस प्रकार कहने लगीः—

कपोतिनीः—हे स्वामिन्! मैं आपके लिये एक कल्याणकारक उपाय बताती हूं, सुनिये, इस पारधीने आपके घरका आश्रय लिया है, यह शीत और भूखसे पीड़ित है, इसका सत्कार कीजिये। जिस किसीने ब्राह्मणकी हत्या की हो, लोकमाता गौकी हत्या की हो, अथवा शरण आये हुएकी हत्या की हो, ऐसा पापी भी घरपर आ जाय, तो गृहस्थको उसका भी सत्कार करना चाहिये। ऐसा धर्मशास्त्रका मत है। हम तुम कपोत हैं, कपोतकी जातिके धर्मके अनुसार ईश्वरने जो हमारी वृत्ति निर्माण की है, उस वृत्तिका आपके समान आत्मवान् पुरुषको अनुसरण करना चाहिये। यह न्याय है। मैंने यह सुना है कि जो गृहस्थ शक्तिके अनुसार धर्मका अनुवर्तन करता है, वह परलोकमें जाकर अक्षय लोकको प्राप्त होता है। हे स्वामिन्! आप प्रजावाले हैं, इसलिये अपने देहकी ममता त्यागकर धर्म और अर्थका ग्रहण करके जिस प्रकार पारधीका मन प्रसन्न हो, उसी प्रकार उसका सत्कार कीजिये!

पारधीके पिंजरेमें बन्द अति दुःखिनी तपस्विनी कपोतिनी इस प्रकार कहकर अपने स्वामीके मुखकी ओर देखने लगी। स्त्रीके धर्म और युक्तियुक्त वचन सुनकर कपोत पक्षी पारधीकी पूजा करनेको तैयार हुआ और इस प्रकार कहने लगाः—

कपोतः—हे पारधी! आप भले पधारे, बोलिये, मेरे लिये क्या आज्ञा है? आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें, आप समझें कि मैं अपने घरपर ही हूं। शत्रु भी अपने घरपर आवे तो उसका भी यथायोग्य आतिथ्य करना चाहिये, ऐसा नीतिशास्त्रका वचन है, क्योंकि वृक्षका काटनेवाला जब वृक्षके नीचे आता है तो क्या कभी वृक्ष अपनी छाया खेंच लेता है? जो शरणमें आया हो, उसका आतिथ्य-सत्कार अवश्य करना चाहिये और पञ्चमहायज्ञमें तो गृहस्थको विशेष प्रयत्नसे सत्कार करना उचित है, जो पुरुष गृहस्थाश्रममें रहकर मोहसे पञ्चमहायज्ञ नहीं करता, उसे यह लोक अथवा परलोक प्राप्त नहीं होता। आप मुझपर विश्वास करके जो आपके मनमें हो, निश्शंक होकर कहिये।

पारधीः—हे पक्षी! मैं जाड़ेके मारे काँप रहा हूं, जाड़ेसे मेरी रक्षा करो!

इतना सुनकर पक्षीने पृथ्वीपरसे सूखे पत्ते एकत्र किये। एक सूखा पत्ता लेकर अपनी चोंचसे

अग्नि लाकर सूखे पत्तोंमें अग्नि सुलगाई। अग्नि प्रज्वलित हो गयी, पारधी तापने लगा। अग्निकी गर्मीसे उसके प्राण लौट आये और वह प्रसन्न होकर कहने लगाः—

पारधीः—हे पक्षी! मुझे भूख लग रही है, यदि हो सके तो मेरे लिये भोजनका प्रबन्ध कर!

कपोतः—हे अतिथि! आपकी क्षुधा निवृत्त करने योग्य मेरा वैभव नहीं है। हम तो नित्य कुआँ खोदते हैं, नित्य पानी पीते हैं, रोज चारा लाते हैं, रोज खा जाते हैं, एकत्र नहीं करते। जैसे गृहस्थ भोजनके लिये सञ्चय करते हैं, ऐसे हम नहीं करते!

हे बेटियो! ऐसा कहते हुए पक्षीका मुख सूख गया और वह बहुत चिन्तातुर होकर अपनी वृत्तिकी इस प्रकार निन्दा करने लगाः—

कपोतः—हरे! अब मैं क्या करूं? हम सञ्चय नहीं करते, यह बहुत खोटी बात है, क्योंकि सञ्चय हो तो समयपर अतिथिका सत्कार हो सके।

इतनेहीमें उसे एक बात याद आगयी और प्रसन्न होकर उसने पारधीको आश्वासन दिया तथा इधर-उधरसे बहुतसे पत्ते एकत्र करके अग्नि प्रज्वलित कर इस प्रकार कहने लगाः—

कपोतः—ऋषि, देवता, महात्मा, पितृ और अतिथिका पूजन ही गृहस्थका परम धर्म है, ऐसा मैंने सुना है, इसलिये हे प्रिय अतिथि! कृपा करके तू मुझे अङ्गीकार कर! मैं तुझसे सत्य कहता हूं कि अतिथिके पूजनमें मेरी बुद्धि निश्चयात्मिका है।

इतना कहकर बुद्धिमान् पक्षी हँसते-हँसते प्रतिज्ञा करता हुआ अग्निकी तीन प्रदक्षिणा करके अग्निमें प्रवेश कर गया। पक्षीको अग्निमें पड़ा हुआ देखकर पारधी विचार करने लगाः—

पारधीः—हाय! मैंने यह कैसा घोर कर्म किया! मुझे अवश्य महाभयंकर अधर्मकी प्राप्ति होगी, इसमें संशय नहीं है। निरपराधी पक्षीकी मैंने हिंसा की है, ऐसा हिंसक कर्म करनेवाले मुझको धिक्कार है! मुझ दुष्ट और बुद्धिहीनने महापाप किया है, दुष्कृत करके जीनेवाले मुझको नित्य पाप लगेगा! मैं अत्यन्त दुष्टबुद्धि और कपटी हूं, शुभकर्मको छोड़कर दीन पक्षियोंको जालमें पकड़ता हूं, यह महानिन्दित कर्म है। महात्मा कपोतने अपने देहको जलाकर मुझ सरीखे दुष्टको पवित्र उपदेश दिया है, इसमें सन्देह नहीं। मैं अपने प्रिय प्राण, पुत्र और स्त्री इन सबको छोड़ दूंगा! इस कपोत महात्माने निश्चय मुझे धर्मका उपदेश दिया है। आजसे मैं इस देहको सब प्रकारके भोगोंसे रहित करके सुखाऊंगा! भूख-प्यास, सर्दी-गर्मीको सहकर केवल नसोंसे व्याप्त कृश शरीरवाला हो जाऊंगा और अनेक प्रकारकी उपासनाएं करके परलोक-सम्बन्धी धर्म प्राप्त करूंगा। इस पक्षीने अपना देह अर्पण करके अतिथि-पूजनका महान् उपदेश दिया है, अब मैं धर्मका आचरण करूंगा क्योंकि धर्म ही परम गति है। इस उत्तम पक्षीमें मैंने जैसा धर्म देखा है, इसी प्रकारके धर्मका मैं आचरण करूंगा।

ऐसा निश्चय करके रौद्र कर्म करनेवाले उस पारधीने अपनी लकड़ी, सलाई, जाल, पिंजरा और पिंजरेकी कपोतिनीको छोड़ दिया और उपर्युक्त धर्म करनेके लिये महाप्रस्थानके मार्गमें चला। पारधीके जानेके पश्चात् शोकातुर कपोतिनी अपने पतिका स्मरण करके इसप्रकार विलाप करने लगीः—

कपोतिनीः—हे नाथ! आपने कभी मेरा अप्रिय किया हो, ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता। विधवा स्त्री अनेक पुत्र होनेपर भी पति बिना शोकको प्राप्त होती है। पति बिना तपस्विनी स्त्रीका भी बान्धव शोक करते हैं। हे स्वामिन्! आपने मुझे निरन्तर लाड़ लड़ाये थे, मधुर वचन बोलकर आप सदा मेरे मनको हरण करते थे! पर्वतोंकी गुहाओंमें, नदियोंके झरनोंमें और रमणीय वृक्षोंकी चोटियोंपर मैं आपके साथ रमण करती थी। आकाशमें उड़ती हुई क्रीड़ा करती हुई आपके

साथ मनमें फूली नहीं समाती थी ! आप अनेक क्रीड़ाएँ करते थे, आज वे सब बातें समाप्त हो गयीं ! पिता, पुत्र और भाई स्त्रीको नियमित सुख देते हैं, परन्तु स्वामी तो अपरिमित सुखका दाता है ! ऐसे आप स्वामीको पूजा मैं क्यों न करूं ? स्वामीके समान स्त्रीका दूसरा प्रभु नहीं है और स्वामीके समान स्त्रीका दूसरा सुख नहीं है ! स्त्रियोंको धन और सर्वस्व त्यागकर स्वामीके शरण होना चाहिये क्योंकि पतिके सिवा स्त्रीको शरणमें रखनेवाला कोई दूसरा नहीं है ! हे नाथ ! आपके बिना अब मैं इस लोकमें नहीं जिऊंगी ! पति बिना कौन मूढ़ स्त्री जीनेका उत्साह करेगी ?

इस प्रकार बहुत विलाप करती हुई कपोतिनी प्रदीप्त अग्निमें प्रवेश कर गयी, उसी समय वह देखती है कि उसका स्वामी दिव्यशरीर धारण किये विमानमें बैठा हुआ है, पुण्यवान् महात्मा उसका पूजन कर रहे हैं, वह अनेक प्रकारकी दिव्य मालाएँ और वस्त्र धारण किये है, सर्व अलंकारोंसे शोभायमान है । कपोतिनी भी दिव्य देह धारणकर उसके साथ हो ली । कपोत अपनी स्त्रीसमेत स्वर्गमें गया और वहां अनेक प्रकार सुखोपभोग करने लगा। पारधी कठिन तप करता हुआ एक भयानक वनमें पहुंचा और वहां अग्नि लगी हुई देखकर अत्यन्त हर्षको प्राप्त होकर उस अग्निमें जल मरा और यक्ष, गन्धर्व तथा सिद्धोंके मध्यमें इन्द्र-समान शोभित होते हुए उसने अपनेको स्वर्गमें देखा । इस प्रकार पुण्य कर्मका आचरण करनेसे कपोत, पतिव्रता कपोतिनी और पारधी तीनों स्वर्गको प्राप्त हुए । हे बेटियो ! जो स्त्री कपोतिनीके समान आचरण करनेवाली होकर स्वामीका अनुसरण करती है, वह कपोतिनीके समान स्वर्गमें जाकर सुख भोगती है !

हे बेटियो ! अन्तमें यही कहना है कि संसार असार है, फिर भी जो अपने वर्णाश्रमके अनुसार अनुवर्तन करके भगवान्का पूजन करते हैं, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है । अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष उनके हाथमें ही हैं । गृहस्थाश्रम सबसे बड़ा आश्रम है । इसीपर अन्य तीनों आश्रम निर्भर हैं । इसलिये यह आश्रम सबसे उत्तम है । यद्यपि गृहस्थाश्रमका पालन करना कठिन है तो भी जिनको सत्यासत्यका विचार है, उनके लिये कठिन नहीं प्रत्युत सहजमें ही सुखका देनेवाला और आनन्दस्वरूप अक्षय परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला है । सत्यासत्यका, हे बेटियो ! सर्वदा विचार किया करो और सबसे हिल-मिलकर राग-द्वेषरहित अपना जीवन व्यतीत करो ! अब तुम दोनों बहिनें इस घरकी मालकिन और स्वतन्त्र हो ! मैं तुम्हारे कार्यमें दखल नहीं दूंगी, अपनी कोठरीमें एकान्तवास करके अपना शेष जीवन भजनमें व्यतीत करूंगी ! अपने अपने पतियोंकी आज्ञानुसार बरतना, कुटुम्ब और अतिथिकी सेवा करना । जिस बातमें शंका हो, माताजीसे पूछ लिया करना और कथावार्ता नित्य-प्रति सुना करना ! अच्छा ! तुम्हारा कल्याण हो !

दोनों जेठानी-देवरानी अपनी हितैषिणी सासका उपदेश सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुई और उसका अनुकरण करके सर्वदाके लिये सुखी हो गयीं ।

— * —

चितचोर

मन-मन्दिर माँहि मनोहरता
मृदुतामय मोहन मूर्ति बसी ।
कलकञ्ज कलेवर कोमलता
कमनीय कटी कछनीक कसी ॥
चितचोर चुराय चलो चितको
चख चञ्चल चारु चकोर ससी ।
बरनै न बनै बनवारि बली
मन मोह लियो कर 'शील' हँसी ॥

गंगाशरण शर्मा 'शील' बी० ए०

गीताका सांख्ययोग

(लेखक—रावबहादुर राजा श्रीदुर्जनसिंहजी)

भगवद्भक्त और उपासकोंके प्राणरूप, भक्तिरसपीयूषके एकमात्र अगाध ह्रद और श्रीकल्याण भगवान्‌के हृदय-रूप 'कल्याण'के कार्त्तिक सं० १९८६ के अंकमें पृष्ठ ६७० से "गीतोक्त सांख्ययोग" नामक एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें महानुभाव जयदयालजी गोयन्दकाके पहले लेखपर एक काशीस्थ विद्वान् महाशयके द्वारा की गयी शंकाएं और श्री-जयदयालजीके द्वारा किये गये उनके समाधान उल्लिखित हैं—

जिसने 'कल्याण' के पांच सात भी अंक देखे होंगे, उसके हृदयपर श्रीजयदयालजीका नाम अंकित हुए बिना नहीं रहा होगा, क्योंकि कदाचित् ही कोई अंक हो जो इनके भक्तिरस-पूर्ण, मधुरभाव-सम्पन्न, हेतुगर्भित और युक्तियुक्त लेखोंसे विभूषित न हो, और जो काशीस्थ पूर्वपक्षी विद्वान् हैं, उनकी योग्यताका अनुमान तो उनके उन वचनोंसे हो सकता है जिनके द्वारा उन्होंने पूर्वोक्त शंकापूर्वक पूर्वपक्ष खड़ा किया है क्योंकि अनुभवी और शास्त्रज्ञ विद्वान्‌के बिना ऐसा रहस्य प्रकट नहीं हो सकता। प्रयोजन यह है कि यह शास्त्रार्थ दो प्रकाण्ड विद्वानोंमें परस्पर हो रहा है और विषय भी मुक्तिवाद-सम्बन्धी है जो असाधारणरूपसे गम्भीर और जटिल है।

इस दशामें यदि कोई तीसरा व्यक्ति बीचमें कुछ कहना चाहे तो वह अनधिकार चेष्टा ही नहीं किन्तु बालवत् लीला समझे जाने योग्य है और इस उर्दू की कहावतके अनुसार कि 'नक्कारखानेमें तूतीकी कौन सुनता है' उसपर किसीका ध्यान भी कदाचित् ही जाय।

इन विचारोंसे भले ही हृदयमें कैसे भी भाव होते। मुझ जैसे अल्पमतिको तो शिथिलता और साहसहीनताका होना स्वाभाविक था किन्तु भगवत्-प्रेरणासे तत्काल श्रीगोस्वामीजी महाराजके इन वचनोंका स्मरण हो जानेसे, कि 'सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई' अपने भावों-के प्रकट करनेका सहसा उत्साह उत्पन्न हो गया। इस लेखमें कुछ सार या तत्त्व है और इसका कितना मूल्य है इस बातको विवेकसम्पन्न और विचाररसिक महानुभाव स्वयं देख लेंगे।

दोनों महानुभावोंके वचनोंपर ध्यान देनेसे जो बात सूक्ष्मरूपसे मेरी समझमें आयी है, वह यह है कि काशीस्थ विज्ञ सज्जनने जो प्रमाणादि दिये हैं वे इस पक्षको सिद्ध करते हैं कि 'मुक्ति ज्ञानसे ही होती है, कर्मसे नहीं, इसीलिये कर्मयोग और ज्ञान-योग (सांख्ययोग) दोनों निष्ठाएं स्वतन्त्र नहीं हैं' इत्यादि।

इसपर श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने जो समाधान किया है उसका भी आशय मेरी अल्प बुद्धिमें पूर्वपक्षके मतसे भिन्न नहीं है, क्योंकि आपका मुख्य वचन यह है कि 'जिस प्रकार सांख्य-योगीको साधन करते करते पूर्ण ज्ञानकी प्राप्तिके साथ मोक्ष मिल जाता है, उसी प्रकार निष्काम कर्मयोगीको भी साधन करते करते पूर्ण ज्ञानकी प्राप्तिके साथ ही साथ मुक्ति मिल जाती है।' दोनों दशाओंमें परम सीमा ज्ञानकी प्राप्ति है द्वारा मुक्तिका लाभ होता

शब्दोंमें इसके अतिरिक्त और क्या प्रयोजन हो सकता है कि मोक्षके निमित्त ज्ञानकी अनिवार्यता है। बस, यही मत तो पूर्वपक्षका है।

इस प्रकार परिणाममें तो दोनोंकी एकता हो गयी। परन्तु श्रीजयदयालजीके समाधानमें एक बात स्पष्ट होनेकी परम आवश्यकता है। आपने निष्काम कर्मयोगी और सांख्ययोगी दोनोंको ही साधन करते करते ज्ञान-प्राप्ति बतलायी है, सो निष्काम कर्मयोगीका साधन तो अप्रसिद्ध नहीं और जहांतक विचारकी गति है इस साधनसे आपका अभिप्राय भी फलाभिसन्धान-वर्जित शास्त्रोक्त कर्मानुष्ठानसे ही होगा किन्तु सांख्ययोगीके लिये इससे पृथक् आपका और किस साधनसे प्रयोजन है, यह बात स्पष्ट समझमें नहीं आयी। जब आप स्पष्ट शब्दोंमें यह कहते हैं कि केवल साधनकालमें दोनों निष्ठाओंमें भेद है तो सांख्ययोगके साधनकी विधि अवश्य ही भिन्न होनी चाहिये। इन दोनों साधनोंका अन्तर आपने अपने पहले लेखमें बताया है, परन्तु वह मेरे सम्मुख नहीं है। यद्यपि साधनके सम्बन्धमें समाधान स्पष्ट नहीं है परन्तु फलमें मतभेद नहीं है और वेदान्त मतानुसार यह सर्वथा ठीक है, क्योंकि वेदान्तमें कर्मकी आवश्यकता केवल अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये ही समझी गयी है, मोक्ष-प्राप्ति तो ज्ञानके बिना नहीं हो सकती।

यह ठीक है कि ज्ञानके बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता परन्तु अब यहां यह प्रश्न उठता है कि ज्ञान-प्राप्तिके अनन्तर कर्मानुष्ठान यथापूर्व रहे या उसका त्याग कर दिया जाय। इसपर पूर्व पक्षके दिये हुए वचनोंसे भी आशय यही निकलता है कि उसका त्याग होना चाहिये और श्रीजयदयालजीका भी ऐसा ही वचन है कि पूर्ण-ज्ञानकी प्राप्तिके अनन्तर न तो सांख्ययोग है और न निष्काम कर्मयोग ही है। यह मत भी वेदान्तके ही अनुकूल है और इसीके आधारपर श्रीशंकर भगवान्की सम्प्रदायका भी यह निश्चय है कि ज्ञान कर्मका समुच्चय नहीं हो सकता अर्थात् आत्मवित् (ज्ञानी) के लिये कर्म नहीं घटता, जिसको दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि ज्ञान वही है, जिसमें कर्मका स्वरूपसे संन्यास हो।

इस सिद्धान्तपर पहुँचनेसे एक भारी जटिल समस्या उत्पन्न होती है क्योंकि यों कथनमात्रको कर्मका स्वरूपसे त्याग बताया जा सकता है, परन्तु श्रीभगवान्ने जैसी आज्ञा की है कि "न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्' इस प्राकृतिक नियमानुसार उसकी सम्भावना कैसे हो सकती है? स्वयं वेदान्तियोंको ही देखा जाय, शरीरनिर्वाहार्थ हस्तादान, मुखादान, पादसञ्चालनादिकी समस्त चेष्टाएँ करनी पड़ती हैं और सर्वोपरि जो पूर्ण ज्ञाननिष्ठ महात्मा हैं वे लोकोपकारक उपदेशादि सब कुछ किया करते हैं। स्वयं श्रीशंकर भगवान्को ही देखा जाय, उन्होंने संसारके हितार्थ क्या नहीं किया और ऐसा प्रायः सभी ज्ञाननिष्ठ पुरुष और स्वयं श्रीभगवान् भी अवताररूपमें आविर्भूत होकर, और नहीं तो लोकसंग्रहार्थ ही सदैव करते रहते हैं, जैसा कि यह वचन है—

कृष्णो भोगी शुकस्त्यागी भूपो जनकराघवौ ,
वशिष्ठः कर्म कर्ता च एते हि ज्ञानिनः समाः ।

इस दशामें कर्मके स्वरूपसे त्यागवाले सिद्धान्तके घटानेमें पूर्ण अड़चन प्राप्त होती है और यही हेतु है कि श्रीशंकर भगवान्की सम्प्रदायने भिक्षाटनको कर्म नहीं माना है। किन्तु इस निर्णयसे सन्तोष नहीं होता क्योंकि ऐसा कोई विशेष कारण नहीं बताया गया कि एक ऐसे जघन्य कर्मको तो बन्धनका हेतु कर्म न माना जाय और जो अन्य कर्म कर्त्तव्य-बुद्धि या निष्कामभावसे किया जाय उसे बन्धनका हेतु समझा जाकर ज्ञानका बाधक माना जाय।

बस, उलझनका यही मुख्य हेतु है कि जिससे मतभेद होकर स्वपक्षमण्डन या परपक्ष-खण्डनकी दशा प्राप्त हो गयी। यदि वस्तुतः देखा जाय तो श्रीभगवद्गीताजीका जन्म इसी जटिलताको सुलझानेके लिये हुआ है। यदि दीनवत्सल करुणानिधान श्रीभगवान् अपने प्रकाशकी छटाको संसारपर न छिटकाते तो इस अन्धकारकी निवृत्ति सर्वथा असम्भव थी।

श्रीभगवान्ने दोनों विरोधी मतोंका समन्वय करते हुए ऐसे गम्भीर किन्तु सरल व सुबोध सिद्धान्तका उद्घाटन किया है कि जो और किसीके भी द्वारा सर्वथा असम्भव था। सर्वप्रथम ज्ञानयोग (सांख्ययोग) का स्वरूप प्रकाशित किया गया है, जिसका संक्षेपसे यही आशय है कि आत्मा नित्य है, उसका कभी नाश नहीं और आत्मेतर देहादि सर्व पदार्थ अनित्य हैं, जो नाशवान् हैं।

इसके अनन्तर फलमें अधिकारके निषेधपूर्वक केवल कर्ममें अधिकार निर्देश करनेके द्वारा कर्मयोगका लक्षण कहा गया है और यह भी सिद्ध किया गया है कि कोई प्राणधारी कर्म बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता।

इस निरूपणके द्वारा श्रीभगवान्ने यही बताया है कि जब कोई भी प्राणी प्रकृतिके नियमानुसार क्रियाहीन नहीं रह सकता तो फलकी इच्छा बिना उपर्युक्त ज्ञानपूर्वक ही कर्त्तव्य-कर्म क्यों न किया जाय जो बन्धनका हेतु न होकर मोक्षका हेतु हो।

इस निर्णयसे इन दोनों बातोंका समाधान होता है कि एक ओर तो श्रुतिका वचन है कि बिना ज्ञानके मोक्ष नहीं होता, वह भी चरितार्थ हो गया, क्योंकि बिना ज्ञानके कोरा कर्म उल्टा बन्धनकारी है अतः मोक्षमें मुख्यता ज्ञानकी ही है और दूसरी ओर जो कर्मका अनुष्ठान बताया गया है वह वस्तुतः संकल्पपूर्वक कर्म नहीं है किन्त वह तो शरीरके धर्मरूपमें स्वतः होता है क्योंकि जब शरीरमें इन्द्रियां हैं तो उनकी क्रियाओंका होना भी अनिवार्य है। हाँ, बुद्धिका यह काम अवश्य है कि उन क्रियाओंका प्रवाह असत्-मार्गमें न जाने पावे।

यह श्रीभगवान्का उपदेश देहानुसन्धानकी दशामें प्रकृतिके नियमानुसार है, जिसमें कर्मका स्वरूपसे त्याग असम्भव है और ऐसी दशामें केवल ज्ञान और कर्मका ही समुच्चय नहीं होता है किन्तु इसकी दृढ़मूलकताके लिये श्रीभगवान्के आश्रयरूप उपासनाकी भी आवश्यकता होती है।

यहां एक समस्या और समाधान-योग्य है कि क्या कर्मका स्वरूपसे त्याग नितान्त असम्भव है? श्रीगीताजीके सिद्धान्तपर पूर्ण ध्यान देनेसे विदित होगा कि प्रकृतिके नियमानुसार तो वह अवश्य असम्भव ही है किन्तु उस जगन्नियन्ताकी शक्तिका क्या प्रकृतिके नियमोंसे अवरोध हो सकता है? वह अपरिमेया या अकल्पनीया है और उसके अद्भुत व अनुपम चमत्कारोंमें मनुष्यकी बुद्धिकी कोई गति नहीं। बस, यह उसी शक्तिका चमत्कार है कि जो प्रकृतिधर्मसे असम्भव बात कही गयी। उसका भी सम्भव होना सिद्ध किया गया। पांचवें अध्यायमें यद्यपि प्रकृति-नियमानुसार मनुष्य-बुद्धि-गम्य और सबके अधिकारका विषय होनेके कारण बताया है श्रेष्ठ कर्मयोगको ही, किन्तु अस्तित्व कर्मसंन्यासका भी स्पष्टरूपसे प्रकट किया गया है। वास्तवमें कर्मका स्वरूपसे त्याग देहानुसन्धानकी दशामें निर्विकल्प समाधि या तन्मय ध्यानके अवसरपर ही यथार्थरूपसे घट सकता है, जब सम्पूर्ण इन्द्रियां स्वतः निश्चेष्ट हो जाती हैं।

अपनी अल्पबुद्धिके अनुसार ये अपने भाव महत्-पुरुषोंकी सेवामें समर्पित किये जाते हैं। धृष्टताके लिये क्षमा-प्रार्थना है।

विवेक-वाटिका

मनके निग्रह करनेसे योगीको निर्भयता, दुःखोंके अभाव, ज्ञान और अक्षय शान्तिकी प्राप्ति होती है... अतएव निरन्तर प्रयत्न करके मनका निग्रह करना चाहिये। —उपनिषद्

❀ ❀ ❀ ❀

यह अस्थिर और चञ्चल मन ज्यों ज्यों संसारमें जाय, त्यों-ही-त्यों इसे लौटाकर परमात्मामें लगाना चाहिये। —श्रीमद्भगवद्गीता

❀ ❀ ❀ ❀

जिस पुरुषका मन कामादि विषयोंसे हारा हुआ नहीं होता, वही योगकी साधना कर सकता है। कामादि विषयोंसे पराजित मनवाला मनुष्य योग-साधन नहीं कर सकता। —महाभारत

❀ ❀ ❀ ❀

जो पुरुष ईश्वरके तत्त्वसे अनभिज्ञ लोगोंको अमृतरूप ज्ञानका प्रकाश दिखलाकर सन्मार्गपर ले आता है उस दयालु दीनबन्धु पुरुषपर सभी देवगण कृपा करते हैं। —मैत्रेय

❀ ❀ ❀ ❀

विषयसुख घने बादलोंमें चमकनेवाली बिजलीकी भाँति चञ्चल है, हमारी आयु हवामें बिखरे हुए बादलोंके जलके सदृश क्षणस्थायी है और यह जवानीकी लालसा भी शीघ्र ही नष्ट हो जायगी, इसलिये बुद्धिमान्‌को चाहिये कि वह मनको धैर्यके साथ एकाग्र करके परमात्माकी प्राप्तिके लिये लगावे। —भर्तृहरि।

❀ ❀ ❀ ❀

प्राणघात, चोरी और व्यभिचार, ये तीन शारीरिक पाप हैं; असत्य, निन्दा, कटुभाषण और व्यर्थभाषण, ये चार वाणीके पाप हैं और परधनकी इच्छा, दूसरेके अनिष्टकी इच्छा तथा सत्य, अहिंसा, दया, दान आदिमें अश्रद्धा, ये तीन मानसिक पाप हैं —बुद्धदेव

❀ ❀ ❀ ❀

विवेक हो तो बस्तीमें रहनेमें भी धर्म है और जंगलमें रहनेमें भी, विवेक बिना दोनोंमें ही अधर्म है। —महावीर स्वामी

❀ ❀ ❀ ❀

जो दयालु हैं, उन्हींपर भगवान्‌की दया होगी; जिसका मन शुद्ध है, उन्हींको भगवान्‌के दर्शन होंगे; जो धर्मके लिये सताये जाते हैं, स्वर्गका राज्य उन्हींका होगा और जो धर्मके पिपासु हैं, उन्हींकी तृप्ति होगी। —ईसामसीह

❀ ❀ ❀ ❀

जब तुम सांसारिक कामनाओंको छोड़ दोगे, तभी शोक और दुःखसे छूटकर सच्चे सुख और शान्तिको पा सकोगे। —मन्सूर उमर

❀ ❀ ❀ ❀

हे जीव! यदि तू भगवान्‌की इच्छानुसार चलना चाहता है तो उसकी शरणके सिवा और कोई उपाय नहीं है। जो मनुष्य अपनी इच्छानुसार अपनेको चलाना चाहता है वह स्वयं अपनेको धोखा देता है। —मोलिन्स

❀ ❀ ❀ ❀

जिसमें जितना प्रेम है, वह उतना ही ईश्वरके समीप पहुँचा हुआ है—उतने अंशमें वह प्रभुमय बन गया है, क्योंकि प्रभु स्वयं अपार प्रेममय हैं। —राल्फ वाल्डो ट्राइन

❀ ❀ ❀ ❀

जिसके हृदयमें प्रेम पूर्ण होता है, प्रेमके देवता स्वयं ईश्वर ही उसका योगक्षेम चलाया करते हैं। —रबिया

❀ ❀ ❀ ❀

जगत्‌में छोटे ही सुखी हैं, ग्रहण चन्द्रमा और सूर्यको ही लगता है, तारे तो आकाशमें सुखसे रहते हैं, इसीलिये साधु दीनता चाहते हैं और दुष्ट मान चाहते हैं। —सहजोबाई

❀ ❀ ❀ ❀

जिनके हृदयमें दया और धर्म बसते हैं, जो अमृत-वाणी बोलते हैं और जिनके नेत्र नम्रतावश नीचे रहते हैं, असलमें वे ही ऊँचे हैं। —मलूकदास

❀ ❀ ❀ ❀

हे मेरी आत्माके प्रियतम स्वामी! मैं तुमको ही चाहूँगी, मुझे और कोई भी वस्तु प्यारी न लगने दो, जो वस्तुएँ मुझे तुमसे दूर हटाती हों, वे मुझे जहर-सी लगने लगें। एकमात्र तुम्हारी इच्छा ही मेरे लिये मधुर हो,—तुम्हारी इच्छा ही मेरी इच्छा बन जाय! —एलिजाबेथ

अनीश्वरवादका संग्राम

(लेखक—श्रीसदानन्दजी सम्पादक 'मेसेज')

बड़े ही दुःखका विषय है कि कतिपय नवयुवक नेताओंद्वारा प्रारम्भ किये हुए अनीश्वरवादके संग्रामकी ओर देशका ध्यान अभी गम्भीरताके साथ आकर्षित नहीं हुआ है। दूसरी ओर वह आन्दोलन हमारे नवयुवकोंके हृदयपर अपना दृढ़ अधिकार जमाकर उन्हें पथभ्रष्ट कर रहा है, जिससे भारतकी भावी आशालताओंका नैतिक पतन होता जा रहा है। परमात्मा जानें, इसका अन्त कहांपर होगा!

यह आन्दोलन केवल हिन्दू-जातिके लिये ही नहीं, प्रत्युत सभी जाति और सभी धर्मोंके अनुयायियोंके लिये हानिकर है। हमारी विनम्र सम्मति तो यह है कि इस दुष्ट आन्दोलनसे देशको बचानेके लिये सबको मिलकर शीघ्र ही एक महान् प्रयत्न करना चाहिये। यदि आज इसकी उपेक्षा की गयी तो आगे चलकर हमें बहुत पश्चात्ताप करना पड़ेगा, और तब, सम्भवतः प्रयत्नका अवसर भी हाथसे निकल जायगा।

धर्म ही भारतकी आत्मा है। यही हमारे पूर्वजोंकी दी हुई महान् पैत्रिक सम्पत्ति है। धर्म ही हमारा जीवन है और धर्म ही हमारे प्राण हैं। धर्महीन भारत तो श्मशान बन जायगा। हमारा सब कुछ जाता रहा, अब भी जीवन-ज्योति जगानेके लिये एक धर्म बच रहा है, कहीं इस धर्मका विनाश हो गया तो फिर हम सदाके लिये अन्धकारमें प्रवेश कर जायंगे। अतएव इस अभागे देशके प्रत्येक शुभ-चिन्तकका यह कर्तव्य है कि अपनी समस्त शक्ति लगाकर प्रत्येक सम्भव साधनसे इस धर्मकी रक्षा करे। बस, इस समय यही हमारा सर्वप्रधान कर्तव्य है।

इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि राजनैतिक क्षेत्रका त्याग कर दिया जाय। राजनीति तो हमारे धर्मका केवल एक अङ्ग है, वह पार्थिव वैभव प्राप्त करनेका साधन है, परन्तु वह हमारा वास्तविक ध्येय और साध्य कदापि नहीं है। हमारा सर्वोत्तम वैभव तो धर्ममें है, इस धर्मका जो आध्यात्मिक भाग है, उसीसे हमें मोक्षकी प्राप्ति होती है। यथार्थ राजनीति तो केवल आध्यात्मिक बलपर ही निर्भर है। सम्भव है कि धर्मसे विच्छिन्न राजनीतिसे पार्थिव बल और सुख प्राप्त हो जायं परन्तु उससे अनन्त आनन्दकी प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। राजनीतिसे धर्मको पृथक् करनेकी अपेक्षा हमें उचित है कि धर्मकी सुदृढ़ भित्तिपर ही राजनीतिका निर्माण करें, क्योंकि धर्म ही राजनीतिकी शक्ति है और धर्म ही राष्ट्रको ऐक्यसूत्रमें बांधनेका प्रथम साधन है।

जिन देशोंने धर्म और ईश्वरका त्याग कर दिया, वे उसका भयानक दण्ड भी भोग रहे हैं। वहांके निवासियोंकी दशाका पूरा अध्ययन करनेसे यह पता चलता है कि वे वास्तवमें सुखी नहीं हैं। जर्मनी, जो किसी समय संसारमें सबसे अधिक शक्तिशाली देश समझा जाता था, आज एक शृङ्खलाबद्ध सिंहके सदृश अपनेसे कहीं हीन प्रतिद्वन्द्वियोंके चरणोंमें नतमस्तक होकर पड़ा हुआ है। राक्षसी शक्तिशाली रूस, जिसके प्रबल प्रतापसे सूतिका-गृहके नव-जात शिशु तक आतंकसे कांप उठते थे, आज धर्मका उच्छेद करने और मार्क्स सदृश मनुष्योंके

आदेशका अनुसरण करनेसे उपद्रव और अशान्तिका केन्द्र बना हुआ है, और अब इस सिद्धान्तके प्रचारक वहांके अनेक नेता अपनी महान् जड़तापर मन-ही-मन पश्चात्ताप कर रहे हैं। आज भारतवर्षकी क्या अवस्था है ? सारी शक्ति लगाकर जिस दलकी स्थापना की गयी थी, जिस सुसंगठित दलके ऊपर किसी समय देशको बड़ी भारी आशा थी, यहांतक कि विचक्षण राजनीतिज्ञ महात्मा गांधी सदृश पुरुषने जिसके सम्मुख बिना किसी शर्तके आत्मसमर्पण कर दिया था, आज उसकी जीवन-तरणी मतविभिन्नता और अन्तःकलहके महान् सागरमें पड़ी हुई भीषण तरङ्गाघातोंसे टकराकर चूर होना चाहती है। इसका कारण क्या है ? कारण जाननेके लिये अधिक सूक्ष्म-बुद्धिकी आवश्यकता नहीं, ईश्वर और धर्ममें श्रद्धाका अभाव, अथवा ईश्वरके प्रति घृणा और उसके अस्तित्वमें अविश्वास ही इसका प्रधान कारण है। लोग इसे 'राष्ट्रीयता' कहते हैं; अवश्य ही यह प्रतिहिंसायुक्त राष्ट्रीयता है!

साधु वास्वानी कहते हैं कि "जब मैं ईश्वरका अस्वीकार करनेवाली राष्ट्रीयता और आभ्यन्तरिक जीवनके प्रति नवीन सन्ततियोंके हृदयमें अविश्वास-का वेग बढ़ता हुआ देखता हूं तो मैं घबरा उठता हूं। 'ईश्वरमें श्रद्धा' ही भारतवासियोंकी संस्कृतिका केन्द्र और उनका मूलाधार है। भारत और समस्त संसारके लिये एक ही सन्देश है, वह है—आध्यात्मिक धर्म।"

धर्म न तो साम्प्रदायिकतामें है, न वह अन्ध-विश्वास तथा धर्मोन्मत्ततामें है और न वह जाति और दुराग्रहोंकी संकुचित सीमाके अन्दर ही है। वह तो एक विशाल मानव-संस्कृति है जो ईश्वरके साथ मनुष्यका और मनुष्यके साथ मनुष्यका अभेदरूपसे सम्मेलन करा देती है। वह किसी देश, जाति या व्यक्तिविशेषमें सीमित नहीं है। वह समस्त संसारके लिये है। हम सन्तानोंकी मुक्तिके लिये परमपिता प्रभुका प्रदान किया हुआ एक पुरस्कार है। धर्म ही तो मानव-जातिका सर्वोच्च अधिकार है जिसने उसको विश्वके समस्त प्राणियोंसे श्रेष्ठ बना रक्खा है। अतएव धर्मका ध्वंस करना,—ईश्वरका त्याग करना—विपत्ति और विनाशको निमन्त्रण देकर बुलाना है!

बड़े परितापका विषय है कि हमारे नेतागण, जिन्हें परमात्माने हमें सत्परामर्शद्वारा पथ-प्रदर्शन करनेके लिये नियुक्त किया है, राजनीतिमें इतने निमग्न और तल्लीन हो रहे हैं—इतने उन्मत्त हो रहे हैं कि उन्हें इस बातको सोचनेका अवसर ही नहीं मिलता कि हमारे इन पथच्युत युवक नेताओंके अनीश्वरवादी आन्दोलन और विनाशक उपदेशोंसे देशमें कैसा अनर्थ और संकट आनेवाला है।

इस आन्दोलनका कुप्रभाव हमारी बाल-सन्तति-के मस्तिष्कमें कहां तक प्रवेश कर गया है, हमारे बालकोंकी कल्पना-कुञ्जोंपर इसने अपना कैसा अधिकार जमा लिया है, इसका पता हमारे एक सम्माननीय मित्रद्वारा उल्लिखित घटनासे भलीभांति लग सकता है। कटकमें एक वकील हैं। एक दिनकी बात है, उनके दशवर्षीय पुत्रने कहा कि 'पिताजी ! मैं आपकी बातोंको अब और अधिक नहीं सुनना चाहता, आज मेरे मास्टर साहबने कहा है कि तुम्हें अपने माता-पिताकी बातें सुनने-की—उनकी आज्ञा माननेकी—कोई आवश्यकता नहीं।' पिताने पूछा, 'अच्छा, अब तुम किसकी बात सुनोगे?' लड़केने उत्तर दिया—'मैं अपने अन्तःकरणकी आवाज सुनूंगा।' पिताने पूछा 'तुम्हारे अन्तःकरण-की आवाज क्या है?' बालकने कुछ हिचकिचाहटके बाद जवाब दिया—'जिस बातको मैं ठीक समझूंगा जिससे मुझे प्रसन्नता होगी, मैं वही करूंगा।' अब विचारिये, बेचारे पिताको कैसी मुंहकी खानी पड़ी होगी। पता नहीं, आज अपने अपरिपक्व मस्तिष्कवाले बालकोंद्वारा कितने पिताओंको ऐसे प्रत्यादेश सुनने पड़ते होंगे। अवश्य ही इस समय इनकी संख्या बहुत बढ़ गयी है।

हमारे नेतागण और देश-कल्याण-कामी सज्जन कबतक इस महान् घातक अनीश्वरवादके आन्दोलनकी उपेक्षाकर इधर दृष्टिपात नहीं करेंगे ? वे कबतक इस विषयकी ओरसे आंख मूँदे पड़े रहेंगे। भारत-सन्तान ! जागो, उठो, अब व्यर्थ खोने, प्रतीक्षा करने और सोचनेके लिय समय नहीं रह गया है, अश्रुतपूर्व भयानक विपत्ति-समूह हमारे द्वारतक आ पहुंचा है। अब या तो इससे भारतवर्षको बचा लो अथवा तो सदाके लिये इसे विनष्ट हो जाने दो !

अभी हमारे लिये निराश होनेका कोई कारण नहीं है। उस अनन्त दयासागर करुणामूर्ति परमपिताकी असीम दयाका हमें पूरा भरोसा है। भगवान् श्रीकृष्णने क्या हमें यह दिव्य सन्देश नहीं दिया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
(गीता ४।७)

हे भारत ! जब जब धर्मकी हानि और अधर्मका अभ्युत्थान होता है, तब तब मैं (भगवान, धर्मकी रक्षाके लिये) अवतार धारण करता हूं।

इस सन्देशमें, इस आशा और पवित्रताके सन्देशमें हमारा दृढ़ विश्वास है, यद्यपि स्थिति हमारे सर्वथा विपरीत और निराशाजनक है, तथापि यह निश्चय है कि हमें ईश्वरीय-सहायता अवश्य प्राप्त होगी। पौराणिक कालसे, राजा वेणुके ही समयसे, जिसने धर्मका विध्वंस करना ठान लिया था, भारतवर्षको अनेक बार नास्तिकवादके आक्रमणका सामना करना पड़ा है, किन्तु प्रत्येक अवसरपर इसकी रक्षा हुई है और अब पुनः इसकी रक्षा होगी।

ईश्वर हमारी सहायता करें, अपने भक्त-भय-भञ्जन हस्तकमलोंसे हमें पथ प्रदर्शित करें, वह रहस्यपूर्ण शक्ति हमें बल प्रदान करे और हमारी क्रियाओंमें उसकी चेतनता अवतीर्ण हो ! *

आलम्बन

१—इस जगतीमें प्रत्येक वस्तु किसी न किसीपर अवलम्बित है। पत्रावलिका मृदु मर्मर-स्वर मधुर समीरके हलके-से झोकेका अपेक्षित है। श्याम मेघोंकी रिमझिम वर्षा ग्रीष्मकी सूर्य-किरणोंपर अवलम्बित है।

२—दीपकका प्रोज्ज्वल, शुभ्र प्रकाश सनेहके सहयोगकी अपेक्षा करता है। बाँसुरीका मनोमुग्धकर, अमृतमय राग उसके सुरीले छिद्रोंका आलम्बन रखता है।

३—लता-मण्डपकी प्रफुल्ल हरीतिमा रिमझिम वर्षाके अमृत-बिन्दुओंकी अपेक्षित है। कलाधरकी शीतल, श्वेत चान्द्रिका सूर्य-रश्मियोंपर अवलम्बित है।

४—रङ्गी मयूरका मत्त नाच जलदागमनका अपेक्षित है। सुरीली कोयलकी मादक कूक वसन्तागमनपर अवलम्बित है। और, इन्हीं-सब-सी, मेरे जीवनकी कविता तेरे प्रेमके विविध परिवर्तनोंपर आलम्बित है।

—बालकृष्ण बलदुवा

* यह लेख 'मेसेज' के विद्वान् सम्पादक श्रीसदानन्दजीके अंगरेजी लेखका अनुवाद है। 'मेसेज' अंगरेजी मासिकपत्र आनन्दाश्रम, गोरखपुरसे निकलता है। इसका वार्षिक मूल्य केवल १) है। प्रत्येक ईश्वरवादी अंगरेजी जाननेवाले स्त्री-पुरुषोंको इस मासिकपत्रका अध्ययन करना उचित है। इसमें सरल और सरस भाषामें ईश्वरवाद और सार्वभौम सनातन-धर्मका प्रतिपादन किया जाता है। —सम्पादक

दीक्षा-ग्रहण *

लोगोंका शोक यदि थोड़ा बहुत शिथिल हो भी जाता तो निमाईका हाल देखनेसे वह फिर सौगुना उमड़ पड़ता था। निमाई कभी तो आनन्दसे दोनों हाथ उठाकर तरह तरहसे नृत्य करने लग जाते मानों आनन्द उनके हृदयमें समाता ही नहीं है, और कभी वृन्दावनकी ओर देख "आया, आया" कहकर (मानों कोई उन्हें पुकार रहा है और वे उसको उत्तर दे रहे हैं) उसी ओर जानेकी चेष्टा करने लगते और भक्त लोग उन्हें सँभालने लगते थे। इसी बीच निमाईने सचेत होकर भारतीजीसे पूछा— 'अब कितना विलम्ब है ?'

कटवामें क्रन्दनकी ध्वनि होने लगी। कोई अपने आप बैठा बैठा रो रहा है और कोई वहाँसे ज़रा अन्तरपर जाकर रो रहा है। कोई ज़ोर ज़ोरसे रो रहा है और कोई चुपचाप आँसू बहा रहा है। कोई इतना अधीर हो गया है कि रो भी नहीं सकता, पर छाती पीट-पीटकर ज़मीनमें लोट रहा है। कोई 'क्या हुआ, क्या हुआ' कहकर दूसरोंसे सान्त्वना प्राप्त करनेके लिये सहायता माँग रहे हैं, किन्तु कोई दे नहीं सकता। कोई कोई माननीय लोगोंके पैर पकड़कर कहता है 'तुम्हीं जाकर रोको, कभी संन्यासी न होने दो। तुम अवश्य ही रोक सकोगे।' किसी किसी स्त्रीकी दशा उन्मादिनी सरीखी हो गयी। वह बाल बिखराये हुए, लोगोंकी भीड़को ठेलकर, निमाईके आगे कटी जड़के पेड़की तरह गिर पड़ी और कहने लगी—'बेटा, तुम संन्यास मत लो।' अन्य स्त्रियाँ और लोगोंकी खुशामदकर कहने लगीं— 'अरे तुम खड़े खड़े क्या देखते हो ? जल्दी जाकर इनकी माताको ख़बर दो। वह आदमी भेजकर इन्हें घर बँधवा बुलावें।'

किसीको तो वाह्यज्ञान न रहा और कोई अचेत हो गयी। कोई एकदम पागल हो गयी। कोई प्रलाप करने लगी। कोई अपने आपको शची समझकर बोली— 'अरे निमाई, गोदमें आ जा'। यह कहकर वह उन्हें गोदमें लेनेको आगे बढ़ी। कोई अपनेको विष्णुप्रिया समझ उसी भावसे अपना सिर पीटने लगी। कोई कोई पुरुष अपने आपको निमाई समझ, अधिरूढ़भावसे, निमाईकी तरह नृत्य करने लगे।

इस बीच बहुतसे मृदङ्ग और करनाल आदि बाजे आ गये। अब सङ्कीर्तनके अनेक दल हो गये। वे लोग इधर उधर बड़े जोरसे "हरि हरये नमः" गाने और हरिबोल कहकर नृत्य करने लगे।

भक्तोंने सोचा कि प्रभुने अभी संन्यास नहीं लिया है तब तो यह हाल है, उनके संन्यास ले लेनेपर न जाने क्या होगा।

श्रीगौराङ्गने सवेरे ही गम्भीर स्वरसे

* निमाई संन्यास ग्रहण करनेके लिये केशवभारतीजीके पास कटवा जा पहुंचे। पीछेसे श्रीनित्यानन्द, मुकुन्द, निमाईके मौसे चन्द्रशेखर आदि आये। पहले भारतीने उन्हें दीक्षा देना स्वीकार नहीं किया, परन्तु निमाईके प्रभावसे उन्हें स्वीकार करना पड़ा। सुन्दर नवयुवक निमाईको संन्यासी होते देखकर चारों ओर सहस्रों नर-नारी रो रहे हैं, सारा कटवा मानो शोकसागरमें डूबा जा रहा है।

श्रीअमियनिमाई-चरितके द्वितीय भागसे श्रीलक्ष्मीप्रसादजी पाण्डेय द्वारा अनुवादित।

चन्द्रशेखर आचार्यसे कहा— 'पिताजी, इस कार्यके जो नियम हैं वे सब आप कर दें। मैंने आपको अपना प्रतिनिधि किया।'

यह आज्ञा सुननेसे चन्द्रशेखरको कैसा बुरा लगा होगा, उसका अनुभव किया जा सकता है। वे प्रभुके पितृस्थानीय हैं। शची समझती हैं कि मेरा बावला लड़का बहुत कुछ दूसरोंके परामर्शसे बहक जाता है। निमाई उन लोगोंका यदि कोई अपना होता तो वे लोग उसे हर्गिज़ न बहकाते। चन्द्रशेखर घरके आदमी हैं, वे अवश्य निमाईको बहक जानेके लिये उत्साहित न करेंगे। यही सोच समझकर उन्होंने चन्द्रशेखरको अपने पुत्रके लौटा लानेके लिये भेजा था। अब उन्हीं चन्द्रशेखरसे प्रभुने कहा 'तुम हमारे प्रतिनिधि बनकर हमारे संन्यास धारण करनेमें सहायता करो।' चन्द्रशेखरने सोचा कि इस समय प्रभुका जैसा रंग ढंग है उसको देखते हुए कहना पड़ता है कि यदि यहांपर शची होती तो प्रभु उन्हीको आज्ञा देते कि 'माँ, तुम संन्यासकी सब सामग्री एकत्र कर दो।' यदि यह आज्ञा हमारे बदले किसी और व्यक्तिको दी जाती तो अच्छा होता। शची माता और बहूरानी-से जाकर हम क्या कहेंगे? यही न कहना होगा कि हम अपने हाथसे तुम्हारे दुर्लभ धनको, घर न लाकर, पानीमें बहा आये? प्रभो, तुम सदासे बड़े निर्दय हो। मैं करूं यह काम और तुम करो मज़ेमें नृत्य! जो हो, मैं अब नदिया न जाऊँगा— गङ्गामें कूद पड़ूँगा।

चन्द्रशेखर मनमें कुछ भी सोचा-समझा करें, किन्तु मुँहसे कुछ कहनेका साहस उन्हें न हुआ। केवल 'जो आज्ञा' कहकर कार्यमें प्रवृत्त हो गये। किन्तु उन्हें कुछ अधिक काम नहीं करना पड़ा। संन्यासके लिये आवश्यक सभी सामान, खबर पाते ही, लोग अपने आप लाने लगे। जब सती-दाह होता था तब लोगबाग रोते-पीटते हुए चिता बनानेके लिये लकड़ियां ढोकर लाते थे। इसी प्रकार लोग रोते हुए वहांपर दही, मिठाई, वस्त्र, फूल और चन्दन आदि सामग्री ला कर उपस्थित करने लगे। जहां अनुष्ठान होना था, उस स्थानमें सामग्रीका ढेर लग गया। चन्द्रशेखर स्नान करके स्वयं कुश-पूजा करने लगे।

अब नाई आया। नाई क्योंकर आया, यह श्रीभगवान् ही जानें। वहांपर आनेकी उसे इच्छा ही न थी। कटवामें जितने नाई थे उनमें वह इज्ज़तदार (चौधरी) था। इसी कारण यह बुलाया गया और वह आ भी गया। नापितके आनेके लिये सबने रास्ता छोड़ दिया, क्योंकि संन्यासके लिये प्रधान सहायक नापित ही होता है। उस समय वह नापित भी एक प्रधान नायक था। उसके मनमें मानों कुछ भी दुःख न था। वह मज़ेमें चला आया और इसी प्रकार बेखटके प्रभुके आगे आकर पूछने लगा—'महाराज, क्या आज्ञा है?'

प्रभुने उससे कहा—'हे नापित, वृन्दावन जानेके लिये मुझे मुक्त कर दे। तेरे ऊपर दयामय कृष्ण कृपा करेंगे।' नापितने कहा—'महाराज, इस बस्तीमें नाइयोंकी कमी नहीं है। आप चाहे जिसे बुला सकते हैं। मुझसे आपका यह काम न हो सकेगा।'

प्रभुने उत्तर दिया—'हरिदास, बैठ जाओ। अपने प्राणनाथ श्रीकृष्णको ढूँढ़नेके लिये मैं वृन्दावन जाऊंगा। मेरे इन केशोंने मुझे बाँध रक्खा है। इस बन्धनकी दशामें मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। तुम मुझे मुक्त कर दो, तुमपर श्रीकृष्ण कृपा करेंगे।'

नाईने कहा—'महाराज, तुम तो मुक्त कर देनेके लिये कहते हो और मैंने उत्तर दिया है कि बस्तीमें पचासों नाई मौजूद हैं, उनमेंसे किसीको बुलवा लो। मुझसे यह काम न हो सकेगा।'

प्रभुने कहा—'नापित, तुम मेरा बन्धन काट दो, इससे तुम्हें सौभाग्य प्राप्त होगा, तुम्हारा

वंश बढ़ेगा और तुम्हें सब प्रकारका सुख मिलेगा। अन्तमें तुम्हें वैकुण्ठमें रहनेको स्थान मिलेगा।'

नाईने कहा—'मैं सौभाग्य नहीं चाहता, जो कुछ मुझे प्राप्त है वह भी न रहे तो कुछ परवा नहीं। अब तुम मुझे वैकुण्ठका लोभ दिखाते हो? सो उसकी भी मुझे चाह नहीं। मेरे साथ मेरा वंश घोर नरकमें गिरे। महाराज, मुझसे तुम्हारा यह काम न होगा।'*

अपनी जननी, गृहिणी और भक्तोंसे विदा माँगकर तथा भारतीको लाचार करके अन्तमें श्रीभगवान् एक क्षुद्र नापितसे हारकर बैठ रहे। फिर उन्होंने ऊपरको मुँह उठाकर कहा—'हरिदास, मेरा सिर मूँडनेमें तुम्हें कौनसी अड़चन है, कौनसा एतराज़ है? किस अपराधके कारण तुम मुझे ऐसा दुःख दे रहे हो?'

नापितने भी उसी प्रकार ऊपरको मुँह करके कहा—'आपको क्या संसारभरमें और कोई नाई नहीं मिला? मैंने ही भला आपका क्या बिगाड़ा है जो इतने नाइयोंके रहते हुए भी आप मुझीसे यह काम कराना चाहते हैं? महाराज, मैं जैसे लक्षण देख रहा हूँ उससे प्रतीत होता है कि आप संन्यास लिये बिना न रहेंगे। अब आप एक काम कीजिये। यदि आपका जी नहीं मानता तो संन्यासी हो जाइये, पर सिर न मुँड़ाइये।'

प्रभुने मुसकुराकर कहा—'हरिदास, बिना मुण्डन कराये काम कैसे बनेगा? सिर मुँड़ाये बिना संन्यासी होनेका नियम नहीं है।'

नाईने कहा—'तो फिर आपका संन्यास हो चुका। मैं तो आपका सिर मूँड़ ही नहीं सकता, और शायद कोई और नाई भी आपके सिरको न मूँड़ सकेगा। मेरा हृदय सदासे बड़ा कठोर रहा है, फिर भी मैं आपका सिर मूँड़ नहीं सकता, तब और कोई यह काम कैसे कर सकेगा? महाराज, मैं आपको अपने मनकी बात सुनाता हूँ। मैंने बहुतोंके सिर मूँड़े हैं किन्तु तुम्हारे जैसे बढ़िया केश हैं ऐसे तो मैंने अपने बापके समयमें भी किसीके नहीं देखे। इन सुन्दर घुँघराले केशोंपर मैं किस तरह छुरा चलाऊँगा? मुझसे यह न होगा। आमदनीकी आशासे तुम्हारा सिर मूँड़ते समय मेरा हाथ काँपने लगेगा, इससे तुम्हारे सिरमें छुरा लग जायगा। ऐसा होनेपर मुझे लाभ होना तो अलग रहा, मेरा सर्वनाश हो जायगा।'

अब प्रभुने बहुत ही करुण-स्वरमें विनती करके नापितसे कहा—'हरिदास, विलम्ब होनेके कारण मेरा हृदय विदीर्ण हो गया। तुम कृष्णके भक्त हो, मैं तुम्हारे उन्हीं ठाकुरजीकी खोजमें जा रहा हूँ। मेरा बन्धन काट दो, मुझे मुक्त कर दो। हरिदास, मैं तुमसे विनती करता हूँ।'

नापित टकटकी लगाकर निमाईके मुँहकी ओर देखने लगा और फिर बोला—'मैंने समझ लिया! मैं सोच रहा था कि तुम्हारे लिये मेरे प्राण इस तरह क्यों रो रहे हैं? तुम वही सबके नाथ, सबके स्वामी श्रीकृष्ण हो! मैं मूर्ख हूँ, इसलिये तुम मुझे धोखा दे रहे हो। महाराज, मैं बहुत ही हीन,

* मेरे भाग्यका भले ही नाश हो जाय, मैं प्रभुके माथेपर हाथ किस प्रकार रक्खूँगा। यदि कोढ़ होनेपर मेरे अङ्ग गल जायं और मेरा वंश घोर नरकमें गिरे तो भी मैं प्रभुका मुण्डन न करूंगा। (चैतन्यमङ्गल)। प्रस्तुत ग्रन्थमें चैतन्यमङ्गलके अनेक अंश उद्धृत हैं जोकि छपी हुई पुस्तकमें नहीं हैं। छापेखानेमें छपी हुई चैतन्यमङ्गलकी किसी भी प्रतिमें प्रभुके साथ नापितकी बातचीतका वर्णन नहीं है। काँकड़ा-हुसेनपुर निवासी श्रीप्राणवल्लभ चक्रवर्ती इस समयसे कुछ पहले चैतन्यमङ्गल ग्रन्थके गीतोंके प्रधान गायक थे। पहलेपहल उन्हींके घर लोचन ठाकुरके पद सुरोंमें बैठाये गये थे। वे वंश-परम्परासे उक्त चैतन्यमङ्गलके गीत गाया करते थे। वे कहा करते थे कि हमारे घर लोचन ठाकुरके हाथकी लिखी चैतन्यमङ्गलकी प्रति है। उसकी एक नक़ल उन्होंने इस ग्रन्थके मूल लेखकको दी थी। उसी पुस्तकके कुछ अवतरण मूल लेखकने अपने ग्रन्थमें उद्धृत किये हैं।

बिलकुल नीच जाति हूं, तुम क्या मेरा वध करनेके लिये इस बार धराधाममें पधारे हो ? महाराज, और किसीको बुला लीजिये।'

प्रभुने देखा कि बड़ी विपत्ति है, तब कुछ तो विनती और कुछ आज्ञाके भावमें कहा—'हरिदास, तुम मेरे बन्धनको काट दो, संन्यासका शुभ मुहूर्त आ रहा है, मैं अब और विलम्ब नहीं कर सकता। तुम मुझको बन्धनकी दशामें छोड़कर जो दुःख दे रहे हो उसका एक बार खयाल तो करो। मेरा उपकार करो, मैं तुमसे विनती कर रहा हूं।'

नापितने देरतक प्रभुके साथ युद्ध किया। प्रभुके साथ जब उसकी बातचीत छिड़ी तब भीड़में सन्नाटा छा गया। सभी लोग चित्तको एकाग्र करके अबोध भक्तका चक्रधारी श्रीभगवान्‌के साथ युद्ध देखने लगे। नापितको पहले हमलेमें विजयी होते देख सभी उसको साधुवाद देने लगे। अन्तमें जब प्रभुकी पेश नहीं आयी तब उन्होंने प्रभुत्वकी सहायता लेकर नापितको आज्ञा दी। तब कहीं उसने लाचार होकर पराजय स्वीकार किया। नापितने प्रभुसे कहा—'यदि मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँ तो मेरा हृदय फट जायगा। फिर तुम ठहरे भगवान्, यदि तुम्हारी आज्ञाका पालन न करूं तो भी नहीं बनता। महाराज, अब आप एक और विचार करें। हमारा पेशा ऐसा है कि हमें सात जातके पैरोंके नाखून छीलने पड़ते हैं। भला आपके माथेपर मैं अपने जिन हाथोंको रक्खूंगा उन्हींसे मैं और लोगोंके पैर कैसे छुऊंगा ? यदि मैं ऐसा करूंगा तो अपना और जिसके पैर पकड़ूंगा उसका भी सर्वनाश कर दूंगा। महाराज, मैं आपका नापित होनेसे संसारभरमें धन्य हो जाऊंगा, फिर भला मैं और किसके यहां नाईका पेशा करने जाऊंगा ?'

प्रभुने उत्तर दिया—'हरिदास, तुम अपना पेशा छोड़कर मधुमोदकका व्यवसाय करने लगो। तुम कृपा करके हमको मुक्त कर दो, श्रीकृष्ण तुम पर कृपा करेंगे।'

अब नाऊठाकुर नीचे सिर झुकाकर आँसू बहाने लगा। उसके परास्त होनेपर और लोगोंकी रही सही आशा भी जाती रही। प्रभुका सिर मूँड़नेमें नाईके आपत्ति करनेपर लोगोंको जो थोड़ी बहुत आशा हो गयी थी सो अनुचित थी। क्योंकि जिसने शची और विष्णुप्रियासे सम्मति प्राप्त कर ली उसके लिये बेचारे नापितको राज़ी कर लेना कौन बड़ी बात थी ? किन्तु मनुष्यका धर्म ही यह है, जो नास्तिक हैं– कुछ भी नहीं मानते– वे भी विपत्ति आ पड़नेपर शान्ति-स्वस्त्ययन, पूजापाठ अथवा नीच व्यक्तिके द्वारा दैवक्रिया (झाड़ फूँक) करवाया करते हैं। जब नाईने मुण्डन कर देना स्वीकार कर लिया, तब सभीने समझ लिया कि सर्वनाशका समय उपस्थित है। निमाई अब घर-गृहस्थीसे अलग हुए। निमाई चले, अब उन्हें घर-गृहस्थीके बीच फँसा रखनेका कोई उपाय नहीं। बस, कानमें भारतीके मन्त्र देनेभरकी देरी है। वही एक काम बाक़ी रह गया है। अब यदि भारती संन्यासी निमाईको मन्त्र न दे तो उन्हें एक प्रकारसे घर-गृहस्थीके बीच फाँस लिया जा सकता है। अतएव ऐसा किया जाय जिससे भारती मन्त्र ही न दे सकें। यही सोच विचारकर लोगोंने भारतीको घेर लिया।

समझदार लोगोंने कहा—'भारती महाराज, तुम ऐसे बालकको संन्यास देकर अशास्त्रीय काम मत करना। पचास वर्षकी उम्रसे कम अवस्थावालोंको संन्यास नहीं दिया जाता। यदि तुम ऐसा अशास्त्रीय काम करोगे तो केवल नारीवधके पातक-के भागी होगे क्योंकि इनकी वृद्धा जननी है और नवयुवती गृहिणी है। फिर उसके कोई बाल-बच्चा भी तो नहीं हुआ।'

भारतीने उत्तर दिया— 'शास्त्रका तात्पर्य यह है कि पचास वर्षकी उम्र होनेसे पहले रागकी

निवृत्ति नहीं होती, इसीलिये निर्दिष्ट अवस्थासे प्रथम संन्यास देनेकी मनाही है। किन्तु ये तो मनुष्य नहीं हैं, यह आप लोग प्रत्यक्ष देख ही रहे हैं। इसके सिवा ये अपनी जननीकी और गृहिणीकी सम्मति लेकर संन्यासी होने आये हैं।' विज्ञ लोगोंने भारतीके इस उत्तरसे ज़रा चिढ़कर कहा—'स्वामीजी, आप देखते नहीं हैं कि असंख्य नर-नारी दुःख और शोकसे अधीर हो रहे हैं? आपके ज़रा-सी कृपा करते ही इन लोगोंके दुःखका फन्दा कट जायेगा।'

भारती अपने मनमें सोचने लगे कि हमपर वृथा आक्षेप हो रहा है; हम तो निरपराध हैं। हाँ, लोगोंके सामने इस बातको प्रमाणित करनेकी हमें इच्छा नहीं होती। उन्होंने ज़रा चिढ़कर विज्ञजनोंकी ओर देखा और कहा—'मैं संन्यासी हूं, मुझमें कुछ दयामाया नहीं होनी चाहिये। ये जो हैं सो हैं, ये बालक हैं, इनका हृदय मक्खनकी तरह मुलायम है। इनके लिये तुम लोग शोकाकुल हो रहे हो। मेरी ख़ुशामद करना छोड़, तुम लोग क्यों नहीं इनको समझा-बुझाकर लौटा ले जाते?'

समझदार आदमियोंने ज़रा-सा बिगड़कर कहा—'महाराज, यह बात आप अनुचित कहते हैं, इन्हें क्या इस समय ज्ञान है? ये तो प्रेममें उन्मत्त हैं शायद हम लोगोंकी बात इनके कानोंतक पहुंच भी न सके। आपको तो ऐसी कोई शिकायत इस समय है नहीं, इसलिये आप क्यों ऐसा गर्हित काम करते हैं?'

अब बलवान् युवकलोग शान्त न रह सके। उन्होंने बड़े-बूढ़ोंको लक्ष्य करके कहा— 'आप लोग ज़रा जगह कर दें। संन्यासी बड़ा कठोर है, इसकी ख़ुशामद या प्रार्थना करनेसे काम सिद्ध न होगा। जैसा रोग है उसके अनुरूप ही हम लोग दवा करते हैं।' यह कहकर वे लोग क्रुद्ध हुए और इस बातको भूल गये कि जिस प्रकार स्त्रियां अवध्य हैं उसी प्रकार संन्यासीपर भी हाथ उठाना मना है। उन्होंने लाठियां ले लेकर भारतीजीको घेर लिया। अब उन लोगोंने गर्जन-तर्जन करना आरम्भ कर दिया। वे गालियां देकर ही शान्त नहीं हुए बल्कि मारपीट करनेपर भी उतारू हो गये। किसी किसीने यह भी कहा कि 'संन्यासीजीके हाथ एक अच्छा शिकार आ फँसा है, इसीसे बेचारे लोभको सँभाल नहीं सकते।' किसीने कहा— 'तुम्हारे प्राण ले लिये जायं तो कुछ पाप नहीं है। तुम संन्यासी नहीं, तुम तो हिंस्र पशु हो।' किसीने कहा—'देरकी क्या ज़रूरत? इसे डराना धमकाना बेकार है। देखते नहीं कि यह कैसा बेधड़क बैठा है। चतुर संन्यासी यह समझे बैठा है कि ये केवल बंदरघुड़की दिखा रहे हैं। सब लोग मिलकर इसे पकड़ लो और कन्धोंपर लादकर ले चलो। इसके बाद नावपर चढ़ाकर गङ्गाके उस पार छोड़ आओ।'

इसपर भारती उठकर खड़े हो गये और बोले–'तुम लोग यदि मेरा वध कर सको तो मेरे साथ मित्रका-सा बर्ताव हो। जिनको तुम यहांपर देख रहे हो ये साक्षात् पूर्णब्रह्म सनातन हैं। इन्हें मैं रोक नहीं सका। संसारमें और भी कोई ऐसा नहीं जो इन्हें रोक सके। यदि किसीमें रोकनेका सामर्थ्य होता तो यह जो उनके पितृस्थानीय मौसा आचार्यरत्न बैठे हैं, वे क्या रोक न सकते? मैं जो लाचार होकर गोलोकके अधिकारीको कौपीन धारण कराकर भिक्षुक बनाये देता हूं, सो इसका दुःख मुझे चिरकालतक सताता रहेगा। इस कलङ्कसे मैं किसी भी तरह न बच सकूंगा। संसारभरके भक्त मुझे कोसेंगे-शाप देंगे। अतएव, तुम लोग दया करके मेरे प्राण ले लो और मेरी यन्त्रणा मेट दो।' यह कहकर संन्यासीजी फूट फूटकर रोने लगे। उन्होंने बहुत साधन करके जिस ज्ञानको प्राप्त किया था उसका लेश भी उस समय उनमें न रहा। प्रभुको सम्बोधन करके उन्होंने कहा– 'वत्स निमाई, तुम्हारे मनमें क्या यही था?' अब सबकी

समझमें आ गया कि भारतीजी निरपराध हैं।

इधर व्याकुल नापितसे श्रीगौराङ्गने अत्यन्त विनती करके कातरस्वरमें कहा—'हरिदास, शुभ मुहूर्त अत्यन्त समीप आ गया है। संसारके बन्धनसे मुझे मुक्त कर दो, मैं वृन्दावनको चला जाऊँ।' अब नापितको बाह्यज्ञान हुआ, इससे वह प्रभुके आगे बैठा। नापित काँपने लगा और प्रभु उसे ढाढ़स बँधाने लगे।

गौरके भक्तलोग सदैव जीवोंको यह कहकर दोष दिया करते हैं कि तुम्हींने हमारे प्रभुको घर-द्वारसे बाहर निकाला। जीव यदि कुकर्मान्वित न होते, अथवा मुग्ध होकर उनकी ओरसे लापरवा न होते तो उनके संन्यास ग्रहण करनेकी कुछ आवश्यकता ही न होती। भक्त लोग दुःखके साथ कहा करते हैं कि 'हे जीवो, तुम्हें धिक्कार है। तुमने सर्वाङ्गसुन्दर श्रीभगवान्‌को लँगोटी लगवा दी।' किन्तु जीवोंकी तरफ़से हम एक बात कहते हैं। श्रीभगवान् जब संन्यास-धर्मको ग्रहण करनेके लिये प्रवृत्त हुए तब जीवमात्र—फिर चाहे वे भक्त हों या अभक्त, अपने हों या पराये—सभी सन्तप्त हृदयसे धूलमें लोटते थे।

जब प्रभुके आगे नाई बैठ गया तब ऐसा लगा मानों त्रिभुवनमें हाहाकार हो रहा है। वहांपर उपस्थित व्यक्तिमात्र 'क्या हुआ, क्या हुआ' कह कर धूलमें लोटने लगे। कोई एकदम मूर्च्छित हो गया, किसीको होश न रहा और बहुत दिनों तक 'निमाई निमाई' कहकर रास्तेमें रोता-पीटता हुआ भटकता फिरा। यह बात दूसरोंकी है, निजी लोगोंकी नहीं। प्रभुके निजी आदमी यदि उस समय अचेत हो जाते तो काम न बनता, इसलिये वे लोग पत्थरकी तरह कड़ा जी करके बैठे रहे। किन्तु उन लोगोंने कपड़ेसे अपना अपना मुँह छिपा लिया। हम भी यहां लेखनीको विश्राम देते हैं। महाजनोंने इस स्थानका जैसा वर्णन किया है उसीके आधारपर हम यहां कुछ उद्धृत करेंगे।

श्रीजगन्नाथमिश्रने जो यह स्वप्न देखा था कि निमाई संन्यासी हो गया है और उसके पीछे पीछे करोड़ों आदमी उसको नमस्कार करते आ रहे हैं; श्रीमती विष्णुप्रियाको कुहवरमें जाते समय जो पैरमें चोट लगी थी ब्राह्मणने जो शाप दिया था कि 'निमाई पण्डित, तुम्हारा घर-गृहस्थीका सुख नष्ट हो' शास्त्रमें भगवान्‌के सहस्र नामोंके बीच जो यह पद है "संन्यासकृच्छमो शान्तो निष्ठा शान्तिपरायणः" सो यह सब इतने दिनोंके बाद सफल होने चला।

प्रभुके आगे नाई बैठ गया। जो लोग उसके समीप बैठे थे वे कपड़ेसे मुँह छिपाकर रोदन करने लगे। प्रभुके चरणोंका स्पर्श करते ही नापित प्रेममें अधीर हो गया। वह सिर मूँड़नेके बदले प्रेमके मारे थर थर काँपने लगा; आंखोंमें बेहद आंसू भर आनेके कारण वह एक प्रकारसे अन्धा हो गया।

जो लोग पीछेकी ओर थे उन्होंने सुना कि प्रभु सिर मुँड़वानेको बैठ गये। तब सब लोग निराश होकर, जिसकी जैसी प्रकृति थी उसीके अनुसार, अपने अपने मनका वेग प्रकट करने लगे। उसी क्षण बहुतोंने यह निश्चय कर लिया कि हम अब घर-गृहस्थीमें फँसे न रहेंगे। किसी किसीने इस नवीन संन्यासीके साथ वनमें जानेका पक्का इरादा कर लिया। किसी किसीको ऐसा जँचा कि हम पागल हो रहे हैं। किसीको भी ठीक ठीक होश-हवाश न रहे। दूसरे सब लोग अधीर होकर उच्च स्वरसे पूछने लगे— 'कितना सिर मुँड़ गया?' 'क्या मुण्डन हो चुका?' 'क्या मुण्डन होने लगा?'

किन्तु मुण्डन हो क्योंकर? नाई तो अस्तुरेको नीचे रखकर नृत्य कर रहा था। एक बार नृत्य करते करते आगे आकर भूमिमें लोट करके प्रभुके चरणोंमें प्रणाम करता और फिर उठकर प्रभुको आगे करके नृत्य करते करते पीछेकी ओर चला आता। प्रभु स्वयं मोहित होकर उसका नृत्य देखने लगे। उन्होंने अपने मनके वेगको रोककर

कल्याणके नियम

१-भक्ति ज्ञान और सदाचार-समन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुंचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

२-यह प्रतिमासकी कृष्णा एकादशीको प्रकाशित होता है।

३-इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य डाकव्ययसहित भारतवर्षमें ४≈) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ६) नियत है। एक संख्याका मूल्य ।≈) है। बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए, पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता।

४-ग्राहकोंको मनिआर्डरद्वारा चन्दा भेजना चाहिये,नहीं तो वी.पी खर्च उनके जिम्मे और पड़ जायगा।

५-इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें स्वीकार कर प्रकाशित नहीं किये जाते।

६-ग्राहकोंको अपना नाम, पता स्पष्ट लिखनेके साथ साथ ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

७-पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड अथवा टिकट भेजना आवश्यक है।

८-भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना मांगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं है।

९-कार्यालयसे 'कल्याण' दो तीन बार जांच करके प्रत्येक ग्राहकके नाम भेजा जाता है। यदि किसी मासका 'कल्याण' ठीक समयपर न पहुंचे तो अपने डाकघरसे लिखापढ़ी करनी चाहिये। वहांसे जो उत्तर मिले, वह अगला अङ्क निकलनेके कमसे कम सात दिन पहलेतक कल्याण-कार्यालयमें पहुंच जाना चाहिये। देर होनेसे या डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेपर दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें बड़ी अड़चन होगी।

१०-प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनिआर्डर आदि 'व्यवस्थापक-कल्याण,गोरखपुर' के नामसे भेजना चाहिये और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि 'सम्पादक कल्याण, गोरखपुर' के नामसे भेजना चाहिये।

कल्याणके नियम

१—भक्ति, ज्ञान और सदाचार समन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

२—यह प्रतिमास [illegible] एकादशीको प्रकाशित होता है।

३—[illegible] और आश्विनसे [illegible]

[illegible] मूल्य प्राप्त हुए [illegible] नहीं भेजा जाता।

४—[illegible]

५—[illegible] स्वीकार या प्रकाशित नहीं किये जाते।

[illegible]

[illegible] आवश्यक है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] नहीं है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

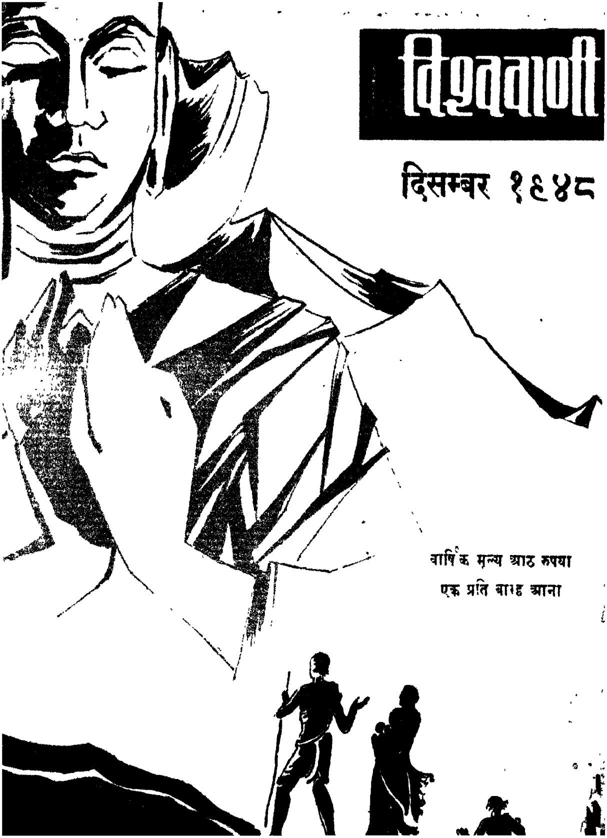
[illegible] निम्नलिखित पुस्तकें भी मिलती हैं

१—[illegible]

२—[illegible]

३—[illegible]

डाक महसूल सबमें अलग लगेगा


विश्ववाणी
दिसम्बर १९४८
वार्षिक मूल्य आठ रुपया
एक प्रति बारह आना

आपका चन्दा इस अङ्क के साथ समाप्त हो रहा है

श्री [illegible]

माहक संख्या २१२२

प्रिय बन्धु,

गत कई वर्षों से आप 'विश्ववाणी' के ग्राहक और सहृदय पाठक रहे हैं। भारत की राजनैतिक एकता और भारतीय संस्कृति की अखण्डता का 'विश्ववाणी' ने अलभ्य ऐतिहासिक सामग्री द्वारा प्रतिपादन किया है। सभी विद्वान एक स्वर से यह स्वीकार करते हैं कि जितना ठोस साहित्य 'विश्ववाणी' में प्रकाशित होता है उतना किसी दूसरी मासिक पत्रिका में नहीं। किन्तु हमारी इस सफलता का श्रेय बहुत कुछ आप पर निर्भर करता है। हमारा निवेदन है कि न केवल आप 'विश्ववाणी' के सदैव ग्राहक बने रहें बल्कि अपने इष्ट मित्रों और जान पहिचान वालों को भी 'विश्ववाणी' का ग्राहक बनायें। इस तरह आप भारत की सांस्कृतिक एकता की बुनियाद पुख्ता करेंगे।

हमारे विशेषाङ्क

१. टैगोर अङ्क :	दिसम्बर	१९४१
२. संस्कृति अङ्क :	जनवरी	१९४२
३. संस्कृति अङ्क :	फरवरी	१९४२
४. बौद्ध संस्कृति अङ्क :	मई	१९४२
५. सोवियत अङ्क :	जून	१९४२
६. चीन अङ्क :	जुलाई	१९४२
७. जैन संस्कृति अङ्क :	सितम्बर	१९४२
८. अकबर अङ्क :	दिसम्बर	१९४२
९. गांधी अभिनन्दन अङ्क :	अक्टूबर	१९४४
१०. एशिया अङ्क :	मई	१९४७
११. मित्र अङ्क :	नवम्बर	१९४७
१२. श्रद्धाञ्जलि अङ्क :	मार्च	१९४८
१३. अन्तर्राष्ट्रीय अङ्क :	मई	१९४८

अधिक अच्छा हो यदि आप इस महीने की सात तारीख तक अपना वार्षिक चन्दा हमें मनीआर्डर से भेज दें। यदि किसी कारणवश आप मनीआर्डर न भेज सकें तो हम अगला अङ्क प्रकाशित होते ही आपको वी० पी० से भेज देंगे जिसे कृपया अवश्य छुड़ा लें।

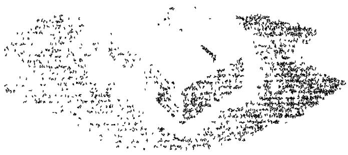
'विश्ववाणी' को आप अपने परिवार का ही एक अङ्ग समझें और उसकी अधिकाधिक उन्नति के लिये हमें उचित परामर्श देते रहें।

विनीत
सुधांशुकुमार चट्टोपाध्याय
मैनेजर

थोड़े से व्यय से

वस्तुएँ

ग्राहक के लिये आकर्षण बन सकती हैं



थोड़े से व्यय से अपनी वस्तुओं को दुरङ्गे फैशनेबुल बक्सों में पैक कीजिये। ढक्कन के लिये स्फटिक के समान सफेद और बक्स के लिये सुन्दर चमकदार रङ्ग के कार्ड-बोर्ड व्यवहार कीजिये। इस साधारण उपाय से आप ग्राहकों के हृदय को अपनी वस्तुओं के प्रति सहज ही आकर्षित कर लेंगे।

- **मजबूत और स्थायी होते हैं**
- **इनमें वाटर प्रूफ किस्में भी होती हैं**

ओरियन्ट

विषय—सूची दिसम्बर १९४८

विश्ववाणी

वर्ष ८, भाग १६ । दिसम्बर १९४८ [अङ्क ६, पूरे अङ्क ९६

विजयी के वंशधर !

श्री नागार्जुन

आज विजय दशमी है
बड़े बूढ़े सुबुध सयान
अधेड़ और नौजवान
घर घर से निकले मालिक-मलिकान
छोटी बड़ी पट्टियों के बाबू-बबुआन
सब निकले घर से
आज विजय दशमी है
आज है जय यात्रा
आज है अभियान !

आज द्वार-द्वार पर धरे हैं मंगल घट
घर-घर हरितगौर मृदु-मसृण यवांकुर आज
आज हैं अस्त्र-शस्त्र
शान चढ़ी तलवार
पिला-पिला तेल यह पोसी हुई लाठियाँ...
पी-पीकर घी में घोला हुआ सिन्दूर
जाने किस भाँति प्यास हो रही इनकी दूर !
साल में दो दिन बस लेते हैं अंगड़ाई
जाने कब ऐसी इनको यह ऊंघ आई
इन्हें आज भड़ैत, जोड़ाइत ढोते हैं
प्रदर्शन होता है, अपमानित होते हैं
निर्जीव बन गया विजया का त्योहार
समझ में न आ रही यह झूठी जय-जयकार !

फिर भी लो देखो यह—
प्रियदर्शन नीलकंठ पक्षी को पकड़ कर
पिँजड़े में ढक कर
लाये हैं बहेलिये
मालिकों के आगे
उड़ा दैंगे फर्र से...
नीले आसमान की ओर उड़ जायगा
प्रियदर्शन नीलकँठ पक्षी... !

दस-बीस सौ-पचास रुपये
फटा पुराना या कि कीड़ों से कुतरा हुआ
काशमीरी दोशाला,
भागलपुरी टस्सर,
नागपुरी चद्दर,
बहुत कुछ मिलेंगे बेचारे बहेलियों को इनाम-अकराम !
लेंगे सलामी आज सब से ही राजा राम !

घर-घर हैं दशरथ
घर-घर हैं राम-लखन
घर-घर भरत हैं, घर-घर हैं शत्रुहन
बैठते हैं ठाठ से निज-निज दलान पर
प्रतीक्षा है केवल दुआ की, सलाम की
'खिँड़हड़ि' गाँव में क्या कमी है राम की !

गुलाबी धोती
सीप की बटनों वाला रेशमी कुर्ता,
मलमल की दुपलिया, फूलदार टोपी,
बाटा के पम्प शू,
नेवले के मुंह-सी मूठ की नफीस छड़ी...
बड़ा और छोटा सरकार,
लाल साहेब, हीरा जी,
मानिक जी, मोती साहेब,
बुच्चन जी, बबुअन जी,
नूनू जी, बचोल बाबू
हवेली से निकले बनकर सँवरकर
ड्योढ़ी से बहराये सजकर, धजकर !
आगे-आगे पुरहित
पीछे देवान जी
हिलाते-डोलाते हाथ
मोसाहेब हैं साथ साथ
अस्त्र-शस्त्र सज्जित पलिटमा सिपाही
बन कर चल रहे पीछे ही पीछे !

शान चढ़ी तलवार म्यान में रो रही
कंधों पर ऊँघ रहीं पोसी हुई लाठियाँ
सौ-सवा साल की दुनाली बंदूक
गुम सुम ही सोच रही जमाने की भूल चूक
पर्वतिया बोंको के सीने से सट कर
ऊपर मुंह करके ले रही कैसे सांस ?
आ गया फिर यह बेशरम आसिन मास
निर्लज्ज, बेहया
दशमी और विजया...
दुनाली बंदूक
सोच रही गुमसुम जमाने की भूलचूक
ऊपर मुंह करके
नेपाली संतरी के वक्ष से सटकर !

पान से रंगे हुए सभी के होठ हैं
बाकी फतह के लिए गढ़ हैं, न कोट हैं
मरे हुए रावण को फिर-फिर मारने
पीड़ित प्रजा को दुख से उबारने
निकले हैं बाहर

विजेता राम के सैकड़ों वंशधर...
देख रहे निर्निमेष भालू और वानर
साधारण जनता मजूर औ खेतिहर...
विजयी के वंशज विजया मनाते हैं !
ढेलों की ढेर का रावण बनाते हैं !
लाठियों से पिट-पिट हो गया चूर-चूर
दशकंधर का नशा भाग गया चटपट दूर
बजने लगे डंके, तुरही में फूंक पड़ी,
मालिकों की पट्टियाँ वाह-वाह खूब लड़ीं
राक्षसराज रावण को मार दिया सींक से !
हिमालय को मात किया सर्दी से, छींक से !
ढेलों की ढेर को गर्दा बना दिया
टूटा पुल पार कर 'विजया' मना लिया

भाट लगे गाने विविध विरुदावली
गन गन लगी करने—
गंगकवि,
भूषणकवि,
सबकी कवितावली !
राम छू लौट आये ग्राम का सामांत
बैठे दालान पर धीर गँभीर शांत
गौर-हरित मृदु मसृण यवांकुर छींटते
आ गये ब्राह्मण आशीर्वाद देने
दक्षिणा में इकन्नी-अधन्नी तक लेने...
जयँती मंगला
कपालिनी भद्रकाली
दुर्गा शिवा धात्री क्षमा नमोऽस्तुते स्वाहा स्वधा
जय हो यजमान की राजा-महाराज की
मालिक-मलिकान की बाबू बबुआन की
जयंती मंगला काली कपालनी
भद्रकाली विजया दुर्गा भला करें !

मामूली असामी रैयत बनाम प्रजा
नजराना गई चढ़ा,
सलामी गई बजा
तत्पर एकमंट बाबू, देवानजी मुस्तैद
अठन्नी से कम क्या सलामी तुम दोगे ?
आसिन की दी हुई नजराने की रक़म
बढ़न बन पैठती अगहनके धान में !
खेत-खलिहान में—
पुरहित समझा रहे
भावी के जाल में रैयत को बझा रहे !
कैसा यह पुण्याह
समझ तो लो आह
जय जय सर्वमंगला
आज विजयदशमी है !

विजयी के वंशज
चले गये अन्दर
बैठे जब खाने
सामने आ गये छप्पन प्रकार तब...
कनकजीर चावल के सुरभित महीन भात
अरहरकी दाल और परवल की तरकारी
कोंहड़े के फूलों के पकौड़े बड़े-बड़े
तिलौड़ी, दनौड़ी, तिसियौड़ी, पापड़
तरोई, नेनुआ, भिंडी, और बैंगन
सूरन और अरुई
मछली और सालन
ऊपर से पुष्ट घृत, कसौंदी, अँचार, नींबू
अन्त में दही, तिस पर सकरौड़ी... !!
विजयी के वंशजों को विजया का स्वाद मिला !
और क्या चाहेंगे भोगींद्र भूमिपति
रावणांतक दाशरथि राम के वंशधर !

स्वस्थ राष्ट्र का पुनर्निर्माण

सरदार वल्लभ भाई पटेल

राष्ट्र के नेता, हमारे प्रधान मन्त्री ने गत वर्ष जब आपके यहां दिक्षान्त भाषण दिया था, उन दिनों हम भारी परिवर्तनों तथा उथल-पुथल के बीच में फंसे थे। पंजाब के दुःखान्त कांड ने प्रायः हमारे पैर ही उखाड़ दिये, हमारे दिमाग सन्देह व निराशा से भरे हुये थे और हमारे दिलों में भावावेश एवं द्वेष का राज था। उस समय उन्होंने (प्रधान मंत्री महोदय ने) हमारे सामने कुछ उद्देश्य रखे और हमें आचरण-सम्बन्धी कुछ नियम बताये, जिनके द्वारा हमें उन गम्भीर परिस्थितियों पर सफलतापूर्वक काबू पाने का रास्ता मालूम हुआ। सौभाग्यवश, अन्धकार की वे घड़ियां आज समाप्त हो चुकीं। और हमारी स्वतन्त्रता के लिये उस समय जो गम्भीर संकट उपस्थित था, अब दूर हो गया है। किन्तु फिर भी मैं आपसे पूछना चाहूँगा कि जिस स्वतन्त्रता को हमने वर्षों के कष्ट सहन और आन्दोलनों के फलस्वरूप प्राप्त किया है, क्या उसके वास्तविक महत्व को हम आज भी समझ सके हैं और उसके कारण जो जिम्मेदारियां तथा दायित्व हम पर आनपड़े हैं, उन्हें निभाने के लिये क्या हमने अपने को पूर्णतया तैयार कर पाया है।

अब मैं उस आन्दोलन की कुछ विशेषताओं का उल्लेख करना चाहता हूँ, जिसके फलस्वरूप हमें हमारी सर्वाधिक मूल्यवान स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है। सत्य और अहिंसा इस आन्दोलन के मुख्य सद्गुण थे। जिन सैनिकों ने इस लड़ाई में भाग लिया, आत्म त्याग, कष्ट-सहन एवं आत्म-निग्रह ही उनके आदर्श थे। सहिष्णुता, सद्भाव एवं एकता ही हमारे गुप्त मन्त्र थे, और सेवा, न कि स्वार्थ, हमारा पथ-प्रदर्शक तारा था। हम डट कर लड़े, किन्तु किसी प्रकार का धब्बा नहीं आने दिया।

परन्तु तनिक सोचिये कि आज हमारे सामने जो चित्र उपस्थित है, वह कितना भिन्न है? उस महान आत्मा, राष्ट्र पिता गांधी के अनुप्रेरणा एवं पथ प्रदर्शन के अधीन रहकर हमने जो लड़ाई लड़ी थी, उसकी आत्मा एवं सद्गुणों को प्रायः एक वर्ष के भीतर ही हम खो बैठे हैं। प्रतीत होता है कि पद-प्राप्ति के लिये झगड़ा करने और घात प्रतिघात करने से हमें प्रेम हो गया है। सत्यता के प्रति हम केवल दिखावटी सहानुभूति रखते हैं और हमारे हृदयों में हिंसा का राज है, देश हित का ख्याल हमारी दृष्टि से ओझल हो रहा है। मैं आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि मैं परिस्थितियों का अतिचित्रण नहीं कर रहा। इसके विपरीत जान-बूझ कर मैं परिवर्तन पर जोर दे रहा हूँ, क्योंकि मेरा विश्वास है कि देश के सन्मुख इस समय जो स्थितियां एवं समस्याएँ उपस्थित हैं, ऐसी हैं जिनके लिए हमें उन सद्गुणों की आज और भी आवश्यकता है, जिनके द्वारा कि हमने भूतकाल में इतना अधिक लाभ प्राप्त किया है।

गम्भीर स्थितियां

राजनीतिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से हम आज एक भयानक कगार की कोर पर खड़े हैं। यदि हमने एक भी पग गलत उठाया तो विनाश के सिवा दूसरा कोई परिणाम न होगा। हमारे जीवन यापन का खर्च आज बेहद बढ़ गया है। हमारा उत्पादन निश्चित लक्ष्य से नीचे है। आवश्यक वस्तुओं के आयात में हमें अत्यधिक मूल्य चुकाना पड़ता है। जो कुछ हमारे पास है, वह भी सरलता एवं औचित्य के साथ सब के पास नहीं पहुँच पाता। हमारा व्यापार एवं अर्थ-व्यवस्था मानों पंगुता की भावना से पीड़ित है। देश के बटवारे और उसी समय शासन सत्ता के हस्तांतरण ने हमारे लिये अनेक कठिन एवं जटिल समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं। सुरक्षा की हमारी दो सेनाएँ (जल एवं वायु) अब भी बचपन की हालत में हैं। अपनी स्थल सेना को हमें आधुनिक ढङ्ग पर शस्त्रास्त्रों से सज्जित करना है। एक ओर स्थिर स्वार्थी और दूसरी ओर किसानों तथा मजदूरों के बीच हमें एक नया सम्बन्ध स्थापित करना है। साथ ही, उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम सभी ओर, हमें अपनी सीमाओं पर निगाह रखनी है। शेष एशिया

आपसी झगड़ों से चूर हो रहा है। किसी देश की स्वतन्त्रता के शत्रु बहुधा देश के भीतर से ही उत्पन्न होते हैं, बाहर से कम। अतएव, हमें आंतरिक तथा बाह्य, दोनों ही प्रकार के खतरों से देश को सुरक्षित रखना है। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के अन्य कार्य भी हमारे सामने हैं, जिनमें से मुख्य हैं—जीवन स्तर को ऊँचा करने और राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण के कार्य। पहले के लिए हमें देश के प्राकृतिक साधनों को जुटाना और उनसे लाभ उठाना होगा और दूसरे के लिये हमें अपनी राष्ट्रीय शिक्षा की सम्पूर्ण प्रणाली में ही क्रांति उत्पन्न करनी होगी।

हम कहां हैं ?

मैंने अब तक आपके सामने केवल अपने कार्य की कठिनाइयां उपस्थित की हैं। अब हमें सोचना है कि क्या हम वास्तव में उन कठिनाइयों की गम्भीरता का विचार रखते हुये आचरण कर रहे हैं अथवा आज के गम्भीर संकट का ख्याल करते हुए उचित तरीका अख्तियार कर रहे हैं। होना यह था कि संकट की ऐसी घड़ी में हम एकता एवं शक्ति की ओर पूरा ध्यान लगाते। किन्तु इसके बजाय हम अपनी शक्ति को बेकार की अन्त:प्रांतीय ईर्ष्या में नष्ट कर रहे हैं और छोटी भाषा इकाइयों के विचार में व्यस्त हैं। धमकियों, हड़तालों और ताला बन्दियों के द्वारा हम उत्पादन के कार्य में बाधा डाल रहे हैं। भारी सम्पत्ति जुटा कर हम उसे गाड़े बैठे हैं, जबकि हमारा यह प्रथम कर्तव्य था कि राज्य-हित के लिए उसे उत्पादन के कार्य में लगाते। जब हमें अपने साधनों को बड़ी मितव्ययिता के साथ खर्च करना था, तभी हम उन्हें बेकार के खर्चों और विलास सामग्री में खपा रहे हैं। स्पष्टत: नैतिक मूल्यों का हमारा स्तर नीचे गिर गया है। युद्ध काल की अनैतिकता से उत्पन्न दुराचरण ने आज भी हमारा पीछा नहीं छोड़ा। अनुशासन, चरित्र शारीरिक सबलता, किसी भी स्वस्थ राष्ट्र के आवश्यक चिह्न हैं। किन्तु तनिक हम अपने अन्तःकरण में देखें और सोचें कि हम इन आवश्यकताओं की पूर्ति कहां तक कर रहे हैं। ... को ले लीजिये - छात्र तथा अध्यापक, श्रमिक, श्रमपति, व्यवसायी, कर्मचारी और राजनीतिज्ञ। हमें अपने तयीं पूछना चाहिए कि क्या हम एक स्वस्थ राष्ट्र के सदस्यों की भांति आचरण कर रहे हैं? मुझे निश्चय है कि विश्वास के साथ हम इस का स्वीकारात्मक उत्तर नहीं दे सकते और हमें स्वीकार करना ही होगा कि हमने संकट के समय में राष्ट्र का साथ छोड़ा है।

मैं आपसे स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मैं ये सारी बातें निराशा की दृष्टि से नहीं कह रहा। मैं जन्मजात आशावादी हूं। जिन अनेक सद्गुणों का हम प्रदर्शन कर चुके हैं, मुझसे अधिक उनसे कोई परिचित न होगा। अपनी त्रुटियों की ओर यहां मेरे जोर देने का एकमात्र कारण यही है कि मैं आपको मिथ्या आत्मविश्वास के विरुद्ध सचेत कर देना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि हमारे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं पुनरुत्थान के कार्य में किसी प्रकार की ढिलाई न आने पावे। इसीलिए आपसे और आपके द्वारा इस देश के अधिक विस्तृत समुदाय से मेरा अनुरोध है कि हमारी राष्ट्रीय सत्ता के लिए उत्पन्न अनेक खतरों से बचाव के लिए हम अपनी सारी शक्तियों को सम्मिलित रखें और ठोस एवं स्वस्थ आधार पर अपने राष्ट्र का निर्माण करें। यह सच है कि अपनी स्वाधीनता के प्रथम वर्ष में भी हमने काफी कार्य किया। विदेशों में हमारे दूतावासों आदि की स्थापना और पर-राष्ट्र विषयों में हमारा दखल, देशी रियासतों का एकीकरण तथा जनतंत्रीकरण, शासन तथा रक्षा-व्यवस्थाओं का पुनःसंघठन, शरणार्थियों का पुनःसंस्थापन, आदि उन अनेक वृहत प्रयासों का आरम्भ मात्र है, जिन्हें पूरा करना हमारे लिये अब भी बाकी है।

भारी कार्यक्रम

किसी भी परराष्ट्र नीति का अच्छा प्रभाव तब तक नहीं पड़ सकता, जब तक कि उसको बरतने वाला सबल न हो। क्या आज क्या पहले, अन्त: राष्ट्रीय सभाओं में किसी प्रश्न की जीत केवल इस-

प्रश्न है। उस नैतिक प्रश्न के विजय के लिये भी प्रस्तावक के सबल एवं साख के समर्थन की आवश्यकता होती है पर-राष्ट्र विषयों के क्षेत्र में भारत को अनेक अवसर प्राप्त हैं। और एशिया में उसका प्रमुख स्थान है। अतएव इस प्रदेश में उसे प्रभावशाली रूप से अपना पाट अदा करना है। इसलिये कि हमारी सेनाएं सुदक्ष बनाई जा सकें, हमें अपने औद्योगिक प्रयास को भी काफी बढ़ाना है। सेना की आवश्यकताओं के लिये दूसरे देशों पर निर्भर रहना हमें शोभा नहीं देता। हमें विदेशी आयातों पर अवलम्बित न रहना चाहिये। हमें अपनी अत्यावश्यकता की सारी चीजें यथासंभव देश में ही उत्पन्न करनी हैं। इस प्रकार हमें अनेक दिशाओं में अनेक वृहत् कार्य पूरे करने हैं। इन सबको पूरा करने के लिये हमें उस मूल्यवान उत्तराधिकार का स्मरण रखना होगा, जो हमें हमारे महान् नेता के संयम नियम, एवं हमारे शहीदों की कुर्बानियों से हमें प्राप्त हुआ है। यदि हम अवसर के अनुकूल ऊंचे नहीं उठते, तो इतिहास और आगे आने वाली पीढ़ियां हमें कभी क्षमा नहीं करेंगी।

छात्रों पर विशेष दायित्व

साथी छात्रो! आवश्यकता के इस समय में आप पर देश सेवा का विशेष दायित्व है। हम पुरानी पीढ़ी के लोग जीवन की संध्या में पहुंच चुके हैं और सूर्यास्त बाद के तार की प्रतीक्षा में हैं। हम अपने दिन बिता चुके और हमें गर्व है कि अपने जीवन काल में ही हमने अपने देश की स्वाधीनता प्राप्त कर ली। इसे हम अपना सौभाग्य ही समझते हैं कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी हमें कुछ वर्ष देश-सेवा और स्वाधीनता को पुष्ट करने के लिये मिले। किन्तु नेतृत्व का बोझ शीघ्र ही आप लोगों के कन्धों पर पड़ेगा और मातृभूमि की सेवा के अनेक अवसर भी आपको प्राप्त होंगे। अतएव आप से अनुरोध है कि जो विचार मैंने आपके सम्मुख रखे हैं, उन पर आप रचनात्मक दृष्टि से विचार करें। स्मरण रखिये कि विनाश का कार्य तो आसान है, किन्तु निर्माण के कार्य में बड़े परिश्रम एवं असीम धैर्य की आवश्यकता होती है। उन लोगों के धोखे में न आइए, जिन की विनाशकारी बुद्धि उस वृक्ष की जड़ काट देने के बाद भी नहीं रुकती, जो उन्हें छाया एवं आश्रय प्रदान करता है। साथ ही नये आदर्शवादों को अपनाने के धोखे में भी न पड़िये, जब तक कि पूर्ण रूप से उन पर आप का विश्वास न होजाय। आपका मुख्य दृष्टि कोण यही होना चाहिये कि जो कुछ भी आप करें अथवा करना चाहते हैं, वर्तमान समस्याओं के सुलझाने में उनसे वास्तविक एवं रचनात्मक सहायता प्राप्त हो। अनुशासन जीवन में अनिवार्य वस्तु है। इसकी आवश्यकता जितनी आपको विश्वविद्यालय में है, उतनी ही उस के बाहर जीवन क्षेत्र में देश को आज दक्ष एवं अनुशासनपूर्ण युवक की आवश्यकता है। आप चाहे जिस कोने में रहें और चाहे जो कुछ आपका उद्यम हो, आपको अनवरत अपने देश के हित का ख्याल रखना चाहिये और उसका मान एवं प्रतिष्ठा बढ़ानी चाहिये—जीवन का मूल्य चुकाकर भी अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये सदैव तत्पर रहिए। *

* प्रयाग विश्वविद्यालय में दिया गया दीक्षान्त भाषण।

देहात की रात!

श्री देवनाथ पांडेय 'रसाल' बी० ए०; एल-एल० बी०

ठंडे झोंके में 'सी-सी' करती जाड़े की फिर रही रात!
'कट-कट, कट-कट' मुख बोल रहा कांपता गांव का नग्न गात!!

दरवाजे पर तरु के नीचे बैठे हैं बुड्ढे, शिशु, जवान।
जल रही सभी के बीच आग 'घासों-पातों' की दीप्तमान॥
जो परेशान करने को धू-धू जल कर बुझ जाती सहसा।
बच्चे-जवान पर फूकों से कर देते पल में पहले-सा॥
आंखों को मींचे फिर बच्चे तन कर बैठे, विहँसा आनन।
कहकहा लगा मण्डली बीच, हँस पड़े हो गये सभी मगन॥
फिर बोल उठा रजुआ दादा से 'हुआ भला क्या रानी का॥
राजा घर छोड़ विदेश गया उस आधी बची कहानी का'॥

गहरी सांसें लीं दादा ने, खामोश सभी की हुई बात!
धूआं के ऊपर तरु की डाली के निश्चल भी हुये पात!!

चल पड़ी कहानी ग्राम की फिर, हो गए सभी के खड़े कान।
शिशु 'हां-हां' करता था, मन में कुछ अनुभव करते थे जवान॥
फिर देखा, सबकी आंखों से झर-झर-झर-झर उमड़ी धारा!
दादा का कण्ठ हुआ गद्गद, वह भूल चला तन-मन सारा॥
रुक गई कहानी की गाड़ी, रजुआ रोते ही बोल उठा।
'कहते जाओ; दादा न रुको,' करुणा-विचलित दिल डोल उठा॥
फिर खतम कहानी हुई किरानी की मंगलमय हुई बाट।
लौटा जैसे दोनों का वैसे लौटे सबका राज-पाट॥

फिर खबर मिली घर के भीतर से, खाने को उठ दी जमात!
भीतर जाने झिड़कियाँ मिलीं 'क्या ध्यान कि इतनी गई रात!"

खाने पर सोने को लेटे सबही पुआल के गद्दे पर।
ताखे में मिट्टी का दीपक टिमटिमा रहा था मधुर, सुघर॥
बातों का जारी हुआ सिलसिला, 'पानी कहां चलाना कल?'
गेहूँ का पौधा सूख रहा, पहले उसको देना है जल॥
तय हुई बात, हुक्के-चीलम का दौर चला मंडली बीच।
दूसरी ओर 'ऊँ-ऊँ' कर बच्चों ने करवट ली आंख मींच॥

फिर चादर, कम्बल ओढ़ सो गये तरुण, वृद्ध भोले किसान।
सो गई थकावट पलकों में दृग की किसान के ही समान॥

खुर्राटे लेने लगे दिवस के कर्म-व्रती सब थके, क्लान्त!
महलों में गद्दों के सुख की इनके सम्मुख थी क्या बिसात!!

मुर्गों ने बांग लगाई जब बुड्ढा उठ जागा बिस्तर में।
देखा कि शुक्र था चमक रहा झल मल, झल मल ऊपर नभ में॥
हल वाले तारे भी थे नभ के बीच अभी जगमग-जगमग।
रजनीके काले आंचल में था नींद-मग्न सारा अग-जग॥
बुड्ढे ने लम्बी फिर तानी, जब खुली नींद तब मिला भोर।
बेटों को पाया 'नार-मोट' ले चले गए थे खेत-ओर॥
लेने को बच्चे धूप कर रहे थे आपस में सभी शोर।
सामने अगर कोई आता उसको देते थे बिगड़ जोर॥

बुड्ढे ने यह देखा विहँसा, विहँसा किरणों में तब प्रभात!
उज्ज्वल प्रकाश में जाड़े की लम्बी, काली थी धुली रात!!

———

शिक्षा का माध्यम

प्रो० गिरिराज प्रसाद गुप्त एम० काम०

विदेशी सत्ता के आने से पूर्व शिक्षा का एक अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र था। संसार के दूर दूर देशों से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने भारत आते थे। देश भर में संस्कृत पाठशालाओं का एक जाल सा बिछा हुआ था। काशी के संस्कृत शिक्षा केन्द्र में तो पिछली शताब्दी तक दूर दूर के विद्वान् भाषा की शोध करने आते रहे। प्राचीन काल में नालन्दा तथा तक्षशिला के महाविद्यालय सहस्त्रों विद्यार्थियों को संस्कृत में शिक्षा देते थे। महामुनि भारद्वाज के विश्व-विद्यालय में ईरान, फारिस, चीन, जापान तथा लंका के महाविद्वान् शिक्षा ग्रहण करते थे। उस काल में शिक्षा का माध्यम 'संस्कृत' था। मुसलमानों के आने पर भारत की प्राचीन भाषा तथा संस्कृति का रूप बिलकुल तो न मिटा परन्तु विकृत अवश्य हो गया। परदेशियों की भाषा से टक्कर खाकर संस्कृत भाषा अपने उज्वल स्वरूप को खो बैठी। उर्दू को राज्य सम्मान मिल जाने के कारण हिन्दी-उर्दू सम्मिश्रण से एक नई भाषा का जन्म हुआ जिसको 'हिन्दुस्तानी' कहने लगे। 'हिन्दुस्तानी भाषा के जन्म से भारत के आदि निवासी तथा मुसलमानों के बीच बोलचाल तथा विचार व्यक्त करने में अधिक बाधा न हुई। जनसाधारण की भाषा उस काल में हिन्दुस्तानी थी। स्मरण रहे कि हिन्दुस्तानी भाषा को देश में जन-भाषा बनाने के लिये राज्य की ओर से कोई प्रत्यन नहीं किया गया वरन् आवश्यकतानुसार समय की परिस्थिति को दृष्टि में रखकर 'हिन्दुस्तानी-भाषा' स्वयं ही जन-भाषा बन गई। हा, उर्दू का भी अपना स्थान रहा और राजदरबारों की भाषा उर्दू ही रही। अंग्रेजी सत्ता के आने के पश्चात् भारत की भाषा तथा सभ्यता में एक महान् परिवर्त्तन हुआ। भारतीय संस्कृति को नष्ट करने तथा अंग्रेजी भाषा और सभ्यता को दृढ़ करने का विचार सबसे पहिले लार्ड मैकाले ने सुझाया। उसने भारत में आकर अंगरेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की योजना बनाई। देश में स्थान स्थान पर स्कूल तथा कालिज खोले गये और आंग्ल-भाषा शिक्षा का माध्यम बनाई गई। इसका सबसे भारी दुष्परिणाम यह हुआ कि स्कूल तथा कालिजों में पढ़ने वाले लोग देश की साधारण जनता से विभिन्न हो गए। इतना ही नहीं हमारी अपनी भाषाएँ भी अंगरेजी भाषा के माध्यम से में लिखे गए उत्तर अंगरेजी भाषा में लिखे हुए प्रश्नोत्तरों पढ़ाई जाने लगी। और लगभग पिछले डेढ़ सौ वर्ष से भारत की शिक्षा का माध्यम 'अंगरेजी भाषा' ही चली आ रही है।

भारत अब स्वतंत्र हो गया है। राज्य के कारोबार अब अंगरेजी सत्ता से हटकर भारतीयों के हाथ में हैं। अंगरेजी ही नहीं, अंगरेजी से पूर्व भारत के शासक भी अब अपना अलग घर बसा बैठे हैं। हमको स्वतंत्र हुए एक वर्ष से अधिक हो चुका। भिन्न भिन्न समस्याएं राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक देशवासियों के सामने हैं। इन सब बातों के साथ साथ एक और समस्या हमारे सामने उपस्थित है कि "स्वतंत्र भारत में शिक्षा का माध्यम क्या हो?" इस विषयपर पिछले दिनों में पर्याप्त वादाविवाद होता रहा है। बड़े बड़े विद्वान् भाषा-शास्त्री, कलाकोविद अर्थशास्त्री सभी इस प्रश्न में व्यस्त हैं। 'राष्ट्र- भाषा' 'जन- भाषा' 'राज- भाषा' तथा 'माध्यम-भाषा' के नाम पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है परन्तु अभी तक यह प्रश्न उलझन में है कि स्कूलों तथा कालिजों में शिक्षा का माध्यम क्या हो? क्या भारत की आदि भाषा संस्कृत को माध्यम बनाया जाय? या हिन्दी को जो लगभग संस्कृत का ही एक प्ररुप है, माध्यम बनाया जाय? या हिन्दुस्तानी को जो अब तक सम्पूर्ण भारत की जन-भाषा रही है, यह सौभाग्य प्राप्त हो अथवा अंगरेजी भाषा को ही शिक्षा- माध्यम चलने दिया जाय। दूसरा प्रश्न हमारे सामने है कि क्या माध्यम भाषा बदलने का यह उपयुक्त अवसर होगा अथवा कुछ समय पश्चात् इस प्रश्न को सोचा जाय? इस विषय में सभी लोग क्या विद्वान् और क्या जनसाधारण एक मत हैं कि अब भारत में शिक्षा का माध्यम अंगरेजी न रख कर अन्य भाषा रखा जावे। इसका कारण यह तो है ही कि अब अंगरेजी भाषा के पोषक अंगरेज लोग देश से चले गये और इसलिए स्वतंत्र भारत में राष्ट्र-सम्मान के लिए तथा शिक्षित समाज और जनसाधारण के बीच उत्पन्न हुई विभिन्नता को दूर करने लिये शिक्षा का माध्यम अंगरेजी न होने के कारण विश्व-विद्यालय की ऊँची कक्षाओं में अपने अपने विचार स्पष्टरुपेण प्रकट नहीं किये जा सकते। अनुभव से लगभग सभी परीक्षक एक मत हैं कि ऊँची कक्षाओं की परिक्षाओं में लिखे गये प्रश्नोत्तरों में हिन्दी या हिन्दुस्तानी

की अपेक्षा अधिक स्पष्ट तथा भावात्मक प्रतीत होते हैं, अतः शिक्षा—माप को ऊँचा रखने के लिए यह आवश्यक है कि अंगरेजी माध्यम को शीघ्र बदला जावें। प्रश्न होता है कि क्या शिक्षा का माध्यम एक ही सा बदल दिया जावे या समय की प्रगति के साथ साथ नीची कक्षाओं से प्रारम्भ करके खोजपूर्ण विषय के साथ फिर विश्व-विद्यालयों की शिक्षा तक ले जाया जावे। भारत के शिक्षा-मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने पिछले दिनों विज्ञान कला मन्दिर, दौराला का उद्‌घाटन करते समय यह सुझाव रखा था कि शिक्षा का माध्यम एक क्रान्ति के साथ एकदम न बदला जावे वरन् शनैः शनैः छोटी शिक्षा श्रेणियों से प्रारम्भ किया जावे और समय के साथ साथ फिर सभी प्रकार की शिक्षा—श्रेणियों में परिवर्तन कर दिया जाय। शिक्षा-मंत्री ने भाषा-विज्ञान तथा शब्दावली आदि के विषय में भी अपने सुझाव रखे थे। इस शिक्षा-मंत्री के सुझाव से हम सहमत हैं कि शिक्षा का माध्यम एक साथ सभी श्रेणियों में नहीं बदलना चाहिए। जिस प्रकार से अंगरेज़ी भाषा को माध्यम बनाते समय नीची श्रेणियों से ऊँची शिक्षा तक ले जाया गया और फिर वह एक परिपक्व शिक्षा—माध्यम बन गई। उसी भाँति किसी भी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने में उसे परिपक्क तथा स्थायी माध्यम बनाने के लिए शनैः शनैः नीची शिक्षा से ऊँचा स्थान दिया जाना चाहिए। हमारा मत यह नहीं है कि अभी शिक्षा—माध्यम न बदला जाव। हमारा विश्वास है कि शिक्षा का माध्यम तत्काल बदला जावे परन्तु जो भी भाषा माध्यम बनानी है उसे छोटी कक्षाओं में उसके सत्य स्वरूप में निर्धारित करके फिर ऊँची कक्षाओं में उठाया जाय, इससे शिक्षा का माध्यम दृढ़ तथा सुडौल होगा और भाषा सर्वरूपेण पूर्ण समझी जा सकती है। प्रान्तों में विश्व-विद्यालय को शिक्षा का माध्यम बदलने की योजना बनाई जारही है। मध्यप्रदेश में तो विश्वविद्यालय श्रेणियों तक में शिक्षा का माध्यम बदला जा चुका है, परन्तु विश्वास है कि यह माध्यम नीची श्रेणियों को छोड़ ऊँची कक्षाओं तक में शीघ्र ही निर्धारित होने के कारण जनता में उतना परिपक्क तथा सुडौल नहीं बन सकेगा।

अब प्रश्न हमारे सामने यह है कि अंगरेज़ी भाषा को हटाकर किस भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। देश की आदि भाषा संस्कृत जो ऋषिकाल तथा उसके पश्चात् तक हिन्दू काल में शिक्षा का माध्यम रही, इस युग में शिक्षा माध्यम नहीं बन सकती। शिक्षा का माध्यम आज वह भाषा बन सकती है, जो जनसमुदाय की भाषा हो, जिस भाषा को हिमालय से कुमारी अन्तरीप तक, आसाम-बंगाल से बम्बई, गुजरात तक सभी लोग सुविधानुसार बोल सकें। कभी-कभी तर्क होता है कि अन्य स्वतन्त्र देशों ने तो स्वतन्त्र होने पर शिक्षा का माध्यम अपनी पुरातन भाषा को ही बनाया था। परन्तु भारत की परिस्थिति बिलकुल भिन्न है। यहाँ पर देश अनेक प्रांतों में विभाजित किया है तथा उन सब प्रांतों में अपनी अपनी अलग भाषाएं प्रचलित हैं, इतना ही नहीं, प्रांतों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग अलग भाषाएं हैं। ऐसी अवस्था में शिक्षा का माध्यम ऐसी भाषा होनी चाहिये जो सभी प्रान्तों में समान रूपसे बोली और समझी जावे। संस्कृत भाषा का माध्यम छोड़े हुए आज युग बीत गए। देश भर में तो क्या देश के किसी एक भाग में भी संस्कृत भाषा का प्रचार नहीं। संस्कृत अब थोड़े व्यक्तियों की ही भाषा रह गई जिसको वे व्यक्ति पुराने साहित्य के अध्ययन हेतु पढ़ते हैं। हाँ, गुरुकुलों तथा अन्य स्कूलों में संस्कृत एक वैकल्पित विषय रह गया है, परन्तु थोड़े लोगों (जो ना के बराबर हैं) की वैकल्पित भाषा-संस्कृत आज इस विशाल देश में शिक्षा का माध्यम नहीं बनाई जा सकती। अब विचारणीय विषय हमारे सामने यह है कि बची हुई 'हिन्दी' और 'हिन्दुस्तानी' भाषाओं में से शिक्षा का माध्यम किस भाषा को बनाया जाय। हिन्दी भाषा की परिभाषा भिन्न-भिन्न भाषा- शास्त्रियों ने अनेक प्रकार से की है। परन्तु हिन्दी भाषा से हमारा अभिप्राय उस भाषा से है जो शुद्ध हिन्दुओं की भाषा है जिसमें अन्य किसी भाषा जैसे उर्दू, बंगाली, मराठी आदि का मिश्रण भी नहीं है और जो एक प्रकार से संस्कृत की एक छोटी सखी है। 'हिन्दुस्तानी' भाषा हिन्दी, उर्दू आदि भाषाओं की सम्मिश्रण से बनी है और जो अनेक युगों से जन भाषा चली आ रही है। आज देश में दो मत हैं—कुछ भाषा शास्त्रियों का कहना है कि माध्यम 'हिन्दी' हो परन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि माध्यम 'हिन्दुस्तानी' हो। देश के प्रान्तीय विभाजन तथा प्रान्तीय भाषाओं को जो देश भर में स्थान स्थान पर बोली जाती

है, दृष्टि में रखते हुए यह आवश्यक है कि, 'हिन्दुस्तानी' शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। जिस भाषा में सम्पूर्ण भाषाओं का मिश्रण है तथा जिसको सारे राष्ट्र के स्त्री पुरुष बालक आदि समझ और बोल सकते हैं। इस समय यह आवश्यकता नहीं है कि एक नई भाषा जो देश की अधिकांश जनता को एक पहेली हो, शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। मेरा विश्वास है कि 'हिन्दी' भाषा को माध्यम बनाना राष्ट्रीय हित में घातक होगा। सम्पूर्ण देश के लोग उसको न समझ सकेंगे और न बोल सकेंगे। सम्भव हो सकता है कि ऐसी अवस्था में जबकि कुछ प्रान्तों के व्यक्ति 'हिन्दी' न समझ सकें तो उनको अपनी अपनी भाषाओं को अपने अपने प्रान्तों में माध्यम बनाने का विचार उत्पन्न हो और यह बात कोई असम्भव नहीं क्यों कि अभी अभी देश के सामने 'भाषावाद प्रान्त रचना' की एक समस्या पहिले ही प्रस्तुत है। ऐसी जबकि भिन्न प्रान्तों में भिन्न माध्यम बन जाय तो अवस्था में प्रान्तों के पारस्परिक सम्पर्क छिन्न-भिन्न हो जायगे। भारत को एक राष्ट्र बनाने की योजना तो दूर रही, देश भिन्न-भिन्न भागों में बंट जायगा, जिसकी भाषा, संस्कृति आदि सभी कुछ भिन्न भिन्न होंगे।

हमारे सामने कुछ भाषाशास्त्रियों के तर्क हैं कि, 'हिन्दुस्तानी भाषा' हिन्दू मुसलमानों का भाषा भाषी मेल बनाये रखने के लिये हिन्दी-उर्दू के मिश्रण से बनाई गई थी। अब मुसलमान अलग घर बसाकर चले गये इसलिये उर्दू को निकालकर उज्वल 'हिन्दी' शेष रह गई जो शिक्षा का माध्यम बनाई जाय। इस तर्क में थोड़ी दूर-दर्शिता से काम लिया जाय तो समस्या आसानी से हल हो जायगी। पहिली बात तो मुसलमान अभी तक भारत राष्ट्र में मौजूद हैं जिनके साथ भाषा भाषी मेल अब भी आवश्यक है। दूसरी बात यह है कि हिन्दी-उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी केवल हिन्दू मुसलमानों के बीच की भाषा न रह गई थी परन्तु देश के सभी लोगों, मराठी, बंगाली, गुजराती, तामिल आदि की भाषा बन गई है। जिसे हम पारस्परिक बोल चाल में प्रयोग करते हैं। अब केवल पाकिस्तान बन जाने से यह समझना भूल होगी कि माध्यम भाषा में अब किसी अन्य भाषा के मिश्रण की आवश्यकता ही नहीं रही। स्वर्गीय महात्मा गांधी ने 'हिन्दुस्तानी' भाषा को देवनागरी लिपि में माध्यम बनाने का आदेश किया था। वर्तमान प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू भी 'हिन्दुस्तानी' भाषा के समर्थक हैं। 'हिन्दी' भाषा के पोषक कहेंगे कि गाँधी जी तथा पं० नेहरू भाषाशास्त्र से अनभिज्ञ हैं या वे केवल राजनीतिज्ञ हैं और भाषा विज्ञान में अपरिचित हैं। हो सकता है, उनका यह कथन सत्य हो परन्तु हमें इस समय भाषा विज्ञान को नहीं देखना है, भाषा शास्त्र का अध्ययन नहीं करना है, हमें इस समय केवल जन-समुदाय की सुविधाओं को देखना है, राष्ट्र के हित को सोचना है और राष्ट्र का हित तभी हो सकता है जब कि सभी देशनिवासी सर्व प्रकार से क्या भाषा, क्या संस्कृति और क्या बल एक होकर रहें। 'हिन्दुस्तानी' भाष्य में एकता है—इसमें सभी विचार, सभी भाषाशास्त्र, सभी प्रकार के भाषा-विज्ञान सन्निहित हैं। यह सबकी भाषा है और अब हमें सबकी भाषा चाहिये, कुछ की नहीं। हमें अभी देश भर में 'राष्ट्रीय शोध संस्थाएँ' स्थापन करना है, ऐसी योजना को चलाने के लिये एक भाषा का होना आवश्यक है जो सारे राष्ट्र की भाषा हो जिससे 'राष्ट्रीय शोध संस्थाओं' में सार्वदेशिक खोज विभागों में सभी लोग पारस्परिक सहयोग से आपस की बोलचाल तथा भावव्यंजना को स्पष्ट कर सकें और यह काम केवल 'हिन्दुस्तानी' भाषा के माध्यम बनाने मात्र से ही हो सकेगा और हिन्दुस्तानी को देवनागरी लिपि में लिखना होगा। सम्भव है आगे चलकर कुछ समय बाद इस भाषा का रूप कुछ निखर कर हिन्दी-सम हो जाय परन्तु यदि इसी समय माध्यम भाषा बदलनी है तो हमें हिन्दुस्तानी, जिसे हम यदि "सरल हिन्दी" भी कहे तो कोई अत्युक्ति न होगी- को ही माध्यम बनाना होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि अंगरेजी भाषा के स्थान पर 'हिन्दुस्तानी' को शिक्षा का माध्यम बनाने में कुछ कठिनाइयां होंगी। सबसे पहिली कठिनाई तो पुस्तकों की है। देवनागरी लिपि में पुस्तकें न होने के कारण अध्यापक गण तथा विद्यार्थी वर्ग दोनों ही को कठिनाई होगी। देवनागरी लिपि में पुस्तकें तथा शब्दकोष लिखे जा रहे हैं—विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में प्रकाशन विभाग खोले गए हैं और उनके तत्वावधान में भिन्न भिन्न विषयों पर पुस्तकें लिखने का काम चल रहा है। परन्तु फिर भी कुछ समय के लिए जब तक ऐसी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में आ जांय यह आवश्यक होगा कि अङ्गरेजी भाषा तथा

अन्य भारतीय भाषा की पुस्तकों से पठन पाठन कार्य किया जाय। विश्वविद्यालयों तथा सरकार को चाहिये कि विद्यालयों को सहायता दे जिससे वे ऐसी पुस्तक प्रकाशित कर सकें। अनेक संस्थाओं जैसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि ने भी इस ओर कार्य करने का कार्यक्रम बनाया है। दूसरी कठिनाई हिन्दी भाषा में अंगरेजी भाषा के तत्सम शब्दों की है।

परन्तु इस ओर भी कार्य प्रारंभ हो गया है। नागरी प्रचारिणी सभा, बर्नाक्यूलर साइंटीफिक सोसाइटी आदि संस्थाओं ने इस ओर अधिक कार्य किया है। युनिवर्सिटी कक्षाओं के लिए उच्च श्रेणी के शब्दकोष बनाने का कार्य भारतीय हिन्दी परिषद् ने किया है और विज्ञान संबंधी शब्दों का एक शब्दकोष संयुक्त प्रान्त के विज्ञानाचार्यों ने तैयार किया है। मध्यप्रान्त में भी ऐसा कार्यक्रम चल रहा है। सेकसरिया अर्थ साहित्य प्रकाशन मण्डल के तत्वावधान में अर्थ-साहित्य प्रकाशित हुआ है। डा० रघुवीर ने भी एक शब्दावली तैयार की है परन्तु यह शब्दावली हमारी योजना से भिन्न है परन्तु फिर भी कुछ शब्दों को जो हमारे कार्य आ सकते हैं, ले सकेंगे। अन्य प्रान्तों में भी इस प्रकार का कार्यक्रम चल रहा है। सरकार को चाहिए कि विश्वविद्यालयों की एक सम्मिलित समिति बनावे जो भिन्न भिन्न शब्दकोषों को मिलाकर सब भरतीय विश्व विद्यालयों के लिए एक ही शब्दकोष तैयार करें। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि विद्यार्थी अंगरेजी भाषा के शब्द बिलकुल भुला दें। माध्यम भाषा के शब्दकोष आने तक अंगरेजी भाषा के ही शब्द कार्य में लाये जा सकते हैं परन्तु अपना शब्दकोष आने पर ये शब्द स्वयं ही छोड़ दिए जायंगे और उनका स्थान अपनी शब्दावली ले लेगी।

— · —

फसलों की बढ़िया किस्में

श्री बी. पी. पाल

यह तो अब सब मानते हैं कि हिन्दुस्तान में खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति की गति देश की मांग की अपेक्षा बहुत कम है। इसलिए हर प्रकार से उत्पत्ति को बढ़ाने की खातिर अपने देश के सभी साधनों का पूर्ण प्रयोग और विज्ञान और कला के नवीन उपायों से सहायता लेना *अत्यन्त आवश्यक है।* खाद्य पदार्थों की उपज को बढ़ाने के भिन्न-भिन्न उपायों में सब से सुगम और कमखर्च उपाय है बढ़िया श्रेणी के पौधों की कृषि से लाभ उठाना। यह अनुमान लगाया गया है कि इस प्रकार एक एकड़ भूमि की उपज में दस से पन्द्रह प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है। बहुत-सी अवस्थाओं में तो इससे भी अधिक उपज होती हुई देखी गई है। बढ़िया श्रेणी के पौधों से उपज भी बढ़िया ही होती है। इन्हीं साधनों द्वारा पृथ्वी से अधिक आर्थिक लाभ हो सकता है। और भी कई प्रकार से बढ़िया श्रेणी के पौधे उपज को बढ़ाने में सहायता करते हैं। भुर्चा और गेरुई-जैसी बीमारियों और पाला तथा सूखा जैसी स्थितियों से जो भयंकर हानि पहुँचती है उससे हर कोई परिचित होगा। बनावट में अधिक शक्तिशाली होने के कारण अच्छी श्रेणी के पौधे बीमारियों का डटकर मुकाबला करते हैं तथा पाले और सूखा से भी अपनी रक्षा कर पाते हैं। अतः इन्हीं कारणों से अच्छी श्रेणी के पौधों की कृषि से बहुत कम हानि की सम्भावना है।

फसल का सुधार

फसलों की श्रेष्ठतर किस्में उत्पन्न करने के कई उपाय हैं, जिनमें नई किस्मों को रिवाज देना और इन किस्मों में से चुनाव करना भी सम्मिलित है जो प्राकृतिक रूप से पैदा हो गई हों या कृत्रिम पैवन्दकारी इत्यादि बल्कि वस्तुतः उन समस्त उपायों से अस्तित्व में लाई गई हों जिनसे पौधों के सुधार का काम सिद्ध होता हो।

पौधों की उन्नति के प्रचलित उपाय दो हैं, रिवाज तथा चुनाव। पहले उपाय का आशय है किसी विशेष भूमि में ऐसी किस्मों को रिवाज देना जिनके मुकाबिले की पहले कभी न बोई गई हों। चुनाव द्वारा उन्नति से तात्पर्य यहां अच्छे बीज की यथाक्रम उस घटिया बीज से दूर करने में है जिसे किसान ने पैदा किया। चुनाव का काम दो प्रकार का होता है। बीज पैदा करने वाला बहुत-सी फसलों में प्रत्येक पौधे को आलोचनात्मक दृष्टि से देखता है और जो पौधे आशाजनक प्रतीत होते हैं उन्हें अगले वर्ष बोने के लिए छांट लेता है। इस प्रयोग को एकाकी पौधे की छाट कहते हैं और यह गेहूँ तथा धान जैसी फसलों के बोने में प्रयोग किया जाता है। सरसों और बाजरे की श्रेणी की अन्य फसलों में जो तरीका प्रयोग में लाया जाता है उसे सामूहिक चुनाव कहते हैं। अथवा यह कहिये कि एकाकी रूप में नहीं वरन् सामूहिक रूप में उन पौधों का चुनाव जो बोनेवाले के ध्येय के समीप हैं। चुनाव के इन दो तरीकों का प्रयोग इस बात पर निर्धारित है कि खाद देना तथा बीज-निर्माण किस रूप में होता है। गेहूँ और धान जैसी फसलों में निश्चय रूप से बीज एक ही प्रकार के पौधे अथवा फूल में नर और मादा तत्वों के मेल से बनते हैं। इसे आत्म-उपज ऊपन कहते हैं। सरसों और मक्का-जैसी फसलों के बीज की रचना के लिए दूसरा नियम है, और वह यह कि एक पौधे के नर तत्व का मेल दूसरे पौधे के मादा तत्व से होना चाहिये। इसे 'दो-नसला' उपजाऊपन कहते हैं। इन्हीं साधनों द्वारा भूतकाल में अच्छे फल प्राप्त किये गए हैं, और अब भी किये जा रहे हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश उनकी अवधि केवल इन्हीं किस्मों तक सीमित है, जिनमें भिन्न भिन्न प्रकृति के इच्छित मेल पहिले से मौजूद हों। कभी-कभी हम उपयोगी प्रकृतियों को भिन्न-भिन्न किस्मों में बंटा हुआ पाते हैं। अब यहां समस्या रह जाती है कि इन समस्त या अधिक से अधिक सम्भव होने योग्य प्रकृतियों की पैवन्द लगाने की क्रिया द्वारा किसी विशेष प्रकार के पौधे कैसे संग्रहित किये जायं।

पौधों में पैवन्द लगाने की क्रिया चिरकाल से प्रचलित है और यह उपाय पौधों की उन्नति में बहुत सहायक सिद्ध हुआ है। यह तो प्रत्यक्ष है कि इस उपाय से उतनी दूर तक जा सकते हैं जितनी दूर भिन्न-भिन्न किस्मों की वर्तमान प्रकृतियों के सम्भव होने योग्य मेल हमें ले जा सकते हैं। एक ऐसी स्थिति भी आयेगी, जैसी कि कई बार सचमुच आयी भी है, जब इन प्रकृतियों का प्रत्येक सम्भव प्रयोग भी उद्देश्य की पूर्ति में असमर्थ रहेगा।

डाक्टर बी. पी. पाल पी० एच० डी०, भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्था में एकोनोमिक बोटेनिस्ट हैं।

अधिक उन्नति नई और बहुमूल्य प्रकृतियों के निर्माण अथवा अनुसंधान पर ही निर्भर है, और यही पौधों की पैदावार के आधुनिक उपायों का ध्येय है।

नई प्रकृतियों की खोज के प्रयत्नों को श्रेष्ठतर जीवाणु की खोज का नाम भी दिया जा सकता है। यह खोज दो दिशाओं में उन्नति कर रही है। पहिला रूप है स्थिति-भेद के अनेक प्रयत्न, जिनका तात्पर्य यह है कि पौधे की बनावट में स्थायी तथा पैतृक परिवर्तन कर दिये जायं और दूसरा रूप है उत्पत्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण से जंगली पौधों का यथाक्रम तथा पर्याप्त निरीक्षण, जिसके द्वारा उनमें बहुमूल्य प्रकृतियों की खोज की जाय। जब ऐसी प्रकृतियां उत्पन्न करली जायं अथवा उनकी खोज करली जाय, तब उन्हें यथायोग्य उपाय से नई फसल के पौधों में मिला दिया जायगा।

पैतृक परिवर्तन

पौधों में पैतृक परिवर्तन लाने के कई नियम हैं जिनमें 'ऐक्स-रे' (X-Ray) तथा 'अल्ट्रा वायोलेट' (Ultra-Violet) किरणें भी सम्मिलित हैं। सबसे सुगम तथा आधुनिक प्रयोग 'आलकेलायड कौलचीसीन' (Alkaloidcolchicine) है। यह एक औषधि है जो 'आटम क्रोकस' (Autumn crocus) और कौलचीकम के अंशों से तैयार की जाती है और चिरकाल से यह गठिया की विशेष औषधि के रूप में विख्यात है। पौधे की नसों पर इस अलकली का प्रभाव सन् १६३७ ई० में प्रकट हुआ था। उसी समय से यह प्रयोग नये पौधों की उत्पत्ति में प्रचुरता से काम में लाया जा रहा है। इस प्रणाली का सबसे अधिक लाभ यह है कि इसके द्वारा हम उन पौधों पर सफलतापूर्वक पैवन्द लगा सकते हैं जिनका आपस में बहुत दूर का सम्बन्ध हो अथवा जिनकी साधारण रूप से आपस में कलम न बांधी जा सके।

वर्ण शंकर पौधे

यदि उपयोगी परिणाम ग्रहण करने हो तो जंगली पौधों का पर्याप्त निरीक्षण आवश्यक होगा और इस निरीक्षण के अन्तर्गत संसार के बड़े-बड़े प्रदेश आ जाने चाहिये। भिन्न-भिन्न देशों से पौधे एकत्र करने के लिये साहसिक यात्राएँ की जानी चाहिये। इससे जो मसाला हाथ लगे उसकी सूक्ष्म परीक्षा होनी चाहिये और अन्त में उपयोगी प्रकृतियों के परम्परागत स्वभाव का अध्ययन तथा उनके आपसी सम्पर्क और परिस्थितियों के प्रभाव की परीक्षा भी आवश्यक है। यह कोई सहज कार्य नहीं है और मुट्ठी भर वैज्ञानिक इसे पूर्ण नहीं कर सकते। परन्तु वे बहुमूल्य लाभ, जो अब तक प्राप्त हुये हैं, उन असीम सम्भावनाओं को प्रकट करते हैं जो इस कार्य ने बीज पैदा करने वालों के लिये उपस्थित कर दिये हैं। हम कुछ उदाहरण देते हैं। बोये जाने वाले आलू पर व्याधियों का आक्रमण हो जाता है, जिससे पैदावार में कमी हो जाती है। इसके कुछ जंगली भाई बन्धु, जो दक्षिणी अमरीका में तलाश किये गये हैं, इन व्याधियों, के आक्रमण से मुक्त देखे गये हैं। अब इस अनमोल प्रकृति का आलू की बोई जानेवाली किस्मों में प्रवेश कराया जा रहा है। जर्मनी और रूस के पौधे पोसनेवालों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के पौधे में उत्पत्तियोग पैदा किये हैं, जैसे, गेहूँ का राई के साथ, 'एजाइलौप्स' (Aegilops) के साथ और 'एग्रोपाइरोन' (Agropyron) के साथ। गेहूँ और राई के उत्पत्ति योग को ट्रिटीमेल (Triticale) कहते हैं। यह बिल्कुल नया पौधा है। गेहूँ और एग्रोपाइरोन' के उत्पत्ति योग अपने स्वभाव की दृष्टि से बारह मासी पौधे हैं, अर्थात् बीज को प्रति वर्ष बोने की आवश्यकता न होगी जैसा कि गेहूँ के 'वार्षिक' रूप के अनुरूप करना होता है। इसी उत्पत्तियोग के पौधे के सम्बन्ध में यह बात दृढ़तापूर्वक कही जाती है कि वे इच्छायोग्य प्रकृतियां रखते हैं, जैसे व्याधियों के प्रति उच्च कोटि की अवरोध-शक्ति, अच्छी पैदावार और दानों का आकार में बड़ा होना।

कोयमबटूर का गन्ना

कई फसलें ऐसी हैं जिनकी बढ़िया किस्मों ने हिन्दुस्तान की कृषि-पैदावार में प्रत्यक्ष रूप से सहायता पहुँचाई है। सबसे अधिक प्रभावकारी सफलता गन्ने के सम्बन्ध में प्राप्त हुई है। हिन्दुस्तान में पहिले जिन गन्नों की खेती की जाती थी, वे पतले होते थे, पैदावार का परिणाम कम होता था; तथा गुण में भी घटिया होते थे। कोयमबटूर में बोये जानेवाले बढ़िया गन्ने स्थानीय किस्मों से अधिक पुष्ट, उपज में कईगुना अधिक और गुण में भी अधिक अच्छे होते हैं। कोयमबटूरी गन्ने चकित करने योग्य थोड़े-

से समय में देश भर में चारों ओर फैल गये हैं और अब गन्नों की खेती के काम में लाई जाने वाली समस्त भूमि का लगभग ८० प्रतिशत भाग पर इन्हीं उन्नतिशील किस्मों का प्रयोग किया जाता है। इन गन्नों के आर्थिक महत्व का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि जो भारतवर्ष अभी थोड़े दिन पहिले बाहर से चीनी मंगाकर गुजारा करने वाला देश था, वह अब चीनी के निर्यात के लिये बाहर मंडियां ढूढ रहा है। कुछ लोकप्रिय कोयमबटूरी गन्नों के कम्पनी नम्बर ये हैं—२०५, २१०, २१३, २१४, २४४, २८१, २६०, ३१३, ३३१, ४१६ और ४२१।

कपास की किस्में

प्रति एकड़ रूई की पंचवर्षीय औसत उपज १६२२-२७ तक ६६ पौंड थी और १६३७-४२ तक बढ़िया प्रकार के बीज बोने से औसत उपज १०६ पौंड तक पहुँच गई। प्रान्तों तथा देशी राज्यों के कृषि-विभाग के मतानुसार १६४३-४४ में बढ़िया प्रकार के बीज बोने वालों की कुल अधिक आय प्रति एकड़ १२ रु० ८ आने थी। इसी वर्ष अहमदनगर में जरीला नामक श्रेष्ठ बीज बोने के कारण ३८० से ३६० रु० तक के मध्य लाभ हुआ, जब कि स्थानीय प्रकार के बीज बोने से केवल प्रति कैंडी ३२० से ३२५ रु० तक के मध्य लाभ रहा। हैदराबाद राज्य में स्थानीय सौरावी नामक रूई बहुत काल से बोई जाती थी। इसकी पैदावार बहुत कम, बिनौले अलग करने पर रुई के रूप में कम मात्रावाली और स्वच्छतापूर्वक चुनी-जाने के एकदम अयोग्य थी। एक उन्नत बीज जिसका नाम गौरानी नम्बर ६ है वहां के कृषि विभाग में १६३८ ई० में पैदा किया गया था। अगले तीन वर्षों में कुछ गांवों में कृषकों के खेतों में ही स्थानीय बीज के मुकाबले पर इसकी परीक्षा की गई, जिसके फलस्वरूप इसको बिनौले के रूप में अधिक आयवाली, कपास में बढ़िया तथा ओटने-कातने में भी सुगम पाया गया। इस प्रकार इस बीज के प्रयोग द्वारा सन् १६३७-४१ ई० में २४ लाख रुपये की अधिक आय हुई। भारतीय केन्द्रीय कपास कमेटी विभिन्न प्रदेशों के लिये कपास की उन्नत किस्मों की सिफारिश की है। बम्बई प्रांत में 'जरीला', 'सुयोग', 'जयवन्त', तथा नम्बर १०२७ लोकप्रिय हैं। सिन्ध प्रांत में सिन्ध-अमरिकन कपास, 'सिन्धसुधार' तथा '२८६ एफ' बढ़िया मानी जाती हैं। पंजाब में '२८६ एफ०' । के० २५, '२८६ एफ। ४३, ४ एक, तथा 'एफ० एस० एस०' विशाल भू भागों में बोई जाती हैं और मध्य प्रांत में 'वी ४३४' बढ़िया किस्मों में सबसे अधिक विशिष्ट है।

गेहूँ की किस्में

गेहूँ की कई उन्नत किस्में भी किसानों में बड़ी लोकप्रिय हैं। बिहार प्रांत में पूसा नामक स्थान पर उत्पन्न किये गये प्रसिद्ध गेहूँ अधिक उपज तथा श्रेष्ठ गुणों के कारण बहुत नाम पा चुके हैं और उनमें से कई तो कृषि विभागों द्वारा अधिक उपज की यथाक्रम परीक्षाओं में पूरे उतरे हैं। पूसा में इसी प्रकार की एक परीक्षा में सन् १६३२-१६३५ के बीच में 'आई० पी० ५२' गेहूँ की स्थानीय गेहूँ के प्रतिकूल प्रति एकड़ आय १,२१६ पौंड थी जबकि स्थानीय गेहूँ की उपज केवल ८८४ पौंड थी। आई० पी० ५२ गेहूँ बिहार और पूर्वी युक्त प्रांत के अनेक कृषकों का बहुत प्रिय गेहूँ है। दूसरा अच्छे प्रकार का बीज 'आई० पी० १६५' है जो कि आस्ट्रेलिया की फेडरेशन तथा 'आई० पी० ४' नामक किस्मों के योग से पैदा किया गया था। यह बीज सारे उत्तरी भारत के लिए बड़ा आशाजनक प्रतीत हो रहा है। यह पैदावार में बहुत बैठता है, दाना बड़ा और खुशनुमा होता है और भुर्री तथा गेरुई जैसी बीमारियों का डटकर मुकाबला कर सकता है। 'आई० पी० १११' गेहूँ 'आई० पी० ४' से ही छांटा गया है और पिसाई तथा रोटी बनाने की परीक्षा में पूरा उतरा है। यह गेहूँ ठोस होता है, इसका दाना बड़ा और सुन्दर होता है और पिसाई तथा रोटी बनाने में इसकी प्रशंसा सर्वश्रेष्ठ मनीटोबान गेहूँ के सामान है। पंजाब के कृषि-विभाग के बढ़िया गेहुँओं में से 'सी० ५१२' और 'सी० ५६१' की बाजार में अत्यन्त मांग है और वे विस्तृत भूखंडों में बोये जाते हैं। इनसे पैदावार भी अधिक होती है और 'सी० ५६१' का दाना तो बहुत ही अच्छी श्रेणी का होता है। निम्नलिखित सूची से कुछ सर्वश्रेष्ठ गेहुँओं का संक्षिप्त वर्णन मिलेगा जो उत्तर भारत में पैदा किये गये हैं और साथ ही उनके योग्य भूमि की सूचना भी मिलेगी। पर इतना ध्यान अवश्य रहे कि भूमि आदि के कारण एक ही स्थान पर भेद उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिये विशेष ज़िलों में नई श्रेणी का बीज बोने के लिये किसी विशेषज्ञ की अनुमति अवश्य लेनी चाहिये।

सूची १

कुछ मुख्य प्रकार के गेहूँ तथा उनके योग्य भूमि

श्रेणी	विवरण	योग्य भूमि
आई० पी० ४	जटा रहित, भुर्चा रोकनेवाला, बीच का आकार; ठोस दाना, तराई में बोने योग्य, भारी मिट्टी में चावल की फसल के पश्चात् बोने योग्य, सुअरों द्वारा हानि का भय।	बम्बई, बड़ौदा, युक्त प्रांत तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत।
आई० पी० ५२	जटाधारी, पकने में मध्य श्रेणी का, भुर्चा रोकने वाला, प्रचुर उपज, श्रेष्ठ गुण, ठोस दाना।	मध्य प्रांत और बरार, बम्बई, बड़ौदा, बिहार और बंगाल तथा आसाम के कुछ भाग।
आई० पी० ८०-५	पकने में तनिक शीघ्र जटा रहित भुर्चा रोकने वाला, दाना आई० पी० ४ की तरह।	आसाम, बंगाल, पंजाब के पहाड़ी भाग तथा मद्रास के कुछ भाग में जिनमें पहाड़ी भाग भी सम्मिलित हैं।
आई० पी० १११	शीघ्र पकनेवाला, जटा रहित, भुर्चा रोकने वाला, दाना गुण में अच्छा।	संयुक्त प्रांत तथा मद्रास के पहाड़ी प्रदेश।
आई० पी० १२५	पकने में मध्यम, भुर्चा रोकने वाला, जटाधारी, पैदावार में अति उत्तम, दाना गुण में अच्छा।	दक्षिण पूर्वी पंजाब, पश्चिमी युक्त प्रांत तथा बलोचिस्तान।
आई० पी० १६५	शीघ्र पकने वाला, जटारहित, भुर्चे का डटकर मुकाबला करने वाला, पैदावार में बहुत उतरने वाला, बहुत बड़ा तथा बढ़िया दाना।	पंजाब के कुछ भाग, बलोचिस्तान, बिहार, रियासत कच्छ, युक्त प्रांत तथा आसाम।
आई० पी० ११४	सीधी नाली सहित उगने में ऊँचा, काली जटा, गोल दाना, स्थूल, छोटा तथा गहरे अम्बरी रंग का, यदि पकने के पश्चात् भी खड़ा छोड़ दिया जाय तो दाना झड़ने का भय, भुर्चा रोकने की सामर्थ्य।	सिन्ध।
कानपुर १३	जटाधारी, शीघ्र पकने वाला, पैदावार में बढ़िया, युक्त प्रान्त के आबपाशी और गैर आबपाशी दोनों प्रदेशों के योग्य जहां गेहूँ बोया जाता है, दाना अधिकतर सफेद, अर्धकठोर तथा पुष्ट।	युक्त प्रांत और बड़ौदा।
पंजाब सी० ५१८	जटाधारी, मोटा छिलका, अम्बरी दाना तथा अर्धकठोर, नाल पुष्ट तथा छोटी, गिरने का डटकर मुकाबला करने वाला, बहुत कुछ पीली तथा काली भुर्चा को रोकनेवाला, पहिली का विशेषकर, सिंचाई की उपजाऊ धरती में खूब पैदावार देनेवाला, हल्की धरती के अयोग्य।	पंजाब तथा उत्तरपश्चिमी सीमाप्रांत
पंजाब सी० ५९१	बाल जटाधारी, छिलका बीच की श्रेणी का, दाना [illegible] तथा देखने में भारतवर्ष के सब गेहूँओं	पंजाब तथा उत्तर-पश्चिमी सीम प्रांत।

	से सुन्दर, लम्बी नाज, न गिरनेवाला, जड़ में फुटाव औसत श्रेणी का होता है, पीली भुर्चा तथा हल्की गेरुई का भय, रोटिया बढ़िया बनती हैं, बाजार में दाने का अच्छा लाभ उठाता है।	
पंजाब ८-ए०	जटाधारी, छिलका बीच की श्रेणी का, दाना अम्बरी, कठोर, निर्बल बाल, गिरने का भय, जड़ के फुटाव में प्रचर।	पंजाब तथा सिन्ध।

उन्नत किस्मों के बीज

बंगाल, बम्बई और मद्रास के कृषि विभागों ने समय समय पर धान के उत्तम बीज उत्पन्न किये हैं तथा बोआई के लिये उनका वितरण किया है। बंगाल का इंद्रसेल, मद्रास का 'जी० ई० बी० २४' और बम्बई का 'के० १५४' तथा के० ५४०' विशेषतया वर्णन योग्य हैं।

उपर्युक्त वर्णन से यह तो प्रकट हो गया होगा कि प्रांतीय तथा केन्द्रीय कृषि-विभागों और अनेक फसल-कमेटियों ने भारतवर्ष में अन्न-वृद्धि के कार्य में वास्तविक योग दिया है। अधिक उन्नति के लिये तथा उन अनिवार्य समस्याओं के समाधान के लिये जो अनिवार्य रूप से समय समय पर प्रकट होती रहेंगी, उन्होंने पैदा किये हुये बहु-मूल्य पौधों के मूलधन को पोसने के उद्देश्य से प्रयोग-शालाओं का निर्माण किया है।

उत्तम प्रकार के पौधों से किसान पूरा लाभ केवल उसी समय उठा सकते हैं जबकि उनके बीज पर्याप्त मात्रा में उनको उपलब्ध होते रहें। इतने बड़े देश की मांग को पूरा करने के लिये बढ़िया प्रकार के बीज को उत्पन्न करने का काम ये प्रयोगशालाएं नहीं कर सकतीं। अतः इस कार्य के लिए हमें एक अन्य संस्था की स्थापना करनी होगी। प्रयोगशालाएं बढ़िया श्रेणी के शुद्ध बीजों की संख्या वृद्धि के लिये 'बीज खेतों' का निर्वाह करेंगी। वहां के बीज उन रजिस्ट्री किये हुये बीज पोसनेवालों के पास भेज दिये जाया करेंगे जिनका कार्य फिर प्रचुरतापूर्वक बीज की संख्यावृद्धि करना होगा। यह अनुमान किया जाता है कि ऐसे बीजों के वितरण के लिये तथा इस पर व्यर्थ किये गये धन की वस्तुयें अथवा रुपये के रूप में प्राप्ति के हेतु ५०० बीज-गोदामों की स्थापना करनी होगी। कुछ स्थितियों में, जैसे कपास तथा तम्बाकू में जहाँ पैदावार की एकरूपता की ओर विशेष ध्यान दिया जायगा, वहां किसी स्थान में किसी विशेष किस्म के बीज से खेती करना अनिवार्य ठहराना होगा। किसानों को भी प्रेरित किया जायगा कि वे अपना बीज सरकारी अथवा साझे की पूंजी से चलाये जाने वाले बीज गोदामों से या किसी लैसंसदार बीज-विक्रेता से ही मोल लें।

व्यवस्थित अनुसन्धान

पौधे की उत्पत्ति का भविष्य बड़ा उज्वल है क्योंकि भिन्न-भिन्न संस्थाओं के कार्यकर्ता देश की माँग तथा उनको पूरा करने के भिन्न-भिन्न उपायों से परिचित हैं। उपरोक्त थोड़े से उदाहरण इस बात को सिद्ध करते हैं कि इस दिशा में उपयोगी परिमाणों की कमी नहीं है। परन्तु इस विषय में यह भी दृढ़ता के साथ कहना होगा कि नये तथा उत्तम श्रेणी के पौधों की अधिक उन्नति का कार्य इतना सरल नहीं है जितना पहिले था। उत्पत्ति के अव्यवस्थित साधनों के लिये अब कोई गुंजाइश नहीं है, चाहे यह छाँट हो अथवा उत्पत्ति-योग। किसी विशेष फसल की पैदावार के लिये सारगर्भित विचार करना होगा, फिर निश्चित कार्य-प्रणाली द्वारा इसे कार्य रूप में ढालना होगा, क्योंकि बुद्धिमानी द्वारा तथा विचार-पूर्वक किये गये व्यवस्थित अनुसन्धान पर ही अधिक उन्नति निर्भर है।

भारतवर्ष में कृषि की पैदावार की वृद्धि के बहुत-से साधनों में एक यह भी है कि अधिक धरती कृषि के प्रयोग में लाई जाय। आजकल ऐसी ऊसर धरती का क्षेत्रफल जो कृषि-योग्य बनाई जा सकती है, लगभग २५ करोड़ एकड़ होगा। अवश्य ही भिन्न-भिन्न जलवायु के प्रभाव के कारण इस धरती में हर प्रकार की मिट्टी मौजूद है, जिसमें रेतीली तथा जंगली मिट्टी भी सम्मिलित है। पौधे उगानेवाले का भविष्य में यह

कार्य होगा कि इन भूमि खन्डों में से प्रत्येक में वहां की जलवायु तथा मिट्टी का ध्यान रखते हुये सबसे अधिक उत्पादक बीजों को अनुकूल बनाये। इस प्रकार कई जगह यह आवश्यक होगा कि वर्त्तमान पौधों के वंशपरम्परा-प्राप्त गुणों को परिवर्तित कर दिया जाय अथवा उनकी जगह बिल्कुल नये पौधे उगाये जांय। थोड़े में यह कहा जा सकता है कि पौधे के परम्परा-प्राप्त गुणों और उनके परिवर्तन के उपायो से जानकारी के साथ पौधे पोसनेवाले से यह आशा की जा सकती है कि आज्ञानुसार नये पौधे उत्पन्न करने में समर्थ हो सके। बस एक बार नई धरती हल के नीचे आ जाय, भविष्य पौधे पोसनेवाले के हाथ में ही समझो।

दुग्धशाला के लिए भैंस

श्री ए० जे० लज़ारस

भैंस उष्णकटिबन्ध का प्रसिद्ध दूध का पशु है। इसके दूध में चिकनाई की मात्रा अधिक होती है। पूर्वी देशों में यह मनुष्य के एक मूल्यवान खाद्य पदार्थ के रूप में बहुत लम्बे समय से काम में लाया जाता रहा है। इसने भारतवर्ष में दुग्धशाला के पशु के रूप में अपने लिये मुख्य स्थान प्राप्त कर लिया है और गाय के लिये एक गंभीर प्रतिद्वन्दी बन गई है। गाय देश के मैदानों में और साधारण ऊंचे स्थानों में भैंस की संख्या बहुत है। भारतवर्ष के २१ करोड़ ५० लाख पशुओं में केवल भैंसों की संख्या लगभग ५ करोड़ है। देश के] लगभग ७५०,०००,००० मन दूध उत्पादन में से ३५०,०००,००० मन दूध केवल भैंस ही देती है। गाय और भैंस में से दुग्धशाला के लिए कौन सा पशु उपयोगी है, इस बात को लेकर देश में काफी वादविवाद चलता रहा है, और भैंस को अनुपयोगी तथा गाय को उपयोगी सिद्ध करने के लिए बहुत से प्रमाण दिए गये हैं। गाय एक लम्बे अनिश्चित काल से दुग्धशाला के लिए श्रेष्ट पशु समझी जाती रही है। इसलिए संक्षिप्त रूप में यह बता देना अच्छा होगा कि इस देश में भैंस पालने का आरम्भ कब हुआ और भारतवर्ष के दुग्धशाला व्यवसाय में इसकी मुख्य स्थिति क्या है।

यद्यपि भारतवर्ष में लोग भैंस से बहुत लम्बे समय से परिचित हैं, परन्तु फिर भी यह ठीक ठीक नहीं बताया जा सकता कि घरों में इसका पालना कब से आरम्भ हुआ। इस विषय पर हमारी धार्मिक पुस्तकों में वर्णन नहीं मिलता, उन सबका ध्यान गाय की ओर ही था। हिन्दू धर्म में गाय की स्थिति प्रभावशाली होते हुए भी भैंस को घरों में पाला गया प्रसिद्ध कौटिल्य अर्थशास्त्र में एक स्थान पर भैंस और उसके दूध में अधिक मक्खन होने का वर्णन है।

गाय को उच्च स्थान प्राप्त होने का एक मुख्य कारण यह है कि वह दूध देने के साथ साथ भार ढोने के लिये बैल भी देती है। भारतवर्ष जैसे कृषिप्रधान देश में यह निःसंदेह एक उत्तम दलील है। लेकिन दुर्भाग्यवश जनता और सरकार दोनों ने भैंस की वैज्ञानिक और प्रणाली बद्ध उन्नति की ओर विशेष कर भार खींचने के उद्देश्य से, अधिक ध्यान नहीं दिया। अधिकतर लोगों का यह विश्वास है कि भैंस एक कुरूप और सुस्त पशु है और भैंसे भार ढोने के अयोग्य होते हैं। यह विचार कुछ गलत सा मालूम पड़ता है। ऐसा अनुमान है कि भैंस की उत्पत्ति जंगली भैंस से है जो अपनी तीव्रता, भयंकरता और सघन बनों में तेजी से घूमने फिरने के लिये प्रसिद्ध है। इससे स्पष्ट है कि यदि भैंसों को केवल भार वहन के लिए ही शिक्षित किया जाय तो ये बहुत अच्छे सिद्ध हो सकते हैं। भारतवर्ष में सिंचाई के विकाश के साथ साथ लोग भैंसों को पसंद करने लगे हैं क्योंकि यह पशु दलदली और कीचड़ वाली भूमि के लिए अधिक उपयोगी है। फार्मों की पैदावार को गाड़ियों में भर कर ढोते समय यह अपनी धीमी चाल की कमी को अपनी अधिक से अधिक भारी बोझा खींचने की शक्ति से पूरा कर देता है। गन्ना पेरने में और इसी प्रकार के अन्य भारी कामों में भैंसा बहुत अच्छा सिद्ध हुआ है। संयुक्त प्रांत, बङ्गाल, उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रांत, तथा अन्य प्रांतों में भारी कामों के लिए इसको बहुताइत से काम में लाया जाता है।

भैंस को दुग्धशाला व्यवसाय के लिये पालने की दृष्टि से यह देखा गया है कि इसके लिये, खल, लूसन घास आदि कीमती खाद्यों का आवश्यकता नहीं होती। यह किसी भी प्रकार के खाद्य पर निर्वाह करके अच्छा दूध देती रहती है। भैंस के दूध का उत्पादन का औसत १,२७० पौंड प्रतिवर्ष है, जब कि गाय का औसत ५२५ पौंड प्रति वर्ष है अर्थात् भैंस के दूध का उत्पादन गाय की अपेक्षा तिगुना है। कृषि के लिए शाही कमीशन (१६२८) की रिपोर्ट के अनुसार यदि खाद्य और चारे का मूल्य कम हो तो मक्खन की पैदावार में भैंस किसी भी नसल का मुकाबला कर सकती है, और मक्खन तथा दूध पैदा करने में साधारण गाय को हरा सकती है। यही कारण है कि देहाती लोग गाय की अपेक्षा भैंस पालना अधिक पसंद करते हैं, यद्यपि भैंस मोल लेने के लिए उन्हें बहुत पैसा

श्री ए० जे० लजारस, भारतीय दुग्धशाला अनुसंधान संस्था बंगलौर के सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं।

खर्च करना पड़ता है। यदि हम भैंस के दूध के गुणों पर और विशेष कर दूध की चिकनाई के अंश पर विचार करें तो निश्चय ही दूध देने वाले पशुओं में वह सबसे कम खर्चीली है। जहां कहीं भी घी के मुख्य बाजार हैं, वहां पर भैंस ही उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। डा० राइट (१९३८) के अनुसार भारतवर्ष और बर्मा में दूद की कुल ६६०,०००,००० मन मात्रा में से ३१.२ प्रतिशत द्रव दूध के रूप में खर्च हो जाता है, और शेष दूध से बने हुए पदार्थों के रूप में काम में लाया जाता है, इनमें से मुख्य पदार्थ घी है ५२.७ प्रतिशत। इसका कारण केवल यही नहीं है कि यह देश के शाकाहारी लोगों के लिये भोजन का एक पोषाक अंग है, बल्कि यह भी है कि भोजन के पदार्थों को अधिक समय तक सुरक्षित रखने में दूध को काम में लाया जाता है, और इसके लिए इस दूध को बहुत बड़ी मात्रा में घी के रूप में बदल लिया जाता है। भारतवर्ष में दूध से तैयार होने वाले पदार्थों में घी मुख्य है, और आधे से अधिक दूध केवल इसी उद्देश्य के लिए काम में लाया जाता है। भैंस के दूध की विशेषता इससे प्रमाणित हो जायगी कि उसमें चिकनाई का अंश बहुत अधिक है और गाय के दूध की अपेक्षा दुगुना है। जहां पर दूध द्रव रूप में काम में लाया जाता है, उस दशा में भी १२ प्रतिशत दूध काफी तथा अन्य प्रकार के मादक द्रवों से साथ मिलाकर काम में लाया जाता है, इस कार्य के लिए भी भैंस का दूध अधिक पसंद किया जाता है। भैंस की अपेक्षा गाय का दूध उत्तम बताने के लिए एक दूसरी दलील दी गई है। बहुत दिनों से यह विश्वास चला आ रहा है कि भैंस का दूध मनुष्य के लिए विशेषतः बच्चों को पिलाने के लिए इतना उपयोगी नहीं जितना कि गाय का दूध। इस प्रश्न पर अब भी वादविवाद किया जा सकता है। इस बारे में किये गये अभी हाल के अनुसंधान ने इसके विषय में कुछ विवादास्पद विचार प्रगट किए हैं। बच्चे के लिये मां का दूध सब से उत्तम होता है, गाय का दूध भी उसके लिये अनुकूल बनाना पड़ता है। मनुष्यों के लिए भैंस का दूध उत्तम नहीं है, इसके लिये केवल एक ही दलील दी जाती है कि इसके दूध में चिकनाई का अंश अधिक होता है। और करोटिन (Carotene) की कमी होती है। दूध की चिकनाई को आवश्यकतानुसार हलका किया जा सकता है, और अन्य खाद्यों के द्वारा करोटिन (Carotene) की भी पूर्ति की जा सकती है। यदि इतने पर भी इस कमी को कमी ही समझा जायगा तो भी भैंस को दुग्धशाला के लिए पालने के पक्ष में जो अन्य लाभ ऊपर बताये गये हैं वे ही इसके पक्ष को अधिक भारी कर देंगे। इसलिये हमारे देश के दुग्धशाला उद्योग के लिये यह एक प्रसन्नता की बात होगी कि भैंस पालने के लिये अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिया जाय।

नीचे दी हुई भैंसों की कुछ प्रसिद्ध नसलें हैं जो हमारे देश में पाई जाती हैं। आजकल कुछ सरकारी फर्मों में और व्यक्तिगत पशुपालकों दोनों के यहाँ इनमें से कुछ की ओर बहुत ध्यान दिया जा रहा है :—

मुर्रा या दिल्ली भैंस
पंजाब की नीली या रावी भैंस
काठियावाड़ की जफराबादी भैंस
सूरती या नाडियाद भैंस
एलिचपुर या नागपुर भैंस

मुर्रा भैंस

मुर्रा इस देश में भैंसों की सबसे प्रसिद्ध नसल है, और दक्षिणी पञ्जाब इसका घर है। मुर्रा भैंसें रोहतक, करनाल और दिल्ली में अधिकता से पाई जाती हैं। इन भैंसों के सींग छल्लेदार मुड़े हुये होते हैं, मुर्रा का अर्थ छल्लेदार मुड़े हुये जो काले या बादामी रंग के होते हैं। ये भैंसें सबसे अधिक दूध देनेवाली होती हैं। भारतवर्ष में बहुत से भागों में स्थानीय नसलों को उन्नत करने के लिये इन भैंसों को यहाँ पर पाला गया है। इस भैंस का औसत भार १,००० से १,२०० पौंड तक होता है और भैंसे का भार १,२०० से १,५०० पौंड तक। इस नसल की सबसे अच्छी भैंस ने १०,००० पौंड से भी अधिक दूध दिया है। भारतीय दुग्धशाला अनुसन्धान संस्था में इस नसल की भैंस ने ३०० दिनों में ४,५०० पौंड दूध दिया है।

भैंस की नीली नसल

इस नसल का यह नाम सतलज नदी के गहरे नील वर्ण के जल के कारण पड़ा है। इस नसल का घर मिंटगुमरी, मुलतान और फीरोजपुर जिले हैं। इस नसल की विशेष पहचान यह है कि पास पास मोड़े छल्लेदार सींग, टांग, पुट्ठे, चेहरे, और माथे पर काले व सफेद रंग के

... और पूंछ का झब्बा सफेद होता है। इस नसल की ... का औसत भार ६०० से १,००० पौंड तक और भैंसे ... भार १,००० से १२,०० पौंड तक होता है। बहादुर ...ार के सहायता प्राप्त फार्म में पंजाब सरकार इस नसल ... एक समूह पाल रही है। इससे दूध की औसत प्राप्ति ५० दिनों में ३,५०० पौंड है।

रावी नसल

इस नसल का यह नाम रावी नदी की घाटी के कारण पड़ा है। इस नसल का घर लायलपुर जिला है। इस नसल की विशेषता काली या कभी कभी बादामी रङ्ग की कंजी आँखें और सफेद चितके हैं। सींघ चौड़े मोटे और जड़ से पीछे की ओर को मुड़े हुये होते हैं। इस नसल की साधारण भैंस २५० दिनों में लगभग ४,००० पौंड दूध देती है।

जफराबादी नसल

ये भैंसें काठियावाड़ के गीर जंगलों में पाई जाती हैं। ये बहुत बड़ी और स्थूलकाय भैंसें होती हैं। इन्हें प्रारंभ में राजे महाराजे या सरदार युद्ध के उद्देश्य से पालते थे। उनका माथा बहुत सुन्दर होता है, सींघ भारी होते हैं, जो गर्दन के दोनों ओर लटकते हुये सिरे पर कुछ मुड़े हुये से होते हैं। इस नसल की अच्छी भैंस एक दिन में लगभग ३० से ३५ पौंड तक दूध देती है।

सूरती नसल

यह बम्बई प्रान्त की नसल है। इसके सबसे अच्छे नमूने नाडियाड़ और केरा जिले के आनन्द और बुलसर ताल्लुकों में पाये जाते हैं। कृषि कालेज दुग्धशाला, पूना इस नसल का एक शुद्ध समूह पालती है। इस नसल की अच्छी भैंस एक दिन में लगभग २० से २५ पौंड तक दूध देती है।

नागपुरी भैंस

यह नसल अधिकांश रूप से मध्य प्रदेश और दक्षिण भारत में पाली जाती है। इसके सींघ बहुत लम्बे, चपटे और गर्दन के दोनों ओर पीछे की ओर झुके हुये तथा अक्सर कन्धों से भी आगे पहुँचे हुये होते हैं। भैंसे अक्सर भार खींचने के लिये काम में लाये जाते हैं, परन्तु ये धीमे बहुत होते हैं। भैंस अच्छा दूध देनेवाली समझी जाती है। इस नसल की अच्छी भैंस प्रतिदिन लगभग १५ से १८ पौंड तक दूध देती है।

भैंस का सामूहिक प्रबन्ध

भैंस एक बहुत ही समझदार पशु है। इसलिये इसके साथ ध्यानपूर्वक व्यवहार करना चाहिये। भारतीय दुग्धशाला अनुसन्धान संस्था में भैंसों का एक बड़ा समूह पाला गया। उससे जो अनुभव प्राप्त हुये हैं उनको नीचे दिया जाता है ताकि दूध देने वाली भैंसों के पालन पोषण के सम्बन्ध में अच्छी सफलता प्राप्त की जा सके।

भैंस तीन या चार साल की आयु में जवान हो जाती है। यदि अच्छी तरह से खिलाया पिलाया जाये तो और भी जल्दी जवान हो जाती है। यदि कोई भड़कीली हो तो उसे हाथ से पकड़ कर अलग हटा देना चाहिये।

बच्चा देने से पहिले भैंस का प्रबन्ध

भैंसें जो पहिले बच्चा दे चुकी हैं और जिनका दूध देने का समय समाप्त हो चुका है उनका दूध अगली बार बच्चा देने से एक या दो महीने पहिले अच्छी तरह सुखा देना चाहिये। इसके लिये धीरे धीरे दिन में एक बार दूध दुहने तक आ जाना चाहिये और इसके पश्चात् दुहने का समय का अन्तर और भी बढ़ाते रहना चाहिये यहां तक कि पशु का दूध पूर्णतः सूख जायेगा।

इस दूध न देने के समय में भैंस को अच्छी तरह से खिलाना पिलाना चाहिये ताकि वह बच्चा देने के समय की पीड़ा को सहन कर सके और अगली बार अच्छा दूध दे सके। इस समय दिया जानेवाला खाद्य पौष्टिक और सुगमता से पच जानेवाला, होना चाहिये। यह खाद्य गर्भस्थ बच्चे को पुष्ट करनेवाला, भैंस की शक्ति और मांस बढ़ानेवाला होना चाहिये। सभी प्रकार की भैंसों के लिये खाद्य की सूची नीचे दी गई है।

यदि भैंसों को अच्छी तरह पालना है तो इनको खिलाये जानेवाले खाद्य की मात्रा का नियमित रूप से अनुगमन करना चाहिये।

सानी के लिये मिश्रण तैयार करने के लिये नीचे लिखी वस्तुएं मिलाई जाती हैं:—

चोकर	४ भाग
खली	२½ भाग
चरी या छिलके	२ भाग
चने का दाना	१½ भाग

कुल जोड़ १० भाग

सूची १

भैंसों के लिए खाद्य की मात्रा

पशु की श्रेणी	सूखा चारा	हरा चारा	भूसा	मूंगफली या मनबीज की खली	चनों की या अन्य प्रकार की चूनी	सानी के लिए मिश्रण	दली हुई जई या जौ	गेहूं या चावल का चोकर	गुड़	सोंठ का चूर्ण	दूध	मक्खन अलग किया दूध	नमक	खनिज या खाने का आद्य
	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौं.	औं.	पौंड	पौंड	औंस	औंस
एक माह का बच्चा											६-७			
१-२	—	२-५	१	—	—	—	½	½	—	—	६	२	¼	¼
२-३	—	५-१०	½	½	—	—	¾	½	—	—	५	४	¼	¼
३-६	—	१०	½	१	—	—	¾	¾	—	—	२	६	¼	¼
६-९	—	२०	½	¾	—	—	½	१	—	—	—	—	¼	¼
९-१२	—	२०	—	¾	—	—	½	१	—	—	—	—	¼	¼
१-२ वर्ष का बच्चा	२	२८	—	¼	½	—	चना दाना ¼	१	—	—	—	—	½	¼
२-३	४	३०	—	½	½	—	चना दाना ½	१½	—	—	—	—	½	¼
२० प्रति दिन दूध देने वाली भैंस	३	७०	—	¾	१	९	—	—	—	—	—	—	१	½
दूध न देने वाली भैंस	३	७०	—	—	—	४	—	—	—	—	—	—	१	½
बच्चे वाली भैंस	३	७०	—	—	—	३	—	—	—	—	—	—	१	½
तुरन्त की ब्याई भैंस	३	७०	—	—	—	—	—	१०	१	१	—	—	१	½
केवल ४ दिन की भैंस	८	५०	—	—	—	५	—	—	—	—	—	१	½	

बच्चा देना

भैंस को बच्चा देने से तीन या चार सप्ताह पहिले अन्य पशुओं से अलग कर देना चाहिए। उसे एक आराम दायक और हवादार घर में रखना चाहिए ताकि वह उस बच्चा देने के स्थान के लिए अभ्यस्त हो जाय। बच्चा देने के समय भैंस को उभाड़ना नहीं चाहिए। अपरिचित लोगों की उपस्थिति से पशु अनावश्यक रूप से उभड़ जाते हैं। बच्चा देने के बाद ही भैंस को हल्का भोजन देना चाहिए और गुनगुना पानी पिलाना चाहिए, क्योंकि उस समय उसके पचाने वाले अंग प्रसव के कारण कमजोर हो जाते हैं। उसे सानी का मिश्रण बहुत कम मात्रा में देना चाहिए, उसे बाद में धीरे धीरे बढ़ा देना चाहिए। पूरा खाद्य उसी समय देना चाहिए जब भैंस बच्चा देने के पश्चात् पूर्णरूप से स्वस्थ हो जाय। पशु को बच्चा देने के बाद साधारण

ठीक अवस्था में आने के लिये लगभग तीन या चार सप्ताह लग जाते हैं।

बच्चा पैदा होने के बाद उसका नाल काट देना चाहिये। इस काम के लिये शुद्ध कैंची और विष विनाशक घोल काम में लाना चाहिये, तत्पश्चात रेशम की पट्टी से बांध देना चाहिये। नाभी के द्वारा पैदा होने वाली बीमारियों से बचने की सबसे अच्छी रीति यह है कि नाल को जहां से काटा गया हो वहां प तेजाब रुई का घोल (Collodien) या स्टाकहोम की बनी हुई राल की सील लगा देनी चाहिये उसके बाद नाल को सिकोड़ने के लिये आयोडिन को पोत देना चाहिये या नीलाथोथा अथवा तूतिया मल देना चाहिये। यदि इसकी उपेक्षा की जायगी तो नाल के द्वारा कीटाणु प्रवेश कर जायंगे और नाना प्रकार की बीमारियाँ पैदा कर देंगे। इन बीमारियों से पशुओं के बच्चों की अक्सर मृत्यु हो जाती है।

बच्चे का पालन पोषण

आमतौर पर बच्चों को पालने की दो विधियां हैं— प्राकृतिक विधि और कृत्रिम विधि।

प्राकृतिक विधि:—इसको लगभग सभी किसान काम में लाते हैं। इसके लिये बहुत कम ध्यान और परवाह की आवश्यकता पड़ती है। बच्चा अपनी मां का दूध पिलाकर पाला जाता है। अक्सर भैंस बच्चा देने के बाद उठ खड़ी होती है और बच्चे को चाटना आरम्भ कर देती है। इससे बच्चे की श्वास क्रिया और रक्त सञ्चालन में तीव्रता आ जाती है। भैंस से उसका बच्चा अवश्य ही चटवाना चाहिये. अपने हाथ से उसके शरीर पर लगी हुई आंव (देनी चाहिये और इसके बाद कपड़े या टाट से भली भांति पोंछ देना चाहिये। यहां तक कि उसका शरीर भली भांति सूखा हो जाय।

कृत्रिम या जन्म से ही दूध छुड़ाने की विधि:— इस विधि के अनुसार बच्चे को जन्मते ही उसकी मां से अलग कर लिया जाता है, भैंस को इस बात को पता भी नहीं लगने दिया जाता। भारत की गायों और भैंसों में यह कार्य अवश्य ही आरम्भ से ही करना चाहिये क्योंकि यदि एक बार भैंस या गाय अपने बच्चे की उपस्थिति जान जायगी तो वह बिना बच्चे को जा गाये कभी भी दूध नहीं देगी। जन्म से ही बच्चे का दूध छुड़ा देने से शुद्ध व साफ दूध प्राप्त करने में सहायता मिलती है और इस बात का भी हिसाब ठीक रक्खा जा सकता है कि भैंस कितना दूध देती है, इस प्रकार भैंस को खुराक नियत करने में सहायता मिलती है। इस विधि के अनुसार ऐसी भैंस को जिससे कोई लाभ नहीं हो दूध देने का समय समाप्त होते ही अलग किया जा सकता है। बच्चों का जन्म से ही दूध छुड़ा देने से भैंस की मातृत्व शक्ति नष्ट हो जाती है और जल्दी ही गाभिन हो जाती है इसका परिणाम यह होता है कि वह जल्दी जल्दी बच्चे देती रहती है। इस प्रकार किसान को बहुत लाभ होता है और साथ ही साथ बच्चे को भी कोई कष्ट नहीं होता क्योंकि उसको कृत्रिम रूप से पूरी खुराक मिलती रहती है। अन्त में यदि बच्चा मर जाता है तो भी भैंस दूध देती रहती है।

बड़ी भैंसों के साथ व्यवहार और उनका प्रबन्ध

निश्चयरूप से सफलता पाने के लिये अच्छे घर की व्यवस्था और अच्छी खुराक अत्यन्त आवश्यक है। भैंस एक धैर्यहीन पशु है, इसलिये इसके साथ दयालुता से व्यवहार करना चाहिये। इसके लिये अधिक पानी की पूरी पूरी सुविधा होनी चाहिये जिसमें यह प्रति दिन पड़ी रहे और स्नान करती रहे। इसकी चमड़ी को कोमल रखने के लिये तेल चुपड़ते रहना चाहिये। इसको भली भांति घुमाते फिराते भी रहना चाहिये।

दिन की गर्मी से इस पशु की रक्षा करनी चाहिये और एक स्वच्छ पशुगृह में रखना चाहिये।

नियमित समय के अन्तर पर अच्छी श्रेणी का भरपेट भोजन देते रहना चाहिये। इसको नियत समय पर ही दुहा जाय। दुहने के बीच के अवकाशों का अन्तर समान होना चाहिये। अधिक दूध देनेवाली भैंसों को प्रतिदिन दो बार दुहना चाहिये। दुहने के समय इस बात का पूरा पूरा ध्यान रक्खा जाय कि वहाँ पर किसी भी प्रकार का शोर न हो और दूध शीघ्रता से चुपचाप दुह लिया जाय। नसल को उन्नत बनाने के लिये सदैव अच्छे साँड़ों को काम में लाना चाहिये। सांडों को बारी बारी से काम में लाना चाहिये। सहवास का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिये कि प्रत्येक सांड एक दिन में एक से अधिक बार काम में न लाया जाय और एक वर्ष में उसके सहवासों की संख्या ७५ से अधिक न हो।

आधुनिक स्पेनिश साहित्य पर एक दृष्टि

श्री गौरीशङ्कर ओझा

यूरोप केसाहित्य के इतिहास में स्पेन के साहित्य का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। स्पेनिश साहित्य का प्रारम्भ बारहवीं सदी में कविता द्वारा हुआ। चौदहवीं सदी में जुअन रुइज़ नामक अत्यन्त प्रतिभाशाली प्रसिद्ध कवि हुआहै। स्पेन के प्राचीन साहित्य पर इटालियन साहित्य का अधिक प्रभाव पाया जाता है। सोलहवीं सदी में स्पेनिश साहित्य की वीरतापूर्ण प्रणय-कथाओं की पराकाष्ठा (Amadees Gaule) में मिलती है। अमेरिका की खोज की भयानक और विकट परिस्थितियां ने स्पेनिश साहित्य में हलचल मचा देने वाली कहानियों का निर्माण किया था।

सरवाँते द्वारा रचित (Don Quixote) नामक उपन्यास सत्रहवीं सदी की महान् और अमर रचना है। अठारहवीं शताब्दी में फ्रेंच और अँग्रेज़ी उपन्यास-साहित्य से प्रभावित होकर स्पेन में अनेक उच्चकोटि के उपन्यासों की रचना हुई। उन्नीसवीं सदी में ब्रेटान डी लो हरेरस नामक प्रतिभाशाली नाटककार हुआ, जिसने सौ से अधिक सुखान्त नाटक लिखे थे। इस काल में उपन्यास-साहित्य का यथेष्ट विकास हुआ।

स्पेनिश साहित्य की प्रथम आधुनिक उपन्यास-लेखिका सिसीलिया थी। इसका दूसरा नाम फ़रनानकाबा लेरा भी है। सिसीसिया की रचना (Lao Goviota) प्रथम आधुनिक उपन्यास है। सिसीलिया के बाद पाँच प्रसिद्ध उपन्यासकारों का नाम है, जिन्होंने उसके पथ का अनुसरण किया। वे पाँचों आधुनिक उपन्यासकार जोवालेरा, आलारसों, पेरेदा, पेरेगाल्दो और पालसिओ वाल्दे के नाम से प्रसिद्ध हैं।

बीसवीं सदी के उपन्यासकारों में विसैंत ब्लासको इबानेज़ का नाम उल्लेखनीय है। प्रथम महायुद्ध के समय उसकी लिखी हुई पुस्तक (Los cuatro Jinets dal Apocalipss) बहुत प्रसिद्ध है। यह सन् १६१६ में प्रकाशित हुई। उसकी ('La Barraca' The Cablin) और ('The Matador) और भी अधिक प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। इबानेज़ की लेखन शैली नहीं, बल्कि उसका विषय कलापूर्ण होता है।

नई पीढ़ी के उपन्यासकारों में पियो बारोज़ा की रचनाएँ सबसे अधिक पढ़ी जाती हैं। उसका सबसे सफल उपन्यास (Idilios Vascos) है। बारोज़ा की लेखनी द्वारा कला से अधिक उत्साह व्यक्त हुआ है। रिकार्दो लिओन भी नई पीढ़ी के उपन्यासकारों में हैं। इसका विशेष ध्यान कला की ओर नहीं, बल्कि शैली की ओर है। इसका सबसे अधिक प्रसिद्ध उपन्यास (Casta de Hidalgos) है। इसके अतिरिक्त कोंशा एस्पिना एक प्रतिभाशालिनी महिला उपन्यासकार हैं। इनकी शैली सर्व-साधारण के उपयुक्त है। इनका मनोविज्ञान में विशेष प्रवेश है और इनकी रचनाएँ मनोविज्ञान-विषयक बातों में विशेषता रखती हैं। एस्पिना का (El Metal de los Muertos) नामक उपन्यास बहुत प्रसिद्ध है।

नवयुग का अति लोकप्रिय उपन्यासकार रामों पेरे द आयाला हैं। इनके सबसे अधिक प्रसिद्ध उपन्यास (Novelas Poematicas de la vida Espanola Belarmio y Apolonis) हैं। ये पुस्तकें क्रमशः सन् १६१६ और १६२१ में प्रकाशित हुई थीं। आयाला केवल उपन्यासकार ही नहीं, बल्कि प्रथम श्रेणी के समालोचक और कवि भी हैं। वह स्पेनिश आचार-व्यवहार के कट्टर पक्षपाती और स्पेनिश सभ्यता के पुनरुद्धार के कट्टर समर्थक हैं। इसी प्रकार के उपन्यासकारों में ग़ाब्रिएल मीरों का नाम आता है। इनकी भाषा बहुत सुन्दर और विद्वत्ता बहुत गम्भीर है। इनकी रचनाएँ, भाषा और शैली के दृष्टिकोण से आधुनिक स्पेन की सुन्दरतम रचनाओं में मानी जाती हैं। दो नवीन उपन्यासकार व्यङ्गपूर्ण उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध हैं। उनका नाम लुई आराकिस्ताँ और एस० द मादारियागा हैं। आराकिस्ताँ की प्रसिद्ध रचना (El Archipielago Maravilloso) सन् १६२३ में और मादारियागा की प्रसिद्ध रचना (La Girafa Sagrada) सन् १६२५ में प्रकाशित हुई थी। नवयुवक उपन्यासकारों में क्लोदि ओदला तोरे और फ़ेली यूराबियाँ के नाम उल्लेखनीय हैं।

बीसवीं सदी के लगभग मध्यकाल तक स्पेन की राजनीतिक स्थिति में अनेक उतार-चढ़ाव आए और कभी जनतन्त्र तथा कभी राजतन्त्र की स्थापना हुई, किन्तु देश की सब से बड़ी दुर्घटना सन् १६३६ के गृह युद्ध के रूप में हुई, जो सन् १६३६ में समाप्त हुआ। इस गृहयुद्ध में एक ओर महत्वाकांक्षी तानाशाह जनरल फ्रैंको

था और दूसरी ओर स्पेन की निर्बल लोकतन्त्री सरकार थी। जनरल फ्रेंको को फ़ासिस्ट इटली और नाज़ी जर्मनी की असाधारण सामरिक सहायता प्राप्त थी। जब कि लोकतन्त्री सरकार को, लोकतन्त्री देशों की इस प्रकार की सहायता अपर्याप्त थी। इस गृहयुद्ध में निर्दयता और अमानुषिकता की पराकाष्ठा हो गई थी। गृहयुद्ध में स्पेन के अधिकांश साहित्यकारों की सहानुभूति लोकतन्त्र के प्रति थी और अनेक साहित्यकारों ने देशभक्ति से प्रेरित होकर तानाशाही आक्रमण के विरुद्ध युद्धक्षेत्र में भी कार्य किया और कई साहित्यकारों ने युद्ध में प्राण विसर्जन किये। साहित्यकारों का इस प्रकार का असाधारण सहयोग लोकतन्त्र के प्रति स्वाभाविक और कर्त्तव्य से प्रेरित था। इस गृह-युद्ध में लोकतन्त्र के पक्षपाती अन्य देशों के साहित्यकारों ने भी भाग लिया। इनमें अनेक इटालियन, अँग्रेज़, फ्रेंच, रूसी और जर्मन फासिस्ट-विरोधी थे। इस सक्रिय सहयोग के अतिरिक्त स्पेनिश साहित्यकारों ने अपने साहित्य-सृजन द्वारा फासिज्म के विरुद्ध ज़ोरदार प्रचार भी किया।

इस समय के उपन्यासकारों में रेमो सेन्दर अधिक लोकप्रिय है। उसने युद्ध-क्षेत्र में ही 'स्पेन में युद्ध' नामक प्रभावशाली उपन्यास लिखा। उसके 'जनता का हुक्मनामा', 'सात लाल रविवार' और 'शृंखला' नामक उपन्यास भी अत्यन्त लोकप्रिय हैं। स्पेन के गृहयुद्ध में प्रतिक्रियावादी पूँजीपतियों, जमीदारों, सेनापतियों और महन्तों ने हिटलर और मुसोलिनी से मिलकर फ़ासिस्ट जनरल फ्रेंको की लगातार सहायता करके स्पेन की लोकतन्त्री सरकार को परास्त करवा दिया। आजकल स्पेन में फ्रेंको के निरंकुश शासन में स्वतन्त्र साहित्य का निर्माण और प्रगति लगभग रुक गई है।

स्पेन का नाटक-साहित्य यूरोप के उन्नत नाटक-साहित्यों में से एक रहा है। आधुनिक स्पेनिश नाटक-साहित्य में सुन्दर उच्च कोटि के नाटकों की रचना हुई है। अपने उच्चकोटि के नाटकों के लिये जोज़ इज़ागिरी-का विशेष स्थान है। उनकी रचनाओं में मौलिक निर्मीकता और ओज के दर्शन होते हैं। उनके प्रसिद्ध नाटकों में 'महान् गैलिबटो' 'डान जुआन का पुत्र', 'पागल या साधु' आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने कुछ दुःखान्त और सुखान्त नाटक भी लिखे। ७२ वर्ष की अवस्था में इज़ागिरी को नोबेल पुरस्कार मिला। उन्होंने समाज को ऐसा सन्देश दिया है, जिसमें आदर्शवाद की सर्वत्र झलक है। सन् १६२६ में इस महान् नाटककार का देहान्त हुआ। उनके नाटक, कला और अभिनय-दोनों दृष्टियों से सफल हैं। उनके समकालीन नाटककारों में गैलडोज़ और मार्टिनेज़ सीरा उल्लेखनीय हैं।

जैसिन्तो बेनावन्ते आधुनिक काल का दूसरा महान् नाटककार है। यद्यपि इसके लिखे नाटकों की संख्या लगभग डेढ़ सौ है, किन्तु उसके श्रेष्ठ नाटकों में 'निर्मित अनुराग, 'प्रसन्न नगरी' 'अनुराग-पुष्प', 'राजकुमारियों की पाठशाला', 'सत्य', 'पतझड़ के गुलाब', 'शनिवार कीरात्रि और 'एर्मिनक्षेत्र' नामक नाटक हैं। बेनावन्ते आदर्शवाद के पूर्ण समर्थक हैं। वह स्पेन के नई पीढ़ी के नाटककार माने जाते हैं; क्योंकि उनकी रचनाओं में नूतनता का समावेश है। बेनावन्ते परम्परा से घृणा नहीं करते, किन्तु उसके साथ वहीं तक चलते हैं, जहां तक उसका जीवन और कला से सम्बन्ध है। उनकी रचनाओं में पूँजीवादियों के प्रति व्यङ्ग और किसानों के प्रति सहानुभूति के भाव भरे हैं। वह अपने पाठकों और दर्शकों को इस बात के लिये बाध्य कर देते हैं कि वे विचार करें। उनका स्वतन्त्रता सम्बन्धी आदर्श स्पेन और समस्त युरोप के देशों के अदर्शों से ऊँचा है। उन्होंने अमेरिका और यूरोप की यात्रा भी की और अपने नाटकों का विदेशों में सफल अभिनय और कुछ को फिल्मों के रूप में देखा। उन्हें सन् १६१२ का नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

अन्य नाटककारों में सेराफिन और जोआकिन एलवारेज़ क्विनतेरा और गार्सिया लोर्का के नाटक उच्च श्रेणी के और लोकप्रिय हैं। गृहयुद्ध के समय अनेक नाटकों की रचना हुई। जिनके अभिनय द्वारा जनता में लोकतन्त्र के पक्ष में अधिकाधिक प्रचार किया गया। इस समय साहित्य के अन्य विषयों की भांति नाटक-रचना की प्रगति भी अत्यन्त शिथिल है, क्योंकि स्पेन के वर्तमान तानाशाही शासन में साहित्य की स्वतन्त्र गति पर कठोर अंकुश है।

आधुनिक काल के स्पेनिश कवियों में प्रारम्भिक कवि सालेडार रुएटा और विसेन्ती मेडिना विशेष प्रसिद्ध हैं। सालेडार रुएटा की कविताओं में तत्कालीन स्पेनिश जनता

के दुःख-सुख की गम्भीर भावनाओं का कलापूर्ण चित्रण है। उसने जनता के मनोभावों का अध्ययन करके उसे सुन्दर रूप में व्यक्त करने की चेष्टा की है। उसकी भाषा सजीव और रचना की प्रत्येक पंक्ति संगीतमय है। विसेन्ती मेडिना की कविताओं में कोमल भावना, सौन्दर्य और आदर्श पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं।

इन कवियों से भी अधिक लोकप्रिय कवि आधुनिक काल में जोज़ मैरिया गैब्रियल इगालां हुआ है। बीसवीं सदी के प्रारम्भकाल का वह सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। उसकी कविताओं में एक अनुपम सजीवता और सौन्दर्य का मिश्रण है। उसकी कुछ रचनाओं में तो शोक और करुणा, आशा और वांछना का अनुपम प्रवाह है। विशेषकर प्रकृति और जीवन-सम्बन्धी कविताओं में ये भाव विशेष रूप से व्यक्त हुये हैं। उसकी कविताएँ अत्यन्त लोकप्रिय रही हैं।

अत्याधुनिक काल के कवियों में नवयुवक कवि गार्सिया लोर्का अत्यन्त प्रतिभाशाली और लोकप्रिय था। सन् १९३६ में इस महान् तरुण कवि ने फ़ासिस्ट शक्तियों के रक्त-रंजित हाथों से अपनी मातृभूमि, अपने देश की जनता की लोकतन्त्री राष्ट्रीय सरकार की रक्षा के लिये हँसते-हँसते युद्धक्षेत्र में प्राणार्पण कर दिया। स्पेन के तरुण कवियों में लोर्का का स्थान सबसे उच्च था और वह अपनी सुन्दर रचनाओं के कारण सारे यूरोप में लोकप्रिय था। उसकी प्रौढ़ रचनाओं में स्पेन की जनता की आशा-आकांक्षा, सफलता-विफलता के सजीव चित्र मिलते हैं। वह कवि, गायक और नाटककार था। 'खून का विवाह' और 'बढ़ता हुआ पौधा' नामक उसकी पुस्तकें अत्यन्त सम्मानित हुईं। लोर्का का दृढ़ विश्वास था कि अतीत की सभ्यता और संस्कृति की प्रगतिशील परम्परा की उत्तराधिकारिणी जनता ही है। अतः सामन्तशाही और पूँजीवाद ने जनता को जिस अधिकार से वंचित कर दिया है, उसे फिर से जनता के अधिकार में लाने के लिए लड़ना वह अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता था। इसी कर्त्तव्य को समझ कर उसने कलम रख दी और बन्दूक लेकर मोर्चे पर गया। जहां वह लोकतंत्र के शत्रुओं की गोली का शिकार हुआ। लोर्का का अन्त हो गया किन्तु उसकी कविताएँ और गीत सदैव स्पेनिश जनता में जीवित रहेंगे। अनेक कवियों ने लोर्का की मृत्यु पर करुण कवि-ताएँ लिखकर शोक प्रकट किया।

आधुनिक काल में अन्य विषयों के अतिरिक्त इतिहास की पुस्तकें भी विशेष महत्त्व रखती हैं। इस काल के इतिहास-लेखकों में फ्रैन्सिस्को राड्रीग्वेज़ मैरीन और एदोल्फ़ोबानिला इसां मार्टीन श्रेष्ठ इतिहास-लेखक हैं। आधुनिक स्पेनिश साहित्य में यूरोप की श्रेष्ठ रचनाओं के अनुवादों की भी एक बड़ी संख्या है।

यद्यपि यूरोप के फ़ासिस्ट राष्ट्र जर्मनी और इटली को लोकतांत्रिक राष्ट्रों ने पराजित कर वहां से फ़ासिज्मम का का समूल विनाश कर दिया, किन्तु हिटलर और मुसोलिनी की सहायता से स्पेन पर आक्रमण करने वाला और वहां निरंकुश शासन की स्थापना करने वाला तानाशाह जनरल फ्रैंको अभी तक लोकतन्त्र के परम शत्रु के रूप में यूरोप में विद्यमान है। जिसके शासन में स्पेन की जनता की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और साहित्यिक स्वतन्त्रता और प्रगति पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है। इस स्वेच्छाचारी युग में स्पेनिश साहित्य की स्वतन्त्र प्रगति अवरुद्ध हो गई है और स्पेनिश जनता में निराशा की भावना की प्रबलता बढ़ रही है।

———

कपड़े की समस्या

श्री रमेशचन्द्र गोयल एम. ए.; बी. काम.

इस लेख के पूर्वार्द्ध में वस्त्र और सूत के उत्पादन के ऊपर प्रकाश डाला गया था। अब उसके वितरण और बिक्री के प्रश्न के उपर विचार करना आवश्यक है। क्योंकि उत्पादन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न उसके वितरण का है। वितरण उचित प्रकार से न होने के कारण ही सारी कठनाइयाँ उत्पन्न होती हैं।

यद्यपि टेक्सटाइल एडवायजरी बोर्ड की मीटिंग सितम्बर मास में बम्बई में हुई थी, किन्तु केन्द्रीय सरकार ने उसमें कोई निश्चित नीति नहीं ग्रहण की उसने वितरण का भार प्रान्तीय सरकारों और राज्यों पर छोड़ दिया है। केवल यह सिफारिश की है कि जो लोग कपड़े और सूत के व्यापारी रहे हैं उनको ही वितरण का काम देना आवश्यक है। कुछ प्रान्तीय सरकारों ने २५ या ५० प्रतिशत सूत और कपड़ा सहकारी समितियों द्वारा वितरण कराने का निश्चय किया है और शेष व्यापारियों द्वारा। कुछ प्रान्तों में पूर्ण राशनिंग लागू की गई है और कहीं कहीं कोई निश्चित नीति अभी निर्धारित नहीं की गई है।

यहाँ पर यह विचारणीय है कि केन्द्रीय सरकार की इस नीति में वितरण के महत्व की उपेक्षा की गई है और उसे प्रान्तीय सरकारों के भरोसे छोड़ दिया गया है। युद्ध काल में कपड़े पर कन्ट्रोल के समय प्रान्तीय सरकार ने राशनिंग की जैसी बढ़िया व्यवस्था की थी उसका अनुभव सभी को है। साथ ही सरकार द्वारा वितरण की व्यवस्था करने में केवल कुछ व्यपारियों अथवा व्यापारिक मंडलों को ही काम मिल सकता है। एवं शेष सारा व्यापारी वर्ग बेकार हो जाता है, तथा इस एकाधिकार से उत्पन्न हुई खराबियां किसी से छिपी नहीं हैं। वास्तव में यह एकाधिकार एवं सारे व्यापार का सिमट कर एक या अनेक बड़े व्यापारियो अथवा व्यापारिक मंडलों के हाथ में पहुँच जाना ही चोरबाजार का जन्मदाता है। किन्तु मालूम होता है कि पिछले अनुभव से सरकार की आखें नहीं खुलीं और उन्होंने उससे कोई सबक नहीं लिया।

वास्तव में देखा जाय तो कपड़े की उतनी कमी नहीं है जितनी मालूम होती है या दिखलाई जाती है। युद्ध काल में प्रति मनुष्य ११ गज़ कपड़े का औसत प्रति वर्ष पड़ता था, किन्तु जैसा कि माननीय डाक्टर श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने बतलाया है, आज कल जितना उत्पादन है उसके हिसाब से १४ गज़ प्रति मनुष्य प्रति वर्ष पड़ सकता है। किन्तु फिर भी लोगों को कपड़ा नहीं मिलता है। इसके तीन मुख्य कारण हो सकते हैं।

(१) अत्यधिक मुद्रा स्फीति के कारण आम जनता की क्रय शक्ति बढ़ गई है और वह किसी भी भाव में कपड़ा खरीदना चाहती है, किन्तु कपड़े का वास्तविक खर्चा इतना अधिक बढ़ा हुआ नहीं मालूम होता।

(२) चूकि वस्त्र उत्पादन को बढ़ाने के धुन में टिकाऊ और मज़बूत कपड़ा बनाने की ओर ध्यान नहीं रक्खा गया इस लिये अधिकांश रद्दी और कमजोर कपड़ा जल्दी ही फट जाता है और इसकी माँग बराबर बढ़ती जाती है।

(३) जनता में कन्ट्रोल और राशनिंग के कारण अविश्वास पैदा हो गया है। यदि उनको यह विश्वास हो जाय कि कपड़ा बराबर मिलता रहेगा और खुले बाजार में मिलता रहेगा तो जनता अपनी आवश्यकता से अधिक कपड़ा कभी नहीं खरीदेगी।

इन तीन प्रधान कारणों के निराकरण के लिये और कपड़े की कमी को दूर करने के लिये वितरण की एक ऐसी व्यवस्था का होना आवश्यक है कि जिसमें सबको अपनी आवश्यकतानुसार उचित मूल्य पर कपड़ा मिल सकने का विश्वास हो सके। किन्तु कन्टरोल और राशनिंग से ऐसी व्यवस्था नहीं हो सकती। यह सिद्ध हो चुका है।

अतएव किसी दूसरी प्रकार से वितरण व्यवस्था का होना नितान्त आवश्यक है। यद्यपि चीनी के भावों पर अब भी नियन्त्रण है, फिर भी न तो उसकी कमी है न उसके लिये हाय तोबा मचती है। जब तक चीनी के वितरण पर नियन्त्रण और राशनिंग रही तब तक सारे देश में हाहाकार मचा रहा और उत्पादन भी सन् १६४३ के बाद से घटता गया। क्या जैसी व्यवस्था आज चीनी के लिये है उसी प्रकार की वितरण योजना कपड़े और सूत के लिये सफल नहीं हो सकती है।

हमें देखना चाहिये कि चीनी के नियन्त्रण की सफलता का क्या कारण है। चीनी के लिये कच्चामाल, यानी ईख का भाव सरकार नियत करती है, मजदूरी भी सरकार ही निश्चत करती है। चीनी के भावों को उद्योगपतियों से परामर्श लेकर सरकार ही तय करती है। अब सभी मीलें जहां चाहें वहा पर उन भावों में अपना माल बेच सकती हैं। सम्भव है कि कुछ लोग यह भी दलील पेश करें कि चीनी के उत्पादन में कोई कमी नहीं थी और उसके दाम काफी ऊँचे नियत किये गये हैं, किन्तु यह बात तो कपड़े के सम्बन्ध में भी लागू हो सकती है। यहा पर यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि वितरण की असफलता का मुख्य कारण दोनों वस्तुओं में राशनिगं की खराब व्यवस्था थी, जिसके अनुसार किसी छोटे गाँव में रहने वाले किसी मजदूर को और बड़े शहरों में रहने वाले लखपती व्यापारी को भी राशनिगं के हिसाब से बराबर कपड़ा और बराबर चीनी मिलती थी।

शायद यह कभी नहीं सोचा गया कि आवश्कताओं का परिमाण उनके रहन सहन के हिसाब से कम या अधिक हो सकता है। एक ही लाठीसे सबको हाकना केवल मूर्खता है।

चीनी के वितरण में सरकारी हस्ताक्षेप इस समय उतना ही है जितना आवश्यक है। चीनी पर आबकारी कर लगता है। इसलिये सरकार की ओर से एक इन्सपेक्टर हर एक कारखाने में तैनात रहता है जो उत्पादन को चेक करके कर वसूली में सहायता करता है। क्या कुछ आवश्यक परिवर्तन करके टेक्सटाइल विभाग भी इसी प्रकार काम नहीं कर सकता। सूत की मीलों के लिये ईख के समान ही रूई के दाम गवर्नमेन्ट ने निश्चित कर दिये हैं। मजदूरी भी सरकार निश्चित करती है, और सूत एवं कपड़े का दाम भी सरकार नियत करके मीलों में छपवाने का प्रबन्ध करती है। अब केवल उसका सुविधाजनक और उचित मूल्य पर वितरण बाकी रहना है। किन्तु इसके लिये सरकार ने बड़ा लम्बा-चौड़ा तूफान खड़ा कर रक्खा है। टेक्सटाइल कमिश्नर का आफिस बम्बई में है। वहां पर हजारों कर्मचारी ऊपर से लेकर नीचे तक सारे माल पर नियन्त्रण करते हैं। प्रान्तीय सरकार के टेक्सटाइल कन्ट्रोलर और उनके आधीन हजारों कर्मचारियों की फौज है जो कोटा, परमिट, लाइसेन्स के मारे व्यापारियों के नाक में दम किये रहते हैं और इस सब गड़बड़ का परिणाम यह होता है कि वितरण की कभी उचित व्यवस्था नहीं हो पाती। यदि वितरण की व्यवस्था के रास्ते में से यह सारी रुकावटें हटा कर रास्ता साफ कर दिया जाय तो वितरण की व्यवस्था अपना रास्ता आप बना लेगी।

जनवरी सन् १९४७ में नियन्त्रण के उठ जाने के बाद भी वितरण की व्यवस्था टेकसटाइल कमिश्नर द्वारा नियन्त्रित की जाती थी और उसकी आज्ञा बिना एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में माल नहीं जा सकता था। इस विषय में मेरी प्रार्थना स्वीकार कर के माननीय श्री अनन्त शायनम् आयंगर ने धारा सभा के अगस्त, सितम्बर ४८ के अधिवेशन में एक प्रश्न पूछा था, जिसका उत्तर देते हुये ४ सितम्बर को माननीय डाक्टर श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने बतलाया कि यह प्रतिबन्ध हटा देने पर सरकार को भय है कि सारा कपड़ा उन प्रान्तों में पहुँच जायेगा जहां ऊंचे दाम मिलते हैं और कुछ प्रान्त उस से वंचित रह जायेंगे। किन्तु थोड़ा सा सोचने से यह ज्ञात हो सकता है कि सरकार का यह भ्रम निराधार है। क्या नियन्त्रण के पूर्व सब प्रान्तों में कपड़ा और सूत नहीं पहुँचता था, तथा क्या अब वहां सरकारी परमिटों के द्वारा भेजे जाने पर भी वह चोरबाजार में नहीं जाता। सरकार को यह शायद मालूम नहीं है कि कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई या और कहीं बड़े नगरों में नियत मूल्य पर महीन कपड़ा मिलना असम्भव था और आज भी कठिन है। किन्तु बिहार उड़ीसा जैसे गरीब प्रान्तों के छोटे छोटे गावों में महीन कपड़े का ढेर लगा रहता था और वह सब कपड़ा बड़े नगरों में वापस आकर चोर बाजार में बिकता था। अतएव वितरण की उचित व्यवस्था के लिये यह आवश्यक है कि उत्पादन के स्थान के बाद उस पर सरकार का नियंत्रण कहीं भी न हो जिससे कि उसकी खुली बिक्री में बाधा पड़े। आज भी यह एक विचित्र सत्य है कि केलिको और अरविन्द मीलों का महीन कपड़ा कानपुर के बाजार में सस्ता है, पर अहमदाबाद में उसके दाम २५ या ३० प्रति-

ज्ञात ऊंचे हैं। वहां तो वह मिल के भाव पर मिलना चाहिये।

हमें यह मानना होगा कि वर्तमान नियन्त्रण व्यवस्था में भी बहुत से छेद रह गये हैं। इनसे बेईमानी करने वालों को सुविधा है, किन्तु ईमानदारी से काम करने वालों के लिये परेशानी है। ऐसी कुछ बातें निम्नलिखित हैं।

(१) टेक्सटाइल विभाग ने विज्ञप्ति निकाली है कि मीलों के अन्दर एक मास से अधिक का कपड़ा नहीं रहना चाहिये। किन्तु यदि स्टाक जमा हो जाय तो विशेष दशा में टेक्सटाइल कमिश्नर उस माल को खुले बाजार में बेचने की आज्ञा दे सकता है। इसके अन्तर्गत सितम्बर में बम्बई प्रान्त की लगभग २० मीलों को जुलाई में बनाये हुये माल को मनमाने व्यक्तियों को बेचने की अनुमति दे दी गई थी। यदि मोटे तौर पर हिसाब लगाया जाय तो यदि प्रत्येक मिल ने ५०० गांठ भी कपड़ा बेचा होगा तो १०,-००० गांठ हुई। और उसमें कितना नफा हो सकता है यह भली प्रकार जाना जा सकता है। इस प्रकार की और भी कई बातें हैं वहां पर टेक्सटाइल विभाग के कर्मचारी अपने अधिकार का दुरुपयोग करके मीलों को उचित अनुमति प्रदान करके नियंत्रण की वास्तविकता को विफल करने का प्रयत्न करते हैं।

(२) अक्सर यह सुनने में आता है कि प्रान्तों के टेक्सटाइल नियन्त्रक अधिकारी यह शिकायत करते हैं कि अमुक माल बिक नहीं सकता और उसको खुले बाजार में बेचने की इजाजत दे जाती है। यह निश्चित है कि जब उस प्रकार का कपड़ा बनता है तो बिकता भी अवश्य होगा। किन्तु टेक्सटाइल विभाग के अकर्मन्य कर्मचारी इतना कष्ट क्यों करने लगे। वे उसे खुले बाजार में बेचने की अनुमति दे कर अपना पिंड छुड़ा लेते हैं। और वह कपड़ा चोर बाजार में पहुँच जाता है। व्यापारी वर्ग की क्षमता अनन्त है, और वे उनको उल्टी सीधी पट्टी पढ़ा कर अपना काम निकाल ही लेते हैं।

(३) वस्त्र नियन्त्रण में बहुत सी वस्तुएँ ऐसी छोड़ दी गई हैं जिनमें चोर बाजारी के लिये काफी मौका मिल सकता है। निम्नांकित वस्तुओं पर कोई भी नियन्त्रण नहीं है।

फिल्टर क्लाथ, गाज, लिन्ट, रूमाल, फीता, पट्टी का कपड़ा, मच्छरदानी का कपड़ा, १ गज से नीचे के कटपीस के टुकड़े, छतरी का कपड़ा, केन्वास, टेपस्टरी का कपड़ा।

मिल मालिक चाहें तो इन नामों से और भी कई प्रकार का कपड़ा बनाकर बेच सकते हैं। अन्य और भी कई बातें हैं जो कि चोर बाजारी को खुला प्रोत्साहन देती हैं।

(४) वास्तविकता यह है कि कन्ट्रोल राजनीतिज्ञों, नेताओं, एवं बड़े बड़े व्यापारियों और उद्योगपतियों के हाथ की कठपुतली है। इस बार यद्यपि नियंत्रण करने में बड़ी तत्परता दिखाई गई किन्तु फिर भी सारा काम बहुत सुस्ती से हो रहा है। ऐसा ज्ञात होता है कि सरकार कोई निश्चय शीघ्र नहीं कर पाती और नियंत्रण का सफल होना कठिन मालूम होता है। प्रांतीय सरकारें यह कहती है कि केन्द्रीय सरकार कुछ निश्चय नहीं करती, और न अभी तक यह तय किया गया है कि कपड़ा किस तरह से वितरण कराया जाय वितरण का भार प्रान्तीय सरकारों पर छोड़ दिया गया है किन्तु वे स्वयं कुछ निश्चय नहीं कर पाती हैं। आज कई महीने हो गये किन्तु सरकार की ढुलमुल नीति अभी चल रही है। और अभी तक कपड़ा नियंत्रण में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है।

(५) दामों के ही प्रश्न को लीजिये। टैरिफ बोर्ड ने अपनी रिपोर्ट गवर्नमेन्ट को जून या जुलाई में ही दे दी थी, किन्तु सरकार अभी उस पर विचार ही कर रही है। ऐसा मालूम होता है कि सरकार ने उस रिपोर्ट की जाँच कुछ मिल मालिकों द्वारा कराई थी जो उससे सहमत नहीं थे। अतएव सरकार ने टैरिफ बोर्ड को उस पर फिर से विचार करने के लिये कहा किन्तु टैरिफ बोर्ड अपने निश्चय पर अड़ा रहा। इसी बीच में सरकार ने उत्पादन के ऊपर नियंत्रण की घोषणा कर दी है, जिससे बड़ी विचित्र परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। क्योंकि दाम तय न होने के कारण मीलें क्या बनावें, इसका निश्चय नहीं कर पातीं।

(६) वितरण के सम्बन्ध में सारा भार प्रान्तीय सरकारों पर छोड़ दिया गया है किन्तु वे अभी तक कोई निश्चित नीति नहीं तय कर रही हैं। एक ओर मीलों में माल का बेतहाशा स्टाक बढ़ता जा रहा है और दूसरी ओर बाजार में रुपये की टान है। व्यापारियों के लिये

[शेष पृष्ठ ४१४ पर देखिये]

कनाडियन एंव भारतीय विधान

श्री पारस दीवान

. भारतीय एंव कनाडियन विधान की रूप रेखा में बहुत ही अधिक साम्य है। दोनों विधानों में अमरीकी संघ नियमों का अंग्रेजी उत्तरदायित्व सरकार से मेल स्थापित किया गया है। संघ एवं प्रान्तों के बीच अधिकारों का विभाजन संघ शासन प्रणाली का बहुत ही आवश्यक एंव महत्वपूर्ण अंग है।

ब्रिटिश नार्थ अमरीका (कनाडा) के प्रतिनिधियों की दूसरी लन्दन कान्फ्रेन्स में संघ नियमों की व्याख्या की गई है:—

अंग्रेजी उत्तरी अमरीका के प्रदेशों के संघ में, प्रान्तों के भिन्न-भिन्न स्वार्थों की रक्षा के लिए, संघ की व्यवस्था में योग्यता, सुचारुता और स्थिरता के हेतु सबसे अच्छी सरकार के लिए—एक केन्द्रीय सरकार जो कि एक से स्वार्थों पर शासन नियम बनायेगी और एक प्रान्तीय सरकार जो कि अपनी अपनी सीमा में प्रान्तीय स्वार्थों पर शासन नियम बनायेगी, की व्यवस्था की जाती है।

यद्यपि १६३५ के एक्ट के अन्तर्गत संघ व्यवस्था भारत पर लादी गई थी पर फिर भी भारत की जनभावनाएं संघ नियमों के विरुद्ध नहीं थीं बल्कि १६३५ के एक्ट का जो विरोध हुआ था वह इस लिये ही कि उसमें संघ नियमों का हनन किया गया था। अतः आज के भारत ने संघ व्यवस्था को स्वीकार कर लिया है। जैसा कि श्री अम्बेदकर ने धारा सभा में बताया था कि भारतीय विधान कई विधानों, विशेषकर कनाडा और अस्ट्रेलिया, से प्रभावित है। अतः कनाडा और भारतीय विधान का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

कनाडियन विधान की ६१ वीं एंव ६२ वीं धारा के अनुसार अधिकारों के विभाजन की सीमाएं इस प्रकार हैं—

"रानी को सिनेट हाउस आफ कामन्स की सलाह और अनुमति से कनाडा की शन्ति-सुरक्षा एंव सुव्यवस्था के लिये कानून बनाने का अधिकार होगा। लेकिन इस अधिकार में वे विषय शामिल न होंगे जो कि विशेष कर प्रांतों के अधिकार में हैं" ......

इसके साथ ही ६१ वीं धारा में (धारा ६१) २६ विषयों की सूची दी गई है जिन पर संघ को कानून बनाने का अधिकार होगा। साथ ही धारा ६१ में यह भी बताया गया है कि :—

"जो भी विषय इस सूची में आते हैं, वे किसी भी भांति प्रान्तीय सूची में नहीं आ सकते . ...."

इस भांते हम देखते हैं कि कनाडियन विधान में अधिकारों के विभाजन की दो सूचियां हैं :—

(१) संघ सूची जिस पर संघ को कानून बनाने का पूर्ण अधिकार होगा (धारा ६१)।

(२) प्रान्तीय सूची जिस पर प्रान्त को कानून बनाने का पूर्ण अधिकार होगा (धारा ६२)।

लेकिन साथ में ही संघ को कुछ और अधिकार भी दिए गए हैं। संघ की धारा सभा निम्नलिखित विषयों पर कानून बना सकती है—

(१) उन सब विषयों पर जो ६२वीं धारा की सूची में नहीं हैं।

(२) यदि संघ और प्रान्तों की सूची के कुछ विषय एक से मिलते हों तो उन पर संघ का प्रथम अधिकार होगा।

(३) कनाडा को शान्ति सुरक्षा और सुव्यवस्था के लिए संघ कानून बना सकता है।

(४) उन सब विषयों पर जिनकी सूची ६१वीं धारा में दी गई है।

हमारे (ड्राफ्ट) विधान की २१७ धारा के अन्तर्गत-

(१)"......संघ को उन सब विषयों पर कानून बनाने का अधिकार होगा, जो सातवें शेड्यूल की पहली सूची में आते हैं" (संघ सूची)।

(२)"......संघ और प्रान्तों को उन सब विषयों पर कानून बनाने का अधिकार होगा जो सातवें शेड्यूल की तीसरी सूची में हैं।" (कनकरन्ट सूची)।

(३)"...... उन प्रान्तों को जो पहले शेड्यूल की लिस्ट (मद्रास, बम्बई, संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, पूर्वी पंजाब पश्चिमी बंगाल, बिहार उड़ीसा) में हैं, उन सब विषयों पर कानून बनाने का अधिकार होगा जो सातवें शेड्यूल की दूसरी सूची में हैं" (प्रान्तीय सूची)।

"संघ को उन सब विषयों पर कानून बनाने का अधिकार होगा जो सातवें शेड्यूल की दूसरी या तीसरी सूची में नहीं आते है।" (धारा २२३ का अर्द्ध भाग)

इस भांति हम देखते हैं कि संघ धारा सभा निम्नलिखित विषयों पर कानून बना सकती है:—

(१) उन सब विषयों पर जो संघ सूची में हैं,

(२) उन सब विषयों पर जो तीसरी सूची में हैं,

(३) उन सब विषयों पर जो दूसरी तीसरी सूची में नहीं हैं,

(४) संघ उन सब प्रान्तों के लिए कानून बना सकता है जो पहले शेड्यूल के भाग (२) और (३) के अतिरिक्त हैं। प्रान्त उन सब विषयों पर कानून बना सकते हैं जो प्रान्तीय सूची में हैं।

हमारे विधान में तीन सूचियाँ दी गई हैं। संघ सूची और प्रान्त सूची कनाडियन विधान की सूची की ही भांति हैं। पर तीसरी सूची जो कि १९३५ के एक्ट की भांति हमारे विधान में है कनाडा के विधान मे नहीं है।

तीसरी सूची पर प्रान्त एवं संघ दोनों को ही कानून बनाने का अधिकार है पर संघ का स्थान प्रथम है। यह तीसरी सूची एक अतिरिक्त सूची का काम देती है। कनाडा में सूचियों के सब अतिरिक्त विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संघ को ही है। पर कनाडा के विधान की ही भांति भारतीय विधान में ही प्रान्त और संघ के झगड़े के विषय पर संघ का ही कानून बनाने का अधिकार मान्य होगा।

कनाडा की धारा ९१ में यह भी बताया गया है कि यह विभाजन संघ के शान्ति सुरक्षा और सुव्यवस्था के अधिकारों को सीमित नहीं कर सकता। संक्षेप में दोनों विधानों के अन्तर्गत संघ को सार्वजनिक महत्व के सब विषयों पर क़ानून बनाने का अधिकार दिया गया है। संघ व्यवस्था में इस अधिकार का ध्येय यही हो सकता है कि उन सब सार्वजनिक विषयों पर (रक्षा, यातायात इत्यादि) एक सा ही कानून बने। पर साथ में ही प्रान्तों के स्वायत्त शासन की भी रक्षा की गई है। पर धारा २२५ के अन्र्गत:—

"...... संघ को उन रियासतों या रियासत पर जो कि पहले शेड्यूल के तीसरे भाग में हैं (भारतीय रियासतें) कानून बनाने का अधिकार सुलह नामों, जो कि उन रियासत या रियासतों और भारत सरकार के बीच होगें, के अनुसार ही होगा।"

इसके साथ ही पहले शेड्यूल के दूसरे भाग के प्रान्तः देहली अजमेर मेरवाड़ा, कुर्ग-राष्ट्रपति द्वारा अपने चीफ कमिशनर या छोटे गवर्नर द्वारा ही शासित होंगे (धारा २१२ (१))।

पहले शेड्यूल के चौथे भाग के प्रान्त अन्दमन और निकोबार द्वीप और वे सब भाग जो किसी भी शेड्यूल में नहीं हैं पर जो भारत के भाग हैं- राष्ट्रपति द्वारा शासित होंगे (धारा २१५ (१))। इस भांति इन भागों को संघ व्यवस्था से पृथक रखा गया है। भारतीय विधान के अनुसार इन प्रान्तों की जनता के स्वायत शासन का प्रश्न उठता ही नहीं, जिसका अर्थ यही हो सकता है कि या तो उन पर सीधा राष्ट्रपति का शासन होगा या वहां के किसी तानाशाह का। इन विचित्र बातों से संघ नियमों का हनन होता है।

(ड्राफ्ट) भारतीय विधान के अन्तर्गत संघ को कुछ विशेष अधिकार दिये गये हैं। कुछ लोगों ने संशय प्रकट किया है कि इन असाधारण अधिकारों से प्रान्तों के स्वतन्त्र शासन में बाधा पहुँचने का भय है। प्रश्न उठता है कि उन असाधारण अधिकारों को साधारण समय में भी प्रयोग में लाने के दुःसाहस को क्या रोका जा सकता है? यह भी ध्यान में लाने वाली बात है कि असाधारण अवस्था का ठीक वर्णन विधान मे नहीं किया गया है। और इसमें भी कुछ संदेह नहीं हो सकता है कि कुछ भी छोटा सा बहाना ढूँढ़ कर संघ उन अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। धारा २२६ के अन्तर्गत—

"यदि कौंसिल आफ स्टेट (प्रान्तों की बैठक) २।३ बहुमत से पास करदे कि राष्ट्र हित के लिये यह आवश्यक है कि संघ प्रांतीय सूची पर के किसी भी विषय पर कानून बनाए तो संघ को अधिकार मिल जायेगा।"

"उस समय जबकि असाधारण अवस्था का कानून लागू हो......तो संघ प्रान्तीय सूची के हर या किसी भी वषय पर कानून बना सकता है। (धारा २२७)। आर्डिनेन्स जारी करने की धारा २७६ में कहा गया है—"जब

असाधारण अवस्था का कानून लागू हो तो उस समय संघ का कानून बनाने का अधिकार प्रान्तों के सब अधिकारों के ऊपर लागू होगा ..." अंग्रेजी साम्राज्यवाद के शासन काल में १६३५ के एक्ट की धारा ६३ के राज्य के कटु अनुभव को भारतीय भूले नहीं हैं। राष्ट्रीय आन्दोलनों का दमन, पंजाब का हत्याकान्ड इसी धारा में हुआ था। अतः यदि भारतीय जनता इसका विरोध करे तो आश्चर्य क्या है। यह कि जनता का विश्वास अपने मन्त्रियों में है—यही इस कानून के विरोधाभास का द्योतक है। जनता सीधा प्रश्न करती है—कि जब हमारी संघ की सरकार है तो फिर यह पुराने घृणित आर्डिनेन्स की धारा हमारे विधान में क्यों है? यदि हम बहुत खींच-तान कर कनाडा के विधान की तुलना कर सकते हैं तो वह है धारा ६१ का यह अंशः—

"संघ शान्ति-सुरक्षा सुव्यवस्था के लिए कानून बना सकता है..."

पर जैसा कि उक्त शब्दों से ज़ाहिर है यह बहुत ही हल्की बात है। किसी भी भांति यह किसी भी प्रान्त की व्यवस्था या स्वायत्त शासन को कुछ पल के लिए भी स्थगित नहीं कर सकती थी।

और फिर है २२५ वीं रियासतों से पृथक सुलहनामे की धारा। सन् १६३५ के एक्ट की टीका करते हुए प्रो० के० टी० शाह ने कहा था—

"यह स्पष्ट है कि विशेषाधिकारों सहित रियासतों का संघ में शरीक होना जनवादी भारतीय संघ में एक विचित्र अवस्था पैदा कर देगा।" एक ओर तो राजे – रजवाड़े संघ को वही अधिकार देंगे जो वे देना चाहते हैं दूसरी ओर प्रो० शाह के शब्दों में—

"वे संघ के हर मामले में दखल दे सकेंगे—अर्थात् समस्त भारत के मामलों में जिसका फल यह होगा कि कुछ सीमा तक वे अपना सामन्ती प्रभाव भारत पर डाल सकेंगे।"

इस भांति धारा २२५ से संघ के विधान, नियमों को धक्का लगता है। १५ अगस्त के पश्चात् रियासतों की 'प्रभुसत्ता' समाप्त कर दी गई है, पर साथ ही वे कानूनन स्वतन्त्र भी रह सकते हैं। यह ठीक है कि आज रियासतें जनआन्दोलन के प्रवाह के कारण संघ से बाहर नहीं रह सकतीं, पर साथ ही संघ के नियमों के मुताबिक होना यह चाहिये था कि रियासतें संघ को उन सब विषयों पर अधिकार दें जिन पर प्रान्तों ने दिए हैं अन्यथा पृथक पृथक सन्धियों से संघ नियमों का अवसान हो जाता है। प्रो० शाह के शब्दों में "राजा और भारतीय संघ के बीच किए गए समानान्तर सौदे देश की राष्ट्रीय और आर्थिक स्वतन्त्रता के मूल्य पर ही होंगे।"

कनाडा के विधान में या और किसी भी प्रजातन्त्री विधान में ऐसा कोई नियम नहीं है। संघ विधान में अधिकारों का विभाजन होना आवश्यक है और साथ में यह भी आवश्यक है कि इन अधिकारों का विभाजन एक सा हो अर्थात् यह नहीं हो सकता कि संघ का एक सदस्य संघ से कुछ और भांति की शर्तें करे, दूसरा सदस्य दूसरी तरह की शर्तें करे। यह तो विधान न हुआ सौदे-बाज़ी हो गई। यदि ऐसा हो तो संघ संघ नहीं रहता। अतः सुदृढ़, सुव्यवस्थित, प्रजातन्त्री संघ के लिए यह आवश्यक है कि संघ के प्रत्येक सदस्य के साथ एकता का सलूक हो।

यदि विधान की ये धारायें इसी भांति पास हो गईं तो अवस्था यह होगी कि यथार्थ में तीन सूची नहीं बल्कि सैकड़ों सूची होंगी। प्रत्येक रियासत का सन्धिपत्र एक सूची होगा। दूसरी ओर संघ संघ न रहेगा। एक ओर जनतन्त्री प्रान्त होंगे, दूसरी ओर सामन्ती रियासतें, तीसरी ओर राष्ट्रपति द्वारा सीधे शासित प्रदेश।

संयुक्त राष्ट्र संघ की तीसरी वर्ष गांठ

श्री श्रीकृष्ण

दुनियाँ ने संयुक्त राष्ट्र संघ की तीसरी वर्ष गांठ मनायी है। इसके स्वास्थ्य का जाम भी पिया है। हिन्दुस्तान ने भी इसमें हिस्सा लिया।

इलाहाबाद में जब आशा थी कि इस शान्ति के मसीहे की शुभ-कामना के लिये जनता अधिकाधिक संख्या में इकट्ठी होगी तो कुल करीब ७५ खोपड़ियाँ ही दीख पड़ीं। ऐसा क्यों ? यह एक प्रश्न है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकार पत्र ने यह सिद्धान्ततया स्वीकार किया है कि प्रत्येक राष्ट्र को यह सिद्धान्त स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रत्येक नर तथा नारी के अधिकार समान हैं। रंगभेद, जाति भेद, भाषाभेद तथा धर्मभेद इन अधिकार पथ में अपनी टांग न अड़ा सकेंगे। इस तरह सफेद रंग वालों की प्रभुता पर आघात किया गया। किन्तु, इस तीन वर्ष की दौरान में संघ इस सिद्धान्त के अनुसार कहाँ तक चल सका है, इसे हमें देखना है।

हिन्द ने सुरक्षा समिति में दक्षिण अफ्रिका के रंगभेद की विनाशकारी नीति के विरुद्ध आवाज उठायी थी। आज तक इस समस्या का कोई हल नहीं हो सका।

धर्मभेद के अनुसार फिलस्तीन में दो राष्ट्र का सिद्धान्त मान लिया गया। किन्तु, यहूदी और अरब इसके लिये जन्म-मरण का युद्ध कर रहे हैं। संग के 'युद्ध रोको' प्रस्ताव को इन दो राष्ट्रों ने कूड़े खाने में उठा कर डाल दिया।

'शस्त्र-निरोधन' प्रस्ताव अभी वादाविवाद के वितण्डावाद में झकोरे खा रहा है। परमाणु बम निरोधक समिति 'शीतल युद्ध' (Cold War) की कसौटी पर कसा जा रहा है। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के काश्मीर प्रश्न को अभी कुल करीब एक वर्ष ही व्यतीत हुये हैं। पर, इन सभों का अब तक संघ कोई हल नहीं दे सका है। क्यों ? संघ की इस निर्वीर्यता का क्या कारण है ?

प्रथम महायुद्ध के बाद लीग आफ नेशान्स का प्रादुर्भाव हुआ था। पर जर्मनी, जापान और इटली ने उसकी निर्मम हत्या कर दी। जिसका तात्कालिक परिणाम द्वितीय महायुद्ध था।

विश्व राष्ट्र की कल्पना बार-बार होती रही थी। बुद्धदेव के समाजवाद ने इसकी ओर इंगित मात्र किया था। अशोक ने इस ओर एक कदम बढ़ाया और लीग आफ नेशन्स ने इसे व्यवहारिकता का रूप देना चाहा, पर यह चल नहीं पाया। क्योंकि इसके जड़ में घुन लग जाता रहा है। आज तक समाज की बुनियाद दूसरे के शोणित-शोषण पर ही टिकी रही है। इससे एक को दूसरे से सर्वदा भय रहा है। और इसी आधार पर सर्वदा युद्ध की भेरी बजती रही है। किन्तु, युद्ध की विभीषिका के बाद विश्राम की आवश्यकता होती है। यदि ऐसा न हो तो शोषित शासक को सर्वदा के लिये मिटा दे। इसलिये हम इस संघ में कई गुट्ट को भाग लेते हुये पायेंगे।

पार्लियामेन्ट्री-जनतंत्र, वैधानिक-राजत्व, सोवियत्-समाजवाद, फौजी तथा व्यक्तिगत तानाशाही इन सभों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकार पत्र पर हस्ताक्षर किये हैं। सभों ने इसके मौलिक सिद्धान्त को माना है। परन्तु, जहाँ पर एक ओर संयुक्त राष्ट्र का अपना सिद्धान्त है दूसरी ओर इन गुट्टों का भी निज का आदर्शवाद है जो राजनैतिक शक्ति-संतुलन, वर्ण - प्रभुता (Race Superiority) तथा गोराशाही पर अवलम्बित है। इस आदर्शवाद के भी समर्थक हैं। ये समर्थक विश्व के युद्ध जर्जर होने के कारण अर्द्ध-सुषुप्तावस्था में हैं। इनके बड़े बड़े कारखाने तथा शस्त्रालय इस आदर्शवाद की पुष्टि करते हैं। इन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ से आन्तरिक घृणा है। यह संघ जितनी ही शीघ्रता से विनाशावस्था को प्राप्त होता है, उतनी ही शीघ्रता से इनका अभ्युदय भी होगा। यदि विश्व सर्वदा युद्धाग्नि में ही जलता रहे तो वे सन्तुष्ट रहेंगे। क्योंकि राजनैतिक शक्ति सन्तुलन से युद्ध की उत्पत्ति होती है और युद्ध से लाभ होता है।

ऐंग्लो-अमेरिकन गुट्ट का आधार पूँजीवाद रहा है। सोवियत् भूमि समता की भूमि पर प्रत्येक

प्रस्ताव को तोलता है। यहाँ वाद और आदर्शों का झगड़ा है। जिससे किसी भी समस्या का निदान असम्भव हो जाता है।

दक्षिण अफ्रिका के गोरे, कालों को कुत्ते की श्रेणी में भी गिनना पाप समझते हैं। सारा दक्षिणी अफ्रीका इस समय कालों के लिये एक बृहद् बन्दी-वास बना हुआ है। सयुक्त राष्ट्र संघ में इतनी शक्ति नहीं है कि वह इस अनाचार, बर्बरता और निरंकुशता को रोक सके। काश्मीर की समस्या का समाधान नहीं हो सका, क्योंकि ऐंग्लो-अमेरिकन गुट्ट इसे सोवियत् के विरुद्ध हवाई अड्डा बनाना चाहता है। बर्लिन चार बड़ों की दुर्भावना का शिकार है। चीन गृह-युद्ध 'का अखाड़ा है। मलाया, हिन्द-चीन और बर्मा में एक मनुष्य दूसरे के खून से अपना हाथ रँग रहा है, क्योंकि एक समानता का प्रचारक है और दूसरा पूँजीवाद का विकृत रूप लेकर मैदान में खड़ा हुआ है। पूँजीवादी शक्ति मार्शल-सहायक कोष लेकर समानता के विरुद्ध जेहाद बोल रहा है।

संयुक्त राष्ट्र सघ इन अमानुषिकताओं पर तब तक प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता, जब तक कि उसके पास निज की विस्तृत सेना न हो जिससे अपनी आज्ञा को कार्यान्वित करवाने के लिये प्रेरित कर सके। शनैः शनैः जब विश्व में समता और भ्रातृत्व की भावना उत्पन्न हो जायगी, सेना की आवश्यकता भी नष्ट हो जायगी। इस समय तो ऐंग्लो-अमेरिकन गुट्ट को सोवियत् से भय है और सोवियत् को ऐंग्लो-अमेरिकन गुट्ट से। इसलिये यह सारी खींचा तानी चल रही है। और यह चलती रहेगी जब तक तृतीय महायुद्ध का फौलादी पंजा भूख और महामारी के द्वारा सारे विश्व को एक ही सीढ़ी पर ला खड़ा न कर दे।

संघ की ऊँची इमारतों में बैठनेवाले प्रतिनिधियों को जनता ने विश्वास करके विश्व को सुख-शान्ति की ओर अग्रसर करने के लिये भेजा था, पर इन्हों ने करोड़ों शोषित जनता के साथ विश्वासघात किया है।

भारत बापू की वाणी में सर्वदा 'सर्वे भवन्ति सुखिना' और समता तथा भ्रातृत्व का प्रचार करता रहा है, किन्तु, यह कहते हुये शर्म मालूम होती है कि न्यूयार्क स्थित हमारे राजदूत सर बी० रामा राव ने इस सिद्धान्त की हत्या की है। उन्होंने मार्शल सहायक कोष से सहायता की प्रार्थना करते हुये यह कहा था कि हिन्द-एशिया की भूमि पर साम्यवाद (कम्यूनिज्म) के विरुद्ध व्यवहारिक सहाय्य सिद्ध होगा। इस तरह के वक्तव्य का साफ अर्थ होता है कि हिन्द ऐंग्लो-अमेरिकन गुट्ट में शामिल होने जा रहा है। किन्तु, नेहरू-सरकार की वैदेशिक नीति सर्वदा से तटस्थता की रही है, फिर यह समझ में नहीं आता कि हमारे इस राजदूत को इस तरह उत्तरदायित्वहीन वक्तव्य देने का अधिकार किसने प्रदान किया। हिन्द की वैदेशिक-नीति का उल्लंघन करने के अपराध में इस राजदूत को अमेरिका से तुरन्त बुला लेना चाहिये।

साम्यवाद के विरुद्ध, सोवियत् रूस के विरुद्ध तथा विश्व शान्ति के विरुद्ध मार्शल सहायक कोष का चारा यूरोप के छोटे-छोटे राष्ट्रों को अपनी ओर घसीट लाया है और हिन्दुस्तान का बेचारा राजदूत भी इस चालाकी का शिकार हो गया। किन्तु, हम हिन्दवासियों को इस समय विश्व-शान्ति की अतीव आवश्यकता है।

हमें मार्शल स्टालिन के इस कथन में विश्वास है कि—यह वैषम्य तभी निर्मूल होगा जबकि विश्व से युद्ध को बढ़ावा देने वालों का विश्व की जनतांत्रिक शक्ति द्वारा विनाश हो जायगा। हम इस संघ की हृदय से शुभ कामना करते हैं।

चीन में कम्यूनिस्टों की विजय

प्रोफेसर अमर लाहिड़ी एम० ए०, बी० एल०

लगभग २० वर्षों के लगातार संघर्ष के पश्चात् चीनी कम्यूनिस्ट दल को च्यांग द्वारा अधिकृत क्यूमिंतांग में सफलता प्राप्त हुई। मंचूरिया का कम्यूनिस्ट संग्राम तीन वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ था और तीन वर्ष की घमासान लड़ाइयों के पश्चात् कम्यूनिस्ट सेना ने दक्षिणी मंचूरिया के राष्ट्र वादी दल के प्रधान केन्द्र मुकदन पर अधिकार कर लिया है। मुकदन की विजय से कम्यूनिस्टों का अधिकार न केवल मंचूरिया में ही स्थापित हो गया है, वरन् उसके द्वारा उन्हें उत्तरी तथा मध्य चीन में अधिकार जमाने का अवसर प्राप्त हो गया है। इस प्रकार अब कम्यूनिस्ट लोगों का अधिकार यांगटिसी नदी के डेल्टा तथा बेसिन तक फैल जावेगा।

गृह युद्ध के आरम्भ काल से ही लाल सेनाएँ क्षेत्रवर्ती युद्धों की ओर अपनी समस्त शक्ति लगाती रही हैं। युद्ध काल में उन्होंने तीन विभिन्न क्षेत्रीय सैनिक केन्द्र बनाये। इनमें से एक मंचूरिया के लिये, दूसरा उत्तरी चीन के लिये और तीसरा मध्य-चीन के लिये बनाया गया था। यह तीनों सैनिक क्षेत्र सुप्रीम युद्ध कौंसिल के अनुशासन में थे। इस कौंसिल ने तिकोनिया युद्ध आरंभ किया। यह सेनाएं नानकिंग सरकार की सेनाओं को मध्य तथा दक्षिणी मंचूरिया, उत्तरी चीन तथा मध्य चीन के तटीय सामरिक महत्वपूर्ण केन्द्रों में बन्द कर देना चाहती थी और त्रिकोण आक्रमणकारी लाइनों की रक्षार्थ एक केन्द्रीय-प्रत्याक्रमण करके मार्ग साफ करना चाहती थीं।

जबकि उत्तरी चीन तथा पीली नदी वाले क्षेत्रों में कम्यूनिस्ट सेनाएँ राष्ट्रीय सेनाओं के आक्रमणों को विच्छेद करने में लगी थीं तो लाल सेना का अग्रिम भाग मध्य तथा दक्षिणी मंचूरिया में अन्तिम युद्ध लड़ रहा था। कम्यूनिस्ट सेनाओं ने धीरे-धीरे अग्रिम तथा पृष्ठ भाग के आक्रमणकारी स्थानों पर अधिकार प्राप्त करते हुये फेंग्टीन प्रान्त की अधिकांश राष्ट्र वादी सेनाओं को घेरने में सफलता प्राप्त कर ली।

इसीके साथ ही साथ उत्तरी चीन में भी घेरने वाली लालसेनाओं ने पीली नदी के क्षेत्र में भी प्रवेश कर दिया इसका परिणाम यह हुआ कि लाल क्षेत्रवर्ती सेनाओं ने अपने को होपेह, शांसी, शानतुंग और उत्तरी होनान में घिरवा दिया। इस प्रकार लालसेना ने राष्ट्रीय सेना के पृष्ठ द्वार को बन्द कर दिया जिससे फेंगटीन प्रान्त की क्यूमिंतांग सेना का पीछे हटने वाला मार्ग बन्द हो गया। उसके पश्चात् लाल सेना ने अपने घेरे के विस्तार को छोटा बनाना आरम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि क्यूमिंतांग सेनाओं को मुकडेन में अन्तिम युद्ध लड़ने पर विवश होना पड़ा जिससे कम्यूनिस्ट सेना को निर्णायक विजय प्राप्त हो गई।

मुकडेन में कम्यूनिस्ट प्रभुत्व स्थापित हो जाने से मंचूरिया की कम्यूनिस्ट सेना की विजय हो गई है। अब मंचूरिया की क्षेत्रवर्ती कम्यूनिस्ट सेनाओं ने उत्तरी तथा मध्य चीन की लाल क्षेत्रवर्ती सेनाओं से समागम कर लिया है। इससे प्रतीत होता है कि उत्तरी क्षेत्रों के संग्राम सम्बन्धी उपक्रम अब चीनी कम्यूनिस्ट दल के हाथों में चला गया है।

यातायात-साधनों का संग्राम

मंचूरिया के वृहत् खनिज तथा कृषक सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त करने से अब कम्यूनिस्ट दल की अवस्था बहुत अच्छी हो गई है। अब वह न केवल उत्तरी-पश्चिमी तथा मध्य चीन में ही अपना पूर्ण सङ्गठन कर लेगा वरन् वह क्यूमिंतांग सेनाओं को यॉंगटिसी नदी के दूसरी ओर दक्षिणी चीन में खदेड़ देगा। यदि जनरलिसमो च्यांग काईशेक उत्तरी चीन की रक्षा करने में असफल होते हैं तो कम्यूनिस्ट लोग सामरिक-रेलमार्गों पर अधिकार प्राप्त करके हूनान, क्यांग्सी तथा चेकाग दक्षिणी चीन में और स्जे़चवान दक्षिणी-पश्चिमी चीन में राष्ट्रीय सेनाओं को खदेड़ने में सफल होंगे।

कम्यूनिस्ट लोग पहले ही से पीपिंग-हाँनकाओ तथा लुंघाई रेलवे लाइनों पर भीषणता के साथ बाधा उपन्न कर रहे हैं। वास्तव में उत्तर तथा मध्य चीन की रेलवे लाइनों को भङ्ग कर दिया है। सीनान (शानतुंग की राजधानी तथा प्रधान रेल केन्द्र) पर अधिकार करके और उत्तरी क्यांगसू और उत्तरी तथा मध्य होनान में प्रवेश करके कम्यूनिस्टों ने पीपिंग-शंघाई, पीपिंग-टींटसिन और पीपिंग-सिनान रेलवे लाइनों तथा उप लाइनों को काट दिया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि लाल सेनाएं यातायात-साधनों सम्बन्धी युद्ध को जीत रही हैं। यही कारण है जो कि कम्यूनिस्ट "मुक्ति का युद्ध" यांगटिसी के डेल्टा तथा सरित्तट प्रदेश (बेसिन) की ओर बढ़ रहा है। यदि इस यातायात साधनों के युद्ध में कम्यूनिस्टों को पूर्ण विजय प्राप्त हो जाती है तो वे न केवल पीले सागर तथा उसके समीपवर्ती तटीय प्रदेश पर ही अपना प्रभुत्व स्थापित करलेंगे वरन् वह चीन देश को अट्ठाईसवीं अक्षांश रेखा से दो भाग में विभाजित करके उसके ऊपर वाले समस्त प्रदेश पर अधिकार प्राप्त करलेंगे। इस समस्त प्रदेश में चीन का तीन चौथाई भू-भाग सम्मिलित है और ३० करोड़ मनुष्य निवास करते हैं।

वर्तमान समय में चीनी लाल सेनाएं होपेह, शानतुंग, होनान और क्यांगसू क्षेत्रों में आक्रमण "यातायात साधनों के युद्ध" को जीतने के लिये ही हो रहे हैं। इनके द्वारा उत्तरी तथा मध्य चीन के आर्थिक ढांचे पर अधिकार जमाया जा रहा है जो नानकिंग सरकार की रक्षा तथा प्रतिष्ठा के लिये परम आवश्यक है। आक्रमणों का दूसरा झोंक सुयेयान, शांसी, शेंसी और होपेह की ओर चल रहा है। यह दोनों आक्रमणकारी झोंके अन्हवी को निगल जाने के लिये किये जा रहे हैं जिससे नानकिंग तथा क्यांगसू पर अधिकार किया जा सके। नानकिंग चीन की केन्द्रीय सरकार की राजधानी है। क्यांगसू पर अधिकार होने से शंघाई उनके अधिकार में चला जावेगा। शंघाई उत्तरी तथा मध्य चीन का आर्थिक केन्द्र है। सबसे उत्तर की ओर जो आक्रमण हो रहे हैं उनका ध्येय यह है कि पीपिंग, टींटसिन और सिंगटाओ पर अधिकार जमाया जा सके।

आर्थिक हित

मंचूरिया के अधिकार से चीनी कम्यूनिस्ट दल को यह लाभ हुआ है कि वह वहाँ की चार करोड़ तीस लाख जनता, खाद्य-सामग्री, लोहा, कोयला, सोना, तांबा, सीसा, जस्ता, एलुमीनियम, मैगनीशियम, पेट्रोल, तेल आदि खनिज सम्पत्ति का उपभोग भली-भांति करेगा। यह उपभोग युद्ध को चलाने तथा मंचूरिया में कम्यूनिस्ट शासन की स्थापना के लिए होगा। अनुमान किया गया है कि मंचूरिया में १ अरब ८ करोड़ टन इस्पात और ४ अरब ८० करोड़ ४ लाख टन लोहा वर्तमान है।

यदि मंचूरिया के आर्थिक विभव के साथ ही साथ उत्तरी तथा मध्य चीन के आर्थिक तथा कारखानेवाले साधनों पर भी कम्यूनिस्टों का प्रभुत्व हो जाता है तो फिर आर्थिक, राजनैतिक तथा सैनिक रूप से कम्यूनिस्ट दल की शक्ति इतनी मज़बूत हो जावेगी कि क्यूमिंतांग सरकार के लिये वहाँ पुनः अधिकार जमाना बड़ा ही कठिन हो जावेगा। च्यांगकाई शेक इस बात को भली-भांति जानते हैं इसी कारण वह कम्यूनिस्ट बढ़ाव को अपनी पूर्ण-शक्ति के साथ रोकने का प्रयास कर रहे हैं।

लाल आक्रमणों की भीषणता से पता चलता है कि राष्ट्रीय सेनाओं को होपेह तथा शानतुंग में भीषण कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। यह सम्भव है कि जनरलिस्मो च्यांगकाई शेक इन दोनों उत्तरी प्रान्तों में डटकर युद्ध करेंगे जिससे कि वह किसी भांति भी क्यांगसू, होनान, हूपेह और अन्हवी की रक्षा कर सकें। ऐसा करने से यांगटिसी के डेल्टा तथा बेसिन में उनका प्रभुत्व जमा रह जावेगा और बाह्य तथा आन्तरिक व्यापार के लिए शंघाई का बन्दरगाह खुला रहेगा।

शंघाई का बन्दरगाह ह्वांगह्न नदी के तट पर यांगटिसी के डेल्टा में स्थित है। इस कारण वास्तव में वह चीन की व्यापारिक तथा आर्थिक राजधानी है। जिस किसी के अधिकार में शंघाई का बन्दरगाह रहेगा वह चीन के व्यापार तथा आर्थिक जीवन का मालिक होगा और इस स्थिति में होगा कि वह किसी भी तीसरे राष्ट्र के साथ राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करे। अब तक चूंकि शंघाई का सञ्चालन नानकिंग से ही हो रहा है इसी कारण जनतन्त्रात्मक राष्ट्र मुख्यतः संयुक्तराष्ट्र अमरीका उसकी कम्यूनिस्ट विरोधी नीति का समर्थन कर रहे हैं।

यदि शंघाई का बन्दरगाह नानकिंग सरकार के हाथों से निकल जाता है तो इसका अर्थ यह है कि चीन में वाशिंगटन नीति का अन्त हो जाता है। चीन में श्रम-रोकन कार्रवाइयों का केन्द्र शंघाई ही है। इसलिये संयुक्त राष्ट्र अमरीका शंघाई पर नानकिंग अधिकार बने रहने के लिये अपनी भरसक सहायता चीन को प्रदान करेगा। यदि शंघाई पर कम्यूनिस्टों का अधिकार हो जाता है तो जनतन्त्रात्मक शक्तियों को दक्षिणी चीन में कम्यूनिस्टों

का सामना करने के लिये कैन्टन हटना पड़ेगा।

लाल सेना के भूमि सम्बन्धी ध्येय

कम्यूनिस्तों के क्षेत्रवर्ती युद्ध नीति के विचार से उत्तरी चीन में पीली नदी का क्षेत्र तथा मध्य चीन का वह भाग आ जाता है जिसमें पीली तथा यांगटिसी नदी के मध्य की भूमि आ जाती है। ऐसी दशा में उत्तरी चीन में होपेह, शानतुंग, शांसी, शेंसी शामिल हो जाते हैं जिनकी जन-संख्या ८ करोड़ ८० लाख है। उसी प्रकार मध्य चीन में हूपेह, होनान, अन्हवी और क्यांगसू शामिल हो जाते हैं जिसकी जन-संख्या १२ करोड़ होगी।

यदि कम्यूनिस्त दल के हाथ में उत्तरी चीन आ जाता है तो मंचूरिया के सहित उसके अधिकार में १३ करोड़ जनता हो जावेगी। चीन की समस्त जन संख्या ४५ करोड़ है। यह प्रत्यक्ष है कि कम्यूनिस्त लोग अपना प्रभुत्व मध्यचीन, उत्तरी-पश्चिमी चीन, आन्तरिक मंगोलिया (जिसमें चहार, स्वीयान, सिंघासियाहै) पर अधिकार जमाने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। मध्यचीन की जन-संख्या १२ करोड़, उत्तरी पश्चिमी चीन की एक करोड़ २५ लाख और मंगोलिया की ६२ लाख ५० हजार है।

कम्यूनिस्त योजना के निर्माताओं को विश्वास है कि लाल सेना के लिये उत्तरी, उत्तरी-पश्चिमी चीन तथा आन्तरिक मंगोलिया पर अधिकार जमाना कोई बड़ी कठिनाई का कार्य न होगा। इस प्रकार की सफलता का अर्थ यह होगा कि होपेह, शानतुंग, शांसी, शेंसी, कांसू, शंघाई, सिंक्यांग, चहार, स्वीयान और निंघासिया पर पूर्ण कम्यूनिस्त अधिकार हो जावेगा। इस प्रकार उनकी ओर लगभग १५ करोड़ जनता हो जावेगी। इतनी जनता के सहारे कम्यूनिस्त दल उत्तरी चीन में भली-भांति अपनी सुदृढ़ कम्यूनिस्त सरकार की स्थापना कर सकता है।

कम्यूनिस्त लोगों की आक्रमणात्मक नीति से पता चलता है कि वह पहले उत्तरी-पश्चिमी चीन तथा आन्तरिक मंगोलिया को "छुटकारा" दिलाना चाहते हैं। इस ध्येय की साधना के लिये उसने मध्यचीन तथा यांगटिसी के सीमांत ज़िलों में आक्रमण आरम्भ कर दिये हैं। यह आक्रमण केन्द्रीय सेना की आक्रमणात्मक संगठन को विच्छेद करने के लिये किये जा रहे हैं जिस से लाल सेनाओं के पिंसर आक्रमणों द्वारा उन्हें पूर्ण रूप से परास्त किया जा सके।

जहां एक बार उत्तरी, उत्तरी-पश्चिमी तथा आन्तरिक मंगोलिया के "छुटकारे" वाले आक्रमणों की क्रिया समाप्त हुई तो फिर लाल सेना का ध्यान मध्यचीन की राष्ट्रीय सेना की ओर जावेगा ताकि वह "छुटकारे" वाले प्रदेश में पुनः प्रवेश न कर पावे। यदि वह राष्ट्रीय सेना को मध्यचीन में कमज़ोर पावेगी तो फिर उस पर भी अधिकार जमावेगी। ऐसी दशा में कम्यूनिस्तों के अधिकार में लगभग २७ करोड़ जनता चली जावेगी। इस प्रकार चीन की अधिकांश जनशक्ति की सहायता से दक्षिणी तथा दक्षिणी-पश्चिमी चीन के मामले उसके लिये सरल हो जावेंगे।

मंचूरिया तथा उत्तरी चीन में कम्यूनिस्त प्रभुत्व की स्थापना का राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है। कम्यूनिस्त विजय ने सिद्ध कर दिया है कि चीन की अधिकांश जनता ने, जिसमें राजनैतिक दल भी शामिल हैं, नानकिंग की सरकार में अपना विश्वास खो दिया है। दिन प्रतिदिन अधिक लोग कम्यूनिस्त शिविर में चले जा रहे हैं। जब तक नानकिंग सरकार अपनी जनता की वफ़ादारी प्राप्त करने में सफल न होगी तब तक उसके लिये उत्तरी तथा मध्य चीन में संयुक्त राष्ट्र अमरीका की सशस्त्र सहायता पर निर्भर करना व्यर्थ है। नानकिंग सरकार के दिन प्रतिदिन निर्बल होने तथा अधिकांश जनता के कम्यूनिस्त बनने के कारण राजनैतिक पलड़ा कम्यूनिस्तों की ओर झुक रहा है।

प्रक्रिया का अध्ययन तथा प्रभाव

लाल विजय से पता चलता है कि सोवियत् यूनियन की सुदूरपूर्वी नीति को सफलता तथा संयुक्त राष्ट्र अमरीका की "कम्यूनिस्तवाद रोको" नीति को असफलता प्राप्त हुई है। वाशिंगटन ने सुदूरपूर्व में शक्ति—संतुलन नीति का जो अनुसरण किया था अब वह खतरे में है और कोरी कागज़ी बन रही है। चीन में जो राजनैतिक उथल-पुथल हुई है उससे संयुक्तराष्ट्र अमरीका को जापान में अपनी नीति बदलना पड़ेगा और पूर्वी एशिया में जापान को सर्वाधिक कम्यूनिस्त विरोधी देश बनाना पड़ेगा।

जनरल माओ-से-तुंग, कम्यूनिस्त दल के प्रधान ने आखिरकार अपने "जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों" को सक्रिय करके दिखा दिया। जिसकी उन्होंने "सर्वोच्च पवित्र कोड" में रूप रेखा खींची थी। इसकी घोषणा गोलार्द्धिक युद्ध के समाप्त होने के पश्चात् की गई थी। इस कोड में वर्णन किया गया है कि फासिस्तवादी तथा पूंजीवादी चंगुलों से चीन को "छुटकारा" प्रदान करने के लिये किन राजनैतिक तथा रक्षात्मक प्रयासों को काम में लाया जावेगा और फिर "जनतंत्रात्मक" सरकार की स्थापना होगी। जनरलिसमो च्यांग काई शेक, जिन्होंने "कम्यूनिस्त डाकुओं" को निकालने के लिये कोड की रचना की थी, अब भीषण कठिनाई का सामना कर रहे हैं। जब कि वह अपनी योजना बना रहे हैं और अपनी सेनाओं का पुनर्संगठन कर रहे हैं लाल सेना एक के पश्चात् दूसरे स्थानों पर अधिकार जमाती चली जा रही है।

ऐसे संकेत दिखाई पड़ते हैं कि शीघ्र ही कम्यूनिस्त दल की गुप्त "पीपुल्स सरकार" खुले तौर पर "पीपुल्स रिपब्लिक" की स्थापना करने के लिये सामने आ जावेगी। जिस क्षण कम्यूनिस्त पीपिंग पर अधिकार प्राप्त कर लेते हैं। बहुत सम्भव है कि वह "पीपुल्स रिपब्लिक" की घोषणा कर दें। उस रिपब्लिक के प्रेसीडेंट माओ-से-तुंग, रक्षामंत्री जनरल चू तेह तथा पर राष्ट्र सचिव जनरल चो-एन-लाइ होंगे। इस सरकार को सोवियत् यूनियन, उत्तरी कोरियाई सरकार, बाह्य मंगोलिया, यूक्रेन तथा कम्यूनिस्त योरुपीय सरकारें वैध स्वीकार कर लेंगी। इस तरह सोवियत् यूनियन की मान-मर्यादा स्वयं बढ़ जावेगी और तब क्रेम्लिन की सुदूरपूर्वी नीति पूर्ण रूप से चालू हो जावेगी।

मंचूरिया तथा उत्तरी चीन में लाल सेना ने जो प्रदर्शन किये हैं उनसे दक्षिणी-पूर्वी एशिया के कम्यूनिस्तों को उत्साह मिला है और वह भी "जन समुदाय के छुटकारे" का युद्ध अधिक जोर के साथ लड़ने की सोच रहे हैं। इण्डोचीन, स्याम, मलाया, इंडोनीशिया, बरमा, भारत तथा पाकिस्तान के कम्यूनिस्तों का ध्यान चीनी कम्यूनिस्त दल तथा माओ-से-तुंग की ओर लगा है। चीन में कम्यूनिस्त शासन के स्थापित हो जाने से उसका प्रभाव दक्षिणी-पूर्वी एशिया पर पड़ेगा। चीन में जो वर्तमान उथल-पुथल है वह प्राचीन देशों की भीषण क्रान्ति की रूप रेखा है। समस्त एशिया प्राचीन देशों के इतिहास में एक नवीन जागृति का अवलोकन कर रहा है और चीन की नवीनतम घटनाओं के मध्य अपना जीवन व्यतीत कर रहा है।

[४०५ पृष्ठ का शेष]

पुराने स्टाक को बेचने के लिये अवधि एक महीना और बढ़ गई है परिणाम यह हो रहा है कि दाम बजाय घटने के और बढ़ गये हैं।

(७) साथ ही जबतक प्रान्तों और रियासतों के कोटा फिक्स नहीं किये जाते तब तक वितरण की समस्या नहीं सुलझाई जा सकती। टेक्सटाइल कमिश्नर की एक विज्ञप्ति में बतलाया गया है कि इस समय भारतीय मीलें ४,५०० मिलियन गज कपड़ा बना रही हैं। इसमें से ४५० मिलियन गज पाकिस्तान के लिये, ३०० मिलियन गज दूसरे देशों के लिये और १०० मिलियन गज फौज के वास्ते निकाल कर इस समय देश में प्रति मनुष्य १० गज मिल के कपड़े का औसत पड़ता है। इसमें ४ गज हैंडलूम का कपड़ा बढ़ा देने से यह १४ गज हो सकता है। बाहर से कपड़े की आमदनी बन्द है, किन्तु वास्तविक समस्या यह है कि हमारे देश की आबादी पहले की अपेक्षा बढ़ गई है। बाहर से कपड़ा आना बन्द हो गया है और जनता की क्रयशक्ति बहुत बढ़ गई है। इसीलिये चारों ओर कपड़े का अभाव दिखलाई देता है। यदि सरकार वितरण की समस्या को ठीक ढंग से नहीं सुलझा सकी तो इस बार भी नियन्त्रण की असफलता निश्चित है।

वितरण का सहज एवं सफल तरीका क्या हो, इस पर अगले लेख में प्रकाश डाला जायेगा।

आठ कविताएं

(१)

अधिष्ठान और अधिष्ठाता

श्री रघुवीर सहाय

आहत था गांधी का सीना,
उन तीन गोलियों को खाकर
मुश्किल था जब उसका जीना,
रो रो कर अपनी किस्मत को हमने कोसा,
अब कहाँ मिलेगा महापुरुष उसके जैसा,
माथे को लेकर हाथों में हम बैठ गए,
यह भूल गए ये गाँधी भी मर सकता है॥

वह कुछ लोगों की नज़रों में
था शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल,
क्षण भंगुर तन के वस्त्रों में
वह नहीं आदमी था, कोई परमात्मा था,
धर्मांधं बुद्धि से ऐसा हमने समझा था,
उसको अपने ही जैसा देख नहीं पाए,
इसलिए न जाना मानव क्या कर सकता है॥

संकट आया जब काम पड़ा,
बढ़-बढ़ बातें करने वाला
बातें ही करता रहा खड़ा,
लेकिन उसने आगे आकर दे दिए प्राण,
दे दिए, कि हम कुछ समझ सकें, यह अधिष्ठान
कितना भारी है, उसके जैसे तन की भी
पड़ सकती आखिर जिसमें आवश्यकता है॥

(२)

पूजा के फूल

श्री आरसी प्रसाद सिंह

फूल पूजा के नहीं,
इनमें खिला मेरा प्रणय है!
लहर सौरभ की उठी जो,
फूटता मेरा प्रणय है!

आरती मे जल रहा जो
दीप, मेरा ही मनोरथ!
दिव्य जिसके ज्योति-मण्डल से
प्रकाशित साधना-पथ!
आत्म-मन्दिर से किसी की
गूँजती वाणी अभय है!
फूल पूजा के नहीं,
इनमें खिला मेरा प्रणय है!

पूर्ण जीवन ही समर्पित
हो रहा, स्वीकार करलो!
और चरणों पर चढ़ा
संसार, अंगीकार कर लो!
डूबता अस्तित्व मानो,
कामनाओं का प्रलय है!
फूल पूजा के नहीं,
इनमें खिला मेरा प्रणय है!

(३)

रुको नहीं पड़ाव पर

श्री राजनाथ राय एम० ए०; बीटी०

थकित चरण हैं, जानता।
कठिन है पंथ, मानता।
परन्तु लक्ष्य दूर से
सुनो तुम्हें पुकारता—
रुको नहीं पड़ाव पर
बढ़े चलो, बढ़े चलो!

स्वतंत्र देश आज है,
परन्तु क्या स्वराज्य है?
अभी तो दूर आज भी
पुनीत राम राज्य है;
खतम कहाँ हुई सफर
बढ़े चलो, बढ़े चलो!

उमड़-घुमड़ तिमिर-गगन
बिछा रहा जलद सघन
प्रबल पवन बता रहा
प्रलय क्षणों का आगमन;
बुझे न ज्योति पर अमर
बढ़े चलो, बढ़े चलो!

जगो, जगे कला नवल,
नवीन युग-गिरा नवल,
युगानुरूप चेतना—
कमल खिले कठिन-मृदुल;
उठो भविष्य-भाल पर,
बढ़े चलो, बढ़े चलो!

तजो न लक्ष्य मूल को
भजो न व्यर्थ भूल को
झुको न खींचने अभी
विँधे चरण के शूल को,
पड़ी समक्ष है डगर
बढ़े चलो, बढ़े चलो!

(४)

सुर-धनु

श्री राजनारायण बिसारिया 'प्रकाश'

वर्षा बीती, खुल गया गगन, धुल गया पवन,
सुर-धनु-मंडित नभ ज्यों सौरभ-युत नील सुमन!
सद्यः स्नाता
ज्यों मुस्काता
हो सतरंगी साड़ी में नभ-बाला का तन!

यह सुर-धनु है? अथवा सुख का कोई सपना,
जो रंग-बिरंगी मधुर कल्पना से अपना
तन ढके हुए,
मद-सुरा पिए,
अम्बर के नयनों में ढलने आया निस्वन!

या मेरे ही स्वप्निल-स्वर्णिम भावों का दल,
प्रतिबिम्बित हो नभ के दर्पण में रहा मचल!
या सुमन-हार
प्रे मो प हा र
नभ-बाला के वक्ष स्थल पर कर रहा शयन!

निज अंगुलि से संकेत नहीं कोई करना,
अन्यथा डूब जाएगा धनु ज्यों सुख-सपना
जिसका प्रणयन
उन्मद उन्मन
करते रहते हैं ये मेरे कल्पना-नयन!

ओ स्वतन्त्रते !

श्री छोटेलाल भारद्वाज बी० ए०

उस दिन, प्रभात के स्वर्ण-समय
जब श्याम घनों में रक्त-मयी
चपला-सी ऊषा
चमक उठी थी लाल लाल,
तू धीरे धीरे उतर पड़ी
सिन्दूर-रंग से अनुरंजित कर
वसुन्धरा का प्राच्य भाल।
मेरी स्वतन्त्रते !

चालीस कोटि का देश एक,
जो उजड़ रहा था सदियों में
मुट्ठी-भर रक्त-शोषकों ने
पत्थर पत्थर जिसका पीसा
निर्वीर्य, हाय, जो था गुलाम
तूने आकर आज़ाद किया;
वह था प्रभात का स्वर्ण-काल।
उस दिन तेरे मधु-सौरभ से-
थी कली कली महमहा उठी,
थी डाल डाल लहलहा उठी,
औ' डाल डाल पर बैठ विहंगिनि
जी भर भर चहचहा उठी;
चल पड़ी वायु नव-वेश किए
तृण तृण के हित सन्देश लिए
'दुनिया में अब क्षणभर को भी-
टिक नहीं सकेगा कायर तम।'

× × ×

मेरी स्वतन्त्रते ! देख तुझे
मेरे कवि के मन ने सोचा,
'मेरा स्वदेश आज़ाद हुआ
शायद बरबादी का पुतला
मानव फिर से आबाद हुआ।'
फिर सोचा 'खून दिया कितना ?
तब देखी ऊषा की लाली,
हा ! इस प्रसून के खिलने में
बलिदान हुए कितने माली ?'

सोचा 'धरती के पुत्रों का
अब होगा धरती का कण कण;'
सोचा 'अब सुन न पड़ेगा फिर
भूखों मज़लूमों का क्रन्दन।'
पर,
कण्ठ हुआ अवरुद्ध आज
उत्सुक आँखें पथराई-सी
उल्लास भरे मेरे मन पर
गिर पड़ी घोर नैराश्य-गाज।
मैं देख रहा हूँ हाय, आज
विकराल क्षुधा का नग्न नृत्य,
मन में उन्नति के स्वप्न भरे
पर हाय ! पतन ही आज सत्य;
झुक रहीं ग्लानि से मौन पलक
झुक रहा शर्म से शीश आज
क्षोभित हो पिघल रहा हिमगिरि
रो रहा व्यथा से हाय, ताज।
दीपक तो सूरज बना, मगर
घर का अंधियारा मिट न सका।
हो गये महल आज़ाद, मगर
कुटियों का बन्धन कट न सका।
दृग में शोषण का दैन्य लिए
जर्जर कुटिया के द्वार खड़ा
है पूछ रहा मुझसे किसान,
'क्या हम सचमुच आज़ाद हुए ?'
मुख पर भूखी वेदना लिए
मिल की चिमनी के पास खड़ा
मजदूर पूछता है मुझसे
'क्या हम सचमुच आज़ाद हुए ?'
तो स्वतन्त्रते ! बतला तेरा
स्वागत किस मुँह से करूँ आज ?
कङ्काल अभी मेरा स्वदेश
कङ्काल अभी मेरा समाज।
वे कल तक के रण सेनानी
जिनके दृढ़ अग्नि-चरण से छू

पथ-धूलि हो गई तूफानों,
हैं भूल चुके कर्तव्य आज।
दुर्भाग्य देश का खींच रहा
बन उन्हें स्वर्ण का भव्य ताज!
तो, उन्हें जगा दूँ, रक्त न जिनका
हुआ स्वर्ण से पीत अभी
जिनमें विद्युत्-सा कौंध रहा है
इन्क़लाब का गीत अभी!
जायें ये अभी धधकते हो
निर्धूम क्रान्ति के अङ्गारे,
बन जायें जब तक भस्म नहीं
ये महलों के पत्थर सारे!

आज़ाद बने जब डाल डाल
आज़ाद बने जब पात पात
आज़ाद बने पंछी पंछी
आज़ाद बनेगा तब उपवन;
आज़ाद बने जिस दिन घर घर,
आज़ाद बने खँडहर खँडहर
आज़ाद बने जिस दिन मजूर
आज़ाज बने जिस दिन किसान
आज़ाद बनेगा तब स्वदेश।
उस दिन तेरे संध्या, प्रभात
होंगे सचमुच ही स्वर्ण-वेश
ओ स्वतन्त्रते!

(६)

गीत

श्री आनन्द नरायण शर्मा बी० ए० आनर्स

(१)

वृथा विफल गए दिवस दुलार के-
कि मैं तुम्हें दुलार भी नहीं सका!
दुलार के दिवस धरा गगन सजे,
दिशा-दिगंत, कुंज-पुंज वन सजे,
कि विश्व बीच एक-एक कण सजे,
सजे सभी स्वरूप निज सँवार के-
कि मैं तुम्हें सँवार भी नहीं सका।
हवा चलती हहर, लहर लता हिली,
कि रूप की मुँदी हुई कली खिली,
समस्त सृष्टि को सरस सुरभि मिली,
भ्रमित भ्रमर चकित, थकित निहार के-
कि मै तुम्हें निहार भी नहीं सका!
अमर रही न छवि मगर बसन्त की,
अमर रही न छवि दिशा-दिगन्त की,
अमर रही न छवि अपार अनन्त की,
पिकी अधीर कह रही पुकार के-
कि मैं तुम्हें पुकार भी नहीं सका!
वृथा विफल गए दिवस दुलार के-
कि मैं तुम्हें दुलार भी नहीं सका!

(२)

रात शेष है अभी,
दीप किन्तु बुझ चला!
मन्द हो चली शिखा,
धूम-वृन्त में घिरी
बन्द हो चली शिखा,
गीत ज्योति के रुके,
रुद्ध हो गया गला!
चढ़ रहे शलभ नहीं,
ज्वाल में समिधि बने
चढ़ रहे शलभ नहीं,
चीण स्नेह प्राण का,
दाह में हृदय जला!
मग्न स्वप्न प्रात का,
घोर अंधकार में
मग्न, स्वप्न प्रात का,
विश्व को इसी तरह
भाग्य ने सदा छला!
रात शेष है अभी,
दीप किन्तु बुझ चला!

(७)

मानव

श्री रामनाथ अवस्थी

आसमान है पिता और यह धरती तेरी माता
इनको छोड़ अरे मानव तू किसको शीश झुकाता
रे मिट्टी के तन-मन वाले तेरा क्या है मोल
मिट्टी से सोना उपजाने वाले कुछ तो बोल !
तेरी गति के साथ बिगड़ता बनता है भूगोल
एक बार तू अपने बल से बल त्रिलोक का तोल

* * *

तूने मन्दिर, मस्जिद, गिर्जाघर में शीश झुकाया
तूने खून और आँसू से कण कण को नहलाया
तूने क्रोध किया सोने की लंका क्षार बनाया
तूने दे दे शीश काल का आसन सदा हिलाया
तेरी सीमा में सीमित है तेरा भाग्य-विधाता
आसमान है पिता और यह धरती तेरी माता

* * *

तू ही भिक्षुक, तू ही राजा औ' साधू-सन्यासी
तू ही पापी औ' पुण्यात्मा औ' घट घट का वासी
तू ही दानव और देवता बनने का अभ्यासी
तू ही विष औ' तू ही अमृत रे मानव अविनाशी

* * *

तू अतीत का गौरव तू ही है भविष्य की चाह
तू पानी का एक बूँद होकर भी सिन्धु अथाह
तू फूलों की सेज और तू ही काटों की राह
तू है आशीर्वाद और तू ही है दुस्सह आह
जीवन और मृत्यु को तू ही मिटकर सदा मिलाता
आसमान है पिता और यह धरती तेरी माता

* * *

धर्म-कर्म का कर्ता तू ही ज्ञानवान अज्ञान
टके टके पर तू ही बिकता औ' तू ही धनवान
कौन राह रोकेगा तेरी अजर अमर तूफ़ान
महाकाल औ' जगतीतल का है तू ही जलपान

तू ही शांति और तू ही है भीषण हाहाकार
तुझ पर ही अभिमान कर रहा है कायर संसार
जन्म-मृत्यु, निर्माण-नाश, सुख-दुख तेरे शृंगार
तू गीता-रामायण, वेदों के पन्नों का सार
तू ही महानाश औ' तू ही है युग का निर्माता
आसमान है पिता और यह धरती तेरी माता

* * *

तू ही पंडित औ' अछूत का रूप यहाँ अज्ञानी
तू ही पाप और तू ही है पतित अरे अभिमानी
अपने साथ साथ लेकर चलता तू आगी-पानी
अरे, महान मृत्यु भी तेरे ही ऊपर दीवानी

* * *

तू ही पिता और तू ही है पुत्र-प्रेम की छाया
तू ही पालक औ' तू ही है हत्यारे की काया
तू ही मोक्ष और तू ही है इस दुनिया की माया
तू ही मित्र और तू ही है शत्रु यहाँ बन आया
तू बन जाता देव अगर अमृत में जहर न लाता
आसमान है पिता और यह धरती तेरी माता

* * *

बनकर आग भयंकर मानव फूँक सृष्टि का पाप
हँस हँस औ' मिट मिटकर हर ले जगती का सन्ताप
बना आज वरदान जन्म जन्मान्तर के सब श्राप
आज पुराने पन्नों पर लिख दे नूतन इतिहास

* * *

अरे पुरातन, नूतन बनकर नूतन करो समाज
कल की तरह न कलुषित होने पावे तेरा आज
आसमान से सूर्य छीनकर बना उसे निज ताज
तू राजा बन और नर्क पर खींच स्वर्ग का राज
कविता के स्वर्गीय फूल मैं तुझ पर आज चढ़ाता
आसमान है पिता और यह धरती तेरी माता

कल्पना विहग

श्री राजनारायण बिसारिया 'प्रकाश'

मन के नभ में सपनों के पर फैलाता है,
आशाओं के बादल-दल-सा लहराता है!
भावना-प्रमद
उन्मद-उन्मद
कल्पना-विहग अनजान-दिशा से आता है!
अन जाने मे अन जाने ही उड़ जाता है!!

मानस में शतदल-सा आता मुस्कान लिए,
पंखों की पंखुरियों में सुरभि-उड़ान लिए!
अलसित-अन्तर
सौरभ से भर,
मधु में डूबे किंजल्क-स्वरों में गाता है!

नभ के मेघों में चन्दा-सा छिपता रहता,
मारुत-लहरों में गतिमय निर्झर-सा बहता!
तारल्य लिए,
सारल्य पिए,
नारी की चितवन-सा संगीत लुटाता है!

उड़ जाता सूनी रह जाती मन की डाली,
ज्यों स्वप्न-सुरा से रिक्त लोचनों की प्याली!
अवसाद-पूर्ण
दुखवाद-पूर्ण
अभिशाप्त नप्त जीवन का क्रम बन जाता है!

संध्या को जब हैं दिवा-निशा दोनों मिलते,
आरक्त-प्रातीची में सुख के पाटल खिलते!
मंथर - मंथर
गति से उड़कर
पंछी आता, भूला कोटर अपनाता है!
गाता है, स्वर-निर्झर में दुख बह जाता है!!

शिक्षा का वास्तविक स्वरूप

श्री सम्पूर्णानंद (शिक्षा मंत्री संयुक्त प्रान्त)

भारतीयों का विदेश जाना आजकल बहुत असाधारण बात नहीं है। आज से कुछ वर्ष पूर्व वहाँ जाने में निश्चय ही बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। यदि और सब झेल भी लें तो धर्म से पार पाना बड़ा कठिन होता था। उस समय विदेश यात्रा की गणना उपपातकों में थी और विदेश से लौटा हुआ व्यक्ति प्रायश्चित के बिना समाज में पुनः सम्मिलित नहीं हो सकता था। परन्तु अब वह बात नहीं है। विदेश जाने के पहले काशी के कई विद्वान ब्राह्मणों ने मुझे आशीर्वाद दिया और विदेश से लौटने पर भी अभिनंदन किया। मैं समझता हूँ इसका कारण यह नहीं है कि मैं प्रान्त के शासन में ऊँचे पद पर हूँ, वरन यह कि आज का ब्राह्मण समुदाय स्वयं जागरूक है और काल की गति पहचान कर शास्त्र की समुचित मीमांसा करता है।

अस्तु। इधर वर्षों से भारतीय बाहर जाते रहे हैं। व्यवसायी, विद्यार्थी, राजनीतिक नेता, और अन्य सभी प्रकार के लोग जाते हैं परन्तु जाने वालों की परिस्थिति में पिछले बारह महीनों में बहुत बड़ा अन्तर हो गया है। १५ अगस्त सन् १९४७ के पहले का भारतीय बृटिश प्रजाजन में परिगणित था। अंतारराष्ट्रीय सम्मेलनों में भारत सरकार के जो प्रतिनिधि जाते थे उनका व्यक्तित्व कितना भी ऊँचा क्यों न हो पर अन्य सभी देशों के प्रतिनिधि ऐसा मानते थे कि ये लोग बृटिश प्रतिनिधि मंडल के ही प्रच्छन्न अंग है और किसी गंभीर तथा महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर उसके विरुद्ध नहीं जा सकते। आज के भारतीय की अपनी पृथक और स्वतंत्र सत्ता है। वह स्वतंत्र देश का नागरिक है। आज भारतीय प्रतिनिधि का गौरव अमेरिका, बृटेन या किसी अन्य स्वाधीन देश के प्रतिनिधियों से कम नहीं है। भारत में रहकर हम इसका ठीक ठीक अनुमान नहीं कर पाते।

मैं मुख्य रूप से अंतराराष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के लिए गया था और श्रमसंबंधी बहुत सी बातों का अध्ययन करने का अवसर पाता था पर उन बातों का उल्लेख करना इस जगह अप्रासंगिक होगा। समय निकाल कर कुछ शिक्षा संस्थाओं को भी मैंने देखा। 'शिक्षा संस्था' शब्द का प्रयोग मैं व्यापक अर्थ में कर रहा हूँ। इसके अंतर्गत विद्यालय, विश्वविद्यालय भी हैं और संग्रहालय तथा प्रदर्शनी भी। इसी दृष्टि से मैं लंदन में शेक्सपियर लिखित 'हैमलेट' नाटक का अभिनय देखने गया। शेक्सपियर के लिखे नाटक कम खेले जाते हैं और बहुत ही ऊँचे वर्ग के अभिनेता इनमें भाग लेते हैं। अभिनय करने की कला का उत्कृष्ट उदाहरण इनमें मिलता है और फिर हैमलेट तो ऐसा नाटक है जिसका अभिनय साधारण लोग कर भी नहीं सकते। ऐसे नाटकों की प्रशंसा बहुत सुनी थी। वर्षों से देखने की इच्छा थी। देखकर बहुत आनन्द मिला। एक दूसरा नाटक 'एडवर्ड माई सन' भी देखा। वह आधुनिक रचना है। विषय गंभीर है और अभिनय बहुत ही सुन्दर था। हमारे यहाँ नाटक खेलने की कला लुप्त हो गयी है। पश्चिम में ही सिनेमा का जन्म हुआ। गली गली सिनेमा घर हैं। फिर भी नाटक होते हैं और सुरुचिसंपन्न व्यक्ति सिनेमा की अपेक्षा नाटक को ही पसन्द करते हैं। हमारे यहां सिनेमा ने नाटक को दवा दिया है। बड़े नगरों में कहीं कहीं नाटक मंडलियां हैं किन्तु उनकी दशा देखकर मुझे तो प्रायः रोना आता है। फूहड़पन का ऐसा प्रदर्शन अन्यत्र कम मिलता है। आज हम स्वाधीन हुए हैं और अपनी संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन का प्रयास कर रहे हैं। हमको नाट्य कला की ओर ध्यान देना चाहिए। सिनेमा में भी उच्चकोटि की कला के लिए स्थान है। परन्तु सिनेमा नाटक की जगह नहीं ले सकता।

कार्लमार्क्स ने कहा है कि परिणाम भेद से गुण भेद हो जाता है। यह बात अर्थ शास्त्र ही नहीं प्रत्युत सभी क्षेत्रों में लागू होती है। रसायन शास्त्र के अनुसार तो जलमात्र एक ही पदार्थ है परन्तु बूंद और समुद्र को व्यवहार में एक नहीं माना जा सकता। बूंद में लहरें नहीं उठ सकतीं। उसमें किसी को डराने या डुबाने की और डरने तथा डूबने से सम्बद्ध भावों को जगाने और शारीरिक चेष्टाओं को प्रेरित करने की क्षमता नहीं होती। वह चन्द्रमा के प्रकाश में भले ही रात भर पड़ा रहे परन्तु उसे देखकर शायद ही किसी व्यक्ति को कोई विशेष स्फूर्ति मिल सकती है। यह इसलिए कहता हूँ कि धन, सम्पत्ति, वैभव का थोड़ा बहुत अनुभव तो हमको भी है परन्तु अमेरिका में इन वस्तुओं की राशि ने जो स्वरूप धारण कर लिया है उसकी कल्पना भी हम नहीं कर

सकते। हमने ५, ६ खंड के घर देखे हैं, कुतुब मीनार भी देखा है, परन्तु १०२ खंड के एम्पायर स्टेट बिल्डिंग का, जो सड़क से १,२५० फुट ऊँची है, अनुमान करना हमारे लिए प्रायः असम्भव हो जाता है। यह एक छोटा सा उदाहरण है। लक्ष्मी की उस देश पर कृपा है। इसलिए जो काम धन के द्वारा हो सकते हैं उनमें कोई देश भला वहाँ की क्या बराबरी करेगा? आज हम यदि प्रारम्भिक कक्षाओं के अध्यापकों के पचीस रुपये के वेतन में पाँच रुपये की वृद्धि करना चाहते हैं तो सहम उठते हैं, यद्यपि कुल काम में बीस बाइस लाख रुपये से अधिक नहीं लग सकता। अमेरिका के कई भागों में प्राथमिक कक्षा का अध्यापक जो छात्रों को वर्णमाला पढ़ाता है वही वेतन पाता है जो हायरसेकेंडरी अर्थात् इंटरमीडिएट कक्षाओं को पढ़ाने वाले अध्यापकों को मिलता है। कैलीफोर्निया विश्व-विद्यालय का वार्षिक व्यय लगभग १४ करोड़ रुपया है। आज से ६, ७ वर्ष पहले हमारे प्रान्त की समूची आय इससे अधिक नहीं थी। इस विश्वविद्यालय का सारा व्यय कैलीफोर्निया की सरकार उठाती है। विश्वविद्यालय में कैलीफोर्निया के विद्यार्थियों से फीस नहीं ली जाती। सेकेंडरी स्तर तक शिक्षा प्रायः सर्वत्र निःशुल्क है। जब हम यह देखते हैं कि शिक्षा का प्रसार करने लिये हमको फीस बढ़ानी पड़ती है तो दुःख और ग्लानि से सिर झुक जाता है परन्तु वर्तमान आर्थिक अवस्था में कोई दूसरा उपाय देख नहीं पड़ता। यहाँ मैं स्कूल, कालेज आदि के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहता। हम शिक्षा के विषय में बहुत पिछड़े हुए हैं। इसके लिए हम दोषी नहीं हैं। मुझको इसमें कोई संदेह नहीं है कि भौतिक साधनों की कमी होते हुए भी हम थोड़े दिनों में पृथ्वी के अग्रतम देशों की बराबरी कर सकेंगे। भारतीय विद्यार्थी प्रतिभा और परिश्रम में किसी से कम नहीं है। आज भी वह विदेशों में ख्याति प्राप्त कर रहा है। मुझसे कई विश्व-विद्यालयों के अधिकारियों ने बताया कि संख्या में कम होते हुए भी उनके भारतीय छात्र सर्वोत्तम विद्यार्थियों में गिने जाते हैं।

मैंने इस लेख के आरम्भ में लिखा था कि मैं शिक्षा संस्थाओं में संग्रहालय आदि को भी गिनता हूँ। इस प्रकार की संस्थाओं का हमारे यहाँ बहुत बड़ा अभाव है। कुछ सरकारी और गैर सरकारी संग्रहालय हैं जिनमें कि चित्र मूर्ति और कुछ दूसरी वस्तुएँ एकत्र कर दी गयी हैं। इनसे भी पर्याप्त लोकशिक्षण नहीं होता है। परन्तु सबसे बड़ी बात तो यह है कि आजकल लोगों को सामान्य ज्ञान के रूप में जिन बातों को जानने की आवश्यकता है उनका संग्रह कहीं है ही नहीं। सामान्य ज्ञान के क्षेत्र में हमारे ६० प्रतिशत बी० ए० और एम० ए० अमेरिका के स्कूलों में पढ़ने वाले १५, १६ वर्ष के लड़के लड़कियों से भी कम ज्ञान रखते हैं। एक बिजली का ही उदाहरण लीजिए। बिजली के द्वारा सैकड़ों काम होते हैं और हो सकते हैं। हमारे यहाँ बिजली का उपयोग बहुत कम होता है फिर भी बिजली की रोशनी जलती है, लोग तार देते हैं, टेलीफोन का रिवाज बढ़ता जा रहा है, पढ़े लिखे घरों में रेडियो रहता है, बेतार का चर्चा भी सुन पड़ता है। परन्तु जो लोग इन चीजों से थोड़ा बहुत काम लेते हैं उनमें भी ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है जो विद्युत्शक्ति के स्वरूप को समझते हैं और यह जानते हैं कि यह यंत्र किस प्रकार काम करते हैं।

अमेरिका में कई ऐसी संस्थाएँ हैं जो एतद्विषयक ज्ञान को जनता तक पहुँचाती हैं। उनको कहीं संग्रहालय, कहीं प्रदर्शनी कहते हैं। न्यूयार्क के राकफेलर केन्द्र में ऐसी हो दो प्रदर्शनियाँ हैं। यह बारहों महीने खुली रहती हैं। राकफेलर केन्द्र न्यूयार्क का एक छोटा सा मुहल्ला है। इसमें राकफेलर ने जो इस समय पृथ्वी के सबसे बड़े धनिक हैं कई लोकोपयोगी संस्थाएँ स्थापित की हैं। सब एक से एक विशाल हैं। उनमें एक नाट्यशाला भी है। पृथ्वी पर इतनी बड़ी नाट्यशाला कहीं नहीं है। ये इमारतें जिस ज़मीन पर बनी हैं वह कोलम्बिया विश्वविद्यालय की की सम्पत्ति है। आपस में शर्त यह है कि ६० वर्ष के बाद ये करोड़ों रुपयों की इमारतें और इनके भीतर जो करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति है वह सब विश्वविद्यालय को मिल जायगा। अस्तु संग्रहालय का एक एक विभाग ज्ञान का अपार भण्डार है। उनमें कुछ देर घूम लेने में जितनी जानकारी प्राप्त होती है, उतनी पुस्तकों से वर्षों में नहीं मिल सकती। विज्ञान के प्रत्येक विभाग में आरम्भ से लेकर आज तक जितनी उन्नति हुई है, सबके निदर्शन मौजूद हैं। गैल्वनी ने जिस प्रकार मेढक की टांगों में विद्युत् का संचार किया था वह भी देखा जा सकता है और आजकल की बड़ी से बड़ी और जटिल से जटिल

मशीनें भी देखी जा सकती हैं। कोई बतानेवाला नहीं होता। बहुत सरल भाषा में इस प्रकार के निर्देश लिखे होते हैं कि अमुक बटन दबाओ या अमुक पेंच घुमाओ तो अमुक बात देख पड़ेगी। बड़ों की तो बात ही अलग है, स्कूलों में पढ़ने वाले छात्र भी यहां आते हैं और मशीनों से काम लेते हैं। परिणाम यह होता है कि शास्त्रीय सिद्धान्तों का बोध चाहे न हो पर यह मशीनें कैसे काम करती हैं यह बात समझ में आ जाती है। इसमे पुस्तकों को पढ़ने, युद्ध और शान्ति कालीन समाचारों को समझने, तथा रुचि को पहचान कर तदनुकूल व्यवसाय को चुनने में कितनी सहायता मिलती है इसका अनुमान सहज में हो सकता है। जिस विषय में रुचि हो उससे सम्बन्ध रखने वाली अद्भुत ज्ञानसामग्री एक जगह मिल जाती है। लन्दन का साउथ केन्सिंग्टन म्यूज़ियम भी इसी ढङ्ग का ऐतिहासिक और विशाल संग्रहालय है। इन दिनों उसमें एक नया विभाग खुला है जिसको 'फ्राम डार्कनेस टू लाइट', तमसो मा ज्योतिर्गमय, नाम दिया गया है। इसमें यह दिखलाया गया है कि भविष्य में गैस और साधारण बिजली को हटाकर फ्लोरेसेन्ट लाइट नाम के नये प्रकाश का घरों और सार्वजनिक स्थानों पर किस प्रकार उपयोग होगा। वह लोग बिजली को छोड़ने की बात सोच रहे हैं। हम तो अभी मिट्टी के तेल की ढिबरी और कड़ुए तेल के खुले दिया के युग को भी पार नहीं कर पाये हैं। हमारे यहां लोकशिक्षण के ऐसे साधनों की बहुत बड़ी आवश्यकता है, अभी तो हमारे पास इतनी भी शक्ति नहीं है कि युक्त प्रान्त जैसे बड़े भूखण्ड में ऐसा एक भी संग्रहालय खोल दें। एक मित्र ने बतलाया कि १९२५ में जर्मनी में म्यूनिख नगर में जो संग्रहालय खोला गया उसकी पूरी सैर करने में १३ मील चलना पड़ता है और उसमें ३०० कमरे हैं। मेरी दृष्टि में अपने प्रान्त में दस कमरों की भी ऐसी इमारत नहीं देख पड़ती, जो ऐसे काम में लगायी जा सके। उन देशों में सरकार तो रुपया लगाती ही है, सबसे बड़ी सहायता व्यवसाइयों से मिलती है। वह इस बात को जानते हैं कि ऐसे कामों में धन लगाना व्यापार में पूंजी लगाने के बराबर है। एक ओर तो ज्ञानसम्पन्न अधिक अच्छा काम करता है दूसरी ओर ऐसी चीज़ों को देखने से लोगों का शौक बढ़ जाता है। भांति भांति की वस्तुओं की मांग में वृद्धि होती है और व्यवसाय में उन्नति होती है। हमारे देश के व्यवसायी इस ओर सर्वदा उदासीन हैं। परन्तु जब तक उनका ध्यान इस ओर न जायगा तब तक ऐसी संस्थाओं का खुलना और चलना प्रायः असंभव है।

लन्दन कौन्टीकौंसिल, जिसको हमारे शब्दों में लन्दन का म्युनिसिपल बोर्ड कह सकते हैं, शिक्षा-सम्बन्धी बहुत काम करती है। उसके अधीन जितने अध्यापक काम करते हैं उतने ब्रिटेन में अन्यत्र काम नहीं करते। वह साधारण पढ़ाई के अतिरिक्त लोकशिक्षण के कई काम करती रहती है। गर्मियों में लन्दन के पार्कों में कई प्रकार की प्रदर्शनियां संचालित होती हैं। किसी दिन एक पार्क में, किसी दिन दूसरे पार्क में काम होता है। सब कार्यक्रम पहले से ही छपा रहता है। मैंने एक पार्क में उनका 'ओपन-एयर एग्ज़ीबिशन आव स्कल्पचर'—खुली हवा में मूर्ति कला प्रदर्शनी—देखा। खुली हवा का अर्थ यह है कि मूर्तियां पार्क में यों ही खड़ी थीं, कोई कमरा नहीं था। कई संग्रहालयों से सहायता ली गयी थी। मूर्तियां सुन्दर थीं। उनके संबन्ध में अधिकारी विद्वानों के व्याख्यान भी होते थे।

मैं चाहता हूं कि हमारे यहां इस ओर भी ध्यान दिया जाय। सांस्कृतिक शिक्षा के बिना मनुष्य पूर्णतया शिक्षित नहीं कहा जा सकता। उसके अन्तःकरण का एक महत्त्वपूर्ण अंश संकुचित रह जाता है।

अभी हम लोगों ने शिक्षा के स्वरूप को ठीक ठीक समझा नहीं है पर अब इन बातों की ओर ध्यान देना होगा। शिक्षा का काम केवल मस्तिष्क की उन प्रसुप्त शक्तियों को जगाना नहीं है जिनका सम्बन्ध गणित, इतिहास, रसायन आदि शास्त्रीय विषयों से है। उसके द्वारा सम्पूर्ण 'स्व' का विकास होना चाहिये और व्यक्ति के 'सह अनुभूति' के परिधि में प्राणिमात्र को आ जाना चाहिये। इस क्षेत्र में कला ही सहायक हो सकती है। अतः हमको शिक्षा में कला को स्थान देना होगा। चित्र, मूर्ति, खिले कमलों से सुशोभित सरोवर, सजाया हुआ उद्यान-इनका स्थान पुस्तकों और प्रयोगशालाओं के बराबर ही ऊँचा है।

सरकार को, अध्यापकों को, और शिक्षा प्रेमी श्रीमानों को शिक्षा के इस विस्मृतप्राय अङ्ग की ओर जल्दी अवधान देना चाहिये। विदेश में जाने से पता चलता है कि

[शेष अन्य पृष्ठ पर]

समाजवादी निर्माण का आर्थिक पहलू

डक्टर राममनोहर लोहिया

वैसे तो समाजवाद पूरा चित्र है और वह चित्र तो कई बार खींचा भी जा चुका है। साधारण तौर पर जब कोई चित्र खींचता है तो पूरा ही चित्र खींच देता है। मैं भी चाहूँ तो खींच सकता हूँ। चित्र खींचने के लिए जरूरत है विद्या की, बुद्धि की, एवं ज्ञान की। लेकिन अगर एक सच्चा चित्र खींचना हो जो केवल दीवार पर टांगने के लिए नहीं हो बल्कि जो समाज में लागू हो सके, तो पूरा चित्र एक बार नहीं खींचा जा सकता। एक हिस्से का चित्र एक बार खींचा जा सकता है। पूरा चित्र खींचने के लिए समय लगेगा पर लोग चाहते हैं कि पूरा चित्र एक बार ही खींच दिया जाय मैं तो आपको सलाह दूंगा कि पहले आप एक ही हिस्से के चित्र के बारे में सोचें जो अगले १० वर्ष में समाज का होना चाहिए। इसलिए मैं भी एक ही हिस्सा का चित्र खींचूगा, भले ही वह सुनहला न हो पर जिसे समाज में लागू होना चाहिए। उसी आधार पर आप दूसरे और तीसरे हिस्से का चित्र बना सकते हैं।

अगले १० वर्ष में हमारे जीवन का क्या आदर्श होना चाहिए, इसी का चित्र खींचना है। अगर आप तुलनात्मक ढंगसे देखेंगे तो यह किसी आदमी को पसन्द भी हो सकता है, किसी को नापसन्द भी। कारण यह कि कई आदमी ने कई तरह के चित्र खींचे हैं। जो जंचे और लागू हो, उसे आप रखें।

पहले मै चित्र के आर्थिक पहलू को लेता हूँ।

खेती

मैं चाहूंगा कि अगले १० वर्ष में (जमीन्दारी शीघ्र खत्म कर) हर किसान को २० बीघे जमीन और एक गाय होनी चाहिए, जिससे उनके कुटुम्ब का पालन पोषण हो सके। किसान के कुटुम्ब से मेरा मतलब उन किसानों से भी है जो खेतिहर मजदूर कहे जाते हैं। कुछ दिन पहले मैंने यह बात कही तो हमारे प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल जी को हंसी आई और उन्होंने कहा कि क्या जमीन रबर है जो घटायी बढ़ायी जा सकती है। पर मैं उन्हें उन्हीं की बातों को याद दिला दूं जबकि वह प्रधान मन्त्री नहीं थे—वह भी इसी तरह की बातें किया करते थे। मैं कहता हूँ कि हां, जमीन रबर नहीं है पर जमीन पर काम करने वालों की संख्या रबर की ही तरह है। जमीन पर काम करने वालों की संख्या कम की जा सकती है और कम होना भी चाहिए।

हमारा देहात ७ लाख गांवों में बंटा है। वहां पर घरेलू उद्योग धन्धे बड़े पैमाने में चालू किए जा सकते हैं। केवल एक हाथ से चक्की चलाने वाला धन्धा नहीं और न एक हाथ से चर्खी चलाने वाला ही हो। मुझे तो वैसे उद्योग धन्धे चाहिए जिसमें १०-२० आदमी एक साथ काम कर सकें चाहे उसमें बिजली का भी प्रबन्ध क्यों न करना पड़े। ऐसे उद्योग-धन्धे बड़े पैमाने पर हों यानी लाखों की संख्या में हों। अगर मैं कुछ किसानों को खेती से न निकाल सकूंगा तो फिर मसला हल न हो सकेगा।

ऊसर जमीन को उर्वर करो

जो जमीन अभी पैदावार के लायक नहीं है—ऊसर एवं परती पड़ी हुई है उन्हें पूंजी लगाकर उर्वर बनाना है। यानी पैदावार के लायक बनाना है कुछ लोग लेकर उसे उर्वर बना सकते हैं—खेती के लायक बना सकते हैं – यहां पर आप कहेंगे कि एक तरफ तो आप समाजवाद की बातें करते हैं और दूसरी ओर पूंजी की भी बातें करते हैं—तो बात बेतुकी सी लगती होगी पर आपसे मैं कहूँगा कि याद रखिए इस प्रोग्राम को तो मुझे केवल १० वर्ष के लिये हाथ में लेना है। सभी को एक-ब-एक ही तो नहीं हटाना है। यही बात जमींदारी की।

जमींदारी

जमींदारी तो मैंने दो रोज में खत्म करने को कहा था। उस पर भी लोगों ने हंसी उड़ाना शुरू कर दी। प्रधान मन्त्री भी इससे अलग नहीं रह सके। परन्तु प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल जी को उन्हीं के घर काश्मीर की तरफ ही उनका ध्यान खींचकर बता दिया जाय कि देखिये शेख अब्दुल्ला ने किस तरह काश्मीर में जमीन्दारी का खात्मा किया, तो शायद उनकी आंख खुल जाय। हमने ठीक ही कहा था दो रोज में खत्म करने के लिये और उसके लिये एक समय आया और चला गया—लहर उठी और दब गई। मैं आपको बताऊं वह समय था १५ अगस्त १६४७ साल का। देखा था आपने लोगों में कितने उत्साह और उमंग थी। लोग एक ऐसी परिस्थिति में थे कि कोई भी काम उस समय किया जा सकता था, कोई

चूं तक नहीं करता—सरकार को चाहिये था कि वह ऐलान कर देती कि आज से जमींदारी खत्म की जाती है। जमीन्दारों से कह देते कि जो मुआवजा हमें देना है उसका हिसाब लग रहा है, वह उन्हें मिल जायगा। ख्याल रखिये मुआवजा देने से मैं कोई सुधारवादी नहीं बन गया और जो ऐसा कहेंगे उन्हें जानकारी इस बात की नहीं है कि मैं मुआवजा किनको देना पसन्द करता हूं। खास कर ऐसे जमीन्दारों को मुआवजा दिया जाय जो सरकार को २५-३० रु० लगान देते हैं। जहां तक मेरी जानकारी यू० पी० से है मैं कहूंगा वहां तो ऐसे ही जमीन्दारों की संख्या बेशी है। अतः इन लोगों को ही वैसा मुआवजा मिलना चाहिये—इनकी हालत भी गई गुजरी है।

उद्योग-धन्धा

सही बात है कि जो एक बात चल पड़ी है वह है "राष्ट्रीयकरण" की। मैं चाहूंगा कि पूरी सम्पत्ति समाज के हाथों में कर दो। लेकिन एक बात मैं आपको बता देना चाहता हूं कि किसी एक जगह एकत्रित स्वामित्व आप नहीं कायम करें। मिल्कियत को आप चार पांच केन्द्रों में विभाजित रखें। मैं तो एक बात से खुश हो जाऊंगा अगर आप जितने करोड़पति हैं उनकी सारी सम्पत्ति को समाज के हाथों कर दें। तो आप में से लोग ऐसे सवाल या शंका भी कर सकते हैं कि जिसके पास एक करोड़ न रह कर लाख होगा उसको क्या करेंगे या धनी तो चालाक होते हैं, वे अपनी सम्पत्ति को अपने परिवार के कई आदमियों में बांट कर २०-२० लाख कर लेंगे तो आप क्या करेंगे? उनके लिए मेरा यह जवाब है कि मेरी परिभाषा करोड़पतियों की उस हालत में भी वैसी ही होगी। याद रहे यह कार्यक्रम मैं केवल १० वर्ष का ही बता रहा हूं।

कोयला, बैंक, बीमा, बिजली के उद्योग धन्धों को तो शीघ्र ही समाज के हाथों में चला आना चाहिए। अगर इन सब चीजों को समाज की सम्पत्ति करार दी जाय तो आर्थिक जीवन ही सुधर जाता है। कारण ये सब पूंजीपतियों के हाथों से निकल कर समाज के हाथों में चली आयंगी। यहां पर मैं एक बात आपको याद दिलाना चाहता हूं कि यू० पी० में चुनाव के समय में लोगों को बहकाया गया था कि अगर समाजवादी शासन में आयंगे तो तुम्हारी सब चीजें ले लेंगे—और यह कहा गया धनवालों से, कपड़ेवालों से एवं गल्ला के छोटे दूकानदारों से। यह भी कहा गया कि वे सब चीज ले लेंगे और राशनकी दूकान खोलकर तुम्हें नौकरी पेशा में लगा देंगे। आपने देखा कैसा गंदा प्रचार है। मैं समाजवाद जोर जबर्दस्ती से नहीं लाना चाहता हूँ। मुझे तो लोगों का दिल बदलना है।

लोग समझ लें, सोच लें तब आवें। हां, बैंक और बीमा एवं बिजली का इतना महत्व है कि इसे मैं छोड़ नहीं सकता। इसको शुरु से ही समाज की सम्पत्ति करार करनी है।

संचालन

इन सब चीजों की देख भाल करने एवं सही तौर पर चलाने के विषय पर भी सवाल उठना स्वाभविक है जैसे इलाहाबाद में बिजली का दाम कानपुर के अनुपात से कम है। कारण इलाहाबाद की बिजली सरकारी सम्पत्ति है पर कानपुर में यह बात नहीं है—ऐसा देखा या सुना गया है कि ठीक से, सही तरीके से चलाने वाला वहां कोई आदमी नहीं है। सोशिलिस्टों को ही चलाने के लिए दो, और देखो कैसे चलाते हैं। यह सवाल उठाया गया है। थोड़ी देर के लिए माना कि हम भी असफल हो सकते हैं पर इन सब चीजों के लिए तो एक बोर्ड बनाकर काम चलाया जा सकता है और अन्य सर्विसों की तरह इन कामों के लिए भी विशेष शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए और इन्हीं विशेष शिक्षितों का एक बोर्ड बनाकर इन उद्योगों का संचालन करना चाहिए। यह मानी हुई बात है कि आजकल भ्रष्टाचार फैला हुआ है, अकर्मण्यता बढ़ गई है, घूसखोरी चरम सीमा तक आ गई है। एक बीमारी और है जो राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं में फैल गई है। वे लोग अपने सगे सम्बन्धियों को बुला बुलाकर जगहों पर बैठा देते हैं। चाहे वे लोग लायक हैं या नहीं। उदाहरण के लिए बनारस से मछली व्यवसाय को ले लीजिये। जब यह व्यापार वहां के बोर्ड के हाथ में था, २,००० रु० सालाना आमदनी होती थी पर जब सरकार के हाथ में आया तो सिर्फ छः आना नफा साल में बताया गया। आप कहेंगे कि आप भी तो इस गलती को दुहरा सकते हैं। हां, गलतियां हो सकती हैं और इसी से मैं कहता हूँ, इसका इन्तजाम अलग किया जाय।

एक जमाना था जब हमारी आंखों में नशा था और विश्वास था कि हमारे जीवन में ही समाजवाद कायम हो जायगा पर अब वह आशा कुछ कम सी हो गई है। समाजवाद कायम होगा लेकिन समय लगेगा। पर मैं यह कहूँगा कि अगर आप समाजवाद और जनतन्त्र को बचाना चाहते हैं तो आमदनी की एक सतह ठीक कर दी जाय। चूंकि मैं यथार्थवादी हूँ इसलिये मेरी समझ से अभी कम से कम १०० रु० और ज्यादा से ज्यादा १,००० रु० की सतह हो। अगर जोश में आकर इससे भी कम कह दूँ तो आपको खुशी तो होगी पर वह क्या यथार्थ में सम्भव होगी और काम में लायी जा सकेगी कि नहीं यह विचारणीय है।

नौकरशाही का अन्त

हमारे साथी जो अब बिछुड़ गए हैं, नौकरशाही को उखाड़ फेंकने के लिए बड़ी बड़ी बातें करते थे। अब देखता हूँ कि वे उसी में फँसते जा रहे हैं। जो परिवर्तन लाना चाहिये था अभी तक न लाये गये और न लाने की आशा ही है। हां, दिल्ली में तो कुछ परिवर्तन हुआ भी। लाट साहब गये, पुराने मन्त्री लोग गए और सबसे बड़ी बात यह हुई कि जनता के प्रतिनिधि द्वारा लालकिले पर राष्ट्र का प्यारा झण्डा फहराया गया परन्तु यह सब सूबों में नहीं हुआ।

सूबों में तो अभी तक वही कलक्टरशाही एवं उनके पिट्ठुओं का राज चल रहा है। अभी तक उनका वही आदमी घेरे रहते हैं जिन्होंने हमारे या देशवासियों की मां-बहिनों पर अत्याचार, बच्चों की लाश जिन्दा उनके सामने ही जलाया था। क्यों इन जालिमों को मौका दिया जाता है। क्यों नहीं सरकारी इमारतों पर झण्डा फहराने के समय इन लोगों को रोका गया और जनता के प्रतिनिधियों या जनता को मौका दिया गया। परिस्थिति और बिगड़ जाती है जब कलक्टरशाही और एम० एल० ए० शाही का गठबन्धन हो जाता है। न जाने दोनों मिलकर परमिट और अन्य चीजों को लेकर क्या क्या सितम जनता पर ढाते हैं। इसका शीघ्र अन्त होना चाहिये।

जिस तरह दिल्ली में शासन बदला उसी तरह सूबों में भी बदलना चाहिये था। शक्ति गांवों, जिलों एवं शहरों के पंचायतों को दे देनी चाहिये थी। शासन में काफी सुधार होना चाहिये था।

विधान

संसार भर के लोगों की नजरें हमारी तरफ लगी हुई हैं। लोग देख रहे हैं कि हम कैसा विधान बना रहे हैं क्योंकि यह देश का सबसे ऊँचा कानून है। इसी के बल पर हम अपने दोस्त या दुश्मन तैयार कर सकते हैं। याद रखिये रूसी क्रान्ति के बाद सबकी नजरें उसी ओर थीं क्योंकि उस समय प्रकाश की किरण वहीं थी पर अभी दुनिया में वह प्रकाश की किरण और कहीं नहीं है। अगर है तो वह भारतवर्ष में। अस्तु सब की आंखें हमारी ही ओर हैं। इसी से हमारे मित्र और शत्रु का निर्माण होगा। पर वास्तव में वहां यानी विधान परिषद् में क्या हो रहा है? वहां तो खिचड़ी-सी पकायी जाती है। कुछ इधर का कुछ उधर का लेकर एक अजीब चित्र तैयार कर रहे हैं। इस विधान को बनाने में सारी जनता की दिलचस्पी चाहिए थी। सर्वत्र देश में एक वातावरण पैदा किया जाता कि सब लोग इस पर काफी चर्चा करते लेख से, वहस से, सभा वगैरह करके देश में लहर पैदा कर देते—लोग तय करते कि केन्द्र में कितनी ताकत रहे, सूबों में क्या रहे, जिले, गांवों और शहरों में कितना बँट जाना चाहिए था। इसका तो देश में एकदम अभाव ही है।

अकर्मण्यता

देखता हूँ किसी को काम में दिलचस्पी ही नहीं है और न कोई काम करने की प्रेरणा ही है। लोग 'कोई नृप होहि हमें का हानी, चेरी छांड़ि ना होईब रानी' को चरितार्थ करने पर उतारू हैं या यों कहें कि देश मंथरावाद के तरफ झुका जाता है। याद रहे मैं आपको सतर्क किये देता हूँ। अगर ऐसा ही हुआ तो अनेक वर्ष के परिश्रम के बाद गांधी जी ने जो भाग्य के युग को खत्म कर पुरुषार्थ का युग लाया था वह लुप्त हो जायगा। फिर हम लोग मन्थरावाद या अकर्मण्यता के बड़े खतरे में पड़ जायेंगे एवं देश का और जनतन्त्र का बड़ा अहित होगा।

सोशलिस्टपार्टी एवं कांग्रेस में फर्क

लोग कहते हैं आप में और कांग्रेस में तो वैसा फर्क नहीं है जो आप चाहते हैं वही कांग्रेस भी चाहती है पर

[शेष पृष्ठ ४३० पर देखिये]

भारतीय कृषि का सर्वनाश

श्री गार्गी शंकर मिश्र

"भारतीय सभ्यता मुख्यतः एक कृषि सभ्यता थी, और उसकी प्रथम इकाई थी स्वशासित ग्राम, भारत का आर्थिक और राजनैतिक ढांचा ही ग्रामपञ्चायतों पर बना था"।

(पं० जवाहरलाल नेहरू-डिस्कवरी आफ इण्डिया)

हिन्दोस्तान के देहात अपने प्रत्येक क्षेत्र में विकसित रहते हुए, देश की राजनीति और अर्थ व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। हजारों वर्षों से शासन, न्याय, शिक्षा और आन्तरिक व्यवस्था आदि महत्वपूर्ण विषय ग्रामपञ्चायतों के अधिकार में थे। ग्रामपञ्चायतें अपने सीमित क्षेत्रों में, इनके अलावा कृषि और उद्योग का भी सफल संचालन करती थीं। ग्रामपञ्चायतों के पञ्च-देहातों के सच्चे, अनुभवी, चतुर और सबके विश्वासपात्र व्यक्ति होते थे। उनकी कर्तव्यनिष्ठा मशहूर थी।

जमीन किसानों की व्यक्तिगत सम्पत्ति होते हुए भी-वह सहकारी तरीके पर जोती जानेवाली पूरे ग्राम की सम्मिलित सम्पत्ति थी, जिसपर ग्रामपञ्चायतों का पूर्ण अधिकार रहता था।

मद्रास मालगुजारी बोर्ड सन् १८१६ की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि—

"सारे ग्राम की जमीन पर पञ्चायत का अधिकार होता था।"

कृषि से सम्बन्धित कई उद्योग भी भारतीय देहातों की विशेषता थे-जिनमें, सूती, रेशमी तथा ऊनी वस्त्र तय्यार करने के उद्योग तथा उनका व्यवसाय, प्रमुख थे। यही कारण था कि, अन्न और वस्त्र की चिन्ता से मुक्त- आन्तरिक शासन और व्यवस्था में स्वतन्त्र, भारतीय ग्राम जनतन्त्र द्वारा परिचलित छोटे छोटे राज्यों के समान थे।

मेटकाफ ने लिखा था:--

"ग्रामपञ्चायतें अपनी सब आवश्यकताओं से पूर्ण स्वशासित रिपब्लिक हैं।"

ग्रामपञ्चायतें और उनके सहकारी तरीके पर ही भारतीय ग्राम्यजीवन निर्भर था। जिसके परिणाम स्वरूप वहां सहृदय, कर्त्तव्यनिष्ठ, त्यागी, सच्चे, और वीर व्यक्तित्व का सृजन होता था।

ग्रामपञ्चायतों के विनाश के साथ ही- सहकारिता भी नष्ट हो गई, और वे ही ग्राम स्वार्थ, कलह, फूट दारिद्र्य, अज्ञान और कायरता के केन्द्र बन गए।

राजा और किसनों के भी सम्बन्ध सहकारिता पर ही अवलम्बित थे। वैसे तो राजा राज्य भर की सब वस्तुओं का स्वामी माना ही जाता था-किन्तु जमीन और किसानों से उसका सम्बन्ध स्वामी का न था। वह उनका प्रतिपालक था। कृषि की सुव्यवस्था, चोरों से रक्षा ही नहीं किन्तु चोरी गई वस्तु का मूल्य अपने खजाने से भर देना, बाहिरी आक्रमणों से रक्षा, आबपाशी का इन्तजाम, बीज, चरोखर, कृषि के लिये अच्छे अच्छे मवेशियों की व्यवस्था करना-आदि-राजा के प्रधान कर्तव्य थे, जिन्हें पूरा करने के बदले में उसे राज्य कर मिलता था। राज्य कर हिन्दू राज्यकाल में उपज का उपज के ही रूप में ⅙ हिस्सा था--जो मुगल शासन काल में बढ़ाकर ⅓ कर दिया गया था। वह ग्रामपंचायत द्वारा सारे गांव की उपज में से अलग कर सीधा राज्यकर लेने वाले सरकारी कर्मचारियों के सुपुर्द कर दिया जाता था।

कृषि और किसानों को जिनसे सहायता मिलती-जैसे बढ़ई, चमार, लोहार, जुलाहे, पुरोहित, नाई आदि से लगाकर गांव के अनाथ, अपाहिज, बेवा आदि को भी उनकी आवश्यकतानुसार गांव की उपज में से कुछ भाग दिया जाता था। यही कारण था जिससे तब हिन्दोस्तान में लोग भूख से नहीं मरते थे।

कृषि की इस ग्रामपंचायती व्यवस्था का सबसे बड़ा फायदा यह था कि राज्यकर में वृद्धि तब हो सकती थी जब खेती की उपज बढ़े, क्योंकि राज्यकर उपज का एक निश्चित भाग उपज के ही रूप में था। यही कारण था-जिससे राजा हमेशा यही प्रयत्न करता कि कृषि की उपज खूब बढ़े। किसानों की खुशहाली ही राजा का वैभव था।

राजा और किसानों के सम्बन्धों के प्रति-आचार्य द्विजदास दत्त के विचार इस प्रकार हैं:—

"हिन्दोस्तान में, राजा का यद्यपि प्रजा के जीवन और सम्पत्ति दोनों पर अधिकार था, किन्तु वह जमीन का स्वामी न था। हिंदोस्तान में कृषि राजा और प्रजा दोनों की सम्मिलित जिम्मेदारी और स्वार्थ थी। चरोखर, कृषि के लिये आवश्यक पूंजी, और आबपाशी की व्यवस्था राजा करता, और किसान देता आवश्यक श्रम,

अतः जमीन से ज्यादा से ज्यादा, उपज प्राप्त करना जितना किसान के लाभ का होता उतना ही राजा के भी। क्योंकि राज्य कर मुद्रा के रूप में न होकर उपज का एक निश्चित भाग, उपज के ही रूप में राजा को मिलता जो अक्सर है होता था। इसलिये यदि उपज कम होती तो राज्य कर भी घट जाता।"

(Ruin of Indian Agriculture)

उस समय का ग्राम्य जीवन सहकारिता और बंधुत्व की विशुद्ध भावना पर अवलम्बित था। जिनका श्रोत कभी सूखने न पाता, कलह, और वैमनस्य क्षणिक होते-ग्रामपंचायतें शीघ्र उनका निपटारा कर देतीं। पंचों का सच्चा न्याय कभी असम्मानित न होता। राजा भी ग्राम पंचायतों की इज्जत करता-तथा उनकी सहायता करता। क्योंकि वे उसकी आयवृद्धि में सहायक रहते हुये-देश के ग्रामीण विभाग में-जो राज्य का सबसे बड़ा विभाग होता, सुव्यवस्था, सच्चा न्याय और शासन की प्रतिष्ठा को संभाले रखने में अत्यन्त लाभदायक-सिद्ध हो चुकी थीं।

ग्रामपंचायतों से होने वाले फायदों को देखकर मुस्लिम शासकों ने उन्हें पूर्ववत् ही प्रचलित रहने दिया। श्री दत्त लिखते हैं--

"जहां तक ग्रामपंचायतों की आन्तरिक व्यवस्था और ग्राम्य जीवन का सवाल था, मुसलमान शासकों ने हिन्दू कानून और देहातो के रिवाजों को पूर्ववत् ही रहने दिया।" (उपरोक्त)

किसानों का परिश्रम, तथा राजा की पूंजी और सहायता के कारण उपज खूब होती थी। किसान सम्पन्न थे। खेतीका, और औद्योगिक, उत्पादन देश की आवश्यकताओं से बचने के बाद निर्यात होकर बदले में कीमती धातुएं लाता था। हजारों वर्षों से यही क्रम जारी था-जिसके कारण हिन्दोस्तान स्वर्णमय बन गया था।

डाक्टर राबर्टसन ने लिखा था:--

"उपजाऊ जमीन और अच्छी आबहवा का आशीर्वाद हिन्दोस्तानियों को मिला, जिसके साथ अपने परिश्रम को सम्मिलित कर वे अपनी इच्छित वस्तुएँ प्राप्त कर लेते हैं।...व्यापार करके विदेशों में अपने प्राकृतिक तथा मनुष्य-निर्मित उत्पादनों को बेचकर बदले में कीमती धातुएँ पाते हैं।"

हिन्दोस्तान के उस समय के वैभव को देखकर विदेशी यात्री आश्चर्य चकित रह जाते थे। फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने लिखा था:—

"हिन्दोस्तान एक ऐसा अथाह गड्ढा है जिसमें संसार का अधिकांश सोना और चांदी चारों ओर से अनेक रास्तों से आ आकर जमा होता है और जिससे बाहर निकलने का उसे एक भी रास्ता नहीं मिलता।"

"ग्रामपंचायतें जो स्वशासित थीं किसी प्रकार (मुगल शासन के अन्तिम काल में) चलती रहीं, उनका विनाश सिर्फ अंग्रेजी राज में ही शुरू हुआ।" (पं० जवाहर लाल नेहरू)

सही तौर पर देखा जाए तो ज्ञात होता है कि ग्राम पंचायतें और उन पर निर्भर कृषि व्यवस्था विनाश का आरम्भ औरंगजेब की मृत्यु के बाद से ही शुरू हो गया था।

सन १७०७ में, साम्प्रदायिक कटुता का विष हिन्दोस्तान के राजनैतिक जीवन में प्रविष्ट कर मुगल सल्तनत के विनाश का मार्ग तैयार कर औरंगजेब मरा। साम्प्रदायिकता के विष के जो बीज उसने बोये वे उसीके जीवन काल में अंकुरित हुये-और उसकी मृत्यु के बाद वे बड़े। पल्लवित हुये फूले और फले। परिणाम स्वरूप हिन्दू, सिख आदि के विद्रोह ने मुगल साम्राज्य को जर्जर कर दिया। शासन में दुर्व्यवस्था फैल गई और मुगल शक्ति क्षीण हो गई।

सन् १७३९ में नादिरशाह ने मुगल सल्तनत की इज्जत दिल्ली को लूटकर-शासन की साख को नष्ट कर दिया।

सन १७६१ में पानीपत के मैदान में मुस्लिम और मराठा ताकतें लड़कर नष्ट हो गईं।

केन्द्रीय सत्ता के नष्ट होते ही मुगल सल्तनत के आधीन राजा, नवाब, तथा सूबेदार आदि राज्याधिकारी अपने आप को करीब करीब स्वतन्त्र महसूस करने लगे—और अपनी अपनी ताकत बढ़ाकर स्वतन्त्र राज्य कायम करने के लिये-या राज्य विस्तार के लिये आपस में लड़ने लगे। इस हालत का वर्णन पं० जवाहरलाल नेहरू ने *'डिस्कवरी आफ इण्डिया' में इस प्रकार किया है :—*

"मुगल साम्राज्य शीघ्रता से नष्ट होने लगा, उसके राज्याधिकारी और सूबेदार आदि अर्ध स्वतन्त्र राजाओं जैसा व्यवहार करने लगे।"

सन् १७६७ में कम्पनी सरकार के विजित प्रदेश का प्रथम गवर्नरजनरल वारेन हेस्टिंग्ज़ बना। इस अर्धशताब्दि में राज्य, शासन, अधिकार, सत्ता तथा राज्य विस्तार के लिये हर जगह युद्ध हो रहे थे। युद्ध के खर्च के लिये धन की आवश्यकता पड़ती। अतएव किसानों से राज्य कर, उपज के रूप में प्राप्त होने में असुविधा देख-नगद रुपयों के रूप में वसूल करने की प्रथा डाली गई। साहूकारों से कर्ज भी लिया जाता जिसकी अदायगी के लिये उन्हें कई गांव कर वसूल करने के अधिकार के साथ दिये जाने लगे। यही प्रथा मन्सबदारी प्रथा कहाई। मन्सबदार भी कर नगद के रूप में वसूल करना ही लाभदायक समझते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि उपज और कर का सम्बन्ध अब नहीं रहा।

ग्रामपंचायतों के अधिकार और ग्रामपंचायतों द्वारा नियन्त्रित कृषि व्यवस्था पर यही सबसे पहिला आघात था। आचार्य द्विजदास दत्त ने लिखा है :—

"सिंहासन को कलंकित करने वाले इन दुर्व्यसनी और नपुंसक राजाओं ने एक मुश्त रकम पाने के उद्देश्य से गैर-जवाबदार और फन्दी व्यक्तियों को राज्यकर वसूल करने का अधिकार देने का यह अस्थाई तरीका प्रचलित किया।"

वे आगे लिखते हैं :--

"कर वसूल करने का यह तरीका। जिसमें कर नगद के ही रूप में वसूल किया जाना आवश्यक हो गया। और ऐसी प्रथा जिसमें कर उपज का एक निश्चित भाग उपज के ही रूप में अब न रह गया। जो (यही तरीका) भारतीय कृषि के सर्वनाश का मूल कारण है। मुगल सत्ता के अन्तिम काल के राजनैतिक जीवन में एक अस्थाई रोग था। जो रुक गया होता, तथा जमीन का स्वामित्व किसानों को प्राप्त हो गया होता, तथा बेहतर शासन आने के साथ ही यह बात निश्चित तौर पर तय हो जाती-किन्तु यह सब कुछ नहीं हुआ।"

(Ruin of Indian Agriculture)

सन् १६०३ में अंग्रेजों ने हिन्दोस्तान से व्यापार करने के लिये "ईस्टइण्डिया" कम्पनी की स्थापना की। इस अंग्रेजी कम्पनी ने हिन्दोस्तान के तत्कालीन शासकों से बड़ी विनम्रता से कई सूत्रों में व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त कर लीं। कई वर्षों तक विदेशों को भारतीय उत्पादन के निर्यात का व्यापार यह कम्पनी करती रही। तब इसे किसी तरह का राजनैतिक महत्व न था। मुगल सत्ता के कमज़ोर होते ही जिन विदेशियों ने हिन्दोस्तान में, शोषण के लिये शासन के अधिकार प्राप्त करने के स्वप्न देखने शुरू किये उनमें अंग्रेज़ भी थे। वे अन्त में सफल भी हुए।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी अपनी फौजें बनाईं जो युद्धरत नवाबों और राजाओं को किराये से दी जाने लगीं। ये फौजें लूट ही अधिकतर करतीं। विजय प्राप्त होने पर विजित प्रदेशों में, फौज के किराये के स्वरूप-राज्यकर वसूली और व्यापार के अधिकतर कम्पनी खुद ले लेती-तथा शासन के अन्य अधिकार शासक नवाबों या राजाओं के पास रहते। यह तरीका-डायार्की 'द्विशासन' नाम से मशहूर हुआ। लगान नगद रुपयों के रूप में वसूल होने लगा था। अतः कर वसूली के नाम पर स्वेच्छा से मनमाना धन वसूल किया जाने लगा।

अंग्रेज हिन्दोस्तान में धन कमाने ही तो आए थे, और सुवर्ण ही उनका चरम लक्ष्य था—"Gold was their watch word." अतः लगान वसूली और व्यापारिक सुविधा के सर्वाधिकार मिलने ही किसानों और औद्योगिक कारीगरों का भयंकर शोषण करना उन्होंने शुरू कर दिया जिसे लूट कहना ही अधिक उपयुक्त कानून बनाकर जायज करार दी गई।

पं० जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है:—

"निखालिस लूट ने धीरे-धीरे कानूनन जायज शोषण का रूप ले लिया।" (डिस्कवरी आफ इण्डिया से)

लूट और दमन से बचने के लिये कारीगरों ने अपने अँगूठे तक काट डाले ताकि वे उद्योग के लिये अयोग्य हो जावें। किसानों पर कर वसूली के नाम पर असीम जुल्म ढाये जाने लगे।

पं० जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है :—

"वह शासन लूट-खसोट, और एक ऐसी भूमि कर वसूली की व्यवस्था के साथ शुरू हुआ जिसमें सिर्फ जीवितों से ही नहीं किन्तु मृत कृषकों से भी पाई पाई वसूल कर

ली जाने लगी।" (Discovery of India से)

"कम्पनी सरकार द्वारा अपने शासित प्रदेशों में किसानों का व्यवस्थित शोषण करने के लिये जितने भी कानून बनाएं गए उनसे प्रचलित कृषि व्यवस्था और ग्राम पञ्चायतों पर ऐसा भयानक आघात लगा कि वे नष्ट हो गई। शोषण के लिये तय्यार किये गये सब कानूनों में मुख्य कानून वह था जिससे सारी जमीन सरकार की मिल्कियत घोषित कर दी गई। जिसके कारण जमीन पर ग्राम पञ्चायतों का या किसानों का कुछ भी अधिकार न रह गया। जो अधिकार कई राज्य परिवर्तनों के बावजूद भी उन्हीं का था-इस कानून से कतई छिन गया। धन कमाने के उद्देश्य से बनी, विदेशी व्यापारियों की कम्पनी सारी जमीन की मालिक बनकर ग्राम पञ्चायतों के स्थान पर आसीन हो गई। इससे बढ़कर और कौन सी लूट हो सकती थी? बेचारे किसान, उनकी ही जमीन से बेकसूर वंचित कर दिये गये उनकी ग्रामपञ्चायतें नष्ट कर दी गई।

भूमि के स्वामित्व का यह परिवर्तन पाशविक शक्ति के बल पर एक भयानक छल था जिसे कानून का नाम दिया गया। लूट को जारी रखने के लिये और लूट करने वालों को पाशविक सहायता देने के लिये अब अंग्रेज व्यापारी स्वतन्त्र हो गए।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी जो मूलतः व्यापारी प्रतिष्ठान थी शासक तो बन ही गई थी- और इस कानून के द्वारा अब जमीन की मालिक जमींदार की बन गई। यही हालत अंग्रेजी शासन काल में और उसके उपरान्त आज तक तक बनी हुई है।

श्री जे० ए० व्हेन ने (Foundations of Agri-Cultural Economics) में लिखा है:

"हिन्दोस्तान के अधिकांश हिस्से में (रियासतें छोड़कर) सरकार को-अपनी आय के लिए-जमीन के किराये (Rent) लगान) पर निर्भर रहना पड़ता है। अतः वह खुद एक जमींदार के बराबर है।"

[४२३ पृष्ठ का शेष]

शिक्षा को सर्वांगीण बनाने में वह कितने तत्पर हैं। अभी तो बहुत से शिक्षितमान्य व्यक्तियों को भी यह बातें अनावश्यक-सी प्रतीत होती हैं। यदि इन कामों पर खर्च किया जाय तो बहुत से समाचार पत्र 'अपव्यय का नारा लगाने लगेंगे। परन्तु जो लोग शिक्षा के महत्त्व और उसके स्वरूप को पहिचानते हैं उनको हतोत्साह नहीं होना चाहिए। हमारे पास भले ही भौतिक साधन कम हों परन्तु इस दिशा में कुछ काम तो हो ही सकता है।

मैंने प्रान्त के शिक्षाधिकारियों के सामने यह बातें रक्खी हैं। उन्होंने इन्हें पसन्द किया है। ऐसी आशा होती है कि शीघ्र ही हम इस प्रकार के परमावश्यक शिक्षण आयोजनों का सूत्रपात कर सकेंगे।

[४२६ पृष्ठ का शेष]

आप चाहते हैं काम तेजी से हो और वे लोग धीरे-धीरे करना चाहते हैं। तो मैं कहता हूँ कि बात यह नहीं। अगर ऐसा होता यानी केवल गति का ही फर्क होता तो हम सोशलिस्ट दिल को मसोस कर भी उनके साथ चलने की कोशिश करते पर फर्क तो यहां दिशा का है। मैं कहता हूँ कि अगर दिशा या ध्येय का फर्क नहीं रहता तो समय आया और चला गया लेकिन उन लोगों ने कुछ किया क्यों नहीं? मेरा मतलब है १५ अगस्त, १६४७ साल से। आजादी के दिन के बाद ७ रोज तक एक लहर थी, एक जोश था जो आया और चला गया। उस समय हम जो चाहते वह कर सकते थे पर किया नहीं गया। अतः देखा आपने—दिशा का भी फर्क है, केवल गति का नहीं।

पैतृक सम्पत्ति में पुत्री के अधिकार

श्री प्रेम मोहन वर्मा एम० ए०, एल० एल० बी०

कोई भी व्यक्ति इस बात से असहमत नहीं हो सकता है कि आजकल न्यायालयों में हिन्दूसंहिता (क़ानून) का जैसा प्रयोग हो रहा है वह स्मृतियों में लिखित विधियों से कहीं परे है। वास्तव में न्यायाधीशों द्वारा बनाये गये नियमों के कारण शास्त्रीय विधानों की पूर्ण रूप से अवहेलना कर दी गई है। साधारण रूप से हम जानते हैं कि न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णयों के आधार पर क़ानून बनता रहता है। पर जहां तक हिन्दू संहिता (क़ानून) का सम्बन्ध है, जैसे कि उसका उपयोग आधुनिक समय में हो रहा है हम जानते हैं कि उसकी व्यवस्था वर्तमान स्मृतिकारों द्वारा दी गई है। यह विधियां स्थान स्थान पर, विभिन्न जातियों, सम्प्रदायों, कुलों तथा वर्णों के स्थानीय नियमानुसार इतनी भिन्न हो गई हैं कि किसी भी वकील को कदाचित ही कभी आदि स्मृतियों को देखने का अवसर प्राप्त होता हो। वास्तव में यह क़ानून इंगलैण्ड के साधारण क़ानून की भाँति ही हो गया है जो कि न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णयों के फल स्वरूप बना है। प्रीवी कौंसिल ने बारम्बार वर्णन किया है कि आदि स्मृतियों की विधियों में भांति भांति की त्रुटियां की हैं जिनकी स्वीकृति देना असम्भव है। इसलिये प्रीवी कौंसिल के न्यायाधीशों ने न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णयों के आधार पर अपना मत व्यक्त किया है चाहे वह किसी अविरुद्ध नियम पर आधारित हो या न हो। यह निर्णय स्मृति दाताओं के मत से कहीं भिन्न हो जाता है।

इस बात से तो सभी लोगों को सहमत होना होगा कि प्राचीन विधिप्रणाली के अनुसार किसी भी आधुनिक समाज का शासन नहीं चल सकता है। मंच के ऊपर खड़े होकर धर्म-संकट का नारा लगा देना बहुत उत्तम माना जा सकता है। पर जीवन सम्बंधी वास्तविक तथ्यों का आधुनिक परिवर्तित दशा में कोई भी कूटनीतिज्ञ भुला नहीं सकता है। आधुनिक सघन नगरों की जीवन सम्बंधी समस्याएं, बढ़ी हुई व्यवसायी पूंजी, स्त्री तथा पुरुष दोनों के मध्य शिक्षा सम्बंधी उत्थान, जन संख्या की भीषण वृद्धि, परिवर्तित यातायात तथा सम्बंध स्थापित करने वाले साधनों द्वारा परिवर्तित जीवन, जिनके कारण समय तथा दूरी के सभी अड़ंगे हट गये हैं, आदि आदि स्वयं सिद्ध बातें हैं जिनके द्वारा विभिन्न समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं जिनको भुलाना असम्भव है। आज किसी का यह दावा कि वह अपने ग्रामीण, जाति अथवा वर्ण के विशेष नियमों की भांति ही चलेगा कदापि सम्भव नहीं। किसी भी दशा में नगरों के निवासी और विशेषतः नवीन सन्तान इस बात को अधिक समय तक नहीं स्वीकार कर सकती है। जिस भांति कि सवर्ण कट्टर हिन्दू अपने नवयुवकों को समुद्रपार जाने से रोकने में असफल हुये हैं उसी भांति वह समाज में द्विजातीय विवाह प्रणाली, छुआ-छूत निवारण, विधवा-विवाह आदि की बाढ़ को रोकने में असफल सिद्ध होंगे।

जो कट्टर हठ धर्मी हिन्दू यह सोचते हैं कि हम अब भी पवित्र शास्त्रों द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं और ऐसा जीवन व्यतीत करते रहेंगे वह मूर्खों की दुनिया में वास कर रहे हैं। उत्तराधिकारी के सम्बंध में मिताक्षर क़ानून जिसकी व्यवस्था, हिन्दू क़ानून (उत्तराधिकारी सम्बंधी) तथा परिवर्तित नियम (दूसरा १६२६) में, की गई है उसके अनुसार हिन्दुओं का न्याय-शासन होता है। क्या उसमें पुत्र की पुत्री, पुत्री की पुत्री, बहन और बहन के पुत्र को दूसरे उत्तराधिकारियों के ऊपर अधिक अधिकार नहीं प्रदान किया गया है? फिर १६३७ ई० का अठारहवां क़ानून लीजिये जो हिन्दू स्त्री के सम्पत्ति अधिकार के सम्बन्ध में है। पुत्र के साथ ही साथ विधवा (स्त्री) तथा पतोहू (पुत्र की स्त्री) उत्तराधिकारी बनाई गई हैं और उन्हें बंटवारे का अधिकार प्रदान किया गया है। इस सम्बंध में शायद हिन्दू स्त्री की सीमित दशा का ही वर्णन है। १६१६ ई० के हिन्दू डिस्पोज़ीशन आफ प्रापरटी ऐक्ट, १६२८ ई० के हिन्दू इनहेरिटेंस ऐक्ट, १६३० ई० के हिन्दू गेन्स आफ लर्निंङ्ग ऐक्ट, १६२८ ई० के चाइल्ड मैरेज रेस्ट्रेन ऐक्ट, १६३६ ई० के आर्य मैरेज वैलिडेटिंग ऐक्ट आदि आदि क़ानूनों को क्या हिन्दुओं ने नहीं माना है और इन क़ानूनों द्वारा क्या उनके निजी क़ानून में परिवर्तन नहीं हुआ? फिर भी कट्टर हठ धर्मी हिन्दू चाहते हैं कि यह मान लिया जावे कि उनके उत्तराधिकारी के नियम दैविक नियमानुसार हैं और उनमें किसी भांति परिवर्तन करना अधर्म होगा यदि उत्तराधिकार सम्बंधी

क़ानून में कोई दैवी बात थी तो फिर मनु द्वारा बनाये गये नियमों को क्यों हिन्दू क़ानून के भाष्यकारों ने देश के विभिन्न भागों में विभिन्न रूप से वर्णन किया है।

पुत्री की स्थिति

वैदिक काल में अविवाहित पुत्री को पितृ सम्पत्ति में एक भाग मिला करता था। स्मृति में भी पुत्री के भाग का वर्णन किया गया है यद्यपि वह स्पष्ट रूप से नहीं बताया गया कि उसे कितना भाग मिलना चाहिये। प्रस्तुत बिल में विवाहित तथा अविवाहित पुत्रियों या धनी तथा निर्धन के बीच का भेद भाव बिल्कुल हटा दिया गया है। उसे पुत्र के समान ही पद प्रदान किया गया है केवल उसका भाग पुत्र के आधे के बराबर रक्खा गया है। बिल में स्त्रियों की दशा नामक व्यवस्थाएं हटा दी गई हैं और पुत्रियों तथा अन्य स्त्री उत्तराधिकारी को इसके द्वारा पर्याप्त अधिकार प्रदान किया गया है। इस मसविदे का अस्वीकृत करने या शीघ्रता में स्वीकृत प्रदान करने के पूर्व हमें शान्तभाव से इसकी प्रत्येक त्रुटियों तथा अच्छाइयों की ओर ध्यान दे लेना चाहिये।

पहले हमें इसे पुत्री के दृष्टिकोण से देखना चाहिये। मामले को सर्वोत्तम रूप से समझने के लिये मान लीजिये कि एक धनी पिता की एक अति उच्च-शिक्षिता पुत्री है। वह लड़की अपना जीवन समाज सेवा में अर्पण कर देनी है और इस कारण अपना ब्याह नहीं करती है। ऐसी दशा में क्या यह बात कारण अथवा न्याय संगत होगी कि वह लड़की, लड़के के समान पिता की सम्पत्ति में भाग न पावे? निसंदेह ही वह समान सम्पत्ति की अधिकारणी है। अधिकांश आधुनिक विचार के पिता अपनी पुत्रियों को वसीयतनामों द्वारा और अधिक सुविधा प्रदान करने का प्रयत्न करेंगे क्योंकि शायद वह महसूस करें कि यदि उनके पुत्र दुर्भाग्य से अपनी पैतृक सम्पत्ति खो बैठते हैं तो भी वह अपनी कमाई से अपना जीवन निर्वाह कर सकते हैं पर ऐसी बात पुत्री के लिये लागू नहीं हो सकती है।

अब फिर ऐसे धनी मनुष्य का मामला लीजिये जिसकी पुत्री का विवाह अच्छे धनी स्थान पर होता है और पिता के जीवनकाल तक वह बहुत सुखी रहती है इसलिये पिता अपने जीवन काल में अपनी पुत्री के लिये कोई वसीयतनामा नहीं करता है और मान लीजिये कि पिता की मृत्यु के पश्चात् लड़की विधवा हो जाती है या अभाग्य वश उसके पति निर्धन हो जाते हैं। ऐसी दशा में उस लड़की की दशा हिन्दू क़ानून के अनुसार क्या होगी? वह अपने धनी भाइयों से कोई भी सहायता प्राप्त करने की अधिकारिणी नहीं है। और पिता की सम्पत्ति में उसका किसी प्रकार का अधिकार नहीं है। अब वह लड़की जिसने अपना बचपन सुखमय रूप से व्यतीत किया है, अपने भाग्य पर रुदन करेगी कि उसके धनी पिता ने उसके जीवन निर्वाह के लिये कुछ भी नहीं किया है।

दूसरी ओर

पुत्री के इन न्याय संगत अधिकारों के विरुद्ध जो आपत्तियां उत्पन्न की जाती हैं अब उनकी ओर विचार करना चाहिये। उनमें से एक बात तो यह है कि लड़की को पिता की सम्पत्ति का अधिकारी इसलिये नहीं स्वीकार किया जाता है कि वह श्राद्ध करने की अधिकारिणी नहीं है और धर्म के अनुसार केवल लड़के को ही श्राद्ध करने का अधिकार है। यह एक ऐसी आपत्ति है जिसे स्वीकार करने में भी आपत्ति है। दूसरी बात जो आविष्कार अस्वीकृत हो जावेगी वह यह है कि यदि लड़कियों की दशा बहुत अच्छी होगी और वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र रहेगी तो वह अपने निर्धन अथवा कम धनी पति के आधीन रहना स्वीकार नहीं करेंगी।

पितृ सम्पत्ति में पुत्र के साथ ही साथ पुत्री को समान रूप से हिस्सा प्रदान करने के विरुद्ध मुख्य आपत्ति यह की जाती है कि ऐसा करने से सम्मिलित वंश प्रणाली में फूट उत्पन्न हो जावेगी और वंश की सम्पत्ति छिन्न-भिन्न हो जावेगी। यह तर्क कुछ अंशों में सत्य और कुछ अंशों में मिथ्या है। जो लोग यह विचार धारा रखते हैं कि समाज में धन केवल भंडार के लिये ही कमाया अथवा एकत्रित किया जाता है, ऐसे लोग छोटी अथवा बड़ी सभी सम्पत्तियों के लिये चाहेंगे कि वंश का ज्येष्ठ पुत्र ही सम्पत्ति का अधिकारी समझा जावे। इस प्रकार के मामलों में पूंजीवाद अथवा समाजवादी मत को मानना बेकार होगा क्योंकि जीवन रहस्य मय होता है और जो योजनाएं जीवधारी गण (चाहे वह चूहा हो अथवा मनुष्य) अपने लिये बनाते हैं वह बहुधा अपूर्ण रह जाती हैं।

सबसे बड़ी आवश्यक तथा न्याय संगत आपत्ति

लड़की के अधिकार सम्बन्धी यह है कि जैसे ही लड़की का भाग सम्पत्ति में लगाया जावेगा वैसे ही वंश की सम्पत्ति का बँटवारा करना पड़ेगा। पर इस प्रकार भाइयों के लिये न केवल यह अवसर रहेगा कि वह समाश्रित सम्पत्ति के सदस्य हों वरन् जहां कहीं वह अलग हो जावेंगे वास्तव में वह कुछ सम्पत्ति अविभाजित छोड़ सकते हैं और उसे सम्मिलित व्यवस्था की दशा में अपने अधिकार में रख सकते हैं। साधारणतः वे वंश जिनमें पैतृक सम्पत्ति कई पीढ़ियों तक चलती है उनके मध्य देखा गया है कि सम्पत्ति का प्रबंध करने के लिये जो सबसे अधिक योग्य समझा जाता है वही उसका प्रबंधक बनाया जाता है या वह मनुष्य प्रबंधकर्ता बनाया जाता है जो कहीं नौकरी में नहीं रहता है। वह न केवल उस सम्पत्ति पर अपना जीवन व्यतीत करता है बरन सम्पत्ति से अधिक धन कमाता है और वंश की लड़कियों के विवाह आदि में या दूसरे अवसरों पर खर्च करता है जिसमें काफी धन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार वंश के लोगों में स्वयं इच्छा उत्पन्न होती है कि उस पैतृक सम्पत्ति की रक्षा की जाय और इस भांति सम्मिलित वंश प्रणाली की भांति काम करने की रीत बनाए रखने की इच्छा सबल होती है। अब यदि लड़कियों को हिस्सा दिया जाता है तो उसका नतीजा यह होगा कि भाइयों के हिस्सों का बँटवारा भी आवश्यकीय हो जावेगा। यह बँटवारा छोटी से छोटी तथा बड़ी से बड़ी वस्तु पर लागू होगा। यह कार्य सम्मिलित परिवार प्रणाली के लिये घातक सिद्ध होगा। सम्मिलित परिवार प्रणाली हिन्दुओं की प्राचीन उत्तमोत्तम प्रणाली है जिसने युगों का सामना करते हुये अपने को आज तक सुरक्षित रख छोड़ा है और प्रत्येक युग में अपने लाभों का प्रदर्शन किया है। हो सकता है कि वर्तमान समय के लिये वह प्रणाली अयोग्य हो और उसका प्राकृतिक रूप से अन्त हो जाय पर धारा सभा के हिन्दू सदस्य उसके दफनाने के लिये क़ब्र बनाने में कदापि सहायक नहीं होना चाहते। सम्पत्ति की छिन्न भिन्न होने वाली बात भी अच्छी नहीं है। यह कहना ही व्यर्थ है कि लड़कियां सम्पत्ति का प्रबंध ठीक रूप से नहीं कर सकती हैं। विशेष कर वह लड़कियां जिनका विवाह दूर हुआ है। विभाजन से छोटी सम्पत्तियों की समस्त उपयोगिता हो जाती रहेगी। इसी कारण मुसलमान बहनें बहुधा अपने भागों को अपने भाइयों के हित में त्याग देती हैं या यदि अच्छी दशा में हुई तो अपने अधिकार का उपभोग ही नहीं करती हैं। निःसंदेह ही ऐसा करने से विभाजन के अधिक झगड़े खड़े होंगे जिससे वाद-विवाद बढ़ जावेगा। यह कहना ठीक नहीं है कि यदि लड़कियों को हिस्सा दिया जाता है तो भाई-बहनों के प्रेम में अन्तर उत्पन्न हो जावेगा क्योंकि यदि सम्पत्ति की बुनियाद पर ही प्रेम का आधार है तो उसे प्रेम कदापि नहीं कहा जा सकता है। यदि वह प्रेम बहनों को न्यायोचित अधिकार से वंचित करता है तो वह प्रेम कदापि प्रेम नहीं कहा जा सकता है। यह बात सत्य है कि लड़कियों को प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार पर्याप्त वस्तुएँ दान तथा उपहार रूप में उपलब्ध होती रहती हैं। यह वस्तुएँ कोष, धन तथा विभिन्न सामनों के रूप होती हैं जो विभिन्न संस्कारों तथा शुभ अवसरों के समय प्राप्त होती हैं। विवाह के अवसर पर उन्हें आभूषण दिये जाते हैं जो स्त्री-धन माना जाता है। हिन्दू क़ानून के अनुसार लड़कियों को भाग नहीं मिलता क्योंकि उस भाग का चुकता उन्हें दूसरे रूप में होता रहता है और लड़कियां अपना भाग न लेकर जो बलिदान करती हैं उसीके फलस्वरूप वे इतनी अधिक प्रेम तथा आदर की दृष्टि से पितृ कुल में देखी जाती हैं। निःसंदेह ही जिस कुल में लड़की दी जाती है वह समस्त कुल इसी कारण मान्य हो जाता है। इस प्रकार हमारी संस्कृति का आधार आपसी बलिदानों तथा दायित्वों पर था।

दहेज प्रथा

प्राचीन काल में दहेज प्रथा चालू न थी इसलिये उसका कुत्सित प्रभाव साधारण परिवार पर नहीं पड़ता था। उस समय प्रचलित रीतियों के अनुसार ब्याह के समय बन्धे हुये उपहारों का लेन-देन होता था। पर अब समाज में योग्य वर की खोज अधिक बढ़ जाने के कारण दहेज की मांग अधिक होने लगी है। इसका मुख्य कारण यह है कि योग्य वरों की मांग बहुत अधिक होती है। लड़कियों का निर्धारित अवस्था में ब्याह करना आवश्यक होता है। लड़कियों को ब्याहने के अतिरिक्त और किसी कार्य में लगाया ही नहीं जा सकता है। उधर शिक्षित लड़के अधिक काल तक अविवाहित ही रहना अधिक अच्छा समझते हैं इस कारण वे अपने माता-पिता को

कन्या का चुनाव नहीं करने देते हैं। साधारण रूप से जन-मत कोर्टशिप द्वारा विवाह निर्णय के विरुद्ध है। भारतवर्ष में प्रायः प्रत्येक लडकः का विवाह हो जाता है जबकि देखते हैं कि पश्चिमी देशों मे बहुत सी तरुण स्त्रियाँ अविवाहित पड़ी रहती हैं। पहले हमारे विवाह ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार हुआ करते थे और जन्मपत्री के अनुसार हमारे विवाहों का निर्णय हुआ करता था। पर अब लोग अधिक संसारिक हो गये हैं इसलिये विवाहने योग्य लड़के विवाह सम्बन्धी संसार में अच्छा मूल्य प्राप्त करने की कोशिश में रहते हैं इसी कारण उनके माता-पिता दहेज़ की शर्तों के तय करने में किसी भांति की लज्जा नहीं प्रतीत करते। यही दहेज़ प्रथा है जो हमारे समाज का कलंक है। मध्य श्रेणी के परिवार के लिये यह प्रथा विनाश करने वाली है और भय का कारण बनी हुई है।

प्रत्येक व्यक्ति इस बात से सहमत हैं कि इस प्रथा को क़ानून बनाकर या और किसी दूसरे उपाय करके मिटा देना चाहिये। अच्छे विचारधारा वाले लोगों ने उन विवाहों में भाग लेने से इंकार कर दिया है जिनमें दहेज की रक़म तै की गई है। इस प्रकार उन्होंने ऐसी शादियों का समाजिक बहिष्कार करने की कोशिश की है। पर जहां जिस बात पर दोनों ओर के लोग राज़ी हो जाते हैं उसके लिये कोई उपाय नहीं है। यह प्रश्न तो मांग और पूर्ति पर निर्भर करता है। यदि इसको रोकने के लिये क़ानून बनाया जाता है तो परिणाम यह होगा कि लोग चोर बाज़ारी की भाँति देहज का लेन-देन भी आरम्भ कर देंगे। इस बात के बहुत से उदाहरण मौजूद हैं जहां पर लड़के के संरक्षकों में बर का मूल्य ब्याह निश्चित होते समय अगौढ़ी में ही चुपचाप ले लिया है जिससे परिवार की बदनामी न हो। ऐसे उदाहरण भी पर्याप्त मात्रा में हैं कि जिनमें अच्छे अच्छे लोगों ने दहेज प्रथा का उस समय तक कट्टर विरोध किया है जब तक उन्हें लड़कियों का ब्याह करना था पर जब उनमें लड़कों के ब्याह करने के अवसर आये तो उन्होंने भी वह तरीक़ा चलने की कोशिश की और बहाना किया कि हमने अपनी लड़कियों की कोशिश में काफी दहेज दिया है इसलिये उसकी पूर्ति होनी चाहिये और फिर अभी दूसरों लड़कियों का भी ब्याह तो करना है जिसमें हमें दहेज देना ही पड़ेगा। अतः हमें अपनी दशा को भी तो सुधारने की आवश्यकता है। इस प्रकार ऊपर दहेज का जो भार पड़ता है उसे वह दूसरे से निकालने का प्रयत्न करते हैं।

सम्भव उपचार

बहुतेरे आदरणीय मध्यम श्रेणी वाले परिवार इस दहेजवाली प्रथा के कारण नष्ट हो चुके हैं और उनकी सम्पत्तियां बिक चुकी हैं। यह दशा शायद उस दशा से कहीं खराब है जो कि लड़कियों के उत्तराधिकार से उत्पन्न होती है। दहेज वाली प्रथा मुसलमानों के मध्य चालू नहीं है क्योंकि मुसलमान लड़कियों को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त है। मध्यम श्रेणी के मुसलमान की दशा विवाह के सम्बंध में बड़ी ही अच्छी रहती है चाहे उनके पास जायदाद बिल्कुल न हो। यदि वह किसी अच्छी जगह काम करते हैं तो अच्छे से अच्छे युवक लड़के उसकी लड़की से ब्याह करना पसंद करेंगे क्योंकि भावी दामादों को आशा दिखाई पड़ती रहती है कि उनके ससुर मरते समय काफी धन छोड़कर मरेंगे जिसमें उनकी स्त्री का भी भाग होगा यह एक निर्धारित सत्य है कि मनुष्य का जीवन आशाओं पर निर्भर करता है यद्यपि उसकी सभी आशाएं कभी पूरी नहीं होती हैं। इसलिये जैसे ही लड़कियों को पैतृक सम्पत्ति में भाग मिलने की आशा की झलक दिखाई पड़ेगी वैसे ही नक़द दहेज की मांग बन्द हो जावेगी और लड़कों के संरक्षक अधिक धन लेने का प्रयत्न नहीं करेंगे। इसलिये प्रश्न यह है कि कौन सा यत्न किया जावे कि सम्पत्ति का अधिक विभाजन भी न हो और लड़कियों का भाग भी मिले। एक तरकीब तो यह है कि लड़की को उसके भाग के बराबर आजीवन वार्षिक वृत्ति प्रदान की जाय। यह वृत्ति पिता की जायदाद पर होगी और लड़की की मृत्यु के पश्चात् बन्द हो जावेगी। साथ ही साथ यह भी होगा कि यदि यह वृत्ति प्रति वर्ष वसूल न होती रही तो तीन वर्ष के पश्चात् उसकी मियाद समाप्त हो जावेगी और फिर वह वसूल न की जा सकेगी। निःसंदेह ऐसी दशा में जो बहनें अच्छी स्थिति में होंगी वह अपना भाग अपने भाइयों को ही सौंप देंगी जैसा कि मुसलमानों के यहां होता है। यह बात खासकर छोटी जायदादों में होगी। दूसरी बात सम्भवतः यह होगी कि जीवन-वृत्ति के

बराबर लेनदेन की अपेक्षा एक मुश्त रक़म भाई लोग बहनों को अदा कर देंगे। अधिकांश रूप से इस सम्बंध में वंशीय समझौता हो जाया करेगा और किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं उत्पन्न होगी।

दूसरी अधिकारी स्त्रियां

जहां तक दूसरी स्त्रियों के अधिकार का सम्बंध है बम्बई में मयूख क़ानून के अनुसार वे लोग जो मिताक्षर क़ानून के अनुसार चल रहे हैं वह सम्पत्ति के रक्षार्थ किसी भांति का भी परिवर्तन नहीं पसंद करेंगे। इस बिल के निर्माण कर्त्ता लोगों ने क़ानून को साधारण बनाने का प्रयत्न किया है और विधवाओं की सम्पत्ति को अथवा अधिकार को रद्द करने का प्रयत्न किया है। विधवा स्त्रियों की सम्पत्ति के लिये जो क़ानून बन चुके हैं। वह जिस रूप में चालू हैं उसी रूप में उन्हें रखने में किसी प्रकार की कठिनाई न उत्पन्न होगी। जब तक कि परिवार की विधवा अपने जीवन काल तक के लिये अपनी सम्पत्ति की स्वामिनी होती है। उसके पश्चात् वह सम्पत्ति अपना आदि रूप फिर धारण कर लेती है। इस प्रकार सम्पत्ति की भी रक्षा होती रहती है और साथ ही साथ विधवा की भी सर्वोत्तम रक्षा होती है। स्त्रियों के अधिकारिणी बनने के लिये प्राचीन काल से जो नियम चालू चले आये हैं उनसे अलग होने के लिये आज तक किसी ने भी कोई कोशिश नहीं की है। जन-मत भी उसमें किसी प्रकार का भी परिवर्तन नहीं चाहता है।

[४४१ पृष्ठ का शेष]

बन्द हैं। मैं आगे और कुछ नहीं सुनना चाहता।' कहकर वह बाहर की ओर बढ़ा।

गनी ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा- 'इस सब नहीं समझते बेटा, यह सब बड़ी मुश्किल से आ पाता है। तभी तो मैं सुना नहीं रहा था कुछ। इस्लाम........।'

'चुप रहो मामू' कह कर रहबर चीख पड़ा। फिर बाहर निकल कर उसने थूक दिया।

और गनी अपनी आँखों पर चश्मा चढ़ाकर क़ुरान की आयतें पढ़ने लगा।

करफ्यू की रात

श्री कमल किशोर पाराशर

पद्मा ने देखा, बच्चे को तेज बुखार चढ़ रहा है। सड़क पर पुलिस गश्त लगा रही है। काली अँधियारी रात के पहले पहर में चारों ओर सन्नाटा छाया था। लोगों ने घरों के दरवाज़ों को भीतर की ओर बन्द कर रखा था; केवल पद्मा का ही द्वार खुला हुआ दीख पड़ता था। कुछ उत्सुकता और घबराहट के कारण उसके चेहरे पर कई भाव खिच आते थे। पद्मा ने एक मैले और फटे हुये कपड़े से बच्चे को उढ़ा दिया और उसको खटिया के सिरहाने थपकियाँ देते हुए कुछ विचारों में खो गई। उसके पति रामनाथ अब तक दफ्तर से न लौटे थे। सवेरे खाना भी भर पेट नहीं खाया था। उसने सुना पड़ोस के सेठ की घड़ी में ७ बजे की घंटी को। टिनटिनाती उस घड़ी के सात टंके हवा में गूंज गये और एक बार निस्तब्धता को चीर कर विलीन हो गये। सात बजे ही ऐसा लगता था जैसे रात अपना कालामुँह फाड़े हुये किसी को निगल जाने की चेष्टा कर रही है। पद्मा अपनी आकुलता को दबा बाहर द्वार से झाँकने लगी कि उसका केन्द्र वापस लौट आये। आँखें थक गई थीं; निराश सी बच्चे पर फैल पड़ीं। पद्मा की करुणा खिंच सी गई। आज सवेरे कंट्रोल की दुकान पर भी लड़ाई हो गई थी। किसीने गाँधी जी को गाली दी थी। किसी का मुँह चला तो किसी का हाथ; बस लड़ाई हो गई सो बड़ी मुश्किल से सुलझाई गई थी। पद्मा भी उसी समय अपना राशन लेने दूकान गई थी। गाँधी जी की चर्चा वह दिन रात सुनती है। गाँधी जी की चर्चा करने के लिये, ठंड के दिनों में सवेरे ही उठ, हाथ मुँह धो, सामने वाले दरख्त के नीचे पड़े हुये तख्त के लिये पड़ोस के सेठ की मेहरबानी को आसीष देकर कई व्यक्ति जमा हो जाते थे। कुछ ठंड की सिकुड़न को दबाने के लिये अपनी आस्तीनें नीचे कर, ऊनी चादर ओढ़ ठिठुरते हुये, अपना बड़प्पन दिखाने के लिये, ज़ोर ज़ोर से बहस करने लग जाते थे। उसने कई बार गाँधी जी की तारीफ रूजवेल्ट की बुराई, और ब्रिटिश सरकार को भगाने की बातें सुनी थीं। सरकार जिसके पास वकील, बड़े बड़े मजिस्ट्रेट, दारोगा, सिपाही हैं, उन्हें भला ये लोग कैसे भगा सकते हैं यही सोच सोच कर वह कई बार हैरान हो गई थी लेकिन फिर भी उसे किसी ने समझाया नहीं था। न वह किसी से पूछ ही सकी; न घर के काम काज के मारे उसे ज्यादा फ़ुर्सत ही मिली। उन्हीं सिपाहियों की बन्दूकों की आवाज के मारे ही तो डरकर कई लोग आज भी घर में घुसे बैठे हैं। निकलने का नाम भी नहीं लेते, आज उनकी बहादुरी कहाँ चली गई? इतनी बड़ी सरकार से तो लड़ना कोई मामूली बात नहीं है। तब ही उसने गली के मोड़ पर गोली चलने की आवाज सुनी। उसका कलेजा कांप गया। बच्चे के सर पर हाथ रखा तो देखा तवे सा जल रहा था। कल ही पड़ोसिन से दवा के लिये दो रुपये उधार लिये थे, जो आज दे देने को कहा था, किन्तु अभी तक, वह साँझ बीत जाने पर भी न लौटा सकी। 'उनके आने की राह देख रही थी। आज तनख्वाह का दिन है, शायद इसी लिये देर हो गई हो। आते ही वह उसके दो रुपये लौटा देगी। समय समय पर न जाने कितने ही बार इस पड़ोसिन ने उसे सहायता दी थी। परसों ही की बात है रोटी के लिये आटा बिल्कुल न था, इनके कई बार मना करने पर भी वह माँगने चले ही गई थी। बड़ी भलमानस है; समय पर काम आ जाती है नहीं तो आज के इस ज़माने में कौन किसका साथ देता है। देव-मानुष सी है बेचारी। कई बार तो वह स्वयं बच्चे की तबियत देखने आ जाती है, और इसी बहाने न जाने कितने घंटों उससे बातचीत होती रहती है। उसके पति किसी बैंक में बड़े खजांची थे साढ़े तीन सौ की तनख्वाह पाते थे। उनके दोनों बच्चे बड़े शरारती लेकिन पढ़ने में तेज और कुशाग्र बुद्धि थे। इतने सुन्दर बच्चे वह सोचती कभी मेरा भी नन्हा होगा, कम से कम बी० ए० तक तो वह अपने नन्हे को अवश्य पढ़ावेगी। फिर उसको सूट-बूट पहिने हुये, और लम्बे बालों को पीछे की ओर मोड़ देने वाले नवयुवकों की ओर दृष्टि चली जाती। सामने शिवरतन जी का लड़का, जो बी० ए० हो गया था आज डेढ़ सौ की तनख्वाह पा रहा है। 'बिल्कुल हट्टा-कट्टा और पच्चीस के लगभग की उम्र का होगा। शिवरतन जी तो अब बूढ़े हो गये, केवल वही लड़का घर सम्हालता है। बड़ा नेक और भला है। एक ये हैं; जो न तो मुँह से ठीक बोलते हैं, न कुछ न कुछ। पचास रुपल्ली पाते हैं। बस। कई बार कहा कि उसे बाजार में घुमा लादें, किन्तु ले जावें कैसे? उनके

रुपये जो खर्च हो ज्यॉय वह घूमने जाय तो कम से कम कुछ खरीदारी तो अवश्य करेगी। उसके बिना जाने में फायदा ही क्या ? कई बार वह चाट वाले को बुला बुला कर हार गई, वह कहता "कि बहू जी कभी दूकान पर आ जाँय, यहाँ रोकने से मेरा समय बर्बाद होता है और नुकसान भी उठाना पड़ता है। इतनी ही देर में तो मैं कई बाबुओं से एक दो रुपये पीट लूँगा।" तब ही बच्चे ने धीमें से खाँसा। अभी तक दफ्तर से नहीं आये थे। इतनी रात हो गई। वह आश्चर्य से चौंक उठी।

उसने बच्चे को फिर एक बार ठीक से उठा दिया और दरवाजे पर आ खड़ी हुई। इतनी देर तो उन्होंने आज तक न की थी। शायद बड़े साहब ने कुछ काम निकाल दिया हो। आज तनख्वाह पाते ही वह पहले नन्हें के लिये दवादारु का इन्तजाम करेगी। अपनी हालत की ओर देखते हुये उसने सोचा, साड़ी तार तार हो गई, फिर भी वह पहिने थी। अपने तो कैसे भी वह पड़ी रहेगी। किन्तु बच्चे की देखरेख तो बराबर होनी चाहिए न ? ये भी ऐसे लापरवाह होते चले जारहे हैं कि बस ! कुछ चिन्ता ही नहीं करते ! यह भी क्या ? अपने बच्चे की ही फिक्र न हो तो फिर किसकी होगी ! राम ! राम ! इनका भी चित्त आजकल उड़ा-उड़ा सा रहता है। न जाने क्या ? बतलाया नहीं। एक बार पूछा तो टाल गये। बड़े वैसे हैं वे। यह भी क्या ? सवेरे की दो रोटियों से क्या होता है, भूख तो लग गई होगी। कुछ अपने तन की भी चिन्ता तो रखनी चाहिये न ! ऐसा भी क्या ? यह नाराजी नहीं तो और क्या है ! इतनी लापरवाही भी किस काम की। इनके यहाँ आकर ही मैंने कौन सा सुख देख लिया है, बस मीठी मीठी बातों के सिवा कुछ न पाया; फिर भी मुँह से बोलते तक तो नहीं। वह भी, भुलावे में आकर उनका विश्वास कर लेती हूँ। अब बहकावे में कभी न आऊँगी। कल वह एक नई इयरिंग्ज, जो पड़ोस वालों ने परसों ही ली थी, मँगावेगी। यह क्या, सूने सूने कान भी कहीं अच्छे लगते हैं ! कहती थी जल्दी ही मँगा लेना, नहीं तो खतम हो जायंगे। कल नहीं तो परसों, वह अवश्य एक जोड़ अपनी पसन्द से, जाकर खरीद लेगी। अब वह न मानेगी। हर बार तनख्वाह के दिन याद दिलाती है लेकिन बस ! 'हूँ, हाँ' में ही टिन टल जाते हैं। कुछ कह ही नहीं पाती। लकड़ी भी समाप्त होने आगई। अभी ही तो एक मन ली थी। वह भी उधार, कितनी जल्दी चुक जाती है। दिनों दिन खर्च बढ़ता ही जाता है। इस माह बच्चे की बीमारी में ही खर्च बढ़ गया नहीं तो उनका बजट ठीक था। कहते थे खर्च ही कौन सा होता है। सभी खर्च तो वाजिब हैं। खाने पीने के अलावा न तो कभी वे लोग सिनेमा ही जाते हैं, न औरों की तरह चाय पान उनके घर में आते हैं। अपनी माँ के यहाँ वह चाय और पान की खूब शौकीन थी। तीन बार चाय बनती थी, और पान तो वह दिन भर खाती ही रहती थी। कई दिनों से उसने पान तक नहीं खाया था। उस दिन स्वयं ही पड़ोस में बैठने के लिए, पड़ोसिन के कहे सुने जबरन चली गई थी, तब ही पान खाया था। चाय तो कई साल हो गये, उसने छुआ तक नहीं था। कहते थे चाय पी लेने पर भूख नहीं लगती है। एक दिन उनके दोस्तों ने उन्हें चाय पिला दी थी, बस। तो आज तक उसे याद है, उस दिन उन्होंने साँझ को भोजन नहीं किया था। उसने तब बड़ी मिन्नत की थी और साथ ही यह भी धमकी भरे स्वर में कहा था कि, यदि वे नहीं खायंगे तो वह भी भूखी ही सो जायगी, बड़ी मुश्किल से उन्होंने तब डेढ़ रोटी खाई थी। तब से उन्होंने चाय पीने की कसम सी ले रखी है। पिछले माह जब उनकी तबियत में कुछ हरारत सी बनी रहती थी, तो पड़ोसिन के यहाँ से ही, थोड़ी सी चाय माँग लाई थी।

—तब ही एक बार फिर बच्चे ने खाँसा !

वह अधीर हो उठी !

बच्चे को जाकर गोद में लिया, छाती से लगाया और भारी मन से उसकी आँखें डबडबा आईं। आज तक उसके बच्चे को कभी बुखार न आया था। भगवान से उसने मन ही मन प्रार्थना की कि उसके बच्चे का बुखार हल्का हो जाय; वह मिठाई बाँटेगी। बुखार की गर्मी से उसने अपनी छाती पर जलन अनुभव की। वह व्याकुल होकर छाती से और चिपकाने लगी। उसने बच्चे के पैर, जो बाहर निकल आये थे उठाने के लिए,

कपड़े में लिपटाने की चेष्टा की, तो उसे लगा, बच्चे के पैर ठंडे पड़ रहे हैं।

वह काँप उठी—धक्का सा लगा। हाय क्या हो गया ? वह और भी अधीर हो गयी, बच्चे के छाती से चिपकाये, घर की चहारदीवारी के भीतर ही वह घूमने लगी।

चित्त अस्थिर होगया। कभी दरवाजे के पास आती, कभी घर के भीतर पहुँच जाती। व्याकुल रेखायें उसके मुखमंडल पर थीं। उसकी आँखें आकुलता से डबडबा आई और गला भर्रा सा गया। उसने पुकारने की चेष्टा की पड़ोसिन के, किन्तु भर्राये गले से वह बराबर न पुकार सकी। बाहर निकल कर देखा तो पड़ोसिन का लड़का रुका खेल रहा था। उसे इशारे से बुला लिया और उसकी माँ के जल्दी से बुला लाने की प्रार्थना की। मोटी, फूली सी, रमा की माँ मशीन चला रही थी। रमा के कहने पर मशीन अलग हटा, वह दौड़ कर आगई। उसने ईश्वर से, उसकी सहानुभूति के लिए, उसकी भलाई की प्रार्थना की। रमा की माँ के आते ही पद्मा बच्चों की तरह फूट फूट कर रोने लगी। रोते रोते ही उसने कहा—"बहिन देखो-इसे क्या होगया है। अब तक भी वे दफ्तर से नहीं लौटे हैं।—देखो बहिन!" व्याकुलता से दुगनी रो पड़ी। बच्चे के छूते ही रमा की माँ सन्न रह गई। निमोनिया हो गया था—बच्चे की अन्तिम साँस चल रही थी। पद्मा ने मानों माँ का हृदय पा लिया था—वह उसके चेहरे के भाव समझ गई थी। वह और भी ज़ोर से चिल्ला उठी। पद्मा के चेहरे की हवाइयाँ उड़ चुकी थीं। रमा की माँ ने ढाढ़स बँधाते हुए कहा "बहन घबराने से काम तो नहीं चलेगा। ठहरो मैं रमा के पिता से कहकर अपने एक रिश्तेदार डाक्टर को बुलवाती हूँ। तुम घबराओ नहीं।"

उसने रमा के पिता के वहीं से पुकार कर बुला लिया। स्थिति समझाई और तुरन्त डाक्टर के बुला लाने के कहा। पद्मा ने बच्चे के खाट पर लिटाया और सर पर हाथ रखकर अपने आँसुओं को पोंछ कर बोली—बहन अभी तक वे क्यों नहीं आये ? तब ही बाहर एक तांगे के घोड़े की चाप सुनाई दी। तांगे में एक आदमी खून से लथपथ पड़ा था। दो आदमी उसे सम्हाले हुए थे। लगता था करफ्यू में उस मनुष्य के गोली लगी होगी। घावों से खून तेज़ी के साथ बह रहा था। सम्भव है गोली अभी अभी ही लगी थी। तब ही पद्मा ने सुना वे लोग रामनाथ भार्गव का घर ढूँढ़ रहे थे। वह हृदय के थाम बाहर निकली। उसने क्षीण सी आवाज़ में सिपाही के कहते सुना—"करफ्यू तोड़ने वालों पर अभी अभी चौक में गोली चलाई गई थी। गोली इन्हें ही लगी...गिर पड़े...क्या यहीं...इनका घर है ?"

काला साया

श्री महेशचन्द्र 'सरल'

लाहौर की एक अन्धी गली के दुमंजिले कमरे में बैठे बूढ़े सिपाही रानी की दाढ़ी के बाल हवा में उड़ रहे थे। चश्मे के भीतर से उसकी छोटी पैनी आँखें अपने सामने बैठे युवक पर आकर ठहर जाती थीं। माथे पर आ जाने वाले पसीने को पोछता हुआ वह कह रहा था-"और रहबर तुम नहीं जानते हो, इस जिन्दगी के पहलू किस तरह करवट लेकर गुजर जाते हैं ? उन्हें किसी तरह भी लौटाया नहीं जा सकता, वह एक तूफान है, जिसकी आँधी में सभी कुछ खो जाता है। रहबर......और.... ?"

रहबर बूढ़े रानी के मुख की ओर देख रहा था, जिसमें से आग की चिनगारियों की भाँति शब्द निकल रहे थे। उसकी दाढ़ी और वेग से हिलने लगी थी और आँखों की बुझती पर तेज रोशनी जैसे चश्मे से बाहर निकली पड़ रही थी। रानी की बातों को वह बिल्कुल ही नहीं समझ सका था। जिन्दगी की आँधी और करवटें फिर बीता हुआ जमाना, वह सब उसके लिए क्या है ? अभी इस सबको समझने की उसकी उमर भी नहीं है। धीरे से साहस कर कह बैठा वह-'मैं यह सब समझ नहीं मामू ?'

रानी की भवें तन गईं माथे पर फैली लकीरों में पसीने की बूँदे उतर आईं। मुख की झुर्रियों में और गहराई आ गई। कठोर स्वर से बोला-'तभी तो तुझे अपने पास बुला कर समझाया करता हूँ कि जो कुछ हम लोग सीख चुके हैं, उसे तू, बिना कुछ खोए ही पाले। कोशिश कर न, मुश्किल क्या है ?'

'पर मैं डरता हूँ मामू' रहबर बोला-'मौत और जिन्दगी की बातों से नफरत है। मजे से खाने-पीने को मिले, बस। मैं डरावनी घाटियों के बीच से नहीं गुजरना चाहता मामू। जब ठोकर खाकर गिरूँगा तो अल्लाह सँभाल लेगा। मैं डूबूँ गा नहीं।'

'तो तू अल्लाह में यकीन करता है रहबर ?' बूढ़ा रानी तेजी से पूछ उठा।

रहबर ने सर हिला दिया।

'और मजहब में ईमान रखता है ?'

उसने स्वीकृति दे दी।

'तब......तब बेटा डर क्या है ? रानी ने अपनी आवाज भारी कर दी। गले से बोलने में उसे आराम मिलता था। शरीर कमजोर हो गया था। जरा सी तेजी में हाफने लगता था। संतोष की साँस लेकर वह आगे कहने लगा-'एक सिपाही का भाँजा है तू, यह न भूल रहबर। जिन्दगी मौज से खाने पीने के लिए नहीं है। काँटों के रास्ते पर चल कर ही कहीं आराम मिल पाता है, समझा न ? मजहब के लिए कुछ करेगा, वही खुदा का बताया रास्ता है। समय की बात है, नहीं तो......।'

'नहीं तो मामू क्या ? कह दो न ?'

'आग लगा देता। जो पाक साफ है; जिस पर परवर-दिगार का करम बरस चुका है, जिस पर ईमान लाए बिना निजात नहीं मिल सकती, उसे क्या कोई इस तरह गुमराह कर सकता है।' रानी जैसे अपने भीतर ही खौलने लगा था।

रहबर अपने मामू के गुस्से से डरता था। आगे कुछ बोलने का साहस नहीं कर सका।

रानी ने पूछा-'बोल न आज से खेलेगा ?'

रहबर कुछ देर रूकने के बाद बोला-'जो कुछ मुझे हिब्ज है मामू, उसमें तो लड़ाई की नहीं आती। खुदा का रास्ता ......।'

उसकी बात बीच ही में काट कर रानी गरजने लगा 'खुदा का रास्ता ही तो बदला है रहबर। मजहब को खून चाहिए, देगा ?'

रहबर ने धीरे से कह दिया-'नहीं मजहब प्यार सिखाता है मामू। एक डोरे में सबको पिरो कर साथ ले चलना चाहता है। उसे बदनाम न करो।'

रानी को इतना क्रोध आ गया कि उसने अपने होठ काट डाले। दाँत पीस कर उसने रहबर की ओर चश्मे के भीतर से घूरा, जैसे उसे खा लेगा।

रहबर मुस्कुरा रहा था। रानी ने लड़खड़ाती जबान से कहा-'मुझे जलाता है रे। जी में आता है पहले तेरी ही टुकड़े कर डालूँ।'

उसने और दबे स्वर से कहा-'प्यार से सीखाओ

मामू। गुस्सा बुरा होता है, मजहब यह भी तो कहता है।'

रानी को हँसी आ गई। रहबर क्या ठीक कहता है, वह सोचता रहा।

उसने आगे कहा 'और मामू, दुनिया बहुत लम्बी-चौड़ी है। यह सब मैंने पढ़ा है। करोड़ों लोग आबाद हैं। सबका अपना-अपना रास्ता है। तब हम आग लगाने और खून देने के बुरे ख्यालात पैदा ही क्यों करें?'

रानी अपने ही विचारों में डूबता-उतराता रहा। रहबर देख रहा था-उसकी दाढ़ी के बाल अब भी हवा में उड़ रहे थे। वह जोर जोर से साँस ले रहा था और उसके मुख पर गहरी छाया व्याप्त होती जा रही थी।

कुछ देर चुप रहने के बाद रहबर फिर कहने लगा-'और मामू छोड़ो इस सबको। सिपाही की जिन्दगी रहबर, बड़ी तकलीफ़ देह है। मौत से लड़ना पड़ता है हर वक्त' जिससे तू दूर भागता है। तुझे तो औरतों के किस्से सुनने चाहिए, सुना बेटा। उन औरतों के जिनकी आँखें शोखी से भरी होती हैं और जो तुम जैसे नौजवानों को पालतू कुत्ते की तरह अपने पीछे-पीछे लिए फिरती हैं। तू ही उनसे खेल, मैं इससे दूर हूँ। सिपाही की जिन्दगी में उसके लिए कोई जगह नहीं।'

'पर मामू एक बात पूँछू बुरा तो न मानोगे।'

रानी ने अपना सर हिला कर सम्मत दी, जिससे उसकी दाढ़ी भी हिलने लगी।

'और सिन्ध और पंजाब की औरतों पर जो जुल्म किए गए हैं मामू, उनका जिम्मेदार कौन है? सिपाहियों ने जो कुछ किया है, उसे सुन कर शर्म से सर झुक जाता है। नंगी औरतें और उनके मर्दों के सामने ही......छिः मामू। तुम्हारी सिपाही जाति हमेशा के लिए अपना मुँह कालिख से रंग चुकी है। तवारीख में जहाँ कहीं पर सरकार बदलने का बयान है, वहीं सिपाहियों के जुल्म की भी कहानियाँ लिखी हैं। तुम लोग औरतों की अस्मत लूटते हो, तुम्हें.... क्या कहूँ! मेरा दिल जल रहा है।'

रानी ने एक बार पैनी दृष्टि से रहबर को नीचे से ऊपर तक देखा, फिर सर झुका लिया नीचे।

रहबर ने पूछा-'तुम कहाँ तैनात थे उन दिनों-मामू बताओगे?'

'मुल्तान में' रानी ने धीरे से उत्तर दे दिया।

'तब तो कहना ही क्या?' रहबर जोर से कह उठा। 'कितनों को कत्ल किया; कितनों को जबरन अपने मजहब में लिया और कितनों की अस्मत की चादर उतारी मामू, कुछ हिसाब है तुम्हारे पास? उफ! इन्सान अंधा हो गया था।'

'बेटा', रानी ने अपने ऊपर लगा आरोपों का खण्डन करने का प्रयत्न करते हुए कहा—'और हमारी क़ौम ने जो कुछ सहा है, उसे तू भूल गया क्या?'

'नहीं मामू, वह सब भी याद है। खून के आँसू बह रहे हैं मेरे' रहबर ने कड़ाई से कहा-'पर पहले तो तुम्हीं लोगों ने जुल्म के पहाड़ ढा दिये थे। हिन्दू औरतों, बच्चों, बूढ़ों का जीना दुश्वार कर दिया। और उन्होंने जो कुछ किया, वह भी भारी भूल थी उनकी। हिन्दुस्तान का नाम इस गन्दगी में हमेशा के लिए डूब गया। मजहबी लड़ाई, भाई-भाई का दुश्मनी, लूट-मार, कत्ल, सभी कुछ कितना डरावना है मामू?'

रानी के सामने पंजाब का हत्याकाण्ड नाच उठा। जब वह सत्ता के मद में संगीनों की नोकों से औरतों और बच्चों को छेद रहा था। तड़पते हुए उनके शरीर, खून का फव्वारा, कटे हुए अंग, वह सहम उठा।

रहबर ने पूछा-'क्या है मामू!'

कुछ नहीं बेटा। वही सब याद आ गया जो देखा था।'

'तो सुना दो न। अखबारों में पढ़ रखा है, देखा नहीं आँखों से कुछ।'

रानी ने चश्मा उतार कर रख लिया फिर उन्हें साफ़ करने के बाद कहने लगा—अपने मजहब की बात है बेटा, जी लगा कर सुननी होगी। तेरे

आज़ाद ख्यालात हैं तो क्या, पहले अपना ईमान है। अपनी कौम के लिए एक आवाज़ पर मर मिटने के लिए हमेशा तैयार रहना होगा हमें।'

रहबर जो कुछ सुनने को उतावला हो रहा था, उसे न सुन पाकर वह और दूसरी बातों में अपना मन फँसाने के लिए तैयार न था। अपना धैर्य छोड़ता हुआ वह कहने लगा—यह सब अब नहीं सुनूँगा मामू। क़ौम और मजहब की बातें तो हमेशा सीखी हैं। इन्सानियत भी तो सीख लूँ कुछ। आदमी न रह कर हम लोग कुछ और बन गए तो मज़हब के पाक उसूलों को जानने से फ़ायदा ही क्या? हाँ सुनाओ तो। जब हिन्दुस्तान का बटवारा हुआ था, तब तुम मुल्तान में थे। वहाँ पुलिस और फौज ने हिन्दुओं पर......... ! मामू मेरी क़सम है तुम्हें, झूठ मत बोलना।'

ग़नी ने मस्तक का पसीना पोंछ कर कहना आरंभ कर दिया—'मैं पुलिस में तब हवलदार था सिपाहियों के एक दस्ते को अपने कब्जे में कर लिया था मैंने। लूट-मार कर मैंने उन्हें अपने हुकम पर चलने को तैयार कर लिया था। सारे शहर में उन दिनों भग-दड़ मचने लगी थी। हिन्दू शहर खाली कर पड़ोस के गाँवों में छिपने के लिए दौड़ने लगे थे। उनकी जवान लड़कियाँ, औरतें, सुना रहबर; उनकी खूब-सूरती को बयान नहीं कर सकता मैं. अपनी जान लिए मारी-मारी फिर रही थीं। उनकी हिफ़ाज़त कौन करता बेटा? अपने को आफ़त में डालना था। फौज और पुलिस के सिपाही दौलत और औरत, ये इन दो के ही ख्वाहिशमन्द थे। वे बूढ़ों और बच्चों को मार डालते थे। जवान मर्दों को गुलाम बना लेते और औरतों से अपने तन की भूख मिटाते।'

रहबर को यह सब अच्छा नहीं लग रहा था फिर भी वह हिले-डुले स्थिर सा बैठा सुन रहा था।

'और वह एक मज़ेदार कहानी है रहबर जो मेरी ज़िन्दगी में हमेशा करवटें लेती रहेगी। हमारे सिपाही एक मकान में ज़बरदस्ती घुस गए थे। थोड़ी देर बाद मैं भी भीतर गया तो जो कुछ देखा उस पर पहले तो यकीन नहीं कर सका। 'घर के तमाम लोग जो एक कमरे में बन्द थे, बाहर पकड़ लाए गए थे और बारी-बारी से क़त्ल किए जा रहे थे। एक कोने में सिपाही फ़रीद एक लड़की को पकड़े खड़ा था। उसकी आँखों से खून बरस रहा था। लड़की के सारे कपड़े फटे थे। उसकी शर्म बाहर झाँक रही थी। मुझे देख कर वह चिल्ला उठी—ग़नी साहब, मुझे बचाइए। आप तो मुझे जानते हैं। मैं सरदार—की लड़की हूँ। आपके देखते...... । फ़रीद ने कस कर उसका मुँह दाब दिया, फिर कमरे के भीतर उसे घसीटने लगा।'

रहबर बीच में कुछ कहना चाहता था, पर ग़नी ने उसे संकेत से चुप करा दिया। आगे कहा उसने—'मैंने उस लड़की को पहचान लिया। वह मेरे एक दोस्त सरदार......की लड़की थी। हम लोग पास-पास बैठते थे, घंटों बातें करते थे, पर उस वक्त मेरे दिमाग में यह सब कुछ नहीं आया। वहाँ मैं..... खून का प्यासा था। लाहौर से निकलने वाले अखबार ज़हर उगल रहे थे। हमें उकसा रहे थे कि हम क़ौम के लिए मर मिटें। मज़हब के नाम पर कुर्बान हो जाँय। काफ़िरों से कैसी दोस्ती। मैंने कहा-मैं तुझे पहचान तो गया हूँ लड़की, पर कुछ कर नहीं सकता। यह मज़हबी मामला है। क़ौम के जीने मरने का सवाल है। तू इस्लाम क़ुबूल कर ले, तेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा।'

'लड़की तैयार नहीं हुई। फ़रीद उसे अन्दर घसीट ले गया था। वहीं से उसने धीमी ज़बान से कहा—तुम इंसान नहीं हो ग़नी साहब। आदमियत का जामा उतार फेंक चुके हो। तुम्हारा मज़हब......? तुम एक लड़की को नहीं बचा सकते। हिन्दू मुस्लिम......... । आगे फिर कुछ सुनने को नहीं मिला।

रहबर इस बार नहीं रुका। घृणा के भाव उसके मुख पर बिखर गए थे और भीतर से जैसे ज्वाला-मुखी फूट पड़ना चाहता था। वह उठ कर खड़ा हो गया, बोला—'क्यों मामू, यही मज़हब ने सिखाया है तुम्हें? तुम सचमुच इन्सान नहीं हो। तुम्हारी आँखें

(शेष ४३५ पृष्ठ पर देखिये)

मांस का विद्रोह

श्री रामसिंहासन राय 'उन्मुक्त'

प्रथम दृश्य

[एक आंगन जिसकी भूमि ज्वाला से तप्त, तीव्र निश्वासें छोड़ती है। ऊपर से आकाश अपनी नेत्र-पुतलियों से अश्रु बरसाता है और उसके सिर पर तिमिर चंदोवा की भांति तना हुआ और घनीभूत होता जाता है। न जाने कहां से हाय! हाय!! की ध्वनि वहाँ सुनाई पड़ती है। आंगन के बीच में, ज्वालाओं के मध्य में सत्य अपनी साधना में प्रतिपल निरत है। वह तेजोदीप्त है और किसी प्राण-प्रिय वस्तु के अन्वेषण में संलग्न है।]

सत्य गाता है—

जाग रे निर्माण!
भूमि ज्वाला वक्ष पर ले
मांगती रस-दान!
क्रूर कितना तू गया बन,
विधुर इसका तन, विकल मन,
मांगती कब से न जाने
प्रात ज्योतिष्मान!
तू लिए झंकार उसकी,
कठिनतम हुंकार उसकी,
उठ अमर, अविलम्ब गा तू
प्राणमूलक गान!
जाग रे निर्माण!

(गीत की ध्वनि सुनकर पुरुष जो आंगन में सोया हुआ था, जाग उठता है और अंगड़ाई लेते हुए वह देखता है—सत्य गाता है: जाग रे निर्माण।)

पुरुष—

कब से निरन्तर
गीत गाते आ रहे,
मन-प्राण-तन में
शक्ति का आह्वान
करते आ रहे।
सोया हुआ नादान मैं
हूँ जा रहा
पथ से विलग
अभिशाप ले,
अङ्गार ले,
औ' पुतलियों में
अश्रु का शृङ्गार ले;
अपनी विवशता, मूर्खता को
स्वयं ही मनुहार
देता जा रहा हूँ,
वीणा की ही क्षीणतर झंकार को
नव प्यार देता जा रहा।
हूँ देखता, हे देवता,
तुम जल रहे
केवल अकेले
शापितों के देश में,
फिर ले रहे हो होड़ क्यों
अङ्गार से यों व्यर्थ, निष्फल।

सत्य—

ज्वाल में जीवन हमारा,
इसलिए मैं दे रहा हूँ
प्यार इसको,
सौंपता निज साज औ' शृङ्गार इसको।
मान ले,
विश्वास कर ले,
ज्वाल है पर्याय जीवन का हमारे।
ज्वाल ही में मोह-ममता,
ज्वाल ही है स्वप्न मेरा,
ज्वाल के ही अङ्क में
हैं लीन जीवन-तत्व शाश्वत।

पुरुष—

दे न दो
वरदान मुझको ज्वाल का,
मैं जल उठूँ;
चिनगारियों को चूम लूँ।
चिनगारियां वे चीर कर
तम तोम को क्या दे सकेंगी
नव विभा का दान?

सत्य—

ढंढ़ से चिनगारियां।

चिनगारियों को यह छिपाए
है खड़ा तम गहनतम,
पर पूर्व इसके
तिमिर का आह्वान कर
औ' भय-कुहा की
पार कर सीमा भयङ्कर
जोड़ ले सम्बन्ध इससे
यदि मरण भी हो खड़ा सम्मुख भयंकर।
चूम ले इसको सहज ही
कर मधुर तू।
देख तब,
तेरी विजय है।
तिमिर तुझको देख अविचल
कह उठेगा —
'बन्द हैं चिनगारियां
मेरी कठिन प्राचीर में।
तू तोड़ दे प्राचीर यह
निज शक्ति की अगणित
शलाकायें चला कर।
तब कहीं तू
पा सकेगा ज्योति का भण्डार अनुपम।
भय न कर मुझसे तनिक तू,
पल रहा कल्याण
तेरी सांस में
प्रति स्वप्न में, मेरे सजीले!
चाहता हूं मैं तुझे देना
विभा का दान,
देती ज्यों सुभग जग को
प्रभा का पुंज
रजनी स्वयं मिटकर।
किन्तु मुझको लग रहा
मैं विवश हूँ,
असमर्थ हूँ,
कुछ दे न सकता मैं तुझे
जब तक न तेरी
शक्ति के शर छूट कर
मुझको लगें।'

पुरुष—(उत्साह के साथ गाता है)

मैं देखूंगा, कौन देश है छिपा तिमिर के पार,
अङ्गारों से आज करूँगा मैं अपना शृङ्गार!
कर्म-यान पर चढ़ ढूढूँगा
युग से भूला देश,
नवल रश्मि मे विहंसेगा
मेरा संस्कृति - सन्देश,
मन की कली जगेगी लेकर
अधरों पर मुसकान,
नवल विभा में गूथूंगा मैं
निज स्वप्नों का हार!
मैं देखूँगा, कौन देश है छिपा तिमिर के पार!

(तत्क्षण ही एक दिशा से तीव्र आवाज आती है।)

बढ़ चलो हे पुरुष अविजित,
स्वयं तुम निर्माण अपने।
गा रही सांसें तुम्हारी
आज मङ्गल-गान अनुपम।
आज ये सारी दिशायें,
अवनि-अम्बर,
तरु-लतायें,
वन-विकट
औ' गिरि-शिलायें
जग रही औत्सुक्य से
सुनकर तुम्हारी स्वर-लहरियां।
स्वर-लहरियां
ये तुम्हारी
दे रही प्रतिपल चुनौती
दानवी सब शक्तियों को,
प्रलयकारी पंक्तियों को।

(यह गीत सुनकर सत्य की आंखें सतर्क हो जाती हैं। पल-भर के बाद ही वह पुरुष को लक्ष्य कर कह उठता है।)

सत्य—

तू न हो भयभीत पंथी,
जीत तुझमें ही छिपी है।

पग बढ़ाता तू चलाचल,
खो न तू साहस तनिक भी।
गीत, जीवन-गीत
गाता तू बढ़ा पग।
देख ले,
आकाश-अँचल में छिपा
वह कौन है
जो कर रहा इङ्गित तुझे :
'पथ से न मानो हार,
तुम हो ज्योति के आगार।
है निर्माण हाथों में तुम्हारे;
फिर तुम्हें यह तिमिर कैसे
कर रहा भयभीत?
तिमिर यह संस्पर्श पा
केवल तुम्हारा
शाप से झट मुक्त होगा।
ज्योति का वरदान लेकर
वह तुम्हें दिनमान देगा।'
ज्वाल देता हूँ तुझे
तू दीप अपना
अब जला ले।
कर रहे आह्वान
पथ-कुश-कांट-रोड़े,
दे सकेंगे शूल क्या,
वे फूल की जयमाल देंगे।

पुरुष—

यामिनी अब शेष कितनी?
थक चले हैं पांव मेरे,
दूर कितने हैं बसे
वे ग्राम मेरे?—
ज्योत्स्ना-शोभित सुभग
वे ठांव मेरे?

सत्य—

एक पल अब रात केवल।
तिमिर के उस पार ही
है बस गया मधु-देश तेरा।
ज्योति अगणित
जगमगाती हैं जहां पर,
शूल में भी फूल
खिलते हैं वहां पर।
दृष्टि जाएगी जिधर,
तुझको मिलेंगे
सरल नव सन्देश
जीवन के मधुर।

(कुछ क्षणों के लिए सत्य मौन; फिर ध्यान-मग्न। तत्क्षण ही पुरुष वहां से हट जाता है।)

———

नयी सृष्टि (एक रूपक)

श्री कृष्ण नारायण कक्कड़ एम० ए०

पहला सीन

(एक कोरस)

इस ध्वन्स, विनाश, दुःख के युग में
कौन हमारे प्रश्नों का उत्तर देगा !
कौन हमे इंगित कर दे सत्य कहां ?
क्या हम अखबारों को देखें
क्या पूछें हम साधु-सन्त से ?
कौन प्रश्न का उत्तर देगा
हम करते प्रयत्न-प्रयास अनेकों थक गये
लगा न कुछ भी हाथ !
जो जीवित हैं —उनके आखों की ज्योति नष्ट हो गयी
जो आशावादी थे—उनकी आशाएँ विनष्ट हो गयीं
और दूर पर सुन पड़ती बन्दूकों की ध्वनि
कानों कानों में सुन पड़ती युद्ध-प्रतिध्वनि—
बम फटने की देरी है
इस कुचाल, फूट पाप, औ धमकी का
उत्तर तो देना ही होगा !
आज सत्य के साक्षी सारे
करते रक्त ध्वंस की होली
मापदंड मिट गये सभी, मर्यादायें हो गयीं क्षीण !

(इनमें से एक औरत)

कब होगा दुख का अन्त ?
क्या पुत्र हमारे रह जायेंगे भूखें ?
क्या सारे सम्बन्ध टूट कर
देंगे घृणा स्वार्थ को जन्म ?

(दूसरा औरत)

कब तक इस पुन्य भूमि पर,
शस्य-श्यामला धरती पर,
शत्रु सभी लूट-खसोट मचाएँगे।

(तीसरी औरत)

क्या सुख की निद्रा के लिये
त्याग आज़ादी का था पूर्ण नहीं
क्या इस महायुद्ध के दुख थे कम
जो अब भी दुख सहने पड़ते हैं !

(एक युवक समझना हुआ)

तुमको आज समझना होगा
देश-काल की स्थिति
केवल विरोध से होना नहीं समस्याओं का हल
मैं नहीं किसी दल का नेता
मैं तटस्थ हूँ
मैं कहता हूँ
आज देश काल वस्तु-स्थिति से परिचित होना होगा।

(पहली औरत)

क्या तुमने जाना है भूख किसे कहते हैं
क्या पीड़ित व्यक्ति धराशाई होते देखे हैं ?

(दूसरी औरत)

क्या तुमने जाना है मृत्यु किसे कहते है ?
क्या उदासीनता के शिकार दुर्बल बच्चों को गिरते देखा है ?

(तीसरी औरत)

क्या उनके बारे में सोचा है, जो लँगड़े हो गये,
कट गये हाथ, जिनके लड़ते लड़ते युद्धस्थल में !

(वही युवक समझाने का असफल प्रयत्न करता है)

मानव जीवन की संस्कृति
निर्मित होती है संघर्षों से
उत्पादन के लिये यत्न करने पड़ते हैं
निष्क्रियता से होती नहीं प्रगति
फल पाने के लिये कर्म करने पड़ते हैं
मानव ने युग युग से, लड़कर ही आज़ादी पाई है
धीरे धीरे ही विकास के द्वारा
इतिहास-पृष्ट खुलते हैं !
मानव-विकास...!

(लोग उसकी बात नहीं सुनतेः दूर से एक कोरस सुनाई पड़ता है और सभी ध्यान से सुनने लगते हैं)

शांति हृदय के बाहर और नहीं है कहीं—
हमने खो दी अन्तर दृष्टि
कहां है शांति
यहां प्रचार सभी
जो कुंठित करता दृष्टि और श्रुति पट को
हम सुन पाते नहीं—
कुछ बातें है जिनके बीच घूमते रहते !
हम लोगों के-सब के दिल से मिट गयी शांति
कोई बाह्य शक्ति कैसे इसका उद्धार करे !
इस घनी अराजकता के युग में

हमको, व्यक्ति व्यक्ति को, राष्ट्रों को
अमर शांति की राह चाहिये !

(दूसरा सीन)

(एक जमींदार-सामने से आता हुआ)

हम धरती के मालिक हैं,
हम जमीन के मालिक हैं,
हम लगान के मालिक हैं,
हमने संस्कृति के साधन एकत्र किये
हमने सङ्गीत कला को जीवन दान दिया
यह आज-सभ्यता साधारण की,
क्या जाने जीवन के मूल्य अमर !

(एक पूँजीपति सामने से आता हुआ)

यह कल, मिल, यंत्र, मशीनें
मेरे ही धन से चालित
यह जीवन के उपादान सारे
मेरी पूंजी के आश्रित
मैंने ही स्थापित किये व्यक्तिगत जीवन के अधिकार
जिसके बल पर हैं खड़े हुये महल, मकान, सड़क
सुख, सत्ता, विस्तार !
जो करते साम्यवाद की बात
वे नहीं जानते साम्यवाद के खतरे
ये मजदूर स्वार्थ से पीड़ित
क्या जाने विकास किसे कहते हैं
मैं ही उसका असली वारिस हूं
मैं ही उसका उत्तरदायी !

(पूंजीपति और जमींदार चले जाते हैं इतने में एक किसान और एक मज़दूर आता है)

(किसान)–

मै हूँ किसान
मेरे ही हल से अनाज उत्पन्न हुआ
मेरे ही हल की नोकों से
धरती ने नव, रस, फूल दिये !
मेरे ही श्रम पर जीवित है सारी दुनियां
मै जीवन का प्रतीक हूँ
मै जमीन का असली वारिस हूँ
बह जायेगा रक्त-स्रोत
पर मेरी जमीन पर मेरा ही अधिकार रहेगा !

(एक मज़दूर)

मेरे श्रम से निर्मित हैं
ये महल, मकान, यंत्र सारे
मेरे ही श्रम के द्वारा
चलतीं रेलें, वायुयान
ताने-बाने मे बुन जाते
मेरे द्वारा जीवन-वितान !
पर मैं ही नंगा भूखा हूँ
मेरा ही शोषण होता है
मैं पूंजीपति का आश्रित हूँ
जब मैं ही सच्चा
मिल का मालिक संचालक हूँ !
मैं अब नहीं बैठ सकता उदास
मैं लड़ने को तत्पर हूँ !

(एक नेता आता है, भाषण देता है)

ध्वंस मचा दो, तोड़ फोड़ दो,
तुम शोषित हो, चूसे जाते हो
तुम दुर्बल हो, पीसे जाते हो
तुम जमीन के मालिक हो
तुम ही मिल के मालिक हो
तुमने कितने दुःख सहे हैं
और तुम्हीं नंगे भूखे हो
ये पूंजीपति, ये जमींदार,
तुम पर शासन करते हैं
तुम भोजन पैदा करते हो – तुम भूखे हो
तुम कपड़े पैदा करते हो – तुम नंगे हो !
यह पूंजीवादी समाज—
आज सभी मिल कर तोड़ फोड़ दें
ध्वंस मचा दें
करलें ज़मीन पर, मिल पर अधिकार
आज गिरा दें ये प्राचीर महल मीनार
धराशायी कर दें अत्याचार, अमीरों को
मच जाने दो अब ध्वंस

(उत्तेजित जनता)

तोड़ दो मिलें,
फोड़ दो महल
मचने दो ध्वंस,

लगा दो आग
सारे ढांचे को गिरने दो—
गिरने दो !
(वे तोड़ फोड़ मचाने में लग जाते हैं)

(तीसरा सीन)

(एक कोरस)
हम नहीं चाहते ध्वंस,
हम तो केवल सुख-साधन-अधिकार चाहते हैं
हम नये सृजन में लग्न,
हम नयी सृष्टि के इच्छुक हैं
हम करते हैं विश्वास व्यक्ति में
उसकी पावनता में :
हम अकुलिष आत्मा के प्रतीक,
हम बन्धन विमुक्त जीवन विकास चाहते हैं !
पर इस सन्घर्ष, द्वेष के युग में
हम-ममहित हैं :
हमने खो दी है ज्योति,
उसका पुनः प्रकाश चाहते हैं
(गावों से एक आवाज आती है)
यह नहीं कि मै एश्वर्यों का एकाकी अधिकार चाहता था
यह नहीं कि मै स्वार्थी बन
औरों को सुखी नहीं देखना चाहता था !
मै तो केवल गिरे झोपड़े को
फिर से खड़ा चाहता करना
मै चाहता कि मेरे स्त्री, मेरे बच्चे
जीवन-सुख से वंचित न रहे
कोई मेरी दुर्बलता के बल पर
मेरा बन्धन-शोषण न करे !
(शहर से एक आवाज आती है)
मुझको नहीं चाहिये अनाधिकार सुखों का सर्जन
मुझको नहीं चाहिये—धन का लोभी आराधन !
मै नये राष्ट्र का उत्तरदायी
मै नये देश का निर्माता,
मुझको प्रिय हैं कार्य और उत्पादन के साधन
जब तक ममता एक्य सुरक्षित
उत्पादन पर निर्भर वितरण !
(एक युवक और एक युवती)
हम नयी सृष्टि के निर्माता हैं
देंगे जीवन को नया रूप औ नये रंग
हम नये प्रतीक बनाते हैं
करते सुख-शांति-स्नेह का नव सर्जन
निर्मित करते हैं नये गान
नव कुसुम-राशि नूतन विहान
देंगे जीवन को नई राह और नये चिन्ह
हम आज मुक्त
इसकी सार्थकता का देंगे प्रमाण,
मुखरित होंगे कंठ कंठ
नूतन छवि औ' नयी सृष्टि !

आचार्य विनोबा भावे

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी

जाने कब, किसने जमाने की स्मृति में 'संघेः शक्ति, कलौ युगे'—वाली कहावत शामिल कर दी और तब से आज तक बिना सोचे—समझे लोग इस भ्रांति को दुहराते चले आ रहे हैं। विचार की कसौटी पर चाहे जिस युग को कसिये, व्यक्ति, और केवल एक व्यक्ति मिलेगा, जिसके महान गुरुत्वाकर्षण के चारों ओर, व्यक्ति-समूह सौरमण्डल के उपग्रहों की भांति चक्कर काटता हुआ पाया जायगा। वह शक्तिसागर, पूर्व और पश्चिम के मौलिक मतभेदों की अनुकूलता से गांधी हो या स्टालिन या ट्रूमैन जैसा कोई और, व्यक्तियों को शक्तिधारा उसमें अपना जीवन विलीन कर देने को विवश है।

अपने जीवन में समूह की अपेक्षा गुण को सदा अधिक महत्व देकर महात्मा गांधी ने एक से अधिक बार उपर्युक्त भ्रांति पर प्रहार किया है। और अभी उस दिन गाँधी-विचाररश्मियों से आलोकित आचार्य विनोबा, जब महात्मा जी के अकाल अवसान से अपरिपूर्ण कार्य की पूर्ति के उद्देश्य से दिल्ली पहुँचे, तब उनके साथ उनके दो चार ऐसे साथी थे, जिन्हें याद रखने में इतिहास अक्सर भूल कर दिया करता है। अतः आज एक बार फिर यह प्रश्न सामने आया कि समूह की अपेक्षा युग पुरुष क्यों न शक्ति एवं सामर्थ्य का श्रोत माना जाय ?

हां वह शक्ति-स्रोत, निर्मित जमाने का बागी होता है। वह अपना जमाना स्वयं निर्माण करता है। उसके आरोह बिन्दुओं को छू सकने में सर्वथा असमर्थ लीक-लीक चलने वाले लघु-तंतुओं की रीझ और खीज उसे अपने अभिमत से विमुख नहीं कर पातीं। जमाना लाचार होकर उसके पीछे चलने को बाध्य होता है।

विश्व को एक प्रवाह कहा है। प्रवाह तो निम्नगामी ठहरा। युग पुरुष इस चिरन्तन प्रवाह को जड़त्व के पतन-पथ से खींचकर चिन्मय केन्द्र की ओर मोड़ देता है। राष्ट्रों के जीवन में ऐसे ही मोड़ उज्ज्वलतम अध्यायों का सृजन करते हैं।

बेचारा इतिहास! विनोबा ने अभी उसे अवसर ही कहां दिया कि वह इनका परिचय लिखे। प्राचीन ऋषियों के अनुगामी इस साधकने अपनी साधना के परिणामों को नीरस और उपेक्षित रचनात्मक कार्यों के दुर्ग में सोने की भांति इस सावधानी से बन्द रखा कि इतिहास के गुप्तचर उस पर डाका नहीं डाल सके। महात्माजी से मिलने के वर्ष १९१६ से लगाकर उनके निर्वाण—सन १९४८-तक बत्तीस वर्षों की लम्बी अवधि में विनोबा जी ने अपने नाम को प्रसिद्धि सहित छापने के लिये समाचार पत्रों को केवल तीन मौके दिए, तीनों के तीनों क्षणजीवी! असहयोग-आन्दोलन की प्रखरता के बीचोंबीच, सन १९२३ में मध्य प्रांतीय सरकार की निरंकुशता मध्यप्रांत की तरुणाई को राष्ट्रीय झण्डे के सम्मान की रक्षा के लिये बलि-पथ पर चुनौती दे बैठी। नागपुर में झण्डा सत्याग्रह छिड़ गया। तब एक दिन, जब तत्कालीन सरकारी अधिकारियों ने सत्याग्रह का संचालन करने वाली समिति को सहसा गिरफ़ार कर लिया, साधनानिरत विनोबा का आसन झण्डे की मानरक्षा के लिये डोल उठा और सत्याग्रह संचालन का भार सम्भालने के लिये वे बाहर आये। किन्तु दूसरे दिन, सत्याग्रह प्रारम्भ करने के पहले ही, विनोबा जेल पहुँचा दिये गये श्री विनोबा के समाचार पत्रों के शीर्ष स्थान में आने का यह प्रथम अवसर था और उसका शुभ प्रारम्भ मध्य प्रांत में, उनके बलिपथ पर आरूढ़ होने से हुआ।

दूसरी बार सुदूर दक्षिण केरलसे, आई हुई एक दर्दीली पुकार से गाँधी जी बेचैन हो उठे। प्रभु के दर्शनों से वंचित हरिजनों ने मन्दिर प्रवेश के लिये वहा सत्याग्रह छेड़ रखा था। श्री विनोबा उसके संचालन के लिये गुरुवयूर भेजे गए। यह सन १९२४ की बात है।

प्रसिद्धि का तीसरा अवसर जरा देर से पहुँचा—सन् १९४० में। किन्तु गौरव और महत्व में यह सबसे आगे रहा और इसका यश भी इस प्रांत को ही मिला। सत्याग्रह में कठोरतर अनुशासनों को पार करने में भारतीय जनता सामूहिक रूप से गांधी जी की नजरों में असमर्थ ठहरी। अतः भारत-सरकार की युद्ध नीति का विरोध करने के लिए उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह विकल्प निश्चित किया। आचार्य विनोबा इस यज्ञ के प्रथम होता के गौरव से अभिषिक्त हुए।

राजनैतिक प्रसिद्धि के क्षेत्र में मची हुई प्रथम आने की उस स्पर्धा को देखिये जिसमें त्याग और कुरबानियों का ढिंढोरा पीटते हुए, उसी पूजा-वेदी पर पांव रखें कर अपने साथियों में श्रेष्ठ दीखने की कोशिशों का तांता

बंधा हुआ है, जिससे प्रेरणा और क्रिया शक्ति प्राप्त होती रही है; फिर इस व्यक्ति विशेष की समर्पण भावना को देखिये, जो साधक जीवन के जाने किस आकर्षण से अभिभूत, प्रसिद्धि और लोक प्रतिष्ठा को आवर्जन की तरह बार बार ठुकराता आरहा है।

बम्बई प्रान्त के कोलाबा जिले के गागोड़ा गांव की भूमि गरवीली है कि विनोबा जी का बचपन उसकी गोद में खेला। तब श्री विनोबा का पूरा नाम था श्री विनायक नरहरि भावे। विद्याभ्यास की लोक-परम्परा के अनुसार सन् १६०७ में बड़ौदा हाईस्कूल में आपका नाम लिखा गया, किन्तु विद्रोही जीवन का कँटीला मुकुट पहनाने के लिए राष्ट्र का भविष्य जिन बिभूतियों को वरण करता है; उन्हें शासन की दीवारों से बंधी निर्जीव पाठशालायें पचा नहीं सकतीं। श्री विनायक ने बिना कोई डिग्री लिए सन् १६१६ में गुलाम शिक्षा प्रणाली को छोड़ दिया और पारिवारिक जीवन की सीमाएं, पश्चिम के आदर्शों पर ढले भौतिक उद्योगों के देश को समृद्ध बनाने के पक्षपाती पिता का स्नेह, बिलासों से रपटीले पथ के सुख-मय आकर्षण साधारण मानव को ललचाने वाली महत्वाकांक्षाएं—इन सब जंजीरों को तोड़ते जाने में ही श्री विनोबा सुख अनुभव करते रहे। उन्हें उस शिक्षा की तलाश थी, जिसके लिए कहा गया है—'सा विद्या या विमुक्तये।'

सबसे पहले विनोबा फिर उनके शेष दोनों भाई भी लोक—साधना के महत्तर आदर्शों की प्राप्ति के लिए घर छोड़कर चल दिए।

योग्य मार्ग-दर्शक की खोज में, दीर्घ और तीखे मानसिक संघर्षों के बाद विनोबा जी सन् १६१६ में घर छोड़कर काशी पहुँचे। महात्मा गांधी साबरमती आश्रम स्थापित कर चुके थे। पत्र में आने की अनुमति चाही। किन्तु प्रतीक्षा सहन नहीं हुई। बिना अनुमति प्राप्त किए अतिथि के रूप में श्री विनायक साबरमती पहुँचे। महात्मा जी ने अपने पाश्रम के प्रारम्भ में ही मानों इस छोटे से सिद्ध विनायक का स्वागत किया। अपराजित आर्य-परम्परा अपना नन्हा सा रूप धर कर मानो सिद्धियों का भण्डार महात्मा जी की गोद में सौंपने आई।

आश्रमवासी विनायक नेआश्रम के कर्मठ और कठोर अनुशासनों की तपन से गुजरने के लिए अपने मन और शरीर को उसी तरह फेंक दिया जिस तरह प्राचीन ऋषि-पुत्रों के परिचर्या व्यस्त, साधनामय जीवन की कहानी हम उपनिषदों में पढ़ा करते हैं। आज भी विनोबा शरीर-श्रम को बहुत महत्व देते हैं। उस दिन दिल्ली के राजघाट पर प्रार्थना सभा में उन्होंने कहा! शरीर श्रम छोड़ने से ही दुनियां में साम्राज्यशाही और अन्य शाहियां पैदा हुई हैं। श्री विनायक का यह आश्रमवास कितना श्रद्धामय, तपोनिष्ठ एवं अध्ययनशील रहा—वह इस घटना से व्यक्त होता है:—

दुर्बल, अस्वस्थ शरीर विनायक के कठोर श्रमशील किन्तु शिकायत रहित चर्या और परिचर्या से प्रभावित महात्मा जी ने एक दिन पूछा—"इतने दुबले हो रहे हो, फिर भी इतना सारा काम कैसे कर लेते हो !"

गिने चुने शब्दों में अथाह गहराई लिए हुए उत्तर था—"काम करने की इच्छा शक्ति से।"

कैसे कहें कि इस शिष्य को अपने समस्त ज्ञानालोक से उदभासित कर देने के सात्विक उत्साह से गांधी जी का हृदय भर नहीं आया होगा!

इस तरह ज्योति से ज्वाला प्रज्वलित हुई और चिन-गारी से दीपदान की परम्परा जाग्रत की गई।

मध्य-प्रांत में गांधी जी के मत, पथ और व्रत के एकनिष्ठ प्रचार में अपना जीवन खपा देने वाले स्वर्गीय देश भक्त जमनालाल जी बजाज की अनन्य सेवा भावना से सन् १६२१ में महात्मा जी द्वारा वर्धा आश्रम की स्था-पना की गई। विनोबा जी इसके प्रधान आचार्य हो कर साबरमती से वर्धा आश्रम लाए गए।

महात्मा जी के निवास से गौरवान्वित से गांव (वर्धा) जिस तरह सेवाग्राम बन गया, उसी तरह वर्धा से ५ मील दूरी पर अवस्थित पौनार ग्राम, जिसे हरिजन सेवा की सुविधा के लिये विनोबा जी ने चुन लिया, विनोबा के चरण पड़ते ही 'परमधाम' बन गया। मानो अपने को जीतेजी गाड़ देने वाले आचार्य विनोबा ने सन्त तुकाराम की बाणी को दुहराकर कहा:-

आपुले मरण
पाहिले मी डोला

अर्थात्—अपनी मौत मैंने अपनी आंखों देखी है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा प्रज्वलित अभिनव ज्योति अपने अन्तःकरण में आलोकित किए आचार्य विनोबा महात्मा जी के महाप्रस्थान के अनन्तर स्वतन्त्र भारत के हृदय प्रदेश को द्वेष और कलुष से निर्मल बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। गांधी के अन्यतम साथी स्वर्गीय महादेव देसाई के शब्दों में विनोबा ऐसे व्यक्ति हैं, जिसकी मेधा प्रतिक्षण विकसित होती रहती है। प्राचीन ऋषि की वाणी दुहराई जाय तो विनोबा का जीवन उस मंत्र का जीवन प्रदान कर रहा है, जिसमें कहा गया है-

चरन्वै मधु विदंती चरन्स
सुदम्बरम······चरैवेति, चरैवेति ॥

संत तुलसीदास ने भगवान राम के मुंह से अनन्य भक्ति की परिभाषा यों कहलायी है—

सो अनन्य जाके असि मति न टरे हनुमन्त।
मैं सेवक, सचराचर रूप स्वामि भगवन्त ॥

और उस दिन, कुरुक्षेत्र छावनी में विनोबा ने शरणार्थियों के बीच अपने आगमन का उद्देश्य इस प्रकार समझाया:—

"आप लोगों को मैं ऐसे देखता हूं, जैसे भक्त भगवान को देखता है।"

विनोबा के शब्द कोष में कमजोरी या लाचारी का बोध करने वाला कोई शब्द आपको नहीं मिलेगा। इस विषय में उनके विचारों का ओज इन पंक्तियों में अनुभव कीजिये—

"चंद्र के साथ चन्द्रका वातावरण रहता है। मँगल के साथ मँगल का। वैसे ही मेरे साथ मेरा वातावरण रहना चाहिये। लोग कहते हैं-यह तो कलयुग आया है। किन्तु कलियुग में रहना है या सतयुग में यह तो तू अपना चुन ले। तेरा युग तेरे पास है। इसलिए हम ऐसा न माने कि दुनिया को हवा के सामने हम लाचार हैं। लाचार तो जड़ होता है। हम लोग चेतन हैं, आत्मस्वरूप हैं। हमारा वातावरण हम बनायेंगे।"

राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी के इस सुयोग्य प्रकाशवाहक और उत्तराधिकारी संत एवं लोकनेता का इन पंक्तियों के साथ सेवा व्यापक क्षेत्र में हम स्वागत एवं अभिनन्दन करते हैं।

नमो परम ऋषिभ्यो, नमः परम ऋषिभ्यः!



उस दिन श्रीमती……अपनी दुख गाथा सुनाते सुनाते एक सर्द आह भर कर कहने लगीं कि…यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैंने एक स्त्री के रूप में जन्म लिया। कदाचित् वह आजकल की स्त्रियों की आम भावना को व्यक्त कर रही थीं। पुरुष की अपेक्षा स्त्री आज जिस निम्न पद पर है वह अपने प्रति होने वाले प्रत्येक बर्ताव से मर्माहत हो जाती है। वह एक पुराने कवि की तरह कह उठती है:—

I grant I am a woman, but withal
A woman that Lord Brutus took to wife;
I grant I am a woman, but withal
A woman well-reputed, Cato's daughter

किन्तु यदि मैं स्त्री होता तो एक क्षण के लिए भी पुरुषों के रिश्ते में अपने मूल्य को न आंकना फिर चाहे वह पुरुष मेरा पिता होता या पति होता मैं अपने को इसलिए राजकुमारी कहने से इन्कार करता क्योंकि मेरा पिता एक राजा है और महारानी कहाने से भी बाज़ आता चूंकि मेरा पति कोई महाराजा है। मैं पुरुष वर्ग के उस सनातन षड़यन्त्र को चुनौती देता जिसके अनुसार पिता से पुत्र को विरासत में वह भावना प्राप्त होती है जिससे स्त्री निम्नस्तर की जीव समझी जाती है और उसका व्यक्तित्व पुरुष के व्यक्तित्व के अन्तर्गत आंका जाता है। वह किसी 'मिस्टर पुरुष' की 'मिसेज़' बन जाती है या किसी 'सर एडम' की 'लेडी' हो जाती है।

सबसे पहिले मैं अपने स्त्री वर्ग के विरुद्ध ही जेहाद बोलता जो अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन और अखिल भारतवर्षीय महिला सम्मेलन के जलसों में इकट्ठा होकर स्त्रियों के लिए समानता की माँग करतीं हैं और यह पत्नियों के अधिकारों की घोषणा करतीं हैं। मैं इन लोगों को पुरुषों का पंचमांगी समझता हूँ। यह लोग स्त्रियों के महत्तर पद को पुरुषों की श्रेणी में लाकर रखना चाहती हैं जब कि जीव विज्ञान शास्त्र इस बात की दुहाई देता है कि शारीरिक दृष्टि से स्त्री पुरुष की अपेक्षा श्रेष्ठ है। मैं महिला जाति को आदेश देता कि वे अपने नाम के आगे से राजकुमारी, मिस, मिसेज़ या लेडी के पूर्व-सम्बोधन निकाल दें और अपने नामों के बाद लगे हुए सर-नाम जैसे कौर, पंडित, नायडू, राय, या रामाराव आदि शब्दों को भी निकाल दें। क्योंकि यह इसबात की घोषणा करते हैं कि यह महिला अमुक पुरुष पर बेटी अथवा पत्नी के रूप में निर्भर करती है। यदि ईश्वर की यह मंशा होती कि स्त्री पुरुष की दुमछल्ला बन जाय तो वह हौव्वा को हौव्वा का नाम न देकर 'मिसेज़ आदम' कहता। जितने भी धार्मिक ग्रन्थ और पुराण आदि हैं उन सब में स्त्रियों के नाम और उनके व्यक्तित्व पुरुष के व्यक्तित्व से अलग रक्खे गये हैं और उनके कर्तव्य भी अलग निश्चित किये गये हैं। जैसे—लक्ष्मी, गौरा, सरस्वती, दुर्गा, चण्डी, अन्नपूर्णा आदि। लक्ष्मी और पार्वती यद्यपि विष्णु और शिव की पत्नियां थीं लेकिन उनके व्यक्तित्व अपने पतियों के महान व्यक्तित्वों में नहीं खो पाए। सीता और सावित्री का व्यक्तित्व भी राम और सत्यवान के व्यक्तित्व से अलग ही रहा। ट्राय की हेलेन हेलेन कहलाती है, वह मिसेज़ मैनेलोस नहीं कहलाती। सुभद्रा और दमयन्ती अपने ही नामों से याद की जाती हैं और पुराणों में कहीं भी उन्हें 'मिसेज़ अर्जुन' या 'मिसेज़ नल' के नाम से नहीं पुकारा गया। इस सबसे स्पष्ट है कि पौराणिक युग की अपेक्षा आज की महिला अपने अधिकार को बिल्कुल भूल बैठी है। वह 'मिसेज़ अमुक अमुक' कहलाने में अपना गौरव समझती है।

दूसरी बात जो मैं करूँगा वह यह होगी कि मैं अपने गवर्नर जनरल, प्राइम मिनिस्टर, गवर्नरों और दूसरे

नेताओं से यह प्रार्थना करूँगा कि वे दया करके स्त्रियों को ऐसे उपदेश देना बन्द कर दें जिनमें बार बार यह बताया जाता है कि वे अच्छी पत्नियां, बेटियां और माएँ बनें और उनसे कहा जाता है कि वे सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में और अधिक भाग लें। स्त्री की हैसियत से मैं इसमें अपना अपमान समझता कि कोई पुरुष मुझे स्त्री के कर्तव्यों की बात बताएँ। पुरुष की यह सरासर धृष्टता है। क्या यह सत्य नहीं है कि यदि स्त्री अपने कर्तव्य न जानती और ईमानदारी के साथ उनका पालन न करती तो आज मानव जाति का अस्तित्व सुरक्षित न होता। ऐसी धृष्टता तो स्वयं ईश्वर ने भी नहीं की थी। जब उसने हौव्वा को बनाया था तो उसे उसके कर्तव्यों के बारे में ईश्वर ने कोई लेक्चर नहीं दिया था। वह उसे जानती थी और उसने उस पर अमल किया। यदि आपने सृष्टि की कहानी पढ़ी है तो आपको पता होगा कि आदमी निरा मूर्ख था और जब ईश्वर को अपनी भूल मालूम हुई तो उसने स्त्री को बनाकर उसका पुरश्चरण किया तभी तो मिल्टन ने कहा है :—

> Woman !
> O fairest of creation ! last and best
> Of all God's works ! Creature in whom excell'd
> Whatever can to sight or thought be formed.
> Holy, divine, good, amiable and sweet

इस सम्बन्ध में कदाचित एलेक्ज़न्डर पोप ने और भी सुन्दर भावनाओं को व्यक्त किया है। वह लिखता है : —

> Our grandsire, ere of Eve possess'd,
> Alone and e'en in Paradise unblest
> With mournful looks the blissful scenes survey'd,
> And wandered in the solitary shade
> The Maker saw, took pity, and bestow'd
> Woman, the last, the best reserv'd of God.

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री यदि परमात्मा की सर्वोत्तम कृति है तो किसी पुरुष को उसे उपदेश देने का क्या अधिकार, फिर चाहे वह गवर्नर या प्राइम मिनिस्टर ही क्यों न हो। सच तो यह है कि यह उपदेश उस बृहत् षड़यन्त्र का एक अंग है जिसके अनुसार पुरुष स्त्री को न्यून स्थिति में रखना चाहते हैं। यह समाचार किसी दिन भी समाचार पत्रों में प्रकाशित नहीं हुआ कि गवर्नर जनरल या प्राइम मिनिस्टर या किसी गवर्नर ने पुरुषों को यह उपदेश दिया हो कि तुम लोगों को अच्छे पति या पिता बनना चाहिए। अफ़सोस तो यह है कि हमारी महिला गवर्नर ने भी इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा।

मैं किसी के सामने भी यह कहने को तैयार हूँ कि जीव विज्ञान की दृष्टि से नारी पुरुष की अपेक्षा श्रेष्ठतर कृति है और उसकी श्रेष्ठता किसी भी अंश में कम नहीं हुई है। मैं पुरुष की समस्त जाति को चुनौती दूँगा कि उनमें से कौन अपने जीवन में कभी न कभी स्त्री के प्रति विनम्र होकर आकर्षित नहीं हुआ और किस पुरुष ने किसी न किसी स्त्री की पूजा और सराहना नहीं की। सीज़र और मार्क एन्थनी दोनों ने क्या क्लिओपेट्रा के आगे सर नहीं झुकाया? नेपोलियन और हिटलर जैसे विजेताओं ने भी जोशेफ़ाइन और ईवा ब्राउन के आगे घुटने टेक दिए थे। पं० नेहरू ने भी अपनी कमला के लिए आंसू बहाए और राजा जी तथा सरदार पटेल ने भी अपनी मृत पत्नियों के शोक में कई क्षण गुज़ारे। गान्धीजी तक कस्तूरबा से भयभीत रहते थे। न केवल राष्ट्रीय नेताओं के जीवन में बल्कि साधारण गृहस्थ के घर में भी स्त्री रानी की तरह आदेश देती है और पुरुष उसके आदेश को सम्पादन करने के लिए एड़ी का पसीना चोटी तक बहाता है। बर्बर पुरुष युद्ध, शासन-संचालन जैसे निकृष्ट कार्य करता है। हत्या और रक्तपात जैसे घृणित कार्य पुरुष को ही अभीष्ट हैं। इसलिए पुरुष के कार्य की चाहना करना यानी युद्ध-क्षेत्र में हिंसा करना, कारख़ाने में खटना और खेतों में परिश्रम करना स्त्रियोचित गौरव से अपने को नीचे गिराना है। यह स्त्रियों के योग्य नहीं। मैं इसकी अनुमति नहीं दूँगा और न पुरुष वर्ग को स्त्रियों के बीच में उपदेश देने दूँगा। जीव विज्ञान की

दृष्टि से विश्व सृजन में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का पद अधिक महत्वपूर्ण है। स्त्री का कर्तव्य है कि सृष्टि चलती रहे और पुरुष का कर्तव्य है कि वह सृष्टि अच्छी तरह चलाता रहे। स्त्रियों ने अब तक अपना कर्तव्य किया। मानव जाति के अस्तित्व को बचाए रक्खा, उसकी उन्नति की ओर उन्नति के कर्म को भी जारी रक्खा। इसके विपरीत पुरुष ने अपनी मूर्खता और हठधर्मी से सृष्टि को निस्तेज और निरवंश करने का प्रयत्न किया।

यदि मैं स्त्री होता तो मैं पुरुषों को चेतावनी देता कि यदि वह अपने को स्त्रियों के योग्य नहीं बनाते तो उनका विनाश कर दिया जायगा। पुरुषों को इस बात का अभिशाप दिया गया था कि वह पसीना बहाकर अपनी रोटी कमाएँ किन्तु स्त्री को यह अभिशाप नहीं मिला। वह चूंकि उच्च वर्ग की प्राणी है इसलिए उसे परिश्रम करके नारी जैसे ऊंचे दर्जे के प्राणियों की सेवा करना ही होगा किन्तु अब आज इस बात का षड़यन्त्र हो रहा है कि नारी को भी घसीटकर पुरुषों के समक्ष खड़ा कर दिया जाय और अफ़सोस इस बात का है कि बहुत सी स्त्रियां पुरुषों के जाल में फँसकर स्त्रियों के दर्जे को निकृष्ट बनाने में लगी हैं। वे भी पुरुषों की श्रेणी में आना चाहती हैं। यदि मैं स्त्री होता तो मैंने पुरुषों का यह षड़यन्त्र विफल कर दिया होता और ईश्वर की दी हुई अपनी श्रेष्ठता को पुरुषों के ऊपर कायम रखता।

नया साहित्य

<u>महादेव भाई की डायरी</u> (भाग १) १०-३-३२ से ४-६-३२ तक जब महादेव भाई गांधी जी के साथ यरवदा जेल में थे तबकी यह डायरी है, प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद। पृष्ठ संख्या ४०४ और मूल्य है ५) रु०।

श्री नरहरि परीख पुस्तक के परिचय में लिखते हैं—"महादेव भाई सन् १९१७ के आखिरी हिस्से में गांधी जी के साथ हुए तब से सन् ११४२ में उनका देहान्त होने तक उन्होंने अपनी डायरी लिखी है...गांधी जी के पत्र व्यवहार को, उनके भाषणों को, व्यक्तियों के साथ कई महत्व की मुलाकातों को और बात चीतों को तथा इसी तरह चालू घटनाओं पर और विविध विषयों पर उनके विचारों और उद्‌गारों को वे नोट कर लेते थे...गांधी जी के जीवन चरित्र के बारे में महादेव भाई की इच्छा सवाया बासवेल बनने की थी। उनकी यह इच्छा पूरी करना तो भगवान को मंजूर नहीं था, लेकिन उन्होंने जो सामग्री जमा की थी उस पर से पाठक देख सकेंगे कि अपनी इच्छा पूरी करने के लिये उन्होंने तैयारी करने में किसी तरह की कसर नहीं रक्खी थी।

'नव जीवन' और 'यंग इन्डिया' में और बाद में 'हरिजन' में महादेव भाई अपनी डायरी में से समय समय पर प्रकाशित करने लायक सामग्री प्रकाशित करते रहते थे और इस तरह गांधी जी के जीवन चरित्र के लिये उन्होंने काफी मसाला तो प्रकाशित कर ही दिया है। फिर भी कितनी ही मूल्यवान सामग्री अप्रकाशित रह गई है। अब गांधी जी हमारे बीच में नहीं रहे इसलिये नव जीवन ट्रस्ट ने जितनी भी जल्दी हो सके यह सामग्री जनता के सामने रख देने का फैसला किया है। इस सारी सामग्री पर से गांधी जी का वस्तुत और अधिकृत जीवन चरित्र तैयार करने का काम...भाई प्यारे लाल को सौंपा है या यह भी कहा जा सकता है कि भाई प्यारे लाल ने अपने अति प्रिय कर्तव्य के रूप में उसे अपने हाथ में ले लिया है।

"महादेव भाई की डायरियां गांधी जी के जीवन चरित्र के लिये कच्चा किन्तु बहुत ही महत्व का मसाला है। मगर कच्चे मसाले के अलावा मानव जाति को प्रेरणा देने वाले और मनुष्य जीवन को बनाने वाले बहुत उपयोगी और चिरजीवी साहित्य के रूप में इन डायरियों का स्वतंत्र महत्व भी है। गांधी जी की जीवन कला के सिवाय इन डायरियों में महादेव भाई का स्वभाव उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा, उनका भक्ति-भाव से भरा हुआ हृदय और कई विषयों में उनकी दिलचस्पी ये सब भी प्रगट होते हैं। सार यह है कि महादेव भाई की आत्मा यहां अक्षर-देह धारण करती है और हमें कई तरफ से नजदीक से देखने को मिलती है।"

"इस डायरी के मुख्य पात्र ३ हैं--गांधी जी, सरदार पटेल और महादेव भाई। जेल के कर्मचारियों, डाक्टरों, खिदमतगारों का भी जिक्र बीच बीच में आता है, मगर वे गौण पात्र हैं- । यों तो गांधी जी का सारा जीवन ही बिल्कुल खुला था। निजी और खानगी मानी जानी वाली बातें दुनिया जितनी उनकी जानती होगी इतनी शायद ही और किसी नेता की जानती होगी। फिर भी गांधी जी की बहुत सी जानने लायक बातें अभी तक जनता के सामने नहीं आई हैं। इस डायरी में उनकी बाहर न आई हुई खासियतें, जीवन-प्रसङ्ग, तथा व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले बहुत से महत्व के विषयों पर गांधीजी के विचार उनकी बातचीतों और पत्रों के जरिये पाठकों को जानने को मिलते हैं।

"चूंकि मुख्यतः गांधीजी के नेतृत्व में ही हमारे देश ने ब्रिटिश सरकार की नागफांस से छूटने का सफल प्रयत्न किया इसलिए गांधीजी का राजनैतिक महत्व बहुत है। बहुत लोग तो उन्हें बड़े राजनैतिक नेता के ही रूप में ही मानते हैं। मगर राजनीति गांधीजी का मुख्य या महत्व का विषय नहीं था। उनके जीवन में और उनकी सारी प्रवृत्ति में वह तो एक छोटा सा कोना ही घेरती है। सत्य की उपासना और सत्य का साक्षात् कार्य उनके जीवन का प्रधान या एकमात्र उद्देश्य था। सामाजिक या राजनैतिक वगैरह उनके तमाम काम सत्य की खोज के सिलसिले में साधन थे। उनकी अहिंसा भी सत्य के साक्षात् कार्य के लिए थी। सत्य को ही वे ईश्वर मानते थे। परमात्मा के सूचक के रूप में 'ईश्वर' से 'सत्य' शब्द ज्यादा अच्छा है। ज्यादा समझ में और ज्यादा अमल में आने लायक है, यह बात उन्होंने बहुत से पत्रों

में विस्तार से समझाई है। कितनी ही विद्वता हो, कितनी ही होशियारी हो और कितनी ही बुद्धिमत्ता हो तो भी सत्यमय जीवन के बिना सब फिजूल है, यह उन्होंने ठोक ठोककर कहा है। उनके अपने जीवन में बुद्धि से उन्होंने अक्सर कहा है कि वे मन्द बुद्धि हैं—चरित्र की निर्मलता का कहीं ज्यादा हाथ रहा है। शुद्ध चरित्रवाले सत्य के पुजारी को मौका पड़ने पर आवश्यक बुद्धि भगवान् दे ही देते हैं, यह श्रद्धा उन्होंने कई बार प्रकट की है।... निजी और सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले तमाम प्रश्नों में गांधीजी सत्य की खोज के लिए कोशिश करते थे और इसीलिए ये तमाम प्रश्न उनकी प्रवृत्ति के विषय बनते थे। इन सब सवालों पर सत्य और अहिंसा की दृष्टि से जब जब मौका मिलता था या जरूरत होती थी, गांधीजी अपने विचार प्रकट करते थे। इस डायरी में हमें ये विचार बातचीत और पत्र व्यवहार के जरिये जानने को मिलते हैं। उसमें दिल की दिल से बातें हुई हैं, इस कारण ये विचार और उद्गार हमें ज्यादा सीधे और घनिष्ट रूप में मिले हैं। आजकल साम्प्रदायिक सवाल और छूतपन व जात-पांत के भेदों के सवाल का सबसे प्रमुख स्थान है इसलिए इन पर इस पुस्तक में मिलनेवाले गांधीजी के उद्गार खास ध्यान खींचते हैं।"

हम इस प्रस्तावना से पूर्णतया सहमत हैं। महादेव भाई की डायरी का प्रत्येक उल्लेख गांधीजी के जीवन चरित्र पर नया प्रकाश डालता है अगले अङ्क में हम विस्तार के साथ इस डायरी के उद्धरण देंगे। यहां हम सिर्फ इतना ही कहना चाहते हैं कि नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद ने इस दिशा में यह कदम उठाकर विश्व-साहित्य की अनमोल वृद्धि की है।

गांधी साहित्य सूचि (A Bibliography of Gandhian Literature) संयोजक श्री पांडुरङ्ग गणेश देश पांडे; प्रकाशक श्री नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृष्ठ संख्या २३९; मूल्य सवा तीन रुपया।

इस ग्रन्थ के संयोजक महोदय ने गांधी साहित्य सूची तैयार करके साहित्य की एक बहुत बड़ी कमी को पूरा किया है। इस संस्करण में हिन्दुस्तानी भाषाओं में से हिन्दी, गुजराती, मराठी, बङ्गला, उर्दू, कन्नड़, संस्कृत, और सिन्धी तथा अङ्गरेजी की अब तक की सब किताबें दर्ज करने की पूरी कोशिश की गई है। इसमें गान्धीजी की अपनी प्रकाशित पुस्तकें तो हैं ही साथ ही इसमें ऐसी पुस्तकें भी दी गई हैं जिनसे उनके व्यक्तित्व, जीवन, कार्य, और तत्त्वज्ञान को समझने में सहायता मिलती है। इस तरह पाठक देखेंगे कि टाल्सटाय, रस्किन, थोरो, श्रीमद् राजचन्द्र वगैरह लेखकों की पुस्तकें इसमें हैं। देश की आज़ादी के आन्दोलन और उसकी वर्तमान समस्याओं सम्बन्धी पुस्तकें भी इसमें शामिल की गई हैं। राष्ट्रीय महासभा, गान्धी सेवा संघ और इस प्रकार की अन्य संस्थाओं की रिपोर्टें, इण्डियन एन्युअल रजिस्टर और इण्डिया जैसे वार्षिक और दूसरे कुछ सामयिक ग्रन्थ भी इसमें लिये गये हैं। पुस्तकें भाषावार दी गई हैं और उनका वर्गीकरण इस तरह से किया गया है (१) गांधी चरित्र, (२) सत्याग्रह, अहिंसा, गांधीवाद इत्यादि (२ अ) सत्याग्रहों का इतिहास, (३) धर्म और नीति, (४) समाज विषयक प्रश्न (सामान्य), (४ अ) अस्पृश्यता निवारण, (४ आ) कौमी एकता, (५) राजनीति, (६) अर्थशास्त्र (६ अ) खादी, (६ आ) ग्रामोद्योग, (७) शिक्षण, (८) राष्ट्रभाषा, (९) आरोग्य, (१०) साहित्य, (११) आधुनिक इतिहास, (१२) सामयिक और संग्रह।

संयोजक महोदय अन्त में लिखते हैं—"हमें विश्वास है कि गान्धीजी जैसे महापुरुष के जीवन और कार्य से सम्बन्ध रखनेवाली यह सूची प्रकाशित करके हम एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति कर रहे हैं। इससे हमारी सिर्फ इतनी ही उम्मीद है कि जो शान्ति, प्रेम और मेलजोल का सन्देश लेकर आये थे, उनके साहित्य के अभ्यासियों के लिये यह सूची बहुत काम की साबित होगी। और साथ ही उनमें उन्हीं उसूलों की प्रेरणा होगी जिनके लिये गान्धीजी जिये और मरे।"

हमें विश्वास है संयोजक की यह कामना सफल साबित होगी और गान्धी साहित्य के प्रेमी इससे समुचित लाभ उठायेंगे।

सौन्दरनन्द काव्य—सम्पादक और अनुवादक श्री सूर्यनारायण चौधरी; मूल्य तीन रुपया; पृष्ठ संख्या २८७।

'सौन्दरनन्द' प्रख्यात बौद्ध दार्शनिक अश्वघोष की रचना है। उनके दो दूसरे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शारिपुत्र-प्रकरण' और 'बुद्ध चरित' हैं। अनुवादक के अनुसार सौन्दरनन्द

ग्रन्थ की दो ही प्राचीन हस्तलिखित प्रतियां दूषित तथा बुरी दशा में नैपाल महाराज के पुस्तकालय में उपलब्ध हैं। इसे पहले पहल स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री हरप्रसाद शास्त्री ने संशोधित तथा सम्पादित करके सन् १६१० में प्रकाशित कराया।

सिद्धार्थ और नन्द मौसेरे और सौतेले भाई थे किन्तु दोनों विपरीत प्रकृति के थे। सिद्धार्थ जिज्ञासु और तपस्वी थे और उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया जब कि नन्द संसारी और कामासक्त थे। नन्द का उद्धार करने के लिये बुद्ध एवं आनन्द आदि उनके शिष्यों को जो परिश्रम करना पड़ा उसी का वर्णन इस सौन्दरनन्द काव्य में दर्ज है। समस्त पुस्तक १८ सर्गों में बँटी हुई है। भाषा, भाव, अलङ्कार, उपमा आदि की दृष्टि से पुस्तक अत्यन्त प्रवाहमयी, ओजमयी और प्रौढ़ रचना है। यद्यपि अनुवाद की भाषा में वह लालित्य नहीं आ पाया है फिर भी हम श्री चौधरी के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हिन्दी में इस ग्रन्थ को पाठकों के लिये उपलब्ध किया।

शेर ओ शायरी—सम्पादक श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय; प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ काशी; मूल्य आठ रुपया और पृष्ठ संख्या ६१६।

पुस्तक दस भागों में बँटी हुई है। पहले भाग उद्गम शीर्षक में उर्दू शायरी का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसके अन्तर्गत अमीर खुसरो, कबीर, जायसी, रहीम आदि के उद्धरण और ऊपर टिप्पणियां हैं। उर्दू गद्य और पद्य के विविध अंगों की परिभाषाएँ हैं और वली के संक्षिप्त उद्धरण हैं। दूसरे भाग 'तरङ्ग', को उर्दू शायरी का मर्म कहकर बयान किया गया है। इसमें उर्दू शायरी में व्यवहरित होनेवाले अलङ्कारों और उपमाओं पर प्रकाश डाला गया है। जैसे गुलशन, चमन, गुल, बुलबुल, आशियां, कफ़स, बांगबां, गुलचीं, सय्याद, मयखाना, इश्क, आशिक, माशूक और उनके विविध रूपरंग और हावभाव का वर्णन किया गया है। इसी के अन्तर्गत लैला-मजनूं, जुलेखा-यूसुफ, शीरी-फरहाद आदि का भी अति संक्षेप उल्लेख है। तीसरा भाग उद्‌घाटन शीर्षक है। इसमें उर्दू शायरी का विकाश, उर्दू शायरी के पोषक और ग़ज़ल के बादशाह मीर और दर्द की संक्षिप्त चर्चा है। चौथे भाग में प्रसिद्ध जनकवि नज़ीर अकबराबादी की रचनाओं के नमूने दिये गये हैं। पांचवां भाग ज्योत्स्ना शीर्षक है। इसमें उर्दू कविता के अमर कलाकार ज़ौक, ग़ालिब, मोमिन, अमीर मीनाई और दाग़ की कविताएं उद्धृत की गई हैं। छठवाँ भाग १६५७ के बाद की स्थिति का झांकी दिखाता है। इसमें आज़ाद, हाली, अकबर, इकबाल, और चकबस्त की नवजागरण से भरी हुई शायरी के कुछ नमूने दिये गये हैं। सातवें भाग में जोश मलीहाबादी, सीमाब अकबराबादी, अहसानबिन दानिश, बर्क़ देहलवी की राजनैतिक चेतना से भरी हुई नज्में दी गई हैं। आठवें भाग का शीर्षक है 'सफल प्रयास'। इसमें सरल भाषा में लिखे हुये हफ़ीज़ जालंधरी, सागर निजामी, अख्तर सीरानी और अर्श मल्सियानी के गीत उद्धृत किये गये हैं। नौवें भाग को 'प्रगतिशील युग' शीर्षक दिया गया है। इसमें फ़ैज़, मजाज़, जज्बी, साहिर लुधियानवी की नज्मों के नमूने दिये गये हैं। दसवें भाग को अतीत युग की ग़जल के वर्तमान समर्थ शायर के नमूने लेकर 'मधुर प्रवाह' नाम दिया गया है। इसमें साकिब लखनवी हसरत मोहानी फानी बदायूनी, असगर गोंडवी, जिगर मुरादाबादी, और फिराक गोरखपुरी की ग़ज़लों के चन्द अशआर दिये गये हैं।

इस तरह इस पुस्तक में अति संक्षेप में उर्दू शायरी की आत्मा को चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है। श्री गोयलीय जी ने बहुत बड़ा काम हाथ में लिया और उस पर काफ़ी परिश्रम किया। उनके परिश्रम पर हमें रश्क आता है किन्तु कहीं कहीं वे अपने अनुशीलन और अन्वेषण के क्षेत्र से हटकर भावना प्रवाह में बह गये हैं और तभी कहीं-कहीं पुस्तक से उर्दू शायरी की आत्मा लुप्त हो जाती है और उसका निर्जीव शरीर सामने आ जाता है और तब लगता है कि गोयलीय उर्दू शायरी की कब्र पर फातिहा पढ़ रहे हैं।

उर्दू शायरी फारसी पृष्ठभूमि को लेकर पनपी और बड़ी हुई। अलंकार, मोहावरे, उपमाएँ, सब उसी पृष्ठ भूमि से ली गई हैं वह युग ही ऐसा था और दरबार ही ऐसे थे किंतु उस पूरी शायरा के अंदर से उर्दू शायरी की आत्मा तड़पती है और भारतीय अध्यात्म के कदमों पर लोट-पोट होती है। वह धार्मिक बंधनों को तोड़ती है।

इस्लाम और कुफ्र में संतुलन रखती है, प्रेम की मदिरा पीती है और इश्क हकीकी की लय में झूमकर भारतीय आत्मा में लोप हो जाती है। उसका रोम रोम संतुलन की पुकार करता है। रूढ़ियों में कसी हुई उसकी आत्मा चीत्कार करती है व कर्म कांडों के बंधनों को तोड़ती फोड़ती आज़ादी की रवानी के साथ आगे बढ़ती है। वह बुत शिकन नहीं, बुत की पुजारिन बन जाती है। वह कृष्ण और राधा के गीत गाती है और प्रेम के आंचल से इस्लामी पसीने में लथपथ भारतीयता पर बादे-बहारी की हवा करती है। वह पूरी कविता है। उसकी एक बढ़न है, एक उठान है, एक प्रगति है, और एक पतन है। वह ठीक अपने समय के हिंदी कवियों का अक्स खींचती है। यदि उर्दू कविता में विलास और जुदाई के गीत हैं तो हिंदी कविता में भी शृंगार, नखशिख और विरह का वर्णन है। कौन अच्छी और कौन बुरी सब अपने अपने युग की प्रतिध्वनि हैं। यदि उत्थान है तो दोनों में है और गिरावट है तो दोनों में है। उर्दू भारत माता की बांदी बनकर उसकी सतत सेवा में रम जाती है। हाली, चकबस्त, जोश, और दूसरे शायर इन्कलाब के लौह तराने लिखते हैं और प्रणय के नहीं, प्रलय के गीत गाते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में पचासों कवियों के उद्धरण हैं अच्छी अच्छी नज्में हैं, सलोने भाव हैं, किन्तु यदि कोई अभाव है तो वह यही कि उर्दू की भारतीय आत्मा के रूप के दर्शन हमें इस पुस्तक में नहीं मिलते और उसी अंश तक इस पुस्तक का महत्व घट जाता है। वैसे छपाई, सफाई अच्छी है और आठ रुपए दाम भी इसे मामूली हाथों में जाने से रोक लेंगे।

__पनघट__—(चौदह कहानियों का संग्रह) प्रकाशक वोरा एण्ड कम्पनी लिमिटेड ३ राउन्ड बिल्डिंग बम्बई २; मूल्य है साढ़े तीन रुपया और पृष्ठ संख्या है २३५; और लेखक हैं हिन्दुस्तानी के प्रख्यात हामी श्री सुदर्शन।

पुस्तक में चौदह कहानियां हैं— काव्य कल्पना, चित्रकार, सूरदास, प्रताप के पत्र, खराखोटा, बाप का हृदय, मास्टर आत्माराम, सायकिल की सवारी, दो परमेश्वर, मज़दूर, कीर्ति का मार्ग, धर्म की वेदी पर, जीवन और मृत्यु और हेर फेर।

यह इस संग्रह का तीसरा संस्करण है और इसकी लगभग सभी कहानियां वर्षों पूर्व विविध पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं और बड़े शौक से पढ़ी गई हैं। श्री सुदर्शन जी की कहानियों में मानव जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं को मानवीय दृष्टिकोण से पेश किया गया है और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सभी कहानियों में उन्हें सफलता प्राप्त हुई है। हम इस बात से सहमत हैं कि श्री सुदर्शन ने कहानियों की दुनिया में एक नया रास्ता खोल दिया है। श्री सुदर्शन जी की भाषा में एक लालित्य है, उसकी गति में प्रवाह है, उनकी उपमाएं हृदय को छूती हैं और उनके मुहावरे मन को मोह लेते हैं। प्रस्तुत संग्रह की सभी कहानियाँ निस्संदेह सफल कहानियाँ हैं।

सम्पादकीय

कांग्रेस अधिवेशन

गत १८ और १९ दिसम्बर को जयपुर में कांग्रेस का ५५ वां अधिवेशन समाप्त हुआ। इस अधिवेशन की विशेषता यह थी कि यह स्वतन्त्र भारत का पहला कांग्रेस अधिवेशन था और शायद इसीलिये इसे बहुत बड़े पैमाने पर शान-शौकत के साथ करने का आयोजन किया गया। कहा जाता है कि लगभग ६० लाख रुपया इस अधिवेशन में खर्च किया गया। ग्यारह लाख रुपये की टिन की चादरें खरीदी गईं। साठ हजार बिजली के बल्ब लगाये गये। आठ लाख रुपया सड़कों और रोशनी पर खर्च किया गया। पानी के नये पाइप लगाये गये और मीलों लम्बे चौड़े रेगिस्तान में गांधी नगर बसाया गया। नेताओं के लिये सैकड़ों तम्बू लगाये गये जिनमें से लगभग आधे खाली पड़े रहे। खुले अधिवेशन का घेरा २०० फुट ऊँची पहाड़ी को समतल करके बनाया गया जिसमें सोलह बुलडोज़र चार महीने तक बराबर करने का काम करते रहे। किन्तु अधिवेशन का जो घेरा पांच लाख आदमियों के बैठने के लिये बनाया गया था उसमें मुश्किल से अस्सी हज़ार आदमी आकर बैठे। यद्यपि साठ हज़ार बल्ब रोशनी के लिये लगाये गये थे किन्तु पायखाने और स्नानघरों में रोशनी का कोई प्रबन्ध न था। खाने और परसने का प्रबन्ध निकम्मेपन की चरमसीमा पर पहुँच गया था। यदि आपके पास दो घण्टे का समय बरबाद करने के लिए था तो आप एक बार भोजन कर सकते थे।

स्वयंसेवकों के बारे में कुछ न कहना ही अच्छा है। उनकी संख्या १० हज़ार के लगभग थी। किन्तु उन्हें भीड़ ही कहना ज्यादा मौजू है। न उनमें किसी प्रकार का अनुशासन था और न किसी तरह की सेवाभावना। यदि किसी व्यक्ति का उन पर सबसे कम प्रभाव था तो वह थे श्री जयनारायण व्यास जो उनके जी० ओ० सी० थे। हम यह नहीं कहते कि सब स्वयंसेवक अनुशासनहीन और उद्दण्ड थे किन्तु काफी संख्या में ऐसे थे। हमें उनके एक अधिकारी ने बताया कि जोधपुर से अनेक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य कांग्रेस स्वयंसेवक बनकर वहां आये थे और हर जगह कुछ न कुछ झगड़ा फसाद खड़ा करने की योजना बनाते रहते थे।

कहा जाता है कि लगभग ४० हज़ार बोरे सीमेंट भी स्वागत समिति ने प्राप्त की। इतनी सीमेंट कहां लगी यह तो स्वागत समिति वाले ही बता सकते हैं। पेट्रोल का खर्चा भी औसत से दो हज़ार गैलन रोज़ था। सैकड़ों कारों और गाड़ियों का प्रबन्ध भारत सरकार ने किया था। किन्तु प्रबन्ध की खूबी यह थी कि जब भारत सरकार के प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहर लाल हवाई अड्डे पर उतरे तो उन्हें पचपन मिनिट तक केवल इसलिए प्रतीक्षा करनी पड़ी कि हवाई अड्डे पर एक भी मोटर न थी कि जिस पर बैठकर वे शहर आते।

माना कि राजस्थान के कार्यकर्त्ता ताजे और अनुभवहीन थे किन्तु क्या उन्होंने पड़ोसी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों से सुयोग्य कार्यकर्त्ताओं के लिए सहायता की मांग की ? यदि नहीं तो गरीब देश के धन और परिश्रम को अपनी अनुभवहीनता से नष्ट करने का उन्हें यह अधिकार कैसे मिला ? यह भी सही है कि कांग्रेस बहुत भारी भरकम हो गई है किन्तु जब देश पर तरह तरह के संकटों के बादल छाए हैं तो अपनी एकमात्र राष्ट्रीय संस्था को मेला और तमाशा बना देना कहा की बुद्धिमत्ता है। अभी आगे कांग्रेस के और भी अधिवेशन होंगे। किन्तु यदि हमने इस अधिवेशन से शिक्षा ग्रहण न की तो व्यर्थ ही दीन देश के धन और परिश्रम का सर्वनाश होता रहेगा। हमारा अनुरोध है कि कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी, स्वागत समिति के कार्य के संबंध में एक जांच कमेटी बैठाये ताकि आगे के अधिवेशनों की स्वागत समितियां सचेत हो जांय और धन का व्यर्थ दुरुपयोग करने से बचें।

कांग्रेस अधिवेशन के प्रस्ताव।

कांग्रेस के अधिवेशन में पन्द्रह प्रस्ताव पास हुए जिनमें गाधीजी के संदेश पर श्रद्धा, विदेशी नीति, हिंद में विदेशी आबादियां, दक्षिण अफ्रीका में भारतीय, इन्डोनीशिया, भारतीय रियासतें, शरणार्थी, साम्प्रदायिकता, मज़दूर, गांधी राष्ट्रीय निधि, आर्थिक कार्यक्रम, कार्यकर्त्ताओं के रहन-सहन का स्तर आदि पर थे। इनमें से संदेश, विदेशी नीति, और हिंद में विदेशी आबादियाँ शीर्षक प्रस्तावों की शब्दावलि निम्नलिखित थी: —

सन्देश

"कई पीढ़ियों के निरन्तर जतन से लड़ी जानेवाली देश की आजादी की लड़ाई में कांग्रेस को अनेक प्रकार

की विफलताओं और सफलताओं, विजयों और पराजयों का मुंह देखना पड़ा। परन्तु राष्ट्रपिता के महान नेतृत्व में उन्हें अनेक कष्टों से जनता को विशुद्ध करने के उपयोग किये गये, प्रत्येक पराजय को फिर से अधिक प्रयत्न करने और अधिक विजय प्राप्त करने का साधन बना लिया गया।

"दो वर्ष पूर्व मेरठ में कांग्रेस ऐसे अवसर पर हुई जो परीक्षा और कठिनाइयों से भरा हुआ था और उस समय भी गांधी जी के प्रोत्साहन से कांग्रेस ने देश को एक मार्ग दिखलाया। इन दो वर्षों में हमने किसी कदर अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लिया और जिस स्वाधीनता के लिये कई पीढ़ियों ने कशमकश की थी, उसे हम पा सके। परन्तु हमें इसकी बहुत भारी कीमत अदा करनी पड़ी, क्योंकि हमारी मातृभूमि के दो टुकड़े हो गये और इस अभाग्य पूर्ण विभाजन के साथ लोगों पर पागलपन सवार हो गया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि वे सब आदर्श जिनके लिये कांग्रेस लड़ती रही थी मानों कि लुप्त हुये जारहे हैं। उस अन्धेरे में गांधीजी के जीवनपूर्ण संदेश ने फिर रोशनी दिखाई और असंख्य दुखी दिलों में उसने शक्ति और सांत्वना प्रदान की।

"उसके बाद वह सबसे कठोर चोट लगी। उस व्यक्ति की हत्या की गई, जो प्रेम तथा हमारे देश की भद्रता और अजेय सद्भावना का पुतला था।

"इस प्रकार उस सफलता ने भी, जिसकी इन्तजार में कांग्रेस ने लगातार संघर्ष किया था और जो सबके सब प्रयत्नों का अन्तिम परिणाम था, हमें आजादी का आशा-पूर्ण प्रकाश नहीं मिला, बल्कि कष्ट और निराशा का ही अनुभव हुआ।

"गांधीजी को प्रतिष्ठा एवं पुण्य स्मृति में और उनकी शिक्षाओं के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिये, देश ने इस खतरनाक संकट का मुकाबला किया, जिसमें से सब से बड़ा संकट था आत्मा का संकट, जिसने हिन्द के मन को धुन्धला कर दिया और गांधीजी ने जो ऊँचा पाठ हमें सिखलाया था वह एक क्षण भर के लिये हमने भुला दिया।

"कांग्रेस का यह अधिवेशन स्वतन्त्रता प्राप्ति के सोलह महीने पश्चात् और जिन बापू ने कांग्रेस को जो रूप दिया और उसमें जीवन का संचार किया उनकी जुदाई के ग्यारह महीने पश्चात् हो रहा है। कांग्रेस उनकी महान आत्मा के प्रति और उनके महान आदेश के प्रति अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करती है और अपना दृढ़ निश्चय प्रगट करती है कि वह हिन्द के लोगों तथा मनुष्यमात्र की सेवा का कार्य गांधीजी के आदेशानुसार जारी रखेगी।

"गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसा के तरीकों से राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने के पश्चात, अब कांग्रेस को सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्न करना है ताकि उन्नति हो और हरएक को बराबर के अवसर मिलें। इस काम के लिये आवश्यक है कि एक नई और रचनात्मक ढङ्ग से मातृभूमि की सेवा की जाय।

"हिन्द के लोगों ने आजादी प्राप्त कर ली है। परन्तु इस आजादी का फल चखने के लिये यह आवश्यक है कि वह अपनी जिम्मेदारियों को अनुभव करें। कांग्रेसियों को याद रखना चाहिये कि अब तक उनका बड़प्पन इस बात में रहा है कि वह जनता की सेवा करें और इन जिम्मेदारियों का बोझ उठायें। जो कांग्रेसी पदों के पीछे या ताकत के पीछे भटकते हैं वह देश के प्रति कुसेवा करते हैं।

"गांधीजी की यह शिक्षा थी कि देश सेवा करने में अन्तरजातीय एकता बढ़ाई जाय और सामाजिक भेद-भावों का और जन्म जाति धर्म इत्यादि के आधार पर कोई भेद न रखा जाय और अहिंसात्मक ढग से सामाजिक भेदभावों के बगैर समाज की रचना की जाय। जो सबक गांधीजी ने विशेष रूप से हमें सिखलाया वह यह था कि नैतिक नियमों का सदा ही हर हालत में पालन किया जाय जो कि सार्थक बनानेवाले हैं।

"कांग्रेस सब कांग्रेसियों से अनुरोध करती है कि वह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का सामना गांधीजी की शिक्षा को ध्यान में रखते हुये करें ताकि हिन्द आजादी में और नैतिक ऊँचाई में उन्नति करे और वह ऊँचा आदर्श जिसके लिये कांग्रेस बनाई गई थी पूरा हो।"

विदेशी नीति

"कांग्रेस जब आजादी की लड़ाई लड़ रही थी तब भी वह अन्य देशों की उन्नति की योजनाओं में और उनकी आजादी की लड़ाई में अपना सहयोग देती रहती थी। हिन्द की स्वतन्त्रता को भी कांग्रेस दुनिया के ...

आजादी का एक अंग ही समझती रही है। खास तौर पर कांग्रेस अब तक यह कोशिश करती रही है कि किसी भी देश पर किसी अन्य देश की हुकूमत न रहे और कांग्रेस ने फासिज्म इत्यादि सब विचारधाराओं का विरोध किया है जो कि मनुष्य की आत्मा को कुचलनेवाली हैं।

"हिन्द जब आजाद हुआ तो हमारे ऊपर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नई जिम्मेदारियां आपड़ीं और दूसरे देशों के साथ सीधे सम्बन्ध बनाना आवश्यक होगया। कांग्रेस इन सम्बन्धों को प्रसन्नता से देखती है और आशा करती है कि इन सम्बन्धों से आपस की मित्रता बढ़ेगी और विश्व-शान्ति पक्की होगी।

"हिन्द की विदेशी नीति का आधार उन्हीं नियमों पर ही होना चाहिये जिन पर कांग्रेस अब तक चलती रही है। यह नियम है विश्वशान्ति, सब देशों का आजादी, सब जातियों की बराबरी और साम्राज्यवाद का नाश। कांग्रेस को एशिया और अफ्रीका के सब देशों की आजादी में खास दिलचस्पी है। यह देश कई पीढ़ियों से भिन्न भिन्न प्रकार के साम्राज्यों से पीड़ित रहे हैं।

"विश्वशान्ति को प्रोत्साहन देने के लिये कांग्रेस यूनाइटेड नेशन्स संस्था में सम्मिलित रही है। कांग्रेस यूनाइटेड नेशन्स के मौलिक नियमों और उसकी घोषणा के साथ अपनी पूर्ण श्रद्धा और सहमति प्रगट करती है।

"हिन्द की विदेशी नीति का सदा यह प्रयत्न होना चाहिये कि सब देशों से मित्रता रक्खी जाय और ऐसे गठजोड़ों से बचा जाय जो भिन्न-भिन्न देशों में एक दूसरे के प्रति विरोध पैदा करते हैं और विश्वशान्ति को खतरे में डालते हैं। हिन्द को चाहिये कि विदेशी नीति और देश की आर्थिक उन्नति के क्षेत्रों में पूर्ण स्वतन्त्रता रखते हुए यूनाइटेड नेशन्स में सम्मिलित रहे और अन्य देशों की विश्वशान्ति और विश्व स्वतंत्रता कायम रखने के कार्य में पूर्ण सहयोग दे।

"अब जब कि हिन्द आजाद हो गया है और हिन्द में प्रजातंत्र राज्य स्थापित हो गया है और हिन्द को अन्य देशों में अपना ठीक स्थान मिल गया है, यह आवश्यक हो गया है कि इंग्लिस्तान के साथ और कामनवेल्थ आफ नेशन्स के अन्य देशों के साथ उसके सम्बन्ध का रूप बदल जाय। हिन्द चाहता है कि ऐसे सब सम्बन्धों को कायम रक्खे यदि वे उसकी अपनी आजादी और काम करने की स्वतन्त्रता में बाधा न डालें। कामनवेल्थ के अन्य देशों के साथ आपस के लाभ और विश्वशान्ति के लिये आपस की मित्रता और सहयोग को यह कांग्रेस प्रसन्नता से देखती है।

"हिन्द को एशिया के अपने पड़ोसी देशों की विशेष चिन्ता है। कांग्रेस आशा करती है कि एशिया के सब देशों की मित्रता और सहयोग की गांठें पक्की की जायगी।"

हिन्द में विदेशी आबादियां

"हिन्द के इतिहास की पिछले दो साल की धूपछाओं में देश के कुछ भागों में कुछ विदेशी आबादियां रह गई हैं। यह विदेशी आबादियां इतने लम्बे समय के लिये इस कारण से रह गई क्योंकि हिन्द स्वयं ही पराधीन था।

"भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर इसके किसी भाग में विदेशी आबादियों का कायम रहना एक अजीब सी बात है और इससे हिन्द की एकता और स्वतन्त्रता का आघात होता है। इस लिये यह आवश्यक हो गया है कि यह आबादियां राजनैतिक तौर पर हिन्द में शामिल कर दी जांय। इसके अतिरिक्त कोई भी बात न पक्की हो सकती है और न ही जनता की इच्छा के अनुसार हो सकती है। कांग्रेस यह आशा करती है कि यह काम अहिंसात्मक तरीके से और शीघ्र हो जायगा और भिन्न भिन्न सरकारों के सहयोग से यह काम सफलतापूर्वक हो जायगा। कांग्रेस को इस बात का ख्याल है कि इस लम्बे समय के अन्दर इन आबादियों में हिन्द से भिन्न प्रकार के शासन, सभ्यताएं, बोलियां, शिक्षा प्रणालियां और पंचायतें इत्यादि चल पड़ी हैं। इसलिये अब परिवर्तन करते हुए इन बातों को ध्यान में रखना जरूरी होगा ताकि इन आबादियों के लोगों के जीवन में कोई गड़बड़ न मचे। कांग्रेस प्रसन्न होगी कि इन आबादियों की विशेष सभ्यता की बातें उन लोगों की इच्छानुसार जारी रहें तथा जहां तक सम्भव हो इन लोगों को इतनी मात्रा में स्वतन्त्रता दी जाय ताकि इन आबादियों के लोग स्वतन्त्र भारत के बड़े दायरे में अपनी सभ्यता को कायम रख सकें।"

अन्य प्रस्ताव

साम्प्रदायिकता के प्रस्ताव पर कांग्रेस की असम्प्रदायिक नीति पर जोर दिया गया है और साम्प्रदायिकता को देश का निर्बल बनाने वाला कहा गया है। प्रस्ताव में यह भी

स्वीकार किया गया है कि बाहरी दबाव के कारण यदा कदा कांग्रेस को भी ऐसे समझौते करने पड़े जिससे देश के राजनैतिक जीवन में साम्प्रदायिक भावना का प्रवेश हुआ। यद्यपि कांग्रेस साम्प्रदायिकता का विरोध करती रही किंतु फिर भी साम्प्रदायिक शक्तियाँ धर्म के नाम पर शक्तिसंचय करती गईं जिसका परिणाम न केवल देश का बटवारा हुआ बल्कि महात्मा गांधी की निर्मम हत्या भी हुई। प्रस्ताव में आगे चलकर यह भी कहा गया कि जिस भीषण अनुभव के बीच से देश को गुजरना पड़ा है उससे यह स्पष्ट होगया है कि साम्प्रदायिकता भारतीय स्वाधीनता की सबसे प्रमुख शत्रु है और इसलिए बड़े कष्टों में पाई हुई स्वाधीनता की रक्षा के हेतु और देश की प्रगति और बढ़ती के लिए ताकि भारतीय जनता इस स्वाधीनता के सुख का समान भाव से उपयोग कर सके यह आवश्यक है कि साम्प्रदायिकता की भावना को कुचल दिया जाय।

प्रस्ताव में जो सब से महत्वपूर्ण बात कही गई वह यह थी कि भारत का अतीत इस बात का साक्षी है कि सहिष्णुता की भावना इस देश के जीवन और संस्कृति की मूलाधार रही है। भारत अनेक धर्मों और जातियों का निवास स्थल रहा है और आगे भी रहेगा। भारत की स्वाधीनता इसी मौलिक एकता पर निर्भर रहेगी कि जिस एकता ने इस देश की समृद्धिपूर्ण और समन्वयात्मक संस्कृति को बढ़ाया है और जिसे आगे भी बढ़ाने का अवसर मिलेगा। इसलिए कांग्रेस का उद्देश्य है कि इस देश को वास्तविक अर्थों में एक जनतांत्रिक धर्म निरपेक्ष राज्य के रूप में बढ़ाया जाय कि जिसमें न तो किसी धर्म विशेष को बढ़ावा दिया जाय और न किसी धर्म विशेष के साथ अन्याय किया जाय। आगे चलकर इस प्रस्ताव में इस बात का दृढ़ निश्चय प्रगट किया गया है कि साम्प्रदायिकता को कदापि पनपने न दिया जायगा, और न धर्म को राजनैतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त करने दिया जायगा, और न उसके द्वारा सामाजिक प्रतिरोध करने दिया जायगा। अंत में देश से इस बात की अपील की गई है कि वह देश की विभिन्न जातियों के बीच सद्भावना, प्रेम संबंध और शांति स्थापना की ज़बर्दस्त कोशिश करे। प्रस्ताव में अंत में इस बात को भी याद दिलाई गई है कि इसी के लिए महात्मा गांधी ने प्रयत्न किया और इसी के लिए उन्होंने अपने अनमोल जीवन का बलिदान कर दिया। और अपने बलिदान से उन्होंने प्रत्येक भारतवासी के लिए और विशेषकर प्रत्येक कांग्रेसजन के लिए एक उदाहरण और एक विरासत छोड़ी है।

मज़दूरों-संबंधी नीति के प्रस्ताव में इस बात का एलान किया गया है कि कांग्रेस सदा से मज़दूर वर्ग के अधिकारों की पुष्टि करती आई है और वह हर प्रकार के शोषण के विरुद्ध है। जब कांग्रेस अपने जीवन और मृत्यु के संग्राम में लगी हुई थी तब भी उसने मज़दूर के हितों—चाहे कारखानों में चाहे खलियानों में—की रक्षा का ध्यान नहीं छोड़ा। अंत में विविध सरकारें मज़दूरों की स्थिति सुधारने के लिए जो प्रयत्न कर रही हैं उस पर प्रसन्नता प्रगट की गई है किंतु साथ ही साथ हड़तालों को देश की इस समय की स्थिति के लिए घातक बताया गया है और उत्पादन बढ़ाने की अपील की गई है। मज़दूरों को लाभ का साझीदार बनाने का भी समर्थन किया गया है।

आर्थिक कार्य क्रम के प्रस्ताव में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की आर्थिक कार्य क्रम समिति के सुझावों को मान्य ठहराया गया है। अंत वाले प्रस्ताव में 'सत्ता पाय काहि मद नाहीं' की ओर कांग्रेस जनों का विशेषरूप से ध्यान दिलाया गया है और इस बात की भर्त्सना की गई है कि कुछ कांग्रेसजन इस सत्ता को अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए उपयोग कर रहे हैं। उनमें स्वार्थ रहित सेवा भावना की कमी की ओर उनका ध्यान दिलाया गया है। उन्हें यह भी याद दिलाया गया है कि गांधी जी के बताए हुए निस्वार्थ सेवापथ और रचनात्मक कार्य-क्रम द्वारा ही देश ने आज़ादी प्राप्त की है और उसी मार्ग पर चल कर कांग्रेस देश की श्रद्धाभाजन बनी है। अंत में देश की इस समय की स्थिति को देखते हुए कांग्रेसजनों से यह अपील की गई है कि वे पुनः रचनात्मक कार्यक्रम और सेवा भाव को अपनाएँ, क्योंकि देश और संसार जिस संकट काल से होकर गुज़र रहा है उसमें इन्हीं दो गुणों की विशेष आवश्यकता है।

गवर्नर जनरल की तनख्वाह

संदेश नामक प्रस्ताव पर बोलते हुए डाक्टर चोइथराम

गिडवानी ने गवर्नर जनरल की लम्बी तनख्वाह की भी चर्चा की। इसका जवाब देते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने गलत फहमी दूर करते हुए कहा, "पहले गवर्नमेंट हाउस चाहे जो कुछ रहा हो लेकिन इस समय वह सरकारी घर है जहाँ भिन्न-भिन्न देशों से आने वाले सरकारी मेहमान रहते हैं। सरकार जो भी दावतें देती है उनका आयोजन भी गवर्नमेंट हाउस में ही किया जाता है। वहाँ प्रतिष्ठित विदेशी मेहमानों का स्वागत किया जाता और उन सब कामों के लिए गवर्नमेंट हाऊस ही मौजूं है। यह ठीक है कि हम किफायत से रहें लेकिन हिन्दुस्तान इतना गया गुज़रा देश नहीं कि वह अपने मेहमानों का स्वागत सत्कार भी न कर सके।

"१५ अगस्त सन् १९४७ से पहले लार्ड माउन्टबेटेन ने लिखा था कि गवर्नमेंट हाऊस बहुत बड़ा है। हमें छोटा मकान रहने को मिले और इस बड़े मकान को किसी मुनासिब काम में लाया जाय। किंतु यदि उस समय हम इस प्रार्थना को स्वीकार करते तो हमारा खर्च बढ़ जाता। क्योंकि मेहमानों के लिए हमें यह मकान तो रखना ही पड़ता। उल्टा नए मकान का खर्चा बढ़ जाता। हमने सोचा इस प्रश्न पर हम बाद में गौर करेंगे। किंतु अगस्त सन् ४७ के बाद का ज़माना उधम, उलट-फेर और झगड़ों का ज़माना था। बाद में हमने एक कमेटी बनाई जो गवर्नमेंट हाउस के उचित उपयोग के बारे में अपनी राय दे। उस कमेटी की भी यही राय निकली कि गवर्नर जनरल के अलग रहने से खर्चा बढ़ जायगा। हमने सोचा हम उस भवन को दूसरे कामों में भी लाएँ। अब वहाँ मंत्रिमंडल का दफ्तर है। तीन अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी वहीं हुए। इस समय वहाँ एशियाई कला की नुमाइश हो रही है। लाखों आदमी उसे देखने के लिए आएं। हम यह भी सोचते हैं कि गवर्नमेंट हाऊस के एक भाग में हम स्थायी अजायबघर बना दें। दिल्ली हमारी राजधानी है, जहाँ एक अच्छा अजायबघर आवश्यक है, और गवर्नमेंट हाउस, जिसके कि कई मील के बरामदे हैं, वहां यह अजायबघर आसानी से आ सकता है।

"इस बात की चर्चा की गई कि गवर्नर जनरल को बीस हज़ार रुपया महीना तनख्वाह मिलती है। किंतु आपको यह मालूम होना चाहिए कि इसमें से १३ हज़ार रुपए इनकम टैक्स में कट जाते हैं। बाकी सात हज़ार में उनके बंधे खर्च हैं जो उन्हें करने ही पड़ते हैं। हमने सोचा कि इतनी ऊँची तनख्वाह नहीं होनी चाहिए। इससे शरह बिगड़ती है। चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचारी ने सरदार पटेल को लिखा कि वह इतनी तनख्वाह नहीं लेना चाहते। लेकिन इसमें जो देर हुई उसमें गफलत हमारी है। कैबिनेट ने यह निश्चय कर लिया है कि गवर्नर जनरल का जो तनख्वाह मिले वह केवल ५५००) रु० हो। इसमें टैक्स काट कर कुछ कम ३०००) रु० पड़ेगा। गवर्नर जनरल को कुछ बहुत आवश्यक खर्च करने पड़ते हैं। दूसरे मुल्कों में यह होता है कि राज के प्रधान की तनख्वाह का टैक्स नहीं लगता। यही हम भी कर सकते हैं। हमारे मौजूदा गवर्नर जनरल, आप सब जानते हैं, बहुत सादा तबियत के आदमी हैं। उन्होंने कहा कि गवर्नमेंट हाउस के बड़े बड़े कमरों में जहाँ एक एक कमरे में सैकड़ों आदमी बैठ सकते हैं वे बिल्कुल खो जाते हैं। बड़े बड़े कमरों से वे घबरा गए और अब उन्होंने अपने रहने के लिए जो छोटे छोटे कमरे चुने हैं वे वे हैं जहाँ पहले गवर्नर जनरलों के खानसामे और अर्दली रहा करते थे। अब वहाँ के बड़े बड़े कमरे भारत सरकार उपयोग में लाएगी।"

छोटी छोटी बातें और बड़े बड़े प्रश्न

साम्प्रदायिकता के प्रस्ताव पर बोलते हुए पण्डित जवाहरलाल जी ने कहा – "हम ऊँची-ऊँची बातें करते हैं और बड़े-बड़े प्रश्नों पर बहस करते हैं किन्तु मुख्य बात यह है कि हम जिन सिद्धान्तों पर चलते हैं क्या वह बुनियादी सिद्धान्त हैं। जब तक गांधीजी जीवित थे वे हमें अपनी ताकत से ले चलते थे। हम छोटे छोटे आदमी थे और ठोकर खाकर गिर पड़ते थे। पर गांधीजी हमें अपनी ताकत से उठाकर फिर ले चलते थे। आज नवयुवकों में बहुत भ्रम है। उन्हें अनुभव नहीं। जब आज़ादी की लड़ाई चल रही थी तब वे बहुत छोटे थे। हमें देखना यह है कि गांधीजी ने जो सिद्धान्त हमें बताए थे क्या हम उन पर चलते हैं। हम महज़ पोशाक, कपड़े और रहन-सहन की तङ्ग ख्याली लेकर चलते हैं। हम उनके बताए हुए बड़े उसूल भूल गए। हमने अपने दिमाग के दरवाजे और खिड़कियां आज बन्द कर

ली है।"

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

"आज राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग सत्याग्रह कर रहे हैं। मैं हैरान हूँ। सत्याग्रह का आधार अहिंसा और सत्य होता है। किन्तु जो हिंसा और घृणा को लेकर चले वह सत्याग्रह नहीं दुराग्रह है। उसकी एक एक बात, एक एक कदम और एक एक पहलू गांधीजी के बताये हुए सिद्धान्तों के विरुद्ध है। मुझे बाहरी दुश्मन का डर नहीं। मुझे पाकिस्तान का डर नहीं बल्कि मुझे डर है अपने ही गलत कदम का। हमारा सबसे बड़ा दुश्मन हमारा ही अपना गलत कदम है। हमारे नौजवानों पर मुल्क को चलाने का बोझ होगा पर उनके दिमाग तङ्ग हो गए हैं। हमारा महान देश भारत क्यों गिरा था? वह इसी तङ्गखयाली से गिरा था। और वही बात आज आर० एस० एस० कर रहा है। आज मुल्क इतना ऊँचा कैसे उठा। हमें गांधीजी ने उठाया तब हम ऊँचे उठे। बापू के विचारों के कारण ही दुनिया में भारत की कद्र हुई। आज हमें देखना है कि हममें और आपमें गांधीजी के पीछे चलने की कितनी ताकत है। तभी तो किसी ने ठीक कहा है कि (इटरनल विजिलेन्स इज़ दि प्राइज आफ लिबर्टी) Eternal vigilence is the prize of liberty. यदि देश गफलत में रहा और कांग्रेसजन गफलत में रहे तो आपसी झगड़ों के खन्दक में कांग्रेस गिर जायगी और यदि कांग्रेस गिरी तो फिर मुल्क गिर जायगा।"

इसी सम्बन्ध में सरदार पटेल ने अपने व्याख्यान में कहा—

"आर० एस० एस० वाले कहते हैं कि हम हिन्दू संस्कृति की रक्षा करेंगे। मैं पूछता हूँ कि आखिर हम लोग क्या हैं? क्या कांग्रेस में करोड़ों हिन्दू नहीं हैं। आपका कौन सा अलहदा हिन्दुत्व है? मैं एक बात स्पष्ट कह देना चाहता हूँ। हमारे देश का जो राष्ट्रीय झण्डा है उसमें कोई परिवर्तन न होगा। जिस झण्डे के लिये लाखों शूर वीरों ने अपना बलिदान किया, जिस झण्डे के आगे ब्रिटिश सत्ता झुक गई, जिस झण्डे को समस्त भारत के देशी राजाओं ने सलामी दी और जो झण्डा आज समुन्दरों के ऊपर लहरा रहा है उस झण्डे को कोई सर पटक कर भी मर जाय तो हम न बदलेंगे। हिन्दुस्तान के दुश्मन आज हिन्दुस्तान के भीतर हैं, बाहर नहीं। जब आर० एस० एस० के गुरु का कैदखाना पूरा हुआ तो उसने मुझे लिखा कि आप हमारे बन्धन हटा दें और हमें मिलने का मौका दें। मैंने प्रतिबन्ध हटा लिए। मैंने गुरुजी से दो घण्टे तक बातें कीं।

मैंने उनके सामने दो शर्त्तें रक्खी—(१) हमारा राष्ट्रीय झंडा सर्वमान्य होकर रहेगा। (२) आप लोग खुला आंदोलन करें। आप अपना विधान बनाएं। साध्य और साधन स्पष्ट करें और तब आपको पूरी स्वतंत्रता रहेगी। लेकिन अगर आप अपना विधान न बनाएंगे, अपना उद्देश्य स्पष्ट न करेंगे और राष्ट्रीय झंडे का अपमान करेंगे तो मैं इसकी इजाजत आपको न दूंगा। मैं कोई जोखिम उठाने को तैयार नहीं हूँ। जो चीज़ हमने बनाई उसे यदि कोई बिगाड़े तो गोली मारना पड़े तो वह भी हम करेंगे।

"इधर तो गुरूजी हमसे बात करता था और उधर उसने छिपा छिपा कर ग्वालियर से और यू०पी०से सैकड़ों आदमी दंगा करने के लिए दिल्ली बुलाए। जब मुझको यह मालूम हुआ तो उसको गिरफ्तार करना पड़ा। अब सत्याग्रह शुरू हुआ। हिन्दुस्तान की सरकार को अगर कोई शक्ति चुनौती दे तो हम चूकेंगे नहीं। कुछ लोग मुझसे कहते हैं कि तुम सिक्खों को कुछ क्यों नहीं कहते। मैंने कहा सिख हमसे नहीं लड़ेंगे। मास्टर तारासिंह कभी कभी तलवार खींचता है। पर ऐन मौके पर उसकी तलवार म्यान में छिप जाती है। हमें किसी भी कौम से नहीं लड़ना है। हां जो पागलपन फैलायेंगे उनसे लड़ना है। हमें यदि दुनिया में अपनी उचित जगह बनानी है तो उसका वही तरीका है जो गांधी जी ने बताया है और वह तरीका है—प्रेम का, साम्प्रदायिक सद्भावना का, सर्व धर्म समभाव का। समस्त भारतीयों को मिलकर गंभीरतापूर्वक इस समस्या को सुलझाना है।"

पूर्णविश्वास

जयपुर अधिवेशन की विशेषता या अविशेषता यह थी कि गिनेचुने आधे दर्जन नेताओं के अतिरिक्त, कि जिनके कन्धों पर आज महान जिम्मेवारियां हैं, कोई दूसरे व्यक्तित्व ऐसे नहीं थे जो नेतृत्व में हिस्सा बँटा सकते और

इस दृष्टि से, हम कांग्रेस की कार्यवाही को नट-नृत्य कह सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि आपस में मत विभिन्नता नहीं थी। मत विभिन्नता तो अत्यन्त तीव्र थी। उदाहरण के तौर पर विषय निर्वाचिनी समिति में नैतिक व्यवहार वाले प्रस्ताव में कांग्रेजनों और एम० एल० ए० के साथ साथ मिनिस्टरों का शब्द भी जोड़ दिया गया कि वे लोग शुद्धाचरण बर्ते। बाद में पण्डित जवाहरलाल के यह कहने पर कि ये शब्द उन पर और उनके साथियों पर विश्वास की कमी प्रकट करते हैं दूसरे दिन वे शब्द हटा लिये गये। किन्तु इस मत विभिन्नता को प्रकट करनेवाला न कोई संगठित समूह ही था और न प्रखर व्यक्तित्व। जब तक चुनौती देनेवाला प्रखर व्यक्तित्व का नहीं होता तब तक जागरूकता और चेतना नहीं आती। महात्मा गांधी, चित्तरंजनदास, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस और राजगोपालाचारी ने १९२० से लेकर १९४२ तक समय समय पर कांग्रेस के सोये हुए प्राणों में ललकार कर एक चेतना भरी। और उससे कितनी बड़ी जाग्रति और आत्मबल कांग्रेस को मिला। जयप्रकाश नारायण और उनके साथी कुछ दर्जे तक इस कमी को पूरा करते थे। किन्तु उनके कांग्रेस से हट जाने के बाद लगता है मानों कांग्रेसजन अलसा गये हैं। कांग्रेस में निश्चय ही विरोध के अन्त हो जाने से एकता अधिक आ गई है। पहले यह एकता विदेशी सरकार को हटाने के लिये थी। अब यह एकता अपनी सरकार चलाने के लिये है। और यह एकता लाभदायक भी होती है। केवल इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कांग्रेस संगठन के बाहर घटनायें किस तरफ करवट ले रहीं हैं। यह बिल्कुल स्वाभाविक था कि प्रान्तीय सरकारों और केन्द्रीय सरकार की कार्यवाहियों पर कटु टीका-टिप्पणी हो। किन्तु यह भी उचित है कि कांग्रेस की अपनी राय वही होनी चाहिये जो देशवासियों की है। जयपुर कांग्रेस के फैसलों को जिस हद तक कांग्रेस वाले जनता के निकट पहुँचा सकेंगे उसी हद तक कांग्रेस शक्तिशाली होगी। पण्डित जवाहरलाल या सरदार पटेल पर शक्तिप्राप्त करने के लिये निर्भर करना कांग्रेस को दुर्बल बनाना होगा। सरकारें कांग्रेस को मज़बूत नहीं बना सकतीं बल्कि कांग्रेस सरकारों को मज़बूत बनायेगी। इस दृष्टि से इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि कांग्रेस में नये रक्त का संचार किया जाय। आज दुर्भाग्य से कांग्रेस कमेटियों के दरवाजे नये खून के लिये व्यावहारिक दृष्टि से बन्द से हो गये हैं। इस तरह का आत्म-विश्वास कहां तक न्यायोचित है यह तो समय ही बतलायेगा। किन्तु कांग्रेस के त्याग और बलिदान के इतिहास के होते हुए भी यह आत्म-विश्वास एक धोखा साबित हो सकता है।

कांग्रेस के दृष्टिकोण से तीन प्रस्ताव सबसे महत्वपूर्ण थे (१) सन्देश, (२) साम्प्रदायिकता और (३) सार्वजनिक आचरण। वैदेशिक नीति वाले प्रस्ताव पर सब से अधिक एक राय थी। देशी राज्यों के एकीकरण के संबंध में जो कुछ सरकार ने किया उस पर भी काफी संतोष था। शरणार्थियों के लिए दिक्कतों के होते हुए भी जो कुछ किया गया उसकी दाद प्रत्येक शरणार्थी दे रहा है। औद्योगिक और मजदूर समस्या पर कांग्रेस ने अपना आदेश दे दिया है। अब यह सरकारों को चाहिए कि वे अपने दिन प्रतिदिन की नीति में कहां तक इस आदेश को व्यवहार में लायें। कांग्रेस को इसमें जो भी प्रशंसा या बदनामी मिलेगी उसके लिये जिम्मेवारी कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों पर होगी। वर्गहीन समाज का आदर्श केवल एक नारा बन कर रह जायगा यदि कांग्रेसी सरकारों ने उस दिशा में व्यावहारिक कदम न उठाया। आर्थिक कार्यक्रम की दिशा में कांग्रेस अवश्य कदम उठायेगी। किंतु उसकी भी सफलता या असफलता मंत्रि-मंडलों पर निर्भर करती है। यह उचित ही हुआ कि कांग्रेस ने फिर एक बार गांधी जी के आदर्शों की पुष्टि की। गांधी जी के सिद्धांत ही हमारे देश की प्रगति के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम दे सकते हैं। कांग्रेस जनों का सार्वजनिक आचरण जितना ऊँचा रहेगा उतना ही ऊँचा देश भी उठेगा। किंतु यह भी एक सचाई है कि इस दिशा में हमसे काफी गलतियां हुई। किंतु फिर भी यह काम तो हमें करना ही है।

सर्वोदय प्रदर्शिनी

जयपुर अधिवेशन का सबसे सुन्दर अंग सर्वोदय प्रदर्शिनी थी। बांस फूस की सुन्दर झोंपड़ियां और बांस-फूस के सुन्दर तोरण द्वारों ने प्रदर्शिनी की बाह्य आकृति को कलात्मक रम्यता दे दी थी। केवल एक बिजली की बत्तियों को छोड़कर वहां मशीन से बनी हुई चीज़ों का

पूर्ण अभाव था। गांधीजी के १८ धाराओं वाले रचनात्मक कार्यक्रम की कितनी प्रगति हुई है इसका अत्यंत सुन्दर लेखा जोखा प्रदर्शिनी में मिल सकता था। प्राकृतिक इलाज, हिन्दुस्तानी प्रचार, कस्तूरबा समिति का कार्यक्रम, ग्रामोद्योग, पशुपालन, कृषि व्यवस्था, बुनियादी तालीम, चर्खा और खादी, फलोत्पादन, स्वास्थ्य और सफ़ाई, मज़दूरों की उन्नति, गोसेवा आदि विविध विषयों पर प्रदर्शिनी में प्रदर्शन सामग्री इकट्ठा की गई थी। जिन्हें देखकर मन में यह भावना उदय होती थी कि भारतवर्ष की संस्कृति ग्राम्य संस्कृति है। और यह ग्राम्य संस्कृति कितनी सुन्दर है। हमें लगभग ३० वर्षों से कांग्रेस के अधिवेशनों और प्रदर्शिनियों को देखने का अवसर मिल रहा है। किन्तु इससे पूर्व इतनी सुन्दर समग्र ग्राम प्रदर्शिनी का आयोजन कभी न हुआ था। पूज्य बापू यदि जीवित होते तो उन्हें इस प्रदर्शिनी को देख कर अत्यन्त सन्तोष होता।

खादी का कोर्ट हर दृष्टि से सम्पूर्ण था। तरह तरह की कपासों के नमूने, उनका लोढ़ना, उनकी सफाई, उनका पींजना, पूनी बनाने का तरह तरह का तरीका, भिन्न भिन्न प्रकार के चर्खों से कताई, दोनों हाथों से कातना, तरह तरह के कर्घों से बिनना, सुन्दर से सुन्दर बुनाई के ढङ्ग। आसाम, बिहार, आंध्र, गुजरात, उत्कल की बुनाई के नमूने देख कर यही आवाज़ मुँह से निकलती थी कि "धन्य हैं भारतवर्ष के ग्राम और उसके ग्रामीण कलाकार जिन्होंने ऐसी उत्तम-उत्तम डिजाइन की बुनाई को अब तक जीवित रखा है।" खादी के हजारों नमूने इकट्ठा किए गए थे जिन्हें देखकर यह शब्द मुंह से निकल पड़ते थे कि 'खादी अमर है'। ग्रामोद्योग कोर्ट में मधुमक्खी पालन, कुक्कुट पालना, मछलियों का पालना, बकरियों और भेड़ों का पालना, गो पालन, गायों की नस्लें अच्छी करना, खाद बनाना, ताड़ का गुड़ बनाना, गावों में वार्निश और पेंट बनाना, धानी से तेल निकालना, खिलौने बनाना, कुम्हार का नया चाक, पाटरी बनाना, चूड़ियाँ बनाना, नए चूल्हों से ईंधन की बचत, कागज़ बनाना आदि तरह तरह की दस्तकारियाँ पूरे प्रयोग के साथ दिखाई गई थीं। ग्रामोद्योग के सुंदर से सुंदर हज़ारों नमूने इकट्ठा किए गए थे। बुनियादी तालीम के कोर्ट में, अब तक के किए हुए प्रयोग के हज़ारों नमूने प्रदर्शित किए गए थे। ग्राम्य कला की दृष्टि से एक कोर्ट में भारतवर्ष के ग्रामों के भिन्न भिन्न प्रकार के बाजे इकट्ठा किए गए थे। पत्थर, हाथी दाँत, चँदन, सींग, हीरे जवाहरात की कटाई की भी पूरी क्रियायें दिखाई गई थीं। गायों को किस प्रकार सानी पानी देना चाहिए, उनके ठान कैसे होने चाहिएँ, दूध कैसे निकालना चाहिए, दही किस तरह बिलोना चाहिए, दूध की शुद्धता कैसे परखनी चाहिए, आदि बातें विस्तार से दिखाई गई थीं। और इस प्रदर्शिनी के केन्द्र में बापू मंडप बनाया गया था जिसमें बापू के दैनिक प्रयोग की वस्तुएँ और उनके सैकड़ों चित्र लगाए गए थे, जिन्हें देखकर ऐसा भास होता था कि बापू जीवित हैं और हम सब के हृदय में समाए हुए हैं।

जिन भाइयों ने भी इस प्रदर्शिनी का आयोजन किया था उन्होंने भारतीय इतिहास में एक नया मील का पत्थर लगाया है। क्या ही अच्छा होता यदि भारत सरकार का प्रचार विभाग इस समस्त प्रदर्शिनी की फिल्म लेता ताकि देश का बच्चा बच्चा अपने देश के उद्योग-धंधों की झांकी पा लेता।

ग्राम्य-संस्कृति।

प्रदर्शिनी के बुनियादी तालीम कोर्ट की संयोजक श्रीमती आशा आर्यनायकम् ने ग्राम संस्कृतियों के प्रदर्शन के लिए ग्राम-नृत्यों का आयोजन भी किया था। इनमें राजस्थान, केरल, तामिलनाड, बंगाल, आसाम, बिहार, आदि प्रांतों के शिक्षा मूलक ग्राम नृत्यों की आयोजना की गई थी। इन नृत्यों को देखकर विविध प्रांतों की ग्राम संस्कृतियों की सुंदर झांकी हमें प्राप्त होती थी। हिन्दू मुसलिम एकता के, बंगाल के बाउल नृत्य और संगीत, भीलों के नृत्य और संगीत, तामिलनाड के नृत्य और संगीत, संथालों के नृत्य और संगीत, ग्राम संस्कृति की व्यापकता को और उसके मौलिक संदेश को दर्शकों के सामने रखते थे। श्रीमती आशा देवी का यह आयोजन बेहद पसंद किया गया और अनेक क्षेत्रों से उन्हें बधाई का संदेश मिला।